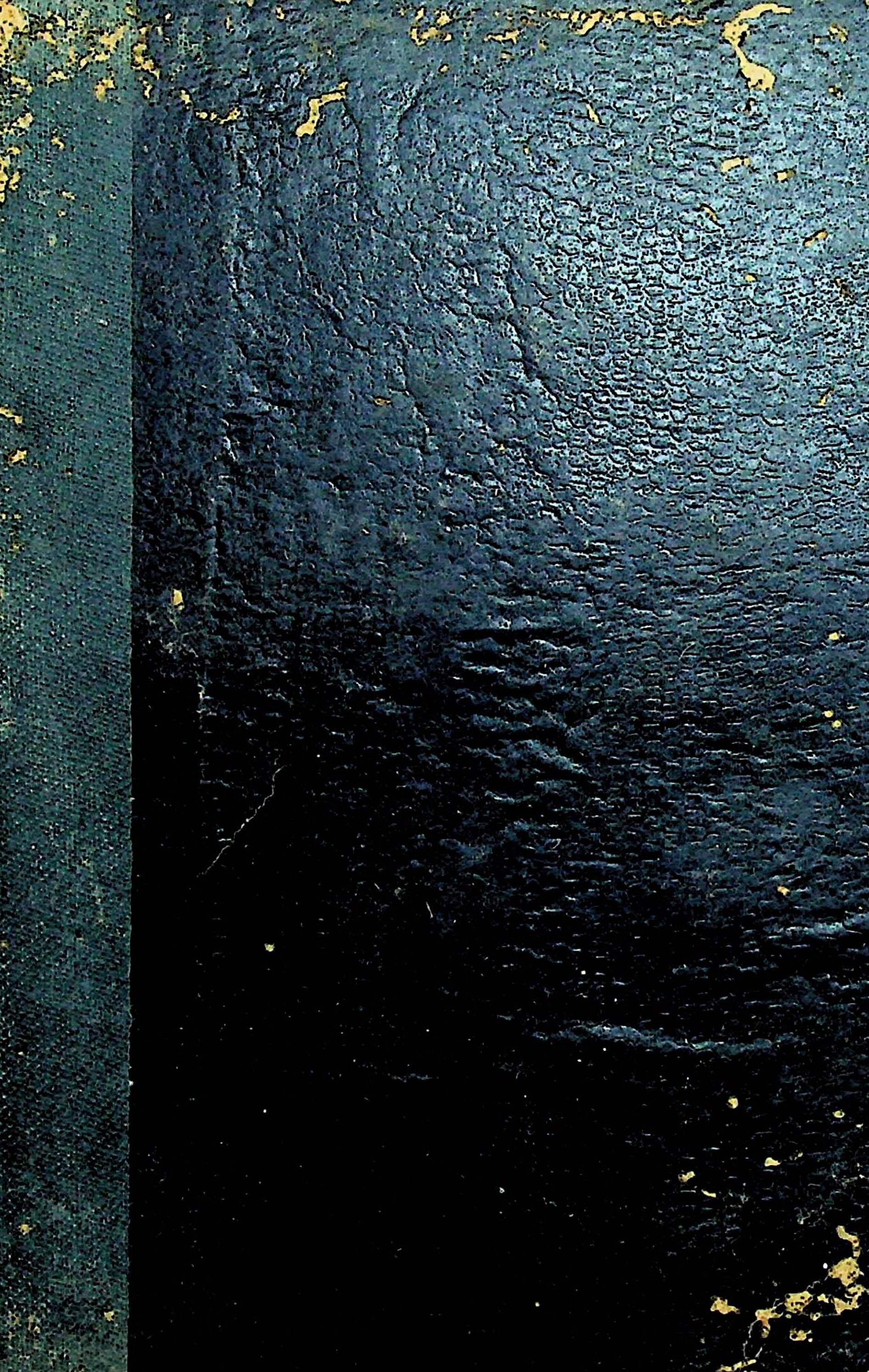


3·5

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥



गुरुमण्डलग्रन्थमालाया एकोनविंशम्पुष्पम्

वायुपुराणम्

प्रक्रियादिचतुष्पादात्मकम्पूर्वार्धम्

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासविरचितम्

"पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्"
(मत्स्यपुराणम्)

मनसुखराय मोर

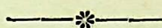
५, क्लाइव रो, कलकत्ता-१

विक्रम सम्वत् २०१६] [ईशवीय सन् १९५९

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

गुरुमण्डलग्रन्थमालाया एकोनविंशम्पुष्पम्

वायु-पुराणम्



प्रक्रियोपोद्घातानुषङ्गोपसंहारात्मकम्

पूर्वार्धम्

श्रीमन्महर्षि-कृष्णद्वैपायनव्यास-विरचितम्

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ।
सिद्धौघं वटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् (शाम्भवम्)
वीरान्द्व्यष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम् ।
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्देगुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो,

कलकत्ता—१

वैक्रमाब्दः	प्रथमं संस्करणम्	खैस्ताब्दः
२०१६	२०००	१९५९

Gurumandal Series No. XIX

VAYU PURANAM



With Four Volumes

POORVARDHAM

BY

Shrimanmaharshi Krishna Dwaipayan Vedavyas

5, CLIVE ROW
CALCUTTA-1

Vikram era	First Edition	Christian era
2016	3000	1959

गोपाल प्रिण्टिङ्गवर्क्स
८७ए, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट,
कलकत्ता–६



परमपूज्य श्री १०८ दर्शनरत्न वेदालङ्कार महामण्डलेश्वर सर्वानन्दजी
वेदमन्दिर, कांकरिया रोड, अहमदाबाद (गुजरात)

सादरं समर्पणम्



...त्रभवतां निखिलविद्याचातुरीचतुराणां दिगन्तरालव्याप्तकीर्त्तीनां सौजन्य-
चरिताम्बुधिनिष्णातानां धुरन्धरपुरन्दरगुरुगरिष्ठानां ब्रह्मविद्वरिष्ठानां
सांसारिकजनसमूहाज्ञानान्धकारनिवारणसहस्रांशुरूपाणां ब्रह्मविचार-
सारपरायणानां वायुरिव सर्वत्र शास्त्रेष्वप्रतिहतगतीनां समस्वपक्ष-
परपक्षप्राप्तसमादराणां अहमदाबादस्थवेदमन्दिरसंस्थास्थितानां
परमहंसयतीन्द्रप्रवरपरिव्राजकाचार्याणां श्री ६ स्वामि-
सर्वानन्दतीर्थपादानां करकमलेषु मिलिन्दार्यताम्

गुरुमण्डलग्रन्थमालाया-

एकोनविंशम्पुष्पम्

वायुपुराणम्

इति समर्पयति

सादरं श्रद्धान्वितो

...घ कृष्णा १ मकरसंक्रान्तौ
सं० २०१६

मनसुखरायमोरः
५, क्लाइव रो, कलिकाता—१

श्रीहरिः

वायुपुराण (पूर्वार्ध) की भूमिका

जयति सकलविद्यावाहिनीजन्मशैलो
जनिपथपरिवृत्तिश्रान्तविश्रान्तिशाखी।
निखिलकुमतिमायाशर्वरीबालसूर्यो
निगमजलधिवेलापूर्णचन्द्रो यतीन्द्रः॥

जन्म-जन्मान्तर की वासनाओं के कारण भवाटवी में भटकते हुए चेतनों के उज्जीवन के लिये पुराण सरल-सरस राजमार्ग हैं। इनकी उज्ज्वल उपयोगिता के कारण ही पितामह ब्रह्माजीने सर्व विद्याओं के आगे पुराण विद्या का स्मरण किया—

"पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।"

इनकी प्रवृत्ति पर दृष्टिपात करते ही धर्म का अपूर्व आलोक सामने आ जाता है। श्री तीर्थराज प्रयाग में एक मुनिमण्डली ने जब भगवान् विष्णु से पुण्य स्थान पूछा तब उन्होंने एक चक्र देकर कहा कि जहां यह चक्र नष्ट हो जाय वही पुण्यस्थान है। चक्र के पीछे मुनिमण्डली चल पड़ी, वह चक्र जहां नष्ट हुआ स्थान का नाम नैमिषारण्य क्षेत्र कहलाया। यह परम पवित्र पुण्य प्रदेश प्रसिद्ध हुआ। यहीं पर विराट् ऋषि समाज दीर्घकाल व्यापी यज्ञ कर रहा था। व्यास के शिष्य लोमहर्षण ने अपने पुत्र उग्रश्रवा सूत से कहा कि तुम उस यज्ञ में जाओ और ज्ञानी ऋषियों के धर्मसंशयों को कहो—

"तत्र गत्वा तु तान् ब्रूहि पृच्छतो धर्मसंशयान् ।"

(पद्मपु० सृ० अ० १)

उस यज्ञ के कुलपति सर्व-शास्त्र-विशारद शौनकजी के प्रश्नों के उत्तर में पुराणों का प्रवचन सूतजीने नैमिषारण्यक्षेत्र में किया था। इससे यह प्रतीति होती है कि पुराणों की प्रवृत्ति धार्मिक शंकाओं की निवृत्ति के लिए हुई है। सर्व शास्त्रों का ज्ञाता यदि पुराण का ज्ञाता न हो तो वह विचक्षण नहीं हो सकता है। धार्मिक सन्देहों की निवृत्ति के लिये पुराणों का स्वाध्याय आवश्यक है। यही कारण है कि पुराणों के ऊपर हेतु शास्त्र का बल नहीं चलता है—

पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम् ।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः ॥

यहां यह भी एक विशेष ध्यान देने की बात है कि हेतु से अतर्क्य पुराण, मानव-धर्मशास्त्र, साङ्ग-वेद और चिकित्साशास्त्र इनमें पुराण को प्रथम रक्खा गया है।

जिस प्रकार सबके अन्त में शेष रहने वाले परमात्मा से वेदों की उत्पत्ति हुई है और ब्रह्माजी के द्वारा उनकी परम्परा चली है उसी प्रकार से पुराणों का आविर्भाव भी परमात्मा ही हुआ है और ब्रह्माजीके द्वारा उसकी प्रवचन परम्परा चली आ रही है। वायुपुराण में भी इस परम्परा का इस प्रकार वर्णन आता है—

सर्वपापहरं पुण्यं पवित्रं च यशस्वि च ।
ब्रह्मा ददौ शास्त्रमिदं पुराणं मातरिश्वने ॥
तस्माच्चोशनसा प्राप्तं तस्माच्चापि बृहस्पतिः ।
बृहस्पतिस्तु प्रोवाच सवित्रे तदनन्तरम् ॥
सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेन्द्राय वै पुनः ।
इन्द्रश्चाऽऽपि वशिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च ॥

सारस्वतस्त्रिधाम्ने च त्रिधामा च शरद्वते।
शरद्वतस्त्रिविष्टाय सोऽन्तरिक्षाय दत्तवान्॥
वर्षिणे चान्तरिक्षो वै सोऽपि त्रय्यारुणाय च।
त्रय्यारुणो धनञ्जये स च प्रादात्कृतञ्जये॥
कृतञ्जयात् तृणञ्जयो भरद्वाजाय सोऽप्यथ।
गौतमाय भरद्वाजः सोऽपि निर्यन्तरे पुनः॥
निर्यन्तरस्तु प्रोवाच तथा वाजश्रवाय च।
स ददौ सोमशुष्माय स ददौ तृणविन्दवे॥
तृणविन्दुस्तु दक्षाय दक्षः प्रोवाच शक्तये।
शक्तेः पराशरश्चाऽपि गर्भस्थः श्रुतवानिदम्॥
पराशराज्जातुकर्णस्तस्माद् द्वैपायनः प्रभुः।
द्वैपायनात्पुनश्चाऽपि मया प्रोक्तं द्विजोत्तमाः!॥

(वायुपुराण, उपसंहारपाद अ० १०३)

ब्रह्मा से लोमहर्षणि सूत पर्यन्त जिस वायुपुराण की यह परम्परा है। प्रस्तुत वायुपुराण अष्टादश पुराणों में परिगणित एक महापुराण है। वायुप्रोक्त होने से इसका नाम वायुपुराण हुआ। यह पुराण चार पादों में विभक्त है—

प्रक्रिया प्रथमः पादः कथावस्तुपरिग्रहः।
अनुषङ्ग उपोद्धात उपसंहार एव च॥
एवमेतच्चतुष्पादं पुराणं लोकसम्मतम्।
उवाच भगवान्साक्षाद् वायुर्लोकहितेरतः॥

(वायुपुराण उपसंहारपाद अ० १०३)

अर्थात् प्रक्रिया (१) अनुषङ्ग (२) उपोद्धात (३) उपसंहार (४) ऐसे चार पादवाला लोकसम्मत कथावस्तु सहित यह पुराण साक्षात् भगवान् वायुदेव द्वारा कहा गया है।

श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान्वायुरिहाऽब्रवीत् ।
यत्र तद् वायवीयं स्याद् रुद्रमाहात्म्यसञ्ज्ञितम् ।
चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते ॥

(मत्स्य पु० ५३ अ०)

इस महत्त्वपूर्ण पुराण का सम्पूर्ण अंश उपलब्ध नहीं है। उपर्युक्त प्रस्तुत श्लोक के अनुसार इस महापुराण में २४००० चौबीस हजार श्लोक हैं जिसमें यह १०९९१ श्लोकात्मक है। इसके विद्वान् सम्पादक एवं प्रकाशकोंने एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता, आनन्दाश्रम पूना और महामहोपाध्याय पञ्चानन तर्करत्न महोदय द्वारा सम्पादित वंगवासी संस्करण की प्रतियों को सामने रखकर इसका सम्पादन प्रकाशन किया है। पुराणों के अनुपलब्ध अंशों का अनुसन्धान एक जटिल विषय है। किन्तु इस पर भी विद्वानों को ध्यान देना आवश्यक है।

महापुराणों में शिव और वायु के विवाद की भी एक बात आती है। किन्तु यह विवाद कोई बड़े महत्त्व का नहीं है। शिवपुराण भी महापुराण है और वायु भी। शिवपुराण को वायुपुराण कहना भ्रामक है। इस भ्रम का कारण यह है कि शिवपुराण की "ज्ञान संहिता" 'विद्येश्वर संहिता" "कैलाश संहिता" 'सनत्कुमार संहिता' "वायवीय संहिता" "धर्म संहिता" ये संहिताये हैं। इनमें शिवमाहात्म्यादि प्रतिपादक वायुप्रोक्त वायवीयसंहिता है और वायुप्रोक्त स्वतन्त्र वायुपुराण पृथक् है। दोनों के वायुप्रोक्त होने के कारण कुछ समालोचक भ्रम में पड़ गये हैं।

वायुपुराण के प्रक्रियापाद में पुराण का निर्वचन इस प्रकार है—

यस्मात्पुरा ह्यनक्तीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम् ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित यह पुराण लक्षण भी वायुपुराण में पूर्णतया घटता है।

आजकल पुराण विद्याके सम्यक् स्वाध्याय न होने के कारण पुराणों पर निर्मूल आक्षेप होते हैं। गहराई से अनुसन्धान करने पर यह भी पता चलता है कि अधिकांश सज्जन तो विना पुराणों के पढ़े ही इधर-उधर से देख सुनकर पुराणों पर आक्षेप कर बैठते हैं। कुछ लोग तो इन्हें कथा कहानी कहनेमें भी संकोच नहीं करते। ऐसे लोग शान्तचित्त से विचार करें कि यदि पुराण इतने हलके स्तर के ग्रन्थ होते तो महादार्शनिक तत्त्वविचारक श्रीमदाद्यशंकराचार्य, श्रीभास्कराचार्य, श्रीकुमारिल भट्ट और श्रीरामानुजाचार्य प्रभृति महानुभाव पुराणों को निर्भ्रान्त प्रमाण क्यों मानते। पुराणों के अन्तस्तल में घुस कर देखा जाय तो देश काल परिस्थिति का विचार करके पुराणों में धर्म आदि तत्त्वों का ऐसा विवेचन किया गया है जैसा संसार में अन्यत्र दुर्लभ है। प्रकृत वायुपुराण में ईश्वरस्वरूप, पृथिवीसंनिवेश, शौचाचार, मन्वन्तर, कल्पभेद, विविध सर्ग, भुवनविन्यास, तीर्थ, पितृयान, गुरुभक्ति, पितरश्राद्ध, भूगोल, खगोल और ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि सभी विषयों का सांगोपांग वर्णन मिलता है। यह पुराण तत्त्व कथा की ओर अग्रसर होकर भी काण्ड पर अधिक बल देता है श्राद्ध कल्प तथा गयाश्राद्ध इसमें विस्तार के साथ आया है। संक्षेप में, सभी तत्त्व इसमें सुन्दर ढंग से प्रतिपादित हुए हैं।

देव देवी ऋषि महर्षियों के जो चरित्र हमें सदाचार प्रतिकूल दीखते हैं वे चाहे जिस भाव से हों उनमें दार्शनिक तत्त्व चाहे जो भी हों किन्तु पुराणों की सदाचार की मान्यता वहां भी अकाट्य है। चाहे मनुष्य जितने बड़े हों किन्तु जहां उनका सदाचार के प्रतिकूल आचरण का उल्लेख है वहां उसके कुफल रूप दण्ड प्रायश्चित्त का उल्लेख भी विद्यमान है।

परम-तत्त्व निरूपण की दृष्टि से पुराण अजेय हैं। पुराणों में विविधभावों से विविधनामों से विविध अधिकारियों के लिये विविध प्रकारों से एक ही परम तत्त्व का निरुपण किया गया है। इस विषय में ऋग्वेद के "यो देवानां नामधा एक एव" इस वचन के साथ पुराणों की पूर्ण एकता है।

थोड़े में पुराण मानव जाति के हृदयान्धकार को दूर करने वाले मणिमय
ोप हैं। ऐसे बहुमूल्य मणिमय प्रदीप के वर्तमान प्रस्तुत-कर्ता गुरुमण्डल के
ापति श्रीमनसुखरायजी मोर तथा उनके सहकारी विद्वान् सम्पादक वर्ग आर्य
ातन हिन्दू जाति की ओर से सर्वथा धन्यवादार्ह हैं। विद्वद्वर्ग को इस पुराण
लाभ होगा ऐसी आशा है।

निवास विद्यामन्दिर, आरा
ुर्मास शुक्ला ११,२०१६ वि०
२७-१२-१९५९

आचार्य श्री गोपालदत्त शास्त्री

* श्रीगणेशायनमः *

वायुपुराण के विषय में

जगन्नियन्ता जगदीश्वर की असीम अनुकम्पा से गुरुमण्डल ग्रन्थमाला १६ वें पुष्प के रूप में कृपालु पुराणपारायणशील विद्वान् पाठक महानुभावों सेवा में इस वायुपुराण के पूर्वार्ध भाग को समर्पित करते हुए हार्दिक प्रसन्नता रही है। भगवान् वेदव्यासजीने पुराण साहित्य के लिये भारतीय जनता के हित इतनी गुरुगम्भीर ज्ञानराशि प्रदान की है कि उसकी इयत्ता बताना सूर्य को दीप दिखाना है। इस ग्रन्थ की आदर्श पुस्तक आनन्दाश्रम, पूना से छपा वायुपुर का ग्रन्थ ही है वैसे सम्पादन एवं सन्देहनिवृत्ति के लिये एशियाटिक सोसाय कलकत्ता एवं वेङ्कटेश्वर प्रेस से छपे हुए वायुपुराण की पुस्तकों की सहायता य कदा ली गई परन्तु[1] २४००० हजार श्लोकों में से १०६६१ श्लोक ही उपलब्ध हो प अवशिष्ट भाग की पूर्ति के लिये हमें श्री गोपालजी व्यास, कथावाचक, बीका के पास वायुपुराणान्तर्गत माघमाहात्म्य नामक पत्राकार लीथो का पुराना छ ग्रन्थ मिला है अनुसन्धान करने पर और भी भाग मिल सकते हैं सम्पूर्ण ग्रन्थ उपलब्धि होने पर यथाक्रम अध्यायों के विवेचन पूर्वक क्रमशः उन्हें सुनियोजि करने के कार्य आदि में अपेक्षित बहुत अनुभव एवं अन्तर्दृष्टि द्वारा पाठक महानुभ इस ग्रन्थ को पूर्ण करने में हमारा साहाय्य कर सकें तो हम आभारी होंगे।

इन ग्रन्थों में ज्ञान की अगाध राशि भरी पड़ी है। मनुष्यों में ही ज्ञान ऐसी विलक्षण शक्ति है कि वह सर्वभूतहितेरता बन कर प्रभु का लाडला ज्येष्ठ

---

[1] श्वेतकल्पप्रसङ्गेनधर्मान्वायुरिहाऽब्रवीत्। यत्रतद्वायवीयंस्याद्रुद्रमाहात्म्यसञ्ज्ञि
चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते।

(मत्स्य पु० ५३ अ

अपने को सिद्ध करता है। भगवान् देवाधिदेव उसी ज्ञान के सम्पूर्णतः अधिकारी मानव की मुण्डमाला ही इसीलिये धारण करते हैं कि आत्मसंयम के द्वारा मानव त्रिकालाबाधित सत्य ज्ञान का साक्षात्कार कर प्राणी हित में लगते हैं।

यह ज्ञान किसी लिङ्ग या बाहरी चिह्न से वेद्य नहीं है। इसे स्वयम्प्रकाश सञ्ज्ञा मिली है। सर्वज्ञ आत्मा का धर्म होने से यह स्वयम्भू है। जैसे दिन का प्रकाशक सूर्य रात्रि का प्रकाशक चन्द्रमा और घर के अन्धकार में दीपक प्रकाशित करने वाला है वैसे ही आत्मा ज्ञान से प्रकाशित होता है। इस परम तत्त्व आत्मा का इत्थम्भूत ज्ञान के साथ आकार प्रकार नहीं है। यही इसकी विलक्षणता है।

नास्ति ज्ञानसमो दीपः सर्वान्धकारनाशने।
स्वर्गे भूमौ च पाताले स्थाने स्थाने च दृश्यते।
काममध्ये स्थितं ज्ञानं न विन्दन्ति कुबुद्धयः।
ज्ञानस्थानं प्रवक्ष्यामि यस्माज्ज्ञानम्प्रजायते॥

इन्द्रियों के तत्तद् विषयों का मर्दन करता हुआ विवेक वह्नि से सभी कषायों को जलाकर इस शिवशक्त्यात्मक ज्ञान को प्राप्त करने वाला पुरुष ही एक मात्र ज्ञान का अधिकारी है।

भारतीय संस्कृति के गुणानुवाद अपौरुषेय वेद, ऋषि प्रणीत आचारसंहिता एवं नाना आख्यान अधिकन्तु पुराण साहित्य में कूटकूट कर भरे हैं। उनके पुनः प्रचार प्रसार की बहुत बड़ी आवश्यकता है। वैदेशिक शासन में जब इन महान् ग्रन्थोंने हमें प्रेरणा देकर अद्यावधि हमारा स्वरूप रक्खा तो अब कोई कारण नहीं कि हम इतनी बड़ी अगाध ज्ञानराशि को पठन, मनन, प्रवचन और जीवन में उतारने का अदम्य उत्साह न दिखावें। आज स्वतन्त्रता के उषः काल में नये मूल्य, नये उत्साह और नये वातावरण की चकाचौंध करने वाली परिस्थितियों में ये ग्रन्थ हमारा बहुत बड़ा उपकार कर हमें पथप्रदर्शन करेंगे यह मेरी दृढ़ मान्यता है।

वेदव्यासजी का वैदिक साहित्य के सम्पादन, वेदान्तदर्शन के निर्माण एवं नाना पुराण तथा महाभारत जैसी अमूल्य निधि के भगीरथ कार्य प्रचालन में महान् योग है। भारतीय जीवन की आधारभित्ति बनाने में सिद्धान्तों का एक भारतीय धर्मव्याख्या का समान उद्देश्य, उन्नत दर्शन और ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं विविध विषयों पर साधिकार प्रतिपादन ही अद्यावधि पूर्ण रूप से उत्तरदायी है।

व्यासजी की महनीय निधिका आजतक भारतीयों को लाभ मिला है इसमें दो राय नहीं हो सकती। अब उसे जीवन व दर्शन के साथ समन्वय कर अधिकाधिक प्रचार करने की आवश्यकता है। बड़े-बड़े साम्राज्य एक के बाद उत्थान पतन की अविरल धुरा में चढ़े और गिरे तथा काल के गह्वर मे विलीन हो गये। ऋषि भूमि भारत में आज भी यह उन्नत ज्ञान सगौरव महान् से महान् व छोटे से छोटे स्तर पर अपना आधिपत्य जमाकर नैसर्गिक साम्य का आदेश दे रहा है। यह कम गौरव की बात नहीं। व्यास की भूमि सम्पूर्ण भूमण्डल पर पुराण ग्रन्थों की वर्णितव्यवस्था का विश्वप्रेम, विश्वभ्रातृत्व एवं विश्वहित का सर्वत्र प्रचार हो तो अन्ताराष्ट्रीय तनाव की खाई ही नष्ट नहीं होगी बल्कि एक सत्ययुग कालीन वातावरण अपने आप स्वतः पूर्ण मानवजीवन का एक अध्याय आरम्भ हो जायगा ऐसी मेरी मान्यता है।

इन पुराणों में भगवान् की अनन्त महिमा यत्र तत्र सर्वत्र ही गाई गई है उस तत्त्व की प्राप्ति के लिये पुराणों के पारायण एवं अनुसन्धान करने में प्रवृत्त साधकों को सभी प्रकार के ज्ञान लाभ का अमित आनन्द होगा ही साथ ही अधोगति से प्राणीमात्र को छुड़ाकर उन्हें नवीन ज्ञान लोक में सर्वतः प्रसृत अपने में पूर्ण आत्मानुभव द्वारा परमार्थ की भावना प्रसारित कर नया युग, नयी चेतना एवं अभिनव सर्जन का विशिष्ट अग्रदूत बना सकेगा। कृपालु पुराण प्रेमी पाठक वृन्द से मैं करबद्ध क्षमा मांगता हूं कि इस महान् ज्ञानराशि के प्रसार के लिये लालायित होने पर भी साधारण मानव सीमा में बन्धा हुआ आप लोगों के पूर्ण सहयोग

की प्रार्थना करता हूं जिससे यह टिमटिमाती ज्ञान ज्योति प्रखर सूर्य की किरणों के समान सर्वत्र प्रकाशमान होकर मानव संसार की आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक बाधाओं को दूर कर सके।

इस बार वायुपुराणके सम्पादन कार्य में पण्डित श्री रामनाथजी शास्त्री पुराण-सांख्य-स्मृति तीर्थ (नवलगढ़ निवासी) एवं लक्ष्मणगढ़ निवासी पण्डित श्री ब्रह्मदत्तजी त्रिवेदी एम० ए०, व्याकरणाचार्य ने सहयोग दिया उन्हें अपने ही आत्मीय होने के नाते कुछ धन्यवाद के शब्द कहना उनकी कार्य गुरुता को लघु बनाना है। श्रीमान् पण्डितप्रवर आचार्य श्रीगोपालदत्तजी शास्त्री, अध्यक्ष: श्रीनिवास विद्यामन्दिर आरा, (विहार) ने वायुपुराण की विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिख हमें उपकृत किया है उनकी इस हार्दिक कृपा का मैं कृतज्ञ हूं। अन्त में मैं आप लोगों की सद्भावना पूर्ण कृपा के लिये हार्दिक आभारपूर्ण कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ, इस प्रयास में जो त्रुटियां हैं वह मेरी अपनी कमी है जो सुन्दर है वह आप महानुभावों की कृपा और शुभाशीर्वाद का फल है। अपनी मानव सुलभ अपूर्णता के लिये मैं वारम्वार क्षमा प्रार्थी हूं।

"कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्"

माघ कृष्ण १, मकर संक्रान्ति २०१६,
१४ जनवरी १९६०

कृपाभिलाषी :-
मनसुखराय मोर
५, क्लाइव रो, कलकत्ता—१

* श्रीगणेशायनमः *

श्रीमत्कृष्णद्वैपायनव्यासमुनिप्रणीत

वायुपुराणस्थ-प्रक्रियापादगत-

विषयानुक्रमणिका

उपोद्घातपादगत-विषयानुक्रमणिका

अनुषङ्गपादस्थ-विषयानुक्रमणिका

उपसंहारपादस्थ-विषयानुक्रमणिका

———

समाप्ताचेयं वायुपुराणस्थ प्रक्रियाद्युसंहारान्तचतुष्पादानां विषयानुक्रमणिका इति विद्वज्जनकृपाभिलाषिणौ लक्ष्मणदुर्गाभिजन (लक्ष्मणगढ़-सीकर निवासि) ब्रह्मदत्तत्रिवेदि—नवलदुर्गवास्तव्य (नवलगढ़-जयपुर निवासि) रामनाथमिश्रदाधीचौ ।

शुभमस्तु सताम्





सा मां पातु सरस्वतीभगवती निःशेषजाड्यापहा



* श्रीगणेशायनमः *

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतम्

वायुपुराणम् ।

तत्र प्रक्रियापादे

प्रथमोऽध्यायः ।

अनुक्रमणिकाध्यायवर्णनम्

मङ्गलाचरणवर्णनम्

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।

यस्याऽऽस्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति ॥२॥

प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् । महादेवं महात्मानं सर्वस्य जगतः पतिम् ॥

ब्रह्माणं लोककर्तारं सर्वज्ञमपराजितम् । प्रभुं भूतभविष्यस्य सांप्रतस्य च सत्पतिम्

ज्ञानमप्रतिमं यस्य वैराग्यं च जगत्पतेः । ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सहसिद्धं चतुष्टयम् ॥

य इमान्पश्यते भावान्नित्यं सदसदात्मकान् ।

आविशन्ति पुनस्तं वै क्रियाभावार्थमीश्वरम् ॥ ६ ॥

लोककृल्लोकतत्त्वज्ञो योगमास्थाय तत्त्ववित् ।
असृजत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ७ ॥
तमजं विश्वकर्माणं चित्पतिं लोकसाक्षिणम् ।
पुराणाख्यानजिज्ञासुर्व्रजामि शरणं प्रभुम् ॥ ८ ॥
ब्रह्मवायुमहेन्द्रेभ्यो नमस्कृत्य समाहितः । ऋषीणां च वरिष्ठाय वसिष्ठाय महात्मने
तन्नप्त्रे चातियशसे जातूकर्णा (र्ण्या) य चर्षये ।
वसिष्ठायैव शुचये कृष्णद्वैपायनाय च ॥ १० ॥
पुराणं संप्रवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वेदसंमितम् ।धर्मार्थन्यायसंयुक्तैरागमैः सुविभूषितम् ॥
असीमकृष्णे विक्रान्ते राजन्येऽनुपमत्विषि । प्रशासतीमां धर्मेण भूमिं भूमिपसत्तमे
ऋषयः संशितात्मानः सत्यव्रतपरायणाः ।
ऋजवो नष्टरजसः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ॥ १३ ॥
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रं तु ईजिरे । नद्यास्तीरे दृषद्वत्याः पुण्यायाः शुचिरोधसः ॥
दीक्षितास्ते यथाशास्त्रं नैमिषारण्यगोचराः ।
द्रष्टुं तान्स महाबुद्धिः सूतः पौराणिकोत्तमः ॥ १५ ॥
लोमाणि हर्षयांचक्रे श्रोतॄणां यत्सुभाषितैः ।
कर्मणा प्रथितस्तेन लोकेऽस्मिल्लोमहर्षणः ॥ १६ ॥
तपःश्रुताचारनिधेर्वेदव्यासस्य धीमतः । शिष्यो बभूव मेधावी त्रिषु लोकेषु विश्रुतः
पुराणवेदो ह्यखिलस्तस्मिन्सम्यक्प्रतिष्ठितः । भारतीचैवविपुला महाभारतवर्धिनी ॥
धर्मार्थकाममोक्षार्थाः कथा यस्मिन्प्रतिष्ठिताः ।
सूक्ताः सुपरिभाषाश्च भूमावोषधयो यथा ॥ १६ ॥
स तान्न्यायेन सुधियो न्यायविन्मुनिपुङ्गवान् ।
अभिगम्योपसंसृत्य नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ॥ २० ॥
तोषयामास मेधावी प्रणिपातेन तानृषीन् ।
ते चापि सत्रिणः प्रीताः ससदस्या महौजसः ॥ २१ ॥

तस्मै साम च पूजां च यथावत्प्रतिपेदिरे। अथ तेषां पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत ॥

दृष्ट्वा तमतिविश्वस्तं विद्वांसं लोमहर्षणम्।
तस्मिन्सत्रे गृहपतिः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ २३ ॥

इङ्गितैर्भावमालक्ष्य तेषां सूतमचोदयत्। त्वया सूत महाबुद्धिर्भगवान्ब्रह्मवित्तमः ॥

इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः।
दुदोह वै मतिं तस्य त्वं पुराणाश्रयां कथाम् ॥ २५ ॥

एषां च ऋषिमुख्यानां (णां) पुराणं प्रति धीमताम्।
शुश्रूषाऽस्ति महाबुद्धे ! तच्छ्रावयितुमर्हसि ॥ २६ ॥

सर्वे हीमे महात्मानो नानागोत्राः समागताः
स्वान्स्वान्वंशान्पुराणैस्तु शृणुयुर्ब्रह्मवादिनः ॥ २७ ॥

सपुत्रान्दीर्घसत्रेऽस्मिञ्श्रावयेथा मुनीनथ।
दीक्षिष्यमाणैरस्माभिस्तेन प्रागसि संस्मृतः ॥ २८ ॥

इति संनोदितः सूतः प्रत्युवाच शुभां गिराम्।
श्लक्ष्णां च न्यायसंयुक्तां यां ब्रूयाल्लोमहर्षणः ॥ २९ ॥

सूत उवाच

पूतोऽस्म्यनुगृहीतश्च भवद्भिरभिनोदितः। पुराणार्थं पुराणज्ञैः सत्यव्रतपरायणैः ॥३०

स्वधर्म एष सूतस्य सद्भिर्दृष्टः पुरातनैः। देवतानामृषीणां च राज्ञां चामिततेजसाम्

वंशानां धारणं कार्यं श्रुतानां च महात्मनाम्।
इतिहासपुराणेषु दिष्टा ये ब्रह्मवादिभिः ॥ ३२ ॥

न हि वेदेष्वधीकारः कश्चित्सूतस्य दृश्यते। वैन्यस्य हि पृथोर्यज्ञे वर्तमाने महात्मनः

सुत्यायामभवत्सूतः प्रथमं वर्णवैकृतः। ऐन्द्रेण हविषा तत्र हविः पृक्तं बृहस्पतेः ॥

जुहावेन्द्राय देवाय ततः सूतो व्यजायत। प्रमादात्तत्र संजज्ञे प्रायश्चित्तं च कर्मसु ॥

शिष्यहव्येन यत्पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः। अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृतः ॥३६॥

यच्च क्षत्रात्समभवद्ब्राह्मणावरयोनितः। ततः पूर्वेण साधर्म्यात्तुल्यधर्मा प्रकीर्तितः

मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षत्त्रोपजीवनम् ।
रथनागाश्वचरितं जघन्यं च चिकित्सितम् ॥ ३८ ॥
तत्स्वधर्ममहंपृष्टो भवद्भिर्ब्रह्मवादिभिः । कस्मात्सम्यङ्न विब्रूयां पुराणमृषिपूजितम्
पितॄणां मानसी कन्या वासवी समपद्यत ।
अपध्याता च पितृभिर्मत्स्ययोनौ बभूव सा ॥ ४० ॥
अरणीव हुताशस्य निमित्तं यस्य जन्मनः ।
तस्यां जातो महायोगी व्यासो वेदविदां वरः ॥४१॥
तस्मै भगवते कृत्वा नमो व्यासाय वेधसे । पुरुषाय पुराणाय भृगुवाक्यप्रवर्तिने ॥
मानुषच्छद्मरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे । जातमात्रं च यं वेद उपतस्थे ससंग्रहः ॥
धर्ममेव पुरस्कृत्य जातूकर्ण्यादवाप तम् ।
मतिं मन्थानमाविध्य येनासौ श्रुतिसागरात् ॥ ४४ ॥
प्रकाशं जनितो लोके महाभारतचन्द्रमाः । वेदद्रुमश्च यं प्राप्य सशाखः समपद्यत ॥
भूमिकालगुणान्प्राप्य बहुशाखो यथा द्रुमः । तस्मादहमुपश्रुत्य पुराणं ब्रह्मवादिनः ॥
सर्वज्ञात्सर्ववेदेषु पूजिताद्दीप्ततेजसः । पुराणं संप्रवक्ष्यामि यदुक्तं मातरिश्वना ॥४७
पृष्टेन मुनिभिः पूर्वं नैमिषीयैर्महात्मभिः । यज्ञेश्वरः परोऽव्यक्तश्चतुर्बाहुश्चतुर्मुखः
अचिन्त्यश्चाप्रमेयश्च स्वयंभूर्हेतुरीश्वरः । अव्यक्तं कारणं यद्यन्नित्यं सदसदात्मकम्
महदादिविशेषान्तं सृजतीति विनिश्चयः । अण्डं हिरण्मयञ्चैव बभूवाप्रतिमं ततः ॥
अण्डस्याऽऽवरणं चाद्भिरपामपि च तेजसा ।
वायुना तत्स नभसा नभो भूतादिनाऽऽवृतम् ॥ ५१ ॥
भूतादिर्महता चैव अव्यक्तेनाऽऽवृतो महान् ।
अतोऽत्र विश्वदेवानामृषीणां चोपवर्णितम् ॥ ५२ ॥
नदीनां पर्वतानां च प्रादुर्भावोऽत्र शस्यते ।
मन्वन्तराणां सर्वेषां कल्पानां चोपवर्णनम् ॥ ५३ ॥
कीर्तनं ब्रह्मक्षत्त्रस्य ब्रह्मजन्म च कीर्त्यते । अतोब्रह्मणि सृष्टत्वं प्रजासर्गोपवर्णनम्

अवस्थाश्चात्र कीर्त्यन्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
कल्पानां वत्सरं चैव जगतः स्थापनं तथा ॥ ५५ ॥

शयनं च हरेरत्र पृथिव्युद्धरणं तथा । संनिवेशः पुरादीनां वर्णाश्रमविभागशः ॥५६॥

वृक्षाणां गृहसंस्थानां सिद्धीनां च विनाशनम् ।
योजनानां पथां चैव संचरं बहुविस्तरम् ॥ ५७ ॥
स्वर्गे स्थानविभागं च मर्त्यानां शुभचारिणाम् ।
वृक्षाणामोषधीनां च वीरुधां च प्रकीर्तनम् ॥ ५८ ॥

वृक्षनारकिकीटत्वं मर्त्यानां परिकीर्तनम् । देवतानामृषीणां च द्वे सृती परिकीर्तिते॥

अन्नादीनां तनूनां च सृजनं त्यजनं तथा । प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्

अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः ।
अङ्गानि धर्मशास्त्रं च व्रतानि नियमास्तथा ॥ ६१ ॥

पशूनां पुरुषाणां च संभवः परिकीर्तितः । तथा निर्वचनं प्रोक्तं कल्पस्य च परिग्रहः

नवसर्गाः पुनः प्रोक्ताः ब्रह्मणो बुद्धिपूर्वकाः ।
त्रयोऽन्ये बुद्धिपूर्वास्तु ततो लोकानकल्पयत् ॥ ६३ ॥

ब्रह्मणोऽवयवेभ्यश्च धर्मादीनां समुद्भवः । ये द्वादश प्रसूयन्ते प्रजाकल्पे पुनः पुनः ॥

कल्पयोरन्तरं प्रोक्तं प्रतिसंधिश्चयस्तयोः । तमोमात्रामृतत्वाच्च ब्रह्मणोऽधर्मसंभवः ॥

तथैव शतरूपायाः संभवश्च ततः परम् । प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकूतयश्च ताः ॥

कीर्त्यन्तेधुतपाप्मानोयेषुलोकाःप्रतिष्ठिताः । रुचेःप्रजापतेश्चोर्ध्वमाकूत्यांमिथुनोद्भवः

प्रसूत्यामपिदक्षस्यकन्यानांप्रभवस्ततः । दाक्षायणीषुचाप्यूर्ध्वंश्रद्धाद्यासुमहात्मनाम् ॥

धर्मस्य कीर्त्यते सर्गः सात्त्विकस्य सुखोदयः ।
तथाऽधर्मस्य हिंसायां तामसोऽशुभलक्षणः ॥ ६९ ॥

महेश्वरस्य सत्यां च प्रजासर्गः प्रकीर्तितः । निरामयश्च ब्रह्माणं तादृशं कीर्तितं पुनः

योगं योगनिधिः प्राह द्विजानां मुक्तिकाङ्क्षिणाम् ।
अवतारश्च रुद्रस्य महाभाग्यं तथैव च ॥ ७१ ॥

त्रैवेदिका कथा वाऽपि संवादः परमो महान्।

ब्रह्मनारायणाभ्यां च यत्र स्तोत्रं प्रकीर्तितम् ॥ ७२ ॥

स्तुतस्ताभ्यांसदेवेशस्तुतोषभगवाञ्शिवः। प्रादुर्भावोऽथरुद्रस्यब्रह्मणोऽङ्गे महात्मनः

कीर्त्यतेनामहेतुश्चयथाऽरोदीन्महामनाः। रुद्रादीनियथाह्यष्टौनामान्याप्नोत्स्वयंभुवः

यथा च तैर्व्याप्तमिदंत्रैलोक्यंसचराचरम्। भृग्वादीनामृषीणां च प्रजासर्गोपवर्णनम्

वशिष्ठस्य च ब्रह्मर्षेर्यत्र गोत्रानुकीर्तनम्।

अग्नेः प्रजायाः संभूतिः स्वाहायां यत्र कीर्तिता ॥ ७६ ॥

पितॄणां द्विप्रकाराणां स्वाहायास्तदनन्तरम्। पितृवंशप्रसङ्गेन कीर्त्यते च महेश्वरात्

दक्षस्य शापः सत्यर्थे भृग्वादीनां च धीमताम्। प्रतिशापश्च रुद्रस्य दक्षादद्भुतकर्मणः

प्रतिषेधश्च वैरस्य कीर्त्यते दोषदर्शनात्। मन्वन्तरप्रसङ्गेन कालज्ञानं च कीर्त्यते॥

प्रजापतेः कर्दमस्यकन्या या शुभलक्षणा। प्रियव्रतस्यपुत्राणांकीर्त्यते यत्र विस्तरः

तेषां नियोगो द्वीपेषु देशेषु च पृथक्पृथक्। स्वायंभुवस्यसर्गस्यततश्चाप्यनुकीर्तनम्

उक्तो नाभेर्निसर्गश्च रजसश्च महात्मनः। द्वीपानांससमुद्राणां पर्वतानां च कीर्तनम्

वर्षाणां च नदीनां च तद्भेदानां च सर्वशः। द्वीपभेदसहस्राणामन्तर्भेदश्च सप्तसु॥

विस्तरान्मण्डलांश्चैव जम्बुद्वीपसमुद्रयोः। प्रमाणं योजनाग्रेण कीर्त्यतेपर्वतैः सह॥

हिमवान्हेमकूटस्तु निषधो मेरुरेव च। नीलः श्वेतः शृङ्गवांश्च कीर्त्यन्ते वर्षपर्वताः॥

तेषामन्तरविष्कम्भा उच्छ्रायायामविस्तराः।

कीर्त्यन्ते योजनाग्रेण ये च तत्र निवासिनः ॥ ८६ ॥

भारतादीनि वर्षाणि नदीभिः पर्वतैस्तथा। भूतैश्चोपनिविष्टानि गतिमद्भिर्ध्रुवैस्तथा॥

जम्बुद्वीपादयो द्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः।

ततश्चाऽऽप्यमयी भूमिर्लोकालोकश्च कीर्त्यते ॥ ८८ ॥

अण्डस्यान्तस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी।

भूरादयश्च कीर्त्यन्ते वरणैः प्राकृतैः सह ॥ ८९ ॥

सर्वं च तत्प्रधानस्य परिमाणैकदेशिकम्। सन्यासपरिमाणं च संक्षेपेणैव कीर्त्यते

सूर्याचन्द्रमसोश्चैव पृथिव्याश्चाप्यशेषतः । प्रमाणं योजनाग्रेण सांप्रतैरभिमानिभिः
महेन्द्राद्याःसभाःपुण्यामानसोत्तरमूर्धनि । अतऊर्ध्वंगतिश्चोक्तास्वर्गस्यालातचक्रवत्
नागवीथ्यजवीथ्योश्चलक्षणं परिकीर्त्यते । काष्ठयोर्लेखयोश्चैवमण्डलानां च योजनैः

लोकालोकस्य संध्याया अह्नो विषुवतस्तथा ।
लोकपालाः स्थिताश्चोर्ध्वं कीर्त्यन्ते ये चतुर्दिशम् ॥ ६४ ॥

पितॄणांदेवतानांचपन्थानौदक्षिणोत्तरौ । गृहिणांन्यासिनांचोक्तौरजःसत्त्वसमाश्रयात्

कीर्त्यते च पदं विष्णोर्धर्माद्या यत्र धिष्ठिताः ।
सूर्याचन्द्रमसोश्चारो ग्रहाणां ज्योतिषां तथा ॥ ६६ ॥
कीर्त्यते ध्रुवसामर्थ्यात्प्रजानां च शुभाशुभम् ।
ब्रह्मणा निर्मितः सौरः स्यन्दनोऽर्थवशात्स्वयम् ॥ ६७ ॥

कीर्त्यते भगवान्येन प्रसर्पतिदिविस्वयम् । सरथोऽधिष्ठितोदेवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः । अपां सारमयश्चेन्दोः कीर्त्यते च रथस्तथा
वृद्धिक्षयौ च सोमस्यकीर्त्येतेसूर्यकारितौ । सूर्यादीनांस्यन्दनानांध्रुवादेव प्रकीर्तनम्
कीर्त्यते शिशुमारश्चयस्यपुच्छेध्रुवःस्थितः । तारारूपाणिसर्वाणिनक्षत्राणि ग्रहैः सह
निवासायत्रकीर्त्यन्तेदेवानांपुण्यकारिणाम् । सूर्यरश्मिसहस्रेचवर्षशीतोष्णनिःस्रवः
प्रविभागश्च रश्मीनांनामतः कर्मतोऽर्थतः । परिमाणगती चोक्तेग्रहाणां सूर्यसंश्रयात्

यथा चाऽऽशु विषात्प्राप्ता शम्भोः कण्ठस्य नीलता ।
ब्रह्मप्रसादितस्याऽऽशु विषादः शूलपाणिनः ॥ १०४ ॥

स्तूयमानः सुरैर्विष्णुःस्तौतिदेवंमहेश्वरम् । लिङ्गोद्भवकथांपुण्यांसर्वपापप्रणाशिनीम्
विश्वरूपात्प्रधानस्य परिणामोऽयमद्भुतः । पुरूरवस ऐलस्य माहात्म्यानुप्रकीर्तनम् ॥
पितॄणां द्विप्रकाराणां तर्पणं चामृतस्य वै । ततःपर्वाणि कीर्त्यन्तेपर्वणाञ्चैव संधयः

स्वर्गलोकगतानां च प्राप्तानां चाप्यधोगतिम् ।
पितॄणां द्विप्रकाराणां श्राद्धेनानुग्रहो महान् ॥ १०८ ॥

युगसंख्याप्रमाणं च कीर्त्यते च कृतंयुगम् । त्रेतायुगे चापकर्षाद्वार्तायाः संप्रवर्तनम्

वर्णानामाश्रमाणां च संख्यानां च प्रवर्तनम् ।
वर्णानामाश्रमाणां च संस्थितिर्धर्मतस्तथा ॥ ११० ॥

यज्ञप्रवर्तनं चैव संवादो यत्र कीर्त्यते । ऋषीणां वसुना सार्धं वसोश्चाधः पुनर्गतिः
प्रश्नानांदुर्वचस्त्वं च स्वायंभुवमृते मनुम् । प्रशंसा तपसश्चोक्तायुगावस्थाश्चकृत्स्नशः
द्वापरस्य कलेश्चात्र संक्षेपेण प्रकीर्तनम् । देवतिर्यङ्मनुष्याणां प्रमाणानि युगे युगे ॥
कीर्त्यन्तेयुगसामर्थ्यात्परिणाहोच्छ्रयायुषः । शिष्टादीनांचनिर्देशःप्रादुर्भावश्चकीर्त्यते॥
मन्त्राणांब्राह्मणानां च लक्षणंपरिकीर्तितम् । ईश्वराणामृषीणांचमनोःपितृगणस्यच

वेदस्य तद्विजातानां मन्त्राणां च प्रकीर्तनम् ।
शाखानां परिमाणं च वेदव्यासादिशब्दनम् ॥ ११६ ॥

मन्वन्तराणां संहारः संहारान्ते च संभवः । देवतानामृषीणां च मनोःपितृगणस्य च
न शक्यंविस्तराद्वक्तुमित्युक्तंचसमासतः । मन्वन्तरस्यसंख्या च मानुषेण प्रकीर्तिता
मन्वन्तराणां सर्वेषामेतद्देव च लक्षणम् । अतीतानागतानां च वर्तमानेन कीर्त्यते ॥
तथामन्वन्तराणांचप्रतिसंधानलक्षणम् । अतीतानागतानां च प्रोक्तंस्वायंभुवेऽन्तरे ॥
मन्वन्तरत्रयं चैव कालज्ञानं च कीर्त्यते । मन्वन्तरेषु देवानां प्रजेशानां च कीर्तनम् ॥

दक्षस्य चापि दौहित्राः प्रियाया दुहितुः सुताः ।
ब्रह्मादिभिस्ते जनिता दक्षेणैव च धीमता ॥ १२२ ॥

[illegible]वर्ण्याद्याश्चकीर्त्यन्तेमनवोमेरुमाश्रिताः । ध्रुवस्योत्तानपादस्यप्रजासर्गोपवर्णनम्
पृथुना वाऽपि वैन्येन भूमेर्दोहप्रवर्तनम् । पात्राणां पयसां चैव वंशानां च विशेषणम्
ब्रह्मादिभिः पूर्वमेव दुग्धा चेयं वसुंधरा । दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतेः
दक्षस्य कीर्त्यते जन्म सोमस्यांशेन धीमतः । भूतभव्यभवेशत्वंमहेन्द्राणां च कीर्त्यते

मन्वादिका भविष्यन्ति आख्यानैर्बहुभिर्वृताः ।
वैवस्वतस्य च मनोः कीर्त्यते सर्गविस्तरः ॥ १२७ ॥

देवस्य महतो यज्ञे वारुणींविभ्रतस्तनुम् । ब्रह्मशुक्रात्समुत्पत्तिर्भृग्वादीनां च कीर्त्यते
विनिवृत्ते प्रजासर्गेचाक्षुषस्यमनोः शुभे । दक्षस्य कीर्त्यतेसर्गोध्यानाद्वैवस्वतेऽन्तरे

नारदः प्रियसंवादो दक्षपुत्रान्महाबलान्। नाशयामास शापाय आत्मनो ब्रह्मणःसुतः
ततोदक्षोऽसृजत्कन्यावीरिण्यामेवविश्रुताः। कीर्त्यतेधर्मसर्गश्चकश्यपस्यचधीमतः॥
अतऊर्ध्वंब्रह्मणश्चविष्णोश्चैवभवस्य च। एकत्वंचपृथक्त्वंचविशेषत्वंचकीर्त्यते॥
ईशत्वाच्च यथा शता जाता देवाः स्वयंभुवा। मरुत्प्रसादोमरुतांदित्यादेवाश्चसंभवाः

कीर्त्यन्ते मरुतां चाथ गणास्ते सप्तसप्तकाः।
देवत्वं पितृवाक्येन (ण) वायुस्कन्धेन चाऽऽश्रयः॥ १३४॥

दैत्यानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्। सर्वभूतपिशाचानां पशूनां पक्षिवीरुधाम्
उत्पत्तयश्चाप्सरसां कीर्त्यन्ते बहुविस्तराः। समुद्रसंयोगकृतं जन्मैरावतहस्तिनः॥
वैनतेयसमुत्पत्तिस्तथाचास्याभिषेचनम्। भृगूणांविस्तरश्चोक्तस्तथाचाङ्गिरसामपि
कश्यपस्य पुलस्त्यस्य तथैवात्रेर्महात्मनः। पराशरस्य च मुनेः प्रजानां यत्र विस्तरः

देवतानामृषीणां च प्रजोत्पत्तिस्ततः परम्।
तिस्रः कन्याः प्रकीर्त्यन्ते यासु लोकाः प्रतिष्ठिताः॥१३६॥

पितृदौहित्रनिर्देशो देवानां जन्मचोच्यते। विस्तरस्ते भगवतः पञ्चानां सुमहात्मनाम्

इलाया विस्तरश्चोक्त आदित्यस्य ततः परम्।
विकुक्षिचरितं चोक्तं धुन्धोश्चैव निबर्हणम्॥ १४१॥
बृहद्बलान्तसंक्षेपादिक्ष्वाक्वाद्याः प्रकीर्तिताः।
निम्यादीनां क्षितीशानां यावज्जह्नुगणादिति॥ १४२॥

कीर्त्यते विस्तरो यश्च ययातेरपि भूपतेः। यदुवंशसमुद्देशो हैहयस्य च विस्तरः॥
क्रोष्टोरनन्तरंचोक्तस्तथावंशस्यविस्तरः। ज्यामघस्यचमाहात्म्यंप्रजासर्गश्चकीर्त्यते
देवावृधस्यत्वर्कस्यवृष्णेश्चैवमहात्मनः। अनमित्रान्वयश्चैवविष्णोर्दिव्याभिशंसनम्
विवस्वतोऽथ संप्राप्तिर्मणिरत्नस्य धीमतः। युधाजितः प्रजासर्गःकीर्त्यतेचमहात्मनः
कीर्त्यते चान्वयःश्रीमान्राजर्षेर्देवमीढुषः। पुनश्च जन्मचाप्युक्तंचरितं च महात्मनः
कंसस्य चापि दौरात्म्यमेकान्तेन समुद्भवः। वासुदेवस्यदेवक्यांविष्णोर्जन्मप्रजापतेः
विष्णोरनन्तरं चापि प्रजासर्गोपवर्णनम्। देवासुरे समुत्पन्ने विष्णुना स्त्रीवधे कृते

संरक्षता शक्रवधंशापःप्राप्तःपुरा भृगोः । भृगुस्त्रोत्थापयामास दिव्यांशुक्रस्यमातरम्
देवानामसुराणां च सङ्ग्रामा द्वादशाद्भुताः । नारसिंहप्रभृतयः कीर्त्यन्तेप्राणनाशनाः
शुक्रेणाऽऽराधनं स्थाणोर्घोरेण तपसा कृतम् । वरदानप्रलुब्धेन यत्रशर्वस्तवः कृतः
अनन्तरं विनिर्दिष्टं देवासुरविचेष्टितम् । जयन्त्यासह सक्ते तु यत्र शुक्रे महात्मनि
असुरान्मोहयामास शुक्ररूपेणबुद्धिमान् । बृहस्पतिस्तु तान्शुक्रः शशाप सुमहाद्युतिः

उक्तं च विष्णुमाहात्म्यं विष्णोर्जन्मादिशब्दनम् ।
तुर्वसुः शुक्रदौहित्रो देवयान्यां यदोरभूत् ॥ १५५ ॥

अनुर्द्रुह्युस्तथा पूरुर्ययातितनया नृपाः । अत्र वंश्या महात्मानस्तेषां पार्थिवसत्तमाः
कीर्त्यन्ते यत्रकात्स्न्येनभूरिद्रविणतेजसः । कुशिकस्य च विप्रर्षेःसम्यग्यो धर्मसंश्रयः
बार्हस्पत्यं तु सुरभिर्यत्र शापमिहानुदत् । कीर्तनं जह्नुवंशस्य शंतनोर्वीर्यशब्दनम् ॥
भविष्यतां तथा राज्ञामुपसंहारशब्दनम् । अनागतानां सप्तानां मनूनां चोपवर्णनम् ॥
भौमस्यान्ते कलियुगे क्षीणे संहारवर्णनम् । परार्ध्यपरयोश्चैव लक्षणं परिकीर्त्यते ॥

ब्रह्मणो योजनाग्रेण परिमाणविनिर्णयः ।
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवाऽऽत्यन्तिकः स्मृतः ॥ १६१ ॥

त्रिविधः सर्वभूतानां कीर्त्यते प्रतिसंचरः । अनावृष्टिर्भास्कराच्च घोरः संवर्तकोऽनलः
मेघो ह्येकार्णवं वायुस्तथा रात्रिर्महात्मनः । संख्यालक्षणमुद्दिष्टं ततो ब्राह्मं विशेषतः
भूरादीनां च लोकानां सप्तानामुपवर्णनम् । कीर्त्यन्ते चात्र निरयाःपापानांरौरवादयः
ब्रह्मलोकोपरिष्टात्तु शिवस्य स्थानमुत्तमम् । यत्रसंहारमायान्ति सर्वभूतानि संक्षये
सर्वेषां चैव सत्त्वानां परिणामविनिर्णयः । ब्रह्मणः प्रतिसंसर्गे सर्वसंहारवर्णनम् ॥
अष्टरूप्यमतः प्रोक्तं प्राणस्याष्टकमेव च । गतिश्चोर्ध्वमधश्चोक्ताधर्माधर्मसमाश्रयात्

कल्पे कल्पे च भूतानां महतामपि संक्षयः ।
प्रसंख्याय च दुःखानि ब्रह्मणश्चाप्यनित्यता ॥ १६८ ॥

दौरात्म्यं चैवभोगानांपरिणामविनिर्णयः । दुर्लभत्वं च मोक्षस्य वैराग्याद्दोषदर्शनम्
व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्यसत्त्वं ब्रह्मणि संस्थितम् । नानात्वदर्शनाच्छुद्धंततस्तदभिवर्तते

ततस्तापत्रयातीतो नीरूपाख्यो निरञ्जनः । आनन्दो ब्रह्मणःप्रोक्तो न बिभेति कुतश्चन
कीर्त्यते च पुनः सर्गोब्रह्मणोऽन्यस्यपूर्ववत् । कीर्त्यते ऋषिवंशश्च सर्वपापप्रणाशनः
इतिकृत्यसमुद्देशः पुराणस्योपवर्णितः । कीर्त्यन्ते जगतो ह्यत्र सर्वप्रलयविक्रियाः ॥
प्रवृत्तयश्च भूतानां निवृत्तीनां फलानि च । प्रादुर्भावो वशिष्ठस्य शक्तेर्जन्म तथैव च
सौदासान्निग्रहस्तस्य विश्वामित्रकृतेन च । पराशरस्यचोत्पत्तिरदृश्यत्वं यथाविभोः

जज्ञे पितॄणां कन्यायां व्यासश्चापि यथा मुनिः ।
शुकस्य च तथा जन्म सह पुत्रस्य धीमतः ॥ १७६ ॥

पराशरस्य प्रद्वेषो विश्वामित्रकृतो यथा । वशिष्ठसंभृतश्चाग्निर्विश्वामित्रजिघांसया
संतानहेतोर्विभुना चीर्णः स्कन्देन धीमता । दैवेन विधिना विप्रविश्वामित्रहितैषिणा
एकं वेदं चतुष्पादं चतुर्धा पुनरीश्वरः । यथा बिभेद भगवान्व्यासः सर्वान्स्वबुद्धितः

तस्य शिष्यैः प्रशिष्यैश्च शाखाभेदाः पुनः कृताः ।
प्रयोगैः षड्गुणीयैश्च यथा पृष्टः स्वयंभुवा ॥ १८० ॥

पृष्टेन चानुपृष्टास्तेमुनयोधर्मकाङ्क्षिणः । देशं पुण्यमभीप्सन्तो विभुना तद्धितैषिणा
सुनाभं दिव्यरूपाख्यं सत्याङ्गं शुभविक्रमम् । अनौपम्यमिदं चक्रं वर्तमानमतन्द्रिताः
पृष्ठतो यात नियतास्ततः प्राप्स्यथ यद्धितम् गच्छतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिर्विशीर्यते
पुण्यः स देशो मन्तव्यइत्युवाचतदा प्रभुः उक्त्वा चैवमृषीन्ब्रह्मा ह्यदृश्यत्वमगात्पुनः
गङ्गागर्भसमाहारं नैमिषेयत्वमेव च । ईजिरे चैव सत्रेण मुनयो नैमिषे तदा ॥१८५॥
मृते शरद्वति तथा तस्य चोत्थापनं कृतम् । ऋषयो नैमिषेयास्तु श्रद्धया परया पुनः

निःसीमां गामिमां कृत्स्नां कृत्वा राजानमाहरन् ।
यथाविधि यथाशास्त्रं तमातिथ्यैरपूजयन् ॥ १८७ ॥

प्रीतं चैव कृतातिथ्यं राजानं विधिवत्तदा । अन्तर्धानगतःक्रूरः स्वर्भानुरसुरोऽहरत् ॥
अनुसस्रुर्हृतं चापि नृपमैडं यथा पुरा । गन्धर्वसहितं दृष्ट्वा कलापग्रामवासिनम् ॥
संनिपातः पुनस्तस्य यथा यज्ञे महर्षिभिः । दृष्ट्वाहिरण्मयंसर्वं यज्ञे वस्तु महात्मनाम्
तदावैनैमिषेयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके । यथाविवदमानास्तु ऐडःसंस्थापितस्तुतैः

जनयित्वा त्वरण्यान्त ऐडपुत्रं यथायुषम् । समापयित्वा तत्सत्रमायुषं पर्युपासते ॥
एतत्सर्वं यथावृत्तं व्याख्यातं द्विजसत्तमाः । ऋषीणां परमं चात्रलोकतत्त्वमनुत्तमम्
ब्रह्मणा यत्पुरा प्रोक्तंपुराणं ज्ञानमुत्तमम् । अवतारश्च रुद्रस्य द्विजानुग्रहकारणात् ॥

तथा पाशुपता योगाः स्थानानां चैव कीर्तनम् ।
लिङ्गोद्भवस्य देवस्य नीलकण्ठत्वमेव च ॥ १९५ ॥

कथ्यते यत्र विप्राणां वायुना ब्रह्मवादिना । धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वपापप्रणाशनम्
कीर्तनं श्रवणं चास्य धारणं च विशेषतः । अनेन हि क्रमेणेदं पुराणं संप्रचक्ष्यते ॥
सुखमर्थः समासेनमहानप्युपलभ्यते । तस्मात्किंचित्समुद्दिश्यपश्चाद्वक्ष्यामि विस्तरम्
पादमाद्यमिदं सम्यग्योऽधीयीत जितेन्द्रियः । तेनाधीतं पुराणंतत्सर्वंनास्त्यत्र संशयः
योविद्याच्चतुरोवेदान्साङ्गोपनिषदो द्विजः । न चेत्पुराणंसंविद्यान्नैव सस्याद्विचक्षणः
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् । बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥२०१

अभ्यसन्निममध्यायं साक्षात्प्रोक्तं स्वयंभुवा ।
आपदं प्राप्य मुच्येत यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥ २०२ ॥

यस्मात्पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम् । निरुक्तमस्य यो वेदसर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
नारायणः सर्वमिदं विश्वं व्याप्य प्रवर्तते । तस्यापिजगतः स्रष्टुः स्रष्टा देवोमहेश्वरः

अतश्च संक्षेपमिमं शृणुध्वं महेश्वरः सर्वमिदं पुराणम् ।
स सर्गकाले च करोति सर्गं संहारकाले पुनराददीत ॥ २०५ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते प्रक्रियापादेऽनुक्रमणिकाकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः १

द्वितीयोऽध्यायः

द्वादशवार्षिकसत्रनिरूपणम्

प्रत्यब्रुवन्पुनः सूतमृषयस्ते तपोधनाः । कुत्र सत्रं समभवत्तेषामद्भुतकर्मणाम् ॥ १ ॥
कियन्तं चैव तत्कालं कथं च समवर्तत । आचचक्षपुराणं च कथं तेभ्यः प्रभञ्जनः ॥

आचक्ष्व विस्तरेणेदं परंकौतूहलं हि नः । इति संनोदितः सूतः प्रत्युवाच शुभं वचः॥
शृणुध्वं यत्र ते धीरा ईजिरे सत्रमुत्तमम् । यावन्तं चाभवत्कालं तथा च समवर्तत ॥

सिसृक्षमाणा विश्वं हि यत्र विश्वसृजः पुरा ।
सत्रं हि ईजिरे पुण्यं सहस्रं परिवत्सरान् ॥ ५ ॥
तपोगृहपतिर्यत्र ब्रह्मा ब्रह्माऽभवत्स्वयम् ।
इलाया यत्र पत्नीत्वं शामित्रं यत्र बुद्धिमान् ॥ ६ ॥

मृत्युश्चक्रे महातेजास्तस्मिन्सत्रेमहात्मनाम् । विबुधाईजिरेतत्र सहस्रंप्रतिवत्सरान्
भ्रमतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत । कर्मणा तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम् ॥८
यत्र सा गोमतीपुण्यासिद्धचारणसेविता । रोहिणी सुषुवे तत्रततःसौम्थोऽभवत्सुतः
शक्तिज्येष्ठाः समभवन्वशिष्ठस्य महात्मनः । अरुन्धत्याः सुता यत्र शतमुत्तमतेजसः॥
कल्माषपादो नृपतिर्यत्र शप्तश्च शक्तिना । यत्र वैरं समभवद्विश्वामित्रवशिष्ठयोः॥११
अदृश्यन्त्यां समभवन्मुनिर्यत्र पराशरः । पराभवो वशिष्ठस्य यस्मिञ्जातेऽप्यवर्तत ॥१२
तत्र त ईजिरे सत्रं नैमिषे ब्रह्मवादिनः । नैमिष ईजिरे यत्र नैमिषेयास्ततः स्मृताः॥
तत्सत्रमभवत्तेषां समा द्वादश धीमताम् । पुरूरवसि विक्रान्ते प्रशासति वसुन्धराम्

अष्टादश समुद्रस्य द्वीपानश्नन्पुरूरवाः ।
तुतोष नैव रत्नानां लोभादिति हि नः श्रुतम् ॥ १५ ॥

उर्वशी चकमे यं च देवहूतिप्रणोदिता । आजहार च तत्सत्रं स्वर्वश्यासहसंगतः ॥
तस्मिन्नरपतौ सत्रं नैमिषेयाः प्रचक्रिरे । यं गर्भं सुषुवे गङ्गा पावकाद्दीप्ततेजसम् ॥
तदुल्वं पर्वते न्यस्तं हिरण्यं प्रत्यपद्यत । हिरण्मयं ततश्चक्रे यज्ञवाटं महात्मनाम् ॥
विश्वकर्मा स्वयं देवो भावयंल्लोकभावनम् । बृहस्पतिस्ततस्तत्र तेषाममिततेजसाम् ॥
ऐडः पुरूरवा भेजे तं देशं मृगया चरन् । तं दृष्ट्वामहदाश्चर्यं यज्ञवाटं हिरण्मयम् ॥
लोभेन हतविज्ञानस्तदा दातुं प्रचक्रमे । नैमिषेयास्ततस्तस्य चुक्रुधुर्नृपतेर्भृशम् ॥ २१
निजघ्नुश्चापि संक्रुद्धाःकुशवज्रैर्मनीषिणः । ततोनिशान्तेराजानंमुनयो दैवनोदिताः
कुशवज्रैर्विनिष्पिष्टः स राजाव्यजहात्तनुम् । और्वशेयं ततस्तस्यपुत्रं चक्रुर्नृपं भुवि

नहुषस्य महात्मानं पितरं यं प्रचक्षते । स तेषु वर्तते सम्यग्धर्मशीलो महीपतिः ॥२४

आयुरारोग्यमत्युग्रं तस्मिन्स नरसत्तमः ।
सान्त्वयित्वा च राजानं ततो ब्रह्मविदां वराः ॥ २५ ॥

सत्रमारेभिरे कर्तुं यथावद्धर्मभूतये । बभूव सत्रं तत्तेषां बह्वाश्चर्यं महात्मनाम् ॥२६
विश्वं सिसृक्षमाणानांपुरा विश्वसृजामिव । वैखानसैः प्रियसखैर्वालखिल्यैर्मरीचिकैः
अन्यैश्च मुनिभिर्जुष्टं सूर्यवैश्वानरप्रभैः । पितृदेवाप्सरःसिद्धैर्गन्धर्वोरगचारणैः ॥२८
संभारैस्तुशुभैर्जुष्टंतैरैवेन्द्रसदो यथा । स्तोत्रसत्रग्रहैर्देवान्पितॄन्पित्र्यैश्चकर्मभिः ॥२९
आनर्चुश्च यथाजातिगन्धर्वादीन्यथाविधि । आराधयितुमिच्छन्तस्ततःकर्मान्तरेष्वथ

जगुः सामानि गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
व्याजहुर्मनयो वाचं चित्राक्षरपदां शुभाम् ॥ ३१ ॥

मन्त्रादितत्त्वविद्वांसोजगदुश्च परस्परम् । वितण्डावचनाश्चैकेनिजघ्नुः प्रतिवादिनः
ऋषयस्तत्र विद्वांसःसांख्यार्थन्यायकोविदाः । न तत्र दूषितं किंचिद्विदधुर्ब्रह्मराक्षसाः
न च यज्ञहनो दैत्या न च यज्ञमुषोऽसुराः । प्रायश्चित्तं दुरिष्टं वा न तत्र समजायत
शक्तिप्रज्ञाक्रियायोगैर्विधिरासीत्स्वनुष्ठितः । एवं वितेनिरे सत्रं द्वादशाब्दं मनीषिणः
भृग्वाद्या ऋषयोधीराज्योतिष्टोमान्पृथक्पृथक् । चक्रिरे पृष्ठगमनान्सर्वानयुतदक्षिणान्
समाप्तयज्ञास्ते सर्वे वायुमेव महाधिपम् । पप्रच्छुरमितात्मानंभवद्भिर्यदहं द्विजाः ॥३७
प्रणोदितश्चवंशार्थं स च तानब्रवीत्प्रभुः । शिष्यः स्वयंभुवो देवःसर्वप्रत्यक्षदृग्वशी ॥
अणिमादिभिरष्टाभिरैश्वर्यैर्यः समन्वितः । तिर्यग्योन्यादिभिर्धर्मैःसर्वलोकान्बिभर्तियः
सप्तस्कन्धादिकं शश्वत्प्रव्रतेयोजनाद्बहिः । विषये नियतायस्यसंस्थिताःसप्तकागणाः
व्यूहाश्रयाणां भूतानांकुर्वन्यश्चमहाबलः । तेजसश्चाप्युपध्मानंदधातीमंशरीरिणम् ॥

प्राणाद्या वृत्तयः पञ्च करणानां च वृत्तिभिः ।
प्रेर्यमाणाः शरीराणां कुर्वते यास्तु धारणम् ॥ ४२ ॥

आकाशयोनिर्द्विगुणःशब्दस्पर्शसमन्वितः । तैजसप्रकृतिश्चोक्तोऽप्ययंभावो मनीषिभिः
तत्राभिमानीभगवान्वायुश्चातिक्रियात्मकः। वातारणिःसमाख्यातःशब्दशास्त्रविशारदैः

भारत्या श्लक्ष्णया सर्वान्मुनीन्प्रह्लादयन्निव । पुराणज्ञः सुमनसः पुराणाश्रययुक्तया ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते द्वादशवार्षिकसत्रनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

प्रजापतिसृष्टिकथनम्

सूत उवाच

महेश्वरायोत्तमवीर्यकर्मणे सुरर्षभायामितबुद्धितेजसे ।
सहस्रसूर्यानलवर्चसे नमस्त्रिलोकसंहारविसृष्टये नमः ॥ १ ॥
प्रजापतींल्लोकनमस्कृतांस्तथा स्वयंभुरुद्रप्रभृतीन्महेश्वरान् ।
भृगुं मरीचिं परमेष्ठिनं मनुं रजस्तमोधर्ममथापि कश्यपम् ॥२॥
वशिष्ठदक्षात्रिपुलस्त्यकर्दमान्रुचिं विवस्वन्तमथापि च क्रतुम् ।
मुनिं तथैवाङ्गिरसं प्रजापतिं प्रणम्य मूर्ध्ना पुलहंच भावतः ॥३॥
तथैव चु(च?)क्रोधनमेकविंशतिं प्रजाविवृद्ध्याऽर्पितकार्यशासनम् ।
पुरातनानप्यपरांश्च शाश्वतांस्तथैव चान्यान्सगणानवस्थितान् ॥४॥
मनूंश्च सर्वानखिलानवस्थितांस्तथैव चान्यानपि धैर्यशोभिनः ।
मुनीन्बृहस्पत्युशनःपुरोगमांस्तपःशुभाचारऋषीन्दयान्वितान् ॥५॥
प्रणम्य वक्ष्ये कलिपापनाशिनीं प्रजापतेः सृष्टिमिमामनुत्तमाम् ।
सुरेशदेवर्षिगणैरलंकृतां शुभामतुल्याममदामृषिप्रियाम् ॥६॥
प्रजापतीनामपि चोल्बणार्चिषां विशुद्धवाग्बुद्धिशरीरतेजसाम् ।
तपोभृतां ब्रह्मदिनादिकालिकीं प्रभूतमाविष्कृतपौरुषश्रियम् ॥७॥

श्रुतौ स्मृतौ च प्रसृतामुदाहृतां परां पराणामनिलप्रकीर्तिताम् ।
समासबन्धैर्नियतैर्यथातथं विशब्दनेनापि मनःप्रहर्षिणीम् ॥ ८ ॥
यस्यां च बद्धा प्रथमा प्रवृत्तिः प्राधानिकी चेश्वरकारिता च ।
यत्तत्स्मृतं कारणमप्रमेयं ब्रह्म प्रधानं प्रकृतिप्रसूतिः ॥ ९ ॥
आत्मा गुहा योनिरथापि चक्षुः क्षेत्रं तथैवामृतमक्षरं च ।
शुक्रं तपः सत्त्वमभिप्रकाशं तद्व्यष्टि नित्यं पुरुषं द्वितीयम् ॥१०॥
तमप्रमेयं पुरुषेण युक्तं स्वयंभुवा लोकपितामहेन ।
उत्पादकत्वाद्रजसोऽतिरेकात्कालस्य योगान्नियमावधेश्च ॥११॥
क्षेत्रज्ञयुक्तान्नियतान्विकारांल्लोकस्य संतानविवृद्धिहेतून् ।
प्रकृत्यवस्था सुषुवे तथाऽष्टौ संकल्पमात्रेण महेश्वरस्य ॥१२॥
देवासुराद्रिद्रुमसागराणां गन्धर्वयक्षोरगमानुषाणाम् ।
मनुप्रजेशर्षिपितृद्विजानां पिशाचयक्षोरगराक्षसानाम् ॥१३॥
ताराग्रहार्कर्क्षनिशाचराणां मासर्तुसंवत्सररात्र्यहानाम् ।
दिक्कालयोगादियुगायनानां वनौषधीनामपि वीरुधां च ॥१४॥
जलौकसामप्सरसां पशूनां विद्युत्सरिन्मेघविहङ्गमानाम् ।
यत्सूक्ष्मगं यद्भुवि यद्वियत्स्थं यत्स्थावरं यत्र यदस्ति किंचित् ॥१५॥
सर्वस्य तस्यास्ति गतिर्विभक्तिराब्रह्मणो यावदियं प्रसूतिः ।
छन्दांसि वेदाः सऋचो यजूंषि सामानि सोमश्च तथैव यज्ञः ॥१६॥
आजीव्यमेषां यदभीप्सितं च देवस्य तस्यैव च वै प्रजानाम् ।
वैवस्वतस्याऽस्य मनोः पुरस्तात्संभूतिरुक्ता प्रसवश्च तेषाम् ॥१७॥
येषामिदं पुण्यकृतां प्रसूत्या लोकत्रयं लोकनमस्कृतानाम् ।
सुरेशदेवर्षिमनुप्रधानमापूरितं चोपरिभूषितं च ॥१८॥
रुद्रस्य शापात्पुनरुद्भवश्च दक्षस्य चाप्यत्र मनुष्यलोके ।
वासः क्षितौ वा नियमाद्भवस्य दक्षस्य चात्र प्रतिशापलाभः ॥१९॥

मन्वन्तराणां परिवर्तनानि युगेषु संभूतिविकल्पनञ्च ।
ऋषित्वमार्षस्य च संप्रवृद्धिर्यथा युगादिष्वपि चेत्तदत्र ॥२०॥
ये द्वापरेषु प्रथयन्ति वेदान्व्यासाश्च तेऽत्र क्रमशो निबद्धाः ।
कल्पस्य संख्या भुवनस्य संख्या ब्राह्मस्य चाप्यत्र दिनस्य संख्या ॥२१॥
अण्डोद्भिजस्वेदजरायुजानां धर्मात्मनां स्वर्गनिवासिनां वा ।
ये यातनास्थानगताश्च जीवास्तर्केण तेषामपि च प्रमाणम् ॥२२॥
आत्यन्तिकः प्राकृतिकश्च योऽयं नैमित्तिकश्च प्रतिसर्गहेतुः ।
बन्धश्च मोक्षश्च विशिष्य तत्र प्रोक्ता च संसारगतिः परा च ॥२३॥
प्रकृत्यवस्थेषु च कारणेषु या च स्थितिर्या च पुनः प्रवृत्तिः ।
तच्छास्त्रयुक्त्या स्वमतिप्रयत्नात्समस्तमाविष्कृतश्रीधृतिभ्यः ॥
विप्रा ऋषिभ्यः समुदाहृतं यद्यथातथं तच्छृणुतोच्यमानम् ॥२४॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते प्रक्रियापादे सृष्टिप्रकरणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

सृष्टिप्रकरणवर्णनम्

ऋषयस्तु ततः श्रुत्वा नैमिषारण्यवासिनः । प्रत्यूचुस्ते ततः सर्वे सूतं पर्याकुलेक्षणाः
भवान्वैवंशकुशलोव्यासात्प्रत्यक्षदर्शिवान् । तस्मात्त्वं भवनंकृत्स्नंलोकस्यामुष्यवर्णय
यस्य यस्यान्वया ये ये तांस्तानिच्छाम वेदितुम् ।
तेषां पूर्वर्षिसृष्टिं च विचित्रां तां प्रजापतेः ॥ ३ ॥

असकृत्परिपृष्टस्तैर्महात्मा लोमहर्षणः । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च कथयामास सत्तम

लोमहर्षण उवाच

पृष्टां चैतां कथां दिव्यां श्लक्ष्णां पापप्रणाशिनीम् ।
कथ्यमानां मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतिसंमताम् ॥ ५ ॥

यश्चेमांधारयेन्नित्यंशृणुयाद्वाऽप्यभीक्ष्णशः । श्रावयेच्चापिविप्रेभ्योयतिभ्यश्चविशेषत
शुचिः पर्वसु युक्तात्मा तीर्थेष्वायतनेषु च । दीर्घमायुरवाप्नोति स पुराणानुकीर्तना
स्ववंशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते । विस्तारावयवं तेषां यथाशब्दं यथाश्रुतम्
कीर्त्यमानं निबोधध्वंसर्वेषांकीर्तिवर्धनम् । धन्यं यशस्यं शत्रुघ्नंस्वर्ग्यमायुर्विवर्धन
कीर्तनंस्थिरकीर्तीनांसर्वेषांपुण्यकारिणाम् । सर्गश्च प्रतिसर्गश्चवंशोमन्वन्तराणि

वंश्यानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ।
कल्पेभ्योऽपि हि यः कल्पः शुचिभ्यो नियतः शुचिः ॥११॥

पुराणं संप्रवक्ष्यामि मारुतं वेदसंमितम् । प्रबोधः प्रलयश्चैव स्थितिरुत्पत्तिरेवच ।
प्रक्रिया प्रथमः पादः कथ्यवस्तुपरिग्रहः । उपोद्घातोऽनुषङ्गश्च उपसंहार एव च ।
धर्म्यंयशस्यमायुष्यंसर्वपापप्रणाशनम् । एवं हि पादाश्चत्वारःसमासात्कीर्तिताम
वक्ष्याम्येतान्पुनस्तांस्तु विस्तरेण यथाक्रमम् । तस्मै हिरण्यगर्भाय पुरुषायेश्वरायच
अजाय प्रथमायैव विशिष्टाय प्रजात्मने । ब्रह्मणे लोकतन्त्राय नमस्कृत्वा स्वयंभुवे
महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम् । पञ्चप्रमाणं षट्श्वेतं पुरुषाधिष्ठितं नुतम्
असंशयात्प्रवक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तमम् । अव्यक्तं कारणं यत्तु नित्यंसदसदात्मक
प्रधानं प्रकृतिं चैव यमाहुस्तत्त्वचिन्तकाः । गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम्
अजातं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम् । जगद्योनिं महद्भूतं परंब्रह्म सनातन
विग्रहं सर्वभूतानामव्यक्तमभवत्किल । अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाप्ययम्
असांप्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्तत । तस्याऽऽत्मना सर्वमिदंव्याप्तमासीत्तमोमयम्
गुणसाम्ये तदा तस्मिन्गुणभावे तमोमये । सर्गकाले प्रधानस्य क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य वै
गुणभावाद्वाच्यमानो महान्प्रादुर्बभूव ह । सूक्ष्मेण महता सोऽथ अव्यक्तेन समावृ

सत्त्वोद्रिक्तोमहानग्रेसत्त्वमात्रंप्रकाशकम्। मनो महांश्चविज्ञेयोमनस्तत्कारणंस्मृतम्
लिङ्गमात्रसमुत्पन्नःक्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः। धर्मादीनां तु रूपाणिलोकतत्त्वार्थहेतवः॥
महांस्तु सृष्टिं कुरुतेनोद्यमानःसिसृक्षया। मनोमहान्मतिर्ब्रह्मा भूर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वरः
प्रज्ञा चितिः स्मृतिःसंविद्विपुरंचोच्यते बुधैः। मनुतेसर्वभूतानांयस्माच्चेष्टाफलंविभुः
सौ(सू)क्ष्मत्वेनविवृद्धानांतेनतन्मनउच्यते। तत्वान्मामग्रजोयस्मान्महांश्चपरिमाणतः
शेषेभ्योऽपि गुणेभ्योऽसौ महानिति ततः स्मृतः।
विभर्ति मानं मनुते विभागं मन्यतेऽपि च॥ ३०
पुरुषोपभोगसंबन्धःतेनचासौमतिःस्मृतः।वृहत्त्वाद्वृंहणत्वाच्चभावानांसलिलाश्रयात्
यस्माद्वृंहयतेभावान्ब्रह्मा तेन निरुच्यते। आपूरयित्वा यस्माच्च कृत्स्नान्देहाननुग्रहैः
तत्त्वभावांश्च नियतांस्तेनभूरितिचोच्यते। बुध्यते पुरुषश्चात्रसर्वभावान्हिताहितान्
यस्माद्बोधयते चैव तेन बुद्धिर्निरुच्यते। ख्यातिः प्रत्युपभोगश्चयस्मात्संवर्तते ततः
भोगस्य ज्ञाननिष्ठित्वात्तेन ख्यातिरिति स्मृतः।
ख्यायते तद्गुणैर्वाऽपि नामादिभिरनेकशः॥ ३५॥
तस्माच्च महतःसंज्ञाख्यातिरित्यभिधीयते। साक्षात्सर्वं विजानातिमहात्मातेनचेश्वरः
तस्माज्जाता ग्रहाश्चैव प्रज्ञा तेन स उच्यते। ज्ञानादीनि च रूपाणिक्रतुकर्मफलानिच
चिनोति यस्माद्भोगार्थंतेनासौचितिरुच्यते। वर्तमानान्यतीतानि तथाचानागतान्यपि
स्मरते सर्वकार्याणि तेनासौ स्मृतिरुच्यते।
कृत्स्नं च विन्दते ज्ञानं तस्मान्माहात्म्यमुच्यते॥ ३६॥
तस्माद्धिन्देर्विदश्चैवसंविदित्यभिधीयते। विद्यते स च सर्वस्मिन्सर्वंतस्मिंश्चविद्यते
तस्मात्संविदितिप्रोक्तोमहान्वैबुद्धिमत्तरैः। ज्ञानात्तुज्ञानमित्याह भगवाञ्ज्ञानसंनिधिः
द्वन्द्वानां विपुरीभावाद्विपुरं प्रोच्यते बुधैः। सर्वेशत्वाच्च लोकानामवश्यं च तथेश्वरः
बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भव उच्यते। क्षेत्रक्षेत्रज्ञविज्ञानादेकत्वाच्च स कः स्मृतः
यस्मात्पुर्यनुशेतेचतस्मात्पुरुषउच्यते। नोत्पादितत्वात्पूर्वत्वात्स्वयम्भूरितिचोच्यते
पर्यायवाचकैः शब्दैस्तत्त्वमाद्यमनुत्तमम्। व्याख्यातं तत्त्वभावज्ञैरेवं सद्भावचिन्तकैः।

महान्सृष्टिंविकुरुतेचोद्यमानःसिसृक्षया । संकल्पोऽध्यवसायश्चतस्यवृत्तिद्वयंस्मृत
धर्मादीनि च रूपाणि लोकतत्त्वार्थहेतवः । त्रिगुणस्तु स विज्ञेयः सत्त्वराजसतामस
त्रिगुणाद्रजसोद्रिक्तादहंकारस्ततोऽभवत् । महताचाऽऽवृतःसर्गो भूतादिर्विकृतस्तुस
तस्माच्च तमसोद्रिक्तादहंकारादजायत । भूततन्मात्रसर्गस्तु भूतादिस्तामसस्तु सः

भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज ह ।
आकाशं शुषिरं तस्मादुद्रिक्तं शब्दलक्षणम् ॥ ५७ ॥

आकाशंशब्दमात्रंतुभूतादिश्चाऽऽवृणोत्पुनः । शब्दमात्रं तदाकाशंस्पर्शमात्रंससर्ज
बलवाञ्जायते वायुःसर्वस्पर्शगुणो मतः । आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रंसमावृणो
वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते
स्पर्शमात्रंतुवैवायोरूपमात्रंसमावृणोत् । ज्योतिश्चापिविकुर्वाणं रसमात्रंससर्ज

संभवन्ति ततो ह्यापः पश्चात्तापै रसात्मिकाः ।
रसमात्रास्तु ता ह्यापो रूपमात्राभिरावृणोत् ॥ ५५ ॥
आपो रसान्विकुर्वन्त्यो गन्धमात्रं ससर्जिरे ।
संघातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणःस्मृतः ॥५६॥

रसमात्रंतुतत्तोयंगन्धमात्रंसमावृणोत् । तस्मिंस्तस्मिंस्तुतन्मात्रातेनतन्मात्रतास्मृत
अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततः स्मृताः । अशान्तघोरमूढत्वादविशेषास्ततः पुनः
भूततन्मात्रसर्गोऽयंविज्ञेयस्तुपरस्परात् । वैकारिकादहंकारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तुसात्त्विका
वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्संप्रवर्तते । बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रियाण्य
साधकानीन्द्रियाणिस्युर्देवावैकारिकादश । एकादशंमनस्तत्रदेवावैकारिकाः स्मृता
श्रोत्रंत्वक्चक्षुषीजिह्वानासिकाचैवपञ्चमी । शब्दादीनामवाप्त्यर्थंबुद्धियुक्तानिवक्ष्य
पादौपायुरुपस्थश्चहस्तौ वाग्दशमीभवेत् । गतिर्विसर्गोह्यानन्दःशिल्पं वाक्यंचकर्म

आकाशं शब्दमात्रं च स्पर्शमात्रं समाविशत् ।
द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत् ॥ ६४ ॥

रूपं तथैव विशतः शब्दस्पर्शगुणावुभौ । त्रिगुणस्तुततश्चाग्निः स शब्दस्पर्शरूपवा

सशब्दस्पर्शरूपश्चरसमात्रंसमाविशत् । तस्माच्चतुर्गुणाह्यापोविज्ञेयास्तारसात्मिकाः
सशब्दस्पर्शरूपेषुगन्धस्तेषुसमाविशत् । संयुक्ता गन्धमात्रेण आचिन्वन्तोमहीमिमाम्
तस्मात्पञ्चगुणाभूमिःस्थूलभूतेषुदृश्यते । शान्ता घोराश्चमूढाश्चविशेषास्तेनतेस्मृताः
परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम् । भूमेरन्तस्त्विदं सर्वं लोकालोकघनावृतम् ॥
विशेषा इन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्चतेस्मृताः । गुणंपूर्वस्यपूर्वस्यप्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम्
तेषां यावच्च यद्यच्च तत्तत्तावद्गुणं स्मृतम् । उपलभ्य शुचेर्गन्धं केचिद्वायोरनैपुणात्॥

पृथिव्यामेव तद्विद्यादेषां वायोश्च संश्रयात् ।
एतेसप्त महावीर्या नानाभूताः पृथक्पृथक् ॥ ७२ ॥

नाशक्नुवन्प्रजाःस्रष्टुमसमागम्यकृत्स्नशः । ते समेत्यमहात्मानोह्यन्योन्यस्यैवसंश्रयात्
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च । महदादयो विशेषान्ता अण्डमुत्पादयन्तिते
एककालं समुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत् । विशेषेभ्योऽण्डमभवद्बृहत्तदुदकं च यत्
तत्तस्मिन्कार्यकरणं संसिद्धं ब्रह्मणस्तदा । प्राकृतेऽण्डे विवृद्धेसन्क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः
सवै शरीरी प्रथमः सवै पुरुष उच्यते । आदिकर्त्ता च भूतानां ब्रह्माऽग्रे समवर्तत
हिरण्यगर्भः सोऽग्रेऽस्मिन्प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः । सर्गे च प्रतिसर्गे च क्षेत्रज्ञोब्रह्मसंज्ञितः
करणैः सह सृज्यन्ते प्रत्याहारे त्यजन्ति च । भजन्ते च पुनर्देहानसमाहारसंधिषु ॥
हिरण्मयस्तु यो मेरुस्तस्योल्वं तन्महात्मनः । गर्भोदकं समुद्राश्चजराय्वस्थीनिपर्वताः
तस्मिन्नण्डे त्विमे लोकाअन्तर्भूतास्तुसप्त वै । सप्तद्वीपाचपृथिवी समुद्रैःसहसप्तभिः॥
पर्वतैःसुमहद्भिश्चनदीभिश्चसहस्रशः । अन्तस्तस्मिंस्त्विमेलोका अन्तर्विश्वमिदंजगत्
चन्द्रादित्यौसनक्षत्रौसग्रहौसहवायुना । लोकालोकंचयत्किंचिच्चाण्डेतस्मिन्समर्पितम्
अद्भिर्दशगुणाभिस्तुबाह्यतोऽण्डंसमावृतम् । आपोदशगुणाह्येवं तेजसाबाह्यतोवृताः ॥
तेजो दशगुणेनैव बाह्यतो वायुनाऽऽवृतम् । वायुर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसाऽऽवृतः ॥
आकाशेन वृतो वायुःखं च भूतादिनाऽऽवृतम् । भूतादिर्महताचापिअव्यक्तेनवृतो महान्॥
एतैरावरणैरण्डंसप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् । एताश्चाऽऽवृत्यचान्योन्यमष्टौप्रकृतयः स्थिताः॥
प्रसर्गकाले स्थित्वा च ग्रसन्त्येताः परस्परम् । एवंपरस्परोत्पन्ना धारयन्तिपरस्परम्॥

आधाराधेयभावेन विकारश्च विकारिषु । अव्यक्तं क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते॥
इत्येष प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः । अबुद्धिपूर्वं प्रागासीत्प्रादुर्भूता तडिद्यथा॥
एतद्धिरण्यगर्भस्य जन्म यो वेद तत्त्वतः । आयुष्मान्कीर्तिमान्धन्यः प्रजावांश्चभवत्युत॥
निवृत्तिकामोऽपि नरः शुद्धात्मा लभते गतिम् ।
पुराणश्रवणान्नित्यं सुखं च क्षेममाप्नुयात् ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते प्रक्रियापादे सृष्टिप्रकरणकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

ईश्वरस्य दिनस्वरूपकथनम्

लोमहर्षण उवाच

यद्विसृष्टेस्तु संख्यातं मया कालान्तरं द्विजाः । एतत्कालान्तरं ज्ञेयमहर्वै पारमेश्वरम्॥
रात्रिस्त्वेतावतीज्ञेया परमेशस्यकृत्स्नशः । अहस्तस्यतुयासृष्टिः प्रलयो रात्रिरुच्यते ॥
अहश्च विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारणा । उपचारः प्रक्रियते लोकानां हितकाम्यया ॥
प्रजाः प्रजानां पतय ऋषयो मुनिभिः सह । ऋषीन्सनत्कुमाराख्यान्ब्रह्मसायुज्यगैः सह
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्चमहाभूतानिपञ्चच । तन्मात्रा इन्द्रियगणोबुद्धिश्च मनसा सह
अहस्तिष्ठन्ति ते सर्वे परमेशस्य धीमतः । अहरन्ते प्रलीयन्ते रात्र्यन्ते विश्वसंभवः ॥
स्वात्मन्यवस्थितेसत्त्वेविकारेप्रतिसंहृते । साधर्मे(र्म्ये)णावतिष्ठेतेप्रधानपुरुषावुभौ॥
तमःसत्त्वगुणावेतौ समत्वेनव्यवस्थितौ । अत्रोद्रिक्तौप्रसूतौच तौ तथाचपरस्परम्॥
गुणसाम्ये लयोज्ञेयोवैषम्ये सृष्टिरुच्यते । तिलेषु वा यथा तैलंघृतंपयसि वा स्थितम् ॥
तथा तमसिसत्त्वेचरजोऽव्यक्ताश्रितं स्थितम् । उपास्यरजनींकृत्स्नांपरांमाहेश्वरींतदा॥
अहर्मुखे प्रवृत्ते च परः प्रकृतिसंभवः । क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ॥ ११॥

प्रधानं पुरुषं चैव प्रविश्याण्डं महेश्वरः। प्रधानात्क्षोभ्यमाणात्तु रजो वै समवर्तत॥
रजः प्रवर्तकं तत्र बीजेष्वपि तथा जलम्। गुणवैषम्यमासाद्य प्रसूयन्ते ह्यधिष्ठिताः॥

गुणेभ्यः क्षोभ्यमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे।
आश्रिताः परमा गुह्याः सर्वात्मानः शरीरिणः ॥१४॥

रजो ब्रह्मा तमो ह्यग्निः सत्त्वं विष्णुरजायत। रजःप्रकाशको ब्रह्मास्रष्टृत्वेन व्यवस्थितः

तमःप्रकाशकोऽग्निस्तु कालत्वेन व्यवस्थितः।
सत्त्वप्रकाशको विष्णुरौदासीन्ये व्यवस्थितः ॥१६

एत एव त्रयो लोका एत एव त्रयो गुणाः। एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नयः॥ १७
परस्पराश्रिता ह्येते परस्परमनुव्रताः। परस्परेण वर्तन्ते धारयन्ति परस्परम्॥
अन्योन्यमिथुना ह्येते ह्यन्योन्यमुपजीविनः। क्षणंवियोगोनह्येषांनत्यजन्तिपरस्परम्॥
ईश्वरो हि परो देवो विष्णुस्तु महतः परः। ब्रह्मा तु रजसोद्रिक्तः सर्गायेह प्रवर्तते॥

परश्च पुरुषोज्ञेयः प्रकृतिश्च परा स्मृता ॥ २० ॥
अधिष्ठितोऽसौ हि महेश्वरेण प्रवर्तते चोद्यमानः समन्तात्।
अनुप्रवर्तन्ति महान्तमेव चिरस्थिताः स्वे विषये प्रियत्वात्॥ २१॥

प्रधानं गुणवैषम्यात्सर्गकाले प्रवर्तते। ईश्वराधिष्ठितात्पूर्वं तस्मात्सदसदात्मकात्॥
ब्रह्मा बुद्धिश्च मिथुनं युगपत्संबभूवतुः। तस्मात्तमोव्यक्तमयः क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः॥
संसिद्धः कार्यकरणैर्ब्रह्माऽग्रे समवर्तत। तेजसा प्रथमो धीमानव्यक्तः संप्रकाशते॥
स वै शरीरी प्रथमः कारणत्वे व्यवस्थितः। अप्रतीघेन ज्ञानेन ऐश्वर्येण च सोऽन्वितः
धर्मेण चाप्रतीघेन वैराग्येणसमन्वितः। तस्येश्वरस्याप्रतिघं ज्ञानं वैराग्यलक्षणम्॥
धर्मैश्वर्यकृताबुद्धिर्ब्राह्मीजज्ञेभिमानिनः। अव्यक्ताज्जायते चास्य मनसा च यदिच्छति
वशीकृतत्वाद्त्रैगुण्यात्सुरेशत्वत्स्वभावतः। चतुर्मुखस्तुब्रह्मत्वेकालत्वेचान्तकोऽभवत्
सहस्रमूर्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्थाःस्वयंभुवः। सत्त्वं रजश्च ब्रह्मत्वेकालत्वेचरजस्तमः
सात्त्विकं पुरुषत्वेचगुणवृत्तिःस्वयंभुवः। लोकान्सृजतिब्रह्मत्वे कालत्वेसंक्षिपत्यपि
पुरुषत्वेह्युदासीनस्तिस्रोऽवस्थाः प्रजापतेः। ब्रह्माकमलगर्भाभःकालो जात्याऽञ्जनप्रभः

पुरुषः पुण्डरीकाक्षो रूपं तत्परमात्मनः । योगेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च
नानाकृतिक्रियारूपनामवृत्तिः स्वलीलया । त्रिधा यद्वर्तते लोके तस्मात्त्रिगुण उच्यते
चतुर्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्तितः । यदाप्नोति यदादत्ते यच्चास्ति(त्ति)विषयंप्रति

त (य) च्चास्य सततं भावस्तस्मादात्मा निरुच्यते ।
ऋषिः सर्वगतत्वाच्च शरीराद्यात्स्वयम्प्रभुः ॥ ३५ ॥

स्वामित्वमस्यतत्सर्वं विष्णुःसर्वप्रवेशनात् । भगवान्भगसद्भावाद्रागो रागस्यशासनात्
परश्च तु प्रकृष्टत्वादवनादोमिति स्मृतः । सर्वज्ञःसर्वविज्ञानात्सर्वः सर्वं यतस्ततः ॥
नराणामयनं यस्मात्तेन नारायणःस्मृतः । त्रिधा विभज्यस्वात्मानं त्रैलोक्यंसंप्रवर्तते
सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिस्तु यत् । अग्रे हिरण्यगर्भः स प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ॥

आदित्वाच्चाऽऽदिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः ।
पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरतः स्मृतः ॥ ४० ॥

देवेषु च महान्देवो महादेवस्ततः स्मृतः । सर्वेशत्वाच्च लोकानामवश्यत्वात्तथेश्वरः ॥
वृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्माभूतत्वाद्भूत उच्यते । क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानाद्विभुः सर्वगतो यतः
यस्मात्पुर्यनुशेतेचतस्मात्पुरुष उच्यते । नोत्पादितत्वात्पूर्वत्वात्स्वयंभूतिरिसस्मृतः
इज्यत्वानुच्यते यज्ञःकविर्विक्रान्तदर्शनात् । क्रमणःक्रमणीयत्वाद्वर्णकस्याभिपालनात्

आदित्यसंज्ञः कपिलस्त्वग्रजोऽग्निरिति स्मृतः ।
हिरण्मयस्य गर्भोऽभूद्धिरण्यस्यापि गर्भजः ॥४५॥

तस्माद्धिरण्यगर्भः स पुराणेऽस्मिन्निरुच्यते । स्वयंभुवोनिवृत्तस्यकालोवर्षाग्रजस्तु यः
न शक्यः परिसंख्यातुमपि वर्षशतैरपि कल्पसंख्या निवृत्तेऽस्तुपराख्योब्रह्मणःस्मृतः॥

तावच्छेषोऽस्य कालोऽन्यस्तस्यान्ते प्रतिसृज्यते ।
कोटिकोटिसहस्राणि अन्तर्भूतानि यानि वै ॥ ४८ ॥

समतीतानि कल्पानांतावच्छेषाः परास्तु ये । यस्त्वं वर्ततेकल्पो वाराहं तन्निबोधत
प्रथमः साम्प्रतस्तेषांकल्पोऽयंवर्ततेद्विजाः । तस्मिन्स्वायम्भुवाद्यास्तुमनवःस्युश्चतुर्दश
अतीता वर्तमानाश्च भविष्या ये च वै पुनः । तैरियं पृथिवीसर्वा सप्तद्वीपा समन्ततः

पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः । प्रजाभिस्तपसा चैव तेषां शृणुत विस्तरम् ॥
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै । भविष्याणि भविष्यैश्च कल्पःकल्पेन चैवह
अतीतानि च कल्पानि सोद्कानिसहान्वयैः । अनागतेषु तद्वच्चतर्कः कार्यो विजानता
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते प्रक्रियापादे प्रकृतिक्षोभणो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः

वाराहरूपवर्णनम्

सूत उवाच

आपोह्यग्रे: समभवन्नष्टेऽग्नौ पृथिवीतले । सान्तरालैकलीनेऽस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे
एकार्णवे तदा तस्मिन्न प्राज्ञायत किञ्चन । तदा स भगवान्ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्
सहस्रशीर्षापुरुषोरुक्मवर्णोऽह्यतीन्द्रियः । ब्रह्मानारायणाख्यः स सुष्वापसलिले तदा
सत्त्वोद्रेकात्प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमुदीक्ष्य सः । इमं चोदाहरन्त्यत्रश्लोकंनारायणंप्रति
आपो नारा वै तनव इत्यपां नाम शुश्रुम । अप्सुशेते च यत्तस्मात्तेननारायणः स्मृतः
तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्यसः । शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥
ब्रह्मा तु सलिलेतस्मिन्वायुर्भूत्वातदाचरन् । निशायामिवखद्योतःप्रावृट्कालेततस्ततः
ततस्तु सलिले तस्मिन्विज्ञायान्तर्गतां महीम् । अनुमानादसंमूढो भूमेरुद्धरणं प्रति ॥
अकरोत्स तनुं ह्यन्यांकल्पादिषुयथा पुरा । ततोमहात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत्
सलिलेनाऽप्लुतांभूमिं दृष्ट्वा स तु समन्ततः । किं नु रूपंमहत्कृत्वा उद्धरेयमहं महीम्
जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमस्मरत् । अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं धर्मसंज्ञितम् ॥
दशयोजनविस्तीर्णंशतयोजनमुच्छ्रितम् । नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिस्वनम् ॥१२
महापर्वतवर्ष्माणं श्वेततीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम् । विद्युदग्निप्रकाशाक्षमादित्यसमतेजसम् ॥
पीनवृत्तायतस्कन्धं सिंहविक्रान्तगामिनम् । पीनोन्नतकटीदेशं सुश्लक्ष्णं शुभलक्षणम्

रूपमास्थाय विपुलं वाराहममितं हरिः। पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम्॥
स वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुवक्षाश्चितीमुखः। अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो(र्षा)महातपाः
अहोरात्रेक्षणधरोवेदाङ्गश्रुतिभूषणः। आज्यनाशः(सः)स्रुवतुण्डः सामघोषस्वनोमहान्
सत्यधर्ममयः श्रीमान्धर्मविक्रमसंस्थितः। प्रायश्चित्तरथो घोरः पशुजानुर्महाकृतिः॥

उद्गात्रन्त्रो होमलिङ्गः स्थानवीजी महौषधिः।
वेद्यान्तरात्मा मन्त्रस्फिगाज्यस्रुक्सोमशोणितः ॥१६॥
वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान्।
प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वितः ॥२०॥

दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो विभुः। उपाकर्मेष्टिरुचिरः प्रवर्ग्यवित्तभूषणः ॥२१
नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः। छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्ग इवोच्छ्रितः
भूत्वायज्ञवराहो वै अतः स प्राविशत्प्रभुः। अद्भिःसंछादितामुर्वीं स तामश्नन्प्रजापतिः
उपगम्योज्जहाराऽऽशुअपस्ताश्च स विन्यसन्। सामुद्रीर्वै समुद्रेषु नादेयीश्च नदीष्वथ
रसातलतले मग्नां रसातलतले गताम्। प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्रयाऽभ्युज्जहार गाम्
ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः। मुमोच पूर्वं मनसा धारयित्वा धराधरः
तस्योपरि जलौघस्य महतीनौरिव स्थिता। चरितत्वाच्चदेहस्य न महीयाति विप्लवम्
ततोद्धृत्य क्षितिं देवो जगतःस्थापनेच्छया। पृथिव्याः प्रविभागायमनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः
पृथिवींतुसमीकृत्यपृथिव्यांसोऽचिनोद्गिरीन्। प्राक्सर्गे दह्यमानस्तुतदासंवर्तकाग्निना
तेनाग्निनाविशीर्णास्तेपर्वताभुविसर्वशः। शैत्यादेकार्णवेतस्मिन्वायुनाऽऽपस्तु संहृताः

निषिक्ता यत्र यत्राऽऽसंस्तत्र तत्राचलोऽभवत्।
स्कन्नाचलत्वादचलाः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः ॥३१॥

गिरयोऽन्तर्निगीर्णत्वाच्चयनाच्चशिलोच्चयाः। ततस्तेषुविशीर्णेषु लोकोदधिगिरिष्वथ
विश्वकर्मा विभजते कल्पादिषु पुनः पुनः। ससमुद्रामिमां पृथ्वींसप्तद्वीपां सपर्वताम्
भूराद्यांश्चतुरो लोकान्पुनः सोऽथ प्रकल्पयत्। लोकान्प्रकल्पयित्वाचप्रजासर्गंससर्जह
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः। ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां कल्पादिषु यथापुरा

तस्याभिध्यायतः सर्गं तदा वै बुद्धिपूर्वकम्। प्रध्यानसमकालं वै प्रादुर्भूतस्तमोमयः
तमोमोहो महामोहस्तामिस्रोअ(ह्य)न्धसंज्ञितः। अविद्यां पञ्चपर्वैषाप्रादुर्भूतामहात्मनः

पञ्चधा चाऽऽश्रितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः।
सर्वतस्तमसा चैव दीपः कुम्भवदावृतः ॥ ३८ ॥

बहिरन्तःप्रकाशश्च शुद्धो निःसंज्ञएव च। यस्मात्तैः संवृत्ता बुद्धिर्मुख्यानि करणानिच
तस्मात्तेसंवृतात्मानोनगामुख्याः प्रकीर्तिताः। मुख्यसर्गं तथाभूतंब्रह्माद्दृष्ट्वाह्यसाधकम्
अप्रसन्नमनाःसोऽथततोन्यासोऽभ्यमन्यत।तस्याभिध्यायतस्तत्रतिर्यक्स्रोतोऽभ्यवर्तत
तस्मात्तिर्यग्व्यवर्तन्ततिर्यक्स्रोतस्ततःस्मृतम्। तमोबहुत्वात्तेसर्वेह्यज्ञानबहुलाः स्मृताः
उत्पथग्राहिणश्चापितेध्यानाद्ध्यानमानिनः। तिर्यक्स्रोतस्तुदृष्ट्वावैद्वितीयंविश्वमीश्वरः
अहंकृता अहंमाना अष्टाविंशद्विधात्मकाः। एकादशेन्द्रियविधा नवधा चोदयस्तथा

अष्टौ च तारकाद्याश्च तेषां शक्तिविधाः स्मृताः।
अन्तःप्रकाशस्ते सर्व आवृताश्च बहिः पुनः ॥ ४५ ॥

यस्मात्तिर्यक्प्रवर्तेततिर्यक्स्रोताःसउच्यते। तिर्यक्स्रोतश्चदृष्ट्वावैद्वितीयं विश्वमीश्वरः
अभिप्रायमथोद्भूतं दृष्ट्वासर्वंतथाविधम्। तस्याभिध्यायतो नित्यंसात्त्विकःसमवर्तत

ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु स चैवोर्ध्वं व्यवस्थितः।
यस्माद्व्यवर्ततोर्ध्वं तु ऊर्ध्वस्रोतास्ततः स्मृतः ॥ ४८ ॥

ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तश्च संवृताः। प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्रोतोद्भवाः स्मृताः
तेनवातादयोज्ञेयाःसृष्टात्मानोव्यवस्थिताः। ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयोवैतेनसर्गस्तुसस्मृतः
ऊर्ध्वस्रोतःसु सृष्टेषुदेवेषु स तदा प्रभुः। प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा ततोऽन्यंसोऽभ्यमन्यत
ससर्ज सर्गमन्यं स साधकं प्रभुरीश्वरः। अथाभिध्यायतस्तस्यसत्यभिध्यायिनस्तदा
प्रादुर्बभूवचाव्यक्तादर्वाक्स्रोतःसुसाधकम्। यस्मादर्वाग्व्यवर्तेततर्तोऽर्वाक्स्रोतउच्यते
ते च प्रकाशबहुलास्तमःसत्त्वरजोधिकाः। तस्मात्ते दुःखबहुला भूयोभूयश्चकारिणः
प्रकाशा बहिरन्तश्चमनुष्याःसाधकाश्च ते। लक्षणैस्तारकाद्यैस्ते अष्टधाचव्यवस्थिताः
सिद्धात्मानोमनुष्यास्तेगन्धर्वसहधर्मिणः। इत्येषतैजसःसर्गोह्यर्वाक्स्रोताः प्रकीर्तितः

पञ्चमोऽनुग्रहःसर्गश्चतुर्धा स व्यवस्थितः। विपर्ययेणशक्त्याचतुष्ट्यासिद्ध्यातथैव च
विवृत्तं वर्तमानं च तेऽर्थंजानन्तितत्त्वतः। भूतादिकानां सत्त्वानां षष्ठः सर्गःसउच्यते
ते परिग्रहिणः सर्वेसंविभागरताः पुनः। खादनाश्चाप्यशीलाश्चज्ञेयाभूतादिकास्तुते
विपर्ययेण भूतादिरशक्त्या च व्यवस्थितः। प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो महतस्तु सः
तन्मात्राणां द्वितीयस्तुभूतसर्गःसउच्यते। वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्व ऐन्द्रियकःस्मृतः
इत्येष प्राकृतःसर्गःसंभूतोबुद्धिपूर्वकः। मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तुमुख्या वै स्थावराःस्मृताः

तिर्यक्स्रोताश्च यः सर्गस्तिर्यग्योनिः स पञ्चमः।
तथोर्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥६३॥

तथाऽर्वाक्स्रोतसांसर्गःसप्तमःसतुमानुषः। अष्टमोऽनुग्रहःसर्गःसात्त्विकस्तामसस्तुसः
पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयःस्मृताः। प्राकृतोवैकृतश्चैवकौमारोनवमःस्मृतः
प्राकृतास्तु त्रयः सर्गाः कृतास्ते बुद्धिपूर्वकाः। बुद्धिपूर्वं प्रवर्तन्ते षट्सर्गा ब्रह्मणस्तुते
विस्तरानुग्रहं सर्गं कीर्त्यमानंनिबोधत। चतुर्धाऽवस्थितः सोऽथ सर्वभूतेषु कृत्स्नशः
विपर्ययेणशक्त्याचतुष्ट्यासिद्ध्यातथैव च। स्थावरेषुविपर्यासस्तिर्यग्योनिषुशक्तिता
सिद्ध्यात्मानो मनुष्यास्तु तुष्टिर्देवेषुकृत्स्नशः। इत्येतेप्राकृताश्चैव वैकृताश्चनवस्मृताः

सर्गाः परस्परस्याथ प्रकारा बहवः स्मृताः।
अग्रे ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ॥ ७० ॥

सनन्दनं च सनकं विद्वांसं च सनातनम्। विज्ञातेन निवृत्तास्ते वैवर्तेन महौजसः॥
संबुद्धाश्चैव नानात्वादपविद्धास्त्रयोऽपि ते। असृष्ट्वैव प्रजासर्गं प्रतिसर्गं गताः पुनः॥
तदातेषुव्यतीतेषुतदाऽन्यान्साधकांश्चतान्। मानसानसृजद्ब्रह्मापुनःस्थानाभिमानिनः
आभूतसंप्लवावस्थान्नामतस्तान्निबोधत। आपोऽग्निः पृथिवीवायुरन्तरिक्षंदिशस्तथा

स्वर्गं दिवः समुद्रांश्च नदाञ्शैलान्वनस्पतीन्।
ओषधीनां तथाऽऽत्मानो ह्यात्मानो वृक्षवीरुधाम् ॥७५॥

लवाः काष्ठाःकलाश्चैवमुहूर्ताःसंधिरात्र्यहाः। अर्धमासाश्चमासाश्च अयनाब्दयुगानिच
स्थानाभिमानिनः सर्वे स्थानाख्याश्चैव ते स्मृताः ॥७६॥

वक्त्राद्यस्य ब्राह्मणाः संप्रसूतास्तद्वक्षसः क्षत्रियाः पूर्वभागे।

वैश्याश्चोर्वोर्यस्य पद्भ्यां च शूद्राः सर्वे वर्णा गात्रतः संप्रसूताः ॥७७॥

नारायणःपरोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसंभवम् । अण्डाज्जज्ञेपुनर्ब्रह्मालोकास्तेनकृताःस्वयम्

एषवः कथितः पादःसमासान्न तु विस्तरात् । अनेनाऽऽद्येनपादेनपुराणं संप्रकीर्तितम्

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते प्रक्रियापादे सृष्टिप्रकरणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

समाप्तःप्रक्रियापादः

अथोपोद्घातपादः

सप्तमोऽध्यायः

प्रतिसंधिकीर्तनम्

सूत उवाच

इत्येष प्रथमः पादः प्रक्रियार्थः प्रकीर्तितः । श्रुत्वा तु संहृष्टमनाः काश्यपेयः सनातनः

संबोध्य सूतं वचसा पप्रच्छाथोत्तरां कथाम् । अतःप्रभृतिकल्पज्ञप्रतिसंधिं प्रचक्ष्वनः

समतीतस्य कल्पस्य वर्तमानस्य चोभयोः । कल्पयोरन्तरं यच्च प्रतिसंधिर्यतस्तयोः

एतद्वेदितुमिच्छाम अ(मो ह्य)त्यन्तकुशलो ह्यसि ॥३॥

लोमहर्षण उवाच

अत्र वोऽहं प्रवक्ष्यामिप्रतिसंधिश्चयस्तयोः । समतीतस्यकल्पस्य वर्तमानस्यचोभयो

मन्वन्तराणि कल्पेषुयेषु यानि च सुव्रताः । यश्चायं वर्तते कल्पोवाराहः सांप्रतःशुभ

अस्मात्कल्पाच्चयःकल्पःपूर्वोऽतीतःसनातनः।तस्यचास्यचकल्पस्यमध्यावस्थांनिबोधत

प्रत्याहृते पूर्वकल्पे प्रतिसंधिं च तत्र वै । अन्यः प्रवर्तते कल्पो जनाल्लोकात्पुनः पुनः

व्युच्छिन्नात्प्रतिसंधेस्तु कल्पात्कल्पः परस्परम् ।

व्युच्छिद्यन्ते क्रियाःसर्वाःकल्पान्ते सर्वशस्तदा ॥ ८ ॥

तस्मात्कल्पात्तु कल्पस्यप्रतिसंधिर्निगद्यते । मन्वन्तरयुगाख्यानामव्युच्छिन्नाश्चसंधयः
परस्पराः प्रवर्तन्ते मन्वन्तरयुगैः सह । उक्ता ये प्रक्रियार्थेन पूर्वकल्पाः समासतः ॥
तेषां परार्धकल्पानां पूर्वो ह्यस्मात्तुयः परः । आसीत्कल्पोव्यतीतोवैपरार्धंन परस्तुसः
अन्ये भविष्यायेकल्पाअपरार्धाद्गुणीकृताः । प्रथमःसांप्रतस्तेषांकल्पोऽयंवर्ततेद्विजाः
यस्मिन्पूर्वः परार्धे तु द्वितीये परउच्यते । एतावान्स्थितिकालस्यप्रत्याहारस्ततःस्मृतः
अस्मात्कल्पात्तु यः पूर्वं कल्पोऽतीतः सनातनः । चतुर्युगसहस्रान्ते अहोमन्वन्तरैः पुरा
क्षीणे कल्पे तदातस्मिन्दाहकालेह्युपस्थिते । तस्मिन्कल्पेतदादेवाआसन्वैमानिकास्तुये
नक्षत्रग्रहतारास्तु चन्द्रसूर्यग्रहाश्च ये । अष्टाविंशतिरेवैताः कोट्यस्तु सुकृतात्मनाम् ॥
मन्वन्तरे तथैकस्मिंश्चतुर्दशसुवै तथा । त्रीणिकोटिशतान्यासन्कोट्यो द्विनवतिस्तथा

अष्टाधिकाः सप्तशताः सहस्राणां स्मृताः पुरा ।
वैमानिकानां देवानां कल्पेऽतीते तु येऽभवन् ॥ १८ ॥

एकैकस्मिंस्तु कल्पे वै देवा वैमानिकाःस्मृताः । अथमन्वन्तरेष्वासंश्चतुर्दशसुवै दिवि
देवाश्च पितरश्चैव मुनयो मनवस्तथा । तेषामनुचरा ये च मनुपुत्रास्तथैव च ॥ २० ॥
वर्णाश्रमिभिरीड्याश्च तस्मिन्कालेतु ये सुराः । मन्वन्तरेषुयेह्यासन्देवलोके दिवौकसः
ते तैः संयोजकैः सार्धं प्राप्ते संकालने तथा । तुल्यनिष्ठास्तु ते सर्वे प्राप्तेह्याभूतसंप्लवे

ततस्तेऽवश्यभावित्वाद् बुद्ध्वा पर्यायमात्मनः ।
त्रैलोक्यवासिनो देवा इह स्थानाभिमानिनः ॥ २३ ॥

स्थितिकाले तदापूर्णेह्यासन्नेपश्चिमेऽन्तरे । कल्पावसानिकादेवास्तस्मिन्प्राप्ते ह्युपप्लवे
तेनौत्सुक्यविषादेनत्यक्त्वास्थानानिभावतः । महर्लोकायसंविग्नास्ततस्तेदधिरेमतिम्
ते युक्ता उपपद्यन्तेमहसिस्थैः शरीरकैः । विशुद्धिबहुलाःसर्वेमानसीं सिद्धिमास्थिताः
तैः कल्पवासिभिःसार्धंमहानासादितस्तु यैः । ब्राह्मणैःक्षत्रियैर्वैश्यैस्तद्भक्तैश्चापरैर्जनैः
गत्वा तु ते महर्लोकं देवसंघाश्चतुर्दश । ततस्ते जनलोकाय सोद्वेगा दधिरे मतिम् ॥
विशुद्धिबहुलाःसर्वेमानसींसिद्धिमास्थिताः। तैःकल्पवासिभिःसार्धंमहानासादितस्तुयैः

दशकृत्व इवाऽऽवृत्य तस्माद्गच्छन्ति स्वस्तपः ।

तत्र कल्पान्दश स्थित्वा सत्यं गच्छन्ति वै पुनः ॥ ३० ॥

एतेन क्रमयोगेन(ण) यान्तिकल्पनिवासिनः । एवंदेवयुगानां तु सहस्राणि परस्परात् गतानि ब्रह्मलोकं वै अपरावर्तिनीं गतिम् । आधिपत्यं विनाते वै ऐश्वर्येणतु तत्समाः भवन्ति ब्रह्मणस्तुल्या रूपेणविषयेण च । तत्रते ह्यवतिष्ठन्ति(न्ते)प्रीतियुक्ताःप्रसंगमात् आनन्दंब्रह्मणःप्राप्य मुच्यन्तेब्रह्मणा सह । अवश्यंभाविनाऽर्थेन प्राकृतेनैव ते स्वयम् नानात्वेनाभिसंवद्धास्तदा तत्कालभाविनः । स्वपतो बुद्धिपूर्वं हि यथाभवति जाग्रतः तत्कालभावि तेषां तु तथा ज्ञानं प्रवर्तते । प्रत्याहारेतु भेदानांयेषांभिन्नाभिसूक्ष्मणाम्

तैः सार्धं प्रतिसृज्यन्ते कार्याणि करणानि च ।

नानात्वदर्शनात्तेषां ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ॥ ३७ ॥

विनष्टस्वाधिकाराणांस्वेनधर्मेणतिष्ठताम् । तेतुल्यलक्षणाःसिद्धाःशुद्धात्मानोनिरञ्जनाः प्रकृतौकारणातीताःस्वात्मन्येवव्यवस्थिताः । प्रख्यापयित्वाह्यात्मानंप्रकृतिस्तेषुसर्वशः पुरुषाव्यवहृत्वे(त्त्वे)न प्रतीता न प्रवर्तते । प्रवर्तिते पुनः सर्गे तेषां वा कारणं पुनः ॥ संयोगे प्राकृते तेषां युक्तानांतत्त्वदर्शिनाम् । अत्रापवर्गिणां तेषामपुनर्मार्गगामिनाम् अभावः पुनरुत्पत्तौ शान्तानामर्चिषामिव । ततस्तेषु गतेषूर्ध्वं त्रैलोक्यात्सुमहात्मसु तैः सार्धं ये महर्लोकात्तदानाऽऽसादिताजनाः । तच्छिष्टाश्चेहतिष्ठन्तिकल्पादेहमुपासते

गन्धर्वाद्याः पिशाचान्ता मानुषा ब्राह्मणादयः ।

पशवः पक्षिणश्चैव स्थावराः ससरीसृपाः ॥ ४४ ॥

तिष्ठत्सु तेषु तत्कालं पृथिवीतलवासिषु । सहस्रं यत्तु रश्मीनां सूर्यस्येह विभासते ॥ तेसप्तरश्मयो भूत्वा ह्येकैको जायतेरविः । क्रमेणोत्तिष्ठमानास्तेत्रीँ ल्लोकान्प्रदहन्त्युत जङ्गमं स्थावरं चैव नदीः सर्वाश्च पर्वतान् । पूर्वं शुष्काह्यनावृष्ट्या सूर्यैस्तैश्चप्रधूपिताः तदा ते विवशाःसर्वेनिर्दग्धाःसूर्यरश्मिभिः । जङ्गमाःस्थावराःसर्वेधर्माधर्मात्मकास्तुवै दग्धदेहास्ततस्ते वै गताः पापयुगात्यये । योन्या तया ह्यनिर्मुक्ताः शुभपापानुबन्धया ततस्ते ह्युपपद्यन्ते तुल्यरूपा जनेजनाः । विशुद्धिबहुलाः सर्वेमानसीं सिद्धिमास्थिताः उषित्वा रजनींतत्र ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । पुनःसर्गे भवन्तीह ब्रह्मणो मानसीप्रजाः ?

ततस्तेष्वप्रवृत्तेषु जने त्रैलोक्यवासिषु । निर्दग्धेषु च लोकेषु तेषुसूर्यैस्तुसप्तभिः ॥५२
वृष्ट्याक्षितौप्लावितायांविशीर्णेष्वालयेषुच । समुद्राश्चैवमेघाश्चआपःसर्वाश्चपार्थिवाः
व्रजन्त्येकार्णवत्वं हि सलिलाख्यास्तदाश्रिताः । आगतागतिकंतद्वै यदातु सलिलंबहु

संछाद्येमां स्थितां भूमिमर्णवाख्या तदा च सा ।
आभान्ति यस्मान्नाऽऽभान्ति भासन्तो व्याप्तिदीप्तिषु ॥५५॥

सर्वतः समनुप्राव्यतासांचाम्भो विभाव्यते । तदम्भस्तनुतेयस्मात्सर्वां पृथ्वींसमन्ततः
धातुस्तनोतिविस्तारेतेनाम्भस्तनवःस्मृताः । अरमित्येषशीघ्रंतुनिपातःकविभिः स्मृतः
एकार्णवे भवन्त्यापोनशीघ्रास्तेन ते नराः । तस्मिन्युगसहस्रान्तेसंस्थितेब्रह्मणोऽहनि
रजन्यां वर्तमानायां तावत्तत्सलिलात्मना । ततस्तु सलिलेतस्मिन्नष्टेऽग्नौ पृथिवीतले
प्रशान्तवातेऽन्धकारे निरालोके समन्ततः । येनैवाधिष्ठितं हीदं ब्रह्मा सपुरुषः प्रभुः ॥
विभागमस्य लोकस्य पुनर्वै कर्तुमिच्छति । एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे॥
तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् । सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णोह्यतीन्द्रियः
ब्रह्मानारायणाख्यस्तुसुष्वापसलिले तदा । सत्त्वोद्रेकात्प्रबुद्धस्तु शून्यंलोकमवेक्ष्यच
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति । आपोनराख्यास्तनवइत्यपां नाम शुश्रुम ॥

आपूर्यनाभिं तत्राऽऽस्ते तेन नारायणः स्मृतः ॥६५॥
सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्रपात्सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रभुक् ।
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीपथे यः पुरुषो निरुच्यते ॥६६॥
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता एकोह्यपूर्वः प्रथमं तुराषाट् ।
हिरण्यगर्भः पुरुषो महात्मा स पठ्यते वै तमसः परस्तात् ॥६७॥
कल्पादौ रजसोद्रिक्तो ब्रह्मा भूत्वाऽसृजत्प्रजाः ।
कल्पान्ते तमसोद्रिक्तः कालो भूत्वाऽग्रसत्पुनः ॥ ६८ ॥
स वै नारायणाख्यस्तु सत्त्वोद्रिक्तोऽर्णवे स्वपन् ।
त्रिधा विभज्य चाऽऽत्मानं त्रैलोक्ये समवर्तत ॥६९॥

सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिस्ततान् । एकार्णवे तदा लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे

चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः सलिलावृते । ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु अप्रकाशार्णवे स्वपन्
चतुर्विधाः प्रजाग्रस्त्वाब्राह्मयांरात्र्यांमहार्णवे । पश्यन्तितं महर्लोकात्सुप्तंकालंमहर्षयः
भृग्वाद्यो यथा सप्त कल्पे ह्यस्मिन्महर्षयः । ततो विवर्तमानैस्तैर्महान्परिगतः परः ॥
गत्यर्थाद्दृषयोधातो ना(र्ना)मनिर्वृत्तिरादितः । तस्माद्दृषिपरत्वेन महांस्तस्मान्महर्षयः
महर्लोकस्थितैर्दृष्टःकालःसुप्तस्तदा च तैः । सत्याद्याः सप्त येह्यासन्कल्पेऽतीतेमहर्षयः
एवं ब्राह्मीषु रात्रीषु ह्यतीतासु सहस्रशः । दृष्टवन्तस्तथा ह्यन्ये सुप्तं कालं महर्षयः ॥

कल्पस्याऽऽदौ तु बहुशो यस्मात्संस्थाश्चतुर्दश ।
कल्पयामास वै ब्रह्मा तस्मात्कल्पो निरुच्यते ॥७७॥

स स्रष्टा सर्वभूतानांकल्पादिषु पुनः पुनः । व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदंजगत्
इत्येष प्रतिसंधिर्वः कीर्तितः कल्पयोर्द्वयोः । सांप्रतातीतयोर्मध्ये प्रागवस्था बभूव या
कीर्तिता तु समासेन कल्पेकल्पेयथा तथा । साम्प्रतं ते प्रवक्ष्यामि कल्पमेतंनिबोधत

इति महापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे प्रतिसंधिकीर्तनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

पृथिवीसन्निवेशादिवर्णनम्

सूत उवाच

तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः । शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्वकारणात् ॥
ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन्वायुर्भूत्वातदा चरन् । अन्धकारे तदा तस्मिन्नष्टेस्थावरजङ्गमे
जलेन समनुव्याप्ते सर्वतः पृथिवीतले । अविभागेन भूतेषु समन्तात्सुस्थितेषु तु॥३॥

निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्ततः ।

तदाऽऽकाशे चरन्सोऽथ वीक्ष्यमाणः स्वयम्भुवः ॥ ४ ॥

प्रतिष्ठायाह्युपायंतुमार्गमाणस्तदा प्रभुः । ततस्तु सलिले तस्मिञ्ज्ञात्वाह्यन्तर्गतांमहीम् अनुमानात्तु संबुद्धो भूमेरुद्धरणं प्रति । चकारान्यां तनुं चैव पूर्वकल्पादिषु स्मृताम् ॥ स तु रूपंवराहस्यकृत्वाऽपःप्राविशत्प्रभुः । अद्भिः संछादितामुर्वींसमीक्ष्याथप्रजापतिः

उद्धृत्योर्वीमथाद्भ्यस्तु अपस्तास्तु स विन्यसन् ।

सामुद्रीस्तु समुद्रेषु नादेयीर्निम्नगास्वपि ॥८॥

पार्थिवीस्तु स विन्यस्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन् ।

प्राक्सर्गे दह्यमाने तु तदा संवर्तकाग्निना ॥ ६ ॥

तेनाग्निनाप्रलीनास्तेपर्वता भुवि सर्वशः । शैत्यादेकार्णवेतस्मिन्वायुनाऽऽपस्तुसंहताः

निषक्ता यत्र यत्राऽऽसंस्तत्र तत्राऽचलोऽभवत् ।

स्कन्नाचलत्वादचलाः पर्वभिः पर्वताः स्मृताः ॥११॥

गिरयोऽद्भिर्निगीर्णत्वाच्चयनाच्चशिलोच्चयाः । ततस्तुतां समुद्धृत्यक्षितिमन्तर्जलात्प्रभुः स्वस्थानेस्थापयित्वा च विभागमकरोत्पुनः । सप्त सप्त तु वर्षाणितस्याद्वीपेषुसप्तसु विषमाणि समीकृत्य शिलाभिरचिनोद्गिरीन् । द्वीपेषु तेषु वर्षाणि चत्वारिंशत्तथैव च तावन्तः पर्वताश्चैववर्षान्तेसमवस्थिताः । सर्गादौ संनिविष्टास्ते स्वभावेनैवनान्यथा सप्त द्वीपाःसमुद्राश्चअन्योन्यस्यतुमण्डलम् । संनिकृष्टाःस्वभावेन समावृत्यपरस्परम् भूराद्यांश्चतुरो लोकांश्चन्द्रादित्यौग्रहैः सह । पूर्वंतु निर्ममेब्रह्मास्थानानीमानिसर्वशः

कल्पस्य चास्य ब्रह्मा वै ह्यसृजत्स्थानिनः पुरा ।

आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिवं तथा ॥१८॥

स्वर्गंदिशःसमुद्रांश्चनदीःसर्वांश्चपर्वतान् । ओषधीनांतथाऽऽत्मानमत्मानंवृक्षवीरुधाम्

लवाः का(वान्का)ष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्तं संधिरात्र्यहम् ।

अर्धमासांश्च मासांश्च अयनाब्दयुगानि च ॥ २० ॥

स्थानाभिमानिनश्चैव स्थानानि च पृथक्पृथक् ।

स्थानात्मनः स सृष्टा वै युगावस्थां विनिर्ममे ॥२१॥

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैवतथायुगम् । कल्पस्याऽऽदौकृतयुगे प्रथमेसोऽसृजत्प्रजाः
प्रागुक्तायामयातुभ्यंपूर्वंकालंप्रजास्तुताः । तस्मिन्संवर्तमानेतुकल्पेदग्धास्तदाऽग्निना
अप्राप्तायास्तपोलोकंजनलोकंसमाश्रिताः । प्रवर्तन्ति(न्ते)पुनःसर्गंबीजार्थंताभवन्तिहि
बीजार्थेनस्थितास्तत्रपुनःसर्गस्यकारणात् । ततस्ताःसृज्यमानास्तुसंतानार्थंभवन्तिहि
धर्मार्थकाममोक्षाणामिहताःसाध(धि)काःस्मृताः । देवाश्चपितरश्चैवऋषयोमनवस्तथा

ततस्ते तपसा युक्ताः स्थानान्यापूरयन्ति हि ।
ब्रह्मणो मानसास्ते वै सिद्धात्मानो भवन्ति हि ॥२७॥

ये सङ्गद्वेषयुक्तेन कर्मणा ते दिवंगताः । आवर्तमाना इह ते सम्भवन्ति युगे युगे ॥
स्वकर्मफलशेषेणख्याताश्चैवतथात्मिकाः । सम्भवन्ति जनाल्लोकात्कर्मसंशयबन्धनात्

आशयः कारणं तत्र बोद्धव्यं कर्मणां तु सः ।
तैः कर्मभिस्तु जायन्ते जनाल्लोकाः शुभाशुभैः ॥३०॥

गृह्णन्ति ते शरीराणि नानारूपाणि योनिषु । देवाद्यस्थावरान्ते च उत्पद्यन्तेपरस्परम्
तेषां ये यानि कर्माणिप्राक्सृष्टेः प्रतिपेदिरे । तान्येव प्रतिपद्यन्तेसृज्यमानाःपुनःपुनः
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मे ऋतानृते । तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥
कल्पेष्वासेन्व्यतीतेषु रूपनामानि यानि च । तान्येवानागते काले प्रायशः प्रतिपेदिरे
तस्मात्तु नामरूपाणि तान्येव प्रतिपेदिरे । पुनः पुनस्ते कल्पेषु जायन्ते नामरूपतः ॥
ततःसर्गेह्यवष्टब्धेसिसृक्षोर्ब्रह्मणस्तु वै । प्रजास्ताध्यायतस्तस्यसत्याभिध्यायिनस्तदा
मिथुनानां सहस्रं तु सोऽसृजद्वैमुखात्तदा । जनास्तेह्युपपद्यन्ते सत्त्वोद्रिक्ताःसुचेतसः.
सहस्रमन्यद्वक्षस्तो मिथुनानांससर्ज ह । तेसर्वे रजसोद्रिक्ताः शुष्मिणश्चाप्यशुष्मिणः
सृष्ट्वा सहस्रमन्यत्तु द्वन्द्वानामूरुतः पुनः । रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ताईहाशीलास्तु ते स्मृताः
पद्भ्यां सहस्रमन्यत्तु मिथुनानांससर्ज ह । उद्रिक्तास्तमसा सर्वे निःश्रीकाह्यल्पतेजसः
ततोवै हर्षमाणास्तेद्वन्द्वोत्पन्नास्तुप्राणिनः । अन्योन्याद्धृच्छयाविष्टामैथुनायोपचक्रमुः

ततःप्रभृति कल्पेऽस्मिन्मिथुनोत्पत्तिरुच्यते ।
मासे(सि)मासे(स्या)र्तवं यद्यत्तत्तदासीद्धि योषिताम् ॥४२॥

तस्मात्तदा न सुषुवुः सेवितैरपि मैथुनैः । आयुषोऽन्ते प्रसूयन्ते मिथुनान्येवते सकृत्
कुटकाः कुविकाश्चैवउत्पद्यन्तेमुमूर्षिताः । ततःप्रभृतिकल्पेऽस्मिन्मिथुनानां हि संभव
ध्याते तु मनसा तासांप्रजानां जायते सकृत् । शब्दादिविषयः शुद्धःप्रत्येकंपञ्चलक्षण
इत्येवं मानसी पूर्वं प्राक्सृष्टिर्या प्रजापतेः । तस्यान्ववाये संभूता यैरिदं पूरितंजगत्
सरित्सरःसमुद्रांश्च सेवन्ते पर्वतानपि । तदा नात्यम्बुशीतोष्णा युगे तस्मिश्चरन्ति
पृथ्वीरसोद्भवंनामआहारंह्याहरन्ति वै।ताःप्रजाःकामचारिण्योमानसींसिद्धिमास्थिता-

धर्माधर्मौ न तास्वास्तां निर्विशेषाः प्रजास्तु ताः ।
तुल्यमायुः सुखं रूपं तासां तस्मिन्कृते युगे ॥४६॥

धर्माधर्मौ न तास्वास्तां कल्पादौ तु कृतेयुगे ।स्वेन स्वेनाधिकारेण जज्ञिरेतेकृतेयुगे
चत्वारितुसहस्राणिवर्षाणांदिव्यसंख्यया । आद्यंकृतयुगंप्राहुः संध्यानांतुचतुःशतम्
ततः सहस्रशस्तासु प्रजासुप्रथितास्वपि । न तासांप्रतिघातोऽस्ति न द्वंद्वंनापिचक्रम
पर्वतोदधिसेविन्यो ह्यनिकेताश्रयातु ताः । विशोकाः सत्त्वबहुला एकान्तसुखितप्रजा
तावैनिकामचारिण्योनित्यंमुदितमानसाः । पशवःपक्षिणश्चैव न तदाऽऽसन्सरीसृप
नोद्भिज्जानारकाश्चैव ते ह्यधर्मप्रसूतयः । नमूलफलपुष्पं च नाऽऽर्तवमृतवो न च ॥
सर्वकामसुखःकालोनात्यर्थं ह्युष्णशीतता । मनोभिलषिताःकामास्तासांसर्वत्र सर्व

उत्तिष्ठन्ति पृथिव्यां वै ताभिर्ध्याता रसोत्थिताः ।
बलवर्णकरी तासां सिद्धिः सा रोगनाशिनी ॥५७॥
असंस्कार्यैः शरीरैश्च प्रजास्ता स्थिरयौवनाः ।
तासां विशुद्धात्संकल्पाज्जायन्ते मिथुनाः प्रजाः ॥५८॥

समंजन्म च रूपं च म्रियन्ते चैव ताः समम् । तदा सत्यमलोभश्चक्षमा तुष्टिःसुखंद
निर्विशेषास्तु ताः सर्वा रूपायुःशीलचेष्टितैः । अबुद्धिपूर्वकं वृत्तं प्रजानांजायतेस्व
अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्मणोः शुभपापयोः । वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च न तदाऽऽसन्नसं
अनिच्छाद्वेषयुक्तास्ते वर्तयन्ति परस्परम् । तुल्यरूपायुषः सर्वा अधमोत्तमवर्जिताः
सुखप्राया ह्यशोकाश्च उत्पद्यन्ते कृते युगे । नित्यप्रहृष्टमनसो महासत्त्वा महाब

लाभालाभौनतास्त्वास्तांमित्रामित्रेप्रियाप्रिये। मनसा विषयस्तासांनिरीहाणांप्रवर्तते
न लिप्सन्तिहिताऽन्योन्यंनानुगृह्णन्ति चैव हि। ध्यानं परंकृतयुगेत्रेतायांज्ञानमुच्यते
प्रवृत्तं द्वापरे यज्ञं (ज्ञो) दानं कलियुगे वरम्। सत्त्वं कृतंरजस्त्रेता द्वापरं तु रजस्तमौ
कलौ तमस्तु विज्ञेयं युगवृत्तवशेन तु। कालः कृते युगे त्वेष तस्य संख्यां निबोधत

चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्।
संध्यांशौ तस्य दिव्यानि शतान्यष्टौ च संख्यया ॥६८॥

तदा तासां बभूवाऽऽयुर्न च क्लेशविपत्तयः। ततःकृतयुगे तस्मिन्संध्यांशे हिगतेतुवै
पादावशिष्टो भवति युगधर्मस्तु सर्वशः। संध्यायामप्यतीतायामन्तकाले युगस्य तु
पादतश्चावशिष्टे तु सन्ध्याधर्मो युगस्यतु। एवंकृते तुनिःशेषेसिद्धिस्त्वन्तर्दधेतदा॥
तस्यां च सिद्धौभ्रष्टायांमानस्यामभवत्ततः। सिद्धिरन्या युगेतस्मिंस्त्रेतायामन्तरेकृता

सर्गादौ या मयाऽष्टौ तु मानस्यो वै प्रकीर्तिताः।
अष्टौ ताः क्रमयोगेन(ण) सिद्धयो यान्ति संक्षयम् ॥७३॥

कल्पादौमानसीह्येषासिद्धिर्भवति सा कृते। मन्वन्तरेषुसर्वेषुचतुर्युगविभागशः ॥७४॥
वर्णाश्रमाचारकृतः कर्मसिद्धोद्भवः स्मृतः। संध्या कृतस्य पादेन संध्यापादेन चांशतः
कृतसंध्यांशका ह्येते त्रींस्त्रीन्पादान्परस्परान्। ह्रसन्ति युगधर्मैस्ते तपःश्रुतबलायुषैः
ततः कृतांशे क्षीणे तु बभूव तदनन्तरम्। त्रेतायां युगमन्यत्तुकृतांशमृषिसत्तमाः ॥७७
तस्मिन्क्षीणेकृतांशे तु तच्छिष्टासुप्रजास्विह। कल्पादौसंप्रवृत्तायास्त्रेतायाःप्रमुखेतदा
प्रणश्यति तदासिद्धिःकालयोगेन नान्यथा। तस्यां सिद्धौ प्रनष्टायामन्यासिद्धिरवर्तत
अपां सौक्ष्म्येप्रतिगतेतदामेघात्मना तु तौ। मेघेभ्यःस्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्जनम्
सकृदेव तया वृष्ट्यासंयुक्तेपृथिवीतले। प्रादुरासंस्तदा तासां वृक्षास्तु गृहसंस्थिताः
सर्वप्रत्युपभोगस्तु तासां तेभ्यः प्रजायते। वर्तयन्ति हि तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखेप्रजाः
ततः कालेनमहतातासामेवविपर्ययात्। रागलोभात्मकोभावस्तदाह्याकस्मिकोऽभवत्
यत्तद्भवति नारीणां जीवितान्ते तदाऽऽर्तवम्। तदा तद्वै न भवति पुनर्युगबलेन तु॥
तासां पुनः प्रवृत्तं तु मासे मासे तदार्तवम्। ततस्तेनैव योगेन वर्तता मिथुने तदा॥

तासां तत्कालभावित्वान्मासि मास्युपगच्छताम् ।
अकाले ह्यार्तवोत्पत्तिर्गर्भोत्पत्तिरजायत ॥ ८६ ॥
विपर्ययेण तासां तु तेनकालेन भाविना । प्रणश्यन्तिततःसर्वे वृक्षास्ते गृहसंस्थिता
ततस्तेषु प्रनष्टेषु विभ्रान्ता व्याकुलेन्द्रियाः ।
अभिध्यायन्ति तां सिद्धिं सत्याभिध्यायिनस्तदा ॥८८॥
प्रादुर्बभूवुस्तासां च वृक्षास्तेगृहसंस्थिताः । वस्त्राणि च प्रसूयन्तेफलान्याभरणानि
तेष्वेव जायते तासां गन्धवर्णरसान्वितम् । अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु।
तेनतावर्तयन्तिस्म मुखे त्रेतायुगस्य वै । हृष्टतुष्टास्तयासिद्ध्याप्रजावैविगतज्वरा
पुनः कालान्तरेणैव पुनर्लोभावृतास्तुताः । वृक्षांस्तान्पर्यगृह्णन्त मधुवामाक्षिकं बला
तासां तेनापचारेण पुनर्लोककृतेन वै । प्रनष्टा मधुना सार्धं कल्पवृक्षाः क्वचित्कचि
तस्यामेवाल्पशिष्टायां संध्याकालवशात्तदा । प्रावर्तन्ततदातासांद्वंद्वान्यभ्युत्थितानि
शीतवातातपैस्तीव्रैस्ततस्ता दुःखिता भृशम् ।
द्वंद्वैस्ताः पीड्यमानास्तु चक्रुरावरणानि च ॥ ९५ ॥
कृत्वा द्वंद्वप्रतीकारं निकेतानि हि भेजिरे । पूर्वं निकामचारास्ते अनिकेताश्रया भृश
यथायोग्यं यथाप्रीति निकेतेष्ववसन्पुनः । मरुधन्वसु निम्नेषु पर्वतेषु नदीषु च।
संश्रयन्ति च दुर्गाणि धन्वानंशाश्वतोदकम् । यथायोगं यथाकामं समेषु विषमेषु च
आरब्धास्ते निकेता वै(न्वै) कर्तुं शीतोष्णवारणम् ।
ततः संस्थापयामास खेटानि च पुराणि च ॥ ९६ ॥
ग्रामांश्चैव यथाभागंतथैवान्तःपुराणिच । तासामायामविष्कम्भान्संनिवेशान्तराणि
चक्रुस्तदायथाप्रज्ञंमित्वामित्वाऽऽत्मनोऽङ्गुलैः । मनोर्थानिप्रमाणानितदाप्रभृतिचक्रि
यथाङ्गुलप्रदेशांस्त्रीन्हस्तकिष्कुधनूंषि च । दश त्वङ्गुलपर्वाणि प्रदेशः संज्ञितस्तु तैः।
अष्टाङ्गुलः प्रदेशिन्या व्यासःप्रादेशउच्यते । तालःस्मृतोमध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामया
कनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वादशाङ्गुल उच्यते । रत्निरङ्गुलपर्वाणि संख्यया त्वेकविंशति
चतुर्विंशतिभिश्चैव हस्तःस्यादङ्गुलानितु । किष्कुःस्मृतो द्विरत्निस्तु द्विचत्वारिंशदङ्गुल

चतुर्हस्तं धनुर्दण्डो नालिकायुगमेव च । धनुःसहस्रे द्वे तत्र गव्यूतिस्तैर्विभाव्यते ॥
अष्टौ धनुःसहस्राणि योजनं तैर्निरुच्यते । एतेन योजनेनैव संनिवेशस्ततः कृतः॥१०७

चतुर्णामेव दुर्गाणां स्वसमुत्थानि त्रीणि तु ।
चतुर्थं कृत्रिमं दुर्गं तस्य वक्ष्याम्यहं विधिम् ॥ १०८ ॥

सौधोच्चवप्रप्राकारं सर्वतश्चातकावृतम् । तदेकं स्वस्तिकद्वारं कुमारीपुरमेव च ॥
स्रोतसीसंहतद्वारं निखातं पुनरेव च । हस्ताष्टौ च दश श्रेष्ठा नवाष्टौ वाऽपरे मताः ॥
खेटानां नगराणां च ग्रामाणां चैव सर्वशः । त्रिविधानांचदुर्गाणां पर्वतोदकबन्धनम्
त्रिविधानांचदुर्गाणांविष्कम्भायाममेव च । योजनानांच विष्कम्भमष्टभागार्धमायतम्
परमार्धार्धमायामं प्रागुदक्प्रवणं पुरम् । छिन्नकर्णं विकर्णं तु व्यञ्जनं कृतसंस्थितम् ॥
वृत्तं हीनं च दीर्घं च नगरं न प्रशस्यते । चतुरस्रार्जवं दिक्स्थं प्रशस्तं वै पुरं पुरम् ॥
चतुर्विंशतिराद्यं तु हस्तानष्टशतं परम् । अत्र मध्यं प्रशंसन्ति ह्रस्वोत्कृष्टविवर्जितम् ॥
अथ किष्कुशतान्यष्टौ प्राहुर्मुख्यं निवेशनम् । नगरादर्धविष्कम्भं खेटं ग्रामं ततो बहिः
नगराद्योजनं खेटं खेटाद्ग्रामोऽर्धयोजनम् । द्विक्रोशं परमा सीमाक्षेत्रसीमा चतुर्धनुः

विंशद्धनूंषि विस्तीर्णो दिशां मार्गस्तु तैः कृतः ।
विंशद्धनुर्ग्राममार्गः सीमामार्गो दशैव तु ॥ ११८ ॥

धनूंषि दश विस्तीर्णः श्रीमान्राजपथः स्मृतः । नृवाजिरथनागानामसंबाधः सुसंचरः
धनूंषिचैव चत्वारिशाखारथ्यास्तु तैःकृताः । गृहरथ्योपरथ्याश्च द्विकाश्चाप्युपरथ्यकाः
घण्टापथश्च तुष्पादस्त्रिपदं च गृहान्तरम् । वृत्तिमार्गास्त्वर्धपदं प्राग्वंशः पदिकःस्मृतः
अवस्करं परीवाहं पदमात्रं समन्ततः । कृतेषु तेषु स्थानेषु पुनश्चक्रुर्गृहाणि वै ॥१२२
यथा ते पूर्वमासन्वै वृक्षास्तुगृहसंस्थिताः । तथाकर्तुं समारब्धाश्चिन्तयित्वापुनःपुनः
वृक्षाश्चैव गताः शाखा न ताश्चैव परागताः । अत ऊर्ध्वंगताश्चान्याएवंतिर्यग्गताः पुरा

बुद्ध्वाऽन्विष्यंस्तथा न्यायो वृक्षशाखा यथा गताः ।
तथा कृतास्तु तैः शाखास्तस्माच्छालास्तु ताः स्मृताः ॥ १२५ ॥
एवं प्रसिद्धाः शाखाभ्यः शालाश्चैव गृहाणि च ।

तस्मात्ता वै स्मृताः शालाः शालात्वं चैव तासु तत् ॥ १२६ ॥

प्रसीदति मनस्तासु मनःप्रसादयन्तिताः । तस्माद्गृहाणिशालाश्चप्रासादाश्चैवसंज्ञिताः
कृत्वा द्वंद्वोपघातांस्तान्वार्तोपायमचिन्तयन् । नष्टेषु मधुना सार्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा
विषादव्याकुलास्तावैप्रजास्तृष्णाक्षुधात्मिकाः।ततःप्रादुर्बभौतासांसिद्धिस्त्रेतायुगेपुनः

वार्तार्थसाधिकाऽप्यन्या वृत्तिस्तासां हि कामतः ।
तासां वृष्ट्युदकानीह यानि निम्नैर्गतानि तु ॥ १३० ॥

वृष्ट्या तदभवत्स्रोतःखातानिनिम्नगाःस्मृताः । एवंनद्यःप्रवृत्तास्तु द्वितीये वृष्टिसर्जने
ये परस्तादपांस्तोकाआपन्नाःपृथिवीतले । अपां भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तासुचाभवन्
पुष्पमूलफलिन्यस्तु ओषध्यस्ताः प्रजज्ञिरे । अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश
ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षा गुल्माश्च जज्ञिरे । प्रादुर्भावश्च त्रेतायां वार्तायामौषधस्य तु
तेनौषधेन वर्तन्ते प्रजास्त्रेतायुगे तदा । ततः पुनरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वशः ॥
अवश्यंभाविनाऽर्थेन त्रेतायुगवशेन तु । ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान् ॥
वृक्षान्गुल्मौषधीश्चैव प्रसह्यतुयथाबलम् । सिद्धात्मानस्तुयेपूर्वंव्याख्याताःप्राक्कृतेमया
ब्रह्मणामानवास्ते वा उत्पन्नायोजनादिह । शान्ताश्चशुष्मिणश्चैवकर्मिणोदुःखिनस्तदा
ततः प्रवर्तमानास्ते त्रेतायां जज्ञिरे पुनः । ब्राह्मणाःक्षत्त्रियावैश्याःशूद्राद्रोहिजनास्तथा
भाविताः पूर्वजातीषु कर्मभिश्चशुभाशुभैः । इतस्तेभ्योबलाये तु सत्यशीला ह्यहिंसकाः

वीतलोभा जितात्मानो निवसन्ति स्म तेषु वै ।
प्रतिगृह्णन्ति कुर्वन्ति तेभ्यश्चान्येऽल्पतेजसः ॥ १४१ ॥

तेषांकर्माणिकुर्वन्तितेभ्यश्चैवाबलास्तुये । परिचर्यास्व(सु)वर्तन्तेतेभ्यश्चान्येऽल्पतेजसः
एवं विप्रतिपन्नेषु प्रपन्नेषु परस्परम् । तेन दोषेण तेषां ता ओषध्यो मिषतां तदा ॥
प्रनष्टा ह्रियमाणा वै मुष्टिभ्यां सिकता यथा । अग्रसद्भूर्युगबलाद्ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश
फलं गृह्णन्ति पुष्पैश्च पुष्पं पत्रैश्चयाःपुनः । ततस्तासु प्रनष्टासुविभ्रान्तास्ताःप्रजास्तदा
स्वयंभुवं प्रभुं जग्मुःक्षुधाविष्टाःप्रजापतिम् । वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्त आदौ त्रेतायुगस्यतु
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवाञ्ज्ञात्वा तासां मनीषितम् । युक्तं प्रत्यक्षदृष्टेन दर्शनेन विचार्य च

ग्रस्ताः पृथिव्या ओषध्यो ज्ञात्वा प्रत्यदुहत्पुनः ।
कृत्वा वत्सं सुमेरुं तु दुदोह पृथिवीमिमाम् ॥१४८॥

दुग्धेयं गौस्तदातेनवीजानिपृथिवीतले । जज्ञिरे तानि बीजानिग्राम्यारण्यास्तुताःपुनः
ओषध्यः फलपाकान्ताःसप्तसप्तदशास्तु ताः । व्रीहयश्च यवाश्चैवगोधूमाअणवस्तिलाः

प्रियंगवो ह्युदाराश्च कारूषाश्च सवी(ती)नकाः ।
माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः सकुलत्थकाः ॥ १५१ ॥

आढक्यश्चणकाश्चैवसप्तसप्तदशाः स्मृताः । इत्येताओषधीनांतुग्राम्याणांजातयःस्मृताः
ओषध्यो यज्ञियाश्चैवग्राम्यारण्याश्चतुर्दश । व्रीहयःसयवामाषा गोधूमा अणवस्तिलाः
प्रियंगुसप्तमा ह्येतेअष्टमीतुकुलत्थिका । श्यामाकास्त्वथ नीवाराजर्तिलाः सगवेधुकाः
कुरुविन्दा वेणुयवास्तथामर्कटकाश्च ये । ग्राम्यारण्याःस्मृता ह्येता ओषध्यस्तुचतुर्दश
उत्पन्नाःप्रथमाह्येता आदौ त्रेतायुगस्य तु । अफालकृष्टाओषध्योग्राम्यारण्यास्तुसर्वशः
वृक्षा गुल्मलता वल्ली वीरुधस्तृणजातयः । मूलैः फलैश्च रोहिण्यो गृह्णन्पुष्पैश्चजायते

पृथ्वी दुग्धा तु बीजानि यानि पूर्वं स्वयंभुवा ।
ऋतुपुष्पफलास्ता वै ओषध्यो जज्ञिरे त्विह ॥ १५८ ॥

यदाप्रसृष्टाओषध्यो न प्ररोहन्ति ताः पुनः । ततः स तासांवृत्त्यर्थं वार्तोपायंचकार ह
ब्रह्मास्वयंभूर्भगवान्दृष्ट्वासिद्धिं तु कर्मजाम् । ततःप्रभृत्यथौषध्यः कृष्टपच्यास्तुजज्ञिरे

संसिद्धायां तु वार्तायां ततस्तासां स्वयंभुवा ।
मर्यादाः स्थापयामास यथारब्धाः परस्परम् ॥१६१॥

येवैपरिग्रहीतारस्तासामासन्विधात्मिकाः । इतरेषांकृतत्राणाःस्थापयामासक्षत्त्रियान्
उपतिष्ठन्ति ये तान्वै यावन्तो निर्भयास्तथा । सत्यंब्रह्म यथा भूतं ब्रुवन्तोब्राह्मणाश्चते

ये चान्येऽप्यबलास्तेषां वैशसं कर्म संस्थिताः ।
कीनाशा नाशयन्ति स्म पृथिव्यां प्रागतन्द्रिताः ॥१६४॥

वैश्यानेवतुतानाहुः कीनाशान्वृत्तिसाधकान् । शोचन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासुयेरताः
निस्तेजसोऽल्पवीर्याश्चशूद्रांस्तानब्रवीत्तु सः । तेषांकर्माणिधर्मांश्चब्रह्मातुव्यदधात्प्रभुः

संस्थितौ प्राकृतायांतुचातुर्वर्णस्यसर्वशः। पुनःप्रजास्तु ता मोहात्तान्धर्मान्तानपालयन्
वर्णधर्मैरजीवन्त्यो व्यरुध्यन्त परस्परम्। ब्रह्मा तमर्थं बुद्ध्वा तु याथातथ्येन वैप्रभुः
क्षत्त्रियाणां बलंदण्डंयुद्धमाजीवमादिशत्। याजनाध्यापनं चैव तृतीयं च प्रतिग्रहम्
ब्राह्मणानांविभुस्तेषांकर्माण्येतान्यथाऽदिशत्।पाशुपाल्यंवाणिज्यंचकृषिंचैवविशांददौ
शिल्पाजीवं भृतिंचैव शूद्राणांव्यदधात्प्रभुः। सामान्यानितुकर्माणिब्रह्मक्षत्त्रविशांपुनः
यजनाध्ययनं दानंसामान्यानि तु तेषु च। कर्माजीवं ततो दत्त्वा तेभ्यश्चैवपरस्परम्

लोकान्तरेषु स्थानानि तेषां सिद्ध्याऽददात्प्रभुः।
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम्॥ १७३॥

स्थानमैन्द्रंक्षत्त्रियाणांसंग्रामेष्वपलायिनाम्।वैश्यानांमारुतंस्थानंस्वधर्ममुपजीविनाम्
गान्धर्वंशूद्रजातीनांप्रतिचारेणतिष्ठताम्।स्थानान्येतानिवर्णानांव्यत्याचारवतांस्वयम्
ततःस्थितेषुवर्णेषुस्थापयामासचाऽऽश्रमान्।गृहस्थोब्रह्मचारित्वंवानप्रस्थंसभिक्षुकम्
आश्रमांश्चतुरो ह्येतान्पूर्वमास्थापयत्प्रभुः। वर्णकर्माणि ये केचित्तेषामिह न कुर्वते॥
कुतःकर्माक्षितिंप्राहुराश्रमस्थानवासिनः। ब्रह्मातान्स्थापयामासआश्रमान्नाम नामतः
निर्देशार्थं ततस्तेषां ब्रह्माधर्मानभाषत। प्रस्थानानि च तेषां वै यमांश्च नियमांश्च ह॥
चातुर्वर्ण्यात्मकःपूर्वंगृहस्थश्चाऽऽश्रमःस्मृतः। त्रयाणामाश्रमाणांच प्रतिष्ठायोनिरेवच
यथाक्रमंप्रवक्ष्यामियमैश्चनियमैश्चते। दाराग्नयोऽथाऽऽतिथेय इज्याश्राद्धक्रियाः प्रजाः
इत्येष वै गृहस्थस्य समासाद्धर्मसंग्रहः। दण्डी च मेखली चैव ह्यधःशायी तथाजटी
गुरुशुश्रूषणं भैक्ष्यं विद्यार्थे ब्रह्मचारिणः। चीरपत्राजिनानि स्युर्धान्यमूलफलौषधम्
उभे संध्ये वगाहश्च होमश्चारण्यवासिनाम्। आसन्नमुसलेभैक्षमस्तेयं शौचमेव च॥
अप्रमादोऽव्यवायश्च दयाभूतेषु च क्षमा। अक्रोधो गुरुशुश्रूषा सत्यं च दशमंस्मृतम्
दशलक्षणको ह्येष धर्मः प्रोक्तः स्वयंभुवा। भिक्षोर्व्रतानि पञ्चात्र पञ्चैवोपव्रतानि च
आचारशुद्धिर्विनयः शौचं चाप्रतिकर्म च। सम्यग्दर्शनमित्येवं पञ्चैवोपव्रतान्यपि॥

ध्यानं समाधिर्मनसेन्द्रियाणां ससागरैर्भैक्ष्यमथोपगम्य।
मौनं पवित्रोपचितैर्विमुक्तिः परिव्रजो धर्ममिमं वदन्ति॥ १८८॥

सर्वे ते श्रेयसे प्रोक्ता आश्रमा ब्रह्मणा स्वयम्।
सत्यार्जवं तपः क्षान्तिर्योगेज्या दमपूर्विका ॥१८६॥

वेदाः साङ्गाश्च यज्ञाश्च व्रतानि नियमाश्च ये। न सिध्यन्ति प्रदुष्टस्य भावदोषउपागते
बहिः कर्माणिसर्वाणिप्रसिध्यन्ति कदाच न। अन्तर्भावप्रदुष्टस्यकुर्वतोऽपिपराक्रमान्
सर्वस्वमपि यो दद्यात्कलुषेणान्तरात्मना। न तेन धर्मभाक्स स्याद्भावएवात्रकारणम्
एवं देवा सपितर ऋषयो मनवस्तथा। तेषां स्थानममुष्मिंस्तु संस्थितानां प्रचक्षते
अष्टाशीतिसहस्राणिऋषीणामूर्ध्वरेतसाम्। स्मृतं तु तेषांतत्स्थानंतद्देवगुरुवासिनाम्

सप्तर्षीणां तु यत्स्थानं स्मृतं तद्वै दिवौकसाम्।
प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मणः क्षमम् ॥१९५॥
योगीनाममृतं स्थानं नानाध्वीनां न विद्यते।
स्थानान्याश्रमिणां तानि ये स्वधर्मे व्यवस्थिताः ॥१९६॥

चत्वार एते पन्थानो देवयाना विनिर्मिताः। ब्रह्मणा लोकतन्त्रेण आद्ये मन्वन्तरेभुवि
पन्थानो देवयानाय तेषां द्वारं रविः स्मृतः। तथैव पितृयानानां चन्द्रमा द्वारमुच्यते
एवंवर्णाश्रमाणां वै प्रविभागे कृते तदा। यदाऽस्य न व्यवर्तन्तप्रजावर्णाश्रमात्मिकाः

ततोऽन्या मानसीः सोऽथ त्रेतामध्येऽसृजत्प्रजाः।
आत्मनः स्वशरीराच्च तुल्याश्चैवाऽऽत्मना तु वै ॥२००॥

तस्मिंस्त्रेतायुगेत्वाद्ये मध्यंप्राप्तेक्रमेण तु। ततोऽन्या मानसीस्तत्रप्रजाः स्रष्टुंप्रचक्रमे

ततः सत्त्वरजोद्रिक्ताः प्रजाः सोऽथासृजत्प्रभुः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां वार्तायाश्चैव साधिकाः ॥२०२॥

देवाश्च पितरश्चैव ऋषयो मनवस्तथा। युगानुरूपा धर्मेण यैरिमा विचिताः प्रजाः।
उपस्थितेतदातस्मिन्प्रजाधर्मे स्वयंभुवः। अभिदध्यौप्रजाःसर्वाः नानारूपास्तुमानसी
पूर्वोक्ता या मयातुभ्यंजनलोकंसमाश्रिताः। कल्पेऽतीते तु ते ह्यासन्देवाद्यास्तुप्रजाइह
ध्यायतस्तस्य ताः सर्वाः संभूत्यर्थमुपस्थिताः। मन्वन्तरक्रमेणेह कनिष्ठे प्रथमे मताः

ख्यात्याऽनुबन्धैस्तैस्तैस्तु सर्वार्थैरिह भाविताः।

कुशलाकुशलप्रायैः कर्मभिस्तैः सदा प्रजाः ॥२०७॥

तत्कर्मफलशेषेण उपष्टब्धाः प्रजज्ञिरे। देवासुरपितृत्वैश्च पशुपक्षिसरीसृपैः ॥२०८॥

वृक्षनारकिकीटत्वैस्तैस्तैर्भावैरुपस्थिताः। आधीनार्थं प्रजानां च आत्मनोवैविनिर्ममे

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे चतुराश्रमविभागकथनं नामाष्टमोऽध्यायः

नवमोऽध्यायः

देवादिसृष्टिकथनम्

सूत उवाच

ततोऽभिध्यायतस्तस्यजज्ञिरेमानसी(स)प्रजाः। तच्छरीरसमुत्पन्नैःकार्यैस्तैःकारणैःसह

क्षेत्रज्ञाः समवर्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः। ततो देवासुरपितॄन्मानवं च चतुष्टयम् ॥

सिसृक्षुरम्भांस्येतांश्चस्वात्मनासमयूयुजत्। युक्तात्मनस्ततस्तस्यततोमात्रास्वयंभुवा

तमभिध्यायतः सर्गं प्रयत्नोऽभूत्प्रजापतेः। ततोऽस्य जघनात्पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुताः

असुः प्राणः स्मृतो विप्रैस्तज्जन्मानस्ततोऽसुराः।

यया सृष्टाः सुरास्तन्वा तां तनुं स व्यपो(पौ)हत ॥५॥

साऽपविद्धातनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत। सा तमोबहुलायस्मात्ततोरात्रिस्त्रियामिका

आवृतास्तमसा रात्रौ प्रजास्तस्मात्स्वयंभुवः। दृष्ट्वा सुरांस्तु देवेशस्तनुमन्यामपद्यत

अव्यक्तांसत्त्वबहुलांततस्तांसोऽभ्ययूयुजत्। ततस्तांयुञ्जतस्तस्यप्रियमासीत्प्रभोःकिल

ततोमुखेसमुत्पन्नादीव्यतस्तस्यदेवताः। यतोऽस्यदीव्यतो जातास्तेन देवाःप्रकीर्तिताः

धातुर्दिवीति यः प्रोक्तः क्रीडायां स विभाव्यते।

तस्यां तन्वां तु दिव्यायां जज्ञिरे तेन देवताः ॥१०॥

देवान्सृष्ट्वाऽथ देवेशस्तनुमन्यामपद्यत। उत्सृष्टा सा तनुस्तेन सद्यो ह्स्तादजायत ॥

तस्मादहःकर्मयुक्तोदेवताःसमुपासते । सत्त्वमात्रात्मिकां देवस्ततोऽन्यांसोऽभ्यपद्यत
पितृवन्मन्यमानस्तान्पुत्रान्प्राध्यायत प्रभुः । पितरोह्युपपक्षाभ्यांरात्र्यह्नोरन्तराऽसृजत्
तस्मात्तेपितरोदेवाः पुत्रत्वंतेन तेषु तत् । यया सृष्टास्तु पितरस्तांतनुंसव्यपो(पौ)हत

साऽपविद्धा तनुस्तेन सद्यः संध्या प्र(ह्य)जायत ।
तस्मादहस्तु देवानां रात्रिर्या साऽऽसुरी स्मृता॥ १५॥

तयोर्मध्ये तु वै पैत्री या तनुः सागरीयसी । तस्माद्देवासुराःसर्वे ऋषयो मनवस्तथा
ते युक्तास्तामुपासन्ते ब्रह्मणोमध्यमांतनुम् । ततोऽन्यां स पुनर्ब्रह्मा तनुं वै प्रत्यपद्यत
रजोमात्रात्मिकायांतुमनसासोऽसृजत्प्रभुः। रजःप्रायात्ततःसोऽथमानसानसृजत्सुतान्

मनसस्तु ततस्तस्य मानसा(स्यो) जज्ञिरे प्रजाः ।
दृष्ट्वा पुनः प्रजाश्चापि स्वां तनुं तामपो(पौ)हत ॥१६॥

साऽपविद्धातनुस्तेनज्योत्स्नासद्यस्त्वजायत।तस्माद्भवन्तिसंहृष्टाज्योत्स्नायाउद्भवेप्रजाः
इत्येतास्तनवस्तेन ह्यपविद्धा महात्मना । सद्योरात्र्यहनी चैव संध्याज्योत्स्नाचजज्ञिरे

ज्योत्स्ना संध्या तथाऽहश्च सत्त्वमात्रात्मकं स्वयम् ।
तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मात्त्रियामिका ॥२२॥

तस्माद्देवादिव्यतन्वा दृष्टाःसृष्टामुखात्तु वै । यस्मात्तेषांदिवाजन्मबलिनस्तेन ते दिवा
तन्वा यदसुरान्रात्रौ जघनादसृजत्प्रभुः । प्राणेभ्यो रात्रिजन्मानोह्यसह्यानिशि तेन ते
एतान्येव भविष्याणां देवानामसुरैः सह । पितॄणां मानवानाञ्च अतीतानागतेषु वै ॥
मन्वन्तरेषुसर्वेषुनिमित्तानिभवन्तिहि । ज्योत्स्नारात्र्यहनीसंध्याचत्वार्याभासितानिवै

भान्ति यस्मात्ततोऽभा(म्भा)सि भाशब्दोऽयं मनीषिभिः ।
व्याप्तिदीप्त्यां निगदितः पुनश्चाऽऽह प्रजापतिः ॥२७॥
सोऽम्भांस्येतानि दृष्ट्वा तु देवदानवमानवान् ।
पितॄंश्च वाऽसृजत्सोऽन्यानात्मनो विबुधान्पुनः ॥२८॥

तामुत्कृत्य तनुं कृत्स्नांततोऽन्यामसृजत्प्रभुः । मूर्तिं रजस्तमःप्रायां पुनरेवाभ्ययूयुज
अन्धकारेक्षुधाविष्टस्ततोऽन्यांसृजतेपुनः। तेनसृष्टाःक्षुधात्मानस्तेऽम्भांस्यादातुमुद्यत

अम्भांस्येतानिरक्षामउक्तवन्तश्चतेषुच । राक्षसास्तेस्मृतालोकेक्रोधात्मानोनिशाचराः
येऽब्रुवन्क्षिणुमोऽम्भांसि तेषां हृष्टाःपरस्परम् । तेन ते कर्मणायक्षागुह्यकाःक्रूरकर्मिणः
रक्षणे पालने चापि धातुरेष विभाव्यते । य एष क्षितिधातुर्वै क्षयणे संनिरुच्यते ॥

तान्दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशाः शीर्यन्त(?) धीमतः ।
शीतोष्णाश्चोच्छ्रिता ह्यूर्ध्वं तदाऽरोहन्त तं प्रभुम् ॥३४॥
हीना मच्छिरसो व्याला यस्माच्चैवापसर्पिताः ।
व्यालात्मानः स्मृता व्याला हीनत्वादहयःस्मृताः ॥३५॥

पन्नत्वात्पन्नगाश्चैव सर्पाश्चैवापसर्पिणः । तेषां पृथिव्यां निलयाः सूर्याचन्द्रमसोरधः
तस्यक्रोधोद्भवोयोऽसावग्निगर्भसुदारुणः । सतुसर्पसहोत्पन्नानाविवेश विषात्मकान्

सर्पान्सृष्ट्वा ततः क्रोधात्क्रोधात्मा(त्म)नो विनिर्ममे ।
वर्णेन कपिशेनोग्रास्ते भूताः पिशिताशनाः ॥३८॥

भूतत्वात्तेस्मृताभूताःपिशाचाःपिशिताशनात् । धयन्तोगास्ततस्तस्यगन्धर्वाजज्ञिरेतदा
धयतीत्येष धातुर्वै पानार्थे परिपठ्यते । पिबन्तोजज्ञिरे गास्तु गन्धर्वास्तेन ते स्मृताः
अष्टास्वेतासुसृष्टासुदेवयोनिषुसप्रभुः । ततःस्वच्छन्दतोऽन्यानिवयांसिवयसोऽसृजत्
छाद्यतस्तानि च्छन्दांसि वयसोऽपिवयांस्यपि । शून्यान्दृष्ट्वातुदेवोवैसृजत्पक्षिगणानपि
मुखतोऽजान्ससर्जाथवक्षसश्चवयोऽसृजत् ।गाश्चैवाथोदराद्ब्रह्मापार्श्वाभ्यांचविनिर्ममे

पद्भ्यां चाश्वान्समातङ्गाञ्शरभान्गवयान्मृगान् ।
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव ताश्चान्याश्चैव जातयः ॥४४॥

ओषध्यः फलमूलानि रोमतस्तस्य जज्ञिरे । एवं पश्वोषधीःसृष्ट्वान्ययुञ्जत्सोऽध्वरेप्रभुः
तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखेतदा । गौरजः पुरुषोमेषोह्यश्वोऽश्वतरगर्दभौ ॥
एतान्ग्राम्यान्पशूनाहुरारण्यांश्च निबोधत । श्वापदा द्विखुरो हस्तीवानरः पक्षिपञ्चमाः
उन्दकाः पशवः सृष्टाः सतमास्तुसरीसृपाः । गायत्रंवरुणं चैवत्रिवृत्सौम्यं रथन्तरम्
अग्निष्टोमं च यज्ञानांनिर्ममेप्रथमान्मुखात् । छन्दांसित्रैष्टुभं कर्म स्तोमं पञ्चदशंतथा
बृहत्साममथोक्थंचदक्षिणात्सोऽसृजन्मुखात् । सामानिजगतीछन्दःस्तोमंपञ्चदशंतथा

वैरूप्यमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात् । एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ॥५१
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् । विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥
वयांसिचससर्जाऽऽदौकल्पस्यभगवान्प्रभुः । उच्चावचानिभूतानिगात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे
ब्रह्मणस्तु प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः । सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्वं देवासुरपितॄन्प्रजाः ॥

ततः सृजति भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
यक्षान्पिशाचान्गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसां गणान् ॥५५॥

नरकिन्नररक्षांसि वयःपशुमृगोरगान् । अव्ययं च व्ययं चैव यदिदं स्थाणुजङ्गमम् ॥
तेषां ये यानि कर्माणिप्राक्सृष्ट्यांप्रतिपेदिरे । तान्येवप्रतिपद्यन्तेसृज्यमानाः पुनःपुनः
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते । तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥
महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु । विनियोगं च भूतानां धातैवव्यदधात्स्वयम्
केचित्पुरुषकारं तु प्राहुः कर्म च मानवाः । दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं दैवचिन्तकाः
पौरुषं कर्म दैवं च फलवृत्तिस्वभावतः । न चैकं न पृथग्भावमधिकं न तयोर्विदुः ॥
एतदेवं(कं)चनैकंचनचोभेनचवाऽप्युभे । कर्मस्थान्विषयान्ब्रूयुः सत्त्वस्थाःसमदर्शिनः
नाम रूपं च भूतानां कृतानां च प्रपञ्चनम् । वेदशब्देभ्यएवाऽऽदौ निर्ममे समहेश्वरः
ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः । शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवास्यदधातिसः
यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये । दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावायुगादिषु
एवंविधासु सृष्टासुब्रह्मणाऽव्यक्तजन्मना । शर्वर्यन्ते प्रदृश्यन्तेसिद्धिमाश्रित्यमानसीम्

एवं भूतानि सृष्टानि चराणि स्थावराणि च ।
यदाऽस्य ताः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्धन्त धीमतः ॥६७॥

अथान्यान्मानसान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत् । भृगुंपुलस्त्यंपुलहं क्रतुमाङ्गिरसंतथा
मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसम् । नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः
तेषां ब्रह्मात्मकानांवैसर्वेषांब्रह्मवादिनाम् । ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसंभवम् ॥
संकल्पं चैव धर्मं च पूर्वेषामपि पूर्वजः । अग्रे ससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान्
सनन्दनं ससनकं विद्वांसं च सनातनम् । सनत्कुमारं च विभुं सनकं च सनन्दनम्

न ते लोकेषु सज्जन्ते निरपेक्षाः सनातनाः । सर्वे ते ह्यागतज्ञानावीतरागा विमत्सराः
तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकवृत्तानुकारणात् । हिरण्यगर्भो भगवान्परमेष्ठी ह्यचिन्तयत् ॥
तस्य रोषात्समुत्पन्नः पुरुषोऽर्कसमद्युतिः । अर्धनारीनरवपुस्तेजसा ज्वलनोपमः ॥
सर्वं तेजोमयंजातमादित्यसमतेजसम् । विभजाऽऽत्मानमित्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत

एवमुक्त्वा द्विधा भूतः पृथक्स्त्री पुरुषः पृथक् ।
स चैकादशधा जज्ञे अर्धमात्मानमीश्वरः ॥७७॥

तेनोक्तास्ते महात्मनः सर्व एव महात्मना । जगतो बहुलीभावमधिकृत्य हितैषिणः
लोकवृत्तान्तहेतोर्हि प्रयतध्वमतन्द्रिताः । विश्वं विश्वस्य लोकस्यस्थापनायहितायच
एवमुक्तास्तु रुरुदुर्दुद्रुवुश्च समन्ततः । रोदनाद्द्रवणाच्चैव रुद्रा नाम्नेतिविश्रुताः ॥
यैर्हि व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् । तेषामनुत्तरा लोके सर्वलोकपरायणाः
नैकनागायुतबलाविक्रान्ताश्चगणेश्वराः । तत्र या सा महाभागाशङ्करस्यार्धकायिनी ॥

प्रागुक्ता न मया तुभ्यं स्त्री स्वयम्भोर्मुखोद्गता ।
कायार्धं दक्षिणं तस्याः शुक्लं वामं तथाऽसितम् ॥८३॥
आत्मानं विभजस्वेति सोक्ता देवी स्वयंभुवा ।
सा तु प्रोक्ता द्विधा भूता शुक्ला कृष्णा च वै द्विजाः ॥ ८४ ॥
तस्या नामानि वक्ष्यामि शृणुध्वं सुमसाहिताः ।
स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती ॥८५॥

अपर्णा चैकपर्णा च तथा स्यादेव पाटला । उमा हैमवती षष्ठी कल्याणीचैव नामतः
ख्यातिःप्रज्ञामहाभागालोकेगौरीतिविश्रुता। विश्वरूपमथाऽऽर्यायाःपृथग्देहविभावनात्
शृणु संक्षेपतस्तस्य यथावदनुपूर्वशः । प्रकृतिर्नियता रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी ॥८८
कालरात्रिर्महामाया रैवती भूतनायिका । द्वापरान्तविकारेषु देव्यानामानि मे शृणु
गौतमी कौशिकी आर्याचण्डीकात्यायनीसती । कुमारीयादवीदेवीवरदाकृष्णपिङ्गला
बर्हिर्ध्वजा शूलधारा परमब्रह्मचारिणी । माहेन्द्री चेन्द्रभगिनी वृषकन्यैकवाससी ॥
अपराजिताबहुभुजाप्रगल्भासिंहवाहिनी । एकानंसा(शा)दैत्यहनीमाया महिषमर्दिनी

अमोघाविन्ध्यनिलयाविक्रान्तागणनायिका। देवीनामविकाराणिइत्येतानियथाक्रमम्
भद्रकाल्यास्तवोक्तानि देव्यानामानि तत्त्वतः। ये पठन्तिनरास्तेषां विद्यते नपराभवः
अरण्येप्रान्तरेवाऽपिपुरेवाऽपिगृहेऽपि वा। रक्षामेतां प्रयुञ्जीतजलेवाऽपिस्थलेऽपिवा

व्याघ्रकुम्भीरचौरेभ्यो भूतस्थाने विशेषतः।
आधिष्वपि च सर्वासु(र्वेषु) देव्या नामानि कीर्तयेत् ॥९६॥

अर्भकग्रहभूतैश्चपूतनामातृभिः सदा। अभ्यर्दितानां बालानां रक्षामेतां प्रयोजयेत् ॥
महादेवी कुले द्वे तु प्रज्ञा श्रीश्च प्रकीर्त्यते। आभ्यांदेवीसहस्राणियैर्व्याप्तमखिलंजगत्
साऽसृजद्व्यवसायं तु धर्मभूतसुखावहम्। संकल्पंचैवकल्पादौ जज्ञिरेऽव्यक्तयोनितः
मानसश्च रुचिर्नाम विज्ञेयोब्रह्मणः सुतः। प्राणात्स्वादसृजद्दक्षंचक्षुर्भ्यां च मरीचिनम्
भृगुस्तु हृदयाज्जज्ञे ऋषिः सलिलजन्मनः। शिरसोऽङ्गिरसंचैव श्रोत्रादत्रिस्तथैव च॥
पुलस्त्यं च तथोदानाद्व्यानाच्च पुलहंपुनः। समानजं वशिष्ठं तु अपानान्निर्ममे क्रतुम्
अभिमानात्मकं भद्रं निर्ममे नीललोहितम्। इत्येते ब्रह्मणःपुत्राःप्राणजाद्वादश स्मृताः
इत्येते मानसाः पुत्रा विज्ञेया ब्रह्मणःसुताः। भृग्वादयस्तु ये सृष्टा नवैते ब्रह्मवादिनः
गृहमेधिनः पुराणास्ते धर्मस्तैः प्राक्प्रवर्तितः। द्वादशैते प्रवर्तन्ते सह रुद्रेण वै प्रजाः॥
ऋभुः सनत्कुमारस्तु द्वावेतावूर्ध्वरेतसौ। पूर्वोत्पन्नौ पुरा तेभ्यः सर्वेषामपि पूर्वजौ॥
व्यतीतेप्रथमेकल्पे पुराणे लोकसाधकौ। वैराजेतावुभौलोकेतेजःसंक्षिप्यचाऽऽस्थितौ
तावुभौ योगधर्माणावारोप्याऽऽत्मानमात्मनि। प्रजाधर्मंचकामंचवर्तयेतां महौजसौ
यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमार इति चोच्यते। तस्मात्सनत्कुमारोऽयमितिनामस्यकीर्तितम्
तेषां द्वादश ते वंशा दिव्या देवगुणान्विताः। क्रियावन्तःप्रजावन्तोमहर्षिभिरलंकृताः
इत्येष करणोद्भूतो लोकान्स्रष्टुंस्वयम्भुवः। महदादिविशेषान्तोविकारःप्रकृतेःस्वयम्
चन्द्रसूर्यप्रभालोको ग्रहनक्षत्रमण्डितः। नदीभिश्च समुद्रैश्च पर्वतैश्च समावृतः॥ ११२
पुरैश्च विविधाकारैः प्रीतैर्जनपदैस्तथा। तस्मिन्ब्रह्मवनेऽव्यक्ते ब्रह्मा चरति शर्वरीम् ॥
अव्यक्तबीजप्रभवस्तस्यैवानुग्रहोत्थितः। बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियाङ्कुरकोटरः ॥११४
महाभूतप्रशाखश्च विशेषैः पत्रवांस्तथा। धर्माधर्मसुपुष्पस्तु सुखदुःखफलोदयः॥११५

आजीवः सर्वभूतानामयं वृक्षः सनातनः । एतद्ब्रह्मवनं चैव ब्रह्मवृक्षस्य तस्य ह ॥
अव्यक्तं कारणं यत्तु नित्यं सदसदात्मकम् । इत्येषोऽनुग्रहः सर्गो ब्रह्मणःप्राकृतस्तु यः
मुख्यादयस्तु षट्सर्गा वैकृता बुद्धिपूर्वकाः ।
त्रैकाले समवर्तन्त ब्रह्मणस्तेऽभिमानिनः ॥ ११८ ॥
सर्गाः परस्परस्याथकारणंतेबुधैःस्मृताः । दिव्यौसुपर्णौ सयुजौ सशाखौ पटविद्रुमौ
एकस्तु यो द्रुमं वेत्ति नान्यः सर्वात्मनस्ततः ॥ ११९ ॥
द्यौर्मूर्धानं यस्य विप्राः स्तुवन्ति खं नाभिर्वैःचन्द्रसूर्यौ च नेत्रे ।
दिशः श्रोत्रे चरणौ चास्य भूमिः सोऽचिन्त्यात्मा सर्वभूतप्रसूतिः ॥१२०॥
वक्त्राद्यस्य ब्राह्मणाः सम्प्रसूता यद्वक्षस्तः क्षत्रियाः पूर्वभागे ।
वैश्याश्चोरोर्यस्य पद्भ्यां च शूद्राः सर्वे वर्णा गात्रतः सम्प्रसूताः ॥ १२१ ॥
महेश्वरः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम् । अण्डाज्जज्ञे पुनर्ब्रह्मायेनलोकाःकृतास्त्विमे
इति श्रीमहापुराणेवायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे देवादिसृष्टिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९

दशमोऽध्यायः

मन्वन्तरवर्णनम्

सूत उवाच

एवं भूतेषु लोकेषु ब्रह्मणा लोककर्तृणा । यदा ता न प्रवर्तन्ते प्रजाः केनाऽपिहेतुना ॥
तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदा प्रभृति दुःखितः । ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम्
अथाऽऽत्मनि समस्राक्षीत्तमोमात्रां नियामिकाम् ।
राजसत्वं पराजित्य वर्तमानं स धर्मतः ॥ ३ ॥
तप्यते तेन दुःखेन शोकं चक्रे जगत्पतिः । तमश्च व्यनुदत्तस्माद्रजस्तमसमावृणोत् ॥

ततमः प्रतिवृत्तं वै मिथुनं स व्यजायत । अधर्माच्चरणाज्जज्ञे हिंसा शोकादजायत ॥
ततस्तस्मिन्समुद्भूते मिथुने चरणात्मनि । ततश्च भगवानासीत्प्रीतश्चैवमशिश्रियत् ॥

स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपो(पौ) हदभास्वराम् ।
द्विधाऽकरोत्स तं देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ॥ ७ ॥

अर्धेन नारीसातस्य शतरूपाव्यजायत । प्राकृतां भूतधात्रीं तां कामान्वै सृष्टवान्विभुः
सा दिवं पृथिवीं चैव महिम्नाव्याप्यधिष्ठिता । ब्रह्मणःसातनुःपूर्वादिवमावृत्य तिष्ठति
या त्वर्धात्सृजते नारी शतरूपा व्यजायत । सा देवी नियुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्
भर्तारं दीप्तयशसं पुरुषं प्रत्यपद्यत । स वै स्वायम्भुवः पूर्वं पुरुषो मनुरुच्यते ॥ ११ ॥
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते । लब्ध्वा तु पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥
तया स रमते सार्धं तस्मात्सा रतिरुच्यते । प्रथमः सम्प्रयोगः स कल्पादौ समवर्तत
विराजमसृजद्ब्रह्मा सोऽभवत्पुरुषोविराट् । स सम्राट्सासरूपात्तुवैराजस्तुमनुःस्मृतः
स वैराजः प्रजासर्गः स सर्गे पुरुषोमनुः । वैराजात्पुरुषाद्वीराच्छतरूपा व्यजायत ॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ।
कन्ये द्वे च महाभागे याभ्यां जाताः प्रजास्त्विमाः ॥१६॥

देवी नाम्ना तथाऽऽकूतिः प्रसूतिश्चैव ते शुभे । स्वायंभुवःप्रसूतिं तु दक्षायव्यसृजत्प्रभुः
प्राणो दक्षस्तु विज्ञेयः संकल्पो मनुरुच्यते । रुचेः प्रजापतेश्चैव आकूतिं प्रत्यपादयत्
आकूत्यां मिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम् । यज्ञश्च दक्षिणा चैव यमकौसंबभूवतुः
यज्ञस्यदक्षिणायां च पुत्राद्वादश जज्ञिरे । यामा इति समाख्यातादेवाःस्वायंभुवेऽन्तरे
यमस्य पुत्रायज्ञस्यतस्माद्यामास्तुतेस्मृताः । अजिताश्चैव शूकाश्चगणौद्वौब्रह्मणःस्मृतौ
यामाः पूर्वं परिक्रान्तायतःसंज्ञादिवौकसः । स्वायंभुवसुतायां तु प्रसूत्यांलोकमातरः
तस्यां कन्याश्चतुर्विंशद्दक्षस्त्वजनयत्प्रभुः । सर्वास्ताश्चमहाभागाःसर्वाःकमललोचनाः
योगपत्न्यश्चताःसर्वाःसर्वास्तायोगमातरः । सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यःसर्वाविश्वस्यमातरः

श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ।
बुद्धिर्लज्जा वपुःशान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी ॥२५॥

पत्न्यर्थे प्रतिजग्राहधर्मोदाक्षायणीः प्रभुः । द्वाराण्येतानिचैवास्य विहितानिस्वयंभुवा

ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः ।

ख्यातिः सत्यथ संभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा ॥२७॥

संनतिश्चानसूया च ऊर्जास्वाहा स्वधा तथा । तास्ततः प्रत्यपद्यन्तपुनरन्ये महर्षयः॥

रुद्रो भृगुर्मरीचिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः । पुलस्त्योऽत्रिर्वशिष्ठश्च पितरोऽग्निस्तथैवच

सतीं भवाय प्रायच्छत्ख्यातिं च भृगवे तथा । मरीचये च संभूतिं स्मृतिमङ्गिरसेददौ

प्रीतिं चैव पुलस्त्याय क्षमा वै पुलहाय च । क्रतवे संनतिं नाम अनसूयां तथाऽत्रये।

ऊर्जां ददौवसिष्ठायस्वाहांवैह्यग्नये ददौ । स्वधांचैवपितृभ्यस्तुतास्वपत्यानिवक्ष्यते(?)

एते सर्वे महाभागाःप्राज्ञाःस्वानुष्ठिताः स्थिताः । मन्वन्तरेषुसर्वेषु यावदाभूतसंप्लवम्

श्रद्धाकामंविजज्ञेवैदर्पोलक्ष्मीसुतःस्मृतः । धृत्यास्तु नियमःपुत्रस्तुष्ट्याःसंतोषउच्यते

पुष्ट्यालाभःसुतश्चापिमेधापुत्रःश्रुतस्तथा । क्रियायास्तुनयः प्रोक्तो दण्डः समयएवच

बुद्धेर्बोधः सुतश्चापिअप्रमादश्चतावुभौ । लज्जाया विनयः पुत्रोव्यवसायो वयोः सुतः

क्षेमः शान्तिसुतश्चापि सुखं सिद्धेर्व्यजायत । यशः कीर्तेः सुतश्चापि इत्येतेधर्मसूनवः

कामस्य हर्षःपुत्रो वै देव्यांरत्यांव्यजायत । इत्येष वै सुखोदर्कः सर्गो धर्मस्यकीर्तितः

जज्ञे हिंसा त्वधर्माद्वै निकृतिश्चानृतावुभौ । निकृत्यनृतयोर्जज्ञे भयं नरक एव च ॥३६

माया च वेदना चापिमिथुनद्वयमेतयोः । भयाज्जज्ञेऽथ सा माया मृत्युंभूतापहारिणम्

वेदनायास्ततश्चापिदुःखंजज्ञेऽथरौरवात् । मृत्योर्व्याधिर्जराशोकःक्रोधोऽसूयाचजज्ञिरे

दुःखान्तराः स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः ।

नैषां भार्याऽस्ति पुत्रो वा सर्वे ह्यनिधनाः स्मृताः ॥४२॥

इत्येष तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः । प्रजाः सृजेति व्यादिष्टोब्रह्मणा नीललोहितः

सोऽभिध्याय सतीं भार्यां निर्ममे ह्यात्मसंभवान् ।

नाधिकान्न च हीनांस्तान्मानसानात्मनः समान् ॥४४॥

सहस्रं हि सहस्राणामसृजत्कृत्तिवाससाम् । तुल्याश्चैवाऽऽत्मनः सर्वेरूपतेजोबलश्रुतैः

पिङ्गलान्संनिषङ्गांश्चसकपर्दान्विलोहितान् । विवासान्हरिकेशांश्चदृष्टिघ्नांश्च कपालिनः

बहुरूपान्विरूपांश्च विश्वरूपांश्च रूपिणः । रथिनो वर्मिणश्चैव चर्मिणश्च वरूथिनः ॥
सहस्रशतबाहूंश्च दिव्यान्भौमान्तरिक्षगान् ।स्थूलशीर्षानष्टदंष्ट्रानुद्द्विजिह्वांस्त्रिलोचनान्
अन्नादान्पिशितादांश्च आज्यपान्सोमपांस्तथा ।
मेढ्रपांश्चातिकायांश्च शितिकण्ठोग्रमन्यवः ॥ ४६ ॥
सोपासङ्गतलत्रांश्च धन्विनोह्युपवर्मिणः । आसीनान्धावतश्चैवजृम्भिनश्चैव धिष्ठितान्
अध्यापिनोऽथ जपतो युञ्जतो ध्यायतस्तथा । ज्वलतो वर्षतश्चैव द्योतमानान्प्रधूपितान्
बुद्धान्बुद्धतमांश्चैव ब्रह्मिष्ठाञ्शुभदर्शनान् । नीलग्रीवान्सहस्राक्षान्सर्वांश्चाथ क्षपाचरान्
अदृश्यान्सर्वभूतानां महायोगान्महौजसः । रुदतो द्रवतश्चैव एवं युक्तान्सहस्रशः ॥५३
अयातयामानसृजद्रुद्ररूपान्सुरोत्तमान् । ब्रह्मा दृष्ट्वाऽब्रवीदेतान्मास्राक्षीरीदृशीः प्रजाः ॥
स्रष्टव्या नाऽऽत्मनस्तुल्या प्रजा नैवाधिकास्त्वया ।
अन्याः सृज त्वं भद्रं ते प्रजा वै मृत्युसंयुताः ॥५५॥
नाऽऽरप्स्यन्तेहिकर्माणिप्रजाविगतमृत्यवः । एवमुक्तोऽब्रवीदेनंनाहं मृत्युसमन्विताः
प्रजाः स्रक्ष्यामि भद्रन्ते स्थितोऽहं त्वं सृज प्रजाः ।
एते ये वै मया सृष्टा विरूपा नीललोहिताः ॥५७॥
सहस्राणां सहस्रं तु आत्मनोपमनिश्चिताः । एते देवाभविष्यन्ति रुद्रा नाममहाबलाः
पृथिव्यामन्तरिक्षे च रुद्रनाम्ना प्रतिश्रुताः । शतरुद्रसमाम्नाताभविष्यन्तीह यज्ञियाः ॥
यज्ञभाजो भविष्यन्ति सर्वे देवयुगैः सह । मन्वन्तरेषु ये देवा भविष्यन्तीहच्छन्दजाः
तैःसार्धमिज्यमानास्तेस्थास्यन्तीह(हा)युगक्षयात् ।एवमुक्तस्तदाब्रह्मामहादेवेनधीमता
प्रत्युवाच तदा भीमं हृष्यमाणः प्रजापतिः । एवं भवतु भद्रं ते यथा ते व्याहृतंप्रभो
ब्रह्मणा समनुज्ञाते सदा सर्वमभूत्किल । ततः प्रभृति देवेशो न प्रासूयत वै प्रजाः ॥
ऊर्ध्वरेताः स्थितः स्थाणुर्यावदाभूतसंप्लवम् ।
यस्माच्चोक्तं स्थितोऽस्मीति ततः स्थाणुरिति स्मृतः ॥६४॥
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः । स्रष्टृत्वमात्मसंबोधस्त्वधिष्ठातृत्वमेव च
अथ यानि दशैतानि नित्यं तिष्ठन्ति शंकरे । सर्वान्देवानृषींश्चैव समेतानसुरैः सह ॥

अत्येति तेजसा देवो महादेवस्ततः स्मृतः । अत्येति देवानैश्वर्याद्बलेन च महासुरान्

ज्ञानेन च मुनीन्सर्वान्योगाद्भूतानि सर्वशः ॥६७॥

ऋषय ऊचुः

योगं तपश्च सत्यं च धर्मं चापि महामुने । माहेश्वरस्य ज्ञानस्य साधनं च प्रचक्ष्वनः

येनयेन च धर्मेणगतिंप्राप्स्यन्ति वै द्विजाः । तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामियोगंमाहेश्वरं प्रभो

वायुरुवाच

पञ्च धर्मा पुराणे तु रुद्रेण समुदाहृताः । माहेश्वर्यं यथा प्रोक्तं रुद्रैरक्लिष्टकर्मभिः ॥

आदित्यैर्वसुभिः साध्यैरश्विभ्यांचैवसर्वशः । मरुद्भिर्भृगुभिश्चैव ये चान्येविबुधालयाः

यमशुक्रपुरोगैश्च पितृकालान्तकैस्तथा । एतैश्चान्यैश्च बहुभिस्ते धर्माः पर्युपासिताः

ते वै प्रक्षीणकर्माणःशारदाम्बरनिर्मलाः । उपासतेमुनिगणाःसंधायाऽऽत्मानमात्मनि

गुरुप्रियहिते युक्ता गुरूणां वै प्रियेप्सवः । विमुच्य मानुषं जन्म विहरन्ति च देववत्

महेश्वरेण ये प्रोक्ताःपञ्चधर्माःसनातनाः । तान्सर्वान्क्रमयोगेन(ण)उच्यमानान्निबोधत

प्राणायामस्तथाध्यानंप्रत्याहारोऽथधारणा। स्मरणंचैवयोगेऽस्मिन्पञ्चधर्माःप्रकीर्तिताः

तेषां क्रमविशेषेण लक्षणं कारणं तथा । प्रवक्ष्यामि तथा तत्त्वं यथा रुद्रेण भाषितम्

प्राणायामगतिश्चापि प्राणस्याऽऽयाम उच्यते ।

स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मन्दो मध्योत्तमस्तथा ॥७८॥

प्राणानांचनिरोधस्तुसप्राणायामसंज्ञितः । प्राणायामप्रमाणंतु मात्रा वै द्वादशस्मृताः

मन्दोद्वादशमात्रस्तु उद्घाताद्द्वादश स्मृताः । मध्यमश्चद्विरुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रिकः

उत्तमस्तत्त्रिरुद्घातोमात्राःषट्त्रिंशदुच्यते । स्वेदकम्पविषादानां जननोह्युत्तमःस्मृतः

इत्येतत्त्रिविधं प्रोक्तंप्राणायामस्यलक्षणम् । प्रमाणं च समासेन लक्षणं च निबोधत

सिंहो वा कुञ्जरोवाऽपितथाऽन्योवामृगो वने । गृहीतःसेव्यमानस्तुमृदुः समुपजायते

तथा प्राणोदुराधर्षःसर्वेषामकृतात्मनाम् । योगतःसेव्यमानस्तु स एवाभ्यासतोव्रजेत्

स चैव हि यथा सिंहः कुञ्जरो वाऽपि दुर्बलः । कालान्तरवशाद्योगाद्दम्यतेपरिमर्दनात्

परिधाय मनो मन्दं वश्यत्वं चाधिगच्छति । परिधाय मनोदेवं तथा जीवति मारुतः

वश्यत्वं हि यथावायुर्गच्छतेयोगमस्थितः । तदास्वच्छन्दतः प्राणं नयतेयत्र चेच्छति
यथा सिंहो गजो वाऽपि वश्यत्वादवतिष्ठते । अभयाय मनुष्याणां मृगेभ्यःसंप्रवर्तते
यथा परिचितश्चायं वायुर्वै विश्वतोमुखः । परिध्यायमानः संरुद्धःशरीरे किल्बिषंदहेत्
प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मनः । सर्वे दोषाःप्रणश्यन्ति सत्त्वस्थश्चैवजायते
तपांसि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्चये । सर्वयज्ञफलं चैव प्राणायामश्च तत्समः
अब्बिन्दुंयःकुशाग्रेणमासिमासिसमश्नुते । संवत्सरशतंसाग्रं प्राणायामं च तत्समम्

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण विषयान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ६३ ॥

तस्माद्युक्तः सदायोगीप्राणायामपरोभवेत् । सर्वपापविशुद्धात्मा परं ब्रह्माधिगच्छति

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे पाशुपतयोगे मन्वन्तरादिवर्णनं
नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

प्राणायामस्य शान्त्यादिप्रयोजनानां निरूपणम्

वायुरुवाच

एकं महान्तं दिवसमहोरात्रमथापि वा । अर्धमासं तथा मासमयनाब्दयुगानि च ॥
महायुगसहस्राणि ऋषयस्तपसि स्थिताः । उपासते महात्मानःप्राणं दिव्येन चक्षुषा
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्राणायामप्रयोजनम् । फलं चैवविशेषेणयथाऽऽह भगवान्प्रभुः

प्रयोजनानि चत्वारि प्राणायामस्य विद्धि वै ।
शान्तिः प्रशान्तिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च चतुष्टयम् ॥ ४ ॥

घोराकारशिवानां तु कर्मणां फलसंभवम् । स्वयंकृतानि कालेनइहामुत्र च देहिनाम्
पितृमातृप्रदुष्टानां ज्ञातिसंबन्धिसंकरैः । क्षपणं हि कषायाणां पापानां शान्तिरुच्यते

लोभमानात्मकानां हि पापानामपि संयमः । इहामुत्र हितार्थायप्रशान्तिस्तप उच्यते
सूर्येन्दुग्रहताराणां तुल्यस्तुविषयोभवेत् । ऋषीणां च प्रसिद्धानां ज्ञानविज्ञानसंपदाम्
अतीतानागतानां च दर्शनंसाम्प्रतस्य च । बुद्धस्य समतांयान्तिदीप्तिः स्यात्तपउच्यते
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च मनः पञ्च च मारुतान् । प्रसादयति येनासौप्रसाद इतिसंज्ञितः
इत्येष धर्मः प्रथमः प्राणायामश्चतुर्विधः । संनिकृष्टफलो ज्ञेयः सद्यःकालप्रसादजः ॥
अत उर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य लक्षणम् । आसनं च यथातत्त्वंयुञ्जतोयोगमेवच
ओङ्कारं प्रथमं कृत्वा चन्द्रसूर्यौ नमस्य च । आसनं स्वस्तिकं कृत्वापद्ममर्धासनंतथा
समजानुरेकजानुरुत्तानः सुस्थितोऽपि च । समो दृढासनो भूत्वा संहृत्यचरणावुभौ
संवृतास्योऽवबद्धाक्ष उरो विष्टभ्य चाग्रतः । पार्ष्णिभ्यां वृषणौछाद्यतथा प्रजननंयतः
किंचिदुन्नामितशिराःशिरोग्रीवांतथैवच । संप्रेक्ष्यनासिकाग्रंस्वंदिशश्चानवलोकयन् ॥

तमः प्रच्छाद्य रजसा रजः सत्त्वेन च्छादयेत् ।
ततः सत्त्वस्थितो भूत्वा योगं युञ्जन्समाहितः ॥१७॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च मनः पञ्च समारुतान् । निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमेत्

यस्तु प्रत्याहरेत्कामान्कूर्मोऽङ्गानीव सर्वतः ।
तथाऽऽत्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥१८॥

पूरयित्वा शरीरं तु सबाह्याभ्यन्तरं शुचिः । आकण्ठनाभियोगेन प्रत्याहारमुपक्रमेत्
कलामात्रस्तु विज्ञेयो निमेषोन्मेष एव च । तथा द्वादशमात्रस्तु प्राणायामोविधीयते
धारणाद्वादशायामो योगो वै धारणाद्वयम् । तथा वै योगयुक्तश्च ऐश्वर्यं प्रतिपद्यते
वीक्षते परमात्मानं दीप्यमानं स्वतेजसा । प्राणायामेन युक्तस्यविप्रस्य नियतात्मनः
सर्वे दोषाः प्रणश्यन्ति सत्त्वस्थश्चैव जायते । एवं वै नियताहारः प्राणायामपरायणः
जित्वाजित्वासदाभूमिमारोहेत्तुसदा मुनिः । अजिताहि महाभूमिर्दोषानुत्पादयेद्बहून्
विवर्धयति संमोहं न रोहेदजितां ततः । नालेन तु यथा तोयं यन्त्रेणैव बलान्वितः
आपिबेत प्रयत्नेन तथा वायुं जितश्रमः । नाभ्यां च हृदये चैव कण्ठे उरसिचाऽऽनने
नासाग्रेतु तथा नेत्रे भ्रुवोर्मध्येऽथ मूर्धनि । किंचिदूर्ध्वं परस्मिंश्च धारणापरमास्मृता

प्राणापानसमारोधात्प्राणायामः स कथ्यते। मनसो धारणाच्चैव धारणेतिप्रकीर्तिता
निवृत्तिर्विषयाणांतुप्रत्याहारस्तु संज्ञितः। सर्वेषांसमवाये तु सिद्धिःस्याद्योगलक्षणा

तयोत्पन्नस्य योगस्य ध्यानं वै सिद्धिलक्षणम्।
ध्यानयुक्तः सदा पश्येदात्मानं सूर्यचन्द्रवत् ॥३१॥

सत्त्वस्यानुपपत्तौ तु दर्शनं तु न विद्यते। अदेशकालयोगस्य दर्शनं तु न विद्यते ॥
अग्न्यभ्यासे वनेवाऽपि शुष्कपर्णचये तथा। जन्तुव्याप्तेश्मशानेवाजीर्णगोष्ठेचतुष्पथे
सशब्दे सभये वाऽपिचैत्यवल्मीकसंचये। उदपाने तथानद्यां न चाऽऽध्मातःकदाचन
क्षुधाविष्टास्तथाऽप्रीता न च व्याकुलचेतसः। युञ्जीत परमं ध्यानंयोगीध्यानपरःसदा
एतान्दोषान्विनिश्चित्यप्रमादाद्योयुनक्ति वै। तस्यदोषाःप्रकुप्यन्तिशरीरे विघ्नकारकाः
जडत्वं बधिरत्वं च मूकत्वंचाधिगच्छति। अन्धत्वंस्मृतिलोपश्च जरा रोगस्तथैवच
एते दोषाः प्रकुप्यन्तिअज्ञानाद्योयुनक्ति वै। तस्माज्ज्ञानेनशुद्धेनयोगीयुञ्जेत्समाहितः

अप्रमत्तः सदा चैव न दोषान्प्राप्नुयात्क्वचित्।
तेषां चिकित्सां वक्ष्यामि दोषाणां च यथाक्रमम् ॥३६॥
यथा गच्छति ते दोषाः प्राणायामसमुत्थिताः।
स्निग्धां यवागूमत्युष्णां भुक्त्वा तत्रावधारयेत् ॥४०॥

एतेन क्रमयोगेन(ण)वातगुल्मंप्रशाम्यति। गु(उ)दावर्तप्रतीकारमिदंकुर्याच्चिकित्सितम्
भुक्त्वादधियवागूं वावायुरूर्ध्वंततो व्रजेत्। वायुग्रन्थिततोभित्त्वावायुदेशे प्रयोजयेत्
तथापि न विशेषःस्याद्धारणामूर्ध्निधारयेत्। युञ्जानस्य तनुंतस्यसत्त्वस्थस्यैवदेहिनः

गु(उ)दावर्तप्रतीघाते एतत्कुर्याच्चिकित्सितम्।
सर्वगात्रप्रकम्पेन(ण) समारब्धस्य योगिनः ॥ ४४ ॥

इमां चिकित्सांकुर्वीततयासम्पद्यते सुखी। मनसा पर्वतं किंचिद्विष्टम्भीकृत्य धारयेत्
उरोद्घातउरःस्थानंकण्ठदेशे च धारयेत्। त्वचोऽवघातेतांवाचिवाधिर्येश्रोत्रयोस्तथा
जिह्वास्थाने तृषार्तस्तु अग्नेःस्नेहांश्चतन्तुभिः। फलंवैचिन्तयेद्योगीततःसम्पद्यते सुखी

क्षये कुष्ठे सकीलासे धारयेत्सर्वसात्त्विकीम्।

यस्मिन्यस्मिन्नजोदेशे तस्मिन्युक्तो विनिर्दिशेत् ॥ ४८ ॥

योगोत्पन्नस्य विप्र(घ्न)स्य इदं कुर्याच्चिकित्सितम् ।

वंशकीलेन मूर्धानं धारयान(ण)स्यं ताडयेत् ॥ ४९ ॥

मूर्ध्नि कीलंप्रतिष्ठाप्यकाष्ठंकाष्ठेनताडयेत् । भयभीतस्यसासंज्ञाततःप्रत्यागमिष्यति
अथवा लुप्तसंज्ञस्य हस्ताभ्यांतत्रधारयेत् । प्रतिलभ्यततःसंज्ञां धारणां मूर्ध्नि धारयेत्

स्निग्धमल्पञ्च भुञ्जीत ततः सम्पद्यते सुखी ।

अमानुषेण सत्त्वेन यदा बुध्यति योगवित् ॥५२॥

दिवं च पृथिवीं चैव वायुमग्निं च धारयेत् । प्राणायामेन तत्सर्वंदह्यमानं वशी भवेत्
अथाऽपि प्रविशेद्देहं ततस्तंप्रतिषेधयेत् । ततः संस्तभ्ययोगेन धारयान(ण)स्य मूर्धनि
प्राणायामाग्निना दग्धं तत्सर्वं विलयंव्रजेत् । कृष्णसर्पापराधं तु धारयेद्धृदयोदरे ॥
महोजनस्तपःसत्यंहृदिकृत्वातुधारयेत । विषस्य तु फलं पीत्वा विशल्यां धारयेत्ततः
सर्वतः सनगां पृथ्वीं कृत्वामनसिधारयेत् । हृदि कृत्वासमुद्रांश्चतथा सर्वाश्च देवताः

सहस्रेण घटानाञ्च युक्तः स्नायीत योगवित् ।

उदके कण्ठमात्रे तु धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ॥५८॥

प्रतिस्रोतोविषाविष्टोधारयेत्सर्वगात्रिकीम् । शीर्णोऽर्कपत्रपुटकैःपिबेद्वल्मीकमृत्तिकाम्
चिकित्सितविधिर्ह्येष विश्रुतो योगनिर्मितः । व्याख्यातस्तु समासेनयोगदृष्टेनहेतुना
ब्रुवतो लक्षणं विद्धि विप्रस्य कथयेत्क्वचित् । अथापि कथयेन्मोहात्तद्विज्ञानं प्रलीयते

तस्मात्प्रवृत्तिर्योगस्य न वक्तव्या कथञ्चन ॥ ६२ ॥

सत्त्वं तथाऽऽरोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रभा सुस्वरसौम्यता च ।

गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिः प्रथमा शरीरे ॥ ६३ ॥

आत्मानं पृथिवीं चैव ज्वलन्तीं यदि पश्यति ।

कृत्वाऽन्यं विशते चैव विद्यात्सिद्धिमुपस्थिताम् ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे पाशुपतयोगो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

———

द्वादशोऽध्यायः

योगोपसर्गनिरूपणम्

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपसर्गा यथा तथा। प्रादुर्भवन्ति ये दोषा दृष्टतत्त्वस्य देहिनः मानुष्यान्विविधान्कामान्कामयेतऋतुंस्त्रियः। विद्यादानफलंचैवउपसृष्टस्तुयोगवित् अग्निहोत्रं हविर्यज्ञमेतत्प्रतपनं तथा। मायाकर्म धनं स्वर्गमुपसृष्टस्तु काङ्क्षति ॥३॥ एषु कर्मसु युक्तस्तु सोऽविद्यावशमागतः। उपसृष्टंतुजानीयाद्बुद्ध्याचैवविसर्जयेत् नित्यं ब्रह्मपरोयुक्त उपसर्गात्प्रमुच्यते। जितप्रत्युपसर्गस्य जितश्वासस्य देहिनः ॥५॥ उपसर्गाः प्रवर्तन्ते सात्त्वराजसतामसाः। प्रतिभा श्रवणे चैव देवानां चैव दर्शनम् भ्रमावर्तश्च इत्येते सिद्धिलक्षणसंज्ञिताः। विद्याकाव्यं तथा शिल्पं सर्ववाचाकृतानितु विद्यार्थाश्चोपतिष्ठन्तिप्रभावस्यैवलक्षणम्।शृणोतिशब्दाञ्श्रोतव्यान्योजनानांशतादपि सर्वज्ञश्च विधिज्ञश्च योगी चोन्मत्तवद्भवेत्। यक्षराक्षसगन्धर्वान्वीक्षते दिव्यमानुषान् वेत्ति तांश्च महायोगी उपसर्गस्य लक्षणम्। देवदानवगन्धर्वानृषींश्चापि तथा पितॄन् प्रेक्षते सर्वतश्चैव उन्मत्तं तं विनिर्दिशेत्। भ्रमेण भ्राम्यतेयोगीचोद्यमानोऽन्तरात्मना भ्रमेण भ्रान्तबुद्धेस्तु ज्ञानं सर्वं प्रणश्यति। वार्ता नाशयतेचित्तंचोद्यमानोऽन्तरात्मना वर्तनाक्रान्तबुद्धेस्तु सर्वं ज्ञानं प्रणश्यति। प्रावृत्य मनसा शुक्लं पटं वा कम्बलं तथा ततस्तुपरमंब्रह्मक्षिप्रमेवानुचिन्तयेत्। तस्माच्चैवाऽऽत्मनोदोषांस्तूपसर्गानुपस्थितान् परित्यजेत मेधावी यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः। ऋषयो देवगन्धर्वा यक्षोरगमहासुराः उपसर्गेषु संयुक्ता आवर्तन्तेपुनः पुनः। तस्माद्युक्तः सदायोगीलब्धाहारोजितेन्द्रियः तथासुसूक्ष्मेषुधारणां मूर्ध्नि धारयेत्। ततस्तु योगयुक्तस्यजितनिद्रस्ययोगिनः उपसर्गाः पुनश्चान्ये जायन्ते प्राणसंज्ञकाः। पृथिवीं धारयेत्सर्वांततश्चापो ह्यनन्तरम् ततोऽग्निं चैव सर्वेषामाकाशं मन एव च। ततः परां पुनर्बुद्धिं धारयेद्यततो यती ॥

सिद्धीनां चैव लिङ्गानि दृष्ट्वा दृष्ट्वा परित्यजेत्। पृथ्वीं धारयमाणस्यमहीसूक्ष्माप्रवर्तते आत्मानंमन्यतेनित्यंपृथ्वीगन्धश्च जायते। अपोधारयमाणस्य आपःसूक्ष्माभवन्तिहि शीता रसाः प्रवर्तन्ते सूक्ष्मा ह्यमृतसंनिभाः। तेजो धारयमाणस्य तेजः सूक्ष्मं प्रवर्तते आत्मानं मन्यते तेजस्तद्भावमनुपश्यति। वायुं धारयमाणस्य वायुः सूक्ष्मः प्रवर्तते॥ आत्मानंमन्यते वायुंवायुवन्मण्डलं भ्रमेत्। आकाशंधारयमाणस्यव्योम सूक्ष्मंप्रवर्तते पश्यते मण्डलं सूक्ष्मंघोषश्चास्य प्रवर्तते। आत्मानंमन्यते नित्यं वायुः सूक्ष्मः प्रवर्तते तथा मनो धारयतो मनः सूक्ष्मं प्रवर्तते। मनसा सर्वभूतानां मनस्तु विशते हि सः

बुद्ध्या बुद्धिं यदा युञ्जेत्तदा विज्ञाय बुध्यते।
एतानि सप्त सूक्ष्माणि विदित्वा यस्तु योगवित्॥ २७॥

परित्यजतिमेधावी स बुद्ध्यापरमं व्रजेत्। यस्मिन्यस्मिंश्च संयुक्तो भूत ऐश्वर्यलक्षणे तत्रैव सङ्गं भजते तेनैव प्रविनश्यति। तस्माद्विदित्वासूक्ष्माणि संसक्तानि परस्परम् परित्यजतियोबुद्ध्यास परं प्राप्नुयाद्द्विजः। दृश्यन्तेहिमहात्मानऋषयोदिव्यचक्षुषः संसक्ताःसूक्ष्मभावेषुतेदोषास्तेषु संज्ञिताः। तस्मान्ननिश्चयःकार्यः सूक्ष्मेष्विहकदाचन ऐश्वर्याज्जायतेरागोविरागं ब्रह्म चोच्यते। विदित्वा सप्तसूक्ष्माणिषडङ्गं च महेश्वरम्

प्रधानं विनियोगज्ञः परं ब्रह्माऽधिगच्छति॥३२॥
सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥३३॥

नित्यं ब्रह्मधनो युक्त उपसर्गैः प्रमुच्यते। जितश्वासोपसर्गस्य जितरागस्ययोगिनः एका बहिःशरीरेऽस्मिन्धारणासार्वकामिकी। विशेद्यदाद्विजोयुक्तो यत्रयत्रार्पयेन्मनः भूतान्याविशते वाऽपित्रैलोक्यंचापि कम्पयेत्। एतयाप्रविशेद्देहंहित्वादेहं पुनस्त्विह

मनो द्वारं हि योगानामादित्यं च विनिर्दिशेत्।
आदानादिक्रियाणां तु आदित्य इति चोच्यते॥३७॥

एतेन विधिना योगी विरक्तः सूक्ष्मवर्जितः। प्रकृतिं समतिक्रम्य रुद्रलोके महीयते॥ ऐश्वर्यगुणसंप्राप्तं ब्रह्मभूतं तु तं प्रभुम्। देवस्थानेषु सर्वेषु सर्वतस्तु निवर्तते॥३६॥

पैशाचेन पिशाचांश्च राक्षसेन च राक्षसान् । गान्धर्वेण चगन्धर्वान्कौबेरेणकुबेरजान्
इन्द्रमैन्द्रेणस्थानेनसौम्यंसौम्येनचैव हि । प्रजापतिं तथा चैवप्राजापत्येन साधयेत् ॥
ब्राह्मं ब्राह्मेन(ण) चाप्येवमुपामन्त्रयते प्रभुम् । तत्र सक्तस्तु उन्मत्तस्तस्मात्सर्वंप्रवर्तते

नित्यं ब्रह्मपरो युक्तः स्थानान्येतानि वै त्यजेत् ।
असज्जमानः स्थानेषु द्विजः सर्वगतो भवेत् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहापुराणेवायुप्रोक्तेउपोद्धातपादेयोगोपसर्गनिरूपणंनाम द्वादशोऽध्यायः १२

त्रयोदशोऽध्यायः

योगैश्वर्यनिरूपणम्

वायुरुवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि ऐश्वर्यगुणविस्तरम् । येन योगविशेषेण सर्वलोकानतिक्रमेत्
तत्राष्टगुणमैश्वर्यं योगिनां समुदाहृतम् । तत्सर्वं क्रमयोगेन(ण) उच्यमानंनिबोधत
अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च । प्राकाम्यं चैव सर्वत्र ईशित्वं चैवसर्वतः
वशित्वमथ सर्वत्र यत्र कामावसायिता । तच्चापि विविधं ज्ञेयमैश्वर्यं सार्वकामिकम्
सावद्यं निरवद्यं च सूक्ष्मं चैव प्रवर्तते । सावद्यं नाम यत्तत्त्वं पञ्चभूतात्मकंस्मृतम् ॥
निरवद्यं तथा नाम पञ्चभूतात्मकं स्मृतम् । इन्द्रियाणि पुनश्चैव अहंकारश्च वै स्मृतम्
तत्र सूक्ष्मप्रवृत्तस्तु पञ्चभूतात्मकं पुनः । इन्द्रियाणि मनश्चैव बुद्ध्यहंकारसंज्ञितः ॥
तथा सर्वमयं चैव आत्मस्था ख्यातिरेव च । संयोग एवं त्रिविधः सूक्ष्मेष्वेवप्रवर्तते
पुनरष्टगुणस्यापि तेष्वेवाथ प्रवर्तते । तस्य रूपं प्रवक्ष्यामियथाऽऽहभगवान्प्रभुः ॥ ६
त्रैलोक्येसर्वभूतेषु जीवस्यानियतः स्मृतः । अणिमा च यथाव्यक्तंसर्वं तत्र प्रतिष्ठितम्
त्रैलोक्ये सर्वभूतानांदुष्प्राप्यं समुदाहृतम् । तच्चापि भवति प्राप्यंप्रथमंयोगिनांबलात्

लम्बनं प्लवनं योगे रूपमस्य सदा भवेत् । शीघ्रगंसर्वभूतेषु द्वितीयं तत्पदं स्मृतम् १२
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां प्राप्तिः प्राकाम्यमेव च ।
महिमा चापि यो यस्मिस्तृतीयो योग उच्यते ॥ १३ ॥
त्रैलोक्येसर्वभूतेषुत्रैलोक्यमगमंस्मृतम् । प्रकामान्विषयान्भुङ्क्ते न च प्रतिहतःक्वचित्
त्रैलोक्ये सर्वभूतानां सुखदुःखे प्रवर्तते । ईशोभवति सर्वत्र प्रविभागेन योगवित् १५
वश्यानि चैव भूतानि त्रैलोक्ये सचराचरे । भवन्ति सर्वकार्येषुइच्छतो न भवन्ति च
यत्र कामावसायित्वंत्रैलोक्येसचराचरे । इच्छया चेन्द्रियाणि स्युर्भवन्तिनभवन्तिच
शब्दः स्पर्शो रसोगन्धोरूपंचैव मनस्तथा । प्रवर्ततेऽस्यचेच्छातो न भवन्तितथेच्छया
न जायते न म्रियते भिद्यते न च च्छिद्यते । न दह्यते न मुह्येत हीयते न च लिप्यते
न क्षीयते न क्षरति न खिद्यति कदाचन । क्रियते चैव सर्वत्र तथा विक्रियते न च ॥
अगन्धरसरूपस्तु स्पर्शशब्दविवर्जितः । अवर्णो ह्यस्वरश्चैव तथा वर्णस्य कर्हिचित् ॥
भुङ्क्तेऽथ विषयांश्चैवविषयैर्न च युज्यते । ज्ञात्वा तु परमं सूक्ष्मंसूक्ष्मत्वाच्चापवर्गकः
व्यापकस्त्वपवर्गाच्चव्यापित्वात्पुरुषः स्मृतः । पुरुषः सूक्ष्मभावात्तु ऐश्वर्येपरतःस्थितः
गुणान्तरं तु ऐश्वर्यं सर्वतः सूक्ष्म उच्यते । ऐश्वर्यमप्रतीघाति प्राप्य योगमनुत्तमम् ॥
अपवर्गं ततो गच्छेत्सुसूक्ष्मं परमम् पदम् ॥ २४ ॥
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे योगैश्वर्यनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः

चतुर्दशोऽध्यायः

गर्भोत्पत्तिप्रकारनिरूपणम्

वायुरुवाच

न चैवमागतो ज्ञानाद्रागात्कर्म समाचरेत् । राजसं तामसंवाऽपिभुक्त्वा तत्रैवयुज्यते
तथा सुकृतकर्मा तु फलं स्वर्गे समश्नुते । तस्मात्स्थानात्पुनर्भ्रष्टो मानुष्यमनुपद्यते

तस्माद्ब्रह्म परं सूक्ष्मं ब्रह्म शाश्वतमुच्यते । ब्रह्मा एव हि सेवेत ब्रह्मैव परमं सुखम् ॥
परिश्रमस्तु यज्ञानां महताऽर्थेन वर्तते । भूयो मृत्युवशं यातितस्मान्मोक्षः परं सुखम्
अथ वै ध्यानसंयुक्तो ब्रह्मयज्ञपरायणः । न स स्याद्व्यापितुं शक्यो मन्वन्तरशतैरपि
दृष्ट्वा तु पुरुषंदिव्यंविश्वाख्यंविश्वरूपिणम् । विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशंविश्वभावनम्

विश्वगन्धं विश्वमाल्यं विश्वाम्बरधरं प्रभुम् ॥६॥
गोभिर्मही संयतते पतत्रिणं महात्मानं परममतिं वरेण्यम् ।
कविं पुराणमनुशासितारं सूक्ष्माच्च सूक्ष्मं महतो महान्तम् ॥७॥
योगेन पश्यन्ति न चक्षुषा तं निरिन्द्रियं पुरुषं रुक्मवर्णम् ।
अलिङ्गिनं पुरुषं रुक्मवर्णं सलिङ्गिनं निर्गुणं चेतनं च ॥८॥
नित्यं सदा सर्वगतं तु शौचं पश्यन्ति युक्त्या ह्यचलं प्रकाशम् ।
तद्भावितस्तेजसा दीप्यमानः अ(नो ह्य)पाणिपादोदरपार्श्वजिह्वः ॥९॥
अतीन्द्रियोऽद्यापि सुसूक्ष्म एकः पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
नाऽस्यास्त्यबुद्धं न च बुद्धिरस्ति स वेद सर्वं न च वेदवेद्यः ॥१०॥
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तं सचेतनं सर्वगतं सुसूक्ष्मम् ॥११॥

तमाहुर्मुनयः सर्वे लोके प्रसवधर्मिणीम् । प्रकृतिं सर्वभूतानां युक्ताः पश्यन्ति चेतसा
सर्वतःपाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति
युक्तायोगेन चेशानं सर्वतश्च सनातनम् । पुरुषं सर्वभूतानां तस्माद्ध्याता न मुह्यति
भूतात्मानं महात्मानं परमात्मानमव्ययम् । सर्वात्मानं परं ब्रह्म तद्वै ध्यात्वानमुह्यति
पवनो हि यथा ग्राह्यो विचरन्सर्वमूर्तिषु । पुरि शेते तथाऽभ्रे च तस्मात्पुरुष उच्यते
अथ चेच्चुतधर्मात्तु सविशेषैश्च कर्मभिः । ततस्तु ब्रह्म योन्यां वै शुक्रशोणितसंयुतम्
स्त्रीपुमांस(पुंसयोः)प्रयोगेणजायते हि पुनः पुनः । ततस्तु गर्भकालेतुकललंनामजायते
कालेन कलनं(लं) चापिबुद्बुदश्च प्रजायते । मृत्पिण्डस्तु यथाचक्रेचक्रावर्तेनपीडितः
हस्ताभ्यांक्रियमाणस्तुविश्वत्वमुपगच्छति । एवमात्मास्थिसंयुक्तोवायुना समुदीरितः
जायते मानुषस्तत्र यथा रूपं तथा मनः । वायुः संभवते तेषां वातात्संजायते जलम्

जलात्संभवति प्राणः प्राणाच्छुक्रं विवर्धते । रक्तभागास्त्रयस्त्रिंशच्छुक्रभागाश्चतुर्दश
भागतोऽर्धपलं कृत्वा ततो गर्भे निषेव्यते । ततस्तु गर्भसंयुक्तः पञ्चभिर्वायुभिर्वृतः ॥
पितुः शरीरात्प्रत्यङ्गं रूपमस्योपजायते । ततोऽस्य मातुराहारात्पीतलीढप्रवेशितम् ॥
नाभिःस्रोतःप्रवेशेनप्राणाधारा हि देहिनाम् । नव मासान्परिक्लिष्टः संवेष्टितशिरोधरः
वेष्टितः सर्वगात्रैश्च अपर्यायक्रमागतः । नवमासोषितश्चैव योनिच्छिद्रादवाङ्मुखः ॥
ततस्तु कर्मभिः पापैर्निरयं प्रतिपद्यते । असिपत्रवनं चैव शाल्मलीछेदभेदयोः ॥२७॥
तत्र निर्भर्त्सनंचैव तथाशोणितभोजनम् । एतास्तु यातनाघोराः कुम्भीपाकसुदुःसहाः
यथाह्यापस्तुविच्छिन्नाःस्वरूपमुपयान्तिवै।तस्माच्छिन्नाश्च भिन्नश्चयातनास्थानमागता
एवं जीवस्तुतैःपापैस्तप्यमानःस्वयंकृतैः । प्राप्नुयात्कर्मभिःशेषंदुःखंवायदिचेतरम्(त)
एकेनैव तु गन्तव्यं सर्वमृत्युनिवेशनम् । एकेनैव च भोक्तव्यं तस्मात्सुकृतमाचरेत् ॥
न ह्येनं प्रस्थितं कश्चिद्गच्छन्तमनुगच्छति । यदनेन कृतं कर्म तदेनमनुगच्छति ॥३२॥

ते नित्यं यमविषये विभिन्नदेहाः क्रोशन्तः सततमनिष्टसंप्रयोगैः ।
शुष्यन्ते परिगतवेदनाशरीरा बह्वीभिः सुभृशमधर्मयातनाभिः ॥ ३३॥

कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेव्यते । तत्प्रसह्य हरेत्पापं तस्मात्सुकृतमाचरेत्
यादृग्जातानि पापानि पूर्वं कर्माणि देहिनः । संसारं तामसं तादृक्षड्विधंप्रतिपद्यते
मानुष्यं पशुभावंचपशुभावान्मृगो भवेत् । मृगत्वात्पक्षिभावं तु तस्माच्चैवसरीसृपः
सरीसृपत्वाद्गच्छेद्धि स्थावरत्वं न संशयः । स्थावरत्वं पुनः प्राप्तो यावदुन्मिषते नरः
कुलालचक्रवद्भ्रान्तस्तत्रैव परिकीर्तितः । इत्येवं हि मनुष्यादिः संसारे स्थावरान्तिके
विज्ञेयस्तामसो नाम तत्रैव परिवर्तते । सात्त्विकश्चापि संसारो ब्रह्मादिः परिकीर्तितः
पिशाचान्तःसविज्ञेयःस्वर्गस्थानेषुदेहिनाम् । ब्राह्मे तु केवलंसत्त्वंस्थावरेकेवलं तमः ॥
चतुर्दशानां स्थानानां मध्ये विष्टम्भकं रजः । मर्मसु च्छिद्यमानेषु वेदनार्तस्य देहिनः
ततस्तु परमंब्रह्मकथंविप्रःस्मरिष्यति । संस्कारात्पूर्वधर्मस्यभावनायां प्रनो(णो)दितः

मानुष्यं भजते नित्यं तस्मान्नित्यं समादधेत् ॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादेपाशुपतयोगनिरूपणंनाम चतुर्दशोऽध्यायः

पञ्चदशोऽध्यायः

पाशुपतयोगनिरूपणम्

वायुरुवाच

चतुर्दशविधं ह्येतद्बुद्ध्वा संसारमण्डलम् । तथा समारभेत्कर्म संसारभयपीडितः ॥
ततः स्मरति संसारं चक्रेण परिवर्तितः । तस्मात्तु सततं युक्तो ध्यानतत्परयुञ्जकः
तथा समारभेद्योगं यथाऽऽत्मानं स पश्यति । एष आद्यः परंज्योतिरेष सेतुरनुत्तमः
विवृद्धो ह्येष भूतानां न संभेदश्च शाश्वतः । तदेनं सेतुमात्मानमग्निं वैविश्वतोमुखम्
हृदिस्थं सर्वभूतानामुपासीत विधानवित् । हुत्वाऽष्टावाहुतीःसम्यक्शुचिस्तद्गतमानसः
वैश्वानरं हृदिस्थं तु यथावदनुपूर्वशः । अपः पूर्वं सकृत्प्राश्य तूष्णीं भूत्वा उपासते
प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमाह्याहुतिःस्मृता । अपानायद्वितीया तु समानायेतिचापरा
उदानाय चतुर्थीति व्यानायेति च पञ्चमी । स्वाहाकारैः परंहुत्वा शेषं भुञ्जीतकामतः

अपः पुनः सकृत्प्राश्य त्र्याचम्य हृदयं स्पृशेत् ।
ॐ प्राणानां ग्रन्थिरस्यात्मा रुद्रो ह्यात्मा विशान्तकः ॥६॥

स रुद्रो ह्यात्मनःप्राणएवमाप्याययेत्स्वयम् । त्वंदेवानामपि ज्येष्ठउग्रस्त्वंचतुरोवृषा
मृत्युघ्नोऽसि त्वमस्मभ्यं भद्रमेतद्धुतं हविः । एवं हृदयमालभ्यपादाङ्गुष्ठे तु दक्षिणे

विश्राव्य दक्षिणं पाणिं नाभिं वै पाणिना स्पृशेत् ।
ततः पुनरुपस्पृश्य चाऽऽत्मानमभिसंस्पृशेत् ॥१२ ॥

अक्षिणी नासिकाश्रोत्रेहृदयं शिर एव च । द्वावात्मानावुभावेतौ प्राणापानावुदाहृतौ

तयोः प्राणोऽन्तरात्माऽस्य बाह्योऽपानोऽत उच्यते ।
अन्नं प्राणस्तथाऽपानं मृत्युर्जीवितमेव च ॥१४॥

अन्नं ब्रह्म च विज्ञेयं प्रजानांप्रसवस्तथा । अन्नाद्भूतानि जायन्ते स्थितिरन्नेनचेष्यते

वर्धन्ते तेन भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते । तदेवाग्नौ हुतं ह्यन्नं भुञ्जते देवदानवाः ।
गन्धर्वयक्षरक्षांसि पिशाचाश्चान्नमेव हि ॥१७॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्धातपादे पाशुपतयोगनिरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्याय

षोडशोऽध्यायः

शौचाचारलक्षणनिरूपणम्

वायुरुवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि शौचाचारस्य लक्षणम् ।
यदनुष्ठाय शुद्धात्मा प्रेत्य स्वर्गं हि चाऽऽप्नुयात् ॥१॥

उदकार्थी तु शौचानां मुनीनामुत्तमं पदम् । यस्तु तेष्वप्रमत्तःस्यात्समुनिर्नावसीदति
मानावमानौ द्वावेतौ तावेवाऽऽहुर्विषामृते । अवमानं विषं तत्र मानस्त्वमृतमुच्यते
यस्तु तेष्वप्रमत्तःस्यात्स मुनिर्नावसीदति । गुरोः प्रियहितेयुक्तः स तु सवत्सरंवसेत्
नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदा भवेत् । प्राप्यानुज्ञां ततश्चैव ज्ञानागमनमुत्तमम् ॥
अविरोधेन धर्मस्य विचरेत्पृथिवीमिमाम् । चक्षुष्पूतं व्रजेन्मार्गं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्
सत्यपूतां वदेद्वाणीमितिधर्मानुशासनम् । आतिथ्यंश्राद्धयज्ञेषु नगच्छेद्योगवित्कचित्
एवं ह्यहिंसको योगी भवेदिति विचारणा । वह्नौ विधूमे व्यङ्गारे सर्वस्मिन्भुक्तवर्जने
विचरेन्मतिमान्योगी न तु तेष्वेव नित्यशः । यथैवमवमन्यन्ते यथा परिभवन्ति च
युक्तस्तथाऽऽचरेद्भैक्षं सतां धर्ममदूषयन् । भैक्षं चरेद्गृहस्थेषु यथाचारगृहेषु च ॥
श्रेष्ठा तु परमा चेयं वृत्तिरस्योपदिश्यते । अत ऊर्ध्वं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्द्विजः ॥
श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु । अत ऊर्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टपतितेषु च ॥१२
भैक्षचर्या त्रिवर्णेषु जघन्या वृत्तिरुच्यते । भैक्षं यवागूं तक्रं वा पयो यावकमेव च ॥
फलमूलं विपक्वं वा पिण्याकं शक्तितोऽपि वा ।
इत्येते वै मया प्रोक्ता योगिनां सिद्धिवर्धनाः ॥१४॥

आहारास्तेषुसिद्धेषुश्रेष्ठंभैक्षमिति स्मृतम् । अब्बिन्दुंयःकुशाग्रेणमासे मासेसमश्नुते
न्यायतोयस्तुभिक्षेतसपूर्वोक्ताद्विशिष्यते । योगिनां चैवसर्वेषांश्रेष्ठंचान्द्रायणंस्मृतम्
एकं द्वे त्रीणिचत्वारिशक्तितो वा समाचरेत् । अस्तेयंब्रह्मचर्यंचअलोभस्त्याग एव च
व्रतानि चैव भिक्षूणामहिंसा परमार्थिता । अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम्
नित्यं स्वाध्याय इत्येते नियमाः परिकीर्तिताः । बीजयोनिर्गुणवपुर्बद्धः कर्मभिरेवच
तथा द्विप इवारण्ये मनुष्याणां विधीयते । प्राप्यतेवाऽचिरादेवाङ्कुशेनेवनिवारितः
एवं ज्ञानेन शुद्धेनदग्धबीजो ह्यकल्मषः । विमुक्तबन्धः शाक्तोऽसौ मुक्त इत्यभिधीयते

वेदैस्तुल्याः सर्वयज्ञक्रियास्तु यज्ञे जप्यं ज्ञानिनामाहुरग्र्यम् ।
ज्ञानाद् ध्यानं सङ्गरागव्यपेतं तस्मिन्प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः ॥२२॥
दमः शमः सत्यमकल्मषत्वं मौनं च भूतेष्वखिलेष्वथाऽऽर्जवम् ।
अतीन्द्रियज्ञानमिदं तथाऽऽर्जवं प्राहुस्तथा ज्ञानविशुद्धसत्त्वाः ॥२३॥
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैवाऽऽत्मरतिर्जितेन्द्रियः ।
समाप्नुयुर्योगमिमं महाधियो महर्षयश्चैवमनिन्दितामलाः॥२४॥

इतिश्रीमहापुराणेवायुप्रोक्तेउपोद्घातपादेशौचाचारलक्षणनिरूपणं नामषोडशोऽध्यायः

सप्तदशोऽध्यायः

परमाश्रमविधिकथनम्

वायुरुवाच

आश्रमत्रयमुत्सृज्य प्राप्तस्तु परमाश्रमम् । अतः संवत्सरस्यान्ते प्राप्य ज्ञानमनुत्तमम्
अनुज्ञाप्य गुरुं चैव विचरेत्पृथिवीमिमाम् । सारभूतमुपासीत ज्ञानं यज्ज्ञेयसाधकम्
इदं ज्ञातमिदं ज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत् । अपि कल्पसहस्रायुर्नैव ज्ञेयमवाप्नुयात् ॥२

त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
पिधाय बुद्ध्या द्वाराणि ध्याने ह्येवं मनो दधेत् ॥४॥

शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वने तथा । नदीनां पुलिने चैव नित्यं युक्तःसदाभवेत्
वाग्दण्डः कर्मदण्डश्चमनोदण्डश्चतेत्रयः । यस्यैतेनियतादण्डाःसत्रिदण्डीव्यवस्थितः

अवस्थितो ध्यानरतिर्जितेन्द्रियः शुभाशुभे हित्य च कर्मणी उभे ॥७॥
इदं शरीरं प्रविमुच्य शाश्वतो न जायते म्रियते वा कदाचित् ॥८॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेउपोद्घातपादेपरमाश्रमविधिकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः

———

अष्टादशोऽध्यायः

यतिप्रायश्चित्तविधानकथनम्

वायुरुवाच

अत ऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामि यतीनामिह निश्चयम् । प्रायश्चित्तानितत्त्वेन यान्यकामकृतानितु
अथकामकृतेऽप्याहुःसूक्ष्मधर्मविदो जनाः । पापं च त्रिविधंप्रोक्तंवाङ्मनःकायसंभवम्
सततं हि दिवा रात्रौ येनेदंवध्यतेजगत् । न कर्माणि न चाप्येष तिष्ठतीति पराश्रुतिः
क्षणमेव प्रयोज्यं तु आयुषस्तुविधारणात् । भवेद्धीरोऽप्रमत्तस्तुयोगो हि परमंबलम्
न हि योगात्परं किंचिन्नराणामिह दृश्यते । तस्माद्योगंप्रशंसन्तिधर्मयुक्ता मनीषिणः
अविद्यां विद्ययातीर्त्वाप्राप्यैश्वर्यमनुत्तमम् । दृष्ट्वा परापरं धीराः परं गच्छन्तितत्पदम्
व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च । एकैकापक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते
उपेत्य तु स्त्रियंकामात्प्रायश्चित्तंविनिर्दिशेत् । प्राणायामसमायुक्तंकुर्यात्सांतपनंतथा
ततश्चरति निर्देशं कृच्छ्रस्यान्ते समाहितः । पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥६॥
न म(न)र्मयुक्तं वचनंहिनस्तीति मनीषिणः । तथाऽपि च न कर्तव्यःप्रसङ्गोह्येषदारुणः

अहोरात्राधिकःकश्चिन्नास्त्यधर्म इति श्रुतिः। हिंसा ह्येषापरासृष्टादैवतैर्मुनिभिस्तथा
यतेतद्द्रविणं नाम प्राणा ह्येते वहिश्चराः। स तस्यहरति प्राणान्योयस्य हरते धनम्
एवंकृत्वा स दुष्टात्माभिन्नवृत्तोव्रताच्च्युतः। भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणंव्रतम्
विधिना शास्त्रदृष्टेन संवत्सरमिति श्रुतिः। ततः संवत्सरस्यान्ते भूयःप्रक्षीणकल्मषः
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः। अहिंसा सर्वभूतानां कर्मणा मनसा गिरा॥
अकामादपिहिंसेतयदिभिक्षुःपशून्मृगान्। कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीतचान्द्रायणमथापिवा
स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात्स्त्रियंदृष्ट्वायतिर्यदि। तेनधारयितव्या वै प्राणायामास्तुषोडश
दिवा स्कन्नस्य विप्रस्य प्रायश्चित्तं विधीयते। त्रिरात्रमुपवासश्च प्राणायामशतंतथा

रात्रौ स्कन्नः शुचिः स्नातो द्वादशैव तु धारणाः।
प्राणायामेन शुद्धात्मा विरजा जायते द्विजः॥१६॥

एकान्नं मधु मांसं वा ह्यामश्राद्धंतथैव च। अभोज्यानियतीनां च प्रत्यक्षलवणानिच
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते। प्राजापत्येन कृच्छ्रेण ततः पापात्प्रमुच्यते
व्यतिक्रमाच्चयेकेचिद्वाङ्मनःकायसंभवम्। सद्भिःसहविनिश्चित्य यद्ब्रूयुस्तत्समाचरेत्

विशुद्धबुद्धिः समलोष्टकाञ्चनः समस्तभूतेषु चरन्समाहितः।
स्थानं ध्रुवं शाश्वतमव्ययं सतां परं स गत्वा न पुनर्हि जायते॥२३॥

इतिश्रीमहापुराणेवायुप्रोक्तेउपोद्घातपादेयतिप्रायश्चत्तविधिकथनंनामाष्टादशोऽध्यायः

———

एकोनविंशोऽध्यायः

अरिष्टनिरूपणम्

वायुरुवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्याम्यरिष्टानिनिबोधत। येन ज्ञानविशेषेणमृत्युं पश्यतिचाऽऽत्मनः
अरुन्धतींध्रुवंचैवसोमच्छायांमहापथम्। यो न पश्येत्स नो जीवेन्नरःसम्वत्सरात्परम्

अरश्मिवन्तमादित्यं रश्मिवन्तं च पावकम् । यःपश्येन्न च जीवेतमासादेकादशात्परम्
वमेन्मूत्रं क(पु)रीषं वा सुवर्णं रजतं तथा । प्रत्यक्षमथ वा स्वप्ने दशमासान्सजीवति
अग्रतः पृष्ठतोवाऽपिखण्डंयस्य पदं भवेत् । पांशुले कर्दमेवाऽपिसप्तमासान्सजीवति
काकःकपोतोगृध्रोवानिलीयेद्यस्यमूर्धनि । क्रव्यादोवाखगःकश्चित्षण्मासान्नातिवर्तते
बध्येद्वायसपङ्क्तीभिः पांशुवर्षेण वा पुनः । छायां वा विकृतांपश्येच्चतुःपञ्चसजीवति
अनभ्रे विद्युतंपश्येद्दक्षिणांदिशमाश्रिताम् । उदकेन्द्रधनुर्वाऽपित्रयो द्वौ वा स जीवति

अप्सु वा यदि वाऽऽदर्शे आत्मानं यो न पश्यति ।
अशिरस्कं तथाऽऽत्मानं मासादूर्ध्वं न जीवति ॥६॥

शवगन्धिभवेद्गात्रंवशा(सा)गन्धिह्यथापिवा । मृत्युर्ह्युपस्थितस्तस्यअर्धमासंसजीवति

यस्य वै स्नातमात्रस्य हृत्पादं वाऽवशुष्यति ।
धूमो(मं) वा मस्तकान्नश्ये(त्पश्ये)द्दशाहं न स जीवति ॥११॥

सम्भिन्नो मारुतोयस्यमर्मस्थानानि कृन्तति । अद्भिःस्पृष्टोनहृष्येच्चतस्यमृत्युरुपस्थितः
ऋक्षवानरयुक्तेनरथेनाऽऽशां तु दक्षिणाम् । गायन्नथव्रजेत्स्वप्नेविद्यान्मृत्युरुपस्थितः

कृष्णाम्बरधरा श्यामा गायन्ती वाऽथ चाङ्गना ।
यन्नयेद्दक्षिणामाशां स्वप्ने सोऽपि न जीवति ॥१४॥

छिद्रंवासश्चकृष्णंचस्वप्नेयोबिभृयान्नरः । भग्नं वा श्रवणं दृष्ट्वाविद्यान्मृत्युरुपस्थितः
आ मस्तकतलाद्यस्तु निमज्जेत्पङ्कसागरे । दृष्ट्वा तु तादृशं स्वप्नं सद्य एव न जीवति
भस्माङ्गारांश्च केशांश्चनदींशुष्कांभुजंगमान् । पश्येद्यो दशरात्रं तु न स जीवेततादृशः
कृष्णैश्च विकटैश्चैव पुरुषैरुद्यतायुधैः । पाषाणैस्ताड्यतेस्वप्ने यः सद्यो न स जीवति
सूर्योदयेप्रत्युषसिप्रत्यक्षंयस्य वै शिवा । क्रोशन्ती संमुखाऽभ्येति स गतायुर्भवेन्नरः
यस्य वै स्नातमात्रस्य हृदयं पीड्यते भृशम् । जायते दन्तहर्षश्च तं गतायुषमादिशेत्

भूयो भूयः श्वसेद्यस्तु रात्रौ वा यदि वा दिवा ।
दीपगन्धं च नो वेत्ति विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥२१॥

रात्रौ चेन्द्रायुधंपश्येद्दिवानक्षत्रमण्डलम् । परनेत्रेषु चाऽऽत्मानं न पश्येन्न स जीवति

नेत्रमेकं स्रवेद्यस्यकर्णौस्थानाच्चभ्रश्यतः । नासा च वक्रा भवति स ज्ञेयो गतजीवितः
यस्य कृष्णाखराजिह्वापङ्कभासं च वै मुखम् । गण्डे चिपिटकेरक्तेतस्यमृत्युरुपस्थितः
मुक्तकेशोहसंश्चैवगायन्नृत्यंश्च यो नरः । याम्याशाभिमुखो गच्छेत्तदन्तंतस्यजीवितम्
यस्य स्वेदसमुद्भूताः श्वेतसर्षपसंनिभाः । स्वेदा भवन्ति ह्यसकृत्तस्यमृत्युरुपस्थितः

उष्ट्रा वा रासभा वाऽपि युक्ताः स्वप्ने रथेऽशुभाः ।
यस्य सोऽपि न जीवेत दक्षिणाभिमुखो गतः ॥२७॥

द्वे चात्र परमे रिष्टे एतद्रूपं परं भवेत् । घोषं न शृणुयात्कर्णे ज्योतिर्नेत्रे न पश्यति
श्वभ्रेयोनिपतेत्स्वप्नेद्वारंचास्य न विद्यते । नचोत्तिष्ठति यःश्वभ्रात्तदन्तंतस्यजीवितम्

ऊर्ध्वा च दृष्टिर्न च संप्रतिष्ठा रक्ता पुनः संपरिवर्तमाना ।
मुखस्य चोष्मा शुषिरा च नाभिरत्युष्णमूत्रो विषमस्थ एव ॥३०॥

दिवा वा यदि वा रात्रौप्रत्यक्षं योऽभिहन्यते । तं पश्येदथ हन्तारं स हतस्तुनजीवति
अग्निप्रवेशं कुरुते स्वप्नान्तेयस्तु मानवः । स्मृतिं नोपलभेच्चापितदन्तंतस्य जीवितम्
यस्तु प्रावरणं शुक्लंस्वकंपश्यति मानवः । रक्तं कृष्णमपिस्वप्ने तस्यमृत्युरुपस्थितः
अरिष्टसूचिते देहे तस्मिन्काल उपागते । त्यक्त्वा भयविषादं च उद्गच्छेद्बुद्धिमान्नरः

प्राचीं वा यदि वोदीचीं दिशं निष्क्रम्य वै शुचिः ।
समेऽतिस्थावरे देशे विविक्ते जनवर्जिते ॥ ३५ ॥
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा स्वस्थः स्वाचान्त एव च ।
स्वस्तिकोपनिविष्टश्च नमस्कृत्वा(त्य) महेश्वरम् ॥ ३६ ॥

सम(मं)कायशिरोग्रीवंधारयेन्नावलोकयेत् । यथादीपोनिवातस्थो नेङ्गतेसोपमा स्मृता
प्रागुदक्प्रवणे देशे तस्माद्युञ्जीत योगवित् । कामं वितर्कंप्रीतिंचसुखदुःखेउभे य(त)था
निगृह्य मनसा सर्वं शुक्लध्यानमनुस्मरेत् । प्राणे च रमते नित्यं चक्षुषोः स्पर्शने तथा
श्रोत्रे मनसि बुद्धौ च तथा वक्षसि धारयेत् । कालधर्मंच विज्ञाय समूहं चैव सर्वशः
द्वादशाध्यात्म इत्येवं योगधारणमुच्यते । शतमष्टशतं वाऽपि धारणां मूर्ध्नि धारयेत्
न तस्य धारणायोगाद्वायुः सर्वं प्रवर्तते । ततस्त्वापूरयेद्देहमोंकारेण समाहितः ॥४२॥

अथोङ्कारमयो योगी न क्षरेत्त्वक्षरी भवेत् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादेऽरिष्टनिरूपणं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९

विंशोऽध्यायः

ओङ्कारप्राप्तिलक्षणनिरूपणम्

वायुरुवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि ओंकारप्राप्तिलक्षणम् । एषत्रिमात्रोविज्ञेयोव्यञ्जनंचात्रसस्वरम्
प्रथमा वैद्युतीमात्राद्वितीयातामसीस्मृता । तृतीयांनिर्गुणांविद्यान्मात्रामक्षरगामिनीम्

ग(गा)न्धर्वीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसम्भवा ।
पिपीलिकासमस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते ॥ ३ ॥

तथा प्रयुक्तमोंकारं प्रति निर्वाति मूर्धनि । तथोंकारमयो योगी ह्यक्षरे त्वक्षरी भवेत्
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्
ओमित्येकाक्षरंब्रह्म गुहायांनिहितम्पदम् । ओमित्येतत्त्रयोवेदास्त्रयोलोकास्त्रयोऽग्नयः
विष्णुक्रमास्त्रयस्त्वेते ऋक्सामानि यजूंषिच । मात्राश्चात्र चतस्रस्तुविज्ञेयाःपरमार्थतः
तत्र युक्तश्चयो योगीतस्यसालोक्यतांव्रजेत् । अकारस्त्वक्षरोज्ञेयःउकारःस्वरितःस्मृतः
मकारस्तु प्लुतो ज्ञेयस्त्रिमात्र इतिसंज्ञितः । अकारस्त्वथ भूर्लोक उकारो भुव उच्यते
सव्यञ्जनो मकारश्चस्वर्लोकश्च विधीयते । ओंकारस्तुत्रयोलोकाःशिरस्तस्य त्रिविष्टपम्
भुवनान्तं च तत्सर्वं ब्राह्मं तत्पदमुच्यते । मात्रापदं रुद्रलोको ह्यमात्रस्तु शिवं पदम्
एवं ध्यानविशेषेण तत्पदं समुपासते । तस्माद्ध्यानरतिर्नित्यममात्रं हि तदक्षरम् ॥

उपास्यं हि प्रयत्नेन शाश्वतं पदमिच्छता ।
ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा ततो दीर्घा त्वनन्तरम् ॥ १३ ॥

ततः प्लुतवती चैव तृतीया उपदिश्यते । एतास्तु मात्रा विज्ञेया यथावदनुपूर्वशः॥१४
यावच्चैव तु शक्यन्ते धार्यन्तेतावदेव हि । इन्द्रियाणिमनोबुद्धिंध्यायन्नात्मनियःसदा

अत्राष्टमात्रमपि चेच्छृणुयात्फलमाप्नुयात् । मासेमासेऽश्वमेधेनयो यजेत शतं समाः
न स तत्प्राप्नुयात्पुण्यंमात्रयायदवाप्नुयात् । अब्बिन्दुंयःकुशाग्रेण मासेमासेपिबेन्नरः
संवत्सरशतं पूर्णं मात्रया तदवाप्नुयात् । इष्टापूर्तस्य यज्ञस्य सत्यवाक्ये च यत्फलम्

अब्भक्षणे च मां(मा)सस्य मात्रया तदवाप्नुयात् ।
स्वास्यर्थे युध्यमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ १९ ॥

यद्भवेत्तत्फलं दृष्टं मात्रया तदवाप्नुयात् । न तथा तपसोग्रेण न यज्ञैर्भूरिदक्षिणैः ॥
यत्फलंप्राप्नुयात्सम्यङ्मात्रया तदवाप्नुयात् । तत्रवैयोऽर्धमात्रोयःप्लुतोनामोपदिश्यते
एषा एव भवेत्कार्या गृहस्थानां तु योगिनाम् । एषा चैव विशेषेण ऐश्वर्यसमलक्षणा
योगिनां तु विशेषेण ऐश्वर्ये ह्यष्टलक्षणे । अणिमाद्येतिविज्ञेया तस्माद्युञ्जीत तां द्विजः

एवं हि योगी संयुक्तः शुचिर्दान्तो जितेन्द्रियः ।
आत्मानं विन्दते यस्तु स सर्वं विन्दते द्विजाः ॥ २४ ॥

ऋचो यजूंषि सामानि वेदोपनिषदस्तथा । योगज्ञानादवाप्नोति ब्राह्मणोध्यानचिन्तकः
सर्वभूतलयो भूत्वा अभूतःसतु जायते । योगिसंक्रमणं कृत्वा याति वै शाश्वतं पदम्
अपि चात्र चतुर्होतां ध्यायमानाश्चतुर्मुखीम् । प्रकृतिं विश्वरूपाख्यांद्दृष्ट्वादिव्येन चक्षुषा

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां वह्वीः प्रजाः सृजमानां स्व(स)रूपाम्(पाः) ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥ २८ ॥
अष्टाक्षरां षोडशपाणिपादां चतुर्मुखीं त्रिशिखामेकशृङ्गीम् ।
आद्यामजां विश्वसृजां स्वरूपां ज्ञात्वा बुधास्त्वमृतत्वं व्रजन्ति ॥
ये ब्राह्मणाः प्रणवं वेदयन्ति न ते पुनः संसरन्तीह भूयः ॥ २९ ॥

इत्येतदक्षरं ब्रह्मपरमोंकारसंज्ञितम् । यस्तु वेदयतेसम्यक्तथा ध्यायति वा पुनः ॥३०
संसारचक्रमुत्सृज्य मुक्तबन्धनबन्धनः । अचलं निर्गुणं स्थानं शिवं प्राप्नोत्यसंशयम्

इत्येतद्वै मया प्रोक्तमोंकारप्राप्तिलक्षणम् ॥ ३२ ॥

नमो लोकेश्वराय संकल्पकल्पग्रहणाय महान्तमुपतिष्ठते तद्वो हितं यद्ब्रह्मणे नमः
सर्वत्रस्थानिने निर्गुणाय संभक्तयोगीश्वराय च । पुष्करपर्णमिवाद्भिर्शुद्धमिव

ब्रह्ममुपतिष्ठेत्पवित्रं(?) पवित्राणां पवित्रं पवित्रेण परिपूरितेन पवित्रेण ह्रस्वं दीर्घ-प्लुतमिति तदेतमोंकारमशब्दमस्पर्शमरूपमरसमगन्धं पर्युपासे(सी)त, अविद्येशानाय विश्वरूपो न तस्य, अविद्येशानाय नमो योगीश्वरायेति च येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकस्त- योरन्तरिक्षमिमे वरीयसो देवानां हृदयं विश्वरूपो न तस्य प्राणापानौपरमं चास्ति ओंकारोविश्वविश्वो वै यज्ञो यज्ञो वै वेदो वेदो वै नमस्कारो नमस्कारो रुद्रो नमो रुद्राय योगेश्वराधिपतये नमः ॥ इति सिद्धिप्रत्युपस्थानं सायं प्रातर्मध्याह्ने नम इति । सर्वकामफलो रुद्रः ॥३३॥

यथा वृन्तात्फलं पक्वंपवनेनसमीरितम् । नमस्कारेण रुद्रस्य तथा पापं प्रणश्यति यथा रुद्रनमस्कारः सर्वधर्मफलो ध्रुवः । अन्यदेवनमस्कारो न तत्फलमवाप्नुयात् ॥ तस्मात्त्रिषवणं योगी उपासीत महेश्वरम् । दशविस्तारकं ब्रह्मतथा च ब्रह्म विस्तरम् ओंकारं सर्वतः कालेसर्वविहितवान्प्रभुः । तेन तेन तु विष्णुत्वं नमस्कारं महायशाः नमस्कारस्तथा चैव प्रणवः स्तुवते प्रभुम् । प्रणवं स्तुवते यज्ञो यज्ञं संस्तुवते मनः मनः स्तुवति वै रुद्रं तस्माद्रुद्रपदं शिवम् । इत्येतानि रहस्यानियतीनां वै यथाक्रमम् यस्तु वेदयते ध्यानं स परं प्राप्नुयात्पदम् ॥३६॥

इति श्रीमहापुराणेवायुप्रोक्तेउपोद्घातपादओंकारप्राप्तिलक्षणकथनंनाम विंशोऽध्यायः

—————

एकविंशोऽध्यायः

कल्पनिरूपणम्

सूत उवाच

ऋषीणाममितकल्पानांनैमिषारण्यवासिनाम् । ऋषिःश्रुतिधरःप्राज्ञःसावर्णिर्नामनामतः तेषां सोऽप्यग्रतोत्वावायुंवाक्यविशारदः । सातत्यंतत्रकुर्वन्तंप्रियार्थे सत्रयाजिनाम्

विनयेनोपसंगम्य पप्रच्छ स महाद्युतिः ॥२॥

सावर्णिरुवाच

विभोपुराणसंबद्धांकथां वै वेदसंमिताम्। श्रोतुमिच्छामहेसम्यक्प्रसादात्सर्वदर्शिनः
हिरण्यगर्भो भगवांल्ललाटान्नीललोहितम्। कथं तत्तैजसं देवं लब्धवान्पुत्रमात्मनः
कथं च भगवाञ्जज्ञे ब्रह्मा कमलसंभवः। रुद्रत्वं चैव शर्वस्य स्वात्मजस्य कथं पुनः
कथञ्च विष्णोरुद्रेणसार्धंप्रीतिरनुत्तमा। सर्वे विष्णुमया देवा सर्वे विष्णुमयागणाः
न च विष्णुसमा काचिद्गतिरन्या विधीयते। इत्येवं सततं देवागायन्ते नात्र संशयः

भवस्य स कथं नित्यं प्रणामं कुरुते हरिः ॥७॥

सूत उवाच

एवमुक्तेऽथभगवान्वायुः सावर्णिमब्रवीत्। अहो साधुत्वयासाधो पृष्टः प्रश्नोह्यनुत्तमः
भवस्य पुत्रजन्मत्वं ब्रह्मणः सोऽभवद्यथा। ब्रह्मणः पद्मयोनित्वं रुद्रत्वं शंकरस्य च
द्वाभ्यामपि च संप्रीतिर्विष्णोश्चैव भवस्य च। यच्चापि कुरुतेनित्यंप्रणामंशंकरस्य च
विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च शृणुत ब्रुवतो मम। मन्वन्तरस्य संहारे पश्चिमस्य महात्मनः
आसीत्तुसप्तमःकल्पःपद्मोनामद्विजोत्तमाः। वाराहःसाम्प्रतस्तेषांतस्यवक्ष्यामिविस्तरम्

सावर्णिरुवाच

कियताचैवकालेनकल्पः संभवते कथम्। किं च प्रमाणंकल्पस्यतन्नः प्रब्रूहिपृच्छताम्

वायुरुवाच

मन्वन्तराणां सप्तानां कालसंख्या(ख्यां) यथाक्रमम्।
प्रवक्ष्यामि समासेन ब्रुवतो मे निबोधत ॥१४॥

कोटीनांद्वेसहस्रेवैअष्टौ कोटिशतानि च। द्विषष्टिश्च तथा कोट्योनियुतानिचसप्ततिः
कल्पार्धस्य तु संख्यायामेतत्सर्वमुदाहृतम्। पूर्वोक्तौचगुणच्छेदौवर्षाग्रंलब्धमादिशेत्
शतं चैव तु कोटीनां कोटीनामष्टसप्ततिः। द्वे च शतसहस्रे तु नवतिर्नियुतानि च॥
मानुषेण प्रमामाणेन यावद्वैवस्वतान्तरम्। एष कल्पस्तु विज्ञेयः कल्पार्धद्विगुणीकृतः
अनागतानां सप्तानामेतदेव यथाक्रमम्। प्रमाणं कालसंख्याया विज्ञेयं मतमैश्वरम्॥

नियुतान्यष्टपञ्चाशत्तथाऽशीतिशतानि च। चतुरशीतिचा(श्चा)न्यानि प्रयुतानि प्रमाणतः
सप्तर्षयो मनुश्चैव देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः। एतत्कालस्य विज्ञेयं वर्षाग्रं तु प्रमाणतः॥
एष मन्वन्तरे तेषां मानुषान्तःप्रकीर्तितः। प्रणवान्ताश्च ये देवाः साध्यादेवगणाश्च ये

विश्वे देवाश्च ये नित्याः कल्पं जीवन्ति ते गणाः।
अयं यो वर्तते कल्पो वाराहः स तु कीर्त्यते॥
यस्मिन्स्वायंभुवाद्याश्च मनवश्च चतुर्दश ॥२३॥

ऋषय ऊचुः

कस्माद्वाराहकल्पोऽयं नामतःपरिकीर्तितः। कस्माच्च कारणाद्देवोवराह इति कीर्त्यते
कोवावराहोभगवान्कस्ययोनिः किमात्मकः। वराहःकथमुत्पन्नएतदिच्छामिवेदितुम्

वायुरुवाच

वराहस्तुयथोत्पन्नोयस्मिन्नर्थे च कल्पितः। वाराहश्च यथाकल्पःकल्पत्वंकल्पनाच्चया
कल्पयोरन्तरं यच्चतस्यचास्य च कल्पितम्। तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामियथादृष्टंयथाश्रुतम्
भवस्तुप्रथमःकल्पोलोकादौप्रथितः पुरा। ज्ञातव्योभगवान्यत्र ह्यानन्दःसांप्रतःस्वयम्
ब्रह्मस्थानमिदं दिव्यंप्राप्तं वा दिव्यसंभवम्। द्वितीयस्तु भुवःकल्पस्तृतीयस्तपउच्यते
भवश्चतुर्थो विज्ञेयः पञ्चमो रम्भ एव च। ऋतुकल्पस्तथा षष्ठः सप्तमस्तु क्रतुः स्मृत
अष्टमस्तु भवेद्वह्निर्नवमो हव्यवाहनः। सावित्रो दशमः कल्पो भुवस्त्वेकादशः स्मृत
उशिको द्वादशस्तत्र कुशिकस्तु त्रयोदशः। चतुर्दशस्तु गन्धर्वोगांधारो यत्र वै स्वर

उत्पन्नस्तु यथा नादो गन्धर्वा यत्र चोत्थिताः।
ऋषभस्तु ततः कल्पो ज्ञेयः पञ्चदशो द्विजाः ॥ ३३ ॥

ऋषभो यत्र संभूतः स्वरो लोकमनोहरः। षड्जस्तुषोडशःकल्पः षड्जना यत्र चर्षयः
शिशिरश्च वसन्तश्च निदाघो वर्ष एव च। शरद्धेमन्त इत्येते मानसा ब्रह्मणः सुताः।
उत्पन्नाःषड्जसंसिद्धाःपुत्राःकल्पेतुषोडशे। यस्माज्जातैश्चतैःषड्भिःसद्योजातोमहेश्वर
तस्मात्समुत्थितःषड्जःस्वरस्तूदधिसंनिभः। ततःसप्तदशःकल्पोमार्जालीयइति स्मृत
मार्जालीयं तु तत्कर्म यस्माद्ब्राह्ममकल्पयत। ततस्तमःयमोनामकल्पोऽष्टादशउच्यते

यस्मिंस्तु मध्यमो नाम स्वरो धैवतपूजितः। उत्पन्नः सर्वभूतेषु मध्यमो वै स्वयम्भुवः॥
ततस्त्वेकोनविंशस्तु कल्पो वैराजकःस्मृतः। वैराजो यत्र भगवान्मनुर्वैब्रह्मणः सुतः॥
तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा दधीचिर्नाम धार्मिकः। प्रजापतिर्महातेजा बभूव त्रिदशेश्वरः॥
अकामयत गायत्रीयजमानं प्रजापतिम्। तस्माज्जज्ञे स्वरः स्निग्धःपुत्रस्तस्यदधीचिनः
ततो विंशतिमः कल्पो निषादः परिकीर्तितः। प्रजापतिस्तु तं दृष्ट्वा स्वयम्भूप्रभवं तदा
विरराम प्रजाःस्रष्टुंनिषादस्तु तपोऽतपत्। दिव्यं वर्षसहस्रं तु निराहारो जितेन्द्रियः
तमुवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः। ऊर्ध्वबाहुं तपोग्लानं दुःखितंक्षुत्पिपासितम्
निषीदेत्यब्रवीदेनं पुत्रं शान्तं पितामहः। तस्मान्निषादः सम्भूतः स्वरस्तु स निषादवान्
एकविंशतिमःकल्पो विज्ञेयःपञ्चमो द्विजाः। प्राणोऽपानः समानश्च उदानोव्यानएव च
ब्रह्मणो मानसाः पुत्राः पञ्चैतेब्रह्मणःसमाः। तैस्त्वर्थवादिभिर्युक्तैर्वाग्भिरिष्टोमहेश्वरः

यस्मात्परिगतैर्गीतः पञ्चभिस्तैर्महात्मभिः।
स्वरस्तु पञ्चमः स्निग्धस्तस्मात्कल्पस्तु पञ्चमः॥ ४६॥

द्वाविंशस्तु तथा कल्पो विज्ञेयोमेघवाहनः। यत्र विष्णुर्महाबाहुर्मेघो भूत्वा महेश्वरम्
दिव्यंवर्षसहस्रन्तु अवहत्कृत्तिवाससम्। तस्यनिश्वसमानस्य भाराक्रान्तस्यवैमुखात्
निर्जगाम महाकायःकालो लोकप्रकालनः। यस्त्वयंपठ्यतेविप्रैर्विष्णुर्वै कश्यपात्मजः
त्रयोविंशतिमः कल्पो विज्ञेयश्चिन्तकस्तथा। प्रजापतिसुतः श्रीमांश्चितिश्चमिथुनंचतौ

ध्यायतो ब्रह्मणश्चैव यस्माच्चिन्ता समुत्थिता।
तस्मात्तु चिन्तकः सो वै (कोऽसौ) कल्पः प्रोक्तः स्वयम्भुवा॥ ५४॥

चतुर्विंशतिमश्चापि ह्याकूतिः कल्प उच्यते। आकूतिश्च तथा देवी मिथुनं संबभूवह
प्रजाःस्रष्टुंतथाऽऽकूतिंयस्मादाहप्रजापतिः। तस्मात्स पुरुषोज्ञेयआकूतिःकल्पसंज्ञितः

पञ्चविंशतिमः कल्पो विज्ञातिः परिकीर्तितः।
विज्ञातिश्च तथा देवी मिथुनं संप्र(सम)सूयत॥५७॥

ध्यायतः पुत्रकामस्यमनस्यध्यात्मसंज्ञितम्। विज्ञातंवैसमासेनविज्ञातिस्तुततःस्मृतः
षड्विंशस्तु ततः कल्पो मन इत्यभिधीयते। देवी च शंकरी नाम मिथुनं संप्रसूयते॥

प्रजा वै चिन्तमानस्यस्स्रष्टुकामस्य वै तदा । यस्मात्प्रजासंभवनादुत्पन्नस्तुस्वयंभुवा
तस्मात्प्रजासंभवनाद्भावनासंभवः स्मृतः । सप्तविंशतिमःकल्पो भावो वै कल्पसंज्ञितः
पौर्णमासी तथा देवी मिथुनं समपद्यत । प्रजा वै स्रष्टुकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥

ध्यायतस्तु परं ध्यानं परमात्मानमीश्वरम् ।

अग्निस्तु मण्डली भूत्वा रश्मिजालसमावृतः ॥६३॥

भुवं दिवं च विष्टभ्य दीप्यते स महावपुः । ततो वर्षसहस्रान्ते संपूर्णे ज्योतिमण्डले
आविष्टया सहोत्पन्नमपश्यत्सूर्यमण्डलम् । यस्माद्दृश्यो भूतानां ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥
दृष्टस्तु भगवान्देवः सूर्यः संपूर्णमण्डलः । सर्वे योगाश्चमन्त्राश्चमण्डलेनसहोत्थिताः
यस्मात्कल्पो ह्ययं दृष्टस्तस्मात्तंदर्शमुच्यते(?) । यस्मान्मनसि संपूर्णोब्रह्मणःपरमेष्ठिनः
पुरावैभगवान्सोमःपौर्णमासीततःस्मृता । तस्मात्तुपर्वदर्शे वै पौर्णमासं च योगिभिः
उभयोःपक्षयोर्योज्यमात्मनोहितकाम्यया । दर्शं च पौर्णमासं च ये यजन्तिद्विजातयः
न तेषां पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन । योऽनाहिताग्निः प्रयतो वीराध्वानंगतोऽपिवा

समाधाय मनस्तीव्रं मन्त्रमुच्चारयेच्छनैः ।

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे ॥७१॥

त्वं पाशगन्धर्वशिवं पूषाविधत्तपासिना । इत्येव मन्त्रं मनसा सम्यगुच्चारयेद्द्विजः ॥
अग्निं प्रविशते यस्तुरुद्रलोकं स गच्छति । सोमश्चाग्निस्तु भगवान्कालोरुद्रइतिश्रुतिः
तस्माद्यः प्रविशेदग्निं स रुद्रान्न निवर्तते । अष्टाविंशतिमः कल्पो बृहदित्यभिसंज्ञितः
ब्रह्मणः पुत्रकामस्य स्रष्टुकामस्य वै प्रजाः । ध्यायमानस्य मनसा बृहत्साम रथंतरम्
यस्मात्तत्र समुत्पन्नो बृहतः सर्वतोमुखः । तस्मात्तु बृहतः कल्पो विज्ञेयस्तत्त्वचिन्तकैः
अष्टाशीतिसहस्राणां योजनानांप्रमाणतः । रथन्तरं तु विज्ञेयं परमं सूर्यमण्डलम् ॥७७
तस्मादण्डं तु विज्ञेयमभेद्यं सूर्यमण्डलम् । यत्सूर्यमण्डलं चापि बृहत्साम तु भिद्यते
भित्त्वा चैनं द्विजा यान्तियोगात्मानोदृढव्रताः । संघातमुपनीताश्चअन्ये कल्पारथंतरे
इत्येतत्तु मया प्रोक्तंचित्रमध्यात्मदर्शनम् । अतः परंप्रवक्ष्यामि कल्पानांविस्तरंशुभम्

जिह्वे स्तुहि(?) जगत्त्रितयैकनाथं नारायणं परमकारुणिकं सदैव ।

प्राचीनकर्मनिगडार्गलबन्धमुक्त्यै नान्यः पुराणपुरुषादपरोऽस्त्युपायः ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे कल्पनिरूपणं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

कल्पसंख्यानिरूपणम्

ऋषय ऊचुः

अत्यद्भुतमिदं, सर्वंकल्पानां ते महामुने । रहस्यं वै समाख्यातं मन्त्राणांचप्रकल्पनम् ।
न तवाविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषुविद्यते । तस्माद्विस्तरतःसर्वाः कल्पसंख्याब्रवीहिनः

वायुरुवाच

अत्र वः कथयिष्यामिकल्पसंख्यायथा तथा । युगाग्रं च वर्षाग्रं तु ब्रह्मणः परमेष्ठिनः
एक कल्पसहस्रं तु ब्रह्मणोऽब्दः प्रकीर्तितः । एतदष्टसहस्रं तु ब्रह्मणस्तद्युगं स्मृतम्
एकं युगसहस्रं तु सवनं तत्प्रजापतेः । सवनानां सहस्रं तु द्विगुणं त्रिवृतं तथा ॥५॥
ब्रह्मणःस्थितिकालस्यचैतत्सर्वंप्रकीर्तितम् । तस्यसंख्यांप्रवक्ष्यामिपुरस्ताद्वैयथाक्रमम्
अष्टाविंशतिर्ये कल्पा नामतःपरिकीर्तिताः । तेषां पुरस्ताद्वक्ष्यामिकल्पसंज्ञायथाक्रमम्
रथंतरस्य साम्नस्तुउपरिष्टान्निबोधत । कल्पान्ते नामधेयानि मन्त्रोत्पत्तिश्चयस्यया
एकोनत्रिंशकःकल्पोविज्ञेयः श्वेतलोहितः । यस्मिंस्तत्परमं ध्यानंध्यायतोब्रह्मणस्तथा
श्वेतोष्णीषःश्वेतमाल्यःश्वेताम्बरधरःशिखी । उत्पन्नस्तु महातेजाःकुमारःपावकोपमः
भीमं मुखं महारौद्रं सुघोरं श्वेतलोहितम् । दीप्तं दीप्तेन वपुषा महास्यं श्वेतवर्चसम्
तं दृष्ट्वा पुरुषः श्रीमान्ब्रह्मा वै विश्वतोमुखः । कुमारं लोकधातारं विश्वरूपं महेश्वरम्
पुराणपुरुषं देवं विश्वात्मा योगिनां वरम् । ववन्दे देवदेवेशं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥
हृदि कृत्वा महादेवं परमात्मानमीश्वरम् । सद्योजातं ततो ब्रह्मब्रह्मा वै समचिन्तयत्

ज्ञात्वा मुमोच देवेशोऽट्टहासं जगत्पतिः । ततोऽस्य पार्श्वतःश्वेताऋषयोब्रह्मवर्चस
प्रादुर्भूता महात्मानः श्वेतमाल्यानुलेपनाः । सुनन्दो नन्दकश्चैव विश्वनन्दोऽथनन्दनः
शिष्यास्ते वै महात्मानोयैस्तुब्रह्मततोवृतम् । तस्याग्रेश्वेतवर्णाभः श्वेतनामामहामुनिः
विजज्ञेऽथ महातेजा यस्माज्जज्ञे नरस्त्वसौ तत्र ते ऋषयः सर्वे सद्योजातं महेश्वरम्
तस्माद्विश्वेश्वरंदेवं ये प्रपद्यन्ति वै द्विजाः । प्राणायामपरायुक्ता ब्रह्मणिव्यवसायिनः
ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्चसः । ब्रह्मलोकमतिक्रम्य ब्रह्मलोकं व्रजन्ति च ॥

वायुरुवाच

ततस्त्रिंशत्तमः कल्पो रक्तो नाम प्रकीर्तितः । रक्तो यत्र महातेजा रक्तवर्णमधारयत् ॥
ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारो रक्तविग्रहः ॥
रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तनेत्रः प्रतापवान् । स तं दृष्ट्वा महादेवं कुमारं रक्तवाससम् ॥
ध्यानयोगं परं गत्वा बुबुधे विश्वमीश्वरम् । स तं प्रणम्य भगवन्ब्रह्मा परमयन्त्रितः
वामदेवं ततो ब्रह्मा ब्रह्मात्मकं व्यचिन्तयत् । एवं ध्यातो महादेवो ब्रह्मणा परमेष्ठिना
मनसा प्रीतियुक्तेन पितामहमथाब्रवीत् । ध्यायता पुत्रकामेन(ण) यस्मात्तेऽहंपितामह
दृष्टः परमया भक्त्याध्यानयोगेन सत्तम । तस्माद्ध्यानं परं प्राप्यकल्पेकल्पेमहातपाः

वेत्स्यसे मां महासत्त्व ! लोकधातारमीश्वरम् ।
एवमुक्त्वा ततः शर्वः अ(र्वस्त्व) ट्टहासं मुमोच ह ॥२८॥

ततस्तस्य महात्मानश्चत्वारश्च कुमारकाः । संबभूवुर्महात्मानो विरैजुः शुद्धबुद्धयः ॥
विरजश्चविवाहुश्चविशोको विश्वभावनः । ब्रह्मण्याब्रह्मणस्तुल्यावीराअध्यवसायिन
रक्ताम्बरधरा सर्वे रक्तमाल्यानुलेपनाः । रक्तभस्मानुलिप्ताङ्गा रक्तास्या रक्तलोचनाः
ततो वर्षसहस्रान्ते ब्रह्मण्या व्यवसायिनः । गृणन्तश्चमहात्मानो ब्रह्म तद्वामदैविकम्

अनुग्रहार्थं लोकानां शिष्याणां हितकाम्यया ।
धर्मोपदेशमखिलं कृत्वा ते ब्राह्मणाः स्वयम् ॥३३॥

पुनरेव महादेवं प्रविष्टा रुद्रमव्ययम् । येऽपि चान्ये द्विजश्रेष्ठा युञ्जाना वाममीश्वरम्
प्रपद्यन्ति महादेवं तद्भक्तास्तत्परायणाः । ते सर्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्चसः ॥

रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥३५॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे कल्पसंख्यानिरूपणंनाम द्वाविंशोऽध्यायः

त्रयोविंशोऽध्यायः

माहेश्वरावतारयोगवर्णनम्

वायुरुवाच

एकत्रिंशत्तमः कल्पः पीतवासा इति स्मृतः। ब्रह्मा यत्र महातेजाः पीतवर्णत्वमागतः
ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारः पीतवस्त्रवान्
पीतगन्धानुलिप्ताङ्गः पीतमाल्यधरो युवा। पीतयज्ञोपवीतश्च पीतोष्णीषो महाभुजः
तं दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्तं ब्रह्मालोकेश्वरं प्रभुम्। मनसा लोकधातारं ववन्दे परमेश्वरम् ॥
ततो ध्यानगतस्तत्र ब्रह्मामाहेश्वरीं पराम्। अपश्यद्गां विरूपां च महेश्वरमुखच्युताम्
चतुष्पदां चतुर्वक्त्रांचतुर्हस्तां चतुःस्तनीम्। चतुर्नेत्रां चतुःश्रृङ्गींचतुर्दंष्ट्रां चतुर्मुखीम्
द्वात्रिंशल्लोकसंयुक्तामीश्वरीं सर्वतोमुखीम्। स तां दृष्ट्वा महातेजा महादेवींमहेश्वरीम्
पुनराह महादेवः सर्वदेवनमस्कृतः। मतिः स्मृतिर्बुद्धिरिति गायमानः पुनः पुनः ॥८॥
एह्येहीति महादेवीं सोत्तिष्ठत्प्राञ्जालिर्भृशम्। विश्वमावृत्य योगेन जगत्सर्वं वशीकुरु
अथोवाच महादेवोरुद्राणी त्वं भविष्यसि। ब्राह्मणानां हितार्थायपरमार्थेभविष्यसि
अथैनां पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः। प्रददौ देवदेवेशश्चतुष्पादां महेश्वरीम् ॥११
ततस्तां ध्यानयोगेन विदित्वा परमेश्वरीम्। ब्रह्मा लोकनमस्कार्यः प्रपद्यतांमहेश्वरीम

गायत्रीं तु ततो रौद्रीं ध्यात्वा ब्रह्मा सुयन्त्रितः।
इत्येतां वैदिकीं विद्यां रौद्रीं गायत्रीमर्पिताम् ॥१३॥

जपित्वा तु महादेवीं रुद्रलोकनमस्कृताम्। प्रपन्नस्तु महादेवं ध्यानयुक्तेन चेतसा ॥

ततस्तस्य महादेवो दिव्यं योगं पुनः स्मृतम्। ऐश्वर्यज्ञानसम्पत्ति वैराग्यं च ददौपुनः
अथाट्टहासं मुमुचे भीषणं दीप्तमीश्वरः। ततोऽस्य सर्वतो दीप्ताःप्रादुर्भूताः कुमारकाः
पीतमाल्याम्बरधराःपीतगन्धविलेपनाः। पीतोष्णीषशिराश्चैवपीतास्याः पीतमूर्धजाः
ततो वर्षसहस्रान्तउषित्वाविमलौजसः। योगात्मानस्ततः स्नाताब्राह्मणानांहितैषिणः
धर्मयोगबलोपेता ऋषीणां दीर्घसत्रिणम्। उपदिश्य तु ते योगं प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम्॥
एवमेतेनविधिनाप्रपन्नायेमहेश्वरम्। अन्येऽपि नियतात्मानोध्यानयुक्ता जितेन्द्रियाः॥
ते सर्वे पापमुत्सृज्य विरजा ब्रह्मवर्चसः। प्रविशन्तिमहादेवं रुद्रं ते त्वपुनर्भवाः ॥२९

वायुरुवाच

ततस्तस्मिन्गते कल्पे पीतवर्णे स्वयंभुवः। पुनरन्यः प्रवृत्तस्तु सितकल्पोहि नामतः॥
एकार्णवे तदा वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके। स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्माचिन्तयामासदुःखितः॥
तस्य चिन्तयमानस्यपुत्रकामस्य वै प्रभोः। कृष्णः समभवद्वर्णो ध्यायतःपरमेष्ठिनः॥
अथापश्यन्महातेजाः प्रादुर्भूतं कुमारकम्। कृष्णवर्णं महावीर्यं दीप्यमानंस्वतेजसा॥
कृष्णाम्बरधरोष्णीषं कृष्णयज्ञोपवीतिनम्। कृष्णेनमौलिनायुक्तंकृष्णस्रगनुलेपनम्॥
स तं दृष्ट्वा महात्मानममरं घोरमन्त्रिणम्। ववन्दे देवदेवेशंविश्वेशं कृष्णपिङ्गलम्॥
प्राणायामपरःश्रीमान्हृदिकृत्वा महेश्वरम्। मनसा ध्यानसंयुक्तं प्रपन्नस्तुयतीश्वरम्॥
अघोरेति ततो ब्रह्मा ब्रह्म एवानुचिन्तयन्। एवं वै ध्यायतस्तस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥

मुमोच भगवान्रुद्रः अ(द्रस्त्व)ट्टहासं महास्वनम्।
अथास्य पार्श्वतः कृष्णाः कृष्णस्रगनुलेपनाः ॥३०॥
चत्वारस्तु महात्मानः संबभूवुः कुमारकाः।
कृष्णाः कृष्णाम्बरोष्णीषाः कृष्णास्याः कृष्णवाससः ॥३१॥

तैश्चाट्टहासः सुमहान्हुंकारश्चैव पुष्कलः। नमस्कारश्च सुमहान्पुनः पुनरुदीरितः॥
ततो वर्षसहस्रान्तेयोगात्तत्पारमेश्वरम्। उपासित्वामहाभागाःशिष्येभ्यः प्रददुस्ततः॥
योगेन योगसंपन्नाःप्रविश्यमनसा शिवम्। अमलंनिर्गुणंस्थानंप्रविष्टाविश्वमीश्वरम्॥
एवमेतेन योगेनयेचाप्यन्ये द्विजातयः। स्मरिष्यन्तिविधानज्ञा गन्तारो रुद्रमव्ययम्॥

ततस्तस्मिन्गते कल्पे कृष्णरूपे भयानके। अन्यःप्रवर्तितःकल्पो विश्वरूपस्तु नामतः॥
विनिवृत्ते तु संहारे पुनः सृष्टे चराचरे। ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः॥
प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती। विश्वमाल्याम्बरधरंविश्वयज्ञोपवीतिनम्॥

विश्वोष्णीषं विश्वगन्धं विश्वस्थानं महाभुजम्।
अथ तं मनसा ध्यात्वा युक्तात्मा वै पितामहः॥३६॥

ववन्दे देवमीशानं सर्वेशं सर्वगं प्रभुम्। ओमीशाननमस्तेऽस्तु महादेवनमोऽस्तु ते॥
एवं ध्यानगतंतत्र प्रणमन्तं पितामहम्। उवाचभगवानीशः प्रीतोऽहंतेकिमिच्छसि॥
ततस्तुप्रणतोभूत्वा वाग्भिःस्तुत्वा महेश्वरम्। उवाचभगवान्ब्रह्माप्रीतःप्रीतेन चेतसा
यदिदं विश्वरूपं ते विश्वगं विश्वमीश्वरम्। एतद्वेदितुमिच्छामि कश्चायं परमेश्वरः॥
कैषा भगवती देवीचतुष्पादाचतुर्मुखी। चतुःशृङ्गी चतुर्वक्त्राचतुर्दन्ता चतुःस्तनी॥

चतुर्हस्ता चतुर्नेत्रा विश्वरूपा कथं स्मृता।
किंनामधेया कोऽस्यात्मा किंवीर्या वाऽपि कर्मतः॥४५॥

महेश्वर उवाच

रहस्यं सर्वमन्त्राणां पावनं पुष्टिवर्धनम्। शृणुष्वैतत्परं गुह्यमादिसर्गे यथातथम्॥

अयं यो वर्तते कल्पो विश्वरूपस्त्वसौ स्मृतः।
यस्मिन्भवादयो देवाः षट्त्रिंशन्मनवः स्मृताः॥४७॥

ब्रह्मस्थानमिदं वाऽपियदाप्राप्तं त्वया विभो। तदाप्रभृति कल्पश्चत्रयस्त्रिंशत्तमोह्ययम्
शतं शतसहस्राणामतीता ये स्वयंभुवः। पुरस्तात्तव देवेश ताञ्शृणुष्व महामुने॥
आनन्दस्तु स विज्ञेय आनन्दत्वे महातपः। गालव्यगोत्रतपसा मम पुत्रत्वमागतः
त्वयियोगश्चसांख्यंचतपोविद्याविधिःक्रिया। ऋतंसत्यंचयद्ब्रह्मअहिंसासंततिक्रमाः

ध्यानं ध्यानवपुः शान्तिर्विद्याऽविद्या मतिर्धृतिः।
कान्तिः शान्तिः स्मृतिर्मेधा लज्जा शुद्धिः सरस्वती॥५२॥
तुष्टिः पुष्टिः क्रिया चैव लज्जा शान्तिः प्रतिष्ठिता॥५३॥

षड्विंशत्तद्गुणाह्येषाद्वात्रिंशाक्षरसंज्ञिता। प्राकृतिंविद्धितांब्रह्मंस्त्वत्प्रसूतिं महेश्वरीम्

सैषा भगवती देवी तत्प्रसूतिः स्वयंभुवः । चतुर्मुखी जगद्योनिःप्रकृतिर्गौः प्रकीर्तित

प्रधानं प्रकृतिं चैव यदाहुस्तत्त्वचिन्तकाः ॥५६॥

अजामेतां लोहितां शुक्लकृष्णां विश्वं संप्रसृजमानां सुरूपाम् ।

अजोऽहं वै बुद्धिमान्विश्वरूपां गायत्रीं गां विश्वरूपां हि बुद्ध्वा ॥५७॥

एवमुक्त्वा महादेवःअ(वस्त्व)ट्टहासमथाकरोत् । वलितास्फोटितरवंकहाकहनदंतथा

ततोऽस्यपार्श्वतोदिव्यासर्वरूपाःकुमारकाः । जटीमुण्डीशिखण्डीचअर्धमुण्डश्चजज्ञि

ततस्ते तु यथोक्तेन योगेन सुमहौजसः ॥

दिव्यं वर्षसहस्रं तु उपासित्वा महेश्वरम् ॥६०॥

धर्मोपदेशं नियतं कृत्वा योगमयं दृढम् । शिष्टानां नियतात्मानः प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम्

वायुरुवाच

ततो विस्मयमापन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः । प्रपन्नस्तु महादेवं भक्तियुक्तेन चेतसा ॥

उवाच वचनं सर्वं श्वेतत्वं ते कथं विभो ॥६२॥

भगवानुवाच

श्वेतः कल्पो यदा ह्यासीदहं श्वेतस्ततोऽभवम् ।

श्वेतोष्णीषः श्वेतमाल्यः श्वेताम्बरधरः शिवः ॥६३॥

श्वेतास्थिमांसरोमा च श्वेतत्वक्श्वेतलोहितः ।

तेन नाम्ना च विख्यातः श्वेतकल्पस्तदा ह्यसौ ॥६४॥

मत्प्रसादाच्च देवेशः श्वेताङ्गः श्वेतलोहितः । श्वेतवर्णा तदा ह्यासीद्गायत्रीब्रह्मसंज्ञिता

यस्मादहं च देवेश त्वया गुह्ये पदे स्थितः । विज्ञातः स्वेनतपसा सद्योजातःसनातनः

सद्योजातेति ब्रह्मैतद् गुह्यं चैव प्रकीर्तितम् ॥६६॥

तस्माद्गुह्यत्वमापन्नंयेवेत्स्यन्तिद्विजातयः । तत्समीपंगमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्

यदाऽहं च पुनस्त्वासंलोहितोनामनामतः । स मत्कृतेनवर्णेनकल्पो वै लोहितःस्मृतः

तदालोहितमांसास्थिलोहितक्षीरसंनिभा । लोहिताक्षस्तनवतीगायत्री गौःप्रकीर्तिता

ततोऽस्य लोहितत्वेन वर्णस्य च विपर्यये । वामत्वाच्चैव योगस्यवामदेवत्वमागतः

तथापि हि महासत्त्वत्वयाऽहंनियतात्मना । विज्ञातःश्वेतवर्णेनतस्माद्वर्णोत्तमः स्मृतः

ततोऽहं वामदेवेति ख्यातिं यातो महीतले ॥७१॥

ये चापि वामदेवत्वं ज्ञास्यन्तीह द्विजायः । विज्ञाय चेमां रुद्राणीं गायत्रींमातरंविभो

सर्वपापविनिर्मुक्तो विरजा ब्रह्मवर्चसः । रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥

यदा तु पुनरेवायं कृष्णवर्णो भयानकः । मत्कृतेन च वर्णेन मत्कल्पः कृष्ण उच्यते

तत्राहं कालसंकाशःकालोलोकप्रकाशनः । विज्ञातोऽहंत्वयाब्रह्मन् घोरोघोरपराक्रमः

तस्माद्घोरत्वमापन्नंयेमांवेत्स्यन्तिभूतले । तेषामघोरःशान्तश्च भविष्याम्यहमव्ययः

तस्माद्विश्वत्वमापन्नं ये मां पश्यन्तिभूतले । तेषां शिवश्चसौम्यश्चभविष्यामिसदैवतु

तस्माच्च विश्वरूपो वै कल्पोऽयंसमुदाहृतः । विश्वरूपा तथा चेयंसावित्रीसमुदाहृता

सर्वरूपास्तथा चे मे संवृत्ता मम पुत्रकाः ।

चत्वारस्ते समाख्याताः पादा वै लोकसंमताः ॥७६॥

तस्माच्चसर्ववर्णत्वंप्रजात्वं मे भविष्यति । सर्वभक्ष्या च मेध्या च वर्णतश्चभविष्यति

मोक्षोधर्मस्तथाऽर्थश्चकामश्चेति चतुष्टयम् ।तस्माद्वेत्ता च वेद्यं च चतुर्धावैभविष्यति

भूतग्रामाश्चचत्वारआश्रमाश्चतु(त्वा)रस्तथा।धर्मस्यपादाश्चत्वारश्चत्वारोममपुत्रकाः

तस्माच्चतुर्युगावस्थं जगद्वै सचराचरम् । चतुर्धाऽवस्थितं चैव चतुष्पादं भविष्यति

भूर्लोकोऽथभुवर्लोकःस्वर्लोकोऽथमहस्तथा । जनस्तपश्चशान्तश्च रुद्रलोकस्ततःपरम्

अष्टाक्षरः स्मृतो लोकः स्थाने स्थाने तदक्षरम् ।

भुवं दिवं परं चैव पादाश्चत्वार एव च ॥८५॥

भूर्लोकःप्रथमःपादोभुवर्लोकस्ततः परम् । स्वर्लोको हि तृतीयस्तु चतुर्थस्तुमहःस्मृतः

तत्र लोकः परं स्थानं परं तद्योगिनां स्मृतम् ॥८६॥

निर्ममा निरहंकाराः कामक्रोधविवर्जिताः । द्रक्ष्यन्ते तद्विदो युक्ताध्यानतत्परयुञ्जकाः

यस्माच्चतुष्पदा ह्येषात्वया दृष्टा सरस्वती । तस्माच्च पशवःसर्वेभविष्यन्तिचतुष्पदाः

तस्माच्चैषां भविष्यन्ति चत्वारो वै पयोधराः ॥८८॥

सोमश्चमन्त्रसंयुक्तोयस्मान्ममसुखाच्च्युतः । जीवःप्राणभृतांब्रह्मन्सर्वःपीत्वास्तनैर्धृतम्

तस्मात्सोममयंचैतदमृतं चैव संज्ञितम् । चतुष्पादा भविष्यन्ति श्वेतत्वंचास्यतेनतः
यस्माच्चैवंक्रियाभूत्वाद्विपादावैमहेश्वरी । दृष्टापुनस्त्वया चैषासावित्रीलोकभाविनी
तस्माद्वै द्विपदाः सर्वे द्विस्तनाश्च नराः स्मृताः ॥९१
यस्माच्चैवमजा भूत्वा सर्ववर्णा महेश्वरी । दृष्टा त्वया महासत्त्वा सर्वभूतधरा परा
तस्मात्तु विश्वरूपत्वमजानां वै भविष्यति । अजश्चैव महातेजा विश्वरूपो भविष्यति
अमोघरेताः सर्वत्र मुखे चास्य हुताशनः । तस्मात्सर्वगतो मेध्यः पशुरूपी हुताशनः ॥
तपसा भावितात्मानो ये वै द्रक्ष्यन्ति वै द्विजाः ।
ईशित्वे च शिवत्वे च सर्वगं सर्वतः स्थिरम् ॥९५॥
रजस्तमोविनिर्मुक्तास्त्यक्त्वामानुष्यकंभुवि । मत्समीपंगमिष्यन्तिपुनरावृत्तिदुर्लभम्
इत्येवमुक्तो भगवान्ब्रह्मा रुद्रेण वै द्विजाः । प्रणम्य प्रयतो भूत्वा पुनराह पितामहः ॥

ब्रह्मोवाच

भगवन्देवदेवेश विश्वरूपो(प) महेश्वरः । इमास्तव महादेव तनवो लोकवन्दिताः
विश्वरूप ! महासत्त्व ! कस्मिन्काले महाभुज !
कस्यां वा युगसंभूत्यां द्रक्ष्यन्ति त्वां द्विजातयः ॥९९॥
केन वा तत्त्वयोगेन ध्यानयोगेन केन वा तनवस्ते महादेव शक्या द्रष्टुं द्विजातिभिः

भगवानुवाच

तपसा नैव योगेन दानधर्मफलेन वा । न तीर्थफलयोगेनक्रतुभिर्वा सदक्षिणैः ॥१०१॥
न वेदाध्यापनैर्वाऽपि न वित्तेन निवेदनैः । शक्योऽहं मानुषैर्द्रष्टुमृतेध्यानात्परं न हि
साध्योनारायणश्चैवविष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः । भविष्यतीह नाम्ना तु वाराहो नामविश्रुतः
चतुर्बाहुश्चतुष्पादश्चतुर्नेत्रश्चतुर्मुखः । तदा संवत्सरो भूत्वा यज्ञरूपो भविष्यति ॥
षडङ्गश्च त्रिशीर्षश्च त्रिस्थानस्त्रिशरीरवान् ॥१०४॥
कृतंत्रेताद्वापरंचकलिश्चैवचतुर्युगम् । एतस्यपादाश्चत्वारःअ(रश्चा) ङ्गानिक्रतवस्तथा
भुजाश्च वेदाश्चत्वारऋतुः संधिमुखानि च । द्वे मुखे द्वे च अयने नेत्राश्चचतुरस्तथा
शिरांसि त्रीणि पर्वाणि फाल्गुन्याषाढकृत्तिकाः ।

दिव्यान्तरीक्षभौमानि त्रीणि स्थानानि यानि तु ॥
संभवः प्रलयश्चैव आश्रमौ द्वौ प्रकीर्तितौ ॥१०७॥
स यदा कालरूपाभो वराहत्वे व्यवस्थितः ।
भविष्यति यदा साध्यो विष्णुर्नारायणः प्रभुः ॥१०८॥

तदा त्वमपि देवेश चतुर्वक्त्रो भविष्यसि । ब्रह्मलोकनमस्कार्यो विष्णुर्नारायणःप्रभुः एकार्णवे प्लवे चैव शयानं पुरुषं हरिम् । यदाद्रक्ष्यसि देवेशं ध्यानयुक्तं महामुनिम् तदा वां मम योगेन मोहितौ नष्टचेतसौ । अन्योन्यस्पर्धिनौ रात्रावविज्ञाय परस्परम् एकैकस्योदरस्थांस्तुदृष्ट्वालोकाश्चराचरान् ।विस्मयंपरमंगत्वाध्यानाद्बुद्ध्वातुमानुषौ

ततस्त्वं पद्मसंभूतः पद्मनाभः सनातनः ।
पद्माङ्कितस्तदा कल्पे ख्यातिं यास्यसि पुष्कलाम् ॥११३॥

ततस्तस्मिंस्तदा कल्पेवाराहे सप्तमे प्रभोः । पुनर्विष्णुर्महातेजाःकालो लोकप्रकालनः

मनुर्वैवस्वतो नाम तव पुत्रो भविष्यति ॥११४॥

तदा चतुर्युगावस्थेकल्पे तस्मिन्युगान्तके । भविष्यामिशिखायुक्तःश्वेतोनाममहामुनिः हिमवच्छिखरेरम्ये छागलेपर्वतोत्तमे । चतुःशिष्याः शिवे युक्ता भविष्यन्ति तदा मम श्वेतश्चैव शिखश्चैव श्वेताश्वःश्वेतलोहितः । चत्वारस्ते महात्मानो ब्राह्मणावेदपारगाः ततस्ते ब्रह्मभूयिष्ठा दृष्ट्वा ब्रह्मगतिं पराम् । तत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् पुनस्तु मम देवेशो द्वितीयद्वापरे प्रभुः । प्रजापतिर्यदा व्यासः सत्यो नाम भविष्यति तदा लोकहितार्थाय सुतारोनामनामतः । भविष्यामिकलौतस्मिँल्लोकानुग्रहकारणात्

तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्या नाम नामतः ।
दुन्दुभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तथा ॥ १२१ ॥

प्राप्य योगं तथा ज्ञानं ब्रह्म चैव सनातनम् । रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः । तदा ह्यहं भविष्यामि दमनस्तुयुगान्तिके तत्रापि च भविष्यन्ति चत्वारोममपुत्रकाः । विशोकश्च विकेशश्चविशापःशापनाशनः तेऽपि तेनैव मार्गेण योगोक्तेन महौजसः । रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्

चतुर्थे द्वापरे चैव यदाव्यासोऽङ्गिराःस्मृतः । तदाऽप्यहंभविष्यामिसुहोत्रीनामनामतः
तत्रापि मम सत्पुत्राश्चत्वारश्च तपोधनाः ॥ १२६ ॥
भविष्यन्ति द्विजश्रेष्ठा योगात्मानो दृढव्रताः । सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमो दुरतिक्रमः॥
प्राप्य योगगतिं सूक्ष्मां विमला दग्धकिल्बिषाः ।
तेऽपि तेनैव मार्गेण गमिष्यन्ति न संशयः ॥ १२८ ॥
पञ्चमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सवितायदा । तदा चापि भविष्यामि कङ्कोनाममहातपाः
अनुग्रहार्थं लोकानां योगात्मा नैककर्मकृत् । चत्वारस्तुमहाभागाविरजाः शुद्धयोनयः
पुत्रा मम भविष्यन्ति योगात्मानो दृढव्रताः । सनः सनन्दनश्चैव प्रभुर्यस्य सनातनः॥
ऋतुः सनत्कुमारश्च निर्ममा निरहंकृताः । मत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥
परिवर्ते पुनःषष्ठेमृत्युर्व्यासोयदाविभुः । तदाऽप्यहं भविष्यामिलोकाक्षिर्नाम नामतः
शिष्याश्च मम ते दिव्या योगात्मानो दृढव्रताः ।
भविष्यन्ति महाभागाश्चत्वारो लोकसम्मताः ॥ १३४ ॥
सुधामा विरजश्चैव शङ्खपाद्रव एव च । योगात्मानो महात्मानस्तेसर्वेदग्धकिल्बिषाः
तेऽपि तेनैव मार्गेण गमिष्यन्ति न संशयः । सप्तमे परिवर्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः
विभुर्नाममहातेजाः पूर्वमासीच्छतक्रतुः । तदाऽप्यहंभविष्यामिकलौतस्मिन्युगान्तिके
जैगीषव्येति विख्यातःसर्वेषांयोगिनांवरः । तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्तियुगे तदा
सारस्वतः सुमेधश्च वसुवाहः सुवाहनः । तेऽपि तेनैव मार्गेण ध्यानयुक्तिसमाश्रिताः
भविष्यन्ति महात्मानो रुद्रलोकपरायणाः । वसिष्ठश्चाष्टमे व्यासः परिवर्ते भविष्यति
कपिलश्चाऽऽसुरिश्चैव तथा पञ्चशिखोमुनिः । वाग्वलिश्चमहायोगीसर्वएवमहौजसः
प्राप्य माहेश्वरं योगं ध्यानिनोदग्धकल्मषाः । मत्समीपंगमिष्यन्तिपुनरावृत्तिदुर्लभम्
परिवर्तेऽथ नवमे व्यासः सारस्वतो यदा ।
तदा चाहं भविष्यामि ऋषभो नाम नामतः ॥ १४३ ॥
तत्रापि मम ते पुत्राभविष्यन्तिमहौजसः । पराशरश्च गार्ग्यश्च भार्गवोह्यङ्गिरास्तथा
भविष्यन्तिमहात्मानो ब्राह्मणावेदपारगाः । सर्वे तपोबलोत्कृष्टाः शापानुग्रहकोविदाः

तेऽपि तेनैव मार्गेण योगोक्तेन तपस्विनः। ध्यानमार्गं समासाद्य गमिष्यन्तितथैवते
दशमे द्वापरेव्यासस्त्रिधामानाम नामतः। भविष्यति यदा विप्रास्तदाऽहं भविता पुनः
हिमवच्छिखरे रम्ये भृगुतुङ्गे नगोत्तमे। नाम्ना भृगोस्तु शिखरं तस्मात्तच्छिखरं भृगुः
तत्रैव मम ते पुत्रा भविष्यन्ति दृढव्रताः। वलवन्धुर्निरा(र)मित्रः केतुश्रृङ्गस्तपोधनः॥

योगात्मानो महात्मानो ध्यानयोगसमन्विताः।

रुद्रलोकं गमिष्यन्ति तपसा दग्धकल्मषाः॥ १५०॥

एकादशे द्वापरे तु तिष्ठद्व्यासोभविष्यति। तदाऽप्यहं भविष्यामिगङ्गाद्वारे कलेर्धुरि
उग्रा नाम महानादास्तत्रैवसमपुत्रकाः। भविष्यन्ति महौजस्काःसुवृत्तालोकविश्रुताः
लम्वोदरश्च लम्वश्च लम्वाक्षोलम्वकेशकः। प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकायसंस्थिताः

तेऽपि तेनैव मार्गेण गमिष्यन्ति परां गतिम्॥ १५३॥

द्वादशे परिवर्ते तु शततेजा महामुनिः। भविष्यति महासत्वो व्यासः कविवरोत्तमः
ततोऽप्यहं भविष्यामि अत्रिर्नामयुगान्तिके। हैमकं वनमासाद्य योगमास्थाय भूतले
अत्रापि मम ते पुत्रा भस्मस्नानानुलेपनाः। भविष्यन्ति महायोगा रुद्रलोकपरायणाः
सर्वज्ञः समवुद्धिश्च साध्यः सर्वस्तथैवच। रुद्रलोकं गमिष्यन्ति ध्यानयोगपरायणाः
त्रयोदशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमेण तु। धर्मो नारायणो नाम व्यासस्तु भविता यदा

तदाऽप्यहं भविष्यामि वालिर्नाम महामुनिः।

वालि(ल) खिल्याश्रमे पुण्ये पर्वते गन्धमादने॥ १५९॥

तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्तितपोधनाः। सुधामाकाश्यपश्चैववसिष्ठोविरजास्तथा
महायोगवलोपेता विमला ऊर्ध्वरेतसः। तेनैव योगमार्गेण गमिष्यन्ति न संशयः॥
यदा व्यासः सुरक्षस्तु पर्यायश्च चतुर्दश। तत्रापि पुनरेवाहं भविष्यामि युगान्तिके॥
वंशे त्वङ्गिरसः श्रेष्ठो गौतमोनाम योगवित्। तस्माद्भविष्यतेपुण्यंगौतमंनाम तद्वनम्
तत्रापिममतेपुत्राभविष्यन्तिकलौ तथा। अत्रिरुग्रतपाश्चैव श्रावणोऽथ स्त्रविष्ट(ष्ठ)कः
योगात्मानोमहात्मानो ध्यानयोगपरायणाः। तेऽपितेनैवमार्गेण रुद्रलोकनिवासिनः
ततः प्राप्ते पञ्चदशे परिवर्ते क्रमागते। आरुणिस्तु यदा व्यासो द्वापरे भविता प्रभुः॥

तदाऽप्यहं भविष्यामि नाम्ना वेदशिराद्विजाः । तत्रवेदशिरानामअस्त्रं तत्पारमेश्वरम्
भविष्यति महावीर्यं वेदशीर्षश्च पर्वतः । हिमवत्पृष्ठमाश्रित्य सरस्वत्या नगोत्तमे ॥
तदाऽपि मम ते पुत्रा भविष्यन्तितपोधनाः । कुणिश्चकुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः
योगात्मानो महात्मानो ब्रह्मिष्ठाश्चोर्ध्वरेतसः । तेऽपितेनैवमार्गेणरुद्रलोकं गतास्तु ते
ततः षोडशमे चापि परिवर्ते क्रमागते । व्यासस्तु संजयो नाम भविष्यति तदा प्रभुः
तदाऽप्यहं भविष्यामि गोकर्णोनामनामतः । तस्माद्भविष्यतेपुण्यंगोकर्णनाम तद्वनम्
तत्रापि मम ते पुत्राभविष्यन्तिमहौजसः । काश्यपो ह्युशनाचैव च्यवनोऽथवृहस्पतिः
तेऽपि तेनैव मार्गेण गमिष्यन्ति परं पदम् ॥१७३॥
ततः सप्तदशे चैव परिवर्ते क्रमागते । तदा भविष्यते व्यासो नाम्ना देवकृतञ्जयः ॥
तदाऽप्यहं भविष्यामि गुहावासीति नामतः ।हिमवच्छिखरे चैव महातुङ्गे महालये ॥
सिद्धक्षेत्रं महापुण्यं भविष्यति महालयम् ॥१७५॥
तत्रापि मम ते पुत्रा ब्रह्मज्ञा योगवेदिनः । भविष्यन्ति महात्मानो मर्मज्ञा निरहंकृताः
उतथ्यो वामदेवश्चमहाकालो महालयः । तेषां शतसहस्रं तु शिष्याणांध्यानसाधनम्
भविष्यन्तितदाकल्पेसर्वे ते ध्यानयुञ्जकाः । ते तु संनिहितायोगे हृदिकृत्वा महेश्वरम्
महालये पदं क्षिप्त्वा प्रविष्टाः शिवमव्ययम् ॥१७८॥
ये चान्येऽपि महात्मानःकालेतस्मिन्युगान्तिके । ध्यानयुक्तेनमनसाविमलाःशुद्धबुद्धयः
गत्वा महालयं पुण्यं दृष्ट्वा माहेश्वरं पदम् । तूर्णं तारयते जन्तून्दश पूर्वान्दशापरान्
आत्मानमेकविंशं च तारयित्वा महार्णवम् । मम प्रसादाद्यास्यन्तिरुद्रलोकं गतज्वराः
ततोऽष्टादशमश्चैव परिवर्तो यदा भवेत् । तदा ऋतञ्जयो नाम व्यासस्तुभविता मुनिः
तदाऽप्यहं भविष्यामि शिखण्डी नाम नामतः ॥१८२॥
सिद्धक्षेत्रे महापुण्ये देवदानवपूजिते । हिमवच्छिखरे पुण्ये शिखण्डी यत्र पर्वतः ॥
शिखण्डिनो वनं चापि ऋषिसिद्धनिषेवितम् ॥१८३॥
तत्रापिममतेपुत्राभविष्यन्तितपोधनाः । वाचस्रवाऋत्ती(ची)कश्चशावासश्च दृढव्रतः
योगात्मानोमहासत्वाः सर्वे ते वेदपारगाः । प्राप्य माहेश्वरंयोगं रुद्रलोकंव्रजन्तिते

ततस्त्वेकोनविंशे तु परिवर्ते क्रमागते। व्यासस्तु भविता नाम्नाभरद्वाजो महामुनिः
तत्राप्यहं भविष्यामि जटामालीति नामतः। हिमवच्छिखरे रम्ये जटायुर्यत्र पर्वतः॥

तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः।
हिरण्यनामा कौशिल्यः काक्षीवः कुथुमिस्तथा ॥१८८॥

ईश्वरा योगधर्माणः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः। प्राप्य माहेश्वरं योगं गमिष्यन्ति न संशयः
ततो विंशतिमे सर्गे परिवर्ते क्रमेण तु। वाचःश्रवाः स्मृतोव्यासोभविष्यतिमहामतिः
तदाऽप्यहं भविष्यामि ह्यट्टहासेति नामतः। अट्टहासप्रियाश्चापिभविष्यन्ति तदानराः
तत्रैव हिमवत्पृष्ठे त्वट्टहासो महागिरिः। भविष्यति महातेजाः सिद्धचारणसेवितः

तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः।
युक्तात्मानो महासत्वा ध्यानिनो नियतव्रताः ॥१९३॥

सुमन्तुर्बर्बरिर्विद्वान्सुबन्धुः कुशिकन्धरः। प्राप्यमाहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः॥
एकविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमेण तु। वाचस्पतिःस्मृतोव्यासोयदा स ऋषिसत्तमः
तदाऽप्यहं भविष्यामि दारुको नाम नामतः। तस्माद्भविष्यते पुण्यं देवदारुवनं महत्
तत्रापि मम ते पुत्राभविष्यन्ति महौजसः। प्लक्षो दाक्षायणिश्चैवकेतुमाली बकस्तथा
योगात्मानोमहात्मानोनियता ह्यूर्ध्वरेतसः। परमंयोगमास्थायरुद्रं प्राप्तास्तदाऽनघाः
द्वाविंशेपरिवर्ते तु व्यासःशुक्रायनो यदा। तदाऽप्यहंभविष्यामिवाराणस्यांमहामुनिः

नाम्ना वै लाङ्गली भीमो यत्र देवाः सवासवाः।
द्रक्ष्यन्ति मां कलौ तस्मिन्नवतीर्णं हलायुधम् ॥२००॥

तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्तिसुधार्मिकाः। तुल्यार्चिर्मधुपिङ्गाक्षः श्वेतकेतुस्तथैवच
तेऽपि माहेश्वरं योगंप्राप्यध्यानपरायणाः। विराजाब्रह्मभूयिष्ठा रुद्रलोकाय संस्थिताः
परिवर्ते त्रयोविंशे तृणबिन्दुर्यदा मुनिः। व्यासो भविष्यति ब्रह्मातदाऽहं भवितापुनः

श्वेतो नाम महाकायो मुनिपुत्रः सुधार्मिकः ॥२०३॥

तत्र कालं जरिष्यामि तदा गिरिवरोत्तमे। तेन कालंजरो नाम भविष्यति स पर्वतः
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः। ऊसिजो वृहदुक्थ्यश्चदेवलः कविरेवच

प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं गता हि ते ॥२०५॥

परिवर्ते चतुर्विंशेऽऋक्षोव्यासो भविष्यति । तत्राहंभविता ब्रह्मन्कलौ तस्मिन्युगान्तिके

शूली नाम महायोगी नैमिषे योगिवन्दिते ॥२०६॥

तत्रापि मम ते पुत्राभविष्यन्तितपस्विनः । शालिहोत्रोऽग्निवेश्यश्चयुवनाश्वःशरद्वसुः

तेऽपि योगबलोपेता रुद्रं यास्यन्ति सुव्रताः ॥२०७॥

पञ्चविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते यथाक्रमम् । वसिष्ठस्तु यदा व्यासःशक्तिर्नाम भविष्यति

तदाऽप्यहंभविष्यामिदण्डी मुण्डीश्वरः प्रभुः । कोटिवर्षंसमासाद्य नगरं देवपूजितम्

तत्रापिमम ते पुत्रा भविष्यन्तिक्रमागताः । योगात्मानो महात्मानःसर्वेतेह्यूर्ध्वरेतसः

छगलः कुम्भकर्णाश्यः कुम्भश्चैव प्रवाहुकः । प्राप्य माहेश्वरं योगं गमिष्यन्ति तथैवते

षड्विंशे परिवर्तेतुयदा व्यासःपराशरः । तदाऽप्यहं भविष्यामि सहिष्णुर्नाम नामतः

पुण्यं रुद्रवटं प्राप्य कलौ तस्मिन्युगान्तिके ॥२१२॥

तत्रापि मम ते पुत्राभविष्यन्तिसुधार्मिकाः । उलूको वैद्युतश्चैवशर्वकोह्याश्वलायनः

प्राप्य माहेश्वरं योगं गन्तारस्ते तथैव हि ॥२१३॥

सप्तविंशतिमे प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते । जातूकर्ण्यो यदा व्यासो भविष्यति तपोधनः

तदाऽप्यहंभविष्यामिसोमशर्माद्विजोत्तमः । प्रभासंतीर्थमासाद्ययोगात्मालोकविश्रुतः

तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः । अक्षपादः कणादश्च उलूको वत्सएवच

योगात्मानो महात्मानोविमलाः शुद्धबुद्धयः । प्राप्य माहेश्वरंयोगं रुद्रलोकंततोगताः

अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्तेक्रमागते । पराशरसुतःश्रीमान्विष्णुर्लोकपितामहः ॥२१८

यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना द्वैपायनः प्रभुः । तदा षष्ठेनचांशेन कृष्णःपुरुषसत्तमः

वसुदेवाद्यदुश्रेष्ठो वासुदेवो भविष्यति ॥२१९॥

तदा चाहं भविष्यामि योगात्मायोगमायया । लोकविस्मयनार्थायब्रह्मचारिशरीरकः

श्मशाने मृतमुत्सृष्टं दृष्ट्वालोकमनाथकम् । ब्राह्मणानां हितार्थाय प्रविष्टोयोगमायया

दिव्यां मेरुगुहां पुण्यां त्वया सार्धं च विष्णुना ।

भविष्यामि तदा ब्रह्मन्नकुली नाम नामतः ॥२२२॥

कायारोहणमित्येवं सिद्धक्षेत्रं च वै तदा। भविष्यति तु विख्यातं यावद्भूमिर्धरिष्यति।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपस्विनः। कुशिकश्चैव गार्ग्यश्च मित्रकोरुष्टएवच।
योगयुक्ता महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः। प्राप्य माहेश्वरं योगं विमलाह्यर्ध्वरेतसः।
रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् २२५॥
इत्येतद्वै मया प्रोक्तमवतारेषु लक्षणम्। मन्वादिकृष्णपर्यन्तमष्टाविंशयुगक्रमात्॥
भविष्यति तदा कल्पेकृष्णद्वैपायनो यदा। तत्र स्मृतिसमूहानांविभागो धर्मलक्षणम्
इति श्रीमहापुराणेवायुप्रोक्तेउपोद्घातपादे माहेश्वरावतारयोगोनामत्रयोविंशोऽध्यायः

चतुर्विंशोऽध्यायः

शेषपर्यङ्के शयानस्य विष्णोर्ब्रह्मणा सह सम्वादः

वायुरुवाच

चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनयो विदुः। कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं चेति चतुर्युगम्
एतत्सहस्रपर्यन्तमहर्यद्‌ब्रह्मणः स्मृतम्। यामाद्यास्तु गणाःसप्तरोमवन्तश्चतुर्दश॥२॥
सशरीराः श्रयन्ते स्म जनलोकं सहानुगाः। एवं देवेष्वतीतेषु महर्लोकाज्जनं तपः॥ ३
मन्वन्तरेष्वतीतेषु देवाः सर्वे महौजसः। ततस्तेषु गतेषूर्ध्वं सायुज्यं कल्पवासिनाम्
समेत्य देवैस्ते देवाः प्राप्ते संकालने तदा। महर्लोकं परित्यज्य गणास्ते वै चतुर्दश॥
भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरान्तेषु वै तदा। शून्येषु तेषु लोकेषु महान्तेषु भुवादिषु॥
देवेष्वथ गतेषूर्ध्वं कल्पवासिषु वै जनम्॥६॥
तत्संहृत्य ततो ब्रह्मा देवर्षिगणदानवान्। संस्थापयति वै सर्वान्दाहवृष्ट्यायुगक्षये॥
योऽतीतः सप्तमः कल्पो मया वः परिकीर्तितः। समुद्रैः सप्तभिर्गाढमेकीभूतैर्महार्णवैः
आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम्॥८॥
मायय‌ैकार्णवे तस्मिञ्शङ्खचक्रगदाधरः। जीमूताभोऽम्बुजाक्षश्च किरीटी श्रीपतिर्हरिः

नारायणमुखोद्गीर्णः सोऽष्टमः पुरुषोत्तमः । अष्टबाहुर्महोरस्को लोकानां योनिरुच्यते
किमप्यचिन्त्यं युक्तात्मा योगमास्थाय योगवित् ॥१०॥
फणासहस्रकलितं तमप्रतिमवर्चसम् । महाभोगपतेर्भोगमन्वास्तीर्य महोच्छ्रयम् ॥
तस्मिन्महति पर्यङ्के शेते वै कनकप्रभे ॥११॥
एवं तत्र शयानेनविष्णुनाप्रभविष्णुना । आत्मारामेणक्रीडार्थं सृष्टंनाभ्यां तु पङ्कजम्
शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यवर्चसम् । वज्रदण्डं महोत्सेधं लीलया प्रभविष्णुना
तस्यैवं क्रीडमानस्य समीपं देवमीढुषः । हैमब्रह्माण्डजो ब्रह्मा रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः
चतुर्मुखो विशालाक्षः समागम्य यदृच्छया ॥१४॥
श्रियायुक्तेन नव्येन सुप्रभेणसुगन्धिना । तं क्रीडमानंपद्मेनदृष्ट्वा ब्रह्मा तु भेजिवान्
स विस्मयमथाऽऽगम्य शस्यसंपूर्णया गिरा ।
प्रोवाच को भवाञ्शेते आश्रितो मध्यमम्भसाम् ॥१६॥
अथ तस्याच्युतः श्रुत्वा ब्रह्मणस्तु शुभं वचः । उदतिष्ठत पर्यङ्काद्विस्मयोत्फुल्ललोचनः
प्रत्युवाचोत्तरं चैव क्रियते यच्च किंचन । द्यौरन्तरिक्षं भूश्चैव परं पदमहं प्रभुः ॥१८॥
तमेव मुक्त्वाभगवान्विष्णुःपुनरथाब्रवीत् । कस्त्वंखलु समायातःसमीपंभगवान्कुतः
कुतश्च भूयो गन्तव्यं कुत्र वा ते प्रतिश्रयः ॥१९॥
कोभवान्विश्वमूर्तिस्त्वंकर्तव्यंकिंचतेमया । एवं ब्रुवाणंवैकुण्ठं प्रत्युवाच पितामहः
यथा भवांस्तथा चाहमादिकर्ताप्रजापतिः । नारायणसमाख्यातः सर्वं वै मयि तिष्ठति
सविस्मयं परं श्रुत्वाब्रह्मणालोककर्तृणा । सोऽनुज्ञातो भगवता वैकुण्ठो विश्वसंभवः
कौतूहलान्महायोगी प्रविष्टो ब्रह्मणो मुखम् । इमानष्टादश द्वीपान्ससमुद्रान्सपर्वतान्
प्रविश्यसमहातेजाश्चातुर्वर्ण्यसमाकुलान् । ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान्सप्तलोकान्सनातनान्
ब्रह्मणस्तूदरे दृष्ट्वा सर्वान्विष्णुर्महायशाः । अहोऽस्य तपसो वीर्यं पुनः पुनरभाषत ॥
पर्यटन्विविधाल्लोकान्विष्णुर्नानाविधाश्रमान् । ततो वर्षसहस्रान्तेनान्तं हि ददृशेतदा
तदाऽस्य वक्त्रान्निष्क्राम्य पन्नगेन्द्रादिकेतनः । अजातशत्रुर्भगवान्पितामहथाब्रवीत्
भगवन्नादिमध्यं च अन्तः कालदिशे न च । नाहमन्तं प्रपश्यामि ह्युदरस्य तवानघ ॥

एवमुक्त्वाऽब्रवीद्भूयः पितामहमिदं हरिः । भवानप्येवमेवाद्य ह्युदरं मम शाश्वतम् ॥
प्रविश्य लोकान्पश्यैताननौपम्यान्द्विजोत्तम ॥२६॥

मनःप्रह्लादनीं वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च । श्रीपतेरुदरं भूयः प्रविवेश पितामहः ॥
तानेव लोकान्गर्भस्थः पश्यन्सोऽचिन्त्यविक्रमः ।
पर्यटित्वाऽऽदिदेवस्य ददर्शान्तं न वै हरेः ॥३१॥

ज्ञात्वाऽऽगमं तस्य पितामहस्य द्वाराणि सर्वाणि पिधाय विष्णुः ।
विभुर्मनः कर्तुमियेष चाऽऽशु सुखं प्रसुप्तोऽस्मि महाजलौघे ॥३२॥

ततोद्वाराणिसर्वाणिपिहितान्युपलक्ष्यते । सूक्ष्मंकृत्वाऽऽत्मनोरूपंनाभ्यांद्वारमविन्दत
पद्मसूत्रानुमार्गेण ह्यनुगम्यपितामहः । उज्जहाराऽऽत्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः ॥
विरराजारविन्दस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः ॥३४॥

एतस्मिन्नन्तरेताभ्यामेकैकस्य तु कात्स्न्यर्तः । प्रवर्तमाने संहर्षे(र्षे)मध्येतस्यार्णवस्यतु

सूत उवाच

ततो ह्यपरिमेयात्मा भूतानां प्रभुरीश्वरः । शूलपाणिर्महादेवो हैमचीराम्बरच्छदः ॥
आगच्छद्यत्र सोऽनन्तो-नागभोगपतिर्हरिः ॥३६॥

शीघ्रंविक्रमतस्तस्यपद्भ्यामत्यन्तपीडिताः। उद्भूतास्तूर्णमाकाशेपृथुलास्तोयबिन्दवः
अत्युष्णाश्चातिशीताश्च वायुस्तत्र ववौ भृशम् ॥ ३७ ॥

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यंब्रह्मा विष्णुमभाषत । अब्बिन्दवोहिस्थूलोष्णाःकम्पतेचाम्बुजंभृशम्
एतं मे संशयं ब्रूहि किंचान्यत्त्वं चिकीर्षसि ॥ ३८ ॥

एतदेवंविधं वाक्यं पितामहमुखोद्भवम् । श्रुत्वाऽप्रतिमकर्माऽऽह भगवानसुरान्तकृत्
किं नु खल्वत्र मे नाभ्यां भूतमन्यत्कृतालयम् । वदतिप्रियमत्यर्थंविप्रियेऽपि च तेमया
इत्येवं मनसा ध्यात्वा प्रत्युवाचेदमुत्तरम् । किं न्वत्रभगवांस्तस्मिन्पुष्करेजातसंभ्रमः
किं मया यत्कृतं देव यन्मां प्रियमनुत्तमम् । भाषसे पुरुषश्रेष्ठ किमर्थं ब्रूहि तत्त्वतः ॥
एवं ब्रुवाणं देवेशं लोकयात्रांतुतत्त्वगाम् । प्रत्युवाचाम्बुजाभास्कःब्रह्मावेदनिधिःप्रभुः
योऽसौ तवोदरंपूर्वंप्रविष्टोऽहंत्वदिच्छया । यथा ममोदरेलोकाःसर्वेदृष्टास्त्वया प्रभो

तथैव दृष्टाः कार्त्स्न्येन मया लोकास्तवोदरे ॥ ४४ ॥

ततो वर्षसहस्रान्त उपावृत्तस्य मेऽनघ । नूनं मत्सरभावेन मां वशीकर्तुमिच्छता ॥

आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि त्वया पुनः ॥ ४५ ॥

ततोमया महाभाग सञ्चिन्त्यस्वेन चेतसा । लब्धो नाभ्यांप्रवेशस्तु पद्मसूत्राद्विनिर्गमः

मा भूत्ते मनसोऽल्पोऽपि व्याघातोऽयं कथञ्चन ।

इत्येषाऽनुगतिर्विष्णोः कार्याणामौपसर्गिकी ॥ ४७ ॥

यन्मयाऽनन्तरं कार्यं मयाऽध्यवसितं त्वयि । त्वांवाबाधितुकामेनक्रीडापूर्वंयदृच्छया

आशु द्वाराणि सर्वाणि घटितानि मया पुनः ॥ ४८ ॥

न तेऽन्यथाऽवमन्तव्यो मान्यःपूज्यश्चमेभवान् । सर्वंमर्षयकल्याण यन्मयाऽपकृतं तव

तस्मान्मयोच्यमानस्त्वं पद्माद्वतर प्रभो ! ॥ ४९ ॥

नाहं भवन्तं शक्नोमि सोढुं तेजोमयं गुरुम् । स चोवाच वरं ब्रूहि पद्मादवतराम्यहम्

विष्णुरुवाच

पुत्रो भव ममारिघ्न मुदं प्राप्स्यसि शोभनाम् ।

सत्यधनो महायोगी त्वमीड्यः प्रणवात्मकः ॥५१॥

अद्यप्रभृति सर्वेशश्वेतोष्णीषविभूषणः । पद्मयोनिरितीत्येवं ख्यातो नाम्ना भविष्यसि

पुत्रो मे त्वं भव ब्रह्मन्सर्वलोकाधिप ! प्रभो ! ॥५२॥

ततः स भगवान्ब्रह्मा वरं गृह्य किरीटिनः । एवंभवतु चेत्युक्त्वा प्रीतात्मागतमत्सरः

प्रत्यासन्नमथाऽऽयान्तं बालार्काभं महाननम् । भूतमत्यद्भुतं दृष्ट्वा नारायणमथाब्रवीत्

अप्रमेयो महावक्त्रो दंष्ट्री व्यस्तशिरोरुहः । दशबाहुस्त्रिशूलाङ्को नयनैर्विश्वतोमुखः

लोकप्रभुः स्वयं साक्षाद्विकृतो मुञ्जमेखली । मेढ्रेणोर्ध्वेन महता नदमानोऽतिभैरवम् ॥

कः खल्वेष पुमान्विष्णो तेजोराशिर्महाद्युतिः ।

व्याप्य सर्वा दिशो द्यां च इत एवाभिवर्तते ॥५७॥

तेनैव मुक्तो भगवान्विष्णुर्ब्रह्माणमब्रवीत् । पद्भ्यां तलनिपातेन यस्य विक्रमतोऽर्णवे

वेगेन महताऽऽकाशे व्यथिताश्च जलाशयाः ॥५८॥

छटाभिर्विश्वतोऽत्यर्थं सिच्यते पद्मसंभवः । घ्राणजेन च वातेन कम्प्यमानंत्वया सह

दोधूयते महापद्मं स्वच्छन्दं मम नाभिजम् ॥५६॥

स एष भगवानीशो ह्यनादिश्चान्तकृद्विभुः । भवानहं च स्तोत्रेणह्युपतिष्ठाव गोध्वजम्

ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम् ।

न भवान्नूनमात्मानं लोकानां योनिमुत्तमम् ॥६१

ब्रह्माणंलोककर्तारं मां च वेत्तिसनातनम् । कोऽयंभोःशंकरोनामह्यावयोर्व्यतिरिच्यते

तस्य तत्क्रोधजं वाक्यंश्रुत्वाविष्णुरभाषत । मा मैवं वद कल्याण परिवादंमहात्मनः

मायायोगेश्वरो धर्मो दुराधर्षो वरप्रदः । हेतुरस्यात्र जगतः पुराणः पुरुषोऽव्ययः ॥

जीवः खल्वेष जीवानां ज्योतिरेकं प्रकाशते । बालक्रीडनकैर्देवः क्रीडते शंकरःस्वयम्

प्रधानमव्ययं ज्योतिरव्यक्तं प्रकृतिस्तमः । अस्य चैतानि नामानि नित्यंप्रसवधर्मिणः

यः कः स इति दुःखार्तैर्मृग्यते यतिभिः शिवः ॥६६॥

एष बीजी भवान्बीजमहंयोनिः सनातनः । एवमुक्तोऽथविश्वात्माब्रह्मा विष्णुमभाषत

भवान्योनिरहं बीजं कथं बीजी महेश्वरः । एतन्मे सूक्ष्ममव्यक्तं संशयं छेत्तुमर्हसि

ज्ञात्वा चैवं समुत्पत्तिं ब्रह्मणा लोकतन्त्रिणा । इदं परमसादृश्यं प्रश्नमभ्यवदद्धरिः

अस्मान्महत्तरं गुह्यं भूतमन्यन्न विद्यते । महतः परमं धाम शिवमध्यात्मिनां पदम् ॥

द्वैधीभावेन चाऽऽत्मानं प्रविष्टस्तु व्यवस्थितः ।

निष्कलः सूक्ष्ममव्यक्तः सकलश्च महेश्वरः ॥ ७१ ॥

अस्यमायाविधिज्ञस्य अगम्यगमनस्य च । पुरा लिङ्गं भवद्बीजंप्रथमं त्वादिसर्गिकम्

मयि योनौ समायुक्तं तद्बीजं कालपर्ययात् । हिरण्मयमपारं तद्योन्यामण्डमजायत

शतानि दश वर्षाणामण्डं चाप्सु प्रतिष्ठितम् । अन्तेवर्षसहस्रस्यवायुनातद्द्विधाकृतम्

कपालमेकं द्यौर्जज्ञे कपालमपरं क्षितिः । उल्बं तस्य महोत्सेधं योऽसौ कनकपर्वतः

ततस्तस्मात्प्रबुद्धात्मा देवो देववरः प्रभुः । हिरण्यगर्भो भगवानहं जज्ञे चतुर्भुजः ॥७६

ततो वर्षसहस्रान्ते वायुना तद्द्विधा कृतम् । अतारार्केन्दुनक्षत्रं शून्यं लोकमवेक्ष्य च

कोऽयमत्रेत्यभिध्याते कुमारास्तेऽभवंस्तदा ॥७७॥

प्रियदर्शनास्तु तनवो(या) येऽतीताः पूर्वजास्तव ।

भूयो वर्षसहस्रान्ते तत एवात्मजास्तव ॥

भुवनानलसंकाशाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ॥७८॥

श्रीमान्सनत्कुमारस्तु ऋतुश्चैवोर्ध्वरेतसौ । सनातनश्च सनकस्तथैव च सनन्दनः ॥

उत्पन्नः समकालं ते बुद्ध्याऽतीन्द्रियदर्शनाः ॥७६॥

उत्पन्नाः प्रतिघात्मानो जगदुश्चैतदेव हि । नारप्स्यन्ते च कर्माणि तापत्रयविवर्जिताः

अल्पसौख्यं बहुक्लेशंजराशोकसमन्वितम् । जीवितं मरणं चैव संभवं च पुनःपुनः

स्वप्नभूतं पुनःस्वर्गं दुःखानिनरकास्तथा । विदित्वाचाऽऽगमं सर्वमवश्यंभवितव्यताम्

ऋभुं सनत्कुमारं च दृष्ट्वातववशेस्थितौ । त्रयस्तुत्रीन्गुणान्हित्वाआत्मजाःसनकादयः

वैवर्त्तेन तु ज्ञानेन निवृत्तास्ते महौजसः ॥ ८३ ॥

ततस्तेष्वपवृत्तेषु सनकादिषु वै त्रिषु । भविष्यसि विमूढस्तु मायया शंकरस्य तु ॥

एवं कल्पेतुवैकल्पे संज्ञा नश्यतितेऽनघ । कल्पशेषाणि भूतानिसूक्ष्माणिपार्थिवानि च

सा चैषा ह्यैश्वरी माया जगतः समुदाहृता । स एष पर्वतो मेरुर्देवलोको ह्युदाहृतः ॥

तवैवेदंहिमाहात्म्यंदृष्ट्वाचाऽऽत्मानमात्मना । ज्ञात्वाचेश्वरसद्भावंज्ञात्वामामम्बुजेक्षणम्

महादेवं महायोगं भूतानां वरदं प्रभुम् । प्रणवात्मानमासाद्यनमस्कृत्वा(त्य)जगद्गुरुम्

त्वां च मां चैव संक्रुद्धो निश्वासान्निर्दहेदयम् ॥ ८८ ॥

एवं ज्ञात्वा महायोगमभ्युत्तिष्ठ महाबल । अहं त्वामग्रतः कृत्वा स्तोष्येऽहमनलप्रभम्

सूत उवाच

ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा ततः स गरुडध्वजः । अतीतैश्च भविष्यैश्च वर्तमानैस्तथैव च ॥

नामभिश्छान्दसैश्चैव इदं स्तोत्रमुदीरयत् ॥ ६० ॥

नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतेऽनन्ततेजसे । नमः क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः ॥६१॥

अमेढ्रायोर्ध्वमेढ्राय नमो वैकुण्ठरेतसे । नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय ह्यपूर्वप्रथमाय च ॥६२॥

नमो हव्याय पूज्याय सद्योजाताय वै नमः । गह्वराय धनेशाय हैमचीराम्बराय च ॥

नमस्ते ह्यस्मदादीनां भूतानां प्रभवाय च । वेदकर्मावदातानां द्रव्याणां प्रभवे नमः ॥

ग्रहाणां प्रभवे चैव ताराणां प्रभवे नमः । नमो योगस्य प्रभवे सांख्यस्य प्रभवे नमः
नमो ध्रुवनिशीथानामृषीणां पतये नमः ॥ ९५ ॥
विद्युदशनिमेघानां गर्जितप्रभवे नमः । उदधीनां च प्रभवे द्वीपानां प्रभवे नमः ॥९६ ॥
अद्रीणां प्रभवे चैव वर्षाणां प्रभवे नमः । नमो नदानां प्रभवे नदीनां प्रभवे नमः॥९७
नमश्चौषधिप्रभवे वृक्षाणां प्रभवे नमः । धर्माध्यक्षाय धर्माय स्थितीनां प्रभवे नमः ॥
नमो रसानां प्रभवे रत्नानां प्रभवे नमः । नमः क्षणानां प्रभवे कलानां प्रभवे नमः ॥
निमेषप्रभवे चैव काष्ठानां प्रभवे नमः । अहोरात्रार्धमासानां मासानां प्रभवे नमः ॥
नमः ऋतूनां प्रभवे संख्यायाः प्रभवे नमः । प्रभवे च परार्धस्य परस्य प्रभवे नमः ॥
नमः पुराणप्रभवे युगस्य प्रभवे नमः । चतुर्विधस्य सर्गस्य प्रभवेऽनन्तचक्षुषे ॥१०२॥
कल्पोदयनिबद्धानां वार्तानां प्रभवे नमः । नमो विश्वस्य प्रभवे ब्रह्मादिप्रभवे नमः ॥
विद्यानां प्रभवे चैव विद्यानां पतये नमः । नमो व्रतानां पतये मन्त्राणां पतये नमः ॥
पितॄणां पतये चैव पशूनां पतये नमः । वाग्वृषाय नमस्तुभ्यं पुराणवृषभाय च ॥१०५
सुचारुचारुकेशाय ऊर्ध्वचक्षुःशिराय च । नमः पशूनां पतये गोवृषेन्द्रध्वजाय च ॥
प्रजापतीनां पतये सिद्धानां पतये नमः । दैत्यदानवसंघानां रक्षसां पतये नमः ॥१०७
गन्धर्वाणां च पतये यक्षाणां पतये नमः । गरुडोरगसर्पाणां पक्षिणां पतये नमः ॥
गोकर्णाय च गोष्ठाय शङ्कुकर्णाय वै नमः । वराहायाप्रमेयाय रक्षोधिपतये नमः ॥
नमोऽप्सराणां पतये गणानां पतये नमः । अम्भसां पतये चैव तेजसां पतये नमः ॥
नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये श्रीमते ह्रीमते नमः । बलाबलसमूहाय ह्यक्षोभ्यक्षोभणाय च ॥
दीर्घशृङ्गैकशृङ्गाय वृषभाय ककुद्मिने । नमः स्थैर्याय वपुषे तेजसे सुप्रभाय च ॥११२
भूताय च भविष्याय वर्तमानाय वै नमः । सुवर्चसेऽथ वीराय शूराय ह्यतिगाय च ॥
वरदाय वरेण्याय नमः सर्वगताय च । नमो भूताय भव्याय भवाय महते तथा ॥११४
सर्वाय महतेऽजाय नमः सर्वगताय च । जनाय च नमस्तुभ्यं तपसे वरदाय च ॥
नमो वन्द्याय मोक्षाय जनाय नरकाय च ॥ ११५ ॥
भवाय भजमानाय इष्टाय याजकाय च ।

अभ्युदीर्णाय दीप्ताय तत्त्वाय निर्गुणाय च ॥ ११६ ॥

नमः पाशाय हस्ताय नमः स्वाभरणाय च । हुताय अपहुताय प्रहुतप्राशिताय च ॥
नमस्त्विष्टाय मूर्ताय ह्यग्निष्टोमर्त्विजाय च । नम ऋताय सत्याय भूताधिपतये नमः॥
सदस्याय नमश्चैव दक्षिणावभृथाय च । अहिंसायाथ लोकानां पशुमन्त्रौषधाय च ॥
नमस्तुष्टिप्रदानाय त्र्यम्बकाय सुगन्धिने । नमोऽस्त्विन्द्रियपतये परिहाराय स्रग्विणे
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वतोक्षिमुखाय च । सर्वतःपाणिपादाय रुद्रायाप्रमिताय च॥
नमो हव्याय कव्याय हव्यकव्याय वै नमः । नमःसिद्धायमेध्याय चेष्टायत्वव्ययाय च
सुवीराय सुघोरायह्यक्षोभ्यक्षोभणाय च । सुमेधसे सुवीजायदीप्ताय भास्कराय च ॥
नमो नमः सुपर्णाय तपनीयनिभाय च । विरूपाक्षाय त्र्यक्षाय पिङ्गलाय महौजसे ॥
वृष्टिघ्नाय नमश्चैव नमः सौम्येक्षणाय च । नमो धूम्राय श्वेताय कृष्णाय लोहिताय च
पिशिताय पिशङ्गाय पीताय च निषङ्गिणे । नमस्ते सविशेषाय निर्विशेषाय वै नमः
नम इज्याय पूज्याय चोपजीव्याय वै नमः । नमः क्षेम्याय वृद्धायवत्सलाय नमोनमः

नमः ऋताय सत्याय सत्यासत्याय वै नमः ॥१२७॥

नमो वै पद्मवर्णाय मृत्युघ्नाय च मृत्यवे । नमः श्यामाय गौराय कद्रवे रोहिताय च
नमः कान्ताय सन्ध्याभ्रवर्णाय बहुरूपिणे । नमः कपालहस्ताय दिग्वस्त्राय कपर्दिने
अप्रमेयाय शर्वाय ह्यवध्याय वराय च । पुरस्तात्पृष्ठतश्चैव विभ्रान्ताय कृशानवे ॥
दुर्गाय महते चैव रोधाय कपिलाय च । अर्कप्रभशरीराय बलिने रंहसाय च ॥१३१

पिनाकिने प्रसिद्धाय स्फीताय प्रसृताय च ।
सुमेधसेऽक्षमालाय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥१३२॥

चित्राय चित्रवर्णाय विचित्राय धराय च । चेकितानाय तुष्टाय नमस्त्वनिहिताय च
नमः क्षान्ताय शान्ताय वज्रसंहननाय च । रक्षोघ्नाय मखघ्नाय शितिकण्ठोर्ध्वरेतसे ॥
अरिहाय कृतान्ताय तिग्मायुधधराय च । संमोदाय प्रमोदाय इरिण्यायैव ते नमः ॥
प्रणवप्रणवेशाय भक्तानां शर्मदाय च । मृगव्याधाय दक्षाय दक्षयज्ञहराय च ॥१३६॥
सर्वभूताय भूताय सर्वेशातिशयाय च । पुरभेत्रे च शान्ताय सुगन्धाय वरेप्सवे ॥१३७

पूष्णोर्दन्तविनाशाय भगनेत्रान्तकाय च। कणादाय वरिष्ठाय कामाङ्गदहनाय च॥
रवेः करालचक्राय नागेन्द्रदमनाय च। दैत्यानामन्तकायाथो दिव्याक्रन्दकराय च॥
श्मशानरतिनित्याय नमस्त्र्यम्बकधारिणे। नमस्ते प्राणपालाय ध्वमालाधराय च॥
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिष्टुताय च। नरनारीशरीराय देव्याः प्रियकराय च १४१
जटिने दण्डिने तुभ्यं व्यालयज्ञोपवीतिने। नमोऽस्तु नृत्यशीलाय वाद्यनृत्यप्रियायच
मन्यवे गीतशीलाय सुगीतिं गायते नमः। कटककराय भीमाय चोग्ररूपधराय च॥
विभीषणाय भीमाय भगप्रमथनाय च। सिद्धसंघातगीताय महाभागाय वै नमः॥
नमोमुक्ताट्टहासाय क्ष्वेडितास्फोटिताय च। नदते कूर्दते चैव नमः प्रमुदिताय च॥
नमोऽद्भुताय स्वपते धावते प्रस्थिताय च। ध्यायते जृम्भते चैव तुदते द्रवते नमः॥
चलते क्रीडते चैव लम्बोदरशरीरिणे। नमस्कृताय कम्पाय मुण्डाय विकराय च॥
नम उन्मत्तवेषाय किंकिणीकाय वै नमः। नमो विकृतवेषाय क्रूरोग्रामर्षणाय च॥
अप्रमेयाय दीप्ताय दीप्तये निर्गुणाय च। नमः प्रियाय वादाय मुद्रामणिधराय च॥
नमस्तोकाय तनवे गुणैरप्रतिमाय च। नमो गणाय गुह्याय गम्याय गमनाय च॥

लोकधात्री त्वियं भूमिः पादौ सज्जनसेवितौ।
सर्वेषां सिद्धयोगानामधिष्ठानं तवोदरम् ॥१५१॥
मध्येऽन्तरिक्षं विस्तीर्णं तारागणविभूषितम्।
तारापथ इवाऽऽभाति श्रीमान्हारस्तवोरसि ॥१५२॥

दिशा दश भुजास्ते वै केयूराङ्गदभूषिताः। विस्तीर्णपरिणाहश्च नीलाम्बुदचयोपमः॥
कण्ठस्ते शोभते श्रीमान्हेमसूत्रविभूषितः। दंष्ट्राकरालदुर्धर्षमनौपम्यंसुखंतव॥ १५४
पद्ममालाकृतोष्णीषं शीर्षण्यंशोभते कथम्। दीप्तिः सूर्ये वपुश्चन्द्रे स्थैर्यं भूर्ह्यनिलोबले

तैक्ष्ण्यमग्नौ प्रभा चन्द्रे खे शब्दः शैत्यमप्सु च।
अक्षरोत्तमनिष्प(स्प)न्दान्गुणानेतान्विदुर्बुधाः ॥१५६॥

जपो जप्यो महायोगी महादेवो महेश्वरः। पुरेशयो गुहावासी खेचरो रजनीचरः॥
तपोनिधिर्गुहगुरुर्नन्दनो नन्दिवर्धनः। हयशीर्षो धराधाता विधाता भूतिवाहनः ॥१५८

बोद्धव्यो बोधनो नेता धूर्वहो दुष्प्रकम्पकः । बृहद्रथो भीमकर्मा बृहत्कीर्तिर्धनंजयः
घण्टाप्रियोध्वजीछत्रीपताकाध्वजिनीपतिः । कवचीपट्टिशी शङ्खीपाशहस्तः परश्वभृत्
अगस्त्वमनघः शूरोदेवराजारिमर्दनः । त्वां प्रसाद्य पुराऽस्माभिर्द्विषन्तोनिर्हता युधि
अग्निस्त्वं चार्णवान्सर्वान्पिबन्नेव न तृप्यसे ।
क्रोधागारः प्रसन्नात्मा कामहा कामदः प्रियः ॥१६२
ब्रह्मण्यो ब्रह्मचारी च गोघ्नस्त्वंशिष्टपूजितः । वेदानामव्ययःकोशस्त्वया यज्ञःप्रकल्पितः
हव्यं च वेदं वहति वेदोक्तं हव्यवाहनः । प्रीते त्वयि महादेव वयं प्रीता भवामहे ॥
भवानीशोऽनादिमान्धामराशिर्ब्रह्मा लोकानां त्वं कर्ता त्वादिसर्गः ।
सांख्याः प्रकृतिभ्यः परमं त्वां विदित्वाऽक्षीणध्यानास्ते न मृत्युं विशन्ति
योगेन त्वां ध्यानिनो नित्ययुक्ता ज्ञात्वा भोगान्संत्यजन्ते पुनस्तान् ॥
येऽन्ये मर्त्यास्त्वां प्रपन्ना विशुद्धास्ते कर्मभिर्दिश्यभोगान्भजन्ते ॥१६६॥
अप्रमेयस्य तत्त्वस्य यथा विद्मः स्वशक्तितः । कीर्तितंतवमाहात्म्यमपारं परमात्मनः
शिवो नो भव सर्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥१६७॥
इति श्रीमहापुराणेवायुप्रोक्तेउपोद्धातपादे शार्वस्तवो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

शङ्कराद् ब्रह्मविष्ण्वोर्वरप्राप्तिनिरूपणम्

सूत उवाच

संपिबन्निव तौ दृष्ट्वा मधुपिङ्गायतेक्षणः । प्रहृष्टवदनोऽत्यर्थमभवच्च स्वकीर्तनात् ॥१॥
उमापतिर्विरूपाक्षो दक्षयज्ञविनाशनः । पिनाकी खण्डपरशुर्भूतप्रान्तस्त्रिलोचनः ॥२॥
ततः स भगवान्देवः श्रुत्वावाक्यामृतं तयोः । जानन्नपि महाभागःप्रीतिपूर्वमथाब्रवीत्

कौ भवन्तौ महात्मानौ परस्परहितैषिणौ । समेतावम्बुजाभाक्षौ तस्मिन्घोरेजलप्लवे
तावूचतुर्महात्मानौ संनिरीक्ष्य परस्परम् । भगवन्किञ्च तथ्येन विज्ञातेनत्वया विभो
कुत्र वा सुखमानन्त्यमिच्छाचारभृते त्वया ॥५॥
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा ह्यभिनन्द्यानुमान्य च । उवाच भगवान्देवो मधुरश्लक्ष्णया गिरा
भो भो हिरण्यगर्भ ! त्वांत्वाञ्च कृष्ण ! वदाम्यहम् ॥६॥
प्रीतोऽहमनया भक्त्या शाश्वताक्षरयुक्तया । भवन्तौ माननीयौ वै मम ह्यर्हतरावुभौ ॥
युवाभ्यां किं ददाम्यद्य वराणां वरमुत्तमम् ॥ ७ ॥
तेनैवमुक्ते वचने ब्रह्माणं विष्णुरब्रवीत् । ब्रूहि ब्रूहि महाभाग! वरो यस्ते विवक्षितः ॥
प्रजाकामोऽस्म्यहं विष्णो ! पुत्रमिच्छामि धूर्वहम् ।
ततः स भगवान्ब्रह्मा वरेप्सुः पुत्रलिप्सया ॥ ६ ॥
अथ विष्णुरुवाचेदं प्रजाकामं प्रजापतिम् । वीरमप्रतिमं पुत्रं यत्त्वमिच्छसि धूर्वहम् ॥
पुत्रत्वेनाभियुङ्क्ष्व त्वं देवदेवं महेश्वरम् । स तस्य वाक्यंसंपूज्यकेशवस्य पितामहः
ईशानं वरदं रुद्रमभिवाद्य कृताञ्जलिः । उवाच पुत्रकामस्तु वाक्यानि सह विष्णुना ॥
यदि मे भगवन्प्रीतः पुत्रकामस्यनित्यशः । पुत्रोमेभव विश्वात्मन्स्त्वतुल्योवाऽपिधूर्वहः
नान्यं वरमहं वव्रे प्रीतेत्वयि महेश्वर ! । तस्य तां प्रार्थनां श्रुत्वा भगवान्भगनेत्रहा ॥
निष्कल्मषममायं च बाढमित्यब्रवीद्वचः । यदा कार्यसमारम्भे कस्मिंश्चित्तव सुव्रत ॥
अनिष्पत्तौ च कार्यस्य क्रोधस्त्वां समुपैष्यति ।
आत्मैकादश ये रुद्रा विहिताः प्राणहेतवः ॥ १६ ॥
सोऽहमेकादशात्मा वै शूलहस्तःसहानुगः । ऋषिर्मित्रोमहात्मा वै ललाटाद्भवितातदा
प्रसादमतुलं कृत्वा ब्रह्मणस्तादृशं पुरा । विष्णुं पुनरुवाचेदं ददामि च वरं तव ॥१८
स होवाच महाभागो विष्णुर्भवमिदं वचः । सर्वमेतत्कृतं देव परितुष्टोऽसि मे यदि॥
त्वयि मे सुप्रतिष्ठाऽस्तु भक्तिरवृदवाहन ! ॥ १६ ॥
एवमुक्तस्ततो देवः समभाषत केशवम् । विष्णो शृणु यथा देव प्रीतोऽहं तव शाश्वत
प्रकाशं चाप्रकाशं च जङ्गमं स्थावरंचयत् । विश्वरूपमिदं सर्वं रुद्रनारायणात्मकम् ।

अहमग्निर्भवान्सोमो भवान्रात्रिरहं दिनम् । भवानृतमहं सत्यं भवान्क्रतुरहं फलम् ॥
भवान्ज्ञानमहंज्ञेयंयज्जपित्वासदाजनाः । मां विशन्तित्वयि प्रीते जनाः सुकृतकारिणः
आवाभ्यां सहिता चैव गतिर्नान्या युगक्षये ॥ २३ ॥
आत्मानं प्रकृतिं विद्धि मां विद्धि पुरुषं शिवम् । भवानर्धशरीरंमेत्वहं तव तथैव च ॥
वामपार्श्वं महन्मह्यं श्यामंश्रीवत्सलक्षणम् । त्वंचवामेतरं पार्श्वं त्वहं वै नीललोहितः
त्वंचमेहृदयंविष्णोतव चाहं हृदि स्थितः । भवान्सर्वस्य कार्यस्य कर्ताऽहमधिदैवतम्
तदेहि स्वस्तितेवत्सगमिष्याम्यम्बुदप्रभ । एवमुक्त्वागतोविष्णोर्देवोऽन्तर्धानमीश्वरः
ततः सोऽन्तर्हिते देवे सम्प्रहृष्टस्तदा पुनः । अशेत शयने भूयः प्रविश्यान्तर्जले हरिः ॥
तं पद्मं पद्मगर्भाभं पद्माक्षः पद्मसंभवः । सम्प्रहृष्टमना ब्रह्मा भेजे ब्राह्मं तदासनम् ॥
अथ दीर्घेण कालेन तत्राप्यप्रतिमावुभौ । महाबलौ महासत्त्वौ भ्रातरौ मधुकैटभौ ॥
तत्पद्मं तरुणार्काभं दीप्ताक्षौ तमशालिनौ । कम्पयामासतुर्वीरौ हसन्ताविव निर्भयौ
बभञ्जतुश्च पत्राणि तावुभौ मधुकैटभौ ॥ ३१ ॥
ऊचतुश्चैव वचनं भक्ष्योवैनोभविष्यसि । एवमुक्त्वा तुतौ तस्मिन्नन्तर्धानं गतावुभौ
दारुणंतुतयोर्भावं ज्ञात्वापुष्करसंभवः । माहात्म्यंचाऽऽत्मनोबुद्ध्वाविज्ञातुमुपचक्रमे
कर्णिकाघटनं भूयो नाभ्यजानाद्यदा गतिम् । ततः स पद्मनालेन अवतीर्य रसातलम्
कृष्णाजिनोत्तरासङ्गं ददृशेऽन्तर्जले हरिम् ॥ ३४ ॥
स च तं बोधयामासविबुद्धं चेदमब्रवीत् । भूतेभ्यो मे भयं देव त्रायस्वोत्तिष्ठ शं कुरु
ततःसभगवान्विष्णुः सप्रहासमरिंदमः । न भेतव्यं न भेतव्यमित्युवाच मुनिः स्वयम्
यस्मात्पूर्वं त्वया चोक्तं भूतेभ्यो मे महद्भयम् ।
तस्माद्‌ भूतादिवाक्यैस्तौ दैत्यौ त्वं नाशयिष्यसि ॥ ३७ ॥
भूर्भुवः स्वस्ततोदेवं विविशुस्तमयोनिजम् । ततःप्रदक्षिणंकृत्वातमेवाऽऽसीनमागतम्
गतेतास्मिस्ततोऽनन्तउद्गीर्यभ्रातरौमुखात् । विष्णुंजिष्णुंच प्रोवाचब्रह्माणमभिरक्षताम्
मधुकैटभयोर्ज्ञात्वा तयोरागमनं पुनः ॥ ३९ ॥
वक्रातेरूपसादृश्यंविष्णोर्जिष्णोश्चसत्तमौ । कृतसादृश्यरूपौतौतावेवाभिमुखौस्थितौ

ततस्तौप्रोचतुर्दैत्यौब्रह्माणंदारुणंवचः । अस्माकं युध्यमानानांमध्येवै प्राश्निको भव
ततस्तौ जलमाविश्य संस्तभ्यापःस्वमायया । चक्रतुस्तुमुलंयुद्धंयस्ययेनेप्सितं तदा
तेषां तु युध्यमानानां दिव्यं वर्षशतं गतम् । न च युद्धमदोत्सेकोह्यन्योन्यं संन्यवर्तत
लक्षणद्वयसंस्थानाद्रूपवन्तौ स्थितेङ्गितौ । सादृश्याद्व्याकुलमनाब्रह्माध्यानमुपागमत्
स तयोरन्तरं बुद्ध्वा ब्रह्मा दिव्येन चक्षुषा । पद्मकेसरजं सूक्ष्मं बबन्ध कवचं तयोः

आमेखलं च गात्रं च ततो मन्त्रमुदाहरत् ॥ ४५ ॥

जपतस्त्वभवत्कन्या विश्वरूपसमुत्थिता । पद्मेन्दुवदनप्रख्या पद्महस्ता शुभा सती ॥

तां दृष्ट्वा व्यथितौ दैत्यौ भयाद्वर्णविवर्जितौ ॥ ४६ ॥

ततःप्रोवाच तां कन्यांब्रह्मामधुरया गिरा । काऽत्रत्वमवगन्तव्या ब्रूहि सत्यमनिन्दिते

साम्ना सम्पूज्य सा कन्या ब्रह्माणं प्राञ्जलिस्तदा ।
मोहिनीं विद्धि मां मायां विष्णोः संदेशकारिणीम् ॥४८॥

त्वया संकीर्त्यमानाऽहंब्रह्मन्प्राप्तात्वरायुता । अस्याःप्रीतमना ब्रह्म गौणंनामचकारह
मया च व्याहृतायस्मात्त्वं चैव समुपस्थिता । महाव्याहृतिरित्येव नामतेविचरिष्यति

उत्थिता च शिरो भित्त्वा सावित्री तेन चोच्यते ।
एकानंशात्तु यस्मात्त्वमनेकांशा भविष्यसि ॥५१॥

गौणानितावद्देतानिकर्मजान्यपराणि च । नामानि ते भविष्यन्तिमत्प्रसादाच्छुभानने
ततस्तौ पीड्यमानौ तु वरमेनमयाचताम् । अनावृतं नौ मरणं पुत्रत्वं च भवेत्तव ॥
तथेत्युक्त्वा ततस्तूर्णमनयद्यमसादनम् । अनयत्कैटभं विष्णुर्जिष्णुश्चाप्यनयन्मधुम् ॥

एवं तौ निहतौ दैत्यौ विष्णुना जिष्णुना सह ।
प्रीतेन ब्रह्मणा चाथ लोकानां हितकाम्यया ॥ ५५ ॥

पुत्रत्वमीशेन यथाह्यात्मादत्तो निबोधत । विष्णुना जिष्णुनासार्धंमधुकैटभयोस्तथा

संपराये व्यतिक्रान्ते ब्रह्मा विष्णुमभाषत ॥५६॥

अद्य वर्षशतं पूर्णं समयः प्रत्युपस्थितः । संक्षेपसप्लवं घोरं स्वस्थानंयामि चाप्यहम्
स तस्य वचसा देवः संहारमकरोत्तदा । महीं निस्थावरांकृत्वा प्रकृतिस्थांश्चजङ्गमान्

यदिगोविन्दभद्रं ते क्षिप्रं ते यादसांप्रति। ब्रूहियत्करणीयंस्यान्मया ते लक्ष्मिवर्धन
बाढं श्रृणु त्वं हेमाभपद्मयोनेवचो मम। प्रसादो यस्त्वया लब्ध ईश्वरात्पुत्रलिप्सया
तं तथा सफलं कृत्वा मत्तोऽभूदनृणोभवान्। चतुर्विधानिभूतानिसृजत्वंविसृजस्वच
अवाप्य संज्ञां गोविन्दात्पद्मयोनिःपितामहः। प्रजाः स्रष्टुमनास्तेपे तप उग्रंततोमहत्
तस्यैवं तप्यमानस्य नकिंचित्समवर्तत। ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधोव्यवर्धत॥

सक्रो(तत्क्रो) धाविष्टनेत्राभ्यामपतन्नश्रुबिन्दवः।
ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो वातपित्तकफात्मकाः॥६४॥

महाभोगा महासत्त्वाःस्वस्तिकैरभ्यलंकृताः प्रकीर्णकेशाःसर्पास्ते प्रादुर्भूतामहाविषाः
सर्पांस्तथाऽग्रजान्दृष्ट्वाब्रह्माऽऽत्मानमनिन्दित। अहोधिक्तपसा मह्यं फलमीदृशकंयदि

लोकवैनाशिकी जज्ञे आदावेव प्रजा मम॥६६॥

तस्य तीव्राऽभवन्मूर्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा। मूर्छाभितापेन तदा जहौ प्राणान्प्रजापतिः
तस्याप्रतिमवीर्यस्य देहात्कारुण्यपूर्वकम्। आत्मैकादश ते रुद्राः प्रोद्भूतारुदतस्तथा

रोदनात्खलु रुद्रास्ते रुद्रत्वं तेन तेषु तत्॥६८॥
ये रुद्राः खलु ते प्राणा ये प्राणास्ते तदात्मकाः।
प्राणा प्राणभृतां ज्ञेयाः सर्वभूतेष्ववस्थिताः॥६९॥

अत्युग्रस्य महत्त्वस्यसाधुना चरितस्य च। तस्य प्राणान्ददौभूयस्त्रिशूलीनीललोहितः

ललाटात्पद्मयोनेस्तु प्रभुरैकादशात्मकः॥७०॥

ब्रह्मणःसोऽददात्प्राणानात्मजः स तदाप्रभुः। प्रहृष्टवदनोरुद्रःकिंचित्प्रत्यागतासवम्?

अभ्यभाषत्तदा देवो ब्रह्माणं परमं वचः॥७१॥

उपयाचस्वमांब्रह्मन्स्मर्तुमर्हसिचाऽऽत्मनः। मां च वेत्थाऽऽत्मजंरुद्रंप्रसादं कुरुमेप्रभो
श्रुत्वा त्विदं वचस्तस्यप्रभूतं च मनोगतम्। पितामहः प्रसन्नात्मानेत्रैः फुल्लाम्बुजप्रभैः
ततः प्रत्यागतप्राणः स्निग्धगम्भीरया गिरा। उवाच भगवान्ब्रह्मा शुद्धजाम्बूनदप्रभः
भो भो वदमहाभागआनन्दयसिमेमनः। कोभवान्विश्वमूर्तिस्त्वंस्थितएकादशात्मकः
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणाऽनन्ततेजसा। ततः प्रत्यवदद्रुद्रो ह्यभिवाद्याऽऽत्मजैः सह॥

यत्ते वरमहं ब्रह्मन्याचितो विष्णुना सह । पुत्रो मे भव देवेति त्वत्तुल्योवाऽपि धूर्वहः
लोकेषु विश्रुतैः कार्यं सर्वैर्विश्वात्मसंभवैः । विषादत्यज देवेश लोकांस्त्वंस्रष्टुमर्हसि
एवं स भगवानुक्तो ब्रह्मा प्रीतमनाभवत् । रुद्रं प्रत्यवदद्भूयो लोकान्ते नीललोहितम्
साहाय्यं मम कार्यार्थं प्रजाः सृज मया सह । बीजी त्वं सर्वभूतानांतत्प्रपन्नस्तथाभव
बाढमित्येव तां वाणीं प्रतिजग्राह शंकरः ॥८०॥

ततः स भगवान्ब्रह्माकृष्णाजिनविभूषितः । मनोऽग्रे सोऽसृजद्देवो भूतानांधारणांततः
जिह्वां सरस्वतीञ्चैव ततस्तां विश्वरूपिणीम् ॥८१॥

भृगुमङ्गिरसं दक्षं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । वसिष्ठं च महातेजाः ससृजे सप्तमानसान्
पुत्रानात्मसमानन्यान्सोऽसृजद्विश्वसंभवान् ।
तेषां भूयोऽनुमार्गेण गावो वक्त्राद्विजज्ञिरे ॥८३॥

ओङ्कारप्रमुखान्वेदानभिमान्याश्च देवताः । एवमेतान्यथा प्रोक्तान्ब्रह्मा लोकपितामहः
दक्षाद्यान्मानसान्पुत्रान्प्रोवाच भगवान्प्रभुः । प्रजाः सृजत भद्रं वो रुद्रेणसह धीमता
अनुगम्य महात्मानं प्रजानां पतयस्तदा । वयमिच्छामहे देव प्रजाः स्रष्टुं त्वयासह
ब्रह्मणस्त्वेष संदेशस्तव चैव महेश्वर ! ॥८६॥

तैरेवमुक्तो भगवान्रुद्रःप्रोवाच तान्प्रभुः । ब्रह्मणश्चाऽऽत्मजामहं प्राणान्गृह्यचवैसुराः
कृत्वाऽग्रजोऽग्रजानेतान्ब्रह्मणानात्मजान्मम ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तान्सप्त लोकान्ममा(दा)त्मकान् ॥
भवन्तः स्रष्टुमर्हन्ति वचनान्मम स्वस्ति वः ॥८८॥

तेनैवमुक्ताः प्रत्यूचू रुद्रमाद्यं त्रिशूलिनम् । यथाऽऽज्ञापयसे देव तथा तद्वै भविष्यति
अनुमान्य महादेवं प्रजानां पतयस्तदा । ऊचुर्दक्षं महात्मानं भवाञ्श्रेष्ठः प्रजापतिः ॥
त्वां पुरस्कृत्य भद्रं ते प्रजाः स्रक्ष्यामहे वयम् ॥९०॥
एवमस्त्विवति वै दक्षः प्रत्यपद्यत भाषितम् ।
तैः सह स्रष्टुमारेभे प्रजाकामः प्रजापतिः ॥
सर्गस्थिते ततः स्थाणौ ब्रह्मा सर्गमथासृजत् ॥९१॥

अथास्य सप्तमेऽतीते कल्पे वै संबभूवतुः। ऋभुः सनत्कुमारश्च तपोलोकनिवासिनौ
ततो महर्षीनन्यान्स मानसानसृजत्प्रभुः ॥६२॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे मधुकैटभोत्पत्तिविनाशवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

स्वरोत्पत्तिनिरूपणम्

सूत उवाच

अहो विस्मयनीयानि रहस्यानि महामते। त्वयोक्तानियथातत्त्वंलोकानुग्रहकारणात्
तत्र वै संशयो मह्यमवतारेषु शूलिनः। किं कारणं महादेवः कलिं प्राप्यसुदारुणम्॥
हित्वा युगानि पूर्वाणि अवतारं करोति वै ॥२॥
अस्मिन्मन्वन्तरे चैव प्राप्तेवैवस्वते प्रभो। अवतारं कथं चक्रे एतदिच्छामिवेदितुम्
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिदिह लोके परत्र च। भक्तानामुपदेशार्थं विनयात्पृच्छतोमम
कथयस्व महाप्राज्ञ ! यदि श्राव्यं महामते ! ॥४॥

लोमश उवच

एवं पृष्टोऽथ भगवान्वायुर्लोकहिते रतः। इदमाह महातेजा वायुर्लोकनमस्कृतः ॥५
एतद्गुह्यतमं लोके यन्मां त्वं परिपृच्छसि। तत्सर्वं शृणु गाधेयउच्यमानंयथाक्रमम्
पुरा ह्येकार्णवे वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके। स्रष्टुकामः प्रजाब्रह्माचिन्तयामासदुःखितः॥
तस्य चिन्तयमानस्य प्रादुर्भूतः कुमारकः। दिव्यगन्धःसुधापेक्षीदिव्यांश्रुतिमुदीरयन्
अशब्दस्पर्शरूपां तामगन्धां रसवर्जिताम्। श्रुतिं ह्युदीरयन्देवो यामविन्दच्चतुर्मुखः॥
ततस्तुध्यानसंयुक्तस्तपआस्थाय भैरवम्। चिन्तयामासमनसा त्रितयं कोन्वयंत्विति

तस्य चिन्तयमानस्यप्रादुर्भूतं तदक्षरम्। अशब्दस्पर्शरूपं च रसगन्धविवर्जितम् ॥
अथोत्तमं स लोकेषु स्वमूर्त्तिचापिपश्यति। ध्यायन्वै सतदादेवमथैनं पश्यतेपुनः १२
तं श्वेतमथ रक्तं च पीतं कृष्णंतदापुनः। वर्णस्थं तत्र पश्येत न स्त्री नचनपुंसकम्
तत्सर्वं सुचिरं ज्ञात्वाचिन्तयन्हितदक्षरम्। तस्यचिन्तयमानस्य कण्ठादुत्तिष्ठतेऽक्षरः
एकमात्रो महाघोषः श्वेतवर्णः सुनिर्मलः। सओंकारोभवेद्वेदःअ(दोह्य)क्षरंवैमहेश्वरः
ततश्चिन्तयमानस्य त्वक्षरंवै स्वयंभुवः। प्रादुर्भूतं तु रक्तन्तुसदेवःप्रथमःस्मृतः॥१६॥
ऋग्वेदं प्रथमं तस्यत्वग्निमीळे पुरोहितम्। एतां दृष्ट्वाऋचं ब्रह्मा चिन्तयामासवै पुनः ॥
तदक्षरं महातेजाः किमेतदिति लोककृत् ॥ १७॥
तस्यचिन्तयमानस्यतस्मिन्नथमहेश्वरः। द्विमात्रमक्षरंजज्ञे ईशित्वेनद्विमात्रिकम् ॥१८॥
ततः पुनर्द्विमात्रं तु चिन्तयामास चाक्षरम्। प्रादुर्भूतंचरक्तं तच्छेदने गृह्य सा यजुः ॥
इषेत्वोर्जेत्वावायवःस्थदेवोवासविता पुनः। ऋग्वेदएकमात्रस्तुद्विमात्रस्तुयजुःस्मृतः
ततोवेदं द्विमात्रंतुदृष्ट्वाचैव तदक्षरम्। द्विमात्रं चिन्तयन्ब्रह्मात्वक्षरंपुनरीश्वरः ॥२१ ॥
तस्य चिन्तयमानस्यचोङ्कारः संबभूव ह। ततस्तदक्षरंब्रह्माओंकारंसमचिन्तयत् ॥२२
अथापश्यत्ततः पीतामृचं चैव समुत्थिताम्। अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये
ततस्तु संमहातेजादृष्ट्वा वेदानुपस्थितान्। चिन्तयित्वाचभगवांस्त्रिसंध्यंयत्त्रिरक्षरम्
त्रिवर्णं यत्त्रिषवणमोङ्कारं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥२४॥
ततश्चैव त्रिसंयोगात्त्रिवर्णं तु तदक्षरम्। लक्ष्यालक्ष्यप्रदृश्यंचसहितं त्रिदिवं त्रिकम्
त्रिमात्रं त्रिपदं चैव त्रियोगं चैवशाश्वतम्। तस्मात्तदक्षरं ब्रह्माचिन्तयामासवैप्रभुः
तस्मात्तदक्षरं सोऽथ ब्रह्मरूपं स्वयम्भुवः। चतुर्दशमुखं देवं पश्यते दीप्ततेजसम् ॥
तमोङ्कारं स कृत्वाऽऽदौ विज्ञेयः स स्वयंभुवः ॥ २७ ॥
चतुर्मुखमुखात्तस्मादजायन्त चतुर्दश। नानावर्णाः स्वरा दिव्यमाद्यं तच्च तदक्षरम् ॥
तस्मात्त्रिषष्टिर्वर्णा वै अकारप्रभवाः स्मृताः ॥२८॥
ततः साधारणार्थायवर्णानां तु स्वयंभुवः। अकाररूपं आदौतुस्थितःसप्रथमःस्वरः ॥
ततस्तेभ्यः स्वरेभ्यस्तु चतुर्दश महामुखाः। मनवः संप्रसूयन्ते दिव्या मन्वन्तरेश्वराः ॥

चतुर्दशमुखो यश्च अकारो ब्रह्मसंज्ञितः । ब्रह्मकल्पः समाख्यातः सर्ववर्णः प्रजापतिः ॥
मुखात्तुप्रथमात्तस्य मनुः स्वायम्भुवःस्मृतः । अकारस्तुसविज्ञेयःश्वेतवर्णः स्वयंभुवः
द्वितीयात्तुमुखात्तस्यआकारोवैमुखःस्मृतः । नाम्नास्वारोचिषोनामवर्णःपाण्डुरउच्यते

तृतीयात्तु मुखात्तस्य इकारो यजुषां वरः ।
यजुर्मयः सचाऽऽदित्यो यजुर्वेदो यतः स्मृतः ॥३४॥

ईकारः स मनुर्ज्ञेयो रक्तवर्णः प्रतापवान् । ततः क्षत्त्रं प्रवर्त्तेत तस्माद्रक्तस्तु क्षत्रियः
चतुर्थात्तु मुखात्तस्य उकारः स्वरउच्यते । वर्णतस्तु स्मृतस्ताम्रः समनुस्तामसःस्मृतः
पञ्चमात्तु मुखात्तस्य ऊकारो नाम जायते । पीतको वर्णतश्चैवमनुश्चापि चरिष्णवः॥
ततः षष्ठान्मुखात्तस्य ओंकारः कपिलः स्मृतः । वरिष्ठश्च ततःषष्ठोःविजयःसमहातपाः
सप्तमात्तु मुखात्तस्य सूतो वैवस्वतो मनुः । ऋकारश्च स्वरस्तत्र वर्णतः कृष्ण उच्यते
अष्टमात्तु मुखात्तस्य ॠकारः श्यामवर्णतः । श्यामाक्षरसवर्णश्च ततः सावर्णिरुच्यते
मुखात्तु नवमात्तस्य ऌकारः नवमः स्मृतः । धूम्रो वै वर्णतश्चापि धूम्रश्च मनुरुच्यते
दशमात्तु मुखात्तस्य ॡकारः प्रभुरुच्यते । समश्चैव सवर्णश्च बभौ सावर्णिको मनुः
मुखादेकादशात्तस्य एकारो मनुरुच्यते । पिशङ्गो वर्णतश्चैव पिशङ्गो वर्णउच्चते ॥४३
द्वादशात्तु मुखात्तस्य ऐकारो नाम उच्यते । पिशङ्गो भस्मवर्णाभः पिशङ्गोमनुरुच्यते
त्रयोदशान्मुखात्तस्य ओकारो वर्ण उच्यते । पञ्चवर्णसमायुक्त ओकारोवर्णउत्तमः
चतुर्दशमुखात्तस्य औकारो वर्ण उच्यते । कर्बूरो वर्णतश्चैव मनुः सावर्णिरुच्यते ॥
इत्येते मनवश्चैव स्वरा वर्णाश्च कल्पतः । विज्ञेया हि यथातत्त्वं स्वरतो वर्णतस्तथा
परस्परसवर्णाश्च स्वरा यस्माद्धृता हि वै । तस्मात्तेषां सवर्णत्वादन्वयस्तु प्रकीर्तितः

सवर्णाः सदृशाश्चैव यस्माज्ज्ञातास्तु कल्पजाः ।
तस्मात्प्रजानां लोकेस्मिन्सवर्णाः सर्वसंधयः ॥४६॥
भविष्यन्ति यथाशैलं वर्णाश्च न्यायतोऽर्थतः ।
अभ्यासात्संधयश्चैव तस्माज् ज्ञेयाः स्वरा इति ॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे स्वरोत्पत्तिर्नामषड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

नीललोहितस्य नामसम्प्राप्तिकारणाभिधानम्

ऋषय ऊचुः

अस्मिन्कल्पेत्वयाचोक्तःप्रादुर्भावोमहात्मनः । महादेवस्य रुद्रस्य साधकैर्मुनिभिः सह

सूत उवाच

उत्पत्तिरादिसर्गस्य मया प्रोक्ता समासतः । विस्तरेणास्यवक्ष्यामिनामानितनुभिःसह

पत्नीषु जनयामास महादेवः सुतान्वहून् । कल्पेऽष्टमेव्यतीते तु यस्मिन्कल्पेतुतच्छृणु

कल्पादौचाऽऽत्मनस्तुल्यं सुतंप्रध्यायतः प्रभोः ।

प्रादुरासीत्ततोऽङ्केऽस्य कुमारो नीललोहितः ॥

तं दधे सुस्वरं घोरं निर्दहन्निव तेजसा ॥ ४

दृष्ट्वा रुदन्तं सहसाकुमारं नीललोहितम् । किं रोदिषि कुमारेति व्रह्मा तं प्रत्यभाषत ॥

सोऽब्रवीद्देहि मेनाम प्रथमं वै पितामह । रुद्रस्त्वं देवनाम्नाऽसिइत्युक्तःसोऽरुदत्पुनः

किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तंपुनरब्रवीत् । नाम देहि द्वितीयं मे इत्युवाच स्वयंभुवम्

भवस्त्वंदेवनाम्नाऽसिइत्युक्तःसोऽरुदत्पुनः । किंरोदिषीतितं ब्रह्माप्रत्युवाचाथशंकरम्

तृतीयंदेहिमेनाम इत्युक्तःप्रत्युवाचतम् । शिवस्त्वं देव नाम्नाऽसिइत्युक्तःसोऽरुदत्पुनः

किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं पुनरब्रवीत् । चतुर्थंदेहि मेनाम इत्युवाच स्वयंभुवम् ॥

पशूनां त्वं पतिर्देव इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः । किंरोदिषीति तं ब्रह्मारुदन्तं पुनरब्रवीत् ॥

पञ्चमं देहि मेनाम इत्युक्तः प्रत्युवाच तम् । ईशस्त्वंदेवनाम्नाऽसिइत्युक्तःसोऽरुदत्पुनः

किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं पुनरब्रवीत् । षष्ठं मेनाम देहीति इत्युवाचाथतंप्रभुम् ॥

भीमस्त्वं देव नाम्नाऽसि इत्युक्तःसोऽरुदत्पुनः । किंरोदिषीतितंब्रह्मारुदन्तंपुनरब्रवीत्

सप्तमं देहि मे नामइत्युक्तः प्रत्युवाचतम् । उग्रस्त्वंदेवनाम्नाऽसि इत्युक्तःसोऽरुदत्पुनः

किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं पुनरब्रवीत् । अष्टमं देहिमेनाम त्वं विभोपुनरब्रवीत् ॥

महादेवस्तु नाम्नाऽसि इत्युक्तो विरराम ह ॥ १६ ॥
लब्ध्वानामानिचैतानिब्रह्मणोनीललोहितः । प्रोवाचनाम्नामेतेषांस्थानानि प्रदिशेतिह
ततोऽभिसृष्टास्तनव एषां नाम्नां स्वयंभुवा । सूर्यो मही जलं वह्निर्वायुराकाशमेव च
दीक्षितो ब्राह्मणश्चन्द्र इत्येते ब्रह्मधातवः । तेषु पूज्यश्च वन्द्यःस्याद्रुद्रस्तान्नहिनस्तिवै
ततोऽब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा तंदेवंनीललोहितम् । द्वितीयं नामधेयं ते मया प्रोक्तंभवेति यत्
एतस्याऽऽपो द्वितीया ते तनुर्नाम्ना भविष्यति ॥ २० ॥
इत्युक्ते यत्स्थिरं तस्य शरीरस्थं रसात्मकम् । तद्विवेशततस्तोयंतस्मादापोभवःस्मृतः
यस्माद्भवन्ति भूतानिताभ्यस्ता भावयन्ति च । भवनाद्भावनाच्चैवभूतानांसंभवःस्मृतः
तस्मान्मूत्रंपुरीषं च नाप्सुकुर्वीत सर्वदा । न स्नाये(या)दप्सुनग्नश्चननिष्ठीवेत्कदाचन ॥
मैथुनं नैवसेवेत शिरःस्नानं च वर्जयेत् । न प्रीतः परिचक्षीत वहन्नसंस्थितोऽपि वा ॥
मेध्यामेध्यशरीरत्वान्नैवदुष्यन्त्यपः क्वचित् । विवर्णरसगन्धाश्चअल्पाश्चपरिवर्जयेत् ॥
अपां योनिः समुद्रश्चतस्मात्तंकामयन्तिताः । मेध्याश्चैवामृताश्चैवभवन्तिप्राप्यसागरम्
तस्मादपो न रुन्धीत समुद्रंकामयन्ति ताः । न हिंनस्ति भवो देवःसदैवंयोऽप्सुवर्तते
ततोऽब्रवीत्पुनःब्रह्मातं देवं कृष्णलोहितम् । शर्वस्त्वमिति यन्नामतृतीयंसमुदाहृतम् ॥
तस्य भूमिस्तृतीया तु तनुर्नाम्ना भवत्वियम् ॥ २८ ॥
इत्युक्तेयत्स्थिरं तस्यशरीरस्यास्थिसंज्ञितम् । तद्विवेशततोभूमिस्तस्माद्भूःशर्वउच्यते
तस्मात्कुर्वीत नो विद्वान्पुरीषंमूत्रमेववा । नच्छायायांनसोपानेस्वच्छायांनापिमेहयेत्
शिरः प्रावृत्य कुर्वीत अन्तर्धाय तृणैर्महीम् । य एवं वर्तते भूमौतंशर्वोन हिनस्ति वै ॥
ततोऽब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा तं देवं नीललोहितम् । ईशान इतियत्प्रोक्तं चतुर्थं नामते मया ॥
चतुर्थस्य चतुर्थी स्याद्वायुर्नाम्नातनुस्तव । इत्युक्तेयच्छरीरस्थंपञ्चधाप्राणसंज्ञितम् ॥
विवेश तं तदा वायुमीशानो वायुरुच्यते । तस्मादेनं परिवदेदायतं वायुमीश्वरम् ॥
एवं युक्तमथेशानो नैव देवो हिनस्ति तम् ॥३४॥
ततोऽब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा तं देवं धूम्रलोहितम् । यत्ते पशुपतीत्युक्तं मया नामेह पञ्चमम् ॥
पञ्चमी पञ्चमस्यैषा तनुर्नाम्नाऽग्निरस्तु ते ॥ ३५ ॥

इत्युक्तेयच्छरीरस्थंतेजस्तस्योष्णसंज्ञितम् । विवेश तत्तदाह्यग्निस्तस्मात्पशुपतिःपतिः

चन्द्रमास्तु स्मृतःसोमः तस्याऽऽत्मा ह्योषधीगणः ।

एवं यो वर्तते विद्वान्सदा पर्वणि पर्वणि ॥

न हन्ति तं महादेव एवं वन्देत तं प्रभुम् ॥३७॥

गोपाययति दिवाऽऽदित्यः प्रजा नक्तंतु चन्द्रमाः । एकरात्रेसमेयातांसूर्याचन्द्रमसावुभौ

अमावास्यानिशायां तु तस्यां युक्तः सदा वसेत् ॥३७॥

तत्राऽऽविष्टं सर्वमिदं तनुभिर्नामभिः सह । एकाकी यश्चरत्येषसूर्योऽसौचन्द्रउच्यते

सूर्यस्ययत्प्रकाशेनवीक्ष्यन्तेचक्षुषाप्रजाः। शुक्लात्मासंस्थितोरुद्रःपिबत्यम्भोगभस्तिभिः

अद्यते पीयतेचैवाप्यन्नपानात्मकानि या । तनुरात्मभवा सा वै देहेष्वेवोपचीयते॥४१

यया धत्तेप्रजाःसर्वाःस्थिरीभूतेन चेतसा । पार्थिवी सातनुस्तस्यशार्वीधारयतिप्रजाः

यावत्स्थिता शरीरेषु भूतानां प्राणवृत्तिभिः ।

वाय्वात्मिका तु ऐशानी सा प्राणाःप्राणिना सह ॥ ४२॥

पीताशितानि पचति भूतानांजठरेषु या । ततः पाशुपतीतस्य पाचिकाशक्तिरुच्यते ॥

यानीहसुषिराणिस्युर्देहेष्वन्तर्गतानि वै । वायोःसंचरणार्थाय सा भीमाचोच्यतेतनुः

वैतानदीक्षितानांतुयास्थितिर्ब्रह्मवादिनाम् । तनुरुग्रात्मिकासातुतेनोग्रोदीक्षितःस्मृतः

यत्तु संकल्पकंतस्यप्रजास्विहसमंस्थितम् । सातनुर्मानसीतस्यचन्द्रमाःप्राणिषुस्थितः

नवो नवो भवति हि जायमानः पुनः पुनः । नीयते ह्यो यथाकामं विबुधैःपितृभिःसह

महादेवोऽमृतात्माऽसौ ह्यम्मयश्चन्द्रमाः स्मृतः ॥४८॥

तस्य या प्रथमानाम्नातनू रौद्रीप्रकीर्तिता । पत्नीसुवर्चलातस्यपुत्रस्तस्याः शनैश्चरः

भवस्य या द्वितीया तु तनुरापः स्मृता तु वै ।

तस्योषाऽत्र स्मृता पत्नी पुत्रश्चाप्युशना स्मृतः ॥५०॥

शर्वस्य या तृतीया तुनामभामस्तनुःस्मृता । पत्नीतस्यविकेशीतिपुत्रश्चाङ्गारकःस्मृतः

ईशानस्य चतुर्थस्य स्वर्गतस्य च या तनुः । तस्य पत्नी शिवानामपुत्रश्चास्यमनोजवः

नाम्ना पशुपतेर्या तुतनुरग्निर्द्विजैःस्मृता । तस्यपत्नीस्मृतास्वाहास्कन्दश्चापिसुतःस्मृतः

नाम्ना षष्ठस्य या भीमा तनुराकाश उच्यते ।
दिशः पत्न्यः स्मृतास्तस्य स्वर्गश्चास्य सुतः स्मृतः ॥५४॥
उग्रा तनुः सप्तमीयादीक्षितैर्ब्राह्मणैः स्मृता । दीक्षा पत्नी स्मृतातस्यसंतानःपुत्रउच्यते
नाम्नाऽष्टमस्य महतस्तनुर्याचन्द्रमाःस्मृतः । पत्नी तुरोहिणीतस्यपुत्रश्चास्यबुधःस्मृतः
इत्येतास्तनवस्तस्य नामभिः परिकीर्तिताः । तास्तु वन्द्यानमस्याश्चप्रतिनामतनूषु वै
भक्तैःसूर्येऽप्सुपृथिव्यांवाय्वग्निव्योमदीक्षितैः । तथाच वै चन्द्रमसितनुभिर्नामभिःसह
प्रजावानेति सायुज्यमीश्वरस्य नरो हि सः ॥५८॥
इत्येतद्वोमयाऽऽख्यातंगुह्यंभीमस्यतद्यशः । शंनोऽस्तुद्विपदेनित्यंशंनोऽस्तुचचतुष्पदे ॥
एतत्प्रोक्तं निदानं वस्तनूनां नामभिः सह ।
महादेवस्य देवस्य भृगोस्तु शृणुत जजाः ॥६०॥
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे महादेवतनुवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः

अष्टाविंशोऽध्यायः

ऋषिसर्गनिरूपणम्

सूत उवाच

भृगोः ख्यातिर्विजज्ञेऽथ ईश्वरौसुखदुःखयोः । शुभाशुभप्रदातारौ सर्वप्राणभृतामिह ॥
देवौ धाताविधातारौ मन्वन्तरविचारिणौ ॥१॥
तयोर्ज्येष्ठा तु भगिनी देवी श्रीर्लोकभाविनी । सा तुनारायणंदेवंपतिमासाद्यशोभनम्
नारायणात्मजौ साध्वी बलोत्साहौ व्यजायत ॥२॥
तस्यास्तुमानसाःपुत्रायेचान्येदिव्यचारिणः । येवहन्तिविमानानिदेवानांपुण्यकर्मणाम्
द्वे तु कन्ये स्मृते भार्ये विधातुर्धातुरेव च । आयतिर्नियतिश्चैवतयोःपुत्रौदृढव्रतौ ॥४॥

पाण्डुश्चैव मृकण्डुश्चब्रह्मकोशौ सनातनौ । मनस्विन्यांमृकण्डोश्च मार्कण्डेयोबभूव ह
सुतो वेदशिरास्तस्य मूर्धन्यायामजायत । पीवर्यां वेदशिरसःपुत्रा वंशकराःस्मृताः ॥
मार्कण्डेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः ॥८॥
पाण्डोश्चपुण्डरीकायांद्युतिमानात्मजोऽभवत् । उत्पन्नौद्युतिमन्तश्चसृजवानश्चतावुभौ
तयोः पुत्राश्च पौत्राश्च भार्गवाणांपरस्परम् । स्वायंभुवेऽन्तरेऽतीतेमरीचेःशृणुतप्रजाः
पत्नी मरीचेः संभूतिर्विजज्ञे साऽऽत्मसंभवम् । प्रजापतेः पूर्णमासंकन्याश्चेमानिबोधत
कृष्टिः पुष्टिस्त्विषा चैव तथा चापचितिः शुभा ॥१०॥
पूर्णमासः सरस्वत्यां द्वौपुत्रावुदपादयत् । विरजं चैव धर्मिष्ठं पर्वसं चैव तावुभौ ॥
विरजस्याऽऽत्मजो विद्वान्सुधामा नाम विश्रुतः ।
सुधामसुत(तो)वैराजः प्राच्यां दिशि समाश्रितः ॥११॥
लोकपालः सुधर्मात्मा गौरीपुत्रःप्रतापवान् । पर्वसः सर्वगणानां प्रविष्टःसमहायशाः
पर्वसः पर्वसायां तु जनयामास वै सुतौ । यज्ञवामं च श्रीमन्तं सुतं काश्यपमेव च ॥
तयोर्गोत्रकरौ पुत्रौ तौ जातौ धर्मनिश्चितौ ॥१३॥
स्मृतिश्चाङ्गिरसःपत्नीजज्ञेतावात्मसंभवौ । पुत्रौकन्याश्चतस्रश्चपुण्यास्तालोकविश्रुताः
सिनीवाली कुहूश्चैव राकाचानुमतिस्तथा । तथैव भरताग्निं च कीर्तिमन्तं च तावुभौ
अग्नेः पुत्रं तु पर्जन्यं संहूती सुषुवे प्रभुम् । हिरण्यरोमा पर्जन्योमारीच्यामुदपादयत्
आभूतसंप्लवस्थायी लोकपालः स वै स्मृतः ॥१६॥
जज्ञे कीर्तिमतश्चापि धेनुका तावकल्मषौ । वरिष्ठं धृतिमन्तंचाप्युभावङ्गिरसांवरौ ॥
तयोःपुत्राश्च पौत्राश्चयेऽतीतावैसहस्रशः । अनसूयाऽपिजज्ञेतान्पञ्चाऽऽत्रेयानकल्मषान्
कन्यां चैव श्रुतिं नाम माता शङ्खपदस्य या । कर्दमस्य तु या पत्नी पुलहस्य प्रजापतेः
सत्यनेत्रश्च हव्यश्च आपोमूर्तिः शनीश्वरः (शनैश्चरः) ।
सोमश्च पञ्चमस्तेषामासीत्स्वायंभुवेऽन्तरे ॥
यामेऽतीते सहातीताः पञ्चाऽऽत्रेयाः प्रकीर्तिताः ॥२०॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च ह्यत्रिणा वै महात्मना । स्वायंभुवेऽन्तरेयामेशतशोऽथसहस्रशः

प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दत्तालिस्तत्सुतोऽभवत् ।

पूर्वजन्मनिसोऽगस्त्यःस्मृतःस्वायंभुवेऽन्तरे ॥

मध्यमो देवबाहुश्च विनीतो नाम ते त्रयः ॥२२॥

स्वसा यवीयसी तेषां सद्वती नामविश्रुता । पर्जन्यजननीशुभ्रापत्नीत्वग्नेः स्मृताःशुभा

पौलस्त्यस्य ऋषेश्चापि प्रीतिपुत्रस्य धीमतः । दत्तालेःसुषुवेपत्नीसुजङ्घादीन्बहून्सुतान्

पौलस्त्या इति विख्याताः स्मृताः स्वायंभुवेऽन्तरे ॥२४॥

क्षमा तु सुषुवे पुत्रान्पुलहस्य प्रजापतेः । ते चाग्निवर्चसः सर्वे येषां कीर्तिः प्रतिष्ठिता

कर्दमश्चाम्बरीषश्च सहिष्णुश्चेति ते त्रयः । ऋषिर्धनकपीवांश्च शुभाकन्याच पीवरी ॥

कर्दमस्य श्रुतिः पत्नी आत्रेय्यजनयत्सुतान् । पुत्रं शङ्खपदं चैवकन्यांकाम्यांतथैवच ॥

सवैशङ्खपदःश्रीमांल्लोकपालः प्रजापतिः । दक्षिणस्यांदिशिरतःकाम्यांदत्वा प्रियव्रते

काम्या प्रियव्रताल्लेभे स्वायंभुवसमान्सुतान् ।

दशकन्याद्वयं चैव यैः क्षत्त्रं संप्रवर्तितम् ॥२६॥

पुत्रोधनकपीवांश्चसहिष्णुर्नाम विश्रुतः । यशोधारी विजज्ञेवैकामदेवः सुमध्यमा ॥३०

ऋतोः ऋतुसमः पुत्रो विजज्ञे संततिःशुभा । नैषांभार्याऽस्तिपुत्रोवासर्वेतेह्यूर्ध्वरेतसः

षष्ट्येतानि सहस्राणि वालखिल्या इति श्रुताः ॥३१॥

अरुणस्याग्रतो यान्ति परिवार्य दिवाकरम् । आभूतसंप्लवात्सर्वेंपतङ्गसहचारिणः ॥३२

स्वसारौ तु यवीयस्यौ पुण्यात्मसुमतीचते । पर्वसस्य स्नुषे तेवै पूर्णमाससुतस्य वै

ऊर्जायां तु वसिष्ठस्य पुत्रा वै सप्त जज्ञिरे ।

ज्यायसी च स्वसा तेषां पुण्डरीका सुमध्यमा ॥३४॥

जननी सा द्युतिमतः पाण्डोस्तु महिषी प्रिया ॥

अस्यां त्विमे यवीयांसो वासिष्ठा सप्त विश्रुताः ॥३५॥

रजःपुत्रोऽर्धवाहुश्च सवनश्चाधनश्च यः । सुतपाः शुक्र इत्येते सर्वेसप्तर्षयःस्मृताः ॥३६

रजसोवाऽप्यजनयन्मार्कण्डेयीयशस्विनी । प्रतीच्यां दिशिराजन्यंकेतुमन्तंप्रजापतिम्

गोत्राणि नामभिस्तेषां वासिष्ठनां महात्मनाम् ।

स्वायंभुवेऽन्तरेऽतीतास्त्वग्नेस्तु शृणुत प्रजाः ॥३८॥

इत्येषऋषिसर्गस्तुसानुबन्धःप्रकीर्तितः। विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्याचाप्यग्नेस्तुशृणुतप्रजाः

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे ऋषिवंशानुकीर्तनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

अग्निवंशवर्णनम्

योऽसावग्निरभिमानी ह्यासीत्स्वायंभुवेऽन्तरे।
ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात्स्वाहा व्यजायत॥१॥

पावकःपवमानश्चपावमानश्चयःस्मृतः। शुचिःशौरस्तुविज्ञेयः स्वाहापुत्रास्त्रयस्तुते॥२॥
निर्मथ्यपवमानस्तुशुचिःशौरस्तुयःस्मृतः। पावकावैद्युताश्चैवतेषां स्थानानियानि वै
पवमानात्मजश्चैव कव्यवाहन उच्यते। पावकात्सहरक्षस्तुहव्यवाहः शुचेः सुतः ॥४॥
देवानांहव्यवाहोऽग्निः पितॄणांकव्यवाहनः। सहरक्षोऽसुराणांतु त्रयाणांतुत्रयोऽग्नयः
एतेषां पुत्रपौत्रास्तु चत्वारिंशन्नवैव तु। वक्ष्यामिनामतस्तेषां प्रविभागं पृथक्पृथक्
वैद्युतो लौकिकाग्निस्तुप्रथमोब्रह्मणः सुतः। ब्रह्मौदनाग्निस्तत्पुत्रो भरतो नाम विश्रुतः
वैश्वनरमुखस्तस्य महः काव्यो ह्यपां रसः। अमृतोऽथर्वणात्पूर्वं मथितःपुष्करोदधौ

सोऽथर्वा लौकिकाग्निस्तु दध्यङ्ङोऽथर्वणः सुतः ॥८॥
अथर्वा तु भृगुर्ज्ञेयोऽप्यङ्गिराऽथर्वणः सुतः।
तस्मात्स लौकिकाग्निस्तु दध्यङ्ङोऽथर्वणो मतः ॥९॥

अथयःपवमानोऽग्निर्निर्मन्थ्यःकविभिःस्मृतः। सज्ञेयोगार्हपत्योऽग्निस्ततःपुत्रद्वयंस्मृतम्
शंस्यस्त्वाहवनीयोऽग्निर्यःस्मृतोहव्यवाहनः। द्वितीयस्तुसुतःप्रोक्तःशुक्रोऽग्निर्यःप्रणीयते
तथासभ्यावसथ्यौ वै शंस्यस्याग्नेःसुतावुभौ। शंस्यास्तुषोडशनदीश्चकमे हव्यवाहनः

योऽसावाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजैः स्मृतः ॥१२॥

कावेरींकृष्णवेणीं च नर्मदांयमुनांतथा । गोदावरीं वितस्तां च चन्द्रभागामिरावतीम्
विपाशां कौशिकीं चैव शतद्रुं सरयूं तथा । सीतां सरस्वतींचैव ह्रादिनीं पावनींतथा

तासु षोडशधाऽऽत्मानं प्रविभज्य पृथक्पृथक् ।
आत्मानं व्यदधात्तासु धिष्णीष्वथ बभूव सः ॥१५॥
धिष्ण्याद्व्यभिचारिण्यस्तासूत्पन्नास्तु धिष्णयः ।
धिष्णीषु जज्ञिरे यस्माद्धिष्णयस्तेन कीर्तिताः ॥१६॥

इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्णीष्वेव विजज्ञिरे । तेषां विहरणीया ये उपस्थेयाश्च येऽग्नयः

ताञ्शृणुध्वं समासेन कीर्त्यमानान्यथा तथा ॥१७॥
ऋतुः प्रवाहणोऽग्नीध्रः पुरस्ताद्धिष्णयोऽपरे ।
विध्रीयन्ते यथास्थानं सौत्येऽहि सवनक्रमात् ॥१८॥

अनिर्देश्यान्यवाच्यानामग्नीनां शृणुतक्रमम् । सम्राडग्निः कृशानुर्योद्वितीयोत्तरवेदिकः
सम्राडग्निःस्मृताह्यष्टौउपतिष्ठन्तितान्द्विजाः । अधस्तात्पर्षदन्यस्तुद्वितीयःसोऽत्रदृश्यते
ग्रतद्वोचे नभो नाम चत्वारि स विभाव्यते । ब्रह्मज्योतिर्वसुर्नाम ब्रह्मस्थाने स उच्यते
हव्यसूर्याग्निसंसृष्टः शामित्रे स विभाव्यते । विश्वस्यायसमुद्रोऽग्निर्ब्रह्मस्थानेसकीर्त्यते
ऋतुधामा च सुज्योतिरौदुम्बर्यां स कीर्त्यते । ब्रह्मज्योतिर्वसुर्नामब्रह्मस्थानेसउच्यते
अजैकपादुपस्थेयः सवैशालामुखीयकः । अनुद्देश्योऽप्यहिर्बुध्नःसोऽग्निर्गृहपतिःस्मृतः
शंस्यस्यैवसुताःसर्वेउपस्थेयाद्विजैःस्मृताः । ततोविहरणीयांश्चवक्ष्याम्यष्टौतुतत्सुतान्

क्रतुप्रवाहनोऽग्नीध्रस्तत्रस्था धिष्णयोऽपरे ।
विह्रियन्ते यथास्थानं सौत्येऽहि सवनक्रमात् ॥२६॥

पौत्रेयस्तत्सुतोह्यग्निःस्मृतोयोहव्यवाहनः ।शान्तिश्चाग्निःप्रचेतास्तुद्वितीयःसत्यउच्यते
तथाऽग्निर्विश्वदेवस्तुब्रह्मस्थाने स उच्यते । अवक्षुरच्छावाकस्तुभुवःस्थानेविभाव्यते
उशीराग्निः सवीर्यस्तु नैष्टीयःसंविभाव्यते । अष्टमस्तु व्यरत्निस्तुमार्जालीयःप्रकीर्तितः
धिष्ण्याविहरणीयायेसौम्येनाऽऽज्येनचैव हि । तयोर्यःपावकोनामसचापांगर्भउच्यते
अग्निःसोऽवभृथोज्ञेयःसम्यक्प्राप्याप्सुहूयते। हृच्छयस्तत्सुतोह्यग्निर्जठरेयोनृणांस्थितः

मन्युमाञ्जाठरस्याग्नेर्विद्वानग्निःसुतः स्मृतः ।

परस्परोच्छ्रितः सोऽग्निर्भूतानीह विभुर्महान् ॥३२॥

पुत्रः सोऽग्नेर्मन्युमतोघोरः संवर्तकः स्मृतः । पिबन्नपः स वसति समुद्रे वडवामुखः
समुद्रवासिनः पुत्रः सहरक्षो विभाव्यते । सहरक्षसुतः क्षामो गृहाणि स दहेन्नृणाम्

क्रव्यादोऽग्निः सुतस्तस्य पुरुषानत्ति यो मृतान् ।

इत्येते पावकस्याग्नेः पुत्रा ह्येवं प्रकीर्तिताः ॥३५॥

ततःशुचेस्तु यैः सौरैर्गन्धर्वैरसुरावृतैः । मथितोयस्त्वरण्यां वै सोऽग्निरग्निःसमिध्यते
आयुर्नामाऽथ भगवान्पशौयस्तुप्रणीयते । आयुषो महिमान्पुत्रः स शावान्नामतःसुतः
पाकयज्ञेष्वभिमानो सोऽग्निस्तु सवनः स्मृतः । पुत्रश्च सवनस्याग्नेरद्भुतःसमहायशाः

विविचिस्त्वद्भुतस्यापि पुत्रोऽग्नेः स महान्स्मृतः ।

प्रायश्चित्तेऽथ भीमानां हुतं भुङ्क्ते हविः सदा ॥३९॥

विविचेस्तु सुतो ह्यर्को योऽग्निस्तस्य सुतास्त्विमे ।

अनीकवान्वासृजवांश्च रक्षोहा पितृकृत्तथा ॥

सुरभिर्वसुरत्नादौ प्रविष्टो यश्च रुक्मवान् ॥४०॥

शुचेरग्नेः प्रजा ह्येषा वह्नयस्तु चतुर्दश । इत्येते वह्नयः प्रोक्ताः प्रणीयन्तेऽध्वरेषु ये ॥
आदिसर्गे ह्यतीता वै यामैःसह सुरोत्तमैः । स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वमग्नयस्तेऽभिमानिनः
एते विहरणीयास्तु चेतनाचेतनेष्विह । स्थानाभिमानिनो लोके प्रागासन्हव्यवाहनाः

काम्यनैमित्तिकाजस्रेष्वेते कर्मस्ववस्थिताः ॥४३॥

पूर्वमन्वन्तरेऽतीते शुक्लैर्यामैः सुतैः सह ॥

देवैर्महात्मभिः पुण्यैः प्रथमस्यान्तरे मनोः ॥४४॥

इत्येतानि मयोक्तानि स्थानानिस्थानिनश्च ह । तैरेव तु प्रसंख्यातमतीतानागतेष्वपि
मन्वन्तरेषु सर्वेषु लक्षणं जातवेदसाम् । सर्वे तपस्विनो ह्येते सर्वे ह्यवभृथास्तथा

प्रजानां पतयः सर्वे ज्योतिष्मन्तश्च ते स्मृताः ॥४६॥

स्वारोचिषादिषु ज्ञेयाः सावर्ण्यन्तेषु सप्तसु । मन्वन्तरेषु सर्वेषु नानारूपप्रयोजनैः ॥

वर्तन्ते वर्तमानैश्च देवैरिह सहाग्नयः । अनागतैः सुरैः सार्द्धं वर्तन्तेऽनागताग्नयः ॥४८
इत्येष विनयोऽग्नीनांमयाप्रोक्तोयथातथम् । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च पितॄणांवक्ष्यतेततः
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादेऽग्निवंशवर्णनं नामोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९

———

त्रिंशोऽध्यायः

पितृवंशवर्णनम्

सूत उवाच

ब्रह्मणः सृजतः पुत्रान्पूर्वं स्वायंभुवेऽन्तरे । अम्भांसि जज्ञिरे तानि मनुष्यासुरदेवताः
पितृवन्मन्यमानस्यजज्ञिरे पितरोऽस्य वै । तेषां निसर्गःप्रागुक्तो विस्तरस्तस्यवक्ष्यते
देवासुरमनुष्याणां दृष्ट्वा देवोऽभ्यभाषत । पितृवन्मन्यमानस्य जज्ञिरे चोपयक्षिताः ॥
मध्वादयः षड्तवस्तान्पितॄन्परिचक्षते । ऋतवः पितरो देवा इत्येषा वैदिकी श्रुतिः ॥
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ह्यतीतानागतेष्वपि । एते स्वायंभुवे पूर्वमुत्पन्ना ह्यन्तरे शुभे ॥५॥

अग्निष्वात्ताः स्मृता नाम्ना तथा बर्हिषदश्च वै ।
अयज्वानस्तथा तेषामासन्वै गृहमेधिनः ॥
अग्निष्वात्ताः स्मृतास्ते वै पितरोऽनाहिताग्नयः ॥६॥

यज्वानस्तेषुयेह्यासन्पितरःसोमपीथिनः । स्मृताबर्हिषदस्ते वै पितरस्त्वग्निहोत्रिणः

ऋतवः पितरो देवाः शास्त्रेऽस्मिन्निश्चयो मतः ॥७॥

मधुमाधवौ रसौज्ञेयौशुचिशुक्रौ तु शुष्मिणौ । नभश्चैवनभस्यश्च जीवावेतावुदाहृतौ
इषश्चैव तथोर्जश्चसुधावन्तावुदाहृतौ । सह(हा)श्चैसहस्यश्च मन्युमन्तौ तु तौ स्मृतौ

तप(पा)श्चैव तपस्यश्च घोरावेतौ तु शैशिरौ ॥९॥

कालावस्थास्तुषट्तेषांमासाख्यावैव्यवस्थिताः । तइमेऋतवःप्रोक्ताश्चेतनाश्चेतनास्तुवै
ऋतवो ब्रह्मणःपुत्राविज्ञेयास्तेऽभिमानिनः । मासार्धमासस्थानेषु स्थानंचऋतवोर्तवः

स्थानानांव्यतिरेकेणज्ञेयाःस्थानाभिमानिनः । अहोरात्रं च मासाश्चऋतवश्चायनानिच

संवत्सराश्च स्थानानि कालावस्थाभिमानिनः ।

निमेषाश्च कलाः काष्ठा मुहूर्ता वै दिनक्षपाः ॥१३॥

एतेषु स्थानिनो ये तु कालावस्थास्ववस्थिताः ।

तन्मयत्वात्तदात्मानस्तान्वक्ष्यामि निबोधत ॥१४॥

पर्वण्यास्तिथयःसंध्यापक्षामासार्धसंज्ञिताः । निमेषाश्चकलाःकाष्ठामुहूर्ता वैदिनक्षपाः

द्वावर्धमासौ मासस्तु मासावृतुरुच्यते ॥१५॥

ऋतुत्रयं चाप्ययनंद्वेऽयने दक्षिणोत्तरे । संवत्सरःसुमेकस्तुस्थानान्येतानिस्थानिनाम्

ऋतवः सुमेकपुत्रा विज्ञेया ह्यष्टधा तु षट् ऋतुपुत्राः स्मृताःपञ्च प्रजास्त्वार्तवलक्षणाः

यस्माच्चैवाऽऽर्तवेयास्तुजायन्तेस्थाणुजङ्गमाः । आर्तवाःपितरश्चैवऋतवश्चपितामहाः

सुमेकात्तु प्रसूयन्ते म्रियन्ते च प्रजातयः । तस्मात्स्मृतः प्रजानां वै सुमेकःप्रपितामहः

स्थानेषु स्थानिनो ह्येते स्थानात्मानः प्रकीर्तिताः ।

तदाख्यास्तन्मयत्वाच्च तदात्मानश्च ते स्मृताः ॥२०॥

प्रजापतिःस्मृतोयस्तु स तु संवत्सरोमतः । संवत्सरःस्मृतोह्यग्निर्ऋतमित्युच्यतेद्विजैः

ऋतात्तु ऋतवो यस्माज्जज्ञिरे ऋतवस्ततः ।

मासाः षड् ऋतवो ज्ञेयास्तेषां पञ्चाऽऽर्तवाः सुताः ॥२२॥

द्विपदांचतुष्पदांचैवपक्षिसंसर्पतामपि । स्थावराणां च पञ्चानांपुष्पंकालार्तवंस्मृतम्

ऋतुत्वमार्तवत्वं च पितृत्वं च प्रकीर्तितम् । इत्येते पितरो ज्ञेयाऋतवश्चाऽऽर्तवाश्चयं

सर्वभूतानितेभ्योऽथऋतुकालाद्विजज्ञिरे । तस्मादेतेऽपिपितरआर्तवाइतिनःश्रुतम् ।

मन्वन्तरेषु सर्वेषुस्थिताःकालाभिमानिनः । स्थानाभिमानिनोह्येतेतिष्ठन्तीहप्रसंयमा

अग्निष्वात्ताबर्हिषदःपितरोद्विविधाःस्मृताः । जज्ञाते च पितृभ्यस्तुद्वेकन्येलोकविश्रु

मेना च धारिणी चैव याभ्यां विश्वमिदंधृतम् । पितरस्तेनिजेकन्ये धर्मार्थंप्रददुः शु

ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चैव ते उभे ॥ २८ ॥

अग्निष्वात्तास्तुये प्रोक्तास्तेषांमेनातुमानसी । धारणीमानसीचैवकन्याबर्हिषदांस्मृत

मेरोस्तुधारणीं नाम पत्न्यर्थंव्यसृजच्छुभाम् । पितरस्तेवर्हिषदःस्मृतायेसोमपीथिनः
अग्निष्वात्तास्तुतांमेनांपत्नीं हिमवतेददुः । स्मृतास्तेवैतु दौहित्रास्तद्दौहित्रान्निबोधत
मेना हिमवतः पत्नी मैनाकं साऽन्वसूयत । गङ्गा सरिद्वरा चैव पत्नी या लवणोदधेः
मैनाकस्यानुजः क्रौञ्चः क्रौञ्चद्वीपो यतः स्मृतः ॥ ३२ ॥
मेरोस्तु धारणी पत्नी दिव्यौषधिसमन्वितम् । मन्दरं सुषुवेपुत्रं तिस्रःकन्याश्चविश्रुताः
वेला च नियतिश्चैव तृतीया चाऽऽयतिः पुनः ।
धातुश्चैवाऽऽयतिः पत्नी विधातुर्नियतिः स्मृता ॥ ३४ ॥
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं तयोर्वैकीर्तिताःप्रजाः । सुषुवेसागराद्वेलाकन्यामेकामनिन्दिताम्
सावर्णिना च सामुद्री पत्नी प्राचीनवर्हिषः । सवर्णासाऽथसामुद्री दशप्राचीनवर्हिषः
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥ ३६ ॥
तेषांस्वायंभुवोदक्षः पुत्रत्वेजज्ञिवान्प्रभुः । त्र्यम्बकस्याभिशापेन चाक्षुषस्यान्तरेमनोः
एतच्छ्रुत्वा ततः सूतमपृच्छच्छांशपायनः । उत्पन्नः स कथं दक्षो ह्यभिशापाद्भवस्यतु
चाक्षुषस्यान्वये पूर्वं तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥ ३८ ॥
इत्युक्तःकथयामाससूतोदक्षाश्रितांकथाम् । शांशपायनमामन्त्र्यत्र्यम्बकाच्छापकारणम्
दक्षस्याऽऽसन्सुता ह्यष्टौ कन्या याः कीर्तिता मया ।
स्वेभ्यो गृहेभ्यो ह्यानाय्य ताः पिताऽभ्यर्चयद्गृहे ॥
ततस्त्वभ्यर्चिताः सर्वा न्यवसंस्ताः पितुर्गृहे ॥ ४० ॥
तासांज्येष्ठासतीनामपत्नीयात्र्यम्बकस्यवै । नाऽऽजुहावात्मजांतांवैदक्षोरुद्रमभिद्विषन्
अकरोत्स नतिं दक्षे न कदाचिन्महेश्वरः । जामाताश्वशुरे तस्मिन्स्वभावात्तेजसिस्थितः
ततोज्ञात्वासतीसर्वाःस्वसॄःप्राप्ताःपितुर्गृहम् । जगामसाऽप्यनाहूतासतीतत्स्वंपितुर्गृहम्
ताभ्यो हीनां पिता चक्रे सत्याः पूजामसम्मताम् ॥ ४३ ॥
ततोऽब्रवीत्सा पितरं देवी क्रोधादमर्षिता । यवीयसीभ्योज्यायसींकिंतुपूजामिमांप्रभो
असम्मतामवज्ञाय कृतवानसि गर्हिताम् ॥ ४४ ॥
अहं ज्येष्ठा वरिष्ठा हि न त्वसत्कर्तुमर्हसि । एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दक्षः संरक्तलोचनः ॥

त्वं तु श्रेष्ठा वरिष्ठा च पूज्याबालासदामम । तासांयेचैव भर्तारस्ते मे बहुमताः सदा

ब्रह्मिष्ठाश्च तपिष्ठाश्च महायोगाः सुधार्मिकाः ।

गुणैश्चैवाधिकाः श्लाघ्याः सर्वे ते त्र्यम्बकात्सति ! ॥४७॥

वसिष्ठोऽत्रिः पुलस्त्यश्चअङ्गिराःपुलहःक्रतुः । भृगुर्मरीचिश्चतथा श्रेष्ठा जामातरो मम

तस्याऽऽत्मासचतेशर्वोभक्ताचासिहितंसदा । तेनत्वांनबुभूषामि प्रतिकूलोहि मे भवः

इत्युवाच तदा दक्षः सम्प्रमूढेन चेतसा । शापार्थमात्मनश्चैव ये चोक्ताः परमर्षयः ॥

तथोक्ता पितरं सा वै क्रुद्धा देवीदमब्रवीत् । वाङ्मनःकर्मभिर्यस्माददुष्टां मां विगर्हसे

तस्मात्त्यजाम्यहं देहमिदं तात तवाऽऽत्यजम् ॥ ५१ ॥

ततस्तेनावमानेन सती दुःखादमर्षिता । अब्रवीद्वचनं देवी नमस्कृत्वा(त्य) महेश्वरम् ॥

यत्राहमुपपत्स्येऽहं पुनर्देहेन भास्वता । तत्राप्यहमसंमूढा सम्भूता धार्मिकी पुनः ॥

गच्छेयं धर्मपत्नीत्वं त्र्यम्बकस्यैव धर्मतः ॥ ५३ ॥

तत्रैवाथसमासीनायुक्ताऽऽत्मानंसमादधे । धारयामासचाऽऽग्नेयींधारणांमनसात्मनः

तत आग्नेयीसमुत्थेन वायुनासमुदीरितः । सर्वाङ्गेभ्योविनिःसृत्यवह्निर्भस्मचकारताम्

तदुपश्रुत्य निधनं सत्या देवोऽथशूलभृत् । सम्वादं च तयोर्बुद्ध्वायाथातथ्येनशंकरः

दक्षस्याथ ऋषीणां च चुकोप भगवान्प्रभुः ॥ ५६ ॥

यस्मादवमता दक्ष मत्कृतेनामसासती । प्रशस्ताश्चेतराः सर्वाः स्वसुता भर्तृभिः सह

तस्माद्वैवस्वतं प्राप्य पुनरेव महर्षयः । उत्पत्स्यन्ते द्वितीये वै मम यज्ञे ह्ययोनिजाः ॥

हुते वै ब्रह्मणा शक्रे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । अभिव्याहृत्य च ऋषीन्दक्षमभ्यगमत्पुनः

भविता चाक्षुषोराजा चाक्षुषस्य समन्वये । प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चैव प्रचेतसः ॥

दक्षइत्येवनाम्नात्वंमार्षायांजनयिष्यसि । कन्यायांशाखिनांचैव प्राप्तो वै चाक्षुषेऽन्तरे

दक्ष उवाच

अहं तत्रापि ते विघ्नमाचरिष्यामि दुर्मते । धर्मार्थकामयुक्तेषु कर्मस्विह पुनः पुनः ॥

यस्मात्त्वंमत्कृतेक्रूरमृषीन्व्याहृतवानसि । तस्मात्सार्धं सुरैर्यज्ञेनत्वांयक्ष्यन्तिवैद्विजाः

हुत्वाऽऽहुतिंततःक्रूरअपस्त्यक्ष्यन्तिकर्मसु । इहैववत्स्यसितथादिवंहित्वाऽऽयुगक्षयात्

रुद्र उवाच

सर्वेषामेव लोकानां भूर्लोकस्त्वादिरुच्यते । तमहं धारयिष्यामि निदेशात्परमेष्ठिनः
अस्यांक्षितौवृतालोकाःसर्वेतिष्ठन्तिभास्कराः । तानहंधारयामीहसततं न तवाऽऽज्ञया
चातुर्वर्ण्यंहिदेवानांतेचाप्येकत्रभुञ्जते । नाहं तैःसहभोक्ष्यामिततो दास्यन्ति ते पृथक्
ततो देवैः स तैः सार्धं नेज्यते पृथगिज्यते ॥ ६७ ॥

ततोऽभिव्याहृतो दक्षोरुद्रेणामिततेजसा । स्वायम्भुवेऽन्तरेन्यक्त्वाउत्पन्नोमानुषेष्विह
ज्ञात्वा गृहपतिं दक्षं ज्ञानानामीश्वरं प्रभुम् । दक्षो नाम महायज्ञैः सोऽयजद्दैवतैः सह
अथ देवी सती या तु प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे । मेनायां तामुमां देवीं जनयामासशैलराट्
सातुदेवी सती पूर्वं ततः पश्चादुमाऽभवत् । सहव्रता भवस्यैषा न तया मुच्यते भवः
यावदिच्छति संस्थातुं प्रभुमन्वन्तरेष्विह ॥ ७१ ॥

मारीचं कश्यपंदेवी यथाऽदितिरनुव्रता । साध्यं नारायणं श्रीस्तु मघवन्तं शचीयथा
विष्णुंकीर्त्तौ रुचिः सूर्यंवसिष्ठंचाप्यरुन्धती । नैतास्तुविजहत्येतान्भर्तॄन्देव्यःकथञ्चन
आवर्तमानकल्पेषु पुनर्जायन्ति तैः सह ॥ ७३ ॥

एवं प्राचेतसो दक्षो जज्ञे वै चाक्षुषेऽन्तरे । प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चैव प्रचेतसः ॥
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मार्षायांचपुनर्नृपः । जज्ञे रुद्राभिशापेन द्वितीयमिति नः श्रुतम्
भृग्वादयस्तु ते सर्वे जज्ञिरे वै महर्षयः । आद्ये त्रेतायुगे पूर्वं मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥
देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम् ॥ ७६ ॥

इति सानुशयो ह्यासीत्तयोर्जात्यन्तरागतः । प्रजापतेस्तु दक्षस्य त्र्यम्बकस्यच धीमतः
तस्मान्नानुशयः कार्यो वैरिष्विहकदाचन । जात्यन्तरगतस्यापिभावितस्य शुभाशुभैः
जन्तुं न मुञ्चति ख्यातिस्तन्न कार्यं विजानता ॥ ७८ ॥

ऋषय ऊचुः

प्राचेतसस्य दक्षस्य कथं वैवस्वतेऽन्तरे । विनाशमगमत्सूत हयमेधः प्रजापतेः ॥७९॥
देव्या मृत्युं कृतंमत्वाक्रुद्धंसर्वात्मकंप्रभुम् । कथंप्रासादयद्दक्षःसयज्ञः साधितः कथम्
एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥ ८० ॥

सूत उवाच

पुरामेरोर्द्विजश्रेष्ठाः शृङ्गं त्रैलोक्यविश्रुतम्। ज्योतिष्कंनामसावित्रं सर्वरत्नविभूषितम्
अप्रमेयमनाधृष्यं सर्वलोकनमस्कृतम्। तस्मिन्देवो गिरिश्रेष्ठे सर्वधातुविभूषिते ॥
पर्यङ्क इव विभ्राजन्नुपविष्टो बभूव ह ॥ ८२ ॥
शैलराजसुता चास्य नित्यं पार्श्वस्थिताऽभवत्।
आदित्याश्च महात्मानो वसवश्चामितौजसः ॥ ८३ ॥
तथैव च महात्मानावश्विनौ भिषजां वरौ। तथा वैश्रवणो राजा गुह्यकैः परिवारितः
यक्षाणामीश्वरः श्रीमान्कैलासनिलयःप्रभुः। उपासते महात्मानमुशना च महामुनिः
सनत्कुमारप्रमुखास्ते चैव परमर्षयः ॥ ८५ ॥
अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा देवर्षयोऽपरे। विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा नारदपर्वतौ ॥८६
अप्सरोगणसंघाश्च समाजग्मुरनेकशः। ववौ शिवः सुखो वायुर्नानागन्धवहः शुचिः
सर्वर्तुकुसुमोपेताः पुष्पवन्तो द्रुमास्तथा। तथा विद्याधराश्चैव सिद्धाश्चैवतपोधनाः
महादेवं पशुपतिं पर्युपासन्ति तत्र वै। भूतानिचतथाऽन्यानि नानारूपधराण्यथ ॥८९
राक्षसाश्च महारौद्राः पिशाचाश्च महाबलाः। बहुरूपधरा हृष्टा नानाप्रहरणोद्यताः ॥
देवस्यानुचरास्तत्र तस्थुर्वैश्वानरोपमाः। नन्दीश्वरश्च भगवान्देवस्यानुमते स्थितः॥
प्रगृह्य ज्वलितं शूलं दीप्यमानं स्वतेजसा। गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा सर्वतीर्थजलोद्भवा
पर्युपासत तं देवरूपिणी द्विजसत्तमाः ॥ ९२ ॥
एवं स भगवांस्तत्र दीप्यमानः सुरर्षिभिः। देवैश्च सुमहाभागैर्महादेवो व्यवस्थितः
पुरा हिमवतः पृष्ठे दक्षो वै यज्ञमारभत्। गङ्गाद्वारे शुभे देशे ऋषिसिद्धनिषेविते॥९४
ततस्तस्य मखे देवाः शतक्रतुपुरोगमाः। गमनाय समागम्य बुद्धिमापेदिरे तदा॥९५
स्वैर्विमानैर्महात्मानो ज्वलद्भिर्ज्वलनप्रभाः। देवस्यानुमतेऽगच्छन्गङ्गाद्वारइति श्रुतिः
गन्धर्वाप्सरसाकीर्णं नानाद्रुमलतावृतम्। ऋषिसंघैः परिवृतं दक्षं धर्मभृतां वरम् ॥
पृथिव्यामन्तरिक्षेवायेचस्वर्लोकवासिनः। सर्वेप्राञ्जलयो भूत्वा उपतस्थुः प्रजापतिम्
आदित्यावसवोरुद्राःसाध्याःसहमरुद्गणैः। जिष्णुनासहिताःसर्वेआगता यज्ञभागिनः

ऊष्मपाः सोमपाश्चैव आज्यपाधूमपास्तथा अश्विनौ पितरश्चैव आगता ब्रह्मणा सह
एते चान्ये च बहवो भूतग्रामास्तथैवच । जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजोद्भिज्जकास्तथा
आहूता मन्त्रतःसर्वेदेवाश्चसहपत्निभिः । विराजन्तेविमानस्था दीप्यमाना इवाग्नयः
तान्दृष्ट्वा मन्युमाविष्टो दधीचोवाक्यमब्रवीत् । अपूज्यपूजनेचैवपूज्यानां चाप्यपूजने
नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः ॥ १०३ ॥

एवमुक्त्वातु विप्रर्षिः पुनर्दक्षमभाषत । पूज्यं तु पशुभर्तारं कस्मान्नाऽऽह्वयसे प्रभुम् ॥

दक्ष उवाच

सन्ति मे बहवो रुद्राः शूलहस्ताः कपर्दिनः । एकादशावस्थगतानान्यं वेद्मि महेश्वरम्

दधीच उवाच

सर्वेषामेकमन्त्रोऽयं येनेशो न निमन्त्रितः । यथाऽहं शंकरादूर्ध्वंनान्यत्पश्यामिदैवतम्
तथा दक्षस्य विपुलो यज्ञोऽयं न भविष्यति ॥ १०६ ॥

दक्ष उवाच

एतन्मखेशाय सुवर्णपात्रे हविः समस्तं विधिमन्त्रपूतम् ।
विष्णोर्नयाम्यप्रतिमस्य सर्वं प्रभोर्विभोर्ह्याहवनीयनित्यम् ॥ १०७ ॥

गतास्तु देवता ज्ञात्वा शैलराजसुता तदा । उवाच वचनंसाध्वी देवं पशुपतिं तदा ॥

उमोवाच

भगवन्क गता ह्येते देवाः शक्रपुरोगमाः । ब्रूहि तत्त्वेन तत्त्वज्ञ संशयो मे महानयम् ॥

महेश्वर उवाच

दक्षो नाम महाभागे प्रजानां पतिरुत्तमः । हयमेधेन यजते तत्र यान्ति दिवौकसः ॥

देव्युवाच

यज्ञमेतं महाभाग किमर्थं न गतोऽसि वै । केन वा प्रतिषेधेन गमनं प्रतिषिध्यते ॥

महेश्वर उवाच

सुरैरेव महाभागे सर्वमेतदनुष्ठितम् । यज्ञेषु मम सर्वेषु न भाग उपकल्पितः ॥११२ ॥
पूर्वोपायोपपन्नेन मार्गेण वरवर्णिनि । न मे सुराः प्रयच्छन्ति भागं यज्ञस्य धीमतः॥

देव्युवाच

भगवन्सर्वदेवेषु प्रभावाभ्यधिको गुणैः । अजेयश्चाप्यधृष्यश्च तेजसा यशसा श्रिया ॥
अनेन तु महाभाग प्रतिषेधेन भागतः । अतीव दुःखमापन्ना वेपथुश्च ममानघ ॥११५॥

किं नाम दानं नियमं तपो वा कुर्यामहं येन पतिर्ममाद्य ।
लभेत भागं भगवानचिन्त्यो यज्ञस्य चार्धमथ वा तृतीयम् ॥ ११६ ॥
एवं ब्रुवाणां भगवानचिन्त्यः पत्नीं प्रहृष्टः क्षुभितामुवाच ।
न वेत्सि देवेशि ! कृशोदराङ्गि ! किं नाम युक्तं वचनं तवेदम् ॥११७॥
अहं हि जानामि विशालनेत्रे ! ध्यानेन सर्वं हि वदन्ति सन्तः
तवाद्य मोहेन महेन्द्रदेवो लोकत्रयं सर्वथा संप्रमूढम् ॥ ११८ ॥
मामध्वरे शंसितारः स्तुवन्ति रथंतरे (रं) साम गायन्ति गेयम् ।
मा ब्राह्मणा ब्रह्मसत्रे यजन्ते ममाध्वर्यवः कल्पयन्ते च भागम् ॥ ११९ ॥

देव्युवाच

सुप्राकृतोऽपिभगवान्सर्वस्त्रीजनसंसदि । स्तौतिगोपायतेवाऽपिस्वमात्मानं न संशयः

भगवानुवाच

नाऽऽत्मानंस्तौमिदेवेशिपश्यत्वमुपगच्छ च । यं स्त्रक्ष्यामिवरारोहेभागार्थं वरवर्णिनि

एवमुक्त्वा तु भगवान्पत्नीं प्राणैरपि प्रियाम् ।
सोऽसृजद्भगवान्वक्त्राद्भूतं क्रोधाग्निसंनिभम् ॥ १२२ ॥

सहस्रशीर्षं देवं च सहस्रचरणेक्षणम् । सहस्रमुद्गरधरं सहस्रशरपाणिनम् ॥ १२३ ॥
शङ्खचक्रगदापाणिं दीप्तकार्मुकधारिणम् । परश्वसिधरं देवं महारौद्रं भयावहम् ॥१२४
घोररूपेण दीप्यन्तं चन्द्रार्धकृतभूषणम् । वसानं चर्म वैयाघ्रं महारुधिरनिस्रवम्॥१२५
दंष्ट्राकरालं विभ्रान्तंमहावक्त्रं महोदरम् । विद्युज्जिह्वं प्रलम्बोष्ठं लम्बकर्णं दुरासदम्॥
कुलिशोद्योतितकरं भाभिर्ज्वलितमूर्धजम् । ज्वालामालापरिक्षिप्तंमुक्तादामविभूषितम्
तेजसा चैव दीप्यन्तंयुगान्तमिवपावकम् । आकर्णदारितास्यान्तं चतुर्दंष्ट्रं भयानकम्
महाबलं महातेजं महापुरुषमीश्वरम् । विश्वहर्तृमहाकायं महान्यग्रोधमण्डलम् ॥

युगपच्चन्द्रशतवद्दीप्यन्तं मन्मथाग्निवत् ॥१२९॥
चतुर्महास्यं सिततीक्ष्णदण्डं महोग्रतेजोबलपौरुषाढ्यम् ॥
युगान्तसूर्याग्निसहस्रभासं सहस्रचन्द्रामलकान्तिकान्तम् ।
प्रदीप्तसर्वौषधिमन्दराभं सुमेरुकैलासहिमाद्रितुल्यम् ॥ १३० ॥

युगार्काभं महावीर्यं चारुनासंमहाननम् । प्रचण्डगण्डंदीप्ताक्षमग्निज्वालाविलाननम्
मृगेन्द्रकृत्तिवसनं महाभुजगवेष्टितम् । उष्णीषिणंचन्द्रधरं क्वचिदुग्रंक्वचित्समम्॥१३२
नानाकुसुममूर्धानं नानागन्धानुलेपम् । नानारत्नविचित्राङ्गं नानाभरणभूषितम् ॥
कर्णिकारस्रजं दीप्तं क्रोधादुद्भ्रान्तलोचनम् । क्वचिन्नृत्यतिचित्राङ्गंक्वचिद्वदतिसुस्वरम्

क्वचिद्ध्यायति युक्तात्मा क्वचित्स्थूलं प्रमार्जति ।
क्वचिद्गायति विश्वात्मा क्वचिद्रौति मुहुर्मुहुः ॥ १३५ ॥

ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यंक्षमा धृतिः । प्रभुत्वमात्मसंबोधो ह्यधिष्ठानगुणैर्युतः ॥
जानुभ्यामवनिंगत्वाप्रणतःप्राञ्जलिः स्थितः । आज्ञापयत्वंदेवेश किं कार्यंकरवाणि ते
तमुवाचाऽऽक्षिप मखं दक्षस्येह महेश्वरः । देवस्यानुमतिं श्रुत्वा वीरभद्रो महाबलः ॥

प्रणम्य शिरसा पादौ देवेशस्य उमापतेः ॥ १३८ ॥

ततो बन्धात्प्रमुक्तेन सिंहेनेवेह लीलया । देव्या मन्युकृतंमत्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः
मन्युना च महाभीमाभद्रकाली महेश्वरी । आत्मनः सर्वसाक्षित्वे तेन सार्धं सहानुगा
स एष भगवान्क्रुद्धः प्रेतावासकृतालयः । वीरभद्र इति ख्यातो देव्या मन्युप्रमार्जकः॥
सोऽसृजद्रोमकूपेभ्यो रौद्रान्नाम गणेश्वरान् । रुद्रानुगा महावीर्या रुद्रवीर्यपराक्रमाः॥
रुद्रस्यानुचाराः सर्वे सर्वे रुद्रसमप्रभाः । ते निपेतुस्ततस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥
ततः किलकिलाशब्द आकाशं पूरयन्निव । तेन शब्देन महता त्रस्ताः सर्वे दिवौकसः
पर्वताश्च व्यशीर्यन्त कम्पते,च वसुंधरा । मेरुश्च घूर्णते विप्राः क्षुभ्यन्ते वरुणालयाः ॥
अग्नयो नैव दीप्यन्ते न च दीप्यतिभास्करः । ग्रहा नैवप्रकाशन्तेनक्षत्राणि न तारकाः
ऋषयोनाभ्यभाषन्त न देवा न च दानवाः । एवं हि तिमिरीभूतेनिर्दहन्तिविमानिताः
सिंहनादं प्रमुञ्चन्ते घोररूपा महाबलाः । प्रभञ्जन्ते परे घोरा यूपानुत्पाटयन्ति च ॥

प्रमर्दन्ति तथा चान्येविनृत्यन्तितथाऽपरे। आधावन्तिप्रधावन्तिवायुवेगा मनोजवाः
चुर्ण्यन्तेयज्ञपात्राणियागस्याऽऽयतनानि च। शीर्यमाणानिदृश्यन्तेताराइवनभस्तलात्
दिव्यान्नपानभक्ष्याणां राशयः पर्वतोपमाः। क्षीरनद्यस्तथा चान्या घृतपायसकर्दमाः॥
मधुमण्डोदका दिव्याः खण्डशर्करवालुकाः॥ १५१॥
षड्रसान्निवहन्त्यन्यागुडकुल्यामनोरमाः। उच्चावचानिमांसानिभक्ष्याणिविविधानिच
पानकानिचदिव्यानिलेह्यंचोष्यंतथाऽपरे। भुञ्जतेविविधैर्वक्त्रैर्विलुण्ठन्ति क्षिपन्ति च
रुद्रकोपान्महाकायाः कालाग्निसदृशोपमाः। सुरसैन्यानिमर्दन्तो भीषयन्ति च सर्वशः
क्रीडन्ति विविधाकाराश्चिक्षिपुः सुरयोषितः॥ १५४॥
रुद्रकोपप्रयुक्तास्तु सर्वदेवैः सुरक्षितम्। तं यज्ञमहनञ्शीघ्रं रुद्रकल्पाः समीपतः॥
चक्रुरन्ये तथा नादान्सर्वभूतभयंकरान्। छित्त्वा शिरोऽन्येयज्ञस्यविनदन्ति भयंकराः
दक्षो दक्षपतिश्चैव देवो यज्ञपतिस्तथा। मृगरूपेण चाऽऽकाशे प्रपलायितुमारभत्॥
वीरभद्रोऽप्रमेयात्मा ज्ञात्वा तस्य बलं तदा।
अन्तरिक्षगतस्याऽऽशु चिच्छेदास्य शिरो महान्॥ १५८॥
दक्षः प्रजापतिश्चैव नष्टः संभ्रान्तचेतनः। क्रुद्धेन वीरभद्रेण शिरः पादेन पीडितम्॥
जराभिभूततीव्रात्मा निपपात महीतले॥ १५९॥
त्रयस्त्रिंशद्देवतानांताःकोट्योविमलात्मिकाः। पाशेनाग्निबलेनाऽऽशुबद्धाःसिंहबलेन च
ततो जग्मुर्महात्मानं सर्वे देवा महाबलम्। प्रसीद भगवन्रुद्र भृत्यानां मा क्रुधः प्रभो
ततो ब्रह्मादयो देवा दक्षश्चैव प्रजापतिः। ऊचुः प्राञ्जलयोभूत्वाकथ्यतां को भवानिति

वीरभद्र उवाच

न च देवो न चाऽऽदित्यो न च भोक्तुमिहाऽऽगतः।
नैव द्रष्टुं हि देवेन्द्रान्न च कौतूहलान्वितः॥ १६३॥
दक्षयज्ञविनाशार्थं संप्राप्तं विद्धि मामिह। वीरभद्र इति ख्यातं रुद्रकोपाद्विनिर्गतम्
भद्रकाली च विज्ञेयादेव्याःक्रोधाद्विनिर्गता। प्रेषितादेवदेवेनयज्ञान्तिकमिहाऽऽगता॥
शरणं गच्छ राजेन्द्र देवं तं त्वमुमापतिम्। वरं क्रोधोऽपि रुद्रस्य वरदानं न देवतः

वीरभद्रवचः श्रुत्वा दक्षो धर्मभृतां वरः । तोषयामास देवेशं शूलपाणिं महेश्वरम् ॥
प्रदुष्टे यज्ञवाटे तु विद्रुतेषु द्विजातिषु । ताराम्मृगमये दीप्ते रौद्रे भीममहानले ॥१६८॥
शूलनिर्भिन्नवदनैः कूजद्भिः परिचारकैः । निखातोत्पाटितैर्यूपैरपविद्धैर्यतस्ततः ॥१६६॥
उत्पतद्भिः पतद्भिश्च गृध्रैरामिषगृध्नुभिः । पक्षपातविनिर्धूतैः शिवाशतनिनादितैः ॥
प्राणापानौ संनिरुध्य ततः स्थानेन यत्नतः । विचार्य सर्वतो दृष्टिं बहुदृष्टिरमित्रजित्
सहसा देवदेवेशस्त्वग्निकुण्डादुपागतः । चण्डसूर्यसहस्रस्य तेजः संवर्तकोपमम् ॥
प्रहस्य चैनं भगवानिदं वचनमब्रवीत् । नष्टस्तेऽज्ञानतो दक्षप्रीतिस्ते मयि सांप्रतम् ॥

स्मितं कृत्वाऽब्रवीद्वाक्यं ब्रूहि किं करवाणि ते ।
श्रावितं च समाख्याय देवानां गुरुभिः सह ॥ १७४ ॥

तमुवाचाञ्जलिं कृत्वा दक्षो देवं प्रजापतिः । भीतशङ्कितवित्रस्तः सबाष्पवदनेक्षणः
यदि प्रसन्नो भगवान्यदि वाऽहं तव प्रियः । यदि वाऽहमनुग्राह्यो यदि देयो वरो मम
यद्दग्धं भक्षितं पीतमशितं यच्च नाशितम् । चूर्णीकृतं चापविद्धं यज्ञसंभारमीदृशम् ॥
दीर्घकालेन महता प्रयत्नेन च संचितम् । तन्न मिथ्या भवेन्मह्यं वरमेतं वृणोम्यहम् ॥
तथाऽस्त्वित्याह भगवान्भगनेत्रहरो हरः । धर्माध्यक्षं महादेवं त्र्यक्षं तं वै प्रजापतिः
जानुभ्यामवनिं गत्वा दक्षो लब्ध्वा भवाद्वरम् । नाम्नामष्टसहस्रेण स्तुतवान्वृषभध्वजम्

दक्ष उवाच

नमस्ते देवदेवेश ! देवारिबलसूदन !। देवेन्द्र ! ह्यमरश्रेष्ठ ! देवदानवपूजित ! ॥१८१॥
सहस्राक्ष विरूपाक्ष त्र्यक्ष यक्षाधिपप्रिय । सर्वतःपाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः

सर्वतःश्रुतिमाँल्लोके सर्वानावृत्य तिष्ठसि ॥ १८२ ॥

शङ्कुकर्ण महाकर्ण कुम्भकर्णार्णवालय । गजेन्द्रकर्ण गोकर्ण पाणिकर्ण नमोऽस्तु ते
शतोदर शतावर्त शतजिह्व शतानन । गायन्ति त्वां गायत्रिणो ह्यर्चयन्ति तथाऽर्चिनः
देवदानवगोप्ता च ब्रह्मा च त्वं शतक्रतुः । मूर्तीश त्वं महामूर्ते समुद्राम्बुधराय च ॥
सर्वा ह्यस्मिन्देवतास्ते गावो गोष्ठ इवाऽऽसते । शरीरं ते प्रपश्यामि सोममग्निं जलेश्वरम्
आदित्यमथ विष्णुं च ब्रह्माणं सबृहस्पतिम् । क्रिया कार्यं कारणं च कर्ता करणमेव च

असच्च सदसच्चैव तथैव प्रभवाव्ययम्। नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च॥
पशूनां पतये चैव नमस्त्वन्धकघातिने। त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलवरधारिणे॥
त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरघ्नाय वै नमः। नमश्चण्डाय मुण्डाय प्रचण्डाय धराय च
दण्डिमासक्तकर्णायदण्डिमुण्डाय वै नमः। नमोऽर्धदण्डकेशायनिष्कायविकृताय च
विलोहिताय धूम्राय नीलग्रीवाय ते नमः। नमस्त्वप्रतिरूपायशिवाय च नमोऽस्तु ते
सूर्याय सूर्यपतये सूर्यध्वजपताकिने। नमः प्रमथनाथाय वृषस्कन्धाय धन्विने॥१६३॥
नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च। हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये नमः॥१६४॥
सत्रघाताय दण्डाय वर्णपानपुटाय च। नमः स्तुताय स्तुत्याय स्तूयमानाय वै नमः
सर्वायाभक्ष्यभक्ष्याय सर्वभूतान्तरात्मने। नमो होत्राय मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने॥
नमो नमाय नम्याय नमः किलकिलाय च। नमस्ते शयमानाय शयितायोत्थिताय च
स्थिताय चलमानाय मुद्राय कुटिलाय च। नमो नर्तनशीलाय मुखवादित्रकारिणे॥
नाट्योपहारलुब्धाय गीतवाद्यरताय च। नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलप्रमथनाय च॥
कलनाय च कल्पाय क्षयायोपक्षयाय च। भीमदुन्दुभिहासाय भीमसेनप्रियाय च॥
उग्राय च नमो नित्यं नमस्ते दशबाहवे। नमः कपालहस्ताय चिताभस्मप्रियाय च॥
विभीषणाय भीष्माय भीष्मव्रतधराय च। नमो विकृतवक्षाय खड्गजिह्वाग्रदंष्ट्रिणे॥
पक्वाममांसलुब्धाय तुम्बवीणाप्रियाय च। नमो वृषाय वृष्याय वृष्णये वृषणाय च॥
कटंकटाय चण्डाय नमः सावयवाय च। नमस्ते वरकृष्णाय वराय वरदाय च॥
वरगन्धमाल्यवस्त्राय वरातिवरये नमः। नमो वर्षाय वाताय छायायै आतपाय च॥
नमो रक्तविरक्ताय शोभनायाक्षमालिने। संभिन्नाय विभिन्नाय विविक्तविकटाय च॥
अघोररूपरूपाय घोरघोरतराय च। नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्ततराय च॥
एकपाद्बहुनेत्राय एकशीर्ष नमोऽस्तु ते। नमो वृद्धाय लुब्धाय संविभागप्रियाय च
पञ्चमालार्चिताङ्गाय नमः पाशुपताय च। नमश्चण्डाय घण्टाय घण्टया जग्धरन्ध्रिणे
सहस्रशतघण्टाय घण्टामालाप्रियाय च। प्राणदण्डाय त्यागाय नमो हिलहिलाय च
हुंहुंकाराय पाराय हुंहुंकारप्रियाय च। नमश्च शम्भवे नित्यं गिरिवृक्षकलाय च॥

गर्भमांसशृगालाय तारकाय तराय च। नमो यज्ञाधिपतये द्रुतायोपद्रुताय च ॥२१२
यज्ञवाहाय दानाय तप्याय तपनाय च। नमस्तटाय भव्याय तडितां पतये नमः ॥
अन्नदायान्नपतये नमोऽस्त्वन्नभवाय च। नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय च ॥२१४
सहस्रोद्यतशूलाय सहस्रनयनाय च। नमोऽस्तु बालरूपाय बालरूपधराय च ॥२१५

बालानां चैव गोप्त्रे च बालक्रीडनकाय च।
नमः शुद्धाय बुद्धाय क्षोभणायाक्षताय च ॥२१६॥

तरङ्गाङ्कितकेशाय मुक्तकेशाय वै नमः। नमः षट्कर्मनिष्ठाय त्रिकर्मनिरताय च ॥२१७
वर्णाश्रमाणां विधिवत्पृथक्कर्मप्रवर्तिने। नमो घोषाय घोष्याय नमः कलकलाय च
श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तेक्षणाय च। धर्मार्थकाममोक्षाय कथाय क्रथनाय च ॥
सांख्याय सांख्यमुख्याय योगाधिपतये नमः। नमो रथ्यविरथ्याय चतुष्पथरताय च
कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने। ईशान वज्रसंहाय हरिकेश नमोऽस्तु ते ॥

अविवेकैकनाथाय व्यक्ताव्यक्त! नमोऽस्तु ते ॥२२१॥

काम कामद कामघ्न धृष्टोद्‌दृप्तनिसूदन। सर्व सर्वद सर्वज्ञ संध्याराग नमोऽस्तु ते ॥
महाबल महाबाहो महासत्त्व महाद्युते। महामेघवरप्रेक्ष महाकाल नमोऽस्तु ते ॥२२३
स्थूलजीर्णाङ्गजटिने वल्कलाजिनधारिणे। दीप्तसूर्याग्निजटिने वल्कलाजिनवाससे ॥

सहस्रसूर्यप्रतिम! तपोनित्य! नमोऽस्तु ते ॥२२४॥

उन्मादन शतावर्त गङ्गातोयार्द्र मूर्धज। चन्द्रावर्त युगावर्त मेघावर्त नमोऽस्तु ते ॥
त्वमन्नमन्नकर्त्ता च अन्नदश्च त्वमेव हि। अन्नस्रष्टा च पक्ता च पक्वभुक्तपचे नमः ॥
जरायुजोऽण्डजश्चैव स्वेदजोद्भिज्ज एव च। त्वमेव देवदेवेशो भूतग्रामश्चतुर्विधः ॥
चराचरस्य ब्रह्मा त्वं प्रतिहर्ता त्वमेव च। त्वमेव ब्रह्मविदुषामपि ब्रह्मविदां वरः ॥

सत्त्वस्य परमा योनिरब्वायुर्ज्योतिषां निधिः।
ऋक्सामानि तथोङ्कारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः ॥२२६॥
हविर्हावी हवो हावी हुवां वाचाऽऽहुतिः सदा।
गायन्ति त्वां सुरश्रेष्ठ! सामगा ब्रह्मवादिनः ॥२३०॥

यजुर्मयो ऋङ्मयश्च सामाथर्वमयस्तथा । पठ्यसे ब्रह्मविद्भिस्त्वं कल्पोपनिषदां गणैः॥
ब्राह्मणाःक्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वर्णावराश्चये । त्वामेवमेघसंघाश्चविश्वस्तनितगर्जितम्
संवत्सरस्त्वमृतवो मासो मासार्द्धमेव च । कलाकाष्ठानिमेषाश्च नक्षत्राणियुगाग्रहाः

वृषाणां कुकुदं त्वं हि गिरीणां शिखराणि च ।
सिंहो मृगाणां पततां तार्क्ष्योऽनन्तश्च भोगिनाम् ॥२३४॥

क्षीरोदो ह्युदधीनां च यन्त्राणांधनुरेव च । वज्रं प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमेव च ॥
इच्छा द्वेषश्चरागश्चमोहःक्षामो दमः शमः । व्यवसायोधृतिर्लोभःकामक्रोधौजयाजयौ

त्वं गदी त्वं शरी चापी खट्वाङ्गी भुर्भरी तथा ।
छेत्ता भेत्ता प्रहर्ता च त्वं नेताऽप्यन्तको मतः ॥२३७॥

दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽर्थः काम एव च । इन्द्रः समुद्राः सरितः पल्वलानिसरांसिच
लतावली तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः । द्रव्यकर्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः ॥
आदिश्चान्तश्चमध्यश्चगायत्र्योङ्कारएव च । हरितोलोहितःकृष्णोनीलःपीतस्तथाऽरुणः
कद्रुश्च कपिलश्चैव कपोतो मेचकस्तथा । सुवर्णरेता विख्याताः सुवर्णश्चाप्यतो मतः
सुवर्णनामा च तथा सुवर्णप्रिय एव च । त्वमिन्द्रोऽथ यमश्चैव वरुणो धनदोऽनलः
उत्फुल्लश्चित्रभानुश्च स्वर्भानुर्भानुरेव च । होत्रं होता च होमस्त्वं हुतं च प्रहुतं प्रभुः
सुपर्णंच तथा ब्रह्म यजुषां शतरुद्रियम् । पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम्
गिरिःस्तोकस्तथावृक्षोजीवःपुङ्गलएव च । सत्त्वं त्वं च रजस्त्वं च तमश्चप्रजनंतथा
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च । उन्मेषश्चैव मेषश्च तथा जृम्भितमेव च
लोहिताङ्गो गदी दंष्ट्री महावक्त्रो महोदरः । शुचिरोमाहरिच्छ्मश्रुरूर्ध्वकेशस्त्रिलोचनः

गीतवादित्रनृत्याङ्गो गीतवादनकप्रियः ।
मत्स्यो जलो जलो जल्यो जवः कालः कली कलः ॥२४८॥

विकालश्च सुकालश्चदुष्कालःकालनाशनः । मृत्युश्चैव क्षयोऽन्तश्च क्षमापायकरोहरः
संवर्तकोऽन्तकश्चैव संवर्तकवलाहकौ । घटो घटीको घण्टीकोचूडालो लवलो बली
ब्रह्मकालोऽग्निवक्त्रश्चदण्डीमुण्डी च दण्डधृक् । चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चतुर्होत्रश्चतुष्पथः ॥

चतुराश्रमवेत्ता च चातुर्वर्ण्यकरश्च ह । क्षराक्षरप्रियोधूर्तोऽगण्योऽगण्यगणाधिपः ॥
रक्तमाल्याम्बरधरोगिरिशो गिरिकप्रियः । शिल्पीशः शिल्पिनांश्रेष्ठःसर्वशिल्पप्रवर्तकः
भगनेत्रान्तकश्चन्द्रःपूष्णोदन्तविनाशनः । स्वाहा स्वाधावषट्कारनमस्कारनमोऽस्तुते

गूढावर्तश्च गूढश्च गूढप्रतिनिषेविता ॥२५४ ॥

तरणस्तारकश्चैव सर्वभूतसुतारणः । धाता विधाता सत्त्वानां निधाता धारणोधरः
तपो ब्रह्म च सत्यं चब्रह्मचर्यमथाऽऽर्जवम् । भूतात्मा भूतकृद्भूतो भूतभव्यभवोद्भवः ॥
भूर्भुवस्वरितिश्चैव तथोत्पत्तिर्महेश्वरः । ईशानोद्वीक्षणः शान्तो दुर्दान्तो दन्तनाशनः॥
ब्रह्मावर्त सुरावर्त कामावर्त नमोऽस्तु ते । कामविम्बनिहर्ता च कर्णिकाररजःप्रियः॥
मुखचन्द्रो भीममुखः सुमुखो दुर्मुखोमुखः । चतुर्मुखो बहुमुखो रणे ह्यभिमुखः सदा॥
हिरण्यगर्भः शकुनिर्महोदधिः परो विराट् । अधर्महा महादण्डो दण्डधारो रणप्रियः
गौतमो गोप्रतारश्च गोवृषेश्वरवाहनः । धर्मकृद्धर्मस्रष्टा च धर्मो धर्मविदुत्तमः ॥२६१॥
त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दोमानदोमानएवच । तिष्ठंस्थिरश्चस्थाणुश्च निष्कम्पःकम्पएवच
दुर्वारणो दुर्विषदो दुःसहो दुरतिक्रमः । दुर्धरो दुष्प्रकम्पश्च दुर्विदो दुर्जयो जयः ॥

शशः शशाङ्कः शमनः शीतोष्णं दुर्जराऽथ तृट् ।
आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिगश्च ह ॥ २६४ ॥
सह्यो यज्ञो मृग व्याधो व्याधीनामाकरोऽकरः ।
शिखण्डी पुण्डरीकाक्षः पुण्डरीकावलोकनः ॥ २६५ ॥

दण्डधरः सदण्डश्च दण्डमुण्डविभूषितः । विषपोऽमृतपश्चैव सुरापः क्षीरसोमपः ॥
मधुपश्चाज्यपश्चैव सर्वपश्चमहाबलः । वृषाश्वबाह्यो वृषभस्तथा वृषभलोचनः ॥२६७॥
वृषभश्चैव विख्यातोलोकानांलोकसत्कृतः । चन्द्रादित्यौ चक्षुषी तेहृदयं च पितामहः

अग्निरापस्तथा देवो धर्मकर्मप्रसाधितः ॥ २६८ ॥

न ब्रह्मा न च गोविंदः पुराणऋषयो नच । माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येनतेशिव
या मूर्तयः सुसूक्ष्मास्ते न मह्यं यान्तिदर्शनम् । ताभिर्मां सततंरक्षपितापुत्रमिवौरसम्
रक्ष मांरक्षणीयोऽहंतवानघ नमोऽस्तुते । भक्तानुकम्पी भगवान्भक्तश्चाहं सदा त्वयि

यः सहस्राण्यनेकानि पुंसामाहृत्यदुर्दशः। तिष्ठत्येकःसमुद्रान्ते समेगोप्ताऽस्तुनित्यशः

यं विनिद्रा जितश्वासाः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः।

ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः॥ २७३॥

संभक्ष्य सर्वभूतानि युगान्ते समुपस्थिते। यःशेतेजलमध्यस्थस्तंप्रपद्येऽप्सु शायिनम्

प्रविश्य वदने राहोर्यः सोमं ग्रसतेनिशि। ग्रसत्यर्कं च स्वर्भानुर्भूत्वा सोमाग्निरेव च

येऽङ्गुष्ठमात्राःपुरुषादेहस्थाःसर्वदेहिनाम्। रक्षन्तुतेहिमांनित्यं नित्यमाप्याययन्तुमाम्

ये चाप्युत्पतिता गर्भादधोभागगताश्चये। तेषां स्वाहाःस्वधाश्चैवआप्नुवन्तुस्वदन्तुच

येनरोदन्तिदेहस्थाः प्राणिनोरोदयन्तिच। हर्षयन्तिचहृष्यन्ति नमस्तेभ्यस्तु नित्यशः

ये समुद्रे नदीदुर्गे पर्वतेषु गुहासु च। वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च॥२७६॥

चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च। हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च॥

पञ्चपञ्चसुभूतेषु दिशासु विदिशासु च। चन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु॥

रसातलगता ये च ये च तस्मात्परंगताः। नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्योनमस्तेभ्यश्चनित्यशः

सूक्ष्माः स्थूलाः कृशा ह्रस्वा नमस्तेभ्यस्तु नित्यशः॥ २८२॥

सर्वस्त्वं सर्वगो देव सर्वभूतपतिर्भवान्। सर्वभूतान्तरात्मा च तेन त्वं न निमन्त्रितः

त्वमेव चेज्यसे यस्माद्यज्ञैर्विविधदक्षिणैः। त्वमेव कर्ता सर्वस्यतेन त्वं न निमन्त्रितः

अथवा माययादेव मोहितःसूक्ष्मयात्वया। एतस्मात्कारणाद्वाऽपितेनत्वन्ननिमन्त्रितः

प्रसीद मम देवेश त्वमेव शरणं मम। त्वं गतिस्त्वं प्रतिष्ठाच न चान्याऽस्तिनमेगतिः

स्तुत्वैवं स महादेवं विरराम प्रजापतिः। भगवानपि सुप्रीतः पुनर्दक्षमभाषत॥२८७

परितुष्टोऽस्मि ते दक्ष स्तवेनानेन सुव्रत। बहुनाऽत्र किमुक्तेन मत्समीपं गमिष्यसि

अथैनमब्रवीद्वाक्यं त्रैलोक्याधिपतिर्भवः।

कृत्वाऽऽश्वासकरं वाक्यं वाक्यज्ञो वाक्यमाह तम्॥ २८६॥

दक्ष दक्ष न कर्तव्यो मन्युर्विघ्नमिमं प्रति। अहं यज्ञहा न त्वन्यो दृश्यते तत्पुरा त्वय

भूयश्च तं वरमिमं मत्तो गृह्णीष्व सुव्रत। प्रसन्नवदनो भूत्वा त्वमेकाग्रमनाः शृणु

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च। प्रजापते मत्प्रसादात्फलभागी भविष्यसि

वेदान्षडङ्गानुद्धृत्य सांख्यान्योगांश्चकृत्स्नशः । तपश्चविपुलं तप्त्वा दुःश्चरं देवदानवैः
अर्थैर्दशार्धसंयुक्तैर्गूढमप्राज्ञनिर्मितम् । वर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्विपरीतं क्वचित्समम् ॥२९४ ॥
श्रुत्यर्थैरध्यवसितं पशुपाशविमोक्षणम् । सर्वेषामाश्रमाणां तु मया पाशुपतं व्रतम्
उत्पादितं शुभं दक्ष सर्वपापविमोक्षणम् ॥ २९५ ॥
अस्यचीर्णस्ययत्सम्यक्फलंभवतिपुष्कलम् । तदस्तुतेमहाभाग मानसस्त्यज्यतां ज्वरः
एवमुक्त्वा महादेवः सपत्नीकः सहानुगः । अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामितविक्रमः ॥
अवाप्य च तदा भागं यथोक्तं ब्रह्मणाभवः । ज्वरं च सर्वधर्मज्ञो बहुधा व्यभजत्तदा ॥
शान्त्यर्थं सर्वभूतानां श्रृणुध्वं तत्र वै द्विजाः ॥ २९८ ॥
शीर्षाभितापोनागानां पर्वतानां शिलारुजः । अपांतुनीलिकां विद्यान्निर्मोकंभुजगेष्वपि
खोरकः सौरभेयाणामूषरः पृथिवीतले । इभानामपि धर्मज्ञ दृष्टिप्रत्यवरोधनम् ॥
रन्ध्रोद्भूतं तथाऽश्वानां शिखोद्भेदश्च बर्हिणाम् ।
नेत्ररागः कोकिलानां ज्वरः प्रोक्तो महात्मभिः ॥ ३०१ ॥
अजानां पित्तभेदश्च सर्वेषामितिनःश्रुतम् । शुकानामपिसर्वेषां हिमिकाप्रोच्यते ज्वरः
शार्दूलेष्वपि वै विप्राः श्रमो ज्वर इहोच्यते ॥ ३०२ ॥
मानुषेषु तु सर्वज्ञ ज्वरो नामैष कीर्तितः । मरणे जन्मनि तथा मध्ये च विशते सदा
एतन्माहेश्वरं तेजो ज्वरो नाम सुदारुणः । नमस्यश्चैव मान्यश्च सर्वप्राणिभिरीश्वरः
इमां ज्वरोत्पत्तिमदीनमानसः पठेत्सदा यः सुसमाहितो नरः ।
विमुक्तरोगः स नरो मुदा युतो लभेत कामान्स यथा मनीषितान् ॥३०५॥
दक्षप्रोक्तंस्तवंचापिकीर्तयेद्यःश्रृणोतिवा । नाशुभंप्राप्नुयात्किंचिद्दीर्घंचाऽऽयुरवाप्नुयात्
यथा सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो योगवान्हरः । तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां ब्रह्मनिर्मितः
यशोराज्यसुखैश्वर्यवित्तायुर्धनकाङ्क्षिभिः। स्तोतव्योभक्तिमास्थायविद्याकामैश्चयत्नतः
व्याधितोदुःखितोदीनश्चौरत्रस्तोभयार्दितः । राजकार्यनियुक्तोवा मुच्यतेमहतो भयात्
अनेन चैव देहेन गणानां स गणाधिपः । इह लोके सुखं प्राप्य गणएवोपपद्यते ॥
न च यक्षाःपिशाचा वा ननागानविनायकाः । कुर्युर्विघ्नं गृहे तस्य यत्र संस्तूयते भवः

शृणुयाद्वाइदं नारी सुभक्त्या ब्रह्मचारिणी । पितृभिर्भर्तृपक्षाभ्यां पूज्या भवति देववत्
शृणुयाद्वा इदं सर्वं कीर्तयेद्वाऽप्यभीक्ष्णशः ।
तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं गच्छन्त्यविघ्नतः ॥ ३१३ ॥
मनसा चिन्तितंयच्चयच्चवाचाऽप्युदाहृतम् । सर्वं सम्पद्यते तस्य स्तवनस्यानुकीर्तनात्
देवस्य सगुहस्याथ देव्या नन्दीश्वरस्य तु । बलिं विभवतः कृत्वा दमेन नियमेन च ॥
ततःसशुल्कोगृह्णीयान्नामान्याशुयथाक्रमम् । ईप्सिताँल्लभतेऽत्यर्थंकामान्भोगांश्चमानवः
मृतश्च स्वर्गमाप्नोति स्त्रीसहस्रपरीवृतः ॥ ३१६ ॥
सर्वकर्मसु युक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः । पठन्दक्षकृतं स्तोत्रं सर्वपापैः प्रमुच्यते
मृतश्च गणसालोक्यं पूज्यमानः सुरासुरैः ॥ ३१७ ॥
वृषेव विधियुक्तेन विमानेन विराजते । आभूतसम्प्लवस्थायी रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥
इत्याह भगवन्व्यासः पराशरसुतः प्रभुः । नैतद्वेदयते कश्चिन्नेदं श्राव्यं तु कस्यचित् ॥
श्रुत्वैतत्परमं गुह्यं येऽपि स्युःपापकारिणः । वैश्याःस्त्रियश्चशूद्राश्च रुद्रलोकमवाप्नुयुः
श्रावयेद्यस्तु विप्रेभ्यः सदा पर्वसुपर्वसु । रुद्रलोकमवाप्नोति द्विजो वै नात्र संशयः ॥
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे दक्षप्रोक्तस्तवो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

देववंशवर्णनम्

सूत उवाच

इत्येषा समनुज्ञाता कथा पापप्रणाशिनी । या दक्षमधिकृत्येह कथा शर्वादुपागता ॥
पितृवंशप्रसङ्गेन कथा ह्येषा प्रकीर्तिता । पितॄणामानुपूर्व्येण देवान्वक्ष्याम्यतः परम् ॥
त्रेतायुगमुखे पूर्वमासन्स्वायंभुवेऽन्तरे । देवा यामा इति ख्याताः पूर्वं ये यज्ञसूनवः ॥

अजिताब्रह्मणःपुत्राजिताजिदजिताश्चये । पुत्राः स्वायंभुवस्यैते शुक्रनाम्ना तु मानसाः
तृप्तिमन्तोगणाह्येतेदेवानांतुत्रयःस्मृताः । छन्दोगास्तु त्रयस्त्रिंशत्सर्वे स्वायम्भुवस्य ह
यदुर्ययातिर्द्वौ देवौ दीध्रयः स्रवसोमतिः । विभासश्च क्रतुश्चैव प्रजातिर्विशतो द्युतिः॥
वायसो मङ्गलश्चैव यामाद्वादशकीर्तिताः । अभिमन्युरुग्रदृष्टिः समयोऽथ शुचिश्रवाः
केवलो विश्वरूपश्च सुपक्षो मधुपस्तथा ॥ ७ ॥
तुरीयो निर्हयुश्चैव युक्तो ग्रावाजिनस्तुते । यमिजो विश्वदेवाद्यं यविष्ठोऽमृतवानपि॥
अजिरो विभुर्विभावश्च मृलिकोऽथ दिदेहकः ।
श्रुतिश्रृणो वृहच्छुक्रो देवा द्वादश कीर्तिताः ॥ ६ ॥
आसन्स्वायम्भुवस्यैतेअन्तरे सोमपायिनः । त्विषिमन्तोगणाह्येतेवीर्यवन्तो महाबलाः
तेषामिन्द्रःसदाह्यासीद्विश्वभुक्प्रथमोविभुः । असुरा ये तदा तेषामासन्दायादबान्धवाः
सुपर्णयक्षगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः । अष्टौ ते पितृभिः सार्धं नासत्या देवयोनयः
स्वायंभुवेऽन्तरेऽतीताःप्रजास्त्वासां सहस्रशः । प्रभावरूपसंपन्ना आयुषाचबलेनच॥
विस्तरादिहनोच्यन्ते मा प्रसङ्गो भवत्विह । स्वायंभुवो निसर्गश्चविज्ञेयः सांप्रतंमनुः
अतीते वर्तमाने न दृष्टो वैवस्वतेन सः । प्रजाभिर्देवताभिश्च ऋषिभिः पितृभिः सह॥
तेषां सप्तर्षयः पूर्वमासन्ये तान्निबोधत । भृग्वङ्गिरा मरीचिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः॥
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च सप्त स्वायंभुवेऽन्तरे । अग्नीध्रश्चातिबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः
ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्यः सवनः पुत्र एव च । मनोःस्वायंभुवस्यैतेदशपुत्रा महौजसः
वायुप्रोक्ता महासत्त्वा राजानः प्रथमेऽन्तरे । सासुरं तत्सगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम्
सपिशाचमनुष्यं च सुपर्णाप्सरसां गणम् ॥१६॥
नो शक्यमानुपूर्व्येण वक्तुं वर्षशतैरपि । बहुत्वान्नामधेयानां संख्या तेषां कुले तथा॥
या वै व्रजकुलाख्यास्तु आसन्स्वायंभुवेन्तरे । कालेन बहुनाऽतीता अयनाब्दयुगक्रमैः

ऋषय ऊचुः

कएषभगवान्कालःसर्वभूतापहारकः । कस्ययोनिःकिमादिश्च किं तत्त्वं स किमात्मजः
किमस्य चक्षुः का मूर्तिः के चास्यावयवाः स्मृताः ॥

किं नामधेयः कोऽस्यात्मा एतत्प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥२३॥

सूत उवाच

श्रूयतां कालसद्भावः श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।

सूर्ययोनिर्निमेषादिः संख्याचक्षुः स उच्यते ॥२४॥

मूर्तिरस्य त्वहोरात्रे निमेषावयवश्च सः । संवत्सरशतं त्वस्य नामचास्य कलात्मकम्

सांप्रतानागतातीतकालात्मा स प्रजापतिः ॥२५॥

पञ्चानां प्रविभक्तानांकालावस्थांनिबोधत । दिनार्धमासमासैस्तुऋतुभिस्त्वयनैस्तथा

संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः । इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सरः ॥

वत्सरः पञ्चमस्तेषांकालः स युगसंज्ञितः । तेषां तु तत्त्वं वक्ष्यामिकीर्त्यमानंनिबोधत

क्रतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स तु संवत्सरो मतः ।

आदित्ये यस्त्वऽसौ सारः कालाग्निः परिवत्सरः ॥२६ ॥

शुक्लकृष्णागतिश्चापि अपां सारमयः खगः । स इद्वावत्सरः सोमः पुराणे निश्चयोमतः

यश्चायं तपते लोकांस्तनुभिःसप्तसप्तभिः । आशुकर्त्ता च लोकस्य स वायुरितिवत्सरः

अहंकाराद्रुदन्रुद्रः सद्भूतो ब्रह्मणस्त्रयः । स रुद्रो वत्सरस्तेषां विजज्ञे नीललोहितः ॥

तेषां हि तत्त्वं वक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोधत ॥३२॥

अङ्गप्रत्यङ्गसंयोगात्कालात्माप्रपितामहः । ऋक्सामयजुषां योनिःपञ्चानां पतिरीश्वरः

सोऽग्निर्यजुश्चसोमश्च स भूतः स प्रजापतिः । प्रोक्तःसंवत्सरश्चेतिसूर्योयोनिर्मनीषिभिः

यस्मात्कालविभागानां मासर्त्वयनयोरपि । ग्रहनक्षत्रशीतोष्णवर्षायुःकर्मणां तथा ॥

योजितः प्रविभागानां दिवसानां च भास्करः ॥३५॥

वैकारिकःप्रसन्नात्माब्रह्मपुत्रः प्रजापतिः । एकेनैकोऽथदिवसो मासोऽथर्तुः पितामहः

आदित्यः सविता भानुर्जीवनो ब्रह्मसत्कृतः । प्रभवश्चाव्ययश्चैवभूतानां तेन भास्करः

ताराभिमानी विज्ञेयस्तृतीयः परिवत्सरः । सोमः सर्वौषधिपतिर्यस्मात्स प्रपितामहः

आजीवः सर्वभूतानां योगक्षेमकृदीश्वरः । अवेक्षमाणः सततं बिभर्ति जगदंशुभिः॥३९

तिथीनां पर्वसंधीनांपूर्णिमादर्शयोरपि । योनिर्निशाकरो यच्चयोऽमृतात्मा प्रजापतिः

तस्मात्स पितृमान्सोस ऋग्यजुश्छन्दसात्मकः ।
प्राणापानसमानाद्यैर्व्यानोदानात्मकैरपि ॥४१॥
कर्मभिः प्राणिनां लोके सर्वचेष्टाप्रवर्तकः । प्राणापानसमानानां वायुनां च प्रवर्तकः॥
पञ्चानां चेन्द्रियमनोबुद्धिस्मृतिजलात्मनाम् । समानकालकरणः क्रियाः संपादयन्निव
सर्वात्मा सर्वलोकानामावहःप्रवहादिभिः । विधातासर्वभूतानां क्षमी नित्यं प्रभञ्जनः
योनिरग्नेरपां भूमेरवेश्चन्द्रमसश्च यः । वायुः प्रजापतिर्भूतं लोकात्मा प्रपितामहः॥४५
प्रजापतिमुखैर्देवैः सम्यगिष्टफलार्थिभिः । त्रिभिरेव कपालैस्तु अम्बकैरोषधिक्षये ॥
इज्यते भगवान्यस्मात्तस्मात्त्र्यम्बक उच्यते ॥४६॥
गायत्री चैव त्रिष्टुप्च जगती चैव या स्मृता ।
त्र्यम्बका नामतः प्रोक्ता योनयः सवनस्य ताः ॥४७॥
ताभिरेकत्वभूताभिस्त्रिविधाभिः स्ववीर्यतः । त्रिसाधनपुरोडाशस्त्रिकपालःसवैस्मृतः
इत्येतत्पञ्चवर्षं हि युगंप्रोक्तं मनीषिभिः । यच्चैवपञ्चधाऽऽत्मावैप्रोक्तःसंवत्सरोद्विजैः
सैकं षट्कं विजज्ञेऽथ मध्वादीनृतपः किल ॥४६॥
ऋतुपुत्रार्तवः पञ्च इति सर्गः समासतः । इत्येष पवमानो वै प्राणिनां जीवितानि तु
नदीवेगसमायुक्तं कालो धावति संहरन् । अहोरात्रकरस्तस्मात्स वायुरभवत्पुनः ॥
एते प्रजानां पतयः प्रधानाः सर्वदेहिनाम् । पितरःसर्वलोकानांलोकात्मानःप्रकीर्तिताः
ध्यायतो ब्रह्मणो वक्त्राद्रुद्रस्समभवद्भवः । ऋषिर्विप्रो महादेवो भूतात्मा प्रपितामहः
ईश्वरः सर्वभूतानां प्रणवायोपपद्यते । आत्मवेशेन भूतानामङ्गप्रत्यङ्गसंभवः ॥ ५४ ॥
अग्निः संवत्सरःसूर्यश्चन्द्रमा वायुरेव च । युगाभिमानी कालात्मानित्यंसंक्षेपकृद्विभुः
उन्मादकोऽनुग्रहकृत्स इद्वत्सर उच्यते ॥५५॥
रुद्राविष्टोभगवताजगत्यस्मिन्स्वतेजसा । आश्रयाश्रयसंयोगात्तनुभिर्नामभिस्तथा ॥
ततस्तस्य तु वीर्येण लोकानुग्रहकारकम् । द्वितीयं भद्रसंयोगं शतं तस्यैककारकम् ॥
देवत्वं च पितृत्वं च कालत्वं चास्य यत्परम् । तस्माद्वैसर्वथा भद्रस्तद्वद्भिरभिपूज्यते
पतिः पतीनां भगवान्प्रजेशानां प्रजापतिः । भवनः सर्वभूतानां सर्वेषां नीललोहितः ॥

ओषधीः प्रतिसंधत्ते रुद्रः क्षीणाः पुनः पुनः ॥५६॥
इत्येषां यदपत्यं वै न तच्छक्यं प्रमाणतः । बहुत्वात्परिसंख्यातुं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥
इमं वंशं प्रजेशानां महतांपुण्यकर्मणाम् । कीर्तयन्स्थिरकीर्तीनांमहतींसिद्धिमाप्नुयात्
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे देववंशवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१

द्वात्रिंशोऽध्यायः

प्रणवविनिश्चयवर्णनम्

वायुरुवाच

अत ऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिप्रणवस्यविनिश्चयम् । ओंकारमक्षरंब्रह्मत्रिवर्णश्चाऽऽदितःस्मृतम्
यो यो यस्य यथा वर्णो विहितो देवतास्तथा ।
ऋचो यजूंषि सामानि वायुरग्निस्तथा जलम् ॥२॥
तस्मात्तु अक्षरादेव पुनरन्ये प्रजज्ञिरे । चतुर्दश महात्मानो देवानां ये तु देवताः ॥३॥
तेषु सर्वगतश्चैव सर्वगः सर्वयोगवित् । अनुग्रहाय लोकानामादिमध्यान्तउच्यते॥४॥
सप्तर्षयस्तथेन्द्रा ये देवाश्च पितृभिः सह । अक्षरान्निःसृताः सर्वे देवदेवान्महेश्वरात् ॥
इहामुत्र हितार्थाय वदन्ति परमं पदम् । पूर्वमेव मयोक्तस्ते कालस्तु युगसंज्ञितः॥६॥
कृतं त्रेता द्वापरं च युगादिः कलिना सह । परिवर्तमानैस्तैरेव भ्रममाणेषु चक्रवत् ॥
देवतास्तु तदोद्विग्नाः कालस्यवशमागताः । न शक्नुवन्तितन्मानंसंस्थापयितुमात्मना
तदा ते वाग्यता भूत्वा आदौ मन्वन्तरस्य वै । ऋषयश्चैव देवाश्चइन्द्रश्चैवमहातपाः
समाधाय मनस्तीव्रं सहस्रं परिवत्सरान् । प्रपन्नास्तेमहादेवं भीताः कालस्य वै तदा
अयं हि कालो देवेशश्चतुर्मूर्त्तिश्चतुर्मुखः । कोऽस्य विद्वान्महादेव अगाधस्य महेश्वर
अथ दृष्ट्वा महादेवस्तंतुकालंचतुर्मुखम् । न भेतव्यमिति प्राह को वः कामःप्रदीयताम्
तत्करिष्याम्यहं सर्वं न वृथाऽयं परिश्रमः । उवाच देवोभगवान्स्वयं कालः सुदुर्जयः

यदेतस्य मुखं श्वेतं चतुर्जिह्वं हि लक्ष्यते। एतत्कृतयुगं नाम तस्य कालस्य वै मुखम्
असौ देवः सुरश्रेष्ठो ब्रह्मा वैवस्वतो मुखः ॥१४॥
यदेतद्रक्तवर्णाभं तृतीयं वः स्मृतं मया। त्रिजिह्वं लेलिहानं तु एतत्त्रेतायुगं द्विजाः
अत्र यज्ञप्रवृत्तिस्तुजायते हि महेश्वरात्। ततोऽत्र इज्यतेयज्ञस्तिस्रो जिह्वास्त्रयोऽग्नयः
इष्ट्वा चैवाग्नयो विप्राः कालजिह्वा प्रवर्तते ॥१६॥
यदेतद्वै मुखं भीमं द्विजिह्वं रक्तपिङ्गलम्। द्विपादोऽत्रभविष्यामिद्वापरं नाम तद्युगम्
यदेतत्कृष्णवर्णाभं तुरीयं रक्तलोचनम्। एकजिह्वं पृथुश्यामं लेलिहानं पुनः पुनः ॥
ततः कलियुगं घोरं सर्वलोकभयंकरम्। कल्पस्य तु मुखं ह्येतच्चतुर्थं नाम भीषणम् ॥
न सुखं नापि निर्वाणं तस्मिन्भवति वै युगे।
कालग्रस्ता प्रजा चापि युगे तस्मिन्भविष्यति ॥२०॥
ब्रह्मा कृतयुगे पूज्यस्त्रेतायां यज्ञ उच्यते। द्वापरे पूज्यते विष्णुरहं पूज्यश्चतुर्ष्वपि ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च यज्ञश्च कालस्यैव कलास्त्रयः। सर्वेष्वेव हि कालेषु चतुर्मूर्तिर्महेश्वरः
अहं जनो जनयिता वः कालः कालप्रवर्तकः। युगकर्त्ता तथा चैव परं परपरायणः
तस्मात्कलियुगं प्राप्यलोकानांहितकारणात्। अभयार्थं च देवानामुभयोर्लोकयोरपि
तदा भव्यश्चपूज्यश्चभविष्यामिसुरोत्तमाः। तस्माद्भयं न कार्यं च कलिंप्राप्यमहौजसः
एवमुक्तास्ततः सर्वा देवता ऋषिभिः सह। प्रणम्य शिरसा देवं पुनरूचुर्जगत्पतिम् ॥

देवर्षय ऊचुः

महातेजा महाकायो महावीर्यो महाद्युतिः। भीषणः सर्वभूतानां कथं कालश्चतुर्मुखः

महादेव उवाच

एष कालश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्मुखः। लोकसंरक्षणार्थाय अतिक्रामति सर्वशः ॥२८॥
नासाध्यं विद्यते चास्य सर्वस्मिन्सचराचरे।
कालः सृजति भूतानि पुनः संहरति क्रमात् ॥ २९॥
सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशे। तस्मात्तु सर्वभूतानि कालःकलयतेसदा
विक्रमस्य पदान्यस्य पूर्वोक्तान्येकसप्ततिः। तानि मन्वन्तराणीह परिवृत्तयुगक्रमात्

एकं पदं परिक्रम्य पदानामेकसप्ततिः । यदा कालः प्रक्रमते तदा मन्वन्तरक्षयः ॥३२॥
एवमुक्त्वा तु भगवान्देवर्षिपितृदानवान् । नमस्कृतश्च तैः सर्वैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥३३
एवं स कालो भगवान्देवर्षिपितृदानवान् । पुनःपुनः संहरते सृजते च पुनः पुनः ॥३४
अतो मन्वन्तरे चैव देवर्षिपितृदानवैः । पूज्यते भगवानीशो भयात्कालस्य तस्य वै ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कलौ कुर्यात्तपो द्विजाः । प्रपन्नस्य महादेवं तस्य पुण्यफलंमहत्

तस्माद्देवा दिवं गत्वा अवतीर्य च भूतले ॥३६॥

ऋषयश्चैव देवाश्च कलिं प्राप्य सुदारुणम् । तप इच्छन्ति भूयिष्ठं कर्तुं धर्मपरायणाः

अवतारान्कलिं प्राप्य करोति च पुनः पुनः ॥३७॥

एवं कालान्तरे सर्वे येऽतीता वै सहस्रशः । वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्देवराजर्षयस्तथा ॥
देवापिःपौरवोराजा मनु(रु)श्चेक्ष्वाकुवंशजः । महायोगबलोपेताःकालान्तरमुपासते ॥
क्षीणे कलियुगे तस्मिंस्तिष्ये त्रेतायुगे कृते । सप्तर्षिभिश्चैव सार्धं भाव्येत्रेतायुगे पुनः

गोत्राणां क्षत्रियाणां च भविष्यास्ते प्रकीर्तिताः ॥४०॥

द्वापरान्ते प्रतिष्ठन्ते क्षत्रिया ऋषिभिः सह । कृते त्रेतायुगे चैव तथा क्षीणे च द्वापरे
ब्रह्मक्षत्रस्य चोच्छेदा द्विजार्थाय कलौ स्मृताः । एवमेतेषु सर्वेषु युगेषुक्रमशस्तथा
सप्तर्षिभिस्तथासार्धंसंतानार्थंयुगे युगे । एवंक्षत्रस्यचोच्छेदाःसंबन्धाद्वैद्विजैःस्मृताः

नराः पातकिनो ये वै वर्तन्ते ते कलौ स्मृताः ॥४३॥

मन्वन्तराणां सप्तानां सान्तानार्था श्रुतिः स्मृतिः । एवमेतेषु सर्वेषु युगक्षयक्रमस्तथा
परस्परंयुगानां च ब्रह्मक्षत्रस्य चोद्भवः । यथा वै प्रकृतिस्तेभ्यः प्रवृत्तानां यथाक्षयम्
जामदग्न्येन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते । क्रियन्ते कुलटाः सर्वाः क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः

दिवं गतानहं तुभ्यं कीर्तयिष्ये निबोधत ॥४६॥

ऐडमिक्ष्वाकुवंशस्य प्रकृतिं परिचक्षते । राजानः श्रोणिबन्धास्तुतथाऽन्येक्षत्रियाभुवि
ऐडवंशेऽथ संभूतास्तथाचेक्ष्वाकवो नृपाः । तेभ्य एव शतं पूर्णं कुलानामभिषेचितम्
तावदेव तु भोजानांविस्तरोद्विगुणः स्मृतः ! भोजं तु त्रिशतंक्षत्रंचतुर्धातद्यथादिशम्
तेष्वतीतास्तु राजानो ब्रुवतस्तान्निबोधत । शतं वै प्रतिविन्ध्यानांहैहयानांतथाशतम्

धार्तराष्ट्रास्त्वेकशतमशीतिर्जनमेजयाः । शतं वै ब्रह्मदत्तानां कुलानां वीर्यिणां शतम्
ततः शतं तु पौलानां शतं काशिकुशादयः । तथाऽपरं सहस्रं तु येऽतीताःशशबिन्दवः

ईजानास्तेऽश्वमेधैस्तु सर्वे नियुतदक्षिणैः ॥५२॥

एवं राजर्षयोऽतीताः शतशोऽथ सहस्रशः । मनोर्वैवस्वतस्येह वर्तमानेऽन्तरे शुभे ॥
पुनरुक्तबहुत्वाच्च न शक्यं विस्तरेण तु । एवं संक्षेपतः प्रोक्ता न शक्या विस्तरेण तु

वक्तुं राजर्षयः कृत्स्ना येऽतीतास्तैर्युगैः सह ॥५४॥

एते ययातिवंशस्य बभूवुर्वंशवर्धनाः । कीर्तिता द्युतिमन्तस्ते ये लोकान्धारयन्ति वै
लभन्ते च वरान्पञ्च दुर्लभान्ब्रह्मलौकिकान् । आयुः पुत्रा धनं कीर्तिरैश्वर्यं भूतिरेव च
धारणाच्छ्रवणाच्चैवपञ्चवर्गस्यधीमताम् । तथोक्तालौकिकाश्चैवब्रह्मलोकंव्रजन्ति वै

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगम् ।

तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः ॥५८॥

कृते वै प्रक्रियापादश्चतुःसाहस्र उच्यते । तस्माच्चतुःशतं संध्या संध्यांशश्च तथाविधः

त्रेता त्रीणि सहस्राणि संख्यया मुनिभिः सह ।

तस्यापि त्रिशती संध्या संध्यांशस्त्रिशतः स्मृतः ॥६०

अनुषङ्गपादस्त्रेतायास्त्रिसाहस्रस्तु संख्यया । द्वापरे द्वे सहस्रे तु वर्षाणांसंप्रकीर्तितम्
तस्यापिद्विशतीसंध्यासंध्यांशोद्विशतस्तथा । उपोद्घातस्तृतीयस्तुद्वापरे पादउच्यते
कलिंवर्षसहस्रंतुप्राऽऽहुःसंख्याविदो जनाः । तस्यापिशतिकासंध्यासंध्यांशः शतमेव च
संहारपादःसंख्यातश्चतुर्थो वै कलौ युगे । ससंध्यानिसहांशानिचत्वारि तु युगानि वै
एतद्द्वादशसाहस्रं चतुर्युगमितिस्मृतम् । एवं पादैः सहस्राणि श्लोकानां पञ्च पञ्च च
संध्यासंध्यांशकैरेव द्वे सहस्रे तथापरे । एवं द्वादशसाहस्रं पुराणं कवयो विदुः ॥६६
यथा वेदश्चतुष्पादश्चतुष्पादं तथा युगम् । यथा युगं चतुष्पादंविधात्राविहितंस्वयम्

चतुष्पादं पुराणं तु ब्रह्मणा विहितं पुरा ॥ ६७ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे युगधर्मनिरूपणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

स्वायम्भुववंशवर्णनम्

सूत उवाच

मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह । तुल्याभिमानिनः सर्वे जायन्ते नामरूपतः ॥१
देवाश्चविविधा ये च तस्मिन्मन्वन्तरेऽधिपाः । ऋषयोमनवश्चैवसर्वेतुल्याभिमानिनः
महर्षिसर्गः प्रोक्तो वै वंशंस्वायंभुवस्य तु । विस्तरेणानुपूर्व्या च कीर्त्यमानं निबोधत
मनोःस्वायंभुवस्याऽऽसन्दशपौत्रास्तुतत्समाः । यैरियं पृथिवीसर्वासप्तद्वीपसमन्विता
ससमुद्रा करवती प्रतिवर्षं निवेशिता । स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तदा ॥५॥
प्रियव्रतत्प्र पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायंभुवस्य तु । प्रजासर्गतपोयोगैस्तैरियं विनिवेशिता॥
प्रियव्रतात्प्रजावन्तोवीरात्कन्याव्यजायत । कन्यासातुमहाभागाकर्दमस्य प्रजापतेः ॥
कन्ये द्वे शतपुत्राश्च सम्राट्कुक्षिश्च ते उभे । तयोर्वै भ्रातरः शूराः प्रजापतिसमादश
अ(आ)ग्नीध्रश्चवपुष्मांश्चमेधामेधातिथिर्विभुः।ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्यःसवनःसर्वएवच
प्रियव्रतोऽभिषिच्यैतान्सप्तसप्तसु पार्थिवान् । द्वीपेषु तेषु धर्मेण द्वीपांस्तांश्चनिबोधत
जम्बूद्वीपेश्वरं चक्रे अग्नीध्रं तु महाबलम् । प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापि तेन मेधातिथिः कृतः ॥
शाल्मलौ तु वपुष्मन्तंराजानमभिषिक्तवान् । ज्योतिष्मन्तंकुशद्वीपेराजानंकृतवान्प्रभुः
द्युतिमन्तं च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत् । शाकद्वीपेश्वरं चापि हव्यं चक्रे प्रियव्रतः
पुष्कराधिपतिं चापि सवनं कृतवान्प्रभुः । पुष्करे सवनस्यापि महावीतःसुतोऽभवत्
धातकिश्चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ॥१४॥
महावीतं स्मृतं वर्षं तस्यनाम्नामहात्मनः । नाम्ना तु धातकेश्चापिधातकीखण्डउच्यते
हव्यो व्यजनयत्पुत्राञ्शाकद्वीपेश्वरान्प्रभुः । जलदं च कुमारं च सुकुमारं मणीचकम्
वसुमोदं सुमोदाकं सप्तमं च महाद्रुमम् ॥१६॥
जलदं जलदस्याथ वर्षं प्रथममुच्यते । कुमारस्य च कौमारं द्वितीयं परिकीर्तितम् ॥

सुकुमारं तृतीयं तु सुकुमारस्य कीर्तितम् । मणीचकस्य चतुर्थं मणीचकमिहोच्यते
वसुमोदस्य वै वर्षं पञ्चमं वसुमोदकम् । मोदकस्य तु मोदाकं वर्षं षष्ठं प्रकीर्तितम्
महाद्रुमस्य नाम्ना तु सप्तमं तु महाद्रुमम् । एषां तु नामभिस्तानि सप्तवर्षाणितत्र वै
क्रौञ्चद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रा द्युतिमतस्तु वै । कुशलो मनुगश्चोष्णः पीवरश्चान्धकारकः
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सुता द्युतिममतस्तु वै ॥२१॥
तेषां स्वनामभिर्देशाः क्रौञ्चद्वीपाश्रयाः शुभाः ।
उष्णस्योष्णः स्मृतो देशः पीवरस्यापि पीवरः ॥२२॥
अन्धकारकदेशस्तु अन्धकारश्च कीर्त्यते । मुनेस्तु मुनिदेशो वै दुन्दुभेर्दुदुभिः स्मृतः
एते जनपदाः सप्त क्रौञ्चद्वीपे तु भास्वराः ॥२३॥
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्तैते सुमहौजसः । उद्भिदो वेणुमांश्चैव स्वैरथो लवणोधृतिः
षष्ठः प्रभाकरश्चैव सप्तमः कपिलः स्मृतः ॥२४॥
उद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम् । तृतीयं स्वैरथाकारं चतुर्थं लवणं स्मृतम् ॥
पञ्चमं धृतिमद्वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् । सप्तमं कपिलं नाम कपिलस्य प्रकीर्तितम् ॥
तेषां द्वीपाः कुशद्वीपे तत्सनामान एव तु । आश्रमाचारयुक्ताभिः प्रजाभिःसमलंकृताः
शाल्मलस्येश्वराः सप्त पुत्रास्ते तु वपुष्मतः । श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभः सप्तमस्तथा ॥२८॥
श्वेतस्य श्वेतदेशस्तुरोहितस्य च रोहितः । जीमूतस्य च जीमूतोहरितस्य च हारितः
वद्युतो वैद्युतस्यापि मानसस्यापि मानसः । सुप्रभः सुप्रभस्यापि सप्तैते देशपालकाः
सप्तद्वीपे तु वक्ष्यामि जम्बूद्वीपादनन्तरम् । सप्तमेधातिथेः पुत्राःप्लक्षद्वीपेश्वरा नृपाः ॥
ज्येष्ठःशान्तभयस्तेषांसप्तवर्षाणितानि वै । तस्माच्छान्तभयाच्चैवशिशिरस्तुसुखोदयः
आनन्दश्च ध्रुवश्चैव क्षेमकश्च शिवस्तथा ॥३२॥
तानि तेषां सनामानिसप्तवर्षाणि भागशः । निवेशितानितैस्तानि पूर्वं स्वायंभुवेऽन्तरे
मेधातिथेस्तु पुत्रैस्तैः सप्तद्वीपनिवासिभिः । वर्णाश्रमाचारयुताः प्लक्षद्वीपे प्रजाःकृताः
प्लक्षद्वीपादिकेष्वेव शाकद्वीपान्तरेषु वै । ज्ञेयः पञ्चसु धर्मो वै वर्णाश्रमविभागशः ॥३५

सुखमायुश्च रूपं च बलं धर्मश्च नित्यशः । पञ्चस्वेतेषु द्वीपेषु सर्वं साधारणं स्मृतम्
सप्तद्वीपपरिक्रान्तं जम्बूद्वीपं निबोधत । अग्नीध्रं ज्येष्ठदायादं कन्यापुत्रं महाबलम् ॥
प्रियव्रतोऽस्यषिञ्चत्तं जम्बूद्वीपेश्वरं नृपम् ॥३७॥

तस्य पुत्रा बभूवुर्हिप्रजापतिसमौजसः । ज्येष्ठोनाभिरितिख्यातस्तस्यकिम्पुरुषोऽनुजः
हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थोऽभूदिलावृतः । रम्यः स्यात्पञ्चमःपुत्रो हरिण्मान्षष्ठ उच्यते
कुरुस्तु सप्तमस्तेषां भद्राश्वो ह्यष्टमः स्मृतः । नवमः केतुमालस्तु तेषां देशान्निबोधत
नाभेस्तु दक्षिणं वर्षं हिमाह्वं तु पिता ददौ । हेमकूटं तु यद्वर्षं ददौ किं पुरुषाय तत्
नैषधं यत्स्मृतं वर्षं हरिवर्षाय तद्ददौ । मध्यमं यत्सुमेरोस्तु स ददौ तदिलावृते ॥
नीलं तु यत्स्मृतं वर्षं रम्यायैतत्पिता ददौ । श्वेतं यदुत्तरंतस्मात्पित्रा दत्तं हरिण्मते
यदुत्तरं शृङ्गवतो वर्षं तत्कुरवे ददौ । वर्षं माल्यवतं चापि भद्राश्वाय न्यवेदयत् ॥
गन्धमादनवर्षं तु केतुमाले न्यवेदयत् । इत्येतानि महान्तीह नव वर्षाणि भागशः ॥
अग्नीध्रस्तेषु सर्वेषु पुत्रांस्तानभ्यषिञ्चत । यथाक्रमं स धर्मात्मा ततस्तुतपसिस्थितः
इत्येतैः सप्तभिः कृत्स्नाः सप्तद्वीपानिवेशिताः । प्रियव्रतस्यपुत्रैस्तैःपौत्रैःस्वायंभुवस्यतु
यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ शुभानि तु ।
तेषां स्वभागतः सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ॥४८॥

विपर्ययो न तेष्वस्तिजरामृत्युभयं न च । धर्माधर्मौ न तेष्वास्तांनोत्तमाधममध्यमाः
न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वेव तु सर्वशः ॥४९॥

नाभेर्हि सर्गं वक्ष्यामि हिमाह्वे तन्निबोधत । नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मेरुदेव्यां महाद्युतिः
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ॥५०॥

ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः । सोऽभिषिच्याथ भरतः पुत्रंप्राव्राज्यमास्थितः
हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत् । तस्मात्तद्भारतं वर्षं तस्यनाम्ना विदुर्बुधाः ॥
भरतस्याऽऽत्मजो विद्वान्सुमतिर्नाम धार्मिकः ।
बभूव तस्मिंस्तद्राज्यं भरतः संन्ययोजयत् ॥
पुत्रसंक्रामितश्रीको वनं राजा विवेश सः ॥५३॥

तैजसस्तत्सुतश्चापि प्रजापतिरमित्रजित् । तैजसस्याऽऽत्मजो विद्वानिन्द्रद्युम्नइतिश्रुतः
परमेष्ठी सुतस्याथ निधने तस्य शोभनः । प्रतीहारः कुले तस्य नाम्ना जज्ञे तदन्वयात्
प्रतिहर्तेति विख्यातो जज्ञे तस्यापि धीमतः ॥५७॥
उन्नेता प्रतिहर्तुस्तु भुवस्तस्यसुतः स्मृतः । उद्गीथस्तस्यपुत्रोऽभूत्प्रताविश्चापितत्सुतः
प्रतावेस्तु विभुःपुत्रःपृथुस्तस्यसुतो मतः । पृथोश्चापिसुतोनक्तोनक्तस्यापिगयःस्मृतः
गयस्य तु नरः पुत्रो नरस्यापि सुतो विराट् ।
विराट्सुतो महावीर्यो धीमांस्तस्य सुतोऽभवत् ॥५८॥
धीमतश्च महान्पुत्रोमहतश्चापिभौवनः । भौवनस्यसुतस्त्वष्टाअरिजस्तस्यचाऽऽत्मजः
अरिजस्य रजः पुत्रः शतजिद्रजसो मतः । तस्य पुत्रशतं त्वासीद्राजानः सर्व एव ते
विश्वज्योतिष्प्रधाना यैस्तैरिमा वर्धिताः प्रजाः । तैरिदं भारतं वर्षं सतखण्डंकृतंपुरा
तेषां वंशप्रसूतैस्तु भुक्तेयं भारती धरा । कृतत्रेतादियुक्तानि युगाख्यान्येकसप्ततिः ॥
येऽतीतास्तैर्युगैः सार्धं राजानस्तेतदन्वयाः । स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वं शतशोऽथ सहस्रशः
एष स्वायंभुवः सर्गो येनेदं पूरितं जगत् । ऋषिभिर्दैवतैश्चापि पितृगन्धर्वराक्षसैः ॥
यक्षभूतपिशाचैश्च मनुष्यमृगपक्षिभिः । तेषां सृष्टिरियं लोके युगैः सह विवर्तते ॥६५

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे स्वायंभुववंशानुकीर्तनं नाम
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

जम्बूद्वीपवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

एवं प्रजासंनिवेशं श्रुत्वा च ऋषिपुंगवः । पप्रच्छ निपुणः सूतं पृथिव्यायामविस्तरौ
कति द्वीपाः समुद्रा वा पर्वताश्च कति प्रभो ! ।

कियन्ति चैव वर्षाणि तेषु नद्यश्च काः स्मृताः ॥२॥
महाभूतप्रमाणं च लोकालोकौ तथैव च। पर्यायपारिमाण्यं च गतिश्चन्द्रार्कयोस्तथा
एतत्प्रब्रूहि नः सर्वं विस्तरेण यथा तथा ॥३॥

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पृथिव्यायामविस्तरम्।
संख्यां चैव समुद्राणां द्वीपानां चैव विस्तरम् ॥४॥
यावन्ति चैव वर्षाणि तेषु नद्यश्च याः स्मृताः। महाभूतप्रमाणं च लोकालोकौतथैवच
पर्यायपारिमाण्यं च गतिश्चन्द्रार्कयोस्तथा ॥५॥
द्वीपभेदसहस्राणि सप्तस्वन्तर्गतानि वै। न शक्यन्ते प्रमाणेन वक्तुं वर्षशतैरपि ॥६ ॥
सप्तद्वीपं तु वक्ष्यामि चन्द्रादित्यग्रहैः सह। येषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते
अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण भावयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तन्नित्यं च प्रचक्ष्य(क्ष)ते ॥८॥
नववर्षं प्रवक्ष्यामि जम्बूद्वीपं यथा तथा। विस्तरान्मण्डलाच्चैव योजनैस्तन्निबोधत
शतमेकं सहस्राणां योजनानां प्रमाणतः। नानाजनपदाकीर्णैः पुरैश्च विविधैः शुभैः ॥
सिद्धचारणगन्धर्वपर्वतैरुपशोभितम्। सर्वधातुनिबद्धैश्च　　शिलाजालसमुद्भवैः ॥
पर्वतप्रभवाभिश्च नदीभिः पर्वतैस्तथा ॥११॥
जम्बूद्वीपः पृथुः श्रीमान्सर्वतः परिवारितः। नवभिश्चाऽऽवृतः सर्वैर्भुवनैर्भूतभावनैः ॥
लावणेन समुद्रेण सर्वतः परिवारितः ॥१२॥
जम्बूद्वीपस्य विस्तारात्समेन तु समंततः। प्रागायताः सुपर्वाणः षडिमे वर्षपर्वताः
अवगाढा उभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥१३॥
हिमप्रायश्च हिमवान्हेमकूटश्च हेमवान्। तरुणादित्यवर्णाभौ हैरण्यो निषधः स्मृतः
चातुवर्णस्तु सौवर्णो मेरुश्चोच्चतमः स्मृतः। प्लुताकृतिप्रमाणश्चचतुरस्रःसमुच्छ्रितः
नानावर्णस्तु पार्श्वेषु प्रजापतिगुणान्वितः। नाभिबन्धनसंभूतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः
पूर्वतः श्वेतवर्णोऽसौब्राह्मण्यं तस्यतेन तत्। पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यते

भृङ्गपत्रनिभश्चासौ पश्चिमेन महाबलः । तेनास्य शूद्रता दृष्टा मेरोर्नानार्थकारणात्
पार्श्वमुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णस्वभावतः । तेनास्य क्षत्त्रताचस्यादितिवर्णाः प्रकीर्तिताः
व्यक्तः स्वभावतः प्रोक्तो वर्णतः परिमाणतः ॥ १६ ॥
नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतशृङ्गो हिरण्मयः । मयूरबर्हवर्णस्तु शातकौम्भस्तु शृङ्गवान्
एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः । तेषामन्तरविष्कम्भो नवसाहस्र उच्यते ॥
मध्ये त्विलावृतंयस्तु महामेरोः समन्ततः । नवैवतु सहस्राणि विस्तीर्णः पर्वतस्तुसः
मध्ये तस्य महामेरोर्निर्धूम इव पावकः ॥ २२ ॥
वेद्यर्धं दक्षिणं मेरोरुत्तरार्धं तथोत्तरम् । वर्षाणि यानि सप्तात्र तेषां ये वर्षपर्वताः ॥
द्वे द्वे सहस्रे विस्तीर्णा योजनानि समुच्छ्रयात् ॥ २३ ॥
जम्बूद्वीपस्य विस्तारात्तेषामायाम उच्यते । योजनानां सहस्राणिशतेद्वेमध्यमौ गिरी
नीलश्च निषधश्चैव ताभ्यां हीनास्तुयेऽपरे । श्वेतश्च हेमकूटश्च हिमवाञ्शृङ्गवांश्च यः
नवतिर्द्वावशीतिर्द्वौ सहस्राण्यायतास्तु ये । तेषां मध्ये जनपदास्तानि वर्षाणिसप्त वै
सम्पातविषमैस्तैस्तु पर्वतैरावृतानि च । सन्ततानि नदीभेदैरगम्यानि परस्परम् ॥
वसन्ति तेषु सत्वानि नानाजातीनि भागशः ॥ २७ ॥
इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम् । हेमकूटं परं तस्मान्नाम्ना किंपुरुषं स्मृतम्
नैषधं हेमकूटं तु हरिवर्षं तदुच्यते । हरिवर्षात्परं चैव मेरोश्च तदिलावृतम् ॥२६॥
इलावृतप(तात्प)रं नीलं रम्यकंनामविश्रुतम् । रम्यात्परतरंश्वेतं विश्रुतं तद्धिरण्मयम्
हिरण्मयात्परं चापि शृङ्गवांस्तु कुरु स्मृतम् ॥ ३० ॥
धनुःसंस्थेचविज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे । दीर्घाणि तत्र चत्वारि मध्यमं तदिलावृतम्
अर्वाक्च निषधस्याथ वेद्यर्धं दक्षिणं स्मृतम् । परंनीलवतो यच्च वेद्यर्धं तु तदुत्तरम्
वेद्यर्धे दक्षिणे त्रीणि वर्षाणि त्रीणि चोत्तरे ॥ ३२ ॥
तयोर्मध्ये तु विज्ञेयं मेरुमध्यमिलावृतम् । दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ॥
उदगायतो महाशैलो माल्यवान्नामपर्वतः । योजनानां सहस्रोरुरानीलनिषधायतः ॥
आयामतश्चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि प्रकीर्तितः ॥ ३४ ॥

तस्य प्रतीच्यांविज्ञेयःपर्वतो गन्धमादनः । आयामादथविस्तारान्माल्यवानितिविश्रुतः
परिमण्डलयोर्मध्ये मेरुरुत्तमपर्वतः । चतुर्वर्णः सुसौवर्णश्चतुरस्रः समुच्छ्रितः ॥
अव्यक्ता धातवः सर्वे समुत्पन्ना जलादथः ॥ ३६ ॥
अव्यक्तात्पृथिवीपद्मं मेरुपर्वतकर्णिकम् । चतुष्पथं समुत्पन्नं व्यक्तं पञ्चगुणं महत् ।
ततः सर्वाः समुत्पन्ना वृत्तयोद्विजसत्तमाः । नैककल्पार्जितैःपुण्यैर्विविधैःप्रागुपार्जितैः
कृतात्मभिर्विनीतात्मा महात्मापुरुषोत्तमः । महादेवो महायोगी जगज्ज्येष्ठो महेश्वरः
सर्वलोकगतोऽनन्तो ह्यमूर्तित्वादजायत ॥ ३६ ॥
नतस्यप्राकृतामूर्तिर्मांसमेदोस्थिसंभवा । योगाच्चैवेश्वरत्वाच्चसर्वात्मा(त्म)गतएवसः
तन्निमित्तं समुत्पन्नं लोकपद्मंसनातनम् । कल्पशेषस्यतस्याऽऽदौकालस्य गतिरीदृशी
तस्मिन्पद्मे समुत्पन्नो देवदेवश्चतुर्मुखः । प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा ईशानो जगतः प्रभुः ॥
तस्य बीजनिसर्गोहि पुष्करस्ययथार्थवत् । कृतस्नः प्रजानिसर्गेण विस्तरेणेह कथ्यते
यदब्जं वैष्णवं कार्यं ततस्तन्नाभितोऽभवत् । पद्माकारासमुत्पन्ना पृथिवी सघनद्रुमा
तदस्य लोकपद्मस्य विस्तरेण प्रकाशितम् । वर्णमानं विभागेन क्रमशः शृणुत द्विजाः
महाद्वीपास्तु विख्याताश्चत्वारः पत्रसंस्थिताः ।
ततः कर्णिकसंस्थानो मेरुर्नाम महाबलः ॥ ४६ ॥
नानावर्णेषु पार्श्वेषुपूर्वतः श्वेत उच्यते । पीतंतु दक्षिणं तस्य शृङ्गं कृष्णं तथाऽपरम्
उत्तरं तस्य रक्तं वै शोभिवर्णसमन्वितम् । मेरुस्तु शोभतेशुभ्रो राजवत्स तु धिष्ठितः
तरुणादित्यवर्णाभो विधूम इव पावकः । चतुरशीतिसाहस्र उत्सेधेन प्रकीर्तितः ॥
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तृतस्तावदेव तु । स शरावस्थितःपूर्वं द्वात्रिंशन्मूर्ध्निविस्तृतः
विस्तारात्त्रिगुणश्चास्य परिणाहःसमन्ततः । मण्डलेन प्रमाणेनत्र्यस्रेऽर्धं तु तदिष्यते
चत्वारिंशत्सहस्राणियोजनानांसमन्ततः ।अष्टाभिरधिकानिस्युःस्त्र्यस्रेमानंप्रकीर्तितम्
चतुरस्रेण मानेन परिणाहः समन्ततः । चतुःषष्टिः सहस्राणि योजनानां विधीयते ॥
स पर्वतो महान्दिव्यो दिव्यौषधिसमन्वितः । भुवनैरावृतः सर्वो जातरूपमयैः शुभैः॥
तत्र देवगणाः सर्वे गन्धर्वोरगराक्षसाः । शैलराजे प्रदृश्यन्ते शुभाश्चाप्सरसां गणाः

स तु मेरुः परिवृतो भुवनैर्भूतभावनैः । चत्वारोयस्य देशा वै नानापार्श्वेष्वधिष्ठिताः
भद्राश्वो भरतश्चैव केतुमालश्च पश्चिमः । उत्तरा कुरवश्चैव कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥५७॥

कर्णिका तस्य पद्मस्य समन्तात्परिमण्डला ।
योजनानां सहस्राणि नवतिः षट्प्रकीर्तिताः ॥
चत्वारश्चाप्यशीतिश्च अन्तरा(र)न्तरधिष्ठिताः ॥ ५८ ॥

त्रिशतं च सहस्राणि योजनानांप्रमाणतः । तस्य केशरजालानिविस्तीर्णानिसमन्ततः
शतसाहस्त्रिकायामासाशोतिपृथुलायता । चत्वारि तस्य पत्राणियोजनानांचतुर्दिशम्
तत्र याऽसौ मया पूर्वंकर्णिकेत्यभिशब्दिता । तां वर्ण्यमानामेकाग्राःसमासेननिबोधत
शताश्रिमेनं मेनेऽत्रिः सहस्राश्रिमृषिर्भृगुः । अष्टाश्रिमेनं सावर्णिश्चतुरस्रं तु भागुरिः

व(वा)र्षायणिस्तु सामुद्रं शरावं चैव गालवः ।
ऊर्ध्ववेणीकृतं गार्ग्यः क्रोष्टुकिः परिमण्डलम् ॥६३॥

यद्यद्यस्य हि यत्पार्श्वं पर्वताधिपतेर्ऋषिः । तत्तदेवास्य वेदासौ ब्रह्मैनं वेद कृत्स्नशः
मणिरत्नमयं चित्रं नानावर्णप्रभायुतम् । अनेकवर्णनिचयं सौवर्णमरुणप्रभम् ॥६५॥
कान्तं सहस्रपर्वाणं सहस्रोदककन्दरम् । सहस्रशतपत्रं तं विद्धि मेरुं नगोत्तमम् ॥
मणिरत्नार्पितस्तम्भैर्मणिचित्रितवेदिकैः । सुवर्णमणिचित्राङ्गं तथा विद्रुमतोरणैः ॥
विमानयानैः श्रीमद्भिः शतसंख्यैर्दिवौकसाम् । प्रभादीपितपर्यन्तं मेरुं पर्वणि पर्वणि
तस्य पर्वसहस्रेऽस्मिन्नानाश्रयविभूषिते । सर्वदेवनिकायानि संनिविष्टान्यनेकशः ॥६९
तमावसच्चोर्ध्वतले देवदेवश्चतुर्मुखः । ब्रह्माब्रह्मविदां श्रेष्ठो वरिष्ठस्त्रिदिवौकसाम् ॥७०
महाभुवनसंपूर्णैः सर्वैः कामफलप्रदैः । महापुरसहस्रैस्तं दिक्ष्वनेकसमाकुलम् ॥७१॥
तत्र ब्रह्मसभा रम्या ब्रह्मर्षिगणसेविता । नाम्ना मनोवती नाम सर्वलोकेषु विश्रुता ॥
तत्रेशानस्य देवस्य सहस्रादित्यवर्चसम् । महाविमानसंस्थस्य महिम्ना वर्तते सदा ॥
तत्र सर्षिगणा देवाश्चतुर्वक्त्रस्य ते तदा । तत्रैव तेजसां राशिर्देवानां तत्र कीर्त्यते ॥
तत्राऽऽस्ते श्रीपतिःश्रीमान्सहस्राक्षःपुरंदरः । उपास्यमानस्त्रिदशैर्महायोगैः सुरर्षिभिः
तत्र लोकपतेः स्थानमादित्यसमवर्चसः । महेन्द्रस्य महाराज्ञः सर्वसिद्धैर्नमस्कृतम् ॥

तमिन्द्रलोकं लोकस्य ऋद्ध्या परमया युतम् ।
दीप्यते त्वमरश्रेष्ठैस्त्रिदिशैर्नित्यसेवितम् ॥ ७७ ॥

द्वितीयेऽप्यन्तरतटे वैदिश्ये पूर्वदक्षिणे । नानाधातुशतैश्चित्रैः सुरम्यमतितेजसम् ॥७८
नैकरत्नार्थिततलमनेकस्तम्भसंयुतम् । जाम्बूनदकृतोद्यानं नानारत्नसुवेदिकम् ॥
कूटागारैर्विनिक्षिप्तमनेकैर्भवनोत्तमैः । महाविमानं प्रथितं भास्वरं जातवेदसम् ॥८०
सा हि तेजोवती नाम हुताशस्य महासभा । साक्षात्तत्र सुरश्रेष्ठः सर्वदेवमुखोऽनलः
शिखाशतसहस्राढ्यो ज्वालामाली विभावसुः । स्तूयते हूयते चैव तत्र सर्षिगणैःसुरैः
अधिदैव कृतंविप्रैर्विशेषः स तु उच्यते । सविभागं च तेजश्च शर्व ए(मे)व न संशयः

भोगान्तरमनुप्राप्त एकतेजोविभुः स्मृतः ।
पृथक्त्वं च हि युक्त्या तु कार्यकारणमिश्रितम् ॥८४॥

तमग्निं लोकलोकज्ञैस्तद्वीर्यैस्ततपराक्रमैः । महात्मभिर्महासिद्धैर्महाभागैर्नमस्कृतम् ॥
तृतीयेऽप्यन्तरतट एवमेव महासभा । वैवस्वतस्य विज्ञेया लोके ख्याता सुसंयमा ॥

तथा चतुर्थदिग्देशे नैर्ऋत्याधिपतेः सभा ।
नाम्ना कृष्णाङ्गना नाम विरूपाक्षस्य धीमतः ॥८७॥

पञ्चमेऽप्यन्तरतट एवमेव महासभा । वैवस्वतस्य विज्ञेया नाम्ना शुभवती सती ॥

उदकाधिपतेः ख्याता वरुणस्य महात्मनः ॥८८॥

परोत्तरे तथा देशे षष्ठेऽन्तरतटे शिवे । वायोर्गन्धवती नाम सभा सर्वगुणोत्तरा ॥
सप्तमेप्यऽन्तरतटे नक्षत्राधिपतेः सभा । नाम्ना महोदया नाम शुद्धवैदूर्यवेदिका ॥
तथाऽष्टमेऽन्तरतट ईशानस्य महात्मनः । यशोवती नाम सभा तप्तकाञ्चनसुप्रभा ॥

महाविमानान्येतानि दिक्ष्वष्टसु शुभानि हि ।
अष्टानां देवमुख्यानामिन्द्रादीनां महात्मनाम् ॥९२॥

ऋषिभिर्देवगन्धर्वैरप्सरोभिर्महोरगैः । सेवितानि महाभागैरुपस्थानगतैः सदा ॥
नाकपृष्ठं दिवं स्वर्गमिति यैः परिपठ्यते । वेदवेदाङ्गविद्भिर्हि शब्दैः पर्यायवाचकैः ॥
तदेतत्सर्वदेवानामधिवासे कृतात्मनाम् । देवलोको गिरौ तस्मिन्सर्वश्रुतिषु गीयते

नियमैर्विविधैर्यज्ञैर्बहुभिर्नियतात्मभिः । पुण्यैरन्यैश्च विविधैर्नैकजातिशतार्जितैः ॥
प्राप्नोति देवलोकं तं स स्वर्ग इति चोच्यते ॥६६॥
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे जम्बूद्वीपवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः
मेरुमूलस्याऽऽयामनिरूपणम्
सूत उवाच
यत्तद्वै कर्णिकामूलमिति वै संप्रकीर्तितम् । तद्योजनसहस्राणांसततीनामधः स्मृतम् ॥
चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च सहस्राण्यत्र मण्डलम् । शैलराजावृतं रम्यं मेरुमूलमिति श्रुतिः
तेषां गिरिसहस्राणामनेकेषु महोच्छ्रिताः । दिक्षु सर्वासु पर्यन्तैर्मर्यादाःपर्वताः स्मृताः
निकुञ्जकन्दरनदीगुहानिर्भरशोभिताः । बहुप्रासादकटकैस्तटैश्च कुसुमोज्ज्वलैः ॥४॥
नितम्बपुष्पमालौघैः सानुभिर्धातुमण्डितैः । शिखरैर्हेमकपिलैर्नैकप्रस्रवणावृतैः ॥
शोभिता गिरयः सर्वे पुष्टै रत्नसमर्पितैः ॥५॥
विहंगशतसंपुष्टैः कुञ्जैरनुपमैरपि । सिंहसार्दूलशरभैर्नैकैश्चामरवारणैः ॥
नानावर्णाकृतिधरैः सेविता विविधैर्नगैः ॥६॥
सप्ताश्वहरिकृष्णाङ्गमेकैकंदशपर्वतम् । बाह्यमाभ्यन्तरा ये तु त्रिवाहास्तुसमाःस्मृताः
जठरो देवकूटश्च पूर्वस्यां दिशि पर्वतौ । तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ ।
कैलासो हिमवांश्चैव दक्षिणोत्तरपर्वतौ । पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥६॥
योऽसौ मेरुर्द्विजश्रेष्ठाः प्रांशुःकनकपर्वतः । विष्कम्भं तस्यवक्ष्यामि तन्मेनिगदतःशृणु
महापादास्तु चत्वारो मेरोरथ चतुर्दिशम् । यैर्धृतत्वान्न चलति सप्तद्वीपवती मही ॥
दशयोजनसाहस्र आयामस्तेषु पठ्यते । देवगन्धर्वयक्षाणां नानारत्नोपशोभिताः ॥
नैकनिर्भरवप्राढ्या रम्यकन्दरनिर्मिताः ॥१२॥

नितम्बपुष्पकादम्बैः शोभिताश्चित्रसानवः । मनःशिलादरीभिश्च हरितालतलैस्तथा ॥
सुवर्णमणिचित्राभिर्गुहाभिश्च समन्ततः । शुद्धहिङ्गुलकप्रख्यैः काञ्चनैर्धातुमण्डितैः ॥
वरकाञ्चनचित्रैश्च प्रवालैः समलंकृताः । रुचिराः शतपर्वाणः सिद्धवासा मुदन्विताः

महाविमानैः श्रीमद्भिः समन्तात्परिदीपिताः ॥ १५ ॥

पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः । विपुलः पश्चिमे पार्श्वेसुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः
तेषां सहस्रशृङ्गेषु वज्रवैदूर्यवेदिकाः । शाखासहस्रकलिताः सुमूलाः सुप्रतिष्ठिताः ॥
स्निग्धैर्नीलैर्घनैः पर्णैःसंच्छन्नविविधाश्रयाः । अनेकयोजनोत्सेधाःसदापुष्पफलोपगाः
यक्षगन्धर्वसेव्याश्च सेविताःसिद्धचारणैः । महावृक्षाः समुत्पन्नाश्चत्वारो दीपकेतवः
मन्दरस्य गिरेः शृङ्गे महावृक्षः स केतुराट् । आलम्बशाखाशिखरः कन्दरश्चैव पादपः
महाकुम्भप्रमाणैस्तु पुष्पैर्विकचकेसरैः । महागन्धैर्मनोज्ञैश्च शोभितः सर्वकालजैः ॥
सहस्रमधिकं सोऽथ गन्धेनाऽऽपूरयन्दिशः । योजनानां समन्ताद्वै मन्दमारुतवीजितः
वरकेतुरेव प्रथितोभद्राश्वोनामयोद्विजाः । यत्र साक्षाद्धृषीकेशः सिद्धसंघैर्महीयते ॥
तस्य रुद्रकदम्बस्य तदा श्वेतहरोहरिः । प्राप्तवानमरश्रेष्ठः स तत्र सहितः पुरा ॥

तेन चाऽऽलोकितं सर्वं द्वीपं द्विपदनायकाः ।
यस्य नाम्ना समाख्यातो भद्राश्वो नाम नामतः ॥ २५ ॥

दक्षिणस्यापिशैलस्यशिखरेदेवसेविता । जम्बूःसदा पुष्पफला सदा माल्योपशोभिता
महामूलैर्महास्कन्धैः स्निग्धवर्णैर्विभूषिता । नवैःसदापुष्पफलैः शाखाभिश्चोपशोभिता
तस्याह्यतिप्रमाणानि स्वादूनि च मृदूनि च । फलान्यमृतकल्पानिपतन्ति गिरिमूर्धनि
तस्माद्गिरिवरप्रस्थात्पुनः प्रस्यन्दवाहिनी । नदी जम्बूनदी नाम प्रवृत्ता मधुवाहिनी
तत्र जम्बूनदं नाम सुवर्णं ज्वलनप्रभम् । देवालंकारमतुलं जायते पापनाशनम् ॥
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । तत्पिबन्त्यमृतप्रख्यं मधु जाम्बूरसस्रवम् ॥३१
स केतुर्दक्षिणेद्वीपे जम्बूलोकेषु विश्रुता । यस्यानाम्नासविख्यातो जम्बूद्वीपःसनातनः
विपुलस्यापि शैलस्य पश्चिमस्य महात्मनः । जातः शृङ्गेऽतिसुमहानश्वत्थश्चैवपादपः
विलम्बिवरमालाढ्यः सुवर्णमणिवेदिकः । महोच्चस्कन्धविटपो नैकसत्त्वगुणालयः ॥

कुम्भप्रमाणैः सुस्वादैः फलैः सर्वर्तुकैःशुभैः । सकेतुः केतुमालानां देवगन्धर्वसेवितः
केतुमालेतिचयथा तस्या नाम प्रकीर्तितम् । तन्निबोधतविप्रेन्द्रा निरुक्तं नाम कर्मतः
क्षीरोदमथने वृत्ते दैत्यपक्षे पराजिते । महासमरसंमर्दवृक्षक्षोभविमर्दिता ॥ ३७ ॥

सहस्राक्षेण विहिता माला तस्य सुतानिता ।
तस्य स्कन्धे समासक्त्या ह्यश्वत्थस्य वनस्पतेः ॥ ३८ ॥

सातथैवमहागन्धाह्यम्लानासर्वकामिकी । इज्यते सुमहाभागा विविधैः सिद्धचारणैः
तस्यकेतोः सदा माला देवदत्ता विराजते । पवनेनेरिता दिव्यं वाति गन्धं मनोरमम्
ताभ्यां नामाङ्कितोद्वीपः पश्चिमेवहुविस्तरः । केतुमालइतिख्यातो दिवि चेह च सर्वशः
स्वपार्श्वस्योत्तरैचापिश्रृङ्गेजातोमहाद्रुमः । न्यग्रोधोविपुलस्कन्धोऽनेकयोजनमण्डलः
माल्यदामकलापैश्च विविधैर्गन्धशालिभिः । शाखाविलम्बीशुशुभे सिद्धचारणसेवितः
प्रवालकुम्भसदृशैर्मधुपूर्णैः फलैः सदा । स ह्युत्तरकुरूणां तु केतुवृक्षः प्रकाशते ॥
सनत्कुमारावरजा मानसा ब्रह्मणः सुताः । सप्त तत्र महाभागाः कुरवो नामविश्रुताः
तत्र तैरागतज्ञानैः सत्त्वस्थैः पुण्यकीर्तिभिः । अक्षयं क्षेममपरं लोकं प्राप्तं सनातनम्
तेषां नामाङ्कितो द्वीपःसप्तानांचैमहात्मनाम् । दिविचेहचविख्याताउत्तराः कुरवः सदा

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे जम्बूद्वीपवर्णनं नाम
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

चैत्ररथादिदेवाक्रीडनकानां निरूपणम्

सूत उवाच

तेषां चतुर्णां वक्ष्यामिशैलेन्द्राणांयथाक्रमम् । अनुवन्धानिरम्याणिसर्वकालर्तुकानिच
सारिकाभिर्मयूरैश्च चकोरैश्च मदोत्कटैः । शुकैश्च भृङ्गराजैश्च चित्रकैश्च समन्ततः

जीवञ्जीवकनादैश्च हेमकानां च नादितैः। मत्तकोकिलनादैश्चवल्गूनां च निनादितैः
सुग्रीवकाञ्चनरवैः कलविङ्करुतैस्तथा। कूजितान्तरशब्दैश्च सुरम्याणि च सर्वशः॥
मदोत्कटैर्मधुकरैर्भ्रमरैश्च महालसैः। उपगीतवनान्तानि किन्नरैश्च क्वचित्क्वचित् ॥५॥
पुष्पवृष्टिं विमुञ्चन्ति मन्दमारुतकम्पिताः। तरवो यत्र दृश्यन्ते चारुपल्लवशोभिताः॥
स्तबकैर्मञ्जरीभिश्चताम्रैःकिशलयैस्तथा। मन्दवातवशाल्लोलैर्दोलयद्भिर्युतानि च ॥७॥

नानाधातुविचित्रैश्च कान्तरूपैः शिलाशतैः।
शल्लैः क्वचिद् द्विजश्रेष्ठा! विन्यस्तैः शोभितानि च ॥८॥

देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः। सिद्धाप्सरोगणैश्चैव सेवितानि ततस्ततः॥ ९॥
मनोहराणि चत्वारि देवाक्रीडनकान्यथ। चतुर्दिशमुदाराणि नाम्ना श्रणुततानिमे॥
पूर्वं चैत्ररथंनाम दक्षिणं नन्दनं वनम्। वैभ्राजं पश्चिमं विद्यादुत्तरं सवितुर्वनम्॥
महावनेषु चैतेषु निविष्टानि यथाक्रमम्। अनुबन्धानि रम्याणि विहङ्गैः कूजितानि च
वनैर्विस्तीर्णतीर्थानिमहापुण्यवनानि च। महानागाधिवासानि सेवितानिमहात्मभिः
सुरसामलतोयानि शिवानि सुसुखानि च। सिद्धदेवासुरवरैरुपस्पृष्टजलानि च ॥१४
छत्रप्रमाणैर्विकचैर्महागन्धैर्मनोहरैः। पुण्डरीकैर्महापत्रैरुत्पलैः शोभितानि च॥

महासरांसि चत्वारि तानि वक्ष्यामि नामतः ॥१५॥

अरुणोदं सरः पूर्वं दक्षिणं मानसं स्मृतम्। शीतोदं पश्चिमसरो महाभद्रं तथोत्तरम्

अरुणोदं च पूर्वेण ये च शैलास्ततः स्मृताः।
तान्कीर्त्यमानांस्तत्त्वेन श्रणुध्वं विस्तरान्मम ॥१७॥

शीतान्तश्च कुमुञ्जश्चसुवीरश्चाचलोत्तमः। विकङ्को मणिशीलश्चवृषभश्चाचलोत्तमः
महानीलोऽथ रुचकः सबिन्दुर्मन्दरस्तथा। वेणुमांश्च सुमेधश्च निषधो देवपर्वतः॥
इत्यते पर्वतवरा अन्ये च गिरयस्तथा। पूर्वेण मन्दरस्यैते सिद्धवासा उदाहृताः॥
सरसोमानसस्येहदक्षिणा ये महाचलाः। ये कीर्त्तिता मया ते वै नामतस्तान्निबोधत
शैलस्त्रिशिखरश्चापि शिशिरश्चाचलोत्तमः। कलिङ्गश्च पतङ्गश्च रुचकश्चैव सानुमान्
ताम्राभश्च विशाखश्च तथाश्वेतोदरो गिरिः। समूलो विषधारश्चरत्नधारश्चपर्वतः

एकश्रृङ्गो महामूलो गजशैलःपिशाचकः । पञ्चशैलोऽथकैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः
इत्येते देवचरिता ह्युत्कृष्टाः पर्वतोत्तमाः । दिग्भागे दक्षिणे प्रोक्ता मेरोरमरवर्चसः ॥
अपरेण सितोदस्य सरसो द्विजसत्तमाः । उत्तमा ये महाशैलास्तान्प्रवक्ष्ये यथाक्रमम्
सुवक्षाः शिखिशैलश्च कालो वैदूर्यपर्यतः । कपिलः पिङ्गलो रुद्रः सुरसश्च महाचलः
कुमुदो मधुमांश्चैव अञ्जनो मुकुटस्तथा । कृष्णश्चपाण्डरश्चैवसहस्रशिखरश्च ह ॥
परिजातश्च शैलेन्द्रस्त्रिश्रृङ्गश्चाचलोत्तमः । इत्येते पर्वतवरादिग्भागे पश्चिमे स्मृताः
महाभद्रस्य सरस उत्तरेणापि श्रीमतः । ये मया पर्वताप्रोक्तास्तान्वदिष्ये यथाक्रमम्
शङ्कुकूटो महाशैलो वृषभो हंसपर्वतः । नागश्च कपिलश्चैव इन्द्रशैलश्च सानुमान् ॥
नीलः कनकश्रृङ्गश्च शतश्रृङ्गश्च पर्वतः । पुष्पको मेघशैलश्च विराजश्चाचलोत्तमः ॥
जारुधिश्चैव शैलेन्द्र इत्येते उत्तराः स्मृताः ॥३२॥
एतेषां शैलमुख्यानामन्तरेषुयथाक्रमम् । स्थाल्योऽह्यन्तरद्रोण्यश्च सरांसि च निबोधत

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे भुवनविन्यासो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

भुवनविन्यासवर्णनम्

सूत उवाच

शीतान्तस्याचलेन्द्रस्यकुमुञ्जस्यान्तरेण तु । द्रोण्यो विहङ्गसंघुष्टानानासत्त्वनिषेविताः
त्रियोजनशतायामा विस्तीर्णाः शतयोजनाः । सुरसामलपानीयरम्यं तत्रसरोवरम् ॥
द्रोण्यायामप्रमाणैस्तु पुण्डरीकैः सुगन्धिभिः । सहस्रशतपत्रैर्हि महापद्मैरलंकृतम् ॥
महोरगैरध्युषितं महाभोगैर्दुरासदैः । देवदानवगन्धर्वैरुपस्पृष्टं जलं शुभम् ॥ ४ ॥

पुण्यं तच्छ्रीसरो नाम प्रकाशं दिवि चेह च। प्रसन्नजलसंपूर्णं शरण्यं सर्वदेहिनाम् ॥
तत्र त्वेकं महापद्मं मध्ये पद्मवनस्य ह। कोटिपत्रप्रचारं तत्तरुणादित्यवर्चसम् ॥६॥
नित्यं व्याकोशमजरं चाञ्चल्याच्चातिमण्डलम्। चारुकेशरजालाढ्यंमत्तषट्पदनादितम्

तस्मिन्पद्मे भगवती साक्षाच्छ्रीर्नित्यमेव हि।
लक्ष्म्याः पद्मं तदावासं मूर्त्तिमत्या न संशयः ॥८॥

सरसस्तस्य पूर्वस्मिंस्तीरे सिद्धनिषेविते। सदा पुष्पफलं रम्यं तत्र विल्ववनं महत्
शतयोजनविस्तीर्णं त्रियोजनशतायतम्। अर्धक्रोशोच्चशिखरैर्महावृक्षैः सहस्रशः ॥१०
शाखासहस्रकलितैर्महास्कन्धैः समाकुलम्। फलैः सुवर्णसंकाशैर्हरितैः पाण्डुरैस्तथा
अमृतस्वादुसदृशैर्भेरीमात्रैः सुगन्धिभिः। शीर्यमाणैः पतद्भिश्च कीर्णा भूमिर्निरन्तरा
नाम्ना तच्छ्रीवनं नाम सर्वलोकेषु विश्रुतम्। गन्धर्वैः किंनरैर्यक्षैर्महानागैश्चसेवितम्
सिद्धैश्चैव समाकीर्णंनित्यंविल्वफलाशिभिः। विविधैर्भूतसंघैश्चनित्यमेवनिषेवितम्
तस्मिन्वने भगवती साक्षाच्छ्रीर्नित्यमेव हि। देवी संनिहिता तत्र सिद्धसंघैर्नमस्कृता
विकङ्कस्याचलेन्द्रस्य मणिशैलस्य चान्तरे। शतयोजनविस्तीर्णं द्वियोजनशतायतम्
विपुलं चम्पकवनं सिद्धचारणसेवितम्। पुष्पलक्ष्म्यावृतं भाति ज्वलन्तमिवनित्यदा
अर्धक्रोशोच्चशिखरैर्महास्कन्धैः पलाशिभिः। प्रफुल्लशाखाशिखरैःपिञ्जरं भाति तद्वनम्
द्विबाहुपरिणाहैस्तैस्त्रिहस्तायामविस्तरैः। मनःशिलाचूर्णनिभैः पाण्डुकेशरशालिभिः
पुष्पैर्मनोहरैर्व्याप्तं व्याकोशैर्गन्धशालिभिः। विराजते वनं सर्वं मत्तभ्रमरनादितम् ॥
तद्वनं दानवैर्दैवैर्गन्धर्वैर्यक्षराक्षसैः। किंनरैरप्सरोभिश्च महानागैश्च सेवितम् ॥२१॥
तत्राऽऽश्रमं भगवतःकश्यपस्य प्रजापतेः। सिद्धसाध्यगणाकीर्णंनानाश्रुतिविभूषितम्

महानीलकुमुञ्जाभ्यामन्तरेऽप्यचलावथ ॥२२॥

महानद्याः सुखायास्तु तीरे सिद्धनिषेविते। पञ्चाशद्योजनायामंत्रिंशद्योजनविस्तरम्

रम्यं तालवनं तद्धि अर्धक्रोशोच्चमस्तकम् ॥२३॥

महामूलैर्महासारैः स्थिरैरविरलैः शुभैः। कुमुदाञ्जनसंस्थानैः परिवृत्तैर्महाफलैः ॥

मृष्टगन्धरसोपेतैरुपेतं सिद्धसेवितम् ॥२४॥

माहेन्द्रस्य द्विपेन्द्रस्य तत्र वास उदाहृतः। ऐरावतस्य भद्रस्य सर्वलोकेषु विश्रुतः॥
वेणुमन्तस्य शैलस्य सुमेधस्योत्तरेण च। सहस्रयोजनायामं विस्तीर्णं शतयोजनम्॥
वृक्षगुल्मलतागुच्छैः सर्ववीरुद्भिरीरितम्। दूर्वाप्रस्तारमेवाथसर्वसत्त्वविवर्जितम्॥
तथा निषधशैलस्य देवशैलस्य चोत्तरे। सहस्रयोजनायामा शतयोजनविस्तृता॥२८
सर्वा ह्येकशिला भूमिर्वृक्षवीरुद्विवर्जिता। आप्लुता पादमात्रेण ह्युदकेन समंततः॥
इत्येता ह्यन्तरद्रोण्यो नानाकाराः प्रकीर्तिताः। मेरोः पूर्वेण विप्रेन्द्रा यथावदनुपूर्वशः
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे भुवनविन्यासो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः

———

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

उदुम्बरवनवर्णनम्

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दक्षिणां दिशमाश्रिताः।
या द्रोण्यः सिद्धचरिताः शृणु ता ह्यनुपूर्वशः॥१॥
शिशिरस्याचलेन्द्रस्यपतङ्गस्यान्तरेण च। श्लक्ष्णभूमिश्रिया युक्तं लतालिङ्गितपादपम्
पृथुक्षेपोच्चशिखरैः पादपैरुपशोभितम्। उदुम्बरवनं रम्यं पक्षिसंघनिषेवितम्॥३॥
पक्वैर्विद्रुमसंकाशैर्मधुपूर्णैर्मनोरमैः। ज्वलितं तद्वनं भाति महाकुम्भोपमैः फलैः॥४॥
तत्सिद्धयक्षगन्धर्वाः किंनरा उरगास्तथा। विद्याधराश्च मुदिताउपजीवन्ति नित्यशः
प्रसन्नस्वादुसलिलास्तत्र नद्यो बहूदकाः। सुरसामलतोयास्ताः सरांसि च समन्ततः
तत्राऽऽश्रमं भगवतः कर्दमस्य प्रजापतेः। रम्यं सुरगणाकीर्णं सर्वतश्चित्रकाननम्॥
समन्ताद्योजनशतं तद्वनं परिमण्डलम्॥७॥
ताम्रवर्णस्य शैलस्य पतङ्गस्यान्तरेण तु। शतयोजनविस्तीर्णं द्वियोजनशतायतम्॥८

तरुणादित्यसंकाशैः पुण्डरीकैः समन्ततः । सहस्रपत्रैर्विकचैर्महापद्मैरलंकृतम् ॥१०॥
तथाभ्रमरसंलीनैः शतपत्रैः सुगन्धिभिः । प्रफुल्लैः शोभितजलं रक्तनीलैर्महोत्पलैः ॥
सरोवरं महापुण्यं देवदानवसेवितम् । महोरगैरध्युषितं नीलजालविभूषितम् ॥११॥
तस्य मध्ये जनपदो ह्यायतः शतयोजनः । त्रिंशद्योजनविस्तीर्णो रक्तधातुविभूषितः ॥
तस्योपरि महारथ्या प्रांशुप्राकारतोरणा । नरनारीगणाकीर्णा स्फीताविभवविस्तरैः
वलभीकूटनिर्यूहैर्मणिभक्तिविचित्रितैः । रत्नचित्रार्पिततलैः श्लक्ष्णचित्रोत्तरच्छदैः ॥
महाभवनमालाभिर्महाप्रांशुभिरुत्तमैः । विद्याधरपुरं तत्र शोभते भ्राजयच्छुभम् ॥
विद्याधरपतिस्तत्र पुलोमा तत्र विश्रुतः । चित्रवेषधरः स्रग्वी महेन्द्रसदृशद्युतिः ॥१६
दीप्तानां चित्रवेषाणां सूर्यप्रतिमतेजसाम् । विद्याधरसहस्राणामनेकेषां स राजराट् ॥
विशाखस्याचलेन्द्रस्य पतङ्गस्यान्तरेण च । सरसस्ताम्रवर्णस्य पूर्वे तीरे परिश्रुतम् ॥
पञ्चेषुक्षेपणैर्विद्धं सुशाखं वर्णशोभितम् । सर्वकालफलं तत्र स्फीतं चाऽऽम्रवनंमहत्
फलैः कनकसंकाशैर्महास्वादैः सुगन्धिभिः । महाकुम्भप्रमाणैश्चतनुशाखैः समन्ततः
गन्धर्वकिंनरा यक्षा नागाविद्याधरास्तथा ।। पिबन्त्याम्ररसं तत्रसुस्वादुह्यमृतोपमम्
तत्राऽऽम्ररसपीतानां मुदितानांमहात्मनाम् । श्रूयन्ते हृष्टतुष्टानांनादास्तस्मिन्महावने
समूलस्याचलेन्द्रस्य वसुधारस्य चान्तरे । समासुरभिपूर्णाढ्या विहङ्गैरुपशोभिता ॥

त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा पञ्चाशद्योजनायता ।
तत्र बिल्वस्थली विप्राः शुद्धा निम्नफलद्रुमाः ॥२४॥

सुस्वादैर्विद्रुमनिभैः फलैर्बिल्वैर्महोपमैः । शीर्यमाणैर्विशीर्णैश्च प्रक्लिन्नतलमृत्तिकाः ॥
तां स्थलीमुपजीवन्तियक्षगन्धर्वकिंनराः । सिद्धानागाश्चबहुशोनित्यंबिल्वफलाशिनः
अन्तरे वसुधारस्य रत्नधारस्य चान्तरे । त्रिंशद्योजनविस्तीर्णमायतं शतयोजनम् ॥
सुगन्धं किंशुकवनं नित्यं पुष्पितपादपम् । पुष्पलक्ष्म्यावृतं भाति प्रदीप्तमिव सर्वतः
यस्य गन्धेन दिव्येन वास्यते परिमण्डलम् । समग्रं योजनशतं काननानि समन्ततः
तत्सिद्धचारणगणैरप्सरोभिश्च सेवितम् । रम्यं तत्किंशुकवनं जलाशयविभूषितम् ॥
तत्राऽऽदित्यस्य देवस्य दीप्तमायतनं महत् । मासे मासेऽवतरति तत्र सूर्यःप्रजापतिः

तत्र कालस्य कर्तारं सहस्रांशुं सुरोत्तमम् । सिद्धसंघा नमस्यन्ति सर्वलोकनमस्कृतम्
पञ्चकूटस्य शैलस्य कैलासस्यान्तरेण तु । षट्त्रिंशद्योजनायामं विस्तीर्णंशतयोजनम्
क्षुद्रसत्त्वैरनाधृष्यं सर्वतो हंसपाण्डरम् । दुष्पारं सर्वसत्त्वानां दुर्गमं लोमहर्षणम् ॥
इत्येता ह्यन्तरद्रोण्यो दक्षिणे परिकीर्तिताः । यथानुपूर्वमखिलाः सिद्धसंघनिषेविताः

पश्चिमायां दिशि तथा येऽन्तरद्रोणिविस्तराः ।
तान्वर्ण्यमानांस्तत्त्वेन शृणुतेमान्द्विजोत्तमाः ॥३६॥

अन्तराले गिरौ तस्मिन्सुवक्षःशिखिशैलयोः । समन्ताद्योजनशतमेकभूमं शिलातलम्
नित्यतप्तं महाघोरं दुःस्पर्शं रोमहर्षणम् । अगम्यं सर्वसत्त्वानामीश्वराणां सुदारुणम्

मध्ये तस्यां शिलास्थल्यां त्रिंशद्योजनमण्डलम् ।
ज्वालासहस्रकलिलं वह्निस्थानं सुदारुणम् ॥३९॥

अनिन्धनस्तत्र सदा ज्वालामाली विभावसुः । ज्वलत्येष सदा देवःशश्वत्तत्र हुताशनः
अधिदेवकृते योऽसावग्नेर्भागो विधीयते । स तत्र ज्वलते नित्यं लोकसंवर्तकोऽनलः
अन्तरे शैलवरयोर्देवा वाऽपि तयोः शुभाः । मातुलुङ्गस्थली तत्र ह्यायामाद्दशयोजना
मधुव्यञ्जनसंस्थानैः सुरसैः कनकप्रभैः । फलैः परिणतैः सर्वा शोभितासामहास्थली
तत्राऽऽश्रमं महापुण्यं सिद्धसंघनिषेवितम् । बृहस्पतेः प्रमुदितं सर्वकामगुणैर्युतम् ॥
तथैव शैलवरयोः कुमुदाञ्जनयोरपि । अन्तरे केसरद्रोणिरनेकायामयोजना ॥४५॥
द्विबाहुपरिणाहैस्तैस्त्रिहस्तायतविस्तृतैः । चन्द्रांशुवर्णैर्व्याकोशैर्मत्तषट्पदनादितैः ॥
मधुसर्पिरजःपृक्तैर्महागन्धैर्मनोहरैः । शबलं तद्वनं भाति कुसुमैः सर्वकालजैः ॥४७॥
तत्र विष्णोः सुरगुरोर्दीप्तमायतनं महत् । प्रकाशं त्रिषु लोकेषु सर्वलोकनमस्कृतम् ॥
अन्तरे शैलवरयोः कृष्णपाण्डुरयोरपि । त्रिंशद्योजनविस्तीर्णं नवत्यायतयोजनम् ॥
श्लक्ष्णमेकशिलं देशं वृक्षवीरुद्विवर्जितम् । सुखपादप्रचारं च निम्नोन्नतविवर्जितम् ॥
मध्ये तु सरसस्तस्य रम्या तु स्थलपद्मिनी । सहस्रपत्रैर्व्याकोशैश्छत्रमात्रैरलंकृता ॥
पुण्डरीकैर्महापद्मैरुचिरैर्गन्धशालिभिः । शतपत्रैश्च विकचैरुत्पलैर्नीलपत्रकैः ॥ ५२ ॥
मदोत्कटैर्मधुकरैर्भ्रमरैश्च मदोत्कटैः । मृदुगद्गदकण्ठानां किंनराणां च निस्वनैः ॥

उपगीतपद्मखण्डाढ्या विस्तीर्णास्थलपद्मिनी । यक्षगन्धर्वचरिता सिद्धचारणसेविता

मध्ये तस्याश्च पद्मिन्याः पञ्चयोजनमण्डलः ।
न्यग्रोधो विपुलस्कन्धो ह्यनेकारोहमण्डितः ॥५५॥

तत्र चन्द्रप्रभः श्रीमान्पूर्णचन्द्रनिभाननः । सहस्रवदनो देवो नीलवासाः सुरारिहा ॥
पद्ममाल्यधरस्थल्यां महाभागोऽपराजितः । इज्यते यक्षगन्धर्वैर्विद्याधरगणैस्तथा ॥
तस्मिन्नायतने साक्षादनादिनिधनो हरिः । पद्मोपहारैर्विविधैरिज्यते सिद्धचारणैः ॥
तदनन्तसदो नाम सर्वलोकेषु विश्रुतम् । पद्ममालावलम्बाभिर्मालाभिरुपशोभितम् ।
तथा सहस्रशिखरकुमुदस्यान्तरेण च । पञ्चाशद्योजनायामं त्रिंशद्योजनविस्तरम् ॥

इषुक्षेपोच्चशिखरं नानाविहगसेवितम् ॥६०॥

महागन्धैर्महास्वादैर्गजदेहनिभैः फलैः । मधुस्रवैर्महावृक्षैरुपेतं तत्समन्ततः ॥६१॥
तत्राऽऽश्रमं महापुण्यं देवर्षिगणसेवितम् । शुक्रस्य प्रथितं तत्र भास्वरं पुण्यकर्मणः
शङ्कुकूटस्य शैलस्य वृषभस्यान्तरेण च । परूषकस्थली रम्या ह्यनेकाय(यु)तयोजना
विल्वप्रमाणैश्च शुभैर्महास्वादैः सुगन्धिभिः । फलैः प्रक्लिद्यते भूमिःपुरुषैर्वृन्तविच्युतैः
तां स्थलीमुपजीवन्ति किंनरोरगसाधवः । परूषकरसोन्मत्तामानाढ्यास्तत्र चारणाः
कपिञ्जलस्य शैलस्य नागशैलस्य चान्तरे । द्वियोजनशतायामा विस्तीर्णा शतयोजना
स्थली मनोहरा सा हि नानावनविभूषिता । नानापुष्पफलोपेता किंनरोरगसेविता
द्राक्षावनानि रम्याणि तथा नागवनानि च । खर्जूरवनखण्डानि नीलाशोकवनानि च
दाडिमानां च स्वादूनामक्षोटकवनानि च । अतसीतिलकानां च कदलीनांवनानि च

वदरीणां च स्वादूनां वनखण्डानि सर्वशः ।
स्वादुशीताम्बुपूर्णाभिर्नदीभिः शोभितानि च ॥७०॥

तथा पुष्पकशैलस्य महामेघस्य चान्तरे । षष्टियोजनविस्तीर्णा सा भूमिः शतमायता
समापाणितलप्रख्या कठिनापाण्डुरा घना । वृक्षगुल्मलतागुल्मैस्तृणैश्चापिविवर्जिता
वर्जिता विविधैःसत्त्वैर्नित्यमस्मिन्निराश्रया । सा काननस्थलीनामदारुणारोमहर्षणा
महासरांसि च तथा महावृक्षास्तथैव च । महावनानि सर्वाणिकान्तानीमानिसर्वशः

सरसां च वनानां च स्थलीनां च प्रजापतेः । क्षुद्राणांसरसांचैव संख्यातत्रनविद्यते

दश द्वादश सप्ताष्टौ विंशत्त्रिंशच्च योजनाः ।
स्थल्यो द्रोण्यश्च विख्याताः सरांसि च वनानि च ॥७६॥

केचित्सन्ति महाघोराःश्यामाःपर्वतकुक्षयः । सूर्यांशुजालैरस्पृष्टानित्यंशीतादुरासदाः
तथा ह्यनलतप्तानि सरांसि द्विजसत्तमाः । शैलकुक्ष्यन्तरस्थानि सहस्राणि शतानि च

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे भुवनविन्यासो नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

शीतान्तादिपर्वतानांवर्णनम्

सूत उवाच

अतःपरंप्रवक्ष्यामियस्मिन्यस्मिञ्शिलोच्चये । येसंनिविष्टादेवानांविविधानांगृहोत्तमाः
तत्र योऽसौ महाशैलः शीतान्तो नैकविस्तरः । नैकधातुशतैश्चित्रैर्नैकरत्नाकराकरः ॥
नितम्बैः पुष्पसालम्बैर्नैकसत्त्वगुणालयः । महार्हमणिचित्राभिर्हेमवंशैरलंकृतः ॥३ ॥
नितम्बैः षट्पदोद्गीतैः प्रवालैर्हेमचित्रकैः । तटैः कुसुमसंकीर्णैर्मत्तभ्रमरनादितैः ॥४॥
लतालम्बैश्चित्रवद्भिश्चित्रैर्धातुशतार्चितैः । सानुभी रत्नचित्रैश्च पुष्पाढ्यैश्च विभूषितः
विमलस्वादुपानीयैर्नैकप्रस्रवणैर्युतः । निकुञ्जैः कुसुमोत्कीर्णैरनेकैश्च विभूषितः ॥६॥
पुष्पोडुपवहाभिश्च स्रवन्तीभिरलंकृतः । किंनराचरिताभिश्च दरीभिः सर्वतस्ततः ॥७
यक्षगन्धर्वचरितैरनेकैः कन्दरोदरैः । शोभितश्च सुखासेव्यैश्चित्रैर्गहनसंकटैः ॥८॥
नानासत्त्वगणाकीर्णैः सुपानीयैः सुखाश्रयैः । नानापुष्पफलोपेतैः पादपैः समलंकृतः
तस्मिन्गुहाश्रयाकीर्णे अनेकोदरकन्दरे । क्रीडावनं महेन्द्रस्य सर्वकामगुणैर्युतम् ॥१०

तत्र तद्देवराजस्य पारिजातवनं महत् । प्रकाशं त्रिषु लोकेषु गीयते श्रुतिनिश्चयात्
तरुणादित्यसंकाशैर्महागन्धैर्मनोहरैः । पुष्पैर्भाति नगश्रेष्ठः सुदीप्त इव सर्वशः ॥१२॥
समग्रं योजनशतं तं गन्धमनिलो ववौ । पारिजातकपुष्पाणां माहेन्द्रवननिर्गतः ॥
वैदूर्यनालैः कमलैः सौवर्णैर्वज्रकेसरैः । सर्वगन्धजलोपेतैर्मत्तषट्पदनादितैः ॥१४॥
व्याकोशैर्विकचैश्चापि शतपत्रैर्मनोहरैः । सुपङ्कजैर्महापत्रैर्वाप्यस्तत्र विभूषिताः ॥१५॥
विरेजुरन्तरम्बुस्थाः सौवर्णमणिभूषिताः । परिस्पन्देक्षणा नित्यं मीनयूथाः सहस्रशः
कूर्मैश्चानेकसंस्थानैर्हेमरत्नपरिस्कृतैः । चञ्चूर्यमाणैः सलिलैर्भाति चित्रं समन्ततः ॥
नानावर्णैश्च शकुनैर्नानारत्नतनूरुहैः । सुवर्णपुष्पैश्चानेकैर्मणितुण्डैर्द्विजातिभिः ॥१८॥
वल्गुस्वरैः सदोन्मत्तैः संपतद्भिः समन्ततः । शुशुभे तद्वनं रम्यं सहस्राक्षस्य धीमतः ॥
मत्तभ्रमरसंनादैर्विहङ्गानां च कूजितैः । नित्यमानन्दितवनं तस्मात्क्रीडावनं महत् ॥
सुवर्णपार्श्वैश्च नगैर्मणिमुक्तापुरस्कृतैः । मणिशृङ्गकणापन्नैः पतद्भिश्च समन्ततः ॥२१॥
शाखामृगैश्च चित्राङ्गैर्नानारत्नतनूरुहैः । नानावर्णप्रकारैश्च सत्त्वैरन्यैः समाकुलम् ॥
मुञ्चन्ति पुष्पवर्षं च तत्र बाललता द्रुमाः । पारिजातकपुष्पाणां मन्दमारुतकम्पिताः
शयनासननिर्व्यूहैस्तीर्णै रत्नविभूषितैः । विहारभूमयस्तत्र द्विजाः शक्रवने शुभाः ॥

न च शीतो न चाप्युष्णो रविस्तत्र समः सदा ॥२४॥

नित्यमुन्मादजननो मधुमाधवसंभवः । वाति चाप्यनिलस्तत्र नानापुष्पाधिवासितः

नित्यं सङ्गसुखाह्लादी श्रमक्लवविनाशनः ॥२५॥

तस्मिन्निन्द्रवने शुभ्रे देवदानवपन्नगाः । यक्षराक्षसगुह्याश्च गन्धर्वाश्चामितौजसः ॥२६

विद्याधराश्च सिद्धाश्च किंनराश्च मुदा युताः ।

तथाऽप्सरोगणाश्चैव नित्यं क्रीडापरायणाः ॥२७॥

तस्यपर्वतराजस्य पूर्वे पार्श्वेमहोचितम् । कुमुञ्जं(दं) शैलराजानंनैकनिर्झरकन्दरम्
तस्य धातुविचित्रेषु कूटेषुवहुविस्तराः । अष्टौ पुर्या ह्युदीर्णाश्चदानवानांमहात्मनाम्
वज्रके पर्वते चापि अनेकशिखरोदरैः । उदीर्णा राक्षसावासा नरनारीसमाकुलाः ॥
नीलका नाम ते घोरा राक्षसाःकामरूपिणः । तत्र तेऽभिरतानित्यं महाबलपराक्रमाः

महानीलेऽपि शैलेन्द्रेपुराणिदश पञ्च च। हयाननानांविख्याताःकिंनराणांमहात्मनाम्
देवसेनो महाबाहुर्बलमिन्द्रादयस्तथा। तत्र किंनरराजानो दश पञ्च च गर्विताः॥
सुवर्णपार्श्वाः प्रायेण नानावर्णसमाकुलैः। बिलप्रवेशैर्नगरैः शैलेन्द्रः सोऽभ्यलंकृतः
अतिदारुणा दृष्टिविषा ह्यग्निकोपा दुरासदाः। महोरगशतास्तत्र सुवर्णवशवर्तिनः॥
सुनागेऽपि महाशैले दैत्यावासाः सहस्रशः। हर्म्यप्रासादकलिलाःप्रांशुप्राकारतोरणाः
वेणुमन्ते महाशैले विद्याधरपुरत्रयम्। त्रिंशद्योजनविस्तीर्णं पञ्चाशद्योजनायतम्॥
उलूको रोमशश्चैव महानेत्रश्च वीर्यवान्। विद्याधरवरास्तत्र शक्रतुल्यपराक्रमाः॥
वैकङ्के शैलशिखरे ह्यन्तःकन्दरनिर्झरे। महोच्चशृङ्गे रुचिरे रत्नधातुविचित्रिते॥३६॥
तत्राऽऽस्ते गारुडिर्नित्यमुरगारिर्दुरासदः। महावायुजवश्चण्डःसुग्रीवोनामवीर्यवान्
महाप्रमाणैर्विक्रान्तैर्महाबलपराक्रमैः। स शैलो ह्यावृतः सर्वः पक्षिभिः पन्नगारिभिः॥
करञ्जेऽभिरतो नित्यं साक्षाद्भूतपतिः प्रभुः। वृषभाङ्को महादेवःशंकरोयोगिनांप्रभुः
नानावेषधरैर्भूतैः प्रमथैश्च दुरासदैः। करञ्जे सानवः सर्वे ह्यवकीर्णाः समन्ततः॥
वसुधारे वसुमतां वसूनाममितौजसाम्। अष्टावायतनान्याहुः पूजितानि महात्मनाम्

रत्नधातौ गिरिवरे सप्तर्षीणां महात्मनाम्।
सप्ताश्रमाणि पुण्यानि सिद्धावासयुतानि च॥४५॥

महाप्रजापतेः स्थानं हेमशृङ्गे नगोत्तमे। चतुर्वक्त्रस्य देवस्य सर्वभूतनमस्कृतम्॥४६॥
गजशैले भगवतो नानाभूतगणावृताः। रुद्राः प्रमुदिता नित्यं सर्वभूतनमस्कृताः॥
सुमेधे धातुचित्राढ्ये शैलेन्द्रे मेघसंनिभे। नैकोदरदरीवप्रनिकुञ्जैश्चोपशोभिते॥४८॥

आदित्यानां वसूनां च रुद्राणां चामितौजसाम्।
तत्राऽऽयतनविन्यासा रम्याश्चैवाश्विनोरपि॥४९॥

स्थानानि सिद्धैर्देवानांस्थापितानि नगोत्तमे। तत्र पूजापरा नित्यंयक्षगन्धर्वकिंनराः
गन्धर्वनगरी स्फीता हेमकक्षे नगोत्तमे। अशीत्यमरपुर्याभा महाप्राकारतोरणा॥५१
सिद्धा ह्यपत्तना नाम गन्धर्वा युद्धशालिनः। येषामधिपतिर्देवो राजराजः कपिञ्जलः
अनले राक्षसावासाः पञ्चकूटेऽपि दानवाः। ऊर्जिता देवरिपवो महाबलपराक्रमाः॥

शतशृङ्गे पुरशतं यक्षाणाममितौजसाम् । ताम्राभे काद्रवेयस्य तक्षकस्य पुरोत्तमम् ॥
विशाखे पर्वतश्रेष्ठे नैकवप्रदरीशुभे । गुहानिरतवासस्य गुहस्याऽऽयतनं महत् ॥
श्वेतोदरे महाशैले महाभवनमण्डिते । पुरं गरुडपुत्रस्य सुनाभस्य महात्मनः ॥५६॥
पिशाचके गिरिवरे हर्म्यप्रासादमण्डितम् । यक्षगन्धर्वचरितं कुबेरभवनं महत् ॥५७॥
हरिकूटे हरिर्देवः सर्वभूतनमस्कृतः । प्रभावात्तस्य शैलोऽसौ महानाभः प्रकाशते ॥
कुमुदे किंनरावासा अञ्जने च महोरगाः । कृष्णे गन्धर्वनगरा महाभवनशालिनः ॥५८
पाण्डुरे चारुशिखरे महाप्राकारतोरणे । विद्याधरपुरं तत्र महाभवनशालिनम् (?) ॥
सहस्रशिखरे शैले दैत्यानामुग्रकर्मणाम् । पुराणि समुदीर्णानां सहस्रं हेममालिनाम्
मुकुटे पन्नगावासा अनेकाः पर्वतोत्तमाः । पुष्पके वै मुनिगणा नित्यमेव मुदा युताः
वैवस्वतस्य सोमस्य वायोर्नागाधिपस्य च । सुपक्षे पर्वतवरे चत्वार्यायतनानि च ॥
गन्धर्वैः किंनरैर्यक्षैर्नागैर्विद्याधरोत्तमैः । सिद्धैर्हितेषु स्थानेषु नित्यमिष्टः प्रपूज्यते ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे भुवनविन्यासो
नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

देवकूटस्थपक्षिराजभवनवर्णनम्

सूत उवाच

मर्यादापर्वते शुभ्रे देवकूटे निबोधत । विस्तीर्णे शिखरे तस्य कूटे गिरिवरस्य ह ॥१
समन्ताद्योजनशतं महाभवनमण्डितम् । जन्मक्षेत्रं सुपर्णस्य वैनतेयस्य धीमतः ॥२॥
नैकैर्महापक्षिगणैर्गारुडैः शीघ्रविक्रमैः । संपूर्णवीर्यसंपन्नैर्दमनैरुरगारिभिः ॥३॥
पक्षिराजस्य भवनं प्रथमं तन्महात्मनः । महावायुप्रवेगस्य शाल्मलिद्वीपवासिनः ॥

तस्यैव चारुमूर्ध्नस्तु कूटेषु च महर्द्धिषु । दक्षिणेषु विचित्रेषु सप्तस्वपि तु शोभिनः
संध्याभ्राभाः समुदिता रुक्मप्राकारतोरणाः ।
महाभवनमालाभिः शोभिता देवनिर्मिताः ॥६॥
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णाश्चत्वारिंशत्तमायताः । सप्त गन्धर्वनगरा नरनारीसमाकुलाः ॥
आग्नेया नाम गन्धर्वा महाबलपराक्रमाः । कुबेरानुचरा दीप्तास्तेषां ते भवनोत्तमाः ॥
तस्य चोत्तरकूटेषु भुवनस्य महागिरेः । हर्म्यप्रासादबद्धं च उद्यानवनशोभितम् ॥६॥
पुरमाशीविषैः पूर्णं महाप्राकारतोरणम् । वादित्रशतनिर्घोषैरानन्दितवनान्तरम् ॥१०
दुष्प्रसह्यममित्राणां त्रिंशद्योजनमण्डलम् । नगरं सैंहिकेयानामुदीर्णं देवविद्विषाम् ॥
सिद्धदेवर्षिचरितं देवकूटे निबोधत ॥११॥
द्वितीये द्विजशार्दूला मर्यादापर्वते शुभे । महाभवनमालाभिर्नानावर्णाभिरावृतम् ॥
सुवर्णमणिचित्राभिरनेकाभिरलंकृतम् । विशालरथ्यं दुर्धर्षं नित्यं प्रमुदितं शिवम् ॥
नरनारीगणाकीर्णं प्रांशुप्राकारतोरणम् । षष्टियोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥
नगरं कालकेयानामसुराणां दुरासदम् । देवकूटतटे रम्ये संनिविष्टं सुदुर्जयम् ॥
महाभ्रचयसंकाशं सुनासं नाम विश्रुतम् ॥१५॥
तस्यैव दक्षिणे कूटे विंशद्योजनविस्तरम् । द्विषष्टियोजनायामं हेमप्राकारतोरणम् ॥
हृष्टपुष्टावलिप्तानामावासाः कामरूपिणाम् । औत्कचानां प्रमुदितंराक्षसानांमहापुरम्
मध्यमे तु महाकूटे देवकूटस्य वै गिरेः । सुवर्णमणिपाषाणैश्चित्रैः श्लक्ष्णतरैः शुभैः
शाखाशतसहस्राढ्यैर्नैकारोहसमाकुलम् ॥१८॥
स्निग्धपर्णमहामूलमनेकस्कन्धवाहनम् । रम्यं ह्यविरलच्छायं दशयोजनमण्डलम् ॥१६
तत्र भूतवटं नाम नानाभूतगणालयम् । महादेवस्य प्रथितं त्र्यम्बकस्य महात्मनः ॥
दीप्तमायतनं तत्र सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥२०॥
वराहगजसिंहर्क्षशार्दूलकरभाननैः । गृध्रोलूकमुखैश्चैव मेषोष्ट्राजमहामुखैः ॥ २१ ॥
कदम्बैर्विकटैः स्थूलैर्लम्बकेशतनूरुहैः । नानावर्णाकृतिधरैर्नानासंस्थानसंस्थितैः ॥
दीप्तैरनेकैरुग्रास्यैर्भूतैरुग्रपराक्रमैः । अशून्यमभवन्नित्यं महापरिषदैस्तथा ॥ २३ ॥

तत्र भूतपतेर्भूता नित्यं पूजां प्रयुञ्जते । झर्झरैः शङ्खपटहैर्भेरीडिण्डिमगोमुखैः ॥२४॥
रणितालसितोद्गीतैर्नित्यं वलितवर्जितैः । विस्फूर्जितशतैस्तत्र पूजायुक्ता गणेश्वराः
प्रीताः पुरारिप्रमथास्तत्र क्रीडापराः सदा ॥२५॥
सिद्धदेवर्षिगन्धर्वयक्षनागेन्द्रपूजितः । स्थाने तस्मिन्महादेवः सक्षाल्लोकशिवः शिवः

इति श्रीमाहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्धातपादे भुवनविन्यासो नाम
चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

कैलासवर्णनम्

सूत उवाच

विविक्तचारुशिखरं पवित्रं शङ्खवर्चसम् । कैलासं देवभक्तानामालयं सुकृतात्मनाम्
तस्य कूटतटे रम्ये मध्यमे कुन्दसंनिभे । योजनानां शतायामे पञ्चाशच्च तथाऽऽयतम्
सुवर्णमणिचित्राभिरनेकाभिरलंकृतम् । महाभवनमालाभिर्भूषितं नैकविस्तरम् ॥३॥
धनाध्यक्षस्य देवस्य कुबेरस्य महात्मनः । नगरं तदनाधृष्यमृद्धियुक्तं मुदा युतम् ॥
तस्य मध्ये सभा रम्या नानाकनकमण्डिता ।
विपुला नाम विख्याता विपुलस्तम्भतोरणा ॥५॥
तत्र तत्पुष्पकं नाम नानारत्नविभूषितम् । महाविमानं रुचिरं सर्वकामगुणैर्युतम् ॥६
मनोजवं कामगमं हेमजालविभूषितम् । वाहनं यक्षराजस्य कुबेरस्य महात्मनः ॥७॥
तत्रैकपिङ्गलो देवो महादेवसखः स्वयम् । वसतिस्म स यक्षेन्द्रः सर्वभूतनमस्कृतः ॥
तत्राप्सरोगणैर्यक्षैर्गन्धर्वैः सिद्धचारणैः । वसति स्म महात्माऽसौकुबेरो देवसत्तमः
तत्र पद्ममहापद्मौ तथा मकरकच्छपौ । कुमुदः शङ्खनीलश्च नन्दनो निधिसत्तमः ॥१०

अष्टावेतेऽक्षया दिव्या धनेशस्य महात्मनः ।
महानिधानास्तिष्ठन्ति सभायां रत्नसंचयाः ॥११॥
तथेन्द्राग्नियमादीनां देवानामप्सरोगणैः । तेषां कैलास आवासो यत्र यक्षेश्वरः प्रभुः
कृत्वा पूर्वमुपस्थानंयक्षेन्द्रस्यमहात्मनः । पश्चाद्गच्छन्ति ये यस्यविहिताःपरिचालकाः
तत्र मन्दाकिनीनामसुरम्या विपुलोदका । सुवर्णमणिसोपानानानापुष्पोत्कटोत्कटा
जाम्बूनदमयैः पद्मैर्गन्धस्पर्शगुणान्वितैः । नीलवैदूर्यपत्रैश्च गन्धोपेतैर्महोत्पलैः ॥१५॥
तथा कुमुदखण्डैश्च महापद्मैरलंकृता । यक्षगन्धर्वनारीभिरप्सरोभिश्च शोभिता ॥१६
देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः । उपस्पृष्टजला रम्या वापी मन्दाकिनी शुभा ॥१७॥
तथा अलकनन्दा च नन्दा च सरितां वरा ।
एतैरेव गुणैर्युक्ता नद्यो देवर्षिसेविताः ॥१८॥
तस्यैव शैलराजस्य पूर्वे कूटे परिश्रुताः । सहस्रयोजनायामास्त्रिंशद्योजनविस्तराः ॥
दश गन्धर्वनगराः समृद्ध्या परया युताः । महाभवनमालाभिरनेकाभिर्विभूषिताः ॥
सुबाहुहरिकेशाद्याश्चित्रसेनजरादयः । दश गन्धर्वराजानो दीप्तवह्निपराक्रमाः ॥२१॥
तस्यैव पश्चिमे कूटे कुन्देन्दुसदृशप्रभे । नानाधातुशतैश्चित्रैः सिद्धदेवर्षिसेविते ॥२२॥
अशीतियोजनायामं चत्वारिंशत्प्रविस्तरम् । एकैकयक्षभवनं महाभवनमालिनम् ॥
महायक्षालयान्यत्र त्रिंशदाढ्यानि मे शृणु ।
मुदाऽथ परमद्ध्यर्या च संयुक्तानि समन्ततः ॥२४॥
महामालिसुनेत्राद्यास्तथा मणिवरादयः । उदीर्णा यक्षराजानस्तत्र त्रिंशत्सदा बभुः
इत्येते कथिता यक्षा वाय्वग्निसमतेजसः । येषामधिपतिर्देवः श्रीमान्वैश्रवणः प्रभुः ॥
तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे हिमवत्यचलोत्तमे । निकुञ्जनिर्झरगुहानैकसानुदरीतटे ॥२७॥
अर्णवादर्णवं यावत्पूर्वपश्चायतेऽचले । किंनराणां पुरशतं निविष्टं वै क्वचित्क्वचित्
नैकशृङ्गकलापस्य शैलराजस्य कुक्षिषु । नरनारीप्रमुदितं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ॥ २६ ॥
द्रुमसुग्रीवसैन्याद्या भगदत्तपुरःसराः । तत्र राजशतं तेषां दीप्तानां बलशालिनाम् ॥
विवाहो यत्र रुद्रस्य महादेव्योमया सह । तपस्तप्तवती चैव यत्र देवी वराङ्गना ॥३१

किरातरूपिणा चैव तत्र रुद्रेण क्रीडितम् । यत्र चैव कृतंताभ्यां जम्बूद्वीपावलोकनम्
यत्र ताः संमुदा युक्ता नानाभूतगणैर्युताः । चित्रपुष्पफलोपेतारुद्रस्याऽऽक्रीडभूमयः
हृष्टा गिरिदरीवासाः कृशोदर्योमनोरमाः । सुन्दर्यो यत्र किंनर्योरमन्ते स्मसुलोचनाः

विशालाक्षास्तथा यक्षा अन्याश्चाप्सरसां गणाः ।
गन्धर्वाश्चाङ्गशालिन्यो यत्र तत्र मुदा युताः ॥३५॥

तत्रैवोमावनं नाम सर्वलोकेषु विश्रुतम् । अर्धनारीनरं रूपं धृतवान्यत्र शंकरः ॥३६॥
तथा शरवणं नाम यत्र जातः षडाननः । यत्र चैव कृतोत्साहः क्रौञ्चशैलवनं प्रति ॥
ध्वजापताकिनं चैव किङ्किणीजालमालिनम् । यत्र सिंहरथंयुक्तंकार्तिकेयस्य धीमतः

चित्रपुष्पनिकुञ्जस्य क्रौञ्चस्य च गिरेस्तटे ।
देवारिस्कन्दनः स्कन्दो यत्र शक्तिं विमुक्तवान् ॥३६॥

यत्राभिषिक्तश्चगुहः सेन्द्रोपेन्द्रैःसुरोत्तमैः । सेनापत्ये च दैत्यारिर्द्वादशार्कप्रतापवान्
भूतसंघावकीर्णानि एतानन्यानि च द्विजाः । तत्र तत्र कुमारस्यस्थानान्यायतनानिच
तथा पाण्डुशिला नाम ह्याक्रीडा क्रौञ्चघातिनः । नानाभूतगणाकीर्णेपृष्ठेहिमवतःशुभे
तस्य पूर्वे तटे रम्येसिद्धावासमुदाहृतम् । कलापग्राममित्येवंनाम्नाऽऽख्यातंमनीषिभिः
मृकण्डस्य वसिष्ठस्य भरतस्य नलस्य च । विश्वामित्रस्य विप्रर्षेस्तथैवोद्दालकस्य च

अन्येषां चोग्रतपसामृषीणां भावितात्मनाम् ।
हिमवत्याश्रमाणां च सहस्राणि शतानि च ॥४५॥

नैकसिद्धगणावासं स्थानायतनमण्डितम् । यक्षगन्धर्वचरितं नानाम्लेच्छगणैर्युतम् ॥
नानारत्नाकरापूर्णं नानासत्त्वनिषेवितम् । नानानदीसहस्राणां संभवं वरपर्वतम् ॥
पश्चिमस्याचलेन्द्रस्य निषधस्य यथार्थवत् । कीर्त्यमानमशेषेण विशेषं शृणुत द्विजाः
विस्तीर्णे मध्यमे कूटे हेमधातुविभूषिते । दीप्तमायतनं विष्णोः सिद्धर्षिगणसेवितम्

यक्षाप्सरःसमाकीर्णं गन्धर्वगणसेवितम् ॥४६॥

तत्र साक्षान्महादेवः पीताम्बरधरो हरिः । वरदः सेव्यते सिद्धैर्लोककर्त्ता सनातनः
तस्यैवाभ्यन्तरे कूटे नानाधातुविभूषिते । तटे निषधकूटस्य श्लक्ष्णचारुशिलातले ॥

रुक्मकाञ्चननिर्यूहं तप्तकाञ्चनतोरणम् । अनेकवलभीकूटप्रतोलीशतसंकटम् ॥५३॥
हर्म्यप्रसादमतुलं तप्तकाञ्चनभूषितम् । हर्म्यप्रसादबद्धञ्च मुदितं चाति विस्तरम् ॥
उद्यानमालाकलितं त्रिशद्योजनमायतम् । दुष्प्रसह्यममित्रैस्तत्पूर्णमाशीविषोपमैः ॥
उलङ्घीनां प्रमुदितं रक्षसां राक्षसं पुरम् ॥५४॥
तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे नैकदैत्यगणालये । गुहाप्रवेशं नगरं शैलकुक्षौ दुरासदम् ॥५५
तथैव पश्चिमे कूटे पारिजातशिलोच्चये । देवदानवनागानां समृद्धानि पुराणि तु ॥५६
तत्र सोमशिला नाम गिरिस्तस्य महातटे । सोमो यत्रावतरति सदा पर्वसु पर्वसु ॥
उपासतेऽत्र श्रीमन्तं तारापतिमनिन्दितम् । ऋषिकिंनरगन्धर्वाः साक्षाद्देवं तमोनुदम्
तत्रैव चोत्तरे कूटे ब्रह्मपार्श्वमिति स्मृतम् । स्थानं तत्र सुरेशस्यब्रह्मणः प्रथितं दिवि
इज्यापूजानमस्कारैस्तत्र सिद्धाः स्वयंभुवम् । उपासते महात्मानं यक्षगन्धर्वदानवाः
तथैवाऽऽयतनं वह्नेः सर्वलोकेषु विश्रुतम् । तत्र विग्रहवान्वह्निः सेव्यते सिद्धचारणैः
तथैव चोत्तरे रम्ये त्रिशृङ्गे वरपर्वते । ऋषिसिद्धानुचरिते नानाभूतगणालये ॥

पुरं तत्त्रिषु लोकेषु हेमचित्रं तु विश्रुतम् ॥६२॥
त्रयाणां देवमुख्यानां त्रीण्येवाऽऽयतनानि च ।
नारायणस्याऽऽयतनं पूर्वकूटे द्विजोत्तमाः ॥
मध्यमे ब्रह्मणः स्थानं शंकरस्य तु पश्चिमे ॥६३॥

दैत्यदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः । इ (ई) जाना अभिपूज्यन्ते देवदेवा महाबलाः ॥
तथा पुराणि रम्याणि देशे चैव क्वचित्क्वचित् । यक्षगन्धर्वनागानां त्रिशृङ्गे वरपर्वते
तथैव चोत्तरे देशे जातुधौ, देवपर्वते । अनेकशृङ्गकलिते सिद्धसाधुनिषेविते ॥६६॥

यक्षाणां किंनराणां च गन्धर्वाणां सहस्रशः ।
नागानां राक्षसानां च दैत्यानां च महाबले ॥६७॥

कूटे तु मध्यमे तस्य सिद्धसंघनिषेविते । रम्ये देवर्षिचरिते रत्नधातुविभूषिते ॥६८॥
पद्मोत्पलवनैः फुल्लैः सौगन्धिकवनैस्तथा । तथा कुमुदखण्डैश्च विकचैरुपशोभिते ॥
विहंगसंघसंघुष्टं नानासत्त्वनिषेवितम् । हंसकारण्डवाकीर्णमत्तषट्पदसेवितम् ॥७०

नानासत्त्वगणाकीर्णं विहङ्गैरुपशोभितम् । चारुतीर्थसुसंबाधं त्रिंशद्योजनमण्डलम् ॥
सिद्धैरुपस्पृष्टजलं जलदोषविवर्जितम् । तत्राऽऽनन्दजलं नाम महापुण्यजलं सरः ॥
तत्र नागपतिश्चण्डश्चण्डो नाम दुरासदः ।
शतशीर्षो महाभागो विष्णुचक्राङ्कचिह्नितः ॥
इत्येवमष्टौ विज्ञेया विचित्रा देवपर्वताः ॥७३॥
पुरैरायतनैः पुण्यैः पुण्योदैश्च सरोवरैः । सुवर्णपर्वतैर्नैकैस्तथा रजतपर्वतैः ॥७४॥
नानारत्नप्रभासैश्च नैकैश्च मणिपर्वतैः । हरितालपर्वतैर्नैकैस्तथा हिङ्गुलकाञ्चनैः ॥७५॥
शुद्धैर्मनःशिलाजालैर्भास्वरैररुणप्रभैः । नानाधातुविचित्रैश्च नैकैश्च मणिपर्वतैः ॥७६॥
पूर्णा वसुमती सर्वा गिरिभिर्नैकविस्तरैः । नदीकन्दरशैलाढ्यैरनेकैश्चित्रसानुभिः ॥
तेषु शैलसहस्रेषु नानावर्णेषु नित्यशः । दैत्यदानवगन्धर्वयक्षाणां च महालयैः ॥
इत्येवमचलैर्युक्तैर्दैत्यराक्षससाधुभिः । किंनरोरगगन्धर्वैर्विचित्रैः सिद्धचारणैः ॥७६॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सेविता नैकविस्तराः । पुण्यकृद्भिः समाकीर्णाःकेसराकृतयोनगाः
गिरिजालं तु तन्मेरोः सिद्धलोकमिति स्मृतम् ।
चित्रं नानाश्रयोपेतं प्रचारं सुकृतात्मनाम् ॥८१॥
नात्युग्रकर्मसिद्धानां प्रतिमा मध्यमाः स्मृताः ।
स हि स्वर्ग इति ख्यातः क्रमस्त्वेष प्रकीर्तितः ॥८२॥
चतुर्महाद्वीपवती सेयमुर्वी प्रकीर्तिता । नानावर्णप्रमाणैर्हि नानावर्णवलैस्तथा ॥८३॥
नानाभक्ष्यान्नपानैश्च नानाच्छादनभूषणैः । प्रजाविकारैर्विविधैश्चित्रैरध्युषितैः सह ॥
चत्वारो नैकवर्णाढ्या महाद्वीपाः परिश्रुताः । भद्राश्च भरताश्चैवकेतुमालाश्चपश्चिमाः
उत्तराः कुरवश्चैव कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥८५॥
सैषा चतुर्महाद्वीपा नानाद्वीपसमाकुला ।
पृथिवी कीर्तिता कृत्स्ना पद्माकारा मया द्विजाः ॥ ८६ ॥
तदेषा सान्तरद्वीपा सशैलवनकानना । पद्मेत्यभिहिता कृत्स्ना पृथिवी बहुविस्तरा ॥
सब्रह्मसदनं लोकं सदेवासुरमानुषम् । त्रिलोकमिति विख्यातं यत्सत्त्वैर्व्यवहार्यते ॥

चन्द्रादित्यावतप्तं यत्तज्जगत्परिगीयते । गन्धवर्णरसोपेतं शब्दस्पर्शगुणान्वितम् ॥८६
तं लोकपद्मं श्रुतिभिः पद्ममित्यभिधीयते । एष सर्वपुराणेषु क्रमः सुपरिनिश्चितः ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे भुवनविन्यासो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

आकाशगङ्गावर्णनम्

सूत उवाच

सरोवरेभ्यः पुण्योदा देवनद्यो विनिर्गताः । महौघतोयानद्यश्च ताः शृणुध्वंयथाक्रमम्
आकाशाम्भोनिधेर्योऽसौ सोमइत्यभिधीयते । आधारः सर्वभूतानांदेवानाममृताकरः
तस्मात्प्रवृत्ता पुण्योदा नदी ह्याकाशगामिनी । सप्तमेनानिलपथाप्रयाताविमलोदका
सा ज्यौतिषिनिवर्तन्तीज्योतिर्गणनिषेविता । ताराकोटिसहस्राणांनभसश्चसमायता
माहेन्द्रेणगजेन्द्रेण आकाशपथयायिना । क्रीडिता ह्यन्तरतले या सा विक्षोभितोदका
नैकैर्विमानसंघातैः प्रकामद्भिर्नभस्तलम् । सिद्धैरुपस्पृष्टजला महापुण्यजला शिवा ॥

वायुना प्रेर्यमाणा च अनेकाभोगगामिनी ।
परिवर्तत्यहरहो य(हर्य)था सूर्यस्तथैव सा ॥७॥

चत्वार्यशीतिप्रतता योजनानां समन्ततः । वेगेन कुर्वतीमेरुं सा प्रयाता प्रदक्षिणम्
विभिद्यमाना सलिलैस्तैज़सेनानिलेन च । मेरोरुत्तरकूटेषु पतिताऽथ चतुर्ष्वपि ॥
मेरुकूटतटान्तेभ्य उत्कृष्टेभ्यो निवर्तिता । विकीर्यमाणसलिला चतुर्धा संसृतोदका
षष्टियोजनसाहस्रं निरालम्बनमम्बरम् । निपपात महाभागा मेरोस्तस्य चतुर्दिशम् ॥
सा चतुर्ष्वभितश्चैव महापादेषु शोभना । पुण्या मन्दरपूर्वेण पतिता हि महानदी ॥

पूर्वेणांशेन देवानां सर्वसिद्धगणालयम्। सुवर्णचित्रकटकं नैकनिर्झरकन्दरम् ॥१३॥
प्लावयन्ती सशैलेन्द्रं मन्दरं चारुकन्दरम्। वप्रप्रतापशमनैरनेकैः स्फाटिकोदकैः॥
तथा चैत्ररथं रम्यं प्लावयन्ती प्रदक्षिणम्। प्रविष्टा ह्यम्बरनदी ह्यरुणोदसरोवरम्॥
अरुणोदान्निवृत्ताऽथ शीतान्ते रम्यनिर्झरे। शैले सिद्धगणावासे निपपातसुगामिनी
सीता नाम महापुण्या नदीनांप्रवरा नदी। सा निकुञ्जनिरुद्धा तु अनेकाभोगगामिनी
शीतान्तशिखराद्भ्रष्टा मुकुञ्जे वरपर्वते। निपपात महाभागा तस्मादपि सुमञ्जसम्
तस्मान्माल्यवतं शैलं भावयन्ती वरापगा। वैकङ्कं समनुप्राप्ता वैकङ्कान्मणिपर्वतम्

मणिपर्वतान्महाशैलमृषभं नैककन्दरम् ॥१६॥

एवं शैलसहस्राणि दारयन्ती महानदी। पतिताऽथ महाशैले जठरे सिद्धसेविते ॥२०
तस्मादपि महाशैलं देवकूटं तरङ्गिणी। तस्य कुक्षिसमुद्रान्ता क्रमेण पृथिवीं गता॥

सैवंस्थलीसहस्राणि शैलराजशतानि च।

वनानि च विचित्राणि सरांसि विविधानि च ॥२२॥

स्रावयन्ती महाभागा विष्फारेष्ववलोकदा। नदीसहस्रानुगता प्रवृत्ता च महानदी॥
भद्राश्वं समहाद्वीपं प्लावयन्ती वरापगा। प्रविष्टा ह्यर्णवं पूर्वं पूर्वे द्वीपे महानदी ॥२४
दक्षिणेऽपि प्रपन्ना या शैलेन्द्रे गन्धमादने। चित्रैः प्रपातैर्विविधैर्नैकविस्फालितोदका
तद्गन्धमादनवनं नन्दनं देवनन्दनम्। प्लावयन्ती महाभागा प्रयाता सा प्रदक्षिणम्॥
नाम्ना ह्यलकनन्देति सर्वलोकेषु विश्रुता। प्रविशत्युत्तरसरो मानसं देवमानसम्॥
मानसाच्छैलराजानं रम्यं त्रिशिखरं गता। त्रिकूटाच्छैलशिखरात्कलिङ्गशिखरं गता
कलिङ्गशिखराद्भ्रष्टा रुचके निपपात सा। रुचकान्निषधं प्राप्ता ताम्राभं निषधादपि

ताम्राभशिखराद् भ्रष्टा गता श्वेतोदरं गिरिम्।

तस्मात्सुमूलं शैलेन्द्रं वसुधारं च पर्वतम् ॥३०॥

हेमकूटं गता तस्माद्देवशृङ्गं ततो गता। तस्माद्गता महाशैलं ततश्चापि पिशाचकम्॥
पिशाचकाच्छैलवरात्पञ्चकूटं गता पुनः। पञ्चकूटात्तु कैलाशं देवावासं शिलोच्चयम्
तस्य कुक्षिषु विभ्रान्ता नैककन्दरसानुषु। हिमवत्युत्तमनदी निपपाताचलोत्तमे॥

सैवं शैलसहस्राणि दारयन्ती महानदी। स्थलीशतान्यनेकानि प्लावयन्त्याशुगामिनी
वनानां च सहस्राणिकन्दराणांशतानि च। स्रावयन्तीमहाभागाप्रयातादक्षिणोदधिम्
रम्या योजनविस्तीर्णा शैलकुक्षिषु संवृता। या धृता देवदेवेन शंकरेण महात्मना॥
पावनी द्विजशार्दूल घोराणामपि पाप्मनाम्। शंकरस्याङ्गसंस्पर्शान्महादेवस्यधीमतः

द्विगुणं पवित्रसलिला सर्वलोके महानदी ॥३८॥

अनुशैलं समन्ताच्च निर्गता बहुभिर्मुखैः। अथोऽन्येनाभिधानेन ख्याता नद्यःसहस्रशः
तस्माद्धिमवतो गङ्गा गता सा तु महानदी। एवं गङ्गेतिनाम्नाहिप्रकाशासिद्धसेविता
धन्यास्ते सत्तमा देशा यत्र गङ्गा महानदी। रुद्रसाध्यानिलादित्यैर्जुष्टतोयायशोवती
महापादं प्रवक्ष्यामि मेरोरपि हि पश्चिमम्। नानारत्नाकरं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम्
विपुलं शैलराजानं विपुलोदरकन्दरम्। नितम्बकुञ्जकटकैर्विमलैर्मण्डितोदरम् ॥४२॥

अपि या त्र्यम्बकस्यैषा त्रिदशैः सेवितोदका।
वायुवेगा गताभोगा लतेव भ्रामिता पुनः ॥४३॥

मेरुकूटतटाद्भ्रष्टा प्रहतैः स्वादितोदका। विस्तीर्यमाणसलिला निर्मलांशुकसंनिभा
तस्य कूटेऽम्बरनदी सिद्धचारणसेविता। प्रदक्षिणमथाऽऽवृत्य पतिता सानुगामिनी
देवभ्राजं महाभ्राजं सवैभ्राजं महावनम्। प्लावयन्ती महाभागा नानापुष्पफलोदका॥
प्रदक्षिणं प्रकुर्वाणा नानावनविभूषिता। प्रविष्टा पश्चिमसरः सितोदं विमलोदकम्
सा सितोदाद्विनिष्क्रान्ता सुपक्षं पर्वतं गता। सुपक्षतस्तु पुण्योदात्ततोदेवर्षिसेविता
सुपक्षकूटतटगा तस्माच्च संशितोदका। निपपात महाभागा रमण्यं शिखिपर्वतम्॥
शिखेश्च पर्वतात्कङ्कं कङ्काद्वैदूर्यपर्वतम्। वैदूर्यात्कपिलं शैलं तस्माच्च गन्धमादनम्॥
तस्माद्गिरिवरात्प्राप्ता पिञ्जरं वरपर्वतम्। पिञ्जरात्सरसं याता तस्माच्च कुमुदाचलम्
मधुमन्तं जनं चैवमुकुटं च शिलोच्चयम्। मुकुटाच्छैलशिखरात्कृष्णंयाता महागिरिम्
कृष्णाच्छ्वेतं महाशैलं महानगनिषेवितम्। श्वेतात्सहस्रशिखरं शैलेन्द्रं पतिता पुनः
अनेकाभिः स्रवन्तीभिराप्यायितजला शिवा। एवं शैलसहस्राणि सादयन्ती महानदी

पारिजाते महाशैले निपपाताऽऽशुगामिनी ॥५४॥

अनेकनिर्झरनदी गुहासानुषु राजते। तस्य कुक्षिष्वनेकासु भ्रान्ततोया तरङ्गिनी॥
व्याहन्यमानसंवेगा गण्डशैलैरनेकशः। संविद्यमानसलिला गता च धरणीतले॥५६
केतुमालं महाद्वीपं नानाम्लेच्छगणैर्युतम्। प्लावयन्ती महाभागा प्रयातापश्चिमार्णवम्
सुवर्णचित्रपार्श्वे तु सुपार्श्वेऽप्युत्तरे गिरौ। मेरोश्चित्रमहापादे महासत्त्वनिषेविते॥
मेरुकूटतटाद्भ्रष्टा पवनेनेरितोदका। अनेकाभोगवक्राङ्गी क्षिप्यमाणे नभस्तले॥
षष्टियोजनसाहस्रे निरालम्बेऽम्बरे शुभे। विकीर्यमाणा मालेव निपपात महानदी॥
एवं कूटतटैर्भ्रष्टा नैकैर्देवर्षिसेवितैः। विकीर्यमाणसलिला नैकपुष्पोडुपोत्कचा॥
नानारत्नवनोद्देशमरण्यं सवितुर्वनम्। महावनं महाभागा प्लावयन्ती प्रदक्षिणम्॥
सरोवरं महापुण्यं महाभागनिषेवितम्। तत्राऽऽविवेश कल्याणी महाभद्रं सितोदका
भद्रसोमेति नाम्ना हि महापारा महाजवा। महानदी महापुण्या महाभद्रा विनिर्गता
नैकनिर्झरवप्राढ्या शङ्खकूटतटे तु सा। तत्र कूटे गिरितटे निपपाताऽऽशुगामिनी॥
शङ्खकूटतटाद्भ्रष्टा पपात वृषपर्वतम्। वृषपर्वताद्वत्सगिरिं नागशैलं ततो गता॥६६॥
तस्मान्नीलं नगश्रेष्ठं संप्राप्ता वर्षपर्वतम्। नीलात्कपिञ्जलं चैव इन्द्रनीलं च निम्नगा
ततः परं महानीलं हेमशृङ्गं च सा ययौ। हेमशृङ्गाद्गता श्वेतं श्वेताच्च सुनगं ययौ॥
सुनगाच्छतशृङ्गं च संप्राप्ता सा महानदी। शतशृङ्गान्महाशैलं पुष्करं पुष्पमण्डितम्
पुष्कराच्चमहाशैलं द्विराजं सुमहाबलम्। वराहपर्वतं तस्मान्मयूरं च शिलोच्चयम्॥
मयूराच्चैकशिखरं कन्दरोदरमण्डितम्। जातुधिं शैलशिखरं निपपाताऽऽशुगामिनी॥
एवं गिरिसहस्राणि दारयन्ती महानदी। त्रिशृङ्गं शृङ्गकलिलं मर्यादापर्वतं गता॥
त्रिशृङ्गतटविभ्रष्टा महाभागनिषेविता। मेरुकूटतटाद्भ्रष्टा पवनेनेरितोदका॥ ७३॥
वीरुधं पर्वतवरं पपात विमलोदका। प्लावयन्ती महाभागा प्रयाता पश्चिमार्णवम्॥
सुवर्णभुवि पार्श्वे तु सुपार्श्वेऽप्युत्तरे गिरौ। मेरोश्चित्रे महापादे महासत्त्वनिषेविते
कन्दरोदरविभ्रष्टा तस्मादपि तरङ्गिणी। नैकभोगा पपातोर्वीं चित्रपुष्पोडुपोत्कचा
प्लावयन्ती प्रमुदिता उत्तरान्सा कुरूञ्शिवा। महाद्वीपस्य मध्येनप्रयाता सोत्तरार्णवम्
एवं तास्तु महानद्यश्चतस्रो विमलोदकाः। महागिरितटभ्रष्टाः संप्रयाताश्चतुर्दिशम्॥

तत्सेयं कथितप्राया पृथिवी बहुविस्तरा । मेरुशैलमहाकीर्णाऽविशच्च सर्वतोदिशम् ॥
चतुर्महाद्वीपवती चतुराक्रीडकानना । चतुष्केतुमहावृक्षा चतुर्वरसरस्वती ॥ ८० ॥
चतुर्महाशैलवती चतुरोरगसंश्रया । अष्टोत्तरमहाशैला तथाऽष्टवरपर्वता ॥ ८१ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे भुवनविन्यासो नाम
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिंचत्वारिंशोऽध्यायः

गण्डिकावर्णनम्

सूत उवाच

गन्धमादनपार्श्वे तु स्फीताचोपरिगण्डिका । द्वात्रिंशतंसहस्राणियोजनैः पूर्वपश्चिमा
अस्याऽऽयामश्चतुस्त्रिंशत्सहस्राणिप्रमाणतः । तत्र ते शुभकर्माणःकेतुमालाःपरिश्रुताः
तत्र काला नराः सर्वे महासत्त्वा महाबलाः ।
स्त्रियश्चोत्पलपत्राभाः सर्वास्ताः प्रियदर्शनाः ॥ ३ ॥
तत्र दिव्यो महावृक्षः पनसः पड्रसाश्रयः । ईश्वरो ब्रह्मणः पुत्रः कामचारीमनोजवः
तस्य पीत्वा फलरसं जीवन्ति हि समायुतम् ॥ ४ ॥
पार्श्वेमालवतश्चापिपूर्वेपूर्वा तु गण्डिका । आयामतोऽथविस्ताराद्यथैवापरगण्डिका
भद्राश्वास्तत्र विज्ञेया नित्यंमुदितमानसाः । भद्रं सालवनं तत्रकालाभ्राश्च महाद्रुमाः
तत्र ते पुरुषाः श्वेता महासत्त्वा महाबलाः । स्त्रियः कुमुदवर्णाभाःसुन्दर्यःप्रियंदर्शनाः
चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः । चन्द्रशीतलगात्र्यश्चस्त्रियश्चोत्पलगन्धिकाः
दश वर्षसहस्राणि तेषामायुर्निरामयम् । कालाभ्रस्य रसं पीत्वा सर्वदा स्थिरयौवनाः

ऋषय ऊचुः

प्रमाणं वर्णमायुश्चयाथातथ्येनकीर्तितम् । चतुर्णामपिद्वीपानांसमासान्न तु विस्तरात्

सूत उवाच

भद्राश्वानां यथा चिह्नं कीर्तितं कीर्तिवर्धनाः ।
तच्छृणुध्वं तु कार्त्स्न्येन पूर्वसिद्धैरुदाहृतम् ॥ ११ ॥

देवकूटस्य सर्वस्य प्रथितस्येह यत्परम् । पूर्वेण दिक्षु सर्वासु यथावच्च प्रकीर्तितम् ॥
कुलाचलानां पञ्चानां नदीनां च विशेषतः । तथा जनपदानां च यथादृष्टं यथाश्रुतम्
सैवालो वर्णमालाग्रः कोरञ्जश्चाचलोत्तमः । श्वेतवर्णश्च नीलश्च पञ्चैते कुलपर्वताः ॥
तेषां प्रसूतिरन्येऽपि पर्वतावहुविस्तराः । कोटिकोटिः क्षितौज्ञेयाःशतशोऽथसहस्रशः
तैर्विमिश्रा जनपदैर्नानासत्त्वसमाकुलाः । नानाप्रकारजातीयास्त्वनेकनृपपालिताः ॥

नामधेयैश्च विक्रान्तैः श्रीमद्भिः पुरुषर्षभैः ।
अध्यासिता जनपदाः कीर्तनीयाश्च शोभिताः ॥ १७ ॥

तेषां तु नामधेयानि राष्ट्राणि विविधानि च । गिर्यन्तरनिविष्टानि समेषु विषमेषु च

तथा सुमङ्गलाः शुद्धाश्चन्द्रकान्ताः सुनन्दनाः ।
व्रजका नीलमौलेयाः सौवीरा विजयस्थलाः ॥ १९ ॥

महास्थलाः सुकामाश्चमहाकेशाःसुमूर्धजाः । वतारंहाः सोपसङ्गाःपरिवायाःपराचकाः
संभवक्त्रामहानेत्राःसैवालास्तनपास्तथा । कुमुदाःशाकमुण्डाश्चउरःसंकीर्णभौमकाः
सोदकावत्सकाश्चैकावाराहाहारवामकाः । शङ्खाख्याभाविमन्द्राश्चउत्तराहैमभौमकाः
कृष्णभौमाःसुभौमाश्चमहाभौमाश्चकीर्तिताः । एतेचान्येचविख्यातानानाजनपदा मया

ते पिबन्ति महापुण्यां महागङ्गां महानदीम् ।
आदौ त्रैलोक्यविख्याता शीता शीताम्बुवाहिनी ॥ २४ ॥

तथा च हंसवसतिर्महाचक्राचनिम्नगा । चक्रा वक्त्रा च काञ्चीचसुरसाचापगोत्तमा
शाखावती चेन्द्रनदी मेघा मङ्गारवाहिनी । कावेरी हरितोया च सोमावर्त्ता शतह्रदा
वनमाला वसुमती पम्पा पम्पावती शुभा । सुवर्णा पञ्चवर्णा च तथा पुण्यावपुष्मती
मणिवप्रा सुवप्रा च ब्रह्मभागाशिलाशिनी । कृष्णतोया च पुण्योदातथानागपदीशुभा
शैवालिनी मणितटा क्षारोदा चारुणावती । तथाविष्णुपदी चैव महापुण्यामहानदी

हिरण्यवाहिनोला च स्कन्दमालासुरावती । वामोदा च पताकाचवेतालीचमहानदी
एता गङ्गा महानद्योनायिकाःपरिकीर्तिताः । क्षुद्रनद्यस्त्वसंख्याताःशतशोऽथसहस्रशः
पूर्वद्वीपस्य वाहिन्यः पुण्यवत्यश्च कीर्तिताः । कीर्तनेनापि चैतासांपूतःस्यादितिमेमतिः
समृद्धराष्ट्रं स्फीतं च नानाजनपदाकुलम् । नानावृक्षवनोद्देशं नानानगसुवेष्टितम् ॥
नरनारीगणाकीर्णं नित्यं प्रमुदितं शिवम् । बहुधान्यवनोपेतं नानानृपतिपालितम् ॥
उपेतं कीर्तनशतैर्नानारत्नाकराकरम् ॥ ३४ ॥
तस्मिन्देशे समाख्याता हेमशङ्खदलप्रभाः । महाकाया महावीर्याः पुरुषाः पुरुषर्षभाः
संभाषणं दर्शनं च समस्थानोपसेवनम् । देवैः सह महाभागाः कुर्वते तत्र वै प्रजाः ॥
दशवर्षसहस्राणि तेषामायुः प्रकीर्तितम् । धर्माधर्मविशेषश्च न तेष्वस्ति महात्मसु ॥
अहिंसा सत्यवाक्यं च प्रकृत्यैव हि वर्तते ॥ ३७ ॥
तेभक्त्याशंकरंदेवं गौरींपरमवैष्णवीम् । इज्यापूजानमस्कारांस्ताभ्यांनित्यंप्रयुञ्जते

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे भुवनविन्यासो नाम
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

केतुमालवर्णनम्

सूत उवाच

निसर्ग एषविख्यातो भद्राश्वानांयथार्थवत् । शृणुध्वं केतुमालानांविस्तरेणप्रकीर्तनम्
निषधस्याचलेन्द्रस्य पश्चिमस्यमहात्मनः । पश्चिमेन हि यत्तत्रदिक्षु सर्वासु कीर्तितम्
कुलाचलानां सप्तानां नदीनां च विशेषतः । तथा जनपदानां च विस्तरं श्रोतुमर्हथ ॥
विशालः कम्बलः कृष्णो जयन्तो हरिपर्वतः । अशोकोवर्धमानश्च सप्तैते कुलपर्वताः

तेषां प्रसूतिरन्येऽपि पर्वता बहुविस्तराः। कोटिकोटिशताज्ञेयाः शतशोऽथ सहस्रशः
तैर्विमिश्रा जनपदा नानाजातिसमाकुलाः। नानाप्रकारविज्ञेयास्त्वनेकनृपपालिताः
ते नामधेयैर्विक्रान्ता विविधाःप्रथिता भुवि। अध्यासिताजनपदैःकीर्तनैश्चविभूषिताः
तेषां सनामधेयानि राष्ट्राणि विविधानि च। गिर्यन्तरनिविष्टानि समेषु विषमेषु च
यथेह कथिताः पौरा गोमनुष्यकपोतकाः। तत्सुखा भ्रमरा यूथा माहेयाचलकूटकाः

सुमौलाः स्तावकाः क्रौञ्चा कृष्णाङ्गमणिपुञ्जकाः।
कूटकम्बलमौषीयाः समुद्रान्तरकास्तथा॥ १०॥
करम्भवाः कुचाः श्वेताः सुवर्णकटकाः शुभाः।
श्वेताङ्गाः कृष्णपादाश्च विहाः कपिलकर्णिकाः॥ ११॥

अत्याकरालगोज्वाला हानानावनपातकाः। महिवाःकुमुदाभाश्चकरवाटाःसहोत्कचाः
शुनकासा महानासावनासगजभूमिकाः। करञ्जमञ्जमा वाहाःकिष्कण्डीपाण्डुभूमिकाः
कुवेरा धूमजा जङ्गावङ्गा राजीवकोकिलाः। वाचाङ्गाश्च महाङ्गाश्चमधौरेयाःसुरेचकाः

पित्तलाः काचलाश्चैव श्रवणा मत्तकासिकाः।
गोदावा वकुला वाङ्गा वङ्गकामोदकाः कलाः॥ १५॥

ते पिबन्तिमहाभागाःप्रथमां तु महानदीम्। सुवप्रां पुण्यसलिलांमहानागनिषेविताम्

कम्बलां तामसीं श्यामां सुमेधां बकुलां नदीम्।
विकीर्णां शिखिमालां च तथा दर्भावतीमपि॥ १७॥

भद्रानदीं शुकनदीं पलाशां च महानदीम्। भीमांप्रभञ्जनांकाञ्चींपुण्यां चैवकुशावतीम्
दक्षांकाकवतींचैवपुण्योदांचमहानदीम्। चन्द्रावतींसुमूलांचऋषभांचाऽऽपगोत्तमाम्
नदीं समुद्रमालां च तथाचम्पावतीमपि। एकाक्षां पुष्कलां वाहांसुवर्णानन्दिनीमपि

कालिन्दीं चैव पुण्योदां भारतीं च महानदीम्।
सीतोदापातिकां ब्राह्मीं विशालां च महानदीम्॥ २१॥

पीवरीं कुम्भकारीं च रुषांचैवापगोत्तमाम्। महिषींमानुषीं दण्डां तथानदनदींशुभाम्
एताश्चान्याश्चपीयन्तेबह्व्योहिंसरितोत्तमाः। देवर्षिसिद्धचरिताःपुण्योदाःपापहाःशुभाः

नानाजनपदास्फीतं महापगाविभूषितम् । नानारत्नौघसंपूर्णं नित्यं प्रमुदितं शिवम्
उदीर्णं धनधान्याढ्यैर्नरवासैः समन्ततः । संनिविष्टं महाद्वीपं पश्चिमं सुकृतात्मनाम्
निसर्गः केतुमालानामेष वः परिकीर्तितः ॥ २५ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे भुवनविन्यासो नाम
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

उत्तरदक्षिणवर्षाणाम्वर्णनम्

शांशपायन (वैशंपायन) उवाच

पूर्वापरौसमाख्यातौद्वौदेशौनस्त्वया प्रभो । उत्तराणां च वर्षाणांदक्षिणानांचसर्वशः
आचक्ष्व नो यथातथ्यं ये च पर्वतवासिनः ॥ १ ॥

सूत उवाच

दक्षिणेन तु श्वेतस्य नीलस्यैवोत्तरेण तु । वर्षं रमणकं नाम जायन्ते तत्र मानवाः ॥
सर्वर्तुकामदाः सत्त्वा जरादुर्गन्धवर्जिताः । शुक्लाभिजनसंपन्नाः सर्वे च प्रियदर्शनाः
तत्रापि सुमहान्दिव्यो न्यग्रोधो रोहिणो महान् ।
तस्य पीत्वा फलरसं पिबन्तो वर्तयन्त्युत ॥ ४ ॥

दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च । जीवन्ति ते महाभागाः सदाहृष्टा नरोत्तमाः
उत्तरेण तु श्वेतस्य शृङ्गसाह्वस्य दक्षिणे । वर्षं हिरण्वतं नाम यत्र हैरण्वती नदी ॥
महाबलाः सुतेजस्का जायन्ते तत्र मानवाः । सर्वर्तुकामदाः सत्त्वाधनिनःप्रियदर्शनाः
एकादश सहस्राणि वर्षाणां तेऽमितौजसः । आयुष्प्रमाणं जीवन्ति शतानिदशपञ्च च
तस्मिन्वर्षे महावृक्षो लकुचः षड्रसाश्रयः । तस्य पीत्वा फलरसं तत्रजीवन्तिमानवाः
त्रीणि शृङ्गवतः शृङ्गाण्युच्छ्रितानिमहान्ति च । एकं मणिमयंतेषामेकंचैवहिरण्मयम्

सर्वरत्नमयं चैकं भवनैरुपशोभितम् ॥ १० ॥
उत्तरस्य समुद्रस्य समुद्रान्ते च दक्षिणे । कुरवस्तत्र तद्वर्षं पुण्यं सिद्धनिषेवितम् ॥
तत्र वृक्षा मधुफला नित्यं पुष्पफलोपगाः । वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानिच
सर्वकामफलास्तत्र केचिद्वृक्षा मनोरमाः । गन्धवर्णरसोपेतं प्रक्षरन्ति मधूत्तमम् ॥
अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र मनोरमाः । ये क्षरन्ति सदा क्षीरं षड्रसं ह्यमृतोपमम
सर्वा मणिमयीभूमिःसूक्ष्मकाञ्चनवालुकाः । सर्वतः सुखसंस्पर्शानिष्पङ्कानीरुजाशुभा
देवलोकाच्च्युतास्तत्र जायन्तेमानवाःशुभाः । शुक्लाभिजनसंपन्नाःसर्वेचस्थिरयौवनाः
मिथुनानि प्रसूयन्ते स्त्रियश्चातिमनोहराः । ते च तं क्षीरिणं वृक्षंपिबन्तिह्यमृतोपमम
मिथुनं जायते सद्यः समं चैव विवर्धते । समं शीलं च रूपं च म्रियन्ते चैव ते समम
अन्योन्यमनुरक्ताश्च चक्रवाकसधर्मिणः । अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं सुखनिषेविण
त्रयोदश सहस्राणि शतानिदशपञ्च च । जीवन्ति ते महावीर्या न चान्यस्त्रीनिषेविण
कुरूणामपि चैतेषां शृणुध्वं विस्तरेण तु । जारुधेः शैलराजस्याप्युत्तरेणोत्तरस्य दि
दिक्षु सर्वासु यद्यत्र कीर्त्यमानं निबोधत ॥ २१ ॥
अनेककन्दरदरीगुहानिर्झरमण्डितौ । नैककुञ्जवनोपेतौ चित्रधातुविभूषितौ ॥ २२ ॥
अनेकधातुकलिलौ सर्वधातुविभूषितौ । पुष्पमूलफलोपेतौ सिद्धचारणसेवितौ ।
द्वावप्येतौ सुमहान्तावुच्छ्रितौ कुलपर्वतौ । ताभ्यां कूटशतैर्नैकैस्तद्द्वीपमुपसेवित
चन्द्रकान्तश्च शैलश्च सूर्यकान्तश्च सानुमान् । ययोर्मध्येन सा याताभद्रसीमामहानद
सहस्रशश्च नद्योऽन्याः प्रसन्नसुरसोदकाः । पर्याप्तोदाः कुरूणां हि स्नानपानावगाहन
तथाऽन्याः क्षीरवाहिन्यो महानद्यः सहस्रशः । मधुमैरेयवाहिन्यो घृतवाहिन्य एव
दध्नः शतह्रदाश्चान्यास्ततः स्वाद्वन्नपर्वताः । अमृतस्वादुकल्पानिफलानिविविधानि
गन्धवर्णरसाढ्यानि मूलानि च फलानि च । पञ्चयोजनमानानि महागन्धानिसर्वशः
नानावर्णप्रकाराणि पुष्पाणि च सहस्रशः । उपभोगसहस्राणि भद्राणिचमहान्ति
गन्धवर्णरसाढ्यानि स्पर्शोपेतानि सर्वशः । तमालागुरुगन्धानां चन्दनानां वनानि
भ्रमरैरुपगीतानि प्रफुल्लानि सदैव च । वृक्षगुल्मलताढ्यानि वनानि सुसुखानि च

षट्पदैरुपगीतानि द्विजैश्चान्यैर्द्विजोत्तमाः । पद्मोत्पलवनाढ्यानि सरांसि च सहस्रशः
भक्ष्यमाल्यसमृद्धाश्च बहुमाल्यानुलेपनाः । मनोहरमुखैश्चित्रैः पक्षिसंघैर्निकूजिताः ॥
शयनासनोपभोगाश्च अनेकगुणविस्तराः । विहारभूमयो रम्याः सर्वर्तुषु सुखप्रदाः ॥
आक्रीडाः सर्वतः स्फीतामणिहेमपरिष्कृताः । शिलागृहावृक्षगृहावरैण्याःकदलीगृहाः
लतागृहसहस्राणि सुसुखानि समन्ततः । शुद्धशङ्खदलाभानि भूमिवेश्मशतानि च ॥
तपनीयगवाक्षाणि मणिजालान्तराणि च । सुवर्णमणिचित्राणि सर्वत्र विपुलानि च

महावृक्षसहस्राणि वरैण्यानि च सर्वशः ।
नानाकाराणि वासांसि सूक्ष्माणि सुसुखानि च ॥ ३९ ॥

मृदङ्गवेणुपणववीणाद्या बहुविस्तराः । फलन्ति कल्पवृक्षाणां सहस्राणि शतानि च
सर्वत्रैव तथोद्यानं सर्वत्रैव हि तत्पुरम् । सर्वद्वीपप्रमुदितं नरनारीसमाकुलम् ॥

प्रवाति चानिलस्तत्र नानापुष्पाधिवासितः ॥ ४१ ॥

नित्यमङ्गसुखाल्हादस्तस्मिन्द्वीपे श्रमापहे । तत्र स्वर्गपरिभ्रष्टा जायन्ते हि नराःसदा

भौमं तदपि हि स्वर्ग तत्रापि च गुणोत्तमम् ॥ ४२ ॥
चन्द्रकान्ता नरवराः श्यामाङ्गाः पूर्वकूलजाः ।
श्यामावदाताः सुखिनः सूर्यकान्ता वराः प्रजाः ॥ ४३ ॥

ास्मिन्देशे नराः श्रेष्ठा देवसत्त्वपराक्रमाः । सदाविहारिणः सर्वे कामवृत्त्यासुवर्चसः
ालयाङ्गदकेयूरहारकुण्डलभूषिताः । स्रग्विणश्चित्रमुकुटाश्चित्राच्छादनवाससः ॥४५ ॥
ाजीर्णयौवनधराः प्रियाः सुप्रियदर्शनाः । प्रजावर्षसहस्राणि जीवन्ति सुबहून्युत
ताः प्रसवधर्मिण्यो न वंशप्रक्षयो विधिः । मिथुनं जायते वृक्षादुपक्षममनीदृशम्
ामान्यविभवाः सर्वे ममत्वपरिवर्जिताः । न तत्र विद्यते धर्मो नाधर्मः संप्रवर्तते ॥
व्याधिर्न जरा तत्र न दुर्मेधा न च क्लमः । पूर्णे काले विनश्यन्ति जलबुद्बुदवच्च ते
वमत्यन्तसुखिनः सर्वदुःखविवर्जिताः । रक्ता धर्मं न पश्यन्ति दुःखाद्धर्मोऽभिजायते
तराणां कुरूणां तु पार्श्वे ज्ञेयं तु दक्षिणे । समुद्रमूर्मिमालाढ्यं नानास्वरविभूषितम्
ब्रयोजनसाहस्रमतिक्रम्य सुरालयम् । चन्द्रद्वीपमिति ख्यातं चन्द्रमण्डलसंस्थितम्

सहस्रयोजनानां तु सर्वतःपरिमण्डलम् । नानापुष्पफलोपेतं समृद्ध्या परयायुतम् ॥
शतयोजनविस्तीर्णमुच्छ्रितं तावदेव तु ॥ ५३ ॥
तस्य मध्ये गिरिवरःसिद्धचारणसेवितः । चन्द्रतुल्यप्रभैः कान्तैश्चन्द्राकारैः सुलक्षणैः
श्वेतवैदूर्यकुमुदैश्चित्रोऽसौ कुमुदप्रभः । अनेकचित्रकोद्यानो नैकनिर्झरकन्दरः ॥
महासानुदरीकुञ्जैर्विविधैः समलंकृतः ॥ ५५ ॥
तस्माच्छैलान्महापुण्या चन्द्रांशु विमलोदका ।
प्रवहत्युत्तमनदी चन्द्रावर्ता तरङ्गिणी ॥ ५६ ॥
तत्र चन्द्रमसः स्थानं नक्षत्राधिपतेर्वरम् । सदाऽवतरते तत्र चन्द्रमा ग्रहनायकः ॥
तत्र चन्द्रमसो नाम्ना शैलः स तु परिश्रुतः । चन्द्रद्वीपं महाद्वीपं प्रकाशं दिवि चेह च
तत्र चन्द्रप्रतीकाशाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः । चन्द्रकान्ताः प्रजाःसर्वाविमलाश्चन्द्रदैवताः
अत्यन्तधार्मिकाः सौम्याः सत्यसंधाःसुतेजसः । प्रजास्तत्र सदाचारादशवर्षशतायुषः
पश्चिमेन तु द्वीपस्य पश्चिमस्य प्रकीर्तितम् । चतुर्योजनसाहस्रं समतीत्य महोदधिम्
दशयोजनसाहस्रं समन्तात्परिमण्डलम् । द्वीपं भद्राकरं नाम नानापुष्पोपशोभितम्
प्रभूतधनधान्याढ्यमनेकनृपपालितम् । नित्यं प्रमुदितं स्फीतं महाशैलैश्च शोभितम् ॥
तत्र भद्रासनं वायोर्नानारत्नैश्च मण्डितम् । तत्र विग्रहवान्वायुः सदा पर्वसु पूज्यते
तपनीयसुवर्णाभास्तपनीयविभूषिताः । विराजन्तेऽमरप्रख्यास्तत्र चित्राम्बरस्रजः ॥
वीर्यवन्तो महाभागाःपञ्चवर्षशतायुषः । सत्यसन्धा मुदा युक्ताःप्रजास्तावायुदैवताः

सूत उवाच

एवमेव निसर्गोऽयं वर्षाणां भारते युगे । दृष्टः परमतत्त्वज्ञैर्भूयः किं कीर्तयामि ते ॥
आख्याते त्वेवमृषयः सूतपुत्रेण धीमता । उत्तरश्रवणे भूयः पप्रच्छुस्तदनन्तरम् ॥ ६८

ऋषय ऊचुः

यदिदं भारतं वर्षं यस्मिन्स्वायंभुवादयः । चतुर्दशैते मनवः प्रजासर्गे भवन्त्युत ॥
एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम । एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषामब्रवील्लोमहर्षणः ॥
पौराणिकस्तदा सूत ऋषीणां भावितमनाम् । एतद्विस्तरतो भूयस्तानुवाच समाहितः

सूत उवाच

निसर्ग एष विख्यातः कुरूणां तु यथार्थवत् ।
भारतस्य तु वक्ष्यामि निसर्गं तं निबोधत ॥ ७२ ॥

पुण्यतीर्थे हिमवतो दक्षिणस्यातलस्य हि । पूर्वपश्चायतस्यास्य दक्षिणेन द्विजोत्तमाः
तथा जनपदानां च विस्तरं श्रोतुमर्हथ । अत्र वो वर्णयिष्यामिवर्षेऽस्मिन्भारतेप्रजाः
इदं तु मध्यमं चित्रं शुभाशुभफलोदयम् । उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत् ॥
वर्षं यद्भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा । भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते ॥

निरुक्तवचनाच्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम् ॥ ७६ ॥

ततः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते । न खल्वन्यत्र मर्त्यानांभूमौकर्मविधीयते
भारतस्यास्यवर्षस्यनवभेदाःप्रकीर्तिताः । समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम्
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्चताम्रवर्णोगभस्तिमान् । नागद्वीपस्तथासौम्योगन्धर्वस्त्वथवारुणः
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः । योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयंदक्षिणोत्तरम्
आयतो ह्याकुमारिक्यादागङ्गाप्रभवाच्च वै । तिर्यगुत्तरविस्तीर्णःसहस्राणि नवैव तु ॥

द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु नित्यशः ।
पूर्वे किराता ह्यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः ॥ ८२ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्त्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।
इज्यायुद्धवणिज्याभिर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥ ८३ ॥

तेषां संव्यवहारोऽयं वर्तते तु परस्परम् । धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु
संकल्पपञ्चमानां तु आश्रमाणां यथाविधि । इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिर्येषु मानुषी
यस्त्वयं नवमो द्वीपस्तिर्यगायत उच्यते । कृत्स्नंजयतियो ह्येनं स सम्राडिहकीर्त्यते

अयं लोकस्तु वै सम्राडन्तरीक्षो विराट् स्मृतः ।
स्वराडन्यः स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ ८७ ॥

सप्त चास्मिन्सुपर्वाणो विश्रुताः कुलपर्वताः । महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः

विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥ ८८ ॥

तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपगाः । अभिजाताः सर्वगुणाविपुलाश्चित्रसानवः
मन्दरः पर्वतश्रेष्ठो वैहारो दर्दुरस्तथा । कोलाहलः ससुरसो मैनाको वैद्युतस्तथा ।
पातंधमोनाम गिरिस्तथा पाण्डुरपर्वतः । गन्तुप्रस्थः कृष्णगिरिर्गोधनो गिरिरेव च
पुष्पगिर्युज्जयन्तौ च शैलो रैवतकस्तथा । श्रीपर्वतश्च कारुश्च कूटशैलो गिरिस्तथा

अन्ये तेभ्यः परिज्ञाता ह्रस्वाः स्वल्पोपजीविनः ।
तैर्विमिश्रा जनपदा आर्यम्लेच्छाश्च नित्यशः ॥ ९३ ॥

पीयन्ते यैरिमा नद्यो गङ्गा सिन्धुसरस्वती । शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयूस्तथा
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः । गोमती धुतपापा च बाहुदा च दृषद्वती
कौशिकी च तृतीया तु निश्चीरागण्डकीतथा । इक्षुर्लोहितइत्येताहिमवत्पादनिःसृताः
वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च । वर्णाशा चन्दना चैव सतीरा महती तथा ॥
परा चर्मण्वती चैवविदिशावेत्रवत्यपि । शिप्राह्यवन्ती च तथापारियात्राश्रयाःस्मृताः
शोणो महानदश्चैव नर्मदा सुमहाद्रुमा । मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च

तमसा पिप्पला श्रोणी करतोया पिशाचिका ।
नीलोत्पला विपाशा च जम्बुला वालुवाहिनी ॥ १०० ॥

सितेरजा शुक्तिमतीमकुणात्रिदिवाक्रमात् । ऋक्षपादात्प्रसूतास्तानद्योमणिनिभोदकाः
तापी पयोष्णीनिर्विन्ध्यामद्रा च निषधा नदी । वेन्वा वैतरणीचैवशितिवाहुःकुमुद्वती
तोया चैव महागौरीदुर्गाचान्तशिलातथा । विन्ध्यपादप्रसूताश्चनद्यःपुण्यजलाःशुभाः
गोदावरी भीमरथीकृष्णावैण्यथवञ्जुला । तुङ्गभद्रासुप्रयोगाकावेरी च तथाऽऽपगा॥

दक्षिणापथनद्यस्तु सह्यपादाद्विनिःसृताः ॥ १०४ ॥
कृतमाला ताम्रवर्णी पुष्पजात्युत्पलावती ।
मलयाभिजातास्ता नद्यः सर्वाः शीतजलाः शुभाः ॥ १०५ ॥

त्रिसामाऋतुकूल्याचइक्षुलात्रिदिवा च या । लाङ्गूलिनींवंशधरामहेन्द्रतनयाःस्मृताः
ऋषीका सुकुमारी च मन्दगामन्दवाहिनी । कूपा पलाशिनीचैवशुक्तिमत्प्रभवाःस्मृताः

सर्वाः पुण्याः सरस्वत्याः सर्वा गङ्गाः समुद्रगाः ।

विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृताः ॥ १०८ ॥

तासांनद्युपनद्योऽपिशतशोऽथसहस्रशः । तास्त्विमेकुरुपाञ्चालाःशाल्वाश्चैवसजाङ्गलाः

शूरसेना भद्रकारा बोधाः शतपथेश्वरैः ।

वत्साः किसष्णाः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः ॥ ११० ॥

अर्थपाश्च तिलङ्गाश्च मगधाश्च वृकैः सह । मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽमीप्रकीर्तिताः

सह्यस्य चोत्तरार्धे तु यत्र गोदावरी नदी । पृथिव्यामिहकृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः

तत्र गोवर्धनो नाम सुरराजेन निर्मितः । रामप्रियार्थं स्वर्गोऽयं वृक्षा ओषध्यस्तथा

भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवतारिताः । अन्तःपुरवनोद्देशस्तेन जज्ञे मनोरमः ॥

वाह्लीका वाटधानाश्चआभीराःकालतोयकाः । अपरीताश्च शूद्राश्चपह्लवाश्चर्मखण्डिकाः

गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रकाः । शका ह्रदाःकुलिन्दाश्चपरिताहारपूरिकाः

रमटा रद्धकटका केकया दशमानिकाः । क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ॥

काम्बोजा दरदाश्चैव वर्वराः प्रियलौकिकाः । पीनाश्चैव तुषाराश्च पह्लवा बाह्यतोदराः

आत्रेयाश्च भरद्वाजाः प्रस्थलाश्च कसेरुकाः । लम्पाकाःस्तनपाश्चैवपीडिकाजुहुडैःसह

अपगाश्चालिमद्राश्चकिरातानांचजातयः । तोमराहंसमार्गाश्चकाश्मीरास्तङ्गणास्तथा

चूलिकाश्चाहुकाश्चैव पूर्णदर्वास्तथैव च । एते देशा ह्युदीच्याश्च प्राच्यान्देशान्निबोधत

अन्ध्रवाकाः सुजरका अन्तर्गिरिवहिर्गिराः । तथा प्रवङ्गवङ्गेयामालदा मालवर्तिनः ॥

ब्रह्मोत्तराःप्रविजयाभार्गवागेयमर्थकाः । प्राग्ज्योतिषाश्चमुण्डाश्चविदेहास्ताम्रलिप्तकाः

माला मगधगोविन्दाःप्राच्यां जनपदाः स्मृताः ॥ १२३ ॥

अथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः । पाण्ड्याश्च केरलाश्चैवचौल्याःकुल्यास्तथैवच

सेतुका मूषिकाश्चैव कुमना वनवासिकाः । महाराष्ट्रा माहिषकाःकलिङ्गाश्चैवसर्वशः

अ(आ)भीराः सहचैषीका आटव्याश्च वराश्च ये ।

पुलिन्दा विन्ध्यमूलीका वैदर्भा दण्डकैः सह ॥ १२६ ॥

पौनिका मौनिकाश्चैव अस्मका भोगवर्धनाः ।

नैर्णिकाः कुन्तला अन्ध्रा उद्भिदा नलकालिकाः ॥ १२७ ॥

दाक्षिणात्याश्चवैदेशाअपरांस्तान्निबोधत । सूर्पाकाराःकोलवनादुर्गाःकालीतकैःसह
पुलेयाश्च सुरालाश्च रूपसास्तापसैः सह । तथा तुरसिताश्चैव सर्वे चैव परक्षराः ॥

नासिक्याद्याश्च ये चान्ये ये वै चान्तरनर्मदाः ।
भानुकच्छाः समाहेयाः सहसा साश्वतैरपि ॥ १३० ॥

कच्छीयाश्चसुराष्ट्राश्चआनर्ताश्चार्बुदैःसह । इत्येतेसंपरीताश्चशृणुध्वंविन्ध्यवासिनः

मालवाश्च करूषाश्च रोकलाश्चोत्कलैः सह ।
उत्तमार्णा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह ॥ १३२ ॥

तोसलाः कोसलाश्चैव त्रैपुरावैदिकास्तथा । तुमुरास्तुम्बुराश्चैव षट्सुरानिषधैःसह
अनूपांस्तुण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा ह्यवन्तयः । एते जनपदाःसर्वेविन्ध्यपृष्ठनिवासिनः
अतो देशान्प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये । निगर्हराहंसमार्गाःक्षुपणास्तङ्गणाःखसाः
कुशप्रावरणाश्चैव हूणा दर्वाः सहूदकाः । त्रिगर्ता मालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः । कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुष्टयम्

तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टान्निबोधत ॥ १३७ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे भुवनविन्यासो नाम
पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

किम्पुरुषादिवर्षाणां वर्णनम्

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु ऋषय उत्तरं पुनरेव ते । शुश्रूषवो मुदा युक्ताः पप्रच्छुर्लोमहर्षणम् ॥१

ऋषय ऊचुः

यच्च किंपुरुषं वर्षं हरिवर्षं तथैव च । आचक्ष्व नो यथा तत्त्वं कीर्तितं भारतं त्वय

पृष्टस्त्विदं यथा विप्रैर्यथाप्रश्नं विशेषतः। उवाच मुनिनिर्दिष्टं पुराणं विहितं यथा

सूत उवाच

शुश्रूषा यत्र वो विप्रास्तच्छृणुध्वं मुदा युताः। प्लक्षखण्डः किंपुरुषे सुमहान्नन्दनोपमः
दश वर्षसहस्राणि स्थितिः किंपुरुषे स्मृता। सुवर्णवर्णाश्च नराः स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः
अनामया ह्यशोकाश्च सर्वे ते शुद्धमानसाः। जायन्ते मानवास्तत्र निस्तप्तकनकप्रभाः
वर्षे किंपुरुषे पुण्ये प्लक्षो मधुवहः शुभः। तस्य किंपुरुषाः सर्वे पिबन्ति रसमुत्तमम्
अतः परं किंपुरुषाद्धरिवर्षः प्रवक्ष्यते। महारजतसंकाशा जायन्ते तत्र मानवाः ॥८॥
देवलोकाच्च्युताः सर्वे देवरूपाश्च सर्वशः। हरिवर्षे नराः सर्वे पिबन्तीक्षुरसं शुभम्
एकादश सहस्राणि वर्षाणां तु मुदा युताः। हरिवर्षे तु जीवन्ति सर्वे मुदितमानसाः

न जरा बाधते तत्र जीर्यन्ति न च ते नराः ॥ १० ॥
मध्यमं यन्मया प्रोक्तं नाम्ना वर्षमिलावृतम्।
न तत्र सूर्यस्तपति न च जीर्यन्ति मानवाः ॥ ११ ॥

चन्द्रसूर्यौ सनक्षत्रावप्रकाशाविलावृते। पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ॥

पद्मपत्रसुगन्धाश्च जायन्ते तत्र मानवाः ॥१२॥

जम्बूरसफलाहारा ह्यनिष्यन्दाः सुगन्धिनः। मनस्विनो भुक्तभोगाः सत्कर्मफलभोगिनः
देवलोकाच्च्युताः सर्वे जायन्ते ह्यजरामराः। त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः
आयुष्प्रमाणं जीवन्ति ये तु वर्षे त्विलावृते। मेरोः प्रतिदिशं ते तु नवसाहस्रविस्तृते
योजनानां सहस्राणि षड्विंशस्तस्य विस्तरः। चतुरस्रः समन्ताच्च शरावाकारसंस्थितः
मेरोस्तु पश्चिमे भागे नवसाहस्रसंमिते। चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि गन्धमादनपर्वतः ॥
उदग्दक्षिणतश्चैव आनीलनिषधायतः। चत्वारिंशत्सहस्राणि परिवृद्धो महीतलात्

सहस्रमवगाढस्तु तावदेव तु धिष्ठितः ॥ १८ ॥

पूर्वेण माल्यवाञ्शैलस्तत्प्रमाणः प्रकीर्तितः। दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु
तेषां मध्ये महामेरुः सुप्रमाणः प्रकीर्तितः। सर्वेषामेव शैलानामवगाढो यथा भवेत्
विस्तरस्तत्प्रमाणः स्यादायामे नियुतः स्मृतः। वृत्तभावात्समुद्रस्य महीमण्डलभावनः

आयामाः परिहीयन्ते चतुरस्राः समन्ततः । अनावृत्ताश्चतुष्केण भिद्यन्ते मध्यभागत
प्रभिन्नाञ्जनसंकाशा जम्बूरसवती नदी । मेरोस्तु दक्षिणे पार्श्वे निषधस्योत्तरेण तु ॥
सुदर्शनो नाममहाजम्बुवृक्षः सनातनः । नित्यपुष्पफलोपेतः सिद्धचारणसेवितः ॥

तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपे वनस्पतिः ।
योजनानां सहस्रं तु शतं चान्यमहाद्रुमः ॥
उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवं स्पृशति सर्वशः ॥ २५ ॥

अरत्नीनां शतान्यष्टावेकषष्ट्यधिकानि तु । फलप्रमाणं संख्यातमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः

पतमानानि तान्युर्व्यां कुर्वन्ति विपुलं स्वनम् ।
तस्य जम्ब्वाः फलरसो नदीभूय प्रसर्पति ॥ २७ ॥

मेरुं प्रदक्षिणीकृत्य जम्बूवृक्षं विशत्यधः । ते पिबन्ति सदा हृष्टा जम्बूरसफलावृताः
जम्बूरसफलंपीत्वानजरांप्राप्नुवन्ति ते । न क्रोधं न च रोगं तु न च मृत्युंतथाविधम्
तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम् । इन्द्रगोपकसंकाशं जायते भास्वरं तु तत् ॥
सर्वेषां वर्षवृक्षाणां शुभः फलरसस्तु सः । स्कन्नं भवति तच्छुक्रं कनकं देवभूषणम्
तेषां मूत्रं पुरीषं च दिक्षु सर्वासु भागशः । ईश्वरानुग्रहाद्भूमिर्मृतांश्च ग्रसते तु तान्
रक्षःपिशाचा यक्षाश्च सर्वे हैमवताःस्मृताः । हेमकूटेतु गन्धर्वाविज्ञेयाःसाप्सरोगणाः
सर्वे नागास्तु निषधे शेषवासुकितक्षकाः । महामेरौ त्रयस्त्रिंशद्भ्रमन्ते यज्ञियाःसुराः

नीले तु वैडूर्यमये सिद्धब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ३४ ॥

दैत्यानां दानवानां च श्वेतपर्वत उच्यते । शृङ्गवान्पर्वतः श्रेष्ठः पितृणां प्रतिसंचरः ॥
नवस्वेतेषु वर्षेषु यथाभागस्थितेषु वै । भूतान्युपनिविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥
तेषां विवृद्धिर्बहुला दृश्यते देवमानुषी । न शक्या परिसंख्यातुं श्रद्धेयाऽनुबुभूषता ॥
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे भुवनविन्यासोनाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

कैलासवर्णनम्

सूत उवाच

सव्ये हिमवतः पार्श्वे कैलासोनामपर्वतः । तस्मिन्निवसति श्रीमान्कुवेरः सह राक्षसैः

अप्सरोगणसंयुक्तो मोदते ह्यलकाधिपः ॥ १ ॥

कैलासपादात्संभूतं पुण्यं शीतजलं शुभम् । मन्दं नाम्ना कुमुद्वन्तं शरदम्बुदसंनिभम्

तस्माद्दिव्या प्रभवतिनदीमन्दाकिनी शुभा । दिव्यं च नन्दनंतत्र तस्यास्तीरे महद्वनम्

प्रागुत्तरेण कैलासाद्दिव्यसत्त्वौषधं गिरिम् । सुरधातुमयंचित्रं सुवर्णं पर्वतं प्रति ॥

चन्द्रप्रभो नाम गिरिः स शुद्धोरत्नसन्निभः । तस्य पादे महद्दिव्यमच्छोदंनाम तत्सरः

तस्माद्दिव्याप्रभवति ह्यच्छोदानामनिम्नगा । तस्यास्तीरेमहद्दिव्यं वनंचैत्ररथं स्मृतम्

तस्मिन्गिरौ निवसति मणिभद्रः सहानुगः । यक्षसेनापतिः क्रूरगुह्यकैः परिवारितः ॥

पुण्या मन्दाकिनीचैव निम्नगाच्छोदिकातथा । महीमण्डलमध्येनप्रविष्टेतेमहोदधिम्

कैलासाद्दक्षिणप्राच्यां शिवसत्त्वौषधिंगिरिम् । मनःशिलामयंदिव्यं पिशङ्गं पर्वतं प्रति

लोहितो हेमशृङ्गस्तुगिरिः सूर्यप्रभोमहान् । तस्य पादे महद्दिव्यं लोहितं नाम तत्सरः

तस्मात्पुण्यः प्रभवति लौहित्यः सदनो महान् ।

देवारण्यं विशोकं च तस्य तीरे महावनम् ॥ ११ ॥

तस्मिन्गिरौ निवसतियक्षोमणिवरोवशी । सौम्यैः सुधार्मिकैश्चैवगुह्यकैः परिवारितः

कैलासाद्दक्षिणे पार्श्वे क्रूरसत्त्वौषधंगिरिम् । वृत्रकायात्किलोत्पन्नमञ्जनंत्रिककुं प्रति

सर्वधातुमयस्तत्र सुमहान्वैद्युतोगिरिः । तस्य पादे सरः पुण्यं मानसं सिद्धसेवितम्

तस्मात्प्रभवते पुण्या सरयूर्लोकभावनी । तस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राजंनाम विश्रुतम्

कुबेरानुचरस्तत्र प्रहेतृतनयो वशी । ब्रह्मपातो निवसति राक्षसोऽनन्तविक्रमः ॥

अन्तरिक्षचरैर्घोरैर्यातुधानशतैर्वृतः ॥ १६ ॥

अपरेण तु कैलासान्मुख्यसत्त्वौषधिं गिरिम् । अरुणं पर्वतश्रेष्ठं रुक्मधातुमयं प्रति
भवस्य दयितः श्रीमान्पर्वतोमेघसन्निभः । शातकुम्भमयैः शुभ्रैःशिलाजालैः समावृतः
शतसंख्यैस्तापनीयैः शृङ्गैर्दिवमिवोल्लिखन् । सशृवान्स महादिव्योदुर्गशैलोहिमाचितः
तस्मिन्गिरौ निवसति गिरिशोधूम्रलोहितः । तस्य पादात्प्रभवतिशैलोदंनाम तत्सरः
तस्मात्प्रभवतेदिव्याशैलोदानामनिम्नगा । साचक्षुःशीतयोर्मध्ये प्रविष्टालवणोदधिम्
तस्यास्तीरेवनंदिव्यंविश्रुतंसुरभीतिवै । अस्त्युत्तरेणकैलासाच्छिवसत्त्वौषधो गिरिः
गौरोनामगिरिस्तत्र हरितालमयःशुभः । हिरण्यशृङ्गः सुमहान्दिव्योमणिमयो गिरिः
तस्य पादे महद्दिव्यं शुभं काञ्चनवालुकम् । रम्यं विन्दुसरोनाम यत्र यातो भगीरथः
गङ्गानिमित्तं राजर्षिरुवासबहुलाःसमाः । दिव्यं यास्यन्तिमे पूर्वे गङ्गातोयपरिप्लुताः
तत्र त्रिपथगा देवी प्रथमं तु प्रतिष्ठिता । सोमपादप्रसूता सा सप्तधा प्रतिपद्यते ॥२६॥
यूपा मणिमयास्तत्र चितयश्च हिरण्मयाः । तत्रेष्ट्वा तु गतः शर्वं शक्रः सर्वैः सुरैः सह
दिवि च्छायापथोयस्तु अनुनक्षत्रमण्डलम् । दृश्यतेभास्वरोरात्रौदेवीत्रिपथगातु सा
अन्तरिक्षं दिवं चैव भावयन्ती भुवं गता । भवोत्तमाङ्गे पतिता संरुद्धा योगमायया॥

तस्या ये विन्दवः केचित्क्रुद्धायाः पतिताः क्षितौ ।
कृतं विन्दुसरस्तत्र ततो विन्दुसरः स्मृतम् ॥ ३० ॥

ततो निरुद्धा देवी सा भवेन स्मयता किल । चिन्तयामास मनसा शंकरक्षेपणं प्रति

भित्त्वा विशामि पातालं स्रोतसाऽऽगृह्य शंकरम् ।
ज्ञात्वा तस्या अभिप्रायं क्रूरं देव्याश्चिकीर्षितम् ॥ ३२ ॥

तिरोभावयितुं बुद्धिरासीदङ्गेषुतां नदीम् । तस्या वलेपं तंबुद्ध्वानद्याःक्रुद्धस्तु शंकरः

निरुध्य तु शिरस्येनां वेगेन पतितां भुवि ॥ ३३ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु दृष्ट्वा राजानमग्रतः । धमनीसंततं क्षीणं क्षुधापरिगतेन्द्रियम् ॥
अनेन तोषितश्चाहं नद्यर्थं पूर्वमेव हि । बुद्ध्वाऽस्य वरदानं तु कोपं नियतवांस्तु सः
ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा प्रतिज्ञाधारणंप्रति । ततो विसर्जयामाससंरुद्धां स्वेन तेजसा

नदीं भगीरथस्यार्थे तपसोग्रेण तोषितः ॥ ३६ ॥

ततोविसर्ज्यमानायाः स्रोतस्तत्सप्ततांगतम् । त्रयः प्राचीमभिमुखं प्रतीचीं त्रय एव तु

नद्याःस्रोतस्तुगङ्गायाः प्रत्यपद्यत सप्तधा । नलिनी ह्लादिनी चैव पावनी चैव प्राग्गता
सीता चक्षुश्चसिन्धुश्चप्रतीचीं दिशमाश्रिताः । सप्तमी त्वनुगातासांदक्षिणेनभगीरथम्
तस्माद्भागीरथी या सा प्रविष्टा लवणोदधिम् । सप्तैताभावयन्तीह हिमाह्वं वर्षमेव तु
प्रसूताः सप्तनद्यस्ताःशुभाविन्दुसरोद्भवाः । नानादेशान्भावयन्त्योम्लेच्छप्रायांश्चसर्वशः
उपगच्छन्तिताःसर्वायतोवर्षतिवासवः। सिरिन्ध्रान्कुन्तलांश्चीनान्वर्बरान्यवसान्द्रुहान्

रुषाणांश्च कुणिन्दांश्च अङ्गलोकवराश्च ये ।
कृत्वा द्विधा सिन्धुमरुं सीताऽगात्पश्चिमोदधिम् ॥ ४३ ॥
अथ चीनमरूंश्चैव तङ्गणान्सर्वमूलिकान् ।
सान्ध्रांस्तुषारांस्तम्पाकान्पह्लवान्दरदाञ्छकान् ॥
एताञ्जनपदाञ्चक्षुः प्लावयन्ती गतोदधिम् ॥ ४४ ॥

दरदांश्चसकाश्मीरान्गान्धारान्वरपान्ह्रदान्।शिवपौरानिन्द्रहासान्वदातींश्चविसर्जयान्
सैन्धवान्रन्ध्रकरकान्भ्रमराभीररोहकान् । शुनामुखांश्चोर्ध्वमनून्सिद्धचारणसेवितान्

गन्धर्वान्किन्नरान्यक्षान्रक्षोविद्याधरोरगान् ।
कलापग्रामकांश्चैव पारदान्सीगणान्खसान् ॥४७॥

किरातांश्च पुलिन्दांश्चकुरून्सभरतानपि । पञ्चालकाशिमात्स्यांश्च मगधाङ्गांस्तथैव च
ब्रह्मोत्तरांश्च वङ्गांश्च तामलिप्तांस्तथैव च । एताञ्जनपदानार्यान्गङ्गा भावयते शुभान्

ततः प्रतिहता विन्ध्ये प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ।
ततश्चाऽऽह्लादिनी पुण्या प्राचीनाभिमुखी ययौ ॥ ५० ॥

प्लावयन्त्युपभोगांश्च निषादानां च जातयः । धीवरानृषिकांश्चैव तथानीलमुखानपि
केरलानुष्ट्रकर्णांश्च किरातानपिचैवहि । कालोदरान्विवर्णांश्च कुमारान्स्वर्णभूषितान्
सा मण्डले समुद्रस्य तिरोभूताऽनुपूर्वतः । ततस्तु पावनी चैव प्राचीमेवदिशं गता ॥
अपथान्प्लावयन्तीह इन्द्रद्युम्नसरोऽपि च । तथा खरापथांश्चैव इन्द्रशङ्कुपथानपि ॥
मध्येनोद्यानमकरान्कुथप्रावरणान्ययौ । इन्द्रद्वीपसमुद्रे तु प्रविष्टा लवणोदधिम् ॥
ततश्च नलिनी चागात्प्राचीमाशां जवेन तु । तोमरान्प्लावयन्तीहहंसमार्गान्सहूहुकान्

पूर्वान्देशांश्चसेवन्तीभित्त्वासावहुधागिरान्। कर्णप्रावरणांश्चैवप्राप्यचाश्वमुखानपि
सिकतापर्वतमरूनगत्वा विद्याधरान्ययौ। नेमिमण्डलकोष्ठे तु प्रविष्टासामहोदधिम्
तासां नद्युपनद्यश्च शतशोऽथ सहस्रशः। उपगच्छन्ति ताः सर्वा यतो वर्षति वासवः
वस्वोकसाऽयास्तीरे तु वने सुरभिविश्रुते। हरिशृङ्गे तु वसति विद्वान्कौवेरको वशी
यज्ञोपेतः स सुमहानमितौजाःसुविक्रमः। तत्राऽऽगस्त्यैःपरिवृतोविद्वद्भिर्ब्रह्मराक्षसैः
कुबेरानुचरा ह्येते चत्वारस्तत्समाः स्मृताः ॥ ६१ ॥
एवमेव तु विज्ञेया ऋद्धिः पर्वतवासिनाम्। परस्परेण द्विगुणा धर्मतः कामतोऽर्थतः
हेमकूटस्य पृष्ठे तु सायनंनामतत्सरः। मनस्विनीप्रभवतितस्माज्ज्योतिष्मती च सा
अवगाह्य ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ। सरो विष्णुपदं नाम निषधे पर्वतोत्तमे॥
तस्माद्द्वयं प्रभवति गान्धर्वीनत्वली च या। मेरोःपश्चात्प्रभवतिह्रदश्चन्द्रप्रभोमहान्
तत्र जाम्बूनदी पुण्या यस्यां जाम्बूनदं शुभम्।
पयोदं तु सरो नीले सुशुभ्रं पुण्डरीकवत् ॥ ६६ ॥
पुण्डरीका पयोदा च तस्मान्नद्यौ विनिर्गते। श्वेतात्प्रभवते पुण्यं सरस्तूत्तरमानसम्
ज्योत्स्ना च मृगकान्ताचतस्माद्द्वेसंवभूवतुः। मधुमत्सरः पुण्यंचपद्ममीनद्विजाकुलम्
कल्पवृक्षसमाकीर्णं मधुवत्सर्वतः सुखम्। रुद्रकान्तमिति ख्यातं निर्मितं तद्भवेन तु
अन्ये चाप्यत्र विख्याताः पद्ममीनद्विजाकुलाः।
नाम्ना ह्रदा जया नाम द्वादशोदधिसंनिभाः ॥ ७० ॥
तेभ्यः शान्ती च माध्वी च द्वे नद्यौ संवभूवतुः। यानि किंपुरुषाद्यानितेषुदेवोनवर्षति
उद्भिज्जान्युदकान्यत्र प्रवहन्ति सरिद्वाराः। ऋषभो दुन्दुभिश्चैव धूम्रश्चैव महागिरिः
पूर्वायता महाभागानिम्नगालवणाम्भसि। चन्द्रकङ्कस्तथा प्राणोमहानद्रिःशिलोच्चयः
उदगायता उदीच्यान्ता अवगाढा महोदधिम् ॥ ७३ ॥
सोमकश्च वराहश्च नारदश्च महीधरः। प्रतीचीमायतास्ते वै प्रविष्टालवणोदधिम्
चक्रो वलाहकश्चैव मैनाकश्चैव पर्वतः। आयतास्ते महाशैलाः समुद्रं दक्षिणं प्रति॥
चन्द्रमैनाकयोर्मध्ये विदिशं दक्षिणं प्रति ॥ ७५ ॥

तत्र संवर्त्तको नाम सोऽग्निः पिबति तज्जलम् ।
नाम्ना समुद्रपः श्रीमानौर्वः स वडवामुखः ॥ ७६ ॥
द्वादशैते प्रविष्टा हि पर्वता लवणोदधिम् । महेन्द्रभयवित्रस्ताः पक्षच्छेदभयात्तदा ॥
यदेतद् दृश्यते चन्द्रे श्वेते कृष्णशशाकृति ॥ ७७ ॥
भारतस्य तु वर्षस्य भेदास्तेनवकीर्तिताः । इहोदितस्य दृश्यन्तेतथाऽन्येऽन्यत्रनोदिते
उत्तरोत्तरमेतेषां वर्षमुद्दिश्य ते गुणैः । आरोग्यायुष्यमाणाभ्यां धर्मतः कामतोऽर्थतः
समन्वितानि भूतानि गुणैरैतैस्तु भागतः । वसन्तिनानाजातीनि तेषु वर्षेषु तानि वै॥
इत्येषाऽधारयत्सर्वं पृथ्वी विश्वं जगत्स्थितौ ॥ ८० ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे भुवनविन्यासो नाम
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

जम्बूद्वीपान्तर्गताङ्गद्वीपादीनां कथनम्

सूत उवाच

दक्षिणेनापि वर्षस्य भारतस्य निबोधत । दशयोजनसाहस्रं समतीत्य महार्णवम् ॥१
त्रीण्येव तु सहस्राणियोजनानांसमायतम् । अतस्त्रिभागविस्तीर्णंनानापुष्पफलोदयम्
विद्युत्वन्तं महाशैलं तत्रैकं कुलपर्वतम् । येन कूटतटैर्नैकैस्तद्द्वीपं समलंकृतम् ॥ ३ ॥
प्रसन्नस्वादुसलिलास्तत्र नद्यः सहस्रशः । वाप्यस्तस्य तु द्वीपस्यप्रवृत्ताविमलोदकाः
तस्य शैलस्य च्छिद्रेषु विस्तीर्णेष्वायतेषु च । अनेकेषुसमृद्धानिनानाकाराणिसर्वशः
नरनारीसमाढ्यानि मुदितानि महान्ति च । तेषां तलप्रवेशानि सहस्राणि शतानि च
पुराणि संनिविष्टानि पर्वतान्तर्गतानि च । सुसंबद्धानि चान्योन्यमेकद्वाराणितान्यथ

दीर्घश्मश्रुधरात्मनो नीला मेघसमप्रभाः । जातमात्राः प्रजास्तत्र अशीतिपरमायुषः ॥
शाखामृगसधर्माणःफलमूलाशिनस्तथा । गोधर्माणोह्यनिर्दिष्टाःशौचाचारविवर्जिताः
तद्द्वीपं तादृशैः पूर्णं मनुजैः क्षुद्रमानुषैः । एवमेतेऽन्तरद्वीपा व्याख्याता अनुपूर्वशः
विंशत्त्रिंशच्चपञ्चाशत्षष्ट्यशीतिःशतं तथा । सहस्रमपि चाप्युक्तं योजनानां समन्ततः
विस्तीर्णाश्चाऽऽयताश्चैवनानासत्त्वसमाकुलाः । बर्हिणद्वीपपर्वाणिक्षुद्रद्वीपाःसहस्रशः
जम्बूद्वीपप्रदेशास्तुषडन्ये विविधाश्रयाः । अत्र द्वीपाःसमाख्यातानानारत्नाकराःक्षितौ
अङ्गद्वीपं यमद्वीपं मलयद्वीपमेव च । शङ्खद्वीपं कुशद्वीपं वराहद्वीपमेव च ॥१४॥
अङ्गद्वीपंनिबोध त्वं नानासङ्घसमाकुलम् । नानाम्लेच्छगणाकीर्णंतद्द्वीपंबहुविस्तरम्
हेमविद्रुमपूर्णानां रत्नानामाकरं क्षितौ । नदीशैलवनैश्चित्रं संनिभं लवणाम्भसा ॥
तत्र चक्रगिरिर्नाम नैकनिर्झरकन्दरः । तत्र सा तु दरी चास्य नानासत्त्वसमाश्रया
स मध्ये नागदेशस्य नैकदेशो महागिरिः । कोटिभ्यां नागनिलयं प्राप्तोनदनदीपतिम्
यमद्वीपमिति प्रोक्तं नानारत्नाकराचितम् । तत्रापिद्युतिमान्नाम पर्वतोधातुमण्डितः
समुद्रगानां(णां) प्रभवः प्रभवः काञ्चनस्य तु ॥१६॥
तथैव मलयद्वीपमेवमेव सुसंवृतम् । मणिरत्नाकरं स्फीतमाकरं कनकस्य च ॥२०॥
आकरंचन्दनानां चसमुद्राणांतथाऽऽकरम् । नानाम्लेच्छगणाकीर्णंनदीपर्वतमण्डितम्
तत्र श्रीमांस्तु मलयः पर्वतो रजताकरः । महामलय इत्येवं विख्यातो वरपर्वतः ॥२२
द्वितीयं मन्दरं नाम प्रथितं च सदा क्षितौ । नानापुष्पफलोपेतं रम्यं देवर्षिसेवितम्
अगस्त्यभवनं तत्र देवासुरनमस्कृतम् ॥२३॥
तथा काञ्चनपादस्य मलयस्यापरस्य हि । निकुञ्जैस्तृणसोमाङ्गैराश्रमं पुण्यसेवितम्
नानापुष्पफलोपेतं स्वर्गादपि विशिष्यते । तत्रावतरते स्वर्गः सदा पर्वसु पर्वसु ॥
तथा त्रिकूटनिलये नानाधातुविभूषिते । अनेकयोजनोत्सेधे चित्रसानुदरीगृहे ॥२६॥
तस्य कूटतटे रम्ये हेमप्राकारतोरणा । निर्यूहवलभी चित्रा हर्म्यप्रासादमालिनी ॥
शतयोजनविस्तीर्णा त्रिंशदायामयोजना । नित्यप्रमुदिता स्फीता लङ्का नाममहापुरी
सा कामरूपिणां स्थानं राक्षसानां महात्मनाम् ।

आवासो बलदृप्तानां तद्विद्याद्देवविद्विषाम् ॥
मानुषाणामसंबाधा ह्यगम्या सा महापुरी ॥२६॥
तस्य द्वीपस्य वै पूर्वे तीरे नदनदीपतेः । गोकर्णनामधेयस्य शंकरस्याऽऽलयं महत् ।
तथैकराज्यं विज्ञेयं शङ्खद्वीपसमास्थितम् । शतयोजनविस्तीर्णनानाम्लेच्छगणालयम् ।
तत्र शङ्खगिरिर्नाम धौतशङ्खदलप्रभः । नानारत्नाकरः पुण्यः पुण्यकृद्भिर्निषेवितः ॥
शङ्खनागा महापुण्या यस्मात्प्रभवते नदी । यत्र शङ्खमुखो नाम नागराजः कृतालयः ॥
तथैव कुमुदद्वीपं नानापुष्पोपशोभितम् । नानाग्रामसमाकीर्णं नानारत्नाकरं शिवम् ।
कुमुदा नाम महाभागा दुष्टचित्तनिबर्हणी । महादेवस्य भगिनीप्रभाभिस्ताभिरिज्यते ।
तथा वराहद्वीपे च नानाम्लेच्छगणाकुले । नानाजातिसमाकीर्णे नानाधिष्ठानपत्तने ॥
धनधान्ययुते स्फीते धर्मिष्ठजनसंकुले । नदीशैलवनैश्चित्रैर्बहुपुष्पफलोपगैः ॥३७॥
वराहपर्वतो नाम तत्र रम्यः शिलोच्चयः । अनेककन्दरदरीगुहानिर्झरशोभितः ॥३८॥
तस्मात्सुरसपानीया पुण्यतीर्थतरङ्गिणी । वाराही नाम वरदा प्रवृत्ता स्म महानदी ॥
वाराहरूपिणे तत्र विष्णवे प्रभविष्णवे । अनन्यदेवतास्तस्मै नमस्कुर्वन्ति वै प्रजाः ।
एवं षडेते कथिता अनुद्वीपाः समन्ततः । भारतद्वीपदेशो वै दक्षिणे बहुविस्तरः ॥
एवमेकमिदं वर्षं बहुद्वीपमिहोच्यते । समुद्रजलसंभिन्नं खण्डं खण्डीकृतं स्मृतम् ॥
एवं चतुर्महाद्वीपः सान्तरद्वीपमण्डितः । सानुद्वीपः समाख्यातो जम्बूद्वीपस्य विस्तरः ।

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे भुवनविन्यासो
नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

———

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

प्लक्षद्वीपवर्णनम्

सूत उवाच

प्लक्षद्वीपं प्रवक्ष्यामि यथावदिह संग्रहात् । श्रृणुतेमं यथातत्त्वं ब्रुवतो मे द्विजोत्तमाः
जम्बूद्वीपस्यविस्ताराद्द्विगुणस्तस्यविस्तरः विस्तारात्त्रिगुणश्चास्यपरिणाहःसमन्ततः
तेनाऽऽवृतः समुद्रोऽयं द्वीपेन लवणोदकः ॥२॥
तत्र पुण्या जनपदाश्चिराच्च म्रियते प्रजा । कुत एव हि दुर्भिक्ष्यं जराव्याधिभयं कुतः
तत्रापि पर्वताः शुभ्राः सप्तैव मणिभूषणाः ।
रत्नाकरास्तथा नद्यस्तासां नामानि वक्ष्यते(च्म्यहम्) ॥४॥
प्लक्षद्वीपादिषु त्वेषु सप्तसप्तसुसप्तसु । ऋज्वायताः प्रतिदिशं निविष्टाः पर्वताः सदा ॥
प्लक्षद्वीपे तु वक्ष्यामि सप्तद्वीपान्महाचलान् । गोमेदकोऽत्र प्रथमः पर्वतो मेघसंनिभः
ख्यायन्ते तस्य नाम्ना वै वर्षं गोमेदकं तु तत् ॥६॥
द्वितीयःपर्वतःश्चन्द्रःसर्वौषधिसमन्वितः । अश्विभ्याममृतस्यार्थे ओषध्यस्तत्रसंस्थिताः
तृतीयो नारदो नाम दुर्गशैलो महोच्छ्रयः । तत्राचले समुत्पन्नौ पूर्वं नारदपर्वतौ ॥८
चतुर्थस्तत्र वै शैलोदुन्दुभिर्नाम नामतः । शब्दमृत्युःपुरातस्मिन्दुन्दुभिस्ताडितः सुरैः
रज्जुदारो रज्जुमयः शाल्मलश्चासुरान्तकृत् ॥६॥
पञ्चमः सोमकोनाम देवैर्यत्रामृतं पुरा । संभृतं च हृतंचैव मातुरर्थे गरुत्मता ॥१०॥
षष्ठस्तु सुमना नाम स एवर्षभ उच्यते । हिरण्याक्षो वराहेण तस्मिञ्छैले निषूदितः
वैभ्राजः सप्तमस्तत्र भ्राजिष्णुः स्फाटिको महान् ।
यस्माद्विभ्राजतेऽर्चिभिर्वैभ्राजस्तेन स स्मृतः ॥१२॥
तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि नामतस्तु यथाक्रमम् । गोमेदं प्रथमंवर्षंनाम्नाशान्तभयंस्मृतम्
चन्द्रस्य शिखरं नाम नारदस्य सुखोदयम् । आनन्दं दुन्दुभेर्वर्षंसोमकस्यशिवंस्मृतम्

क्षेमकमृषभस्यापि वैभ्राजस्य ध्रुवं तथा ॥१४॥

एतेषु देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः । विहरन्ति रमन्ते च दृश्यमानास्तु तैः सह
तेषां नद्यश्च सप्तैव प्रतिवर्षं समुद्रगाः । नामतस्ताः प्रवक्ष्यामि सप्त गङ्गा महानदीः
अनुतप्ता सुतप्तैव निष्पापा मुदिता क्रतुः । अमृता सुकृता चैव सप्तैताः सरितां वराः
अभिगच्छन्ति ता नद्यस्ताभ्यश्चान्याःसहस्रशः । बहूदकाश्चौघवत्योयतोवर्षतिवासवः
ताः पिबन्ति सदा हृष्टानदीर्जनपदास्तुते । शुभाः शान्तवहाश्चैव प्रमोदायेच ते शिवाः
आनन्दाश्च ध्रुवाश्चैव क्षेमकाश्च शिवैःसह । वर्णाश्रमाचारयुक्ताः प्रजास्तेष्वथ सर्वशः

सर्वेष्वरोगाः सुबलाः प्रजास्त्वामयवर्जिताः ।
अधःसर्पिणी न तेष्वस्ति तथैवोत्सर्पिणी न च ॥ २१ ॥

न तत्रास्ति युगावस्था चतुर्युगकृताक्वचित् । त्रेतायुगसमःकालः सर्वदा तत्र वर्तते ॥
प्लक्षद्वीपादिषु ज्ञेयः पञ्चस्वेतेषु सर्वशः । देशस्यानुविधानेन कालस्यानुविधाः स्मृताः
पञ्च वर्षसहस्राणि तेषु जीवन्ति मानवाः । सुरूपाश्च सुवेषाश्च आरोगा बलिनस्तथा
सुखमायुर्बलं रूपमारोग्यं धर्म एव च । प्लक्षद्वीपादिषु ज्ञेयं शाकद्वीपान्तकेषु च ॥२५॥
प्लक्षद्वीपः पृथुः श्रीमान्सर्वतोधनधान्यवान् । दिव्यौषधिफलोपेतः सर्वौषधिवनस्पतिः

आवृतः पशुभिः सर्वैर्ग्रामा(म्या)रण्यैः सहस्रशः ।
जम्बूवृक्षेण संख्यातस्तस्य मध्ये द्विजोत्तमाः ॥
प्लक्षो नाम महावृक्षस्तस्य नाम्ना स उच्यते ॥ २७ ॥

स तत्र पूज्यते स्थाणुर्मध्ये जनपदस्य हि । स चापीक्षुरसोद्देशः प्लक्षद्वीपसमावृतः ॥
प्लक्षद्वीपस्य चैवेह वैपुल्याद्विस्तरेण तु । इत्येष संनिवेशो वः प्लक्षद्वीपस्य कीर्तितः

आनुपूर्व्या समासेन शाल्मलं तं निबोधत ॥ २९ ॥

ततस्तृतीयं द्वीपानां शाल्मलं द्वीपमुत्तमम् । शाल्मलेन समुद्रस्तु द्वीपेनेक्षुरसोदकः ॥

प्लक्षद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समावृतः ॥ ३० ॥

तत्रापि पर्वताः सप्त विज्ञेयारत्नयोनयः । रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषु वर्षेषु सप्तसु ॥
प्रथमः सूर्यसंकाशः कुमुदो नाम पर्वतः । सर्वधातुमयैः शृङ्गैः शिलाजालसमुद्गतैः

द्वितीयः पर्वतस्तस्य उन्नतो नाम विश्रुतः । हरितालमयैः शृङ्गैर्दिवमावृत्य तिष्ठति ॥
तृतीयः पर्वतस्तस्य बलाहक इति श्रुतः । जात्यञ्जनमयैः शृङ्गैर्दिवमावृत्य तिष्ठति ॥
चतुर्थः पर्वतो द्रोणो यत्रौषध्यो महाबलाः । विशल्यकरणी चैव मृतसंजीवनी तथा
कङ्कस्तु दशमस्तत्र पर्वतः सुमहोदयः । दिव्यपुष्पफलोपेतो वृक्षवीरुत्समावृतः ॥३६॥
षष्ठस्तु पर्वतस्तत्र महिषो मेघसंनिभः । यस्मिन्सोऽग्निर्निवसति महिषोनाम वारिजः
सप्तमः पर्वतस्तत्र ककुद्मान्नाम भाष्यते । तत्र रत्नान्यनेकानि स्वयं वर्षति वासवः ॥

प्रजापतिमुपादाय प्राजापत्ये विधिः स्वयम् ॥ ३८ ॥

इत्येते पर्वताः सप्त शाल्मले मणिभूषिताः । तेषां वर्षाणिवक्ष्यामिसप्तैव तु शुभानि वै

कुमुदात्प्रथमं श्वेतमुन्नतस्य तु लोहितम् ॥ ३९ ॥

बलाहकस्य जीमूतं द्रोणस्य हरितंस्मृतम् । कङ्कस्यवैद्युतं नाम महिषस्य तु मानसम्
कुकुदः सुप्रभं नाम सप्तैतानि तु सप्तधा । वर्षाणि पर्वतांश्चैव नदीस्तेषु निबोधत ॥

पानीतोया वितृणा च चन्द्रा शुक्रा विमोचनी ।
निवृत्तिः सप्तमी तासां प्रतिवर्षं तु ताः स्मृताः ॥ ४२ ॥

तासां समीपगाश्चान्याःशतशोऽथ सहस्रशः । अशक्याःपरिसंख्यातुंश्रद्धेयास्तुबुभूपता
इत्येष संनिवेशो वः शाल्मलस्यापि कीर्तितः । प्लक्षवृक्षेणसंख्यातस्तस्यमध्येमहाद्रुमः
शाल्मलिर्विपुलस्कन्धस्तस्य नाम्ना स उच्यते । शाल्मलिस्तुसमुद्रेणसुरोदेनसमन्ततः

विस्ताराच्छाल्मलस्यैव समेन तु समन्ततः ॥ ४५ ॥

उत्तरेषु तु धर्मज्ञा द्वीपेषु शृणुत प्रजाः । यथाश्रुतं यथान्यायं ब्रुवतो मे निबोधत ॥
कुशद्वीपं प्रवक्ष्यामि चतुर्थं तं समासतः । सुरोदकः परिवृतः कुशद्वीपेन सर्वतः ॥४७
सप्तैव गिरयस्तत्र वर्ण्यमानान्निबोधत । शाल्मलस्य तु विस्ताराद्द्विगुणेन समन्ततः
कुशद्वीपे तु विज्ञेयः प्रर्वतो विद्रुमोच्चयः । द्वीपस्य प्रथमस्तस्य द्वितीयो हेमपर्वतः ॥
तृतीयो द्युतिमान्नाम जीमूतसदृशो गिरिः । चतुर्थः पुष्पवान्नाम पञ्चमस्तु कुशेशयः ॥

षष्ठो हरिगिरिर्नाम सप्तमो मन्दरः स्मृतः ।
मन्दा इति ह्यपां नाम मन्दरो दारणादपाम् ॥ ५१ ॥

तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणः परिवारितः । उद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम्
तृतीयं स्वैरथाकारं चतुर्थं लवणं स्मृतम् । पञ्चमं धृतिमद्वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् ॥

सप्तमं कपिलं नाम सप्तैते वर्षपर्वताः ॥ ५३ ॥

एतेषु देवगन्धर्वाः प्रभासु जगदीश्वराः । विहरन्ति रमन्ते च दृश्यमानास्तु वर्षशः ॥

न तेषु दस्यवः सन्ति म्लेच्छजात्यस्तथैव च ।

गौरप्रायो जनः सर्वः क्रमाच्च म्रियते तथा ॥ ५५ ॥

तत्रापि नद्यः सप्तैव धुतपापाः शिवास्तथा । पवित्रा संततिश्चैव द्युतिगर्भा मही तथा

अन्यास्ताभ्योऽपरिज्ञाताः शतशोऽथ सहस्रशः ।

अभिगच्छन्ति ताः सर्वा यतो वर्षति वासवः ॥ ५७ ॥

घृतोदेन कुशद्वीपो वाह्यतः परिवारितः । विज्ञेयः स तु विस्तारात्कुशद्वीपसमेन तु ॥
इत्येष संनिवेशो वः कुशद्वीपस्य वर्णितः । क्रौञ्चद्वीपस्य विस्तारंवक्ष्याम्यहमतःपरम्
कुशद्वीपस्यविस्ताराद्द्विगुणः स तु वै स्मृतः । घृतोदकसमुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेनसंवृतः
तस्मिन्द्वीपे नगश्रेष्ठः क्रौञ्चस्तुप्रथमोगिरिः । क्रौञ्चात्परोवामनकोवामनादन्धकारकः
अन्धकारात्परश्चापि दिवावृन्नाम पर्वतः । दिवावृतः परश्चापि दिविन्दो गिरिरुच्यते
दिविन्दात्परतश्चापिपुण्डरीकोमहागिरिः । पुण्डरीकात्परश्चापिप्रोच्यतेदुन्दुभिस्वनः
एते रत्नमयाः सप्त क्रौञ्चद्वीपस्य पर्वताः । वहुवृक्षफलोपेता नानावृक्षलतावृताः ॥६४
परस्परेण द्विगुणा विष्कम्भाद्वर्षपर्वताः । वर्षाणि तत्र वक्ष्यामि नामतस्तुनिबोधत
क्रौञ्चस्यकुशलोदेशो वामनस्य मनोनुगः । मनोनुगात्परश्चोष्णस्तृतीयो देश उच्यते
उष्णात्परः प्रावरकः प्रावरादन्धकारकः । अन्धकारकदेशात्तु मुनिदेशः परः स्मृतः ॥
मुनिदेशात्परश्चैव प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः । सिद्धचारणसंकीर्णोगौरप्रायो जनः स्मृतः
तत्रापि नद्यः सप्तैव प्रतिवर्षंस्मृताः शुभाः । गौरी कुमुद्वती चैव संध्यारात्रिर्मनोजवा

ख्यातिश्च पुण्डरीका च गङ्गा सप्तविधा स्मृता ॥ ६६ ॥

तासां समुद्रगाश्चान्या नद्यो यास्तु समीपगाः ।

अनुगच्छन्ति ताः सर्वा विपुलाः सुबहूदकाः ॥ ७० ॥

क्रौञ्चद्वीपः समुद्रेण दधिमण्डोदकेन तु । आवृतः सर्वतः श्रीमान्क्रौञ्चद्वीपसमेन तु ॥
प्लक्षद्वीपादयो ह्येते समासेन प्रकीर्तिताः । तेषां निसर्गो द्वीपानामानुपूर्व्येण सर्वशः ॥
न शक्यं विस्तराद्वक्तुमपि वर्षशतैरपि । निसर्गोऽयं प्रजानां तु संहारो यश्च तासु वै

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि शाकद्वीपस्य यो विधिः ।
शाकद्वीपस्य कृत्स्नस्य यथावदिह निश्चयात् ॥
शृणुध्वं वै यथातत्त्वं ब्रुवतो मे यथार्थवत् ॥ ७४ ॥

क्रौञ्चद्वीपस्यविस्ताराद्द्विगुणस्तस्यविस्तरः । परिवार्यसमुद्रंसदधिमण्डोदकंस्थितः
तत्र पुण्या जनपदाश्चिराच्च म्रियते जनः । कुत एव तु दुर्भिक्षं जरा व्याधिभयं कुतः
तत्रापि पर्वताः शुभ्राः सप्तैव परिभूषिताः । रत्नाकरास्तथा नद्यस्तासां नामानिमेशृणु
देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते । प्रागायतः ससौवर्ण उदयो नाम पर्वतः ॥७८॥
तत्र मेघास्तु वृष्ट्यर्थं प्रभवन्ति च यान्ति च । तस्यापरेणसुमहाञ्जलधारो महागिरिः
तस्मान्नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम् । ततो वर्षं प्रभवति वर्षाकाले प्रजास्विह
तस्यापरे रैवतको यत्र नित्यं प्रतिष्ठितः । रैवती दिवि नक्षत्रं पितामहकृतो गिरिः ॥

तस्यापरेण सुमहाञ्श्यामो नाम महागिरिः ।
तस्माच्छ्यामत्वमापन्नाः प्रजाः पूर्वमिमाः किल ॥ ८२ ॥

तस्यापरेणरजतोमहानस्तोगिरिः स्मृतः । तस्यापरेणाऽऽम्बिकेयोदुर्गःशैलोहिमाचितः
आम्बिकेयात्परो रम्यः सर्वौषधिसमन्वितः । स चैव केशरीत्युक्तोयतोवायुःप्रवायति
शृणुध्वं नामतस्तानि यथावदनुपूर्वशः । उदयस्योदयं वर्षं जलदं नाम विश्रुतम् ॥
द्वितीयंजलधारस्यसुकुमारमितिस्मृतम् । रैवतस्य तु कौमारंश्यामस्य तु मणीचकम्
अस्तस्यापि शुभं वर्षं विज्ञेयं कुसुमोत्तरम् । आम्बिकेयस्य मोदाकं केसरेषुमहाद्रुमम्
द्वीपस्य परिमाणं च ह्रस्वदीर्घत्वमेव च । शाकद्वीपेनविख्यातस्तस्य मध्येवनस्पतिः

शाको नाम महावृक्षस्तस्य पूजां प्रयुञ्जते ॥ ८८ ॥

एतेन देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः । विहरन्ति रमन्ते च दृश्यमानाश्च तैः सह
तत्र पुण्या जनपदाश्चातुवर्ण्यसमन्विताः । तेषु नद्यश्च सप्तैव प्रतिवर्षं समुद्रगाः ॥

विद्धि नाम्नश्च(म्ना च) ताः सर्वा गङ्गास्ताः सप्तधा स्मृताः ॥ ९० ॥
प्रथमा सुकुमारीति गङ्गा शिवजला तथा । अनुतप्ता च नाम्नैव नदी संपरिकीर्तिता
कुमारी नामतः सिद्धा द्वितीया सा पुनः सती ।
नन्दा च पार्वती चैव तृतीया परिकीर्तिता ॥ ९२ ॥
शिवेतिका चतुर्थीस्यात्त्रिदिवा च पुनःस्मृता । इक्षुश्चपञ्चमीज्ञेयातथैव च पुनःक्रतुः
धेनुका च मृता चैव षष्ठी संपरिकीर्तिता । एताः सप्त महागङ्गाः प्रतिवर्षं शिवोदकाः
भावयन्ति जनं सर्वं शाकद्वीपनिवासिनम् ॥ ९४ ॥
अनुगच्छन्ति तास्त्वन्या नदीर्नद्यः सहस्रशः । बहूदकपरिस्रावा यतो वर्षति वासवः
तासां तु नामधेयानिपरिमाणं तथैव च । न शक्यंपरिसंख्यातुंपुण्यास्ताःसरिदुत्तमाः
ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते ॥ ९६ ॥
शांशपायन विस्तीर्णो द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः ।
नदीजलैः प्रतिच्छन्नः पर्वतैश्चाभ्रसंनिभैः ॥ ९७ ॥
सर्वधातुविचित्रैश्चमणिविद्रुमभूषितैः । पुरैश्च विविधाकारैः स्फीतैर्जनपदैरपि ॥९८॥
वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः समन्ताद्धनधान्यवान् । क्षीरोदेन समुद्रेण सर्वतः परिवारितः ॥
शाकद्वीपस्तु विस्तारात्समेन तु समन्ततः ॥ ९९ ॥
तस्मिञ्जनपदाः पुण्याःपर्वतान्तरिते शुभाः । वर्णाश्रमसमाकीर्णादेशास्तेसप्त वैस्मृताः
न संकरश्चतेष्वस्तिवर्णाश्रमकृतःक्वचित् । धर्मस्यचाव्यभीचारादेकान्तसुखिताःप्रजाः
न तेषु लोभो माया वा ईर्ष्याऽसूयाऽधृतिः कुतः ।
विपर्ययो न तेष्वस्ति एतत्स्वाभाविकं स्मृतम् ॥ १०२ ॥
करोत्पत्तिर्नतेष्वस्ति न दण्डो न च दण्डकाः । स्वधर्मेणैवधर्मज्ञास्तेरक्षन्तिपरस्परम्
एतावदेव शक्यं वै तस्मिन्द्वीपे निवासिनाम् । पुष्करं सप्तमं द्वीपंप्रवक्ष्यामिनिबोधत
पुष्करेण तु द्वीपेन वृतः क्षीरोदको बहिः । शाकद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणेनसमन्ततः
पुष्करे पर्वतः श्रीमानेक एव महाशिलः । चित्रैर्मणिमयैः शैलैःशिखरैस्तु समुच्छ्रितैः
द्वीपस्य तस्य पूर्वार्धे चित्रसानुः स्थितो महान् ।

परिमण्डलसहस्राणि विस्तीर्णः पञ्चविंशतिः ॥ १०७ ॥

ऊर्ध्वं चैव चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि समाचितः । द्वीपार्धस्य परिस्तोमःपर्वतोमानसोत्तमः
स्थितो वेलासमीपे तु नवचन्द्र इवोदितः । योजनानांसहस्राणिऊर्ध्वंपञ्चाशदुच्छ्रितः
तावदेव स विस्तीर्णः सर्वतः परिमण्डलः । स एवं द्वीपपश्चार्धे मानसः पृथिवीधरः
एक एव महासानुः संनिवेशाद्द्विधा कृतः । स्वादूदकेनोदधिना सर्वतः परिवारितः

पुष्करद्वीपविस्ताराद्विस्तीर्णोऽसौ समन्ततः ।
तस्मिन्द्वीपे स्मृतौ द्वौ तु पुण्यौ जनपदौ शुभौ ॥
अभितो मानसस्याथ पर्वतस्यानुमण्डलौ ॥ ११२ ॥

महावीतं तु यद्वर्षं बाह्यतो मानसस्य तत् । तस्यैवाभ्यन्तरे यत्त धातकीखण्डमुच्यते
दश वर्षसहस्राणितत्रजीवन्ति मानवाः । आरोग्यसुखभूयिष्ठामानसींसिद्धिमास्थिताः
सममायुश्चरूपंचतस्मिन्वर्षद्वयेस्थितम् । अधमोत्तमौ न तेष्वास्तांतुल्यास्तेरूपशीलतः

न तत्र वञ्चको नेर्ष्या न स्तेया(यं) न भयं तथा ।
निग्रहो न च दण्डोऽस्ति न लोभो न परिग्रहः ॥ ११६ ॥

सत्यानृतंनतत्रास्तिधर्माधर्मौतथैव च । वर्णाश्रमाणांवार्तावापाशुपाल्यं वणिक्क्रिया
त्रयी विद्या दण्डनीतिः शुश्रूषां शल्यमेव च । वर्षद्वये सर्वमेतत्पुष्करस्य न विद्यते ॥

न तत्र नद्यो वर्षं च शीतोष्णं वा न विद्यते ।
उद्भिज्जान्युदकान्यत्र गिरिप्रश्र(स्र)वणानि च ॥ ११६ ॥

उत्तराणां कुरूणां च तुल्यकालो जनः सदा । सर्वत्र सुसुखस्तत्र जराक्रमविवर्जितः
इत्येष धातकीखण्डे महावीते तथैव च । आनुपूर्व्याद्विधिः कृत्स्नः पुष्करस्यप्रकीर्तितः
स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः । विस्तरान्मण्डलाच्चैव पुष्करस्य तथैव च
एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः । द्वीपस्यानन्तरोयस्तु समुद्रस्तत्समस्तुसः
एवं द्वीपसमुद्राणां वृद्धिर्ज्ञेया परस्परात् । अपां चैव समुद्रेकात्समुद्रा इति संज्ञिताः

ऋषयो निवसन्त्यस्मिन्प्रजा यस्माच्चतुर्विधाः ।
तस्माद्वर्षमिति प्रोक्तं प्रजानां सुखदं तु तत् ॥ १२५ ॥

ऋष इत्येव ऋषिणो वृषः शक्तिप्रबन्धने । रतिप्रबन्धनात्सिद्धं वर्षत्वं तेन तेषु तत् ॥
शुक्लपक्षे चन्द्रवृद्धौ समुद्रः पूर्यते सदा । प्रक्षीयमाणे बहुले क्षीयतेऽस्तमिते खगे ॥
आपूर्यमाण उदधिः स्वत एवाभिपूर्यते । ततोऽपक्षीयमाणेऽपि स्वात्मनैवापकृष्यते ॥
उखास्थमग्निसंयोगाज्जलमुद्रिच्यते तथा । तथा महोदधिगतं तोयमुद्रिच्यते ततः ॥
अन्यूनाह्यतिरिक्ताश्चवर्धन्त्यापोह्रसन्तिच । उदयास्तमितेश्चेन्दोःपक्षयोःशुक्लकृष्णयोः
क्षयवृद्धिरेवमुदधेः सोमवृद्धिक्षयात्पुनः ॥ १३० ॥
दशोत्तराणि पञ्चैवअङ्गुलीनांशतानि तु । अपां वृद्धिः क्षयो दृष्टः समुद्राणां तु पर्वसु
द्विरापत्वात्स्मृताद्वीपाःसर्वतश्चोदकावृताः।उदकस्याऽऽधानंयस्मात्तस्मादुदधिरुच्यते
अपर्वाणस्तु गिरयः पर्वभिः पर्वताःस्मृताः । प्लक्षद्वीपेतु गोमेदः पर्वतस्तेन चोच्यते॥
शाल्मलिःशाल्मलद्वीपे पूज्यतेचमहाद्रुमः । कुशद्वीपे कुशस्तम्बस्तस्यनाम्ना स उच्यते
क्रौञ्चद्वीपे गिरिः क्रौञ्चो मध्ये जनपदस्य ह ।
शाकद्वीपे द्रुमः शाकस्तस्य नाम्ना स उच्यते ॥ १३५ ॥
न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे तत्र तैः स नमस्कृतः । महादेवः पूज्यते तु ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः
तस्मिन्निवसति ब्रह्मा साध्यैः सार्धं प्रजापतिः । उपासते तत्रदेवास्त्रयस्त्रिंशन्महर्षिभिः
स तत्र पूज्यते चैव देवैर्देवोत्तमोत्तमः ॥ १३७ ॥
जम्बूद्वीपात्प्रवर्तन्ते रत्नानि विविधानि च । द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां हि क्रमात्त्विह
सर्वशो ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च । आरोग्यायुःप्रमाणाद्धि द्विगुणं च समन्ततः ॥
एतस्मिन्पुष्करद्वीपे यदुक्तं वर्षकद्वयम् । गोपायति प्रजास्तत्र स्वय सज्जनमण्डिताः
ईश्वरो दण्डमुद्यम्य ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः । सविष्णुः सशिवो देवः सपिता सपितामहः
भोजनं चाप्रयत्नेन तत्र स्वयमुपस्थितम् । षड्रसं सुमहावीर्यं भुञ्जते च प्रजाः सदा
परेणपुष्करस्याथआवृत्यायः(यं)स्थितोमहान् ।स्वादूदकःसमुद्रस्तुसमन्तात्परिवेष्टितः
परेण तस्य महती दृश्यतेलोकसंस्थितिः । काञ्चनी द्विगुणाभूमिःसर्वा चैकशिलोपमा
तस्मात्परेणशैलस्तुमर्यादान्ते तु मण्डलम् । प्रकाशश्चाप्रकाशश्चलोकालोकःसउच्यते
आलोकस्तस्य चार्वाक्तु निरालोकस्ततः परम् ।

योजनानां सहस्राणि दश तस्योच्छ्रयः स्मृतः ॥ १४६ ॥
तावांश्चविस्तरस्तस्यपृथिव्यांकामगश्चसः । आलोकेलोकशब्दस्तुनिरालोकेसलोकता
लोकार्थं संमतो लोको निरालोकस्तु बाह्यतः ॥ १४७ ॥
लोकविस्तारमात्रं तु आलोकःसर्वतोबहिः । परिच्छिन्नःसमन्ताच्चउदकेनाऽऽवृतश्चसः
निरालोकात्परश्चापि अण्डमावृत्य तिष्ठति ॥ १४८ ॥
अण्डस्यान्तस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ।
भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महस्तथा ॥ १४९ ॥
जनस्तपस्तथा सत्य एतावांल्लोकसंग्रहः । एतावानेव विज्ञेयो लोकान्तश्चैव तत्परः ॥
कुम्भस्थायी भवेद्यादृक्प्रतीच्यां दिशि चन्द्रमाः ।
आदितः शुक्लपक्षस्य वपुरण्डस्य तद्द्विधम् ॥ १५१ ॥
अण्डानामीदृशानांतु कोट्योज्ञेयाःसहस्रशः । तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्चकारणस्याव्ययात्मनः
कारणैः प्राकृतैस्तत्र ह्यावृतं प्रतिसप्तभिः ॥ १५२ ॥
दशाधिक्येन चान्योन्यं धारयन्तिपरस्परम् । परस्परावृताः सर्वे उत्पन्नाश्चपरस्परात्
अण्डस्यास्य समन्तात्तुसंनिविष्टोघनोदधिः । समन्ताद्येनतोयेनधार्यमाणः स तिष्ठति
बाह्यतो घनतोयस्य तिर्यगूर्ध्वानुमण्डलम् । धार्यमाणं समन्तात्तु तिष्ठते घनतेजसा
अयोगुडनिभो वह्निः समन्तान्मण्डलाकृतिः । समन्ताद्घनवातेन धार्यमाणः स तिष्ठति
घनवातस्तथाऽऽकाशं धारयाणस्तु तिष्ठति ॥ १५६ ॥
भूतादिश्च तथाऽऽकाशं भूताद्यं चाप्यसौ महान् ।
महान्व्याप्तो ह्यनन्तेन अव्यक्तेन तु धार्यते ॥ १५७ ॥
अनन्तमपरिव्यक्तंदशधा सूक्ष्म एव च । अनन्तमकृतात्मानमनादिनिधनं च तत् ॥
अतीत्य परतो घोरमनालम्बमनामयम् । नैकयोजनसाहस्रं विप्रकृष्टं तमोवृतम् ॥
तम एव निरालोकममर्यादमदेशिकम् । देवानामप्यविदितं व्यवहारविवर्जितम् ॥
तमसोऽन्ते च विख्यातमाकाशान्ते च भास्वरम् ।
मर्यादायामतस्तस्य शिवस्याऽऽयतनं महत् ॥ १६१ ॥

त्रिदशानामगम्यं तु स्थानंदिव्यमिति श्रुतिः । महतो देवदेवस्यमर्यादायांव्यवस्थितम्
चन्द्रादित्यावतप्तास्तु ये लोकाःप्रथिता बुधैः । ते लोका इत्यविहिताजगतश्चनसंशयः
रसातलतलात्सप्तसप्तैवोद्र्ध्वतलाःक्षितौ । सप्तस्कन्धास्तथावायोःसब्रह्मसदनाद्विजाः
आपातालादूद्र्ध्वं यावदत्र पञ्चविधा गतिः । प्रमाणमेतज्जगत एष संसारसागरः ॥
अनाद्यन्ता प्रयात्येवं नैकजातिसमुद्भवा । विचित्रा जगतः सा वै प्रवृत्तिरनवस्थिता
यथैतद्भौतिकं नाम निसर्गवहुविस्तरम् । अतीन्द्रियैर्महाभागैः सिद्धैरपि न लक्ष्यते
पृथिव्यां चाग्निवायूनां महतस्तमसस्तथा । ईश्वरस्य तु देवस्यअनन्तस्यद्विजोत्तमाः॥
क्षयो वा परिमाणं वा अन्तोवाऽपि न विद्यते । अनन्त एष सर्वत्रसर्वस्थानेषुपठ्यते

तस्य चोक्तं मया पूर्वं तस्मिन्नामानुकीर्तने ॥ १६९ ॥

य एष शिवनाम्ना हि तद्वः कात्स्‍‍न्र्येन कीर्तितम् ।

स एष सर्वत्र गतः सर्वस्थानेषु पूज्यते ॥ १७० ॥

भूमौ रसातले चैव आकाशे पवनेऽनले । अर्णवेषु च सर्वेषु दिवि चैव न संशयः ॥
तथा तपसि विज्ञेय एष एव महाद्युतिः । अनेकधा विभक्ताङ्गो महायोगी महेश्वरः

सर्वलोकेषु लोकेश इज्यते वहुधा प्रभुः ॥ १७२ ॥

एवं परस्परोत्पन्नाधार्यन्ते च परस्परान् । आधाराधेयभावेन विकारास्तेविकारिणः
पृथ्व्यादयोविकारास्तेपरिच्छिन्नाः परस्परम् । परस्पराधिकाश्चैवप्रविष्टाश्च परस्परम्

यस्माद्विष्टाश्च तेऽन्योन्यं तस्मात्स्थैर्यमुपागताः ।

प्रागासन्ह्यविशेषास्तु विशेषान्योन्यवेशनात् ॥

पृथिव्याद्याश्च वाय्वन्ताः परिच्छिन्नास्त्रयस्तु ते ॥ १७५ ॥

गुणापचयसारेण परिच्छेदोविशेषतः । शेषाणां तु परिच्छेदः सौक्ष्म्यान्नेहविभाव्यते
भूतेभ्यः परतस्तेभ्योह्यालोकःपरतःस्मृतः । भूतान्यालोकआकाशेपरिच्छिन्नानिसर्वशः
पादे महति पात्राणि यथैवान्तर्गतानि तु । भवन्त्यन्योन्यहीनानिपरस्परसमाश्रयात्

तथा ह्यालोक आकाशे भेदास्त्वन्तर्गता मताः ॥ १७८ ॥

कृत्स्नान्येतानिचत्वारिअन्योन्यस्याधिकानितु। यावदेतानिभूतानितावदुत्पत्तिरुच्यते

जन्तूनामिह संस्कारोभूतेष्वन्तर्गतोमतः। प्रत्याख्यांय च भूतानिकार्योत्पत्तिर्नविद्यते
तस्मात्परिमिता भेदाः स्मृताः कार्यात्मकास्तु ते।
करणात्मकास्तथैव स्युर्भेदा ये महदादयः ॥ १८० ॥
इत्येष संनिवेशो वो मयाप्रोक्तोविभागशः। सप्तद्वीपसमुद्रायायाथातथ्येन वै द्विजाः
विस्तारान्मण्डलाच्चैव प्रसंख्यातेन चैव हि। वैश्वरूपं प्रधानस्य परिमाणैकदेशिकम्
अधिष्ठानं भगवतो यस्य सर्वमिदं जगत्। एवं भूतगणाः सप्त संनिविष्टाः परस्परम्
एतावान्संनिवेशस्तु मया शक्यः प्रभाषितुम्। एतावदेव श्रोतव्यं संनिवेशेतुपार्थिव
सप्त प्रकृतयस्त्वेता धारयन्ति परस्परम्। तास्वल्पपरिमाणेन प्रसंख्यातुमिहोच्यते ॥
असंख्येयाः प्रकृतयस्तिर्यगूर्ध्वमधश्च याः ॥ १८५ ॥
तारकासंनिवेशश्च यावद्दिव्यं तु मण्डलम्। मर्यादासंनिवेशस्तु भूमेस्तदनुमण्डलम्
अतः परं प्रवक्ष्यमि पृथिव्यां वै द्विजोत्तमाः ॥ १८६ ॥
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे भुवनविन्यासो
नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अतलादीनां वर्णनम्

सूत उवाच

अधः प्रमाणमूर्ध्वं च वर्ण्यमानंनिबोधत। पृथिवी वायुराकाशमापोज्योतिश्चपञ्चमम्
अनन्तधातवो ह्येते व्यापकास्तु प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥
जननी सर्वभूतानां सर्वभूतधरा धरा। नानाजनपदाकीर्णा नानाधिष्ठानपत्तना ॥२॥
नानानदनदीशैला नैकजातिसमाकुला। अनन्ता गीयते देवी पृथिवी बहुविस्तरा

नदीनदसमुद्रस्थास्तथाक्षुद्राश्रयाःस्थिताः । पर्वताकाशसंस्थाश्चअन्तर्भूमिगताश्च याः आपोऽनन्ताश्चविज्ञेयास्तथाऽग्निःसार्वलौकिकः ।अनन्तःपठ्यतेचैवव्यापकःसर्वसंभवः तथाऽऽकाशमनालम्बंरम्यंनानाश्रयं स्मृतम् । अनन्तंप्रथितंसर्ववायुश्चाऽऽकाशसंभवः आपः पृथिव्यामुदके पृथिवी चोपरि स्थिता । आकाशश्चापरमधः पुनर्भूमिःपुनर्जलम् एवमन्तम(न्तो ह्य)नन्तस्यभौतिकस्य न विद्यते । पुरा सुरैरभिहितंनिश्चितंतुनिबोधत भूमिर्जलमथाऽऽकाशमिति ज्ञेयापरम्परा । स्थितिरेषा तु विज्ञेयासप्तमेऽस्मिन्रसातले दशयोजनसाहस्रमेकभौमं रसातलम् । साधुभिः परिविख्यातमेकैकं बहुविस्तरम् ॥ प्रथममतलं चैव सुतलं तु ततः परम् । ततः परतरं विद्याद्वितलं बहुविस्तरम् ॥११॥ ततो गभस्तलं नाम परतश्च महातलम् । श्रीतलं च ततः प्राऽऽहुः पातालंसप्तमंस्मृतम् कृष्णभौमं च प्रथमंभूमिभागं च कीर्तितम् । पाण्डुभौमंद्वितीयं तु तृतीयंरक्तमृत्तिकम् पीतभौमं चतुर्थं तु पञ्चमं शर्करातलम् । षष्ठं शिलामयं चैव सौवर्णं सप्तमं तलम् ॥ प्रथमे तु तले ख्यातमसुरेन्द्रस्य मन्दिरम् । नमुचेरिन्द्रशत्रोर्हि महानादस्य चालयम् पुरंच शङ्कुकर्णस्य कबन्धस्य च मन्दिरम् । निष्कुलादस्य च पुरं प्रहृष्टजनसंकुलम् ॥ राक्षसस्य च भीमस्य शूलदन्तस्यचाऽऽलयम् । लोहिताक्षकलिङ्गानांनगरंश्वापदस्यतु धनंजयस्य च पुरं माहेन्द्रस्य महात्मनः । कालियस्य च नागस्य नगरं कलसस्य च एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् । तले ज्ञेयानि प्रथमे कृष्णभौमे न संशयः ॥ द्वियीयेऽपि तले विप्रा दैत्येन्द्रस्यसुवक्षसः । महाजम्भस्य च तथा नगरं प्रथमस्य तु हयग्रीवस्य कृष्णस्यनिकुम्भस्य च मन्दिरम् । शङ्खाख्येयस्य च पुरं नगरंगोमुखस्यच राक्षसस्य च नीलस्यमेघस्यक्रथनस्य च । पुरं च कुकुपादस्यमहोष्णीषस्यचाऽऽलयम् कम्बलस्य च नागस्य पुरमश्वतरस्य च । कद्रुपुत्रस्य च पुरं तक्षकस्य महात्मनः ॥ एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् । द्वितीयेऽस्मिंस्तले विप्राःपाण्डुभौमेनसंशयः तृतीये तु तले ख्यातं प्रह्लादस्य महात्मनः । अनुह्लादस्य च पुरं दैत्येन्द्रस्य महात्मनः तारकाख्यस्य च पुरं पुरं त्रिशिरसस्तथा । शिशुमारस्य च पुरं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ॥ च्यवनस्य च विज्ञेयंराक्षसस्य च मन्दिरम् । राक्षसेन्द्रस्य च पुरंकुम्भिलस्यखरस्यच

विराधस्य च क्रूरस्य पुरमुल्कामुखस्य च। हेमकस्य च नागस्य तथापाण्डुरकस्यच
मणिमन्त्रस्य च पुरंकपिलस्य च मन्दिरम्। नन्दस्यचोरगपतेर्विशालस्य च मन्दिरम्
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम्। तृतीयेऽस्मिंस्तले विप्राःपीतभौमे न संशयः
चतुर्थे दैत्यसिंहस्य कालनेमेर्महात्मनः। गजकर्णस्य च पुरं नगरं कुञ्जरस्य च ॥३१॥
राक्षसेन्द्रस्यचपुरं सुमालेर्बहुविस्तरम्। मुञ्जस्यलोकनाथस्यवृकवक्त्रस्य चाऽऽलयम्
बहुयोजनसाहस्रं बहुपक्षिसमाकुलम्। नगरं वैनतेयस्य चतुर्थेऽस्मिन्रसातले ॥३३॥
पञ्चमे शर्कराभौमे बहुयोजनविस्तृते। विरोचनस्य नगरं दैत्यसिंहस्य धीमतः ॥३४

वैदूर्यस्याग्निजिह्वस्य हिरण्याक्षस्य चाऽऽलयम्।
पुरं च विद्युज्जिह्वस्य राक्षसस्य च धीमतः ॥ ३५ ॥

महामेघस्य च पुरंराक्षसेन्द्रस्य शालिनः। कर्मारस्य च नागस्यस्वस्तिकस्यजयस्यच
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम्। पञ्चमेऽपि तथा ज्ञेयं शर्करानिलये सदा ॥
षष्ठेतले दैत्यपतेः केसरेर्नगरोत्तमम्। सुपर्वणः पुलोम्नश्च नगरं महिषस्य च ॥

राक्षसेन्द्रस्य च पुरमुत्क्रोशस्य महात्मनः ॥ ३८ ॥
तत्राऽऽस्ते सुरसापुत्रः शतशीर्षो मुदा युतः।
कश्यपस्य सुतः श्रीमान्वासुकिर्नाम नागराट् ॥ ३९ ॥

एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम्। षष्ठे तलेऽस्मिन्विख्याते शिलाभौमेरसातले
सप्तमे तु तले ज्ञेयं पाताले सर्वपश्चिमे। पुरं बलेः प्रमुदितं नरनारीसमाकुलम् ॥
असुराशीविषैः पूर्णमुद्धृतैर्देवशत्रुभिः। मुचुकुन्दस्य दैत्यस्य तत्र वै नगरं महत् ॥४२
अनेकैर्दितिपुत्राणां समुदीर्णैर्महापुरैः। तथैव नागनगरैर्ऋद्धिमद्भिः सहस्रशः ॥४३॥
दैत्यानां दानवानां च समुदीर्णैर्महापुरैः। उदीर्णैराक्षसावासैरनेकैश्च समाकुलम् ॥

पातालान्ते च विप्रेन्द्रा विस्तीर्णे बहुयोजने।
आस्ते रक्तारविन्दाक्षो महात्मा ह्यजरामरः ॥ ४५ ॥

धौतशङ्खोदरवपुर्नीलवासा महाभुजः। विशालभोगो द्युतिमांश्चित्रमालाधरो बली ॥
रुक्मश्रृङ्गावदातेन दीप्तास्येन विराजता। फणामुखसहस्रेण शोभते वै स कुण्डली ॥

स जिह्वामालया देवों लोलज्वालानलार्चिषा ।
ज्वालामालापरिक्षिप्तः कैलास इव लक्ष्यते ॥ ४८ ॥

स तु नेत्रसहस्रेण द्विगुणेन विराजता । वालसूर्याभिताम्रेण शोभते स्निग्धमण्डलः ॥
तस्य कुन्देन्दुवर्णस्य अक्षमाला विराजते । तरुणादित्यमालेव श्वेतपर्वतमूर्धनि ॥
जटाकरालो द्युतिमांल्लक्ष्यते शयनासने । विस्तीर्ण इव मेदिन्यां सहस्रशिखरोगिरिः ॥
महाभोगैर्महाभागैर्महानागैर्महाबलैः । उपास्यते महातेजा महानागपतिः स्वयम् ॥
स राजा सर्वनागानांशेषोनाम महाद्युतिः । सा वैष्णवीह्यहितनुर्मर्यादायांव्यवस्थिता
सप्तैवमेते कथिता व्यवहार्या रसातलाः । देवासुरमहानागराक्षसाध्युषिताः सदा ॥
अतः परमनालोक्यमगम्यं सिद्धसाधुभिः । देवानामप्यविदितं व्यवहारविवर्जितम्
पृथिव्यग्न्यम्बुवायूनां नभसश्च द्विजोत्तमाः । महत्त्वमेवमृषिभिर्वर्ण्यते नात्र संशयः ॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम् । सूर्याचन्द्रमसावेतौ भ्रमन्तौ यावदेव तु

प्रकाशतः स्वभाभिस्तौ मण्डलाभ्यां समास्थितौ ॥ ५७ ॥

सप्तानां च समुद्राणांद्वीपानां तु स विस्तरः विस्तरार्धंपृथिव्यास्तुभवेदन्यत्रबाह्यतः
पर्यासपारिमाण्यं तु चन्द्रादित्यौप्रकाशतः । पर्यासपारिमाण्येनभूमेस्तुल्यंदिवंस्मृतम्

अवति त्रीनिमांल्लोकान्यस्मात्सूर्यः परिभ्रमन् ।
अवधातुः प्रकाशाख्यो ह्यवनात्स रविः स्मृतः ॥ ६० ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्ययोः । महितत्वान्महीशब्दो ह्यस्मिन्वर्षेनिपात्यते
अस्य भारतवर्षस्यविष्कम्भं तु सुविस्तरम् । मण्डलंभास्करस्याथयोजनानांनिबोधत
नवयोजनसाहस्रोविस्तारोभास्करस्यतु। विस्तारात्त्रिगुणश्चास्यपरिणाहोऽथमण्डलम्

विष्कम्भो मण्डलस्यैव भास्कराद् द्विगुणः शशी ॥ ६३ ॥

अतः पृथिव्यांवक्ष्यामिप्रमाणं योजनैः सह । सप्तद्वीपसमुद्रायाविस्तारोमण्डलंचयत
इत्येतदिह संख्यातं पुराणं परिमाणतः । तद्वक्ष्यामि प्रसंख्याय सांप्रतैरभिमानिभिः
अभिमानिव्यतीता ये तुल्यास्ते सांप्रतैरिह । देवा ये वै ह्यतीतास्ते रूपैर्नामभिरेव च
तस्मात्तु सांप्रतैर्देवैर्वक्ष्यामि वसुधातलम् । दिवस्तु संनिवेशौ वै सांप्रतैरेवकृत्स्नशः

शतार्धकोटिविस्तारा पृथिवीकृत्स्नतः स्मृता । तस्या बाधप्रमाणेनमेरोर्वैचातुरन्तरम्
पृथिव्याबाध्रविस्तारोयोजनाग्रात्प्रकीर्तितः । मेरुमध्यात्प्रतिदिशंकोटिरेकातुसास्मृता
तथा शतसहस्राणि एकोननवतिः पुनः । पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्याबाधविस्तरः

पृथिव्या विस्तरं कृत्स्नं योजनैस्तन्निबोधत ।
तिस्रः कोट्यस्तु विस्तारः संख्यातः स चतुर्दिशम् ॥ ७१ ॥

तथा शतसहस्राणामेकोनाशीतिरुच्यते । सप्तद्वीपसमुद्रायाः पृथिव्यास्त्वेष विस्तरः
विस्तरात्त्रिगुणंचैवपृथिव्यन्तस्यमण्डलम् ।गणितंयोजनाग्रंतुकोट्यस्त्वेकादशस्मृताः
तथा शतसहस्रं तु सप्तत्रिंशाधिकानि तु । इत्येतद्वै प्रसंख्यातं पृथिव्यन्तस्य मण्डलम्
तारकासंनिवेशस्य दिवि यावद्धि मण्डलम् । पर्यायःसंनिवेशस्यभूमेस्तावत्तुमण्डलम्
पर्यासपारिमाण्येन भूमेस्तुल्यंदिवं स्मृतम् । सप्तानामपिलोकानामेतन्मानंप्रकीर्तितम्
पर्यासपारिमाण्येन मण्डलानुगतेन च । उपर्युपरि लोकानां छत्रवत्परिमण्डलम् ॥
संस्थितिर्विहिता सर्वा येषु तिष्ठन्ति जन्तवः । एतदण्डकटाहस्यप्रमाणंपरिकीर्तितम्
अण्डस्यान्तस्त्विमेलोकाःसप्तद्वीपा च मेदिनी ।भूर्लोकश्चभुवश्चैवतृतीयःस्वरितिस्मृतः

महर्लोको जनश्चैव तपः सत्यश्च सप्तमः ॥ ७६ ॥
एते सप्त कृता लोकाश्छत्राकारा व्यवस्थिताः ।
स्वकैरावरणैः सूक्ष्मैर्धार्यमाणाः पृथक्पृथक् ॥ ८० ॥

दशभागाधिकाभिश्च ताभिःप्रकृतिभिर्बहिः । धार्यमाणा विशेषैश्चसमुत्पन्नैः परस्परम्
अस्याण्डस्य समन्ताच्च संनिविष्टो घनोदधिः । पृथिवीमण्डलंकृत्स्नंघनतोयेनधार्यते
घनोदधिपरेणाथ धार्यते घनतेजसा । वाह्यतो घनतेजस्तु तिर्यगूर्ध्वं तु मण्डलम् ॥
समन्ताद्घनवातेन धार्यमाणं प्रतिष्ठितम् । घनवातात्तथाऽऽकाशमाकाशं च महात्मना
भूतादिना वृतं सर्वं भूतादिर्महता वृतः । वृतो महाननन्तेन प्रधानेनाव्ययात्मना ॥
पुराणि लोकपालानां प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् । ज्योतिर्गणप्रचारस्यप्रमाणंपरिवक्ष्यते

मेरोः प्राच्यां दिशि तथा मानसस्यैव मूर्धनि ।
वस्वोकसारा माहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता ॥ ८७ ॥

दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानसस्यैव मूर्धनि। वैवस्वतो निवसति यमः संयमने पुरे ॥ ८८ ॥
प्रतीच्यां तु पुनर्मेरोर्मानसस्यैव मूर्धनि। सुखा नाम पुरी रम्यावरुणस्याथधीमतः ॥
दिश्युत्तरस्यां मेरोस्तुमानसस्यैवमूर्धनि। तुल्यामाहेन्द्रपुर्या तु सोमस्यापिविभावरी
मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्दिशम्। स्थिता धर्मव्यवस्थायैलोकसंरक्षणायच
लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतो दक्षिणायने। काष्ठागतस्य सूर्यस्य गतिर्या तां निबोधत
दक्षिणेप्रक्रमे सूर्यः क्षिप्तेषुरिव सर्पति। ज्योतिषां चक्रमादाय सततं परिगच्छति ॥
मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः। वैवस्वते संयमने उदयस्तत्र उच्यते ॥
सुखायामर्धरात्रं च मध्यगः स्याद्रविर्यदा। सुखायामथवारुण्यामुत्तिष्ठन्स तु दृश्यते
विभायामर्धरात्रं स्यान्माहेन्द्र्यामस्तमेति च। तदा दक्षिणपूर्वेषामपराह्णोविधीयते ॥
दक्षिणापरदेश्यानां पूर्वाह्णः परिकीर्त्यते। तेषामपररात्रं च ये जना उत्तरापथे ॥
देशा उत्तरपूर्वा ये पूर्वरात्रं तु प्रान्प्रति। एवमेवोत्तरेष्वर्को भवनेषु विराजते ॥९८॥
सुखायामथ वारुण्यां मध्याह्नेचार्यमा यदा। विभावायांसोमपुर्यामुत्तिष्ठतिविभावसुः
रात्र्यर्धं चामरावत्यामस्तमेतियमस्य च। सोमपुर्यांविभायां तु मध्याह्नेस्याद्दिवाकरः
महेन्द्रस्यामरावत्यामुत्तिष्ठति यदा रविः। अर्धरात्रं संयमने वारुण्यामस्तमेति च ॥
स शीघ्रमेति पर्येति भास्करोऽलातचक्रवत्। भ्रमन्वै भ्रममाणानि ऋक्षाणिगगनेरविः
एवं चतुर्षु द्वीपेषु दक्षिणान्तेन सर्पति। उदयास्तमनेनासावुत्तिष्ठति पुनः पुनः ॥१०२
पूर्वाह्णेचापराह्णे तु द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः। तपत्येकं तु मध्याह्नेतैरेव तु सरश्मिभिः
उदितोवर्धमानाभिरामध्याह्नंतपन्रविः। अतः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति ॥
उदयास्तमयाभ्यां हि स्मृतेपूर्वापरेदिशौ। यावत्पुरस्तात्तपतितावत्पृष्ठे तु पार्श्वयोः
यत्रोद्यन्दृश्यते सूर्यस्तेषां स उदयः स्मृतः। यत्र प्रणाशमायाति तेषामस्तः स उच्यते
सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्तु दक्षिणे। विदूरभावादर्कस्य भूमेर्लेखावृतस्य च ॥
ह्रियन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ॥ १०८ ॥
ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं भास्करस्य च उच्छ्रयस्य प्रमाणेन ज्ञेयमस्तमनोदयम् ॥१०९
शुक्लच्छायोऽग्निरापश्चकृष्णच्छायाचमोदिनी। विदूरभावादर्कस्य उद्यतस्यविरश्मिता

रक्ताभावो विरश्मित्वाद्रक्तत्वाच्चाप्यनुष्णता ॥ ११० ॥
लेखयाऽवस्थितः सूर्यो यत्र यत्र तु दृश्यते । ऊर्ध्वं गतः सहस्रं तु योजनानांसदृश्यते
प्रभा हि सौरीपादेनअस्तंगच्छतिभास्करे । अग्निमाविशतेरात्रौतस्माद्दूरात्प्रकाशते
उदितस्तु पुनः सूर्यो ह्यस्तमाग्नेयमाविशत् । संयुक्तोवह्निना सूर्यस्ततः स तपते दिवा
प्राकाश्यं च तथोष्णं च सूर्याग्नेयौ चतेजसी । परस्परानुप्रवेशादाप्यायेतेदिवानिशम्
उत्तरे चैव भूम्यर्धे तथा तस्मिंश्च दक्षिणे । उत्तिष्ठन्ति तथा सूर्ये रात्रिराविशते त्वपः
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ॥ ११५ ॥
अस्तं याति पुनः सूर्येदिनं वै प्रविशत्यपः । तस्माच्छुक्लाभवन्त्यापोनक्तमह्नःप्रवेशनात्
एतेन क्रमयोगेन(ण)भूम्यर्धे दक्षिणोत्तरे । उदयास्तमनेऽर्कस्य अहोरात्रं विशत्यपः
दिनं सूर्यप्रकाशाख्यं तामसी रात्रिरुच्यते ।
तस्माद्व्यवस्थिता रात्रिः सूर्यावेक्ष्यमहः स्मृतम् ॥ ११८ ॥
एवं पुष्करमध्येन यदा सर्पति भास्करः । त्र्यंशांशकं तु मेदिन्या मुहूर्तेनैव गच्छति
योजनाग्रान्मुहूर्तस्य इमां संख्यां निबोधत । पूर्णं शतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु सा स्मृता
पञ्चाशत्तु तथाऽन्यानिसहस्राण्यधिकानि तु । मौहूर्तिकीगतिर्ह्येषासूर्यस्य तु विधीयते
एतेन गतियोगेनयदाकाष्ठां तु दक्षिणाम् । पर्यागच्छेत्तदाऽऽदित्योमाघेकाष्ठान्तमेवहि
सर्पते दक्षिणायां तु काष्ठायांतन्निबोधत । नव कोट्यःप्रसंख्यातायोजनैःपरिमण्डलम्
तथा शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च पञ्च च । अहोरात्रात्पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते ॥
दक्षिणाद्विनिवृत्तोऽसौविषुवस्थोयदा रविः । क्षीरोदस्यसमुद्रस्यउत्तरान्तोदितश्चरन्
मण्डलं विषुवद्यापि ? योजनैस्तन्निबोधत ।
तिस्रः कोट्यस्तु विस्तीर्णा विषुवद्यापि ? सा स्मृता ॥ १२६ ॥
तथा शतसहस्राणामशीत्येकाधिका पुनः । श्रवणे चोत्तरां काष्ठां चित्रभानुर्यदाभवेत्
शाकद्वीपस्य षष्ठस्य उत्तरान्तोदितश्चरन् ॥ १२७ ॥
उत्तरायां च काष्ठायां प्रमाणं मण्डलस्य च ।
योजनाग्रात्प्रसंख्याता कोटिरेका तु सा द्विजैः ॥ १२८ ॥

अशीतिर्नियुतानीह योजनानां तथैव च। अष्टपञ्चाशतं चैव योजनान्यधिकानि तु ॥
नागवीथ्युत्तरा वीथीअजवीथो च दक्षिणा। मूलंचैवतथाऽऽषाढेह्यजवीथ्युदयास्त्रयः
अभिजित्पूर्वतः स्वातिर्नागवीथ्युदयास्त्रयः ॥१३०॥
काष्ठयोरन्तरं यच्च तद्वक्ष्ये योजनैः पुनः। एतच्छतसहस्राणामेकत्रिंशोत्तरं शतम् ॥
त्रयस्त्रिंशाधिकाश्चान्ये त्रयस्त्रिंशच्च योजनैः। काष्ठयोरन्तरं ह्येतद्योजनाग्रात्प्रतिष्ठितम्
काष्ठयोर्लेखयोश्चैव अन्तरे दक्षिणोत्तरे। ते तु वक्ष्यामि संख्याय योजनैस्तन्निबोधत
एकैकमन्तरं तस्या नियुतान्येकसप्ततिः। सहस्राण्यतिरिक्ताश्च ततोऽन्या पञ्चसप्ततिः
लेखयोः काष्ठयोश्चैवबाह्याभ्यन्तरयोःस्मृतम्। अभ्यन्तरं तु पर्यैतिमण्डलान्युत्तरायणे
बाह्यतो दक्षिणे चैव सततं तु यथाक्रमम्। मण्डलानां शतं पूर्णमशीत्यधिकमुत्तरम्
चरते दक्षिणे चापि तावदेव विभावसुः। प्रमाणं मण्डलस्याथ योजनाग्रान्निबोधत
एकविंशद्योजनानां सहस्राणि समासतः। शते द्वे पुनरप्यन्ये योजनानां प्रकीर्तिते ॥
एकविंशतिभिश्चैव योजनैरधिकैर्हि ते। एतत्प्रमाणमाख्यातं योजनैर्मण्डलं हि तत्
विष्कम्भो मण्डलस्यैव तिर्यक्स तु विधीयते।
प्रत्यहं चरते तानि सूर्यो वै मण्डलक्रमम् ॥ १४० ॥
कुलालचक्रपर्यन्तो यथा शीघ्रं निवर्तते। दक्षिणे प्रक्रमे सूर्यस्तथा शीघ्रं निवर्तते ॥
तस्मात्प्रकृष्टां भूमिं च कालेनाल्पेन गच्छति। सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रंमुहूर्तैर्दक्षिणोत्तरे
त्रयोदशार्धमृक्षाणामह्नाऽनुचरते रविः। मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥
कुलालचक्रमध्यस्तु यथा मन्दं प्रसर्पति। तथोदगयने सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः ॥
त्रयोदशार्धमर्धेन ऋक्षाणां चरते रविः। तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिकल्पां निगच्छति
अष्टादशमुहूर्तैस्तु उत्तरायणपश्चिमम्। अहर्भवति तच्चापि चरते मन्दविक्रमः ॥१४६॥
त्रयोदशार्धमर्धेन ऋक्षाणां चरते रविः। मुहूर्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥
ततो मन्दतरं ताभ्यां चक्रं भ्रमति वै यथा।
मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै तथा ॥ १४८ ॥
त्रिंशन्मुहूर्तानेवाऽऽहुरहोरात्रं ध्रुवो भ्रमन्। उभयोःकाष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानिसः

कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्तते। ध्रुवस्तथा हि विज्ञेयस्तत्रैव परिवर्तते॥
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मण्डलानि तु।
दिवा नक्तं च सूर्यस्य मन्दा शीघ्रा च वै गतिः॥ १५१॥
उत्तरे प्रक्रमे त्विन्दोर्दिवा मन्दा गतिः स्मृता। तथैव च पुनर्नक्तंशीघ्रासूर्यस्य वैगतिः
दक्षिणे प्रक्रमे चैवदिवा शीघ्रं विधीयते। गतिः सूर्यस्य नक्तं वै मन्दाचापितथास्मृता
एवं गतिविशेषेण विभजन्रात्र्यहानि तु। तथा विचरते मार्गं समेन विषमेण च॥
लोकालोके स्थिता ये ते लोकपालाश्चतुर्दिशम्। अगस्त्यश्चरतेतेषामुपरिष्टाज्जवेन तु
भजन्नसावहोरात्रमेवं गतिविशेषणैः॥१५५॥
दक्षिणे नागवीथ्यायांलोकालोकस्यचोत्तरम्। लोकसंतारकोह्येषवैश्वरनपथाद्बहिः
पृष्ठे यावत्प्रभा सौरी पुरस्तात्संप्रकाशते। पार्श्वयोःपृष्ठतस्तावल्लोकालोकस्यसर्वतः
योजनानां सहस्राणिदशोर्ध्वं तूच्छ्रितो गिरिः। प्रकाशश्चाप्रकाशश्चसर्वतःपरिमण्डलः
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह। अभ्यन्तरं प्रकाशस्तेलोकालोकस्य वै गिरेः
एतावानेवलोकस्तु निरालोकस्त्वतःपरम्। लोकालोकएकधातुनिरालोकस्त्वनेकधा
लोकालोकं तु संधत्ते यस्मात्सूर्यः परिग्रहम्।
तस्मात्संध्येति तामाहुरुषाव्युष्ट्योर्यदन्तरम्॥
उषा रात्रिः स्मृता विप्रैर्व्युष्टिश्चापि त्वहः स्तृतम्॥१६१॥
सूर्यं हि ग्रसमानानांसंध्याकालेहिरक्षसाम्। प्रजापतिनियोगेनशापस्तेषांदुरात्मनाम्
अक्षयत्वं च देहस्य प्रापिता मरणं तथा॥१६२॥
तिस्रः कोट्यस्तु विख्याता मन्देहानामराक्षसाः। प्रार्थयन्तिसहस्रांशुमुदयन्तंदिनेदिने
तापयन्तो दुरात्मानः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम्॥१६३॥
अथ सूर्यस्यतेषां च युद्धमासीत्सुदारुणम्। ततो ब्रह्मा च देवाश्चब्राह्मणाश्चैवसत्तमाः
संध्येति समुपासन्तः क्षेपयन्ति महाजलम्॥१६४॥
ओंकारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम्। तेन दह्यन्ति ते दैत्या वज्रभूतेनवारिणा
अग्निहोत्रेहूयमानेसमन्ताद्ब्राह्मणाहुतिः। सूर्यज्योतिः सहस्रांशुःसूर्योदीप्यतिभास्करः

ततः पुनर्महातेजा महाद्युतिपराक्रमः । योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वमुत्तिष्ठते शतम् ॥
ततः प्रयाति भगवान्ब्राह्मणैः परिवारितः । वालखिल्यैश्च मुनिभिः कृतार्थैः समरीचिभिः

काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत्कलान्तम् ।
त्रिंशत्कलाश्चैव भवेन्मुहूर्तस्तैस्त्रिंशता राञ्यहनी समेते ॥१६६॥

ह्रासवृद्धी त्वहर्भागैर्दिवसानां यथाक्रमम् । संध्या मुहूर्तमानं तु ह्रासे वृद्धौ समा स्मृता

लेखाप्रभृत्यथाऽऽदित्ये त्रिमुहूर्तागते तु वै ।
प्रातस्तनः स्मृतः कालो भागस्त्वह्नः स पञ्चमः ॥ १७१ ॥
तस्मात्प्रातस्तनात्कालात्त्रिमुहूर्तस्तु संगवः ।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्तु तस्मात्कालाच्च संगवात् ॥१७२॥

तस्मान्मध्यंदिनात्कालादपराह्ण इति स्मृतः । त्रय एव मुहूर्तास्तु तस्मात्कालाच्च मध्यमात्
अपराह्णे व्यतीपाते कालः सायाह्न उच्यते । दशपञ्चमुहूर्ताह्नै मुहूर्तास्त्रय एव च ॥
दशपञ्चमुहूर्तं वै अहर्विषुवति स्मृतम् । दशपञ्चमुहूर्ताह्नै रात्रिंदिवमिति स्मृतम् ॥
वर्धते ह्रसते चैव अयने दक्षिणोत्तरे । अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिस्तु ग्रसते त्वहः ॥
शरद्वसन्तयोर्मध्ये विषुवं तद्विभाव्यते । अहोरात्रं कलाश्चैव सप्त सोमः समश्नुते ॥
तथा पञ्चदशाहानि पक्ष इत्यभिधीयते । द्वौ पक्षौ च भवेन्मासो द्वौ मासावन्तरावृतुः ?

ऋतुत्रयमयनं स्याद्द्वेऽयने वर्षमुच्यते ॥१७८॥

निमेषादिकृतः कालः काष्ठया दश पञ्च च । कलायास्त्रिंशतः काष्ठामात्राशीतिद्वयात्मिका
शतघ्नैकोनकास्त्रिंशन्मात्रात्रिंशत्षडुत्तरा । द्विषष्टिभावत्रयोविंशन्मात्रायांचचलाभवेत्
चत्वारिंशत्सहस्राणि शतान्यष्टौ च विद्युतिः । सप्तति चापितत्रैव नवतिंविद्धिनिश्चये
चत्वार्येव शतान्याहुर्विद्युतौ वैधसंयुगे । चरांशो ह्येषु विज्ञेयो नालिका चात्रकारणम्
संवत्सरादयः पञ्च चतुर्मानविकल्पिताः । निश्चयः सर्वकालस्य युगमित्यभिधीयते
संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः । इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सरः ॥

पञ्चमो वत्सरस्तेषां कालस्तु परिसंज्ञितः ॥१८४॥

विंशं शतं भवेत्पूर्णं पर्वणां तु रवेर्युगम् । एतान्यष्टादशस्त्रि(त्रिं)शदुदयो भास्करस्य च

ऋतवस्त्रिंशतः सौरा अयनानि दशैव तु। पञ्चत्रिंशच्छतं चापि षष्टिर्मासाश्चभास्करः
त्रिंशदेव त्वहोरात्रं स तु मासश्च भास्करः। एकषष्टिस्त्वहोरात्रा दनुरेकोविभाव्यते
अह्नां तु त्र्यधिकाशीतिःशतंचाप्यधिकं भवेत्। मानं तच्चित्रभानोस्तुविज्ञेयंभुवनस्यतु
सौरसौम्यं तु विज्ञेयंनाक्षत्रंसावनं तथा। नामान्येतानिचत्वारि यैः पुराणंविभाव्यते
श्वेतस्योत्तरतश्चैव शृङ्गवान्नाम पर्वतः। त्रीणि तस्य तु शृङ्गाणिस्पृशन्तीवनभस्तलम्
तैश्चापि शृङ्गवान्नाम सर्वतश्चैव विश्रुतः। एकमार्गश्च विस्तारोविष्कम्भश्चापिकीर्तितः
तस्य वै पूर्वतः शृङ्गं मध्यमं तद्धिरण्मयम्। दक्षिणं राजतंचैव शृङ्गं तु स्फटिकप्रभम्
सर्वरत्नमयं चैकं शृङ्गमुत्तरमुत्तमम्। एवं कूटैस्त्रिभिः शैलः शृङ्गवानिति विश्रुतः॥
यत्तद्विषुवतं शृङ्गं तदर्कः प्रतिपद्यते। शरद्वसन्तयोर्मध्ये मध्यमां गतिमास्थितः॥

अहस्तुल्यामथो रात्रिं करोति तिमिरापहः॥१६४॥

हरिताश्च हया दिव्यास्तेनियुक्तामहारथे। अनुलिप्ता इवाऽऽभान्तिपद्मरक्तैर्गभस्तिभिः
मेषान्ते च तुलान्ते च भास्करोदयतः स्मृताः। मुहूर्ता दशपञ्चैवअहोरात्रिश्चतावती
कृत्तिकानां यदा सूर्यः प्रथमांशगतो भवेत्। विशाखानांतथा ज्ञेयश्चतुर्थांशेनिशाकरः

विशाखायां यदा सूर्यश्चरतेंऽशं तृतीयकम्।
तदा चन्द्रं विजानीयात्कृत्तिकाशिरसि स्थितम्॥ १६८॥

विषुवन्तं तदा विद्यादेवमाहुर्महर्षयः। सूर्येण विषुवं विद्यात्कालं सोमेन लक्षयेत्॥
समा रात्रिरहश्चैव यदा तद्विषुवद्भवेत्। तदा दानानि देयानि पितृभ्यो विषुवत्यपि

ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण मुखमेतत्तु दैवतम्॥ २००॥

ऊनरात्राधिमासौ च कलाकाष्ठामुहूर्तकाः। पौर्णमासी तथाज्ञेया अमावास्यातथैवच

सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा॥२०१॥

तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च शुक्रः शुचिश्चायनमुत्तरं स्यात्।
नभो नभस्योऽथ इषुः सहोर्जः सहःसहस्याविति दक्षिणं स्यात्॥२०२॥

संवत्सरास्ततोज्ञेयाःपञ्चाब्दाब्रह्मणःसुताः। तस्मात्तुऋतवोज्ञेयाऋतवोह्यन्तराः स्मृताः
तस्मादनुमुखा ज्ञेया अमावास्याऽस्य पर्वणः। तस्मात्तु विषुवं ज्ञेयं पितृदेवहितं सदा

एवं ज्ञात्वा न मुह्येतद्दैवे पित्र्ये च मानवः । तस्मात्स्मृतंप्रजानां वै विषुवत्सर्वगंसदा
आलोकान्तः स्मृतो लोको लोकान्तो लोक उच्यते ।
लोकपालाः स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यतः ॥२०६॥
चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसंप्लवात् । सुधामाचैव वैराजःकर्दमः शङ्खपास्तथा
हिरण्यलोमा पर्जन्यः केतुमान्रजतश्च यः ॥२०७॥
निर्द्वंद्वा निरभीमाना निस्तन्त्रा निष्परिग्रहाः ।
लोकपालाः स्थिता ह्येते लोकालोके चतुर्दिशम् ॥२०८॥
उत्तरं यदगस्त्यस्यअजवीथ्याश्च दक्षिणम् । पितृयाणः स वै पन्थावैश्वानरपथाद्बहिः
तत्राऽऽसतेप्रजावन्तोमुनयोह्यग्निहोत्रिणः । लोकस्यसंतानकराःपितृयाणेपथिस्थिताः
भूतारम्भकृतं कर्म आशिषा ऋत्विगुच्यते । प्रारभन्तेलोककामस्तेषांपन्थाःसदक्षिणः
चलितं ते पुनर्धर्मं स्थापयन्ति युगेयुगे । संतत्या तपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ॥
जायमानास्तु पूर्वे वै पश्चिमानां गृहेषु च । पश्चिमाश्चैव जायन्ते पूर्वेषां निधनेष्वपि
एवमावर्तमानास्ते तिष्ठन्त्याभूतसंप्लवात् ॥२१३॥
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनां गृहमेधिनाम् । सवितुर्दक्षिणंमार्गंश्रिता ह्याचन्द्रतारकम्
क्रियावतां प्रसंख्येया ये श्मशानानि भेजिरे ॥२१४॥
लोकसंव्यवहारेण भूतारम्भकृतेन च । इच्छाद्वेषप्रवृत्त्या च मैथुनोपगमेन च ॥२१५॥
तथा कायकृतेनेह सेवनाद्विषयस्य च । एतैस्तैः कारणैःसिद्धाःश्मशानानि हि भेजिरे
प्रजैषिणस्ते मुनयो द्वापरैष्विह जज्ञिरे ॥२१६॥
नागवीथ्युत्तरे यच्च सप्तर्षिभ्यश्च दक्षिणम् । उत्तरः सवितुः पन्थादेवयानस्तुसस्मृतः
यत्रते वासिनः सिद्धाविमलाब्रह्मचारिणः । सततं ते जुगुप्सन्तेतस्मान्मृत्युर्जितस्तुतैः
अष्टाशीतिसहस्राणि तेषामप्यूर्ध्वरेतसाम् । उदक्पन्थानमर्यम्णः श्रिताह्याभूतसंप्लवात्
ते प्रसङ्गात्तुलोकस्यमैथुनस्य तु वर्जनात् । इच्छाद्वेषनिवृत्त्या च भूतारम्भविवर्जनात्
पुष्टिश्च कामसंयोगाच्छब्दादेर्दोषदर्शनात् ॥२२०॥
इत्येतैः कारणैः शुद्धैस्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे । आभूतसंप्लवस्थानममृतत्वं विभाव्यते

त्रैलोक्यस्थितिकालोऽयमपुनर्मार्गगामिनः । ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यांपुण्यपापकृतोऽपरम्

आभूतसंप्लवान्ते तु क्षीयन्ते ह्यूर्ध्वरेतसः ॥२२२॥

ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्रास्ति वै स्मृतम् ।

एतद्विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम् ॥२२३॥

तत्रगत्वानशोचन्तितद्विष्णोःपरमं पदम् । धर्मध्रुवाद्यास्तिष्ठन्तियत्र ते लोकसाधका

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे ज्योतिष्प्रचारो नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ज्योतिष्प्रचारवर्णनम्

सूत उवाच

स्वायंभुवे निसर्गे तु व्याख्यातान्युत्तराणि तु ।

भविष्याणि च सर्वाणि तेषां वक्ष्याम्यनुक्रमम् ॥१॥

एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पप्रच्छुर्लोमहर्षणम् । सूर्याचन्द्रमसोश्चारं ग्रहाणां चैव सर्वशः

ऋषय ऊचुः

भ्रमन्ते कथमेतानि ज्योतींषि दिवि मण्डलम् । तिर्यग्व्यूहेन सर्वाणितथैवासंकरेण

कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम् ॥३॥

एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम । भूतसंमोहनं त्वेतच्छ्रोतुमिच्छा प्रवर्तते ।

सूत उवाच

भूतसंमोहनं ह्येतद्ब्रुवतो मे निबोधत । प्रत्यक्षमपि दृश्यं यत्तत्संमोहयते प्रजाः

योऽसौ चतुर्दिशं पुच्छे शैशुमारे व्यवस्थितः । उत्तानपादपुत्रोऽसौमेढीभूतो ध्रुवोदि

स हि भ्रमन्भ्रामयतेचन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह। भ्रमन्तमनुगच्छन्तिनक्षत्राणि च चक्रवत्
ध्रुवस्य मनसा चासौ सर्पते भगणः स्वयम्। सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणिग्रहैःसह
वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै। तेषां योगश्च भेदाश्च कालचारस्तथैव च॥
अस्तोदयौ तथोत्पाता अयनेदक्षिणोत्तरे। विषुवद्ग्रहवर्णाश्च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्तते॥
वर्षा घर्मो हिमं रात्रिः संध्या चैव दिनं तथा। शुभाशुभंप्रजानां च ध्रुवात्सर्वंप्रवर्तते
ध्रुवेणाधिकृतांश्चैव सूर्योऽपावृत्य तिष्ठति। तदेष दीप्तकिरणः स कालाग्निर्दिवाकरः
परिवर्तक्रमाद्विप्रा भाभिरालोकयन्दिशः। सूर्यः किरणजालेन वायुयुक्तेन सर्वशः॥
जगतो जलमादत्ते कृत्स्नस्य द्विजसत्तमाः॥१३॥
आदित्यपीतं सूर्याग्नेः सोमं संक्रमतेजलम्। नाडीभिर्वायुयुक्ताभिर्लोकाधानं प्रवर्तते
यत्सोमात्स्रवते सूर्यं तदभ्रेष्ववतिष्ठते। मेघा वायुनिघातेन विसृजन्ति जलं भुवि॥
एवमुत्क्षिप्यते चैव पतते च पुनर्जलम्। न नाशमु(उ)दकस्यास्ति तदेव परिवर्तते॥
संधारणार्थं भूतानां मायैषा विश्वनिर्मिता। अनया माययाव्याप्तंत्रैलोक्यंसचराचरम्
विश्वेशो लोककृद्देवःसहस्रांशुःप्रजापतिः। धाता कृत्स्नस्यलोकस्यप्रभुर्विष्णुर्दिवाकरः
सार्वलौकिकमम्भो वै यत्सोमान्नभसश्च्युतम्। सोमाधारंजगत्सर्वमेतत्तथ्यंप्रकीर्तितम्
सूर्यादुष्णं निस्रवते सोमाच्छीतंप्रवर्तते। शीतोष्णवीर्यौ द्वावेतौयुक्तौधारयतोजगत्
सोमाधारा नदी गङ्गा पवित्रा विमलोदका। सोमपुत्रपुरोगाश्चमहानद्यो द्विजोत्तमाः
सर्वभूतशरीरेषु आपो ह्यनुगताश्च याः। तेषु संदह्यमानेषु जङ्गमस्थावरेषु च॥
धूमभूतास्तु ता आपो निष्क्रामन्तीह सर्वशः॥२२॥
तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमत्राम्भसां स्मृतम्।
आर्कं तेजो हि भूतेभ्यो ह्यादत्ते रश्मिभिर्जलम्॥२३॥
समुद्राद्वायुसंयोगाद्वहन्त्यापोगभस्तयः। यतस्त्वृतुवशात्काले परिवर्तो दिवाकरः
यच्छत्यपो हि मेघेभ्यः शुक्लाः शुक्लगभस्तिभिः॥२४॥
अभ्रस्थाः प्रतपन्त्यापो वायुना समुदीरिताः। सर्वभूतहितार्थाय वायुभिश्च समन्ततः
ततो वर्षति षण्मासान्सर्वभूतविवृद्धये। वायव्यं स्तनितं चैव वैद्युतं चाग्निसंभवम्॥

मेहनाच्च मिहेर्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च । न भ्रश्यन्ति यतस्त्वापस्तदभ्रंकवयो विदुः
मेघानां पुनरुत्पत्तिस्त्रिविधा योनिरुच्यते । आग्नेया ब्रह्मजाश्चैवपक्षजाश्चपृथग्विधाः

त्रिधा घनाः समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि संभवम् ॥२८॥

आग्नेयास्त्वर्णजाः प्रोक्तास्तेषां तस्मात्प्रवर्तनम् ।

शीतदुर्दिनवाता ये स्वगुणास्ते व्यवस्थिताः ॥२९॥

महिषाश्च वराहाश्च मत्तमातङ्गगामिनः । भूत्वा धरणिमभ्येत्यविचरन्ति रमन्ति च ॥
जीमूता नाम ते मेघा एतेभ्योजीवसंभवाः । विद्युद्गुणविहीनाश्चजलधाराविलम्बिनः
मूका घना महाकाया आवहस्य वशानुगाः । क्रोशमात्राच्चवर्षन्तिक्रोशार्धादपिवापुनः
पर्वताग्रनितम्बेषु वर्षन्ति च रमन्ति च । बलाकागर्भदाश्चैव बलाकागर्भधारिणः ॥
ब्रह्मजानाम ते मेघाब्रह्मनिश्वाससंभवाः । ते हि विद्युद्गुणोपेताःस्तनयन्तिस्वनप्रियाः
तेषां शब्दप्रणादेन भूमिः स्वाङ्कुरुहोद्गमा । राज्ञी राज्ञाभिषिक्तेव पुनर्यौवनमश्नुते ॥

तेष्वियं प्रीतिमासक्ता भूतानां जीवितोद्भवा ॥३५॥

जीमूता नाम ते मेघायेभ्योजीवस्यसंभवाः । द्वितीयंप्रवहंवायुंमेघास्ते तु समाश्रिताः
एते योजनमात्राच्च सार्धार्धान्निष्कृतादपि । वृष्टिसर्गस्तथातेषांधारासाराःप्रकीर्तिताः

पुष्करावर्तका नाम ये मेघाः पक्षसंभवाः ॥३७॥

शक्रेण पक्षाश्छिन्ना ये पर्वतानांमहौजसाम् । कामगानांप्रवृद्धानांभूतानांशिवमिच्छता
पुष्करा नाम ते मेघा बृहन्तस्तोयमत्सराः । पुष्करावर्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः
नानारूपधराश्चैव महाघोरतराश्च ते । कल्पान्तवृष्टेः स्रष्टारः संवर्ताग्नेर्नियामकाः ॥
वर्षन्त्येते युगान्तेषु तृतीयास्ते प्रकीर्तिताः । अनेकरूपसंस्थानाः पूरयन्तो महीतलम्

वायुं परं वहन्तः स्युराश्रिताः कल्पसाधकाः ॥४१॥

यान्यस्याण्डकपालस्य प्राकृतस्याभवंस्तदा ।

तस्माद्ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्रः स्वयंभुवः ॥

तान्येवाण्डकपालस्य सर्वे मेघाः प्रकीर्तिताः ॥४२॥

तेषामाप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः । तेषां श्रेष्ठस्तु पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥

गजानां पर्वतानां च मेघानां भोगिभिः सह। कुलमेकंपृथग्भूतं योनिरेकाजलंस्मृतम्
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसंभवाः। तुषारवृष्टिं वर्षन्ति सर्वसस्यविवृद्धये॥
श्रेष्ठः परिवहो नाम तेषांवायुरपाश्रयः। योऽसौ विभर्तिभगवान्गङ्गामाकाशगोचराम्
दिव्यामृतजलां पुण्यां त्रिधा स्वर्गपथे स्थिताम्॥४६॥
तस्याविष्यन्दजं तोयं दिग्गजाःपृथुभिःकरैः। शीकरंसंप्रमुञ्चन्तिनीहार इति स स्मृतः
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः। उदग्घिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षिणे
पुण्ड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र वै स्मृतम्॥ ४८॥
तस्मिन्निपतितं वर्षं यत्तुषारसमुद्भवम्। ततस्तदावहो वायुर्हिमशैलात्समुद्वहन्॥
आनयत्यात्मयोगेन सिञ्चमानो महागिरिम्॥ ४६ ॥
हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम्। इहाभ्येति ततः पश्चादपरान्तविवृद्धये॥५०
मेघावा(चाऽऽ)प्यायनंचैवसर्वमेतत्प्रकीर्तितम्। सूर्यएव तु वृष्टीनां स्रष्टा समुपदिश्यते
ध्रुवेणाऽऽवेष्टितः सूर्यस्ताभ्यांवृष्टिःप्रवर्तते। ध्रुवेणाऽऽवेष्टितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः
ग्रहान्निःसृत्य सूर्यात्तु कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले। वारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेणपरिवेष्टितम्
अतः सूर्यरथस्याथ सन्निवेशं निबोधत। संस्थितेनैकचक्रेण पञ्चारेण त्रिनाभिना॥
हिरण्मयेन भगवान्पर्वणा तु महौजसा। नष्टवर्त्माऽन्धकारेण षट्प्रकारैकनेमिना॥
चक्रेण भास्वता सूर्यः स्यन्दनेन प्रसर्पति॥ ५५॥
दशयोजनसाहस्रो विस्तारायामतः स्मृतः। द्विगुणोऽस्यरथोपस्थादीषादण्डप्रमाणतः
स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथोह्यर्थवशेन तु। असङ्गःकाञ्चनो दिव्यो युक्तः परमगैर्हयैः॥
छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तु यतःशुक्रस्ततःस्थितः। वरुणस्यन्दनस्येह लक्षणैः सदृशस्तु सः
तेनासौ सर्पति व्योम्नि भास्वता तु दिवाकरः॥ ५८॥
अथेमानि तु सूर्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्यतु। संवत्सरस्यावयवैः कल्पितानियथाक्रमम्
अहस्तुनाभिःसूर्यस्य एकचक्रःसवै स्मृतः। आराः पञ्चर्तवस्तस्यनेमिः षडृतवःस्मृताः
रथनीडःस्मृतो ह्यब्दस्त्वयनेकूबरावुभौ। मुहूर्ता वन्धुरास्तस्यशम्यातस्यकलाः स्मृताः
तस्य काष्ठाः स्मृता घोणा ईषादण्डः क्षणास्तु वै।

निमेषाश्चानुकर्षोऽस्य ईषा चास्य लवाः स्मृताः ॥ ६२ ॥
रात्रिर्वरूथोधर्मोऽस्यध्वजऊर्ध्वःसमुच्छ्रितः । युगाक्षकोटीतेतस्यअर्थकामावुभौस्मृतौ
सप्ताश्वरूपाश्छन्दांसि वहन्तेवामतोधुरम् । गायत्रीचैव त्रिष्टुप्च अनुष्टुब्जगती तथा
पङ्क्तिश्च वृहती चैव उष्णिक्चैवतुसप्तमम् । अक्षेचक्रंनिवद्धं तु ध्रुवे त्वक्षः समर्पितः
सहचक्रो भ्रमत्यक्षः सहाक्षोभ्रमति ध्रुवः । अक्षः सहैव चक्रेणभ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः ॥
एवमर्थवशात्तस्य सन्निवेशोरथस्य तु । तथा संयोगभागेन संसिद्धो भास्वरो रथः
तेनासौ तरणिर्देवस्तरसा सर्पते दिवि । युगाक्षकोटिसंवद्धौरश्मी द्वौ स्यन्दनस्य हि
ध्रुवेण भ्रमतो रश्मीविचक्रयुगयोस्तु वै । भ्रमतो मण्डलानिस्युःखेचरस्य रथस्य तु
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्यतु । ध्रुवेण संगृहीते वै द्विचक्रश्वेतरज्जुवत्
भ्रमन्तमनुगच्छेतां ध्रुवं रश्मीतु तावुभौ । युगाक्षकोटी तेतस्यवातोर्मी स्यन्दनस्य तु
कीलासक्तो यथा रज्जुर्भ्रमतेसर्वतोदिशम् । ह्रसतस्तस्यरश्मीतौ मण्डलेषूत्तरायणे ॥
वर्धते दक्षिणेचैव भ्रमतोमण्डलानि तु । ध्रुवेण संगृहीतौ तु रश्मी वै नयतो रविम्

आकृष्येते यदा तौ वै ध्रुवेण समधिष्ठितौ ।
तदा सोऽभ्यन्तरं सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ॥ ७४ ॥

अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुभयोश्चरन् । ध्रुवेण मुच्यमानाभ्यां रश्मिभ्यां पुनरेव तु॥
तथैव वाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु । उद्वेष्टयन्स वेगेन मण्डलानि तु गच्छति
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे ज्योतिष्प्रचारो नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यरथस्याधिष्ठातृदेवतानां निरूपणम्

सूत उवाच

स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा । गन्धर्वैरप्सरोभिश्चग्रामणीसर्पराक्षसैः
एते वसन्तिवैसूर्येद्वौद्वौमासौ क्रमेण तु । धाताऽर्यमापुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः ॥

उरगो वासुकिश्चैव संकीर्णारश्च तावुभौ । तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ
क्रतुस्थल्यप्सराश्चैव तथा वै पुञ्जिकस्थला । ग्रामणी रथकृच्छ्रश्चतथोर्जश्चैव तावुभौ
रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावुदाहृतौ । मधुमाधवयोरेष गणो वसति भास्करे ॥

वासन्तौ ग्रैष्मिकौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह ।
ऋषिरत्रिर्वशिष्ठश्च तक्षको रम्भ एव च ॥ ६ ॥

मेनका सहजन्या च गन्धर्वौ च हाहा हूहूः । रथस्वनश्च ग्रामण्यौ रथचित्रश्चतावुभौ
पौरुषेयो वधश्चैव यातुधानावुदाहृतौ । एते वसन्ति वै सूर्यं मासयोः शुचिशुक्रयोः ॥
ततः सूर्ये पुनस्त्वन्या निवसन्तीह देवताः । इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च
एलापर्णस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च तावुभौ । विश्वावसूग्रसेनौ च प्रातश्चैवारुणश्च ह ॥

प्रम्लोचेति च विख्याता निम्लोचेति च ते उभे ।
यातुधानस्तथा सर्पो व्याघ्रः श्वेतश्च तावुभौ ॥
नभोनभस्ययोरेष गणो वसति भास्करे ॥११॥

शरदृतौ पुनः शुभ्रा वसन्ति मुनिदेवताः । पर्यन्यश्चाथ पूषा च भरद्वाजः सगौतमः ॥
विश्वावसुश्चगन्धर्वास्तथैवसुरभिश्चयः(या) । विश्वाची च घृताचीचउभेतेशुभलक्षणे
नाग ऐरावतश्चैव विश्रुतश्च धनंजयः । सेन(ता)जिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ
आपो वातश्च तावेतौयातुधानावुभौस्मृतौ । वसन्त्येते तु वै सूर्येमासयोश्चइषोर्जयोः
हैमन्तिकौ तु द्वौ मासौ वसन्ति तु दिवाकरे । अंशो भगश्च द्वावेतौकश्यपश्चऋतुश्चह
भुजङ्गश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा । चित्रसेनश्च गन्धर्व ऊर्णायुश्चैव तावुभौ ॥
उर्वशी विप्रचित्तिश्च तथैवाप्सरसौ शुभे । ताक्ष्यर्श्चारिष्टनेमिश्चसेनानीर्ग्रामणीश्चतौ
विद्युत्स्फूर्जश्च तावुग्रौ यातुधानावुदाहृतौ । सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे
ततः शैशिरयोश्चापि मासयोर्निवसन्ति वै । त्वष्टाविष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैवच
काद्रवेयौ तथा नागौ कम्बलाश्वतरावुभौ । गन्धर्वौ धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चास्तथैव च ॥
तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवीरम्भामनोरमा । ऋतजित्सत्यजिच्चैवग्रामण्यौलोकविश्रुतौ
ब्रह्मोपेतस्तथा दक्षोयज्ञोपेतश्च स स्मृतः । एते देवावसन्त्यर्के द्वौ मासौ तु क्रमेणतु

स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः। सूर्यमाप्यायन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम्
प्रथितैस्तैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम्। गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते
ग्रामणीयक्षभूतास्तु कुर्वते भीमसंग्रहम्। सर्पा वहन्ति सूर्यं च यातुधानानुयान्ति च

बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिचार्योदयाद्रविम् ॥२६॥

एतेषामेव देवानां यथावीर्यं यथातपः। यथायोगं यथासत्यं यथाधर्मं यथाबलम् ॥
यथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषांसिद्धस्तुतेजसा। इत्येते वै वसन्तीह द्वौ द्वौ मासौदिवाकरे
ऋषयो देवगन्धर्वाःपन्नगाप्सरसां गणाः। ग्रामण्यश्च तथा यक्षायातुधानाश्चभूयशः
एते तपन्ति वर्षन्तिभान्तिवान्ति सृजन्ति च। भूतानामशुभंकर्मव्यपोहन्तीहकीर्तिताः

मानवानां शुभं ह्येते हरन्ति दुरितात्मनाम्।

दुरितं हि प्रचाराणां व्यपोहन्ति क्वचित्क्वचित् ॥३१॥

विमानेऽवस्थिता दिव्ये कामगा वातरंहसः। एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवसानुगाः
वर्षन्तश्चतपन्तश्चह्लादयन्तश्च वै प्रजाः। गोपायन्तितुभूतानिसर्वाणीहाऽऽमनुक्षयात्
स्थानाभिमानिनामेतत्स्थानं मन्वन्तरेषु वै। अतीतानागतानां वै वर्तन्ते सांप्रतं तु ये
एवं वसन्ति वै सूर्ये सप्तकास्ते चतुर्दिशम्। चतुर्दशसु सर्गेषु गणा मन्वन्तरेषु च ॥

ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु च मुञ्चमानो घर्मं हिमं च वर्षं च दिनं निशां च ॥
कालेन गच्छत्यृतुवशात्परिवृत्तरश्मिर्देवान्पितॄंश्च मनुजांश्च स तर्पयन्वै
प्रीणाति देवानमृतेन सूर्यः सोमं सुषुम्नेन विवर्धयित्वा।
शुक्ले तु पूर्णं दिवसक्रमेण तं कृष्णपक्षे विबुधाः पिबन्ति ॥३७॥
पीतं तु सोमं द्विकलावशिष्टं कृष्णक्षये रश्मिभिस्तं क्षरन्तम्।
स्वधामृतं तत्पितरः पिबन्ति देवाश्च सौम्याश्च तथैव कव्यम् ॥३८॥
सूर्येण गोभिस्तु समुद्धृताभिरद्भिः पुनश्चैव समुद्धृताभिः।
वृष्ट्याऽतिवृद्धाभिरथौषधीभिर्मर्त्याः क्षुधं त्वन्नपानैर्जयन्ति ॥ ३९ ॥
अमृतेन तृप्तिस्त्वर्धमासं सुराणां मासार्धतृप्तिः स्वधया पितॄणाम्।
अन्नेन शश्वत्तु दधाति मर्त्याः सूर्यः स्वयं तच्च बिभर्ति गोभिः ॥४० ॥

अयं हरिस्तैर्हरिभिस्तुरंगमैरयन्हि चापो हरतीति रश्मिभिः ।
विसर्गकाले विसृजंश्च ताः पुनर्बिभर्ति शश्वत्सविता चराचरम् ॥४१॥
हरिर्हरिद्भिर्ह्रियते तुरङ्गमैः पिबत्यथापो हरिभिः सहस्रधा ।
ततः प्रमुञ्चत्यपि तास्त्वसौ हरिः समुह्यमानो हरिभिस्तुरंगमैः ॥४२॥

इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्णं रथेन तु । भद्रैस्तैरक्षतैरश्वैः सर्पतेऽसौ दिवि क्षये ॥४३
अहोरात्राद्रथेनाऽसौ एकचक्रेण तु भ्रमन् । सप्तद्वीपसमुद्रान्तं सप्तभिः सप्तभिर्हयैः ॥
छन्दोभिरश्वरूपैस्तैर्यतश्चक्रं ततः स्थितैः । कामरूपैः सकृद्युक्तैरमितैस्तैर्मनोजवैः ॥४५॥
हरितैरव्ययैः पिङ्गैरीश्वरैर्ब्रह्मवादिभिः । अशीतिमण्डलशतं भ्रमन्त्यब्देन ते हयाः ॥
बाह्यमभ्यन्तरंचैव मण्डलं दिवसक्रमात् । कल्पादौ संप्रयुक्तास्ते वहन्त्याभूतसंप्लवात
आवृत्ता बालखिल्यैस्ते भ्रमन्ते रात्र्यहानि तु ॥४७॥
प्रथितैर्वचोभिरग्र्यैः स्तूयमानो महर्षिभिः । सेव्यते गीतनृत्यैश्च गन्धर्वैरप्सरोगणैः
पतङ्गः पतगैरश्वैर्भ्रममाणो दिवस्पतिः ॥४८॥
वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि तथा शशी । ह्रासवृद्धीतथैवास्यरश्मीनांसूर्यवत्स्मृते
त्रिचक्रोभयपार्श्वस्थोविज्ञेयःशशिनो रथः । अपां गर्भसमुत्पन्नो रथः साश्वःससारथिः
शतारैश्च त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः ॥५०॥
दशभिस्तु कृशैर्दिव्यैरसङ्गैस्तैर्मनोजवैः । सकृद्युक्ते रथे तस्मिन्वहन्ते चाऽऽयुगक्षयात्
संगृहीतो रथे तस्मिञ्श्वेतश्चक्षुःश्रवास्तु वै । अश्वास्तमेकवर्णास्ते वहन्ते शङ्खवर्चसम्
ययुश्च त्रिमनाश्चैव वृषो राजीवलो हयः । अश्वो वामस्तुरण्यश्चहंसोव्योमीमृगस्तथा
इत्येते नामभिःसर्वे दशचन्द्रमसो हयाः । एते चन्द्रमसं देवं वहन्ति दिवसक्षयात् ॥
देवैः परिवृतः सोमः पितृभिश्चैव गच्छति । सोमस्य शुक्लपक्षादौभास्करे पुरतःस्थिते
आपूर्यते पुरस्यान्तः सततं दिवसक्रमात् ॥ ५५ ॥
देवैः पीतं क्षये सोममाप्याययतिनित्यदा । पीतं पञ्चदशाहं तु रश्मिनैकेन भास्करः॥
आपूरयन्सुषुम्नेन भागं भागमहःक्रमात् । सुषुम्नाप्यायमानस्यशुक्लावर्धन्ति वै कलाः
तस्माद्ध्रसन्ति वैकृष्णो शुक्लआप्याययन्तिच । इत्येवंसूर्यवीर्येणचन्द्रस्याऽऽप्यायितातनुः

पौर्णमास्यां स दृश्येत शुक्लःसंपूर्णमण्डलः । एवमाप्यायितः सोमःशुक्लपक्षेदिनक्रमात्
ततो द्वितीयाप्रभृति वहुलस्य चतुर्दशी । अपां सारमयस्येन्दो रसमात्रात्मकस्य च

पिवन्त्यस्त्रुमयं देवा मधु सौम्यं सुधामयम् ॥६०॥

संभृतं चार्धमासेन अमृतं सूर्यतेजसा । भक्षार्थममृतं सौम्यं पौर्णमास्यामुपासते ॥
एकरात्रं सुरैः सर्वैः पितृभिश्चमहर्षिभिः । सोमस्यकृष्णपक्षादौभास्कराभिमुखस्यच

प्रक्षीयते परस्यान्तः पीयमानाः कलाः क्रमात् ॥६२॥

त्रयश्च त्रिशतं चैव त्रयस्त्रिंशत्तथैव च । त्रयस्त्रिंशत्सहस्राश्च देवाः सोमं पिवन्ति वै

इत्येतैः पीयमानस्य कृष्णा वर्धन्ति वै कलाः ।
क्षीयन्ते तस्मात्कृष्णे याः शुक्ले ह्याप्याययन्ति ताः ॥६४॥
एवं दिनक्रमातीते विवुधास्तु निशाकरम् ।
पीत्वाऽर्धमासं गच्छन्ति अमावास्यां सुरोत्तमाः ॥
पितरश्चोपतिष्ठन्ति अमावास्यां निशाकरम् ॥६५॥

ततः पञ्चदशे भागे किंचिच्छिष्टे कलात्मके । अपराह्णे पितृगणैर्जघन्यः पर्युपास्यते ॥

पिवन्ति द्विकलं कालं शिष्टा तस्य तु या कला ।
निःसृतं तदमावास्यां गभस्तिभ्यः स्वधामृतम् ॥
तां स्वधां मासतृप्त्यै तु पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम् ॥६६॥

सौम्या वर्हिषदश्चैव अग्निष्वाता तथैव च । कव्याश्चैव तु ये प्रोक्ताः पितरः सर्वएवते

संवत्सरास्तु वै कव्याः पञ्चाब्दा ये द्विजैः स्मृताः ।
सौम्यास्तु ऋतवो ज्ञेया मासा वर्हिषदः स्मृताः ॥
अग्निष्वात्ता(त्त)र्त्तवश्चैव पितृसर्गा हि वै द्विजाः ॥ ६८ ॥

पितृभिः पीयमानस्य पञ्चदश्यां कला तु वै । यावन्न क्षीयते तस्यभागः पञ्चदशस्तुसः
अमावास्यां तदातस्यअन्तमापूर्यते परम् । वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौषोडश्यांशशिनःस्मृतौ
एवं सूर्यनिमित्तैषां क्षयवृद्धिर्निशाकरे । ताराग्रहाणां वक्ष्यामि स्वर्भानोश्च रथं पुनः
तोयतेजोमयः शुभ्रः सोमपुत्रस्य वै रथः । युक्तो हयैः पिशङ्गैस्तु अष्टाभिर्वातरंहसैः

सवरूथः सानुकर्षः सूतो दिव्यो रथे महान्। सोपासङ्गपताकस्तु सध्वजोमेघसंनिभः
भार्गवस्य रथः श्रीमांस्तेजसा सूर्यसंनिभः। पृथिवीसंभवैर्युक्तैर्नानावर्णैर्हयोत्तमैः॥
श्वेतः पिशङ्गः सारङ्गो नीलः पीतो विलोहितः। कृष्णश्चहरितश्चैव पृषतः पृश्निरेव च
दशभिस्तैर्महाभागैरकृशैर्वातवेगितैः ॥७५॥
अष्टाश्वः काञ्चनःश्रीमान्सोमस्यापिरथोऽभवत्। असङ्गैर्लोहितैरश्वैःसर्वगैरग्निसंभवैः
सर्पतेऽसौ कुमारो वै ऋजुचक्रानुचक्रगः ॥७६॥
ततस्त्वाङ्गिरसो विद्वान्देवाचार्यो बृहस्पतिः। शोणैरश्वैः काञ्चनेन स्यन्दनेनप्रसर्पति
युक्तस्तु वाजिभिर्दिव्यैरष्टाभिर्वातसंमितैः। नक्षत्रेऽब्दं निवसति सर्वगस्तेन गच्छति
ततः शनैश्चरोऽप्यश्वैः शबलैर्व्योमसंभवैः। कार्ष्णायसं समारुह्यस्यन्दनंयातिवैशनैः
स्वर्भानोस्तु तथैवाश्वाः कृष्णा ह्यष्टौ मनोजवाः रथं तमोमयं तस्यसकृद्युक्तावहन्त्युत
आदित्यान्निःसृतो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु। आदित्यमेतिसोमाच्चपुनःसौरेषुपर्वसु
अथ केतुरथस्याश्वा अष्टाष्टौ वातरंहसः। पलालधूमसंकाशाः शबला रासभारुणाः
एते वाहा ग्रहाणां वै मया प्रोक्ता रथैः सह। सर्वे ध्रुवनिबद्धास्तेप्रबद्धावातरश्मिभिः
एतेवैभ्राम्यमाणास्तु यथायोगंभ्रमन्ति वै। वायव्याभिरदृश्याभिःप्रबद्धावातरश्मिभिः
परिभ्रमन्ति तद्बद्धाश्चन्द्रसूर्यग्रहादिवि। भ्रमन्तमनुगच्छन्ति ध्रुवं ते ज्योतिषांगणाः
यथा नद्युदके नौस्तु सलिलेन सहोह्यते। तथा देवालया ह्येते उह्यन्ते वातरश्मिभिः
तस्मात्सर्वेण दृश्यन्ते व्योम्नि देवगणास्तु ते ॥८६॥
यावत्यश्चैवतारास्तुतावन्तोवातरश्मयः। सर्वाध्रुवनिबद्धास्ताभ्रमन्त्योभ्रामयन्तितम्
तैलपीडाकरं चक्रं भ्रमद्भ्रामयते यथा। तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातबद्धानि सर्वशः
अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु। यस्माज्ज्योतींषि वहते प्रवहंस्तेन स स्मृतः
एवं ध्रुवनिबद्धोऽसौ सर्पते ज्योतिषां गणः। सैषतारामयोज्ञेयः शिशुमारोध्रुवोदिवि
यदह्ना कुरुते पापं दृष्ट्वा तं निशि मुच्यते ॥९०॥
यावत्यश्चैव तारास्ताः शिशुमाराश्रिता दिवि।
तावन्त्येव तु वर्षाणि जीवन्त्यभ्यधिकानि तु ॥९१॥

शाश्वतः शिशुमारोऽसौ विज्ञेयः प्रविभागशः । उत्तानपादस्तस्याथविज्ञेयोह्युत्तरोहनुः
यज्ञोऽधरस्तु विज्ञेयो धर्मो मूर्धानमाश्रितः ।
हृदि नारायणः साध्य(ध्या) अश्विनौ पूर्वपादयोः ॥६३॥
वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमेतस्यसक्थिनी । शिशुःसंवत्सरस्तस्यमित्रोऽपानेसमाश्रितः
पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च मरीचिःकश्यपो ध्रुवः । तारकाःशिशुमारश्चनास्तमेतिचतुष्टयम्
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्ताराागणैः सह । उन्मुखाभिमुखाः सर्वे चक्रीभूताश्रितादिवि
ध्रुवेणाधिष्ठिताः सर्वे ध्रुवमेव प्रदक्षिणम् । प्रयान्तीह वरं श्रेष्ठं मेढीभूतं ध्रुवं दिवि
ध्रुवाग्निकश्यपानां तु वरश्चासौ ध्रुवः स्मृतः । एक एव भ्रमत्येष मेरुपर्वतमूर्धनि ॥
ज्योतिषां चक्रमेतद्धि सदा कर्षत्यावाङ्मुखः । मेरुमालोकयत्येष प्रयातीह प्रदक्षिणम्
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे ध्रुवचर्या नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

वैद्युताद्यग्नीनां लक्षणम्

शांशपायन उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पुनस्ते संशयान्विताः । पप्रच्छुरुत्तरं भूयस्तदा ते लोमहर्षणम्

ऋषय ऊचुः

यदेतदुक्तं भवता गृहाण्येतानि विश्रुतम् । कथं देवगृहाणि स्युः कथंज्योतींषिवर्णय॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व ज्योतिषांचैवनिश्चयम् । श्रुत्वा तु वचनं तेषांतदा सूतःसमाहितः
अस्मिन्नर्थे महाप्राज्ञैर्यदुक्तं ज्ञानबुद्धिभिः । तद्वोऽहं संप्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्भवम्
यथा देवगृहाणीह सूर्याचन्द्रमसोर्गृहम् ॥४॥
अतःपरंत्रिविधाग्नेर्वक्ष्येऽहंतुसमुद्भवम् । दिव्यस्यभौतिकस्याग्नेराप्याग्नेःपार्थिवस्यच
व्युष्टायां तु रजन्यां वै ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।

अव्याकृतमिदं त्वासीन्नैशेन तमसाऽऽवृतम् ॥६॥
चतुर्भूतावशिष्टेऽस्मिन्पार्थिव.सोऽग्निरुच्यते।यश्चाऽऽदीतपतेसूर्येशुचिरग्निस्तु सस्मृतः
वैद्युताख्यस्तु विज्ञेयस्तेषांवक्ष्येऽथलक्षणम् । वैद्युतो जाठरःसौरोह्यपांगर्भास्त्रयोऽग्नयः
तस्मादपः पिबन्सूर्यो गोभिर्दीप्यत्यसौ दिवि ॥८॥
वैद्युतेनसमाविष्टोवार्क्ष्योनाद्भिः प्रशाम्यति । मानवानांचकुक्षिस्थोनाद्भिःशाम्यतिपावकः
अर्चिष्मान्परमःसोऽग्निःप्रभवोजाठरः स्मृतः । यश्चायंमण्डलीशुक्रोनिरूष्मासंप्रकाशते
प्रभाहि सौरी पादेन ह्यस्तं यातिदिवाकरे । अग्निमाविशतेरात्रौतस्माद्दूरात्प्रकाशते
उद्यन्तंचपुनःसूर्यमौष्ण्यमाग्नेयमाविशत् । पादेनपार्थिवस्याग्नेस्तस्मादग्निस्तपत्यसौ॥
प्रकाशश्च तथौष्ण्यश्च सौराग्नेये तु तेजसी । परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम्
उत्तरे चैव भूम्यर्धे तस्मादस्मिंश्च दक्षिणे । उत्तिष्ठति पुनः सूर्ये रात्रिराविशते त्वपः
तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवा रात्रिप्रवेशनात् ॥१४॥
अस्तं याति पुनः सूर्ये अहर्वैप्रविशत्यपः । तस्मान्नक्तं पुनःशुक्ला आपोविशन्तिभास्करे
एतेन क्रमयोगेन(ण) भूम्यर्धे दक्षिणोत्तरे । उदयास्तमये नित्यमहोरात्रं विशत्यपः ॥
यश्चासौ तपते सूर्ये पिबन्नम्भो गभस्तिभिः ।
पार्थिवो हि विमिश्रोऽसौ दिव्यः शुचिरिति स्मृतः ॥१७॥
सहस्रपादःसोऽग्निस्तु वृत्तःकुम्भनिभः शुचिः । आदत्ते तत्तु रश्मीनांसहस्रेणसमन्ततः
नादेयीश्चैवसामुद्रीःकौप्याश्चैव सधान्वनीः । स्थावरा जङ्गमाश्चैवयश्चसूर्योहिरण्मयः
तस्य रश्मिसहस्रं तु वर्षशीतोष्णनिस्रवम् ॥१६॥
तासां चतुःशतानाड्योवर्षन्तिचित्रमूर्तयः । वन्दनाश्चैववन्याश्चऋतनानूतनास्तथा॥
अमृता नामतः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः ॥२०॥
हिमवाहाश्च ताभ्योऽन्या रश्मयस्त्रिशताः पुनः ।
दृश्या मेध्याश्च वाह्याश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जनाः ॥२१॥
चन्द्रास्तानामतःसर्वाःपीताभास्तुगभस्तयः । शुक्लाश्चककुभश्चैवगावोविश्वभृतस्तथा
शुक्लास्ता नामतः सर्वास्त्रिशता धर्मसर्जनाः । समं बिभर्तिताभिस्तु मनुष्यपितृदेवताः

मनुष्यानौषधेनेह स्वधया च पितॄनपि । अमृतेन सुरान्सर्वांस्त्रींस्त्रिभिस्तर्पयत्यसौ
वसन्ते चैव ग्रीष्मे च स तैः सुतपते त्रिभिः । वर्षास्वथो शरदि च चतुर्भिःसंप्रकर्षति
हेमन्ते शिशिरे चैव हिमं स सृजते त्रिभिः । ओषधीषु बलंधत्तेस्वधया च पितॄनपि
सूर्योऽमरत्वममृतत्रयं त्रिषु नियच्छति ॥२६॥
एवं रश्मिसहस्रं तत्सौरं लोकार्थसाधकम् । भिद्यतेऋतुमासाद्यजलशीतोष्णनिस्रवम्
इत्येतन्मण्डलं शुक्लं भास्वरं सूर्यसंज्ञितम् । नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठा योनिरेव च
ऋक्षचन्द्रग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसंभवाः ॥२८॥
नक्षत्राधिपतिः सोमो ग्रहराजो दिवाकरः । शेषाः पञ्च ग्रहाज्ञेया ईश्वराःकामरूपिणः
पठ्यते चाग्निरादित्यउदकश्चन्द्रमाः स्मृतः । शेषाणांप्रकृतिंसम्यग्वर्ण्यमानांनिबोधत
सुरसेनापतिः स्कन्दः पठ्यतेऽङ्गारको ग्रहः । नारायणं बुधं प्राहुर्देवं ज्ञानविदो विदुः
रुद्रो वैवस्वतः सक्षाद्धर्मो लोके प्रभुः स्वयम् । महाग्रहो द्विजश्रेष्ठोमन्दगामीशनैश्चरः
देवासुरगुरू द्वौ तु भानुमन्तौ महाग्रहौ । प्रजापतिसुतावेतावुभौ शुक्रवृहस्पती ॥
दैत्यो महेन्द्रश्च तयोराधिपत्ये विनिर्मितौ ॥ ३३ ॥
आदित्यमूलमखिलं त्रिलोकं नात्र संशयः । भवत्यस्य जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम्
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्रास्त्रिदिवौकसाम् ।
द्युतिर्द्युतिमतां कृत्स्ना यत्तेजः सार्वलौकिकम् ॥ ३५ ॥
सर्वात्मा सर्वलोकेशो मूलं परमदैवतम् । ततः संजायते सर्वं तत्र चैव प्रलीयते ॥
भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ।
जगज्ज्ञेयो ग्रहो विप्रा दीप्तिमान्सुग्रहो रविः ॥ ३७ ॥
यत्र गच्छन्तिनिधनंजायन्ते च पुनः पुनः । क्षणा मुहूर्तादिवसानिशाःपक्षाश्चकृत्स्नशः
मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवोऽब्दयुगानि च ॥ ३८ ॥
तदादित्यादृते तेषां कालसंख्या न विद्यते । कालादृतेननिगमो न दीक्षानाह्निकक्रमः
ऋतूनामविभागश्च पुष्पमूलफलं कुतः । कुतः सस्याभिनिष्पत्तिर्गुणौषधिगणादि वा
अभावो व्यवहाराणां देवानां दिवि चेह च । जगत्प्रतापनमृते भास्करं वारितस्करम्

स एव कालश्चाग्निश्च द्वादशात्माप्रजापतिः । तपत्येषद्विजश्रेष्ठास्त्रैलोक्यंसचराचरम्
सएषतेजसांराशिःसमस्तःसार्वलौकिकः । उत्तमंमार्गमास्थायवायोर्भाभिरिदंजगत्
पार्श्वमूर्ध्वमधश्चैव तापयत्येष सर्वशः ॥ ४३ ॥

रवेरश्मिसहस्रं यत्प्राङ्मया समुदाहृतम् । तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्तरश्मयो ग्रहयोनयः ॥
सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च । विश्वश्रवाः पुनश्चान्यः संयद्वसुरतः परम् ॥
अर्वाग्वसुः पुनश्चान्यो मया चात्र प्रकीर्तितः ॥ ४५ ॥

सुषुम्नः सूर्यरश्मिस्तु क्षीणं शशिनमेधयन् । तिर्यगूर्ध्वप्रचारोऽसौ सुषुम्नःपरिकीर्त्यते
हरिकेशः पुरस्त्वाद्या ऋक्षयोनिः प्रकीर्त्यते । दक्षिणेविश्वकर्मा तु रश्मिर्वर्धयतेबुधम्
विश्वश्रवास्तु यः पश्चाच्छुक्रयोनिः स्मृता बुधैः ।
संयद्वसुश्च यो रश्मिः सा योनिर्लोहितस्य तु ॥ ४८ ॥

षष्ठस्त्वर्वाग्वसूरश्मिर्योनिस्तु स बृहस्पतेः । शनैश्चरंपुनश्चापिरश्मिराप्यायतेस्वराट्
एवं सूर्यप्रभावेण ग्रहनक्षत्रतारकाः । वर्धन्ते विदिताः सर्वा विश्वं चेदं पुनर्जगत् ॥
न क्षीयन्ते पुनस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता ॥ ५० ॥

क्षेत्राण्येतानि वै पूर्वमापतन्तिगभस्तिभिः । तेषां क्षेत्राण्यथाऽऽदत्तेसूर्योनक्षत्रतांगतः
तीर्णानां सुकृतेनेह सुकृतान्ते ग्रहाश्रयात् । ताराणांतारकाह्येताःशुक्लत्वाच्चैवतारकाः
दिव्यानां पार्थिवानां च नैशानां चैव सर्वशः ।
आदानान्नित्यमादित्यस्तमसां तेजसां महान् ॥ ५३ ॥

सुवनि स्पन्दनार्थे च धातुरेष विभाव्यते । सवनात्तेजसोऽपां च तेनासौसवितामतः
बह्वर्थश्चन्द्र इत्येष ह्लादने धातुरिष्यते । शुक्लत्वे चामृतत्वे च शीतत्वे च विभाव्यते
सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे । ज्वलत्तेजोमये शुक्लेवृत्तकुम्भनिभेशुभे ॥
घनतोयात्मकं तत्र मण्डलं शशिनः स्मृतम् । घनतेजोमयं शुक्लंमण्डलंभास्करस्यतु
विशन्ति सर्वदेवास्तु स्थानान्येतानि सर्वशः । मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋक्षसूर्यग्रहाश्रयाः ॥
तानि देवगृहाण्येव तदाख्यास्ते भवन्ति च ।
सौरं सूर्यो विशः स्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च ॥ ५६ ॥

शौक्रं शुक्रो विशः स्थानंषोडशार्चिःप्रतापवान् । बृहद्बृहस्पतिश्चैवलोहितंचैवलोहितः

शानैश्चरं तथा स्थानं देवश्चैव शनैश्चरः ॥ ६० ॥

आदित्यरश्मिसंयोगात्संप्रकाशात्मिकाः स्मृताः ।

नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः ॥ ६१ ॥

त्रिगुणस्तस्यविस्तारोमण्डलंचप्रमाणतः । द्विगुणःसूर्यविस्ताराद्विस्तारःशशिनःस्मृतः

तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाऽधस्तात्प्रसर्पति ।

उद्धृत्य पार्थिवच्छायां निर्मितो मण्डलाकृतिः ॥ ६३ ॥

स्वर्भानोस्तु वृहत्स्थानंनिर्मितंयत्तमोमयम् । आदित्यात्तच्चनिष्क्रम्यसोमंगच्छतिपर्वसु

आदित्यमेति सोमाच्च पुनःसोमं च पर्वसु । स्वर्भासा नुदतेतस्मात्ततःस्वर्भानुरुच्यते

चन्द्रस्यषोडशोभागोभार्गवश्चविधीयते।विष्कम्भान्मण्डलाच्चैवयोजनाग्रात्प्रमाणतः

भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै वृहस्पतिः । वृहस्पतेः पादहीनौ कुजसौरावुभौस्मृतौ

विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः ॥ ६७ ॥

तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै । बुधेन समतुल्यानि विस्तारान्मण्डलादथ

प्रायशश्चन्द्रयोगीनि (णि) विद्यादृक्षाणि तत्त्ववित् ।

तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम् ॥ ६९ ॥

शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने । पूर्वापरनिकृष्टानि तारकामण्डलानि तु

योजनान्यर्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते ॥ ७० ॥

उपरिष्टात्त्रयस्तेषां ग्रहा ये दूरसर्पिणः । सौरोऽङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेया मन्दविचारिणः

तेभ्योऽधस्तात्तु चत्वारः पुनरन्येमहाग्रहाः । सूर्यः सोमोबुधश्चैवभार्गवश्चैवशीघ्रगाः

यावन्त्यस्तारकाः कोट्यस्तावदृक्षाणि सर्वशः ।

वीथीनां नियमाच्चैवमृक्षमार्गो व्यवस्थितः ॥ ७३ ॥

गतिस्तास्वेव सूर्यस्य नीचोच्चत्वेऽयनक्रमात् । उत्तरायणमार्गस्थो यदा पर्वसुचन्द्रमाः

बौधं बौधोऽथ स्वर्भानुः स्वर्भानोः स्थानमास्थितः ॥ ७४ ॥

नक्षत्राणि च सर्वाणि नक्षत्राणि विशन्त्युत ।

गृहाण्येतानि सर्वाणि ज्योतींषि सुकृतात्मनाम् ॥ ७५ ॥

कल्पादौ संप्रवृत्तानि निर्मितानिस्वयंभुवा । स्थानान्येतानि तिष्ठन्तियावदाभूतसंप्लवम्
मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवतायतनानि वै । अभिमानिनोऽवतिष्ठन्ति स्थानानि तु पुनःपुनः
अतीतैस्तु सहातीताभाव्या भाव्यैः सुरासुरैः । वर्तन्तेवर्तमानैश्चस्थानानिस्वैःसुरैःसह
अस्मिन्मन्वन्तरेचैवग्रहावैमानिकाः स्मृताः । विवस्वानदितेःपुत्रःसूर्यो वैवस्वतेऽन्तरे
त्विषिमान्धर्मपुत्रस्तुसोमदेवोवसुः स्मृतः । शुक्रोदेवस्तुविज्ञेयोभार्गवोऽसुरयाजकः
बृहत्तेजाः स्मृतो देवोदेवाचार्योऽङ्गिरःसुतः । बुधोमनोहरश्चैवत्विषिपुत्रस्तु सस्मृतः

अग्निर्विकल्पात्संजज्ञे युवासौ लोहिताधिपः ।

नक्षत्रऋक्षगामिन्यो दाक्षायण्यः स्मृतास्तु ताः ॥ ८२ ॥

स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रोभूतसंतापनोऽसुरः । सोमर्क्षग्रहसूर्ये तु कीर्तितास्त्वभिमानिनः
स्थानान्येतान्यथोक्तानिस्थानिन्यश्चैव देवताः । शुक्लमग्निमयंस्थानंसहस्रांशोर्विवस्वतः
सहस्रांशोस्त्विषःस्थानमम्मयंशुक्लमेवच । आप्यंश्याममंमनोज्ञस्यपञ्चरश्मेर्गृहंस्मृतम्
शुक्रस्याप्यम्मयंस्थानंसप्तषोडशरश्मिवत् । नवरश्मेस्तु यूनोहिलोहितस्थानमम्मयम्
हरिश्चा(चाऽऽ)प्यंवृहच्चापिद्वादशांशोर्बृहस्पतेः। अष्टरश्मेर्गृहंप्रोक्तंकृष्णंवुधस्यअम्मयम्
स्वर्भानोस्तामसंस्थानंभूतसंतापनालयम्।विज्ञेयास्तारकाःसर्वास्त्वंमयास्त्वेकरश्मयः
आश्रयाःपुण्यकीर्तीनांसुशुक्लाश्चैववर्णतः । घनतोयात्मिकाज्ञेयाःकल्पादौवेदनिर्मिताः

उच्चत्वाद् दृश्यते शीघ्रमभिव्यक्तैर्गभस्तिभिः ।

तथा दक्षिणमार्गस्थो नीवीवीथीसमाश्रितः ॥ ९० ॥

भूमिलेखावृतः सूर्यः पूर्णिमावास्ययोस्तथा । न दृश्यते यथाकालं शीघ्रमस्तमुपैति च
तस्मादुत्तरमार्गस्थो ह्यमावास्यां निशाकरः । दृश्यते दक्षिणेमार्गे नियमाद्दृश्यतेनच
ज्योतिषां गतियोगेन सूर्याचन्द्रमसावुभौ । समानकालास्तमयौ विषुवत्सुसमोदयौ

उत्तरासु च वीथीषु व्यन्तरास्तमयोदयौ ।

पौर्णि(पूर्णा)मावस्ययोर्ज्ञेयौ ज्योतिश्चक्रानुवर्तिनौ ॥ ९४ ॥

दक्षिणायनमार्गस्थो यदाभवतिरश्मिवान् । तदासर्वग्रहाणां स सूर्योऽधस्तात्प्रसर्पति

विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्ध्वंचरते शशी । नक्षत्रमण्डलंकृत्स्नंसोमादूर्ध्वंप्रसर्पति

नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधादूर्ध्वं बृहस्पतिः ।
तस्माच्छनैश्चरश्चोर्ध्वं तस्मात्सप्तर्षिमण्डलम् ॥
ऋषीणां चैव सप्तानां ध्रुव ऊर्ध्वं व्यवस्थितः ॥ ९७ ॥

द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च । ताराग्रहान्तराणि स्युरुपरिष्टाद्यथाक्रमम् ॥

ग्रहाश्च चन्द्रसूर्यौ तु दिवि दिव्येन तेजसा ।
नित्यमृक्षेषु युज्यन्ति गच्छन्ति नियमक्रमात् ॥ ९९ ॥

ग्रहनक्षत्रसूर्यास्तु नीचोच्चमृद्ववस्थिताः । समागमे च भेदे च पश्यन्ति युगपत्प्रजाः ॥
परस्परस्थिता ह्येते युज्यन्ते च परस्परम् । असंकरेण विज्ञेयस्तेषां योगस्तु वै बुधैः
इत्येष संनिवेशो वः पृथिव्यां ज्योतिषस्य च । द्वीपानामुदधीनां च पर्वतानांतथैवच
वर्षाणां च नदीनां च ये च तेषु वसन्ति वै । एते चैव ग्रहाः पूर्वं नक्षत्रेषुसमुत्थिताः
विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्यो वै चाक्षुषेऽन्तरे । विशाखासुसमुत्पन्नोग्रहाणां प्रथमोग्रहः

त्विषिमान्धर्मपुत्रस्तु सोमो विश्वावसुस्तथा ।
शीतरश्मिः समुत्पन्नः कृत्तिकासु निशाकरः ॥ १०५ ॥

षोडशार्चिर्भृगोः पुत्रः शुक्रः सूर्यादनन्तरम् । ताराग्रहाणां प्रवरस्तिष्यक्षेत्रेसमुत्थितः
ग्रहश्चाङ्गिरसः पुत्रो द्वादशार्चिर्बृहस्पतिः । फल्गुनीषु समुत्पन्नःसर्वासु च जगद्गुरुः
नवार्चिर्लोहिताङ्गस्तु प्रजापतिसुतो ग्रहः । आषाढास्विह पूर्वासु समुत्पन्न इतिश्रुतिः
रेवतीष्वेव सप्तार्चिस्तथा सौरः शनैश्चरः । रेवतीषु समुत्पन्नौ ग्रहौ चन्द्रार्कमर्दनौ ॥
एते ताराग्रहाश्चैव बोद्धव्या भार्गवादयः । जन्मनक्षत्रपीडासु यान्ति वैगुण्यतां यतः

स्पृशन्ते तेन दोषेण ततस्ता ग्रहभक्तिषु ॥ ११० ॥

सर्वग्रहाणामेतेषामादिरादित्य उच्यते । ताराग्रहाणां शुक्रस्तु केतूनां चैव धूमवान् ॥

ध्रुवः कीलो ग्रहाणां तु विभक्तानां चतुर्दिशम् ।
नक्षत्राणां श्रविष्ठा स्यादयनानां तथोत्तरम् ॥ ११२ ॥
वर्षाणां चापि पञ्चानामाद्यः संवत्सरः स्मृतः ।

ऋतूनां शिशिरं चापि मासानां माघ एव च ॥ ११३ ॥

पक्षाणां शुक्लपक्षस्तु तिथीनां प्रतिपत्तथा । अहोरात्रविभागानामहश्चापि प्रकीर्तितम्
मुहूर्तानां तथैवाऽऽदिर्मुहूर्तो रुद्रदैवतः । अक्ष्णोश्चापि निमेषादिःकालःकालविदोमतः
श्रवणान्तं श्रविष्ठादि युगं स्यात्पञ्चवार्षिकम् । भानोर्गतिविशेषेण चक्रवत्परिवर्तते
दिवाकरः स्मृतस्तस्मात्कालस्तंविद्धि चेश्वरम् । चतुर्विधानांभूतानांप्रवर्तकनिवर्तकः
इत्येष ज्योतिषामेव संनिवेशोऽर्थनिश्चयात् । लोकसंव्यवहारार्थमीश्वरेण विनिर्मितः
उत्पन्नःश्रवणेनासौसंक्षिप्तश्चध्रुवे तथा । सर्वतोऽन्तेषुविस्तीर्णोवृत्ताकारइतिस्थितिः
बुद्धिपूर्वंभगवताकल्पादौसंप्रकीर्तितः । साश्रयःसोऽभिमानीचसर्वस्यज्योतिषात्मकः
विश्वरूपं प्रधानस्य परिणामोऽयमद्भुतः ॥ १२० ॥

नैव शक्यं प्रसंख्यातुं याथातथ्येन केनचित् । गतागतं मनुष्येषु ज्योतिषांमांसचक्षुषा
आगमादनुमानाच्च प्रत्यक्षादुपपत्तितः । परीक्ष्य निपुणं भक्त्याश्रद्धातव्यं विपश्चिता
चक्षुः शास्त्रं जलं लेख्यंगणितंबुद्धिसत्तमाः । पञ्चैतेहेतवोज्ञेयाज्योतिर्गणविचिन्तने

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे ज्योतिःसंनिवेशो नाम
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ऋषिसूतसम्वादे वशिष्ठकार्तिकेयसम्वादवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

कस्मिन्देशे महापुण्यमेतदाख्यानमुत्तमम् । वृत्तं ब्रह्मपुरोगाणां कस्मिन्काले महाद्युते
एतदाख्याहि नः सम्यग्यथावृत्तं तपोधन ! ॥ १ ॥

सूत उवाच

यथा श्रुतं मया पूर्वं वायुना जगदायुना । कथ्यमानं द्विजश्रेष्ठाः सत्रे वर्षसहस्रके ॥

नीलता येन कण्ठस्य देवदेवस्य शूलिनः । तदहं कीर्तयिष्यामि शृणुध्वं शंसितव्रताः
उत्तरे शैलराजस्य सरांसि सरितो ह्रदाः । पुण्योद्यानेषु तीर्थेषु देवतायतनेषु च ॥
गिरिश्रृङ्गेषु तुङ्गेषु गह्वरोपवनेषु च ॥ ४ ॥
देवभक्ता महात्मानो मुनयः शंसितव्रताः । स्तुवन्ति च महादेवं यत्र यत्र यथाविधि
ऋग्यजुःसामवेदैश्च नृत्यगीतार्चनादिभिः । ओंकार हुं नमस्कारैरर्चयन्तिसदाशिवम्
प्रवृत्ते ज्योतिषां चक्रे मध्यव्याप्तेदिवाकरे । देवतानियतात्मानःसर्वेतिष्ठन्तितांकथाम्
अथ नियमप्रवृत्ताश्च प्राणशेषव्यवस्थिताः ॥ ७ ॥
नमस्ते नीलकण्ठायइत्युवाचसदागतिः । तच्छ्रुत्वा भावितात्मानोमुनयःशंसितव्रताः
वालखिल्येतिविख्याताः पतङ्गसहचारिणः ॥ ८ ॥
अष्टाशीतिसहस्राणिमुनीनामूर्ध्वरेतसाम् । तस्मात्पृच्छन्तिवैवायुंवायुपर्णाम्बुभोजनाः

ऋषय ऊचुः

नीलकण्ठेति यत्प्रोक्तं त्वया पवनसत्तम ! एतद्गुह्यं पवित्राणांपुण्यंपुण्यकृतांवराः ॥
तद्वयं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्प्रसादात्प्रभञ्जन । नीलता येन कण्ठस्यकारणेनाम्बिकापतेः
श्रोतुमिच्छामहे सम्यक्तववक्त्राद्विशेषतः । यावद्वाचः प्रवर्तन्तेसार्थास्ताश्चत्वयेरिताः
वर्णस्थानगते वायौ वाग्विधिः संप्रवर्तते । ज्ञानं पूर्वमथोत्साहस्त्वत्तो वायोप्रवर्तते
त्वयि निष्पन्दमाने तु शेषा वर्णप्रवृत्तयः । यत्र वाचो निवर्तन्ते देहबन्धाश्च दुर्लभाः
तत्रापितेऽस्तिसद्भावःसर्वगस्त्वंसदाऽनिल । नान्यःसर्वगतोदेवस्त्वदृतेऽस्तिसमीरण
एष वै जीवलोकस्ते प्रत्यक्षः सर्वतोऽनिल । वेत्थ वाचस्पतिंदेवंमनोनायकमीश्वरम्
ब्रूहितत्कण्ठदेशस्यकिंकृतारूपविक्रिया । श्रुत्वावाक्यंततस्तेषामृषीणाभावितात्मनाम्
प्रत्युवाच महातेजा वायुर्लोकनमस्कृतः ॥ १७ ॥

वायुरुवाच

पुरा कृतयुगे विप्रो वेदनिर्णयतत्परः । वसिष्ठो नाम धर्मात्मा मानसो वै प्रजापतेः
पप्रच्छ कार्तिकेयं वै मयूरवरवाहनम् । महिषासुरनारीणां नयनाञ्जनतस्करम् ॥१६॥
महासेनं महात्मानं मेघस्तनितनिस्वनम् । उमामनःप्रहर्षेण बालकं छद्मरूपिणम् ॥

क्रौञ्चजीवितहर्तारं पार्वतीहृदि नन्दनम् । वसिष्ठः पृच्छते भक्त्याकार्तिकेयंमहाबलम्

वसिष्ठ उवाच

नमस्ते हरनन्दाय उमागर्भ नमोस्तु ते । नमस्ते अग्निगर्भाय गङ्गागर्भ नमोऽस्तु ते ॥
नमस्ते शरगर्भाय नमस्ते कृत्तिकासुत । नमो द्वादशनेत्राय षण्मुखाय नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते शक्तिहस्ताय दिव्यघण्टापताकिने । एवं स्तुत्वा महासेनंपप्रच्छशिखिवाहनम्
यदेतद्दृश्यते वर्यं शुभं शुभ्राञ्जनप्रभम् । तत्किमर्थं समुत्पन्नं कण्ठे कुन्देन्दुसप्रभे ॥
एतदाप्ताय भक्ताय दान्ताय ब्रूहि पृच्छते । कथां मङ्गलसंयुक्तां पवित्रां पापनाशिनीम्
मत्प्रियार्थं महाभाग ! वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥ २६ ॥

श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य वसिष्ठस्य महात्मनः । प्रत्युवाच महातेजाः सुरारिबलसूदनः
शृणुष्व वदतां श्रेष्ठ कथ्यमानं वचो मम । उमोत्सङ्गनिविष्टेन मया पूर्वं यथा श्रुतम्
पार्वत्या सह संवादः शर्वस्य च महात्मनः । तदहं कीर्तयिष्यामित्वत्प्रियार्थं महामुने
कैलासशिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते । तरुणादित्यसंकाशे तप्तचामीकरप्रभे ॥३०॥
वज्रस्फटिकसोपाने चित्रपट्टशिलातले । जाम्बूनदमये दिव्ये नानाधातुविचित्रिते ॥
नानाद्रुमलताकीर्णे चक्रवाकोपशोभिते ॥ ३१ ॥

षट्पदोद्गीतबहुले धारासंपातनादिते । मत्तक्रौञ्चमयूराणां नादैरुद्घुष्टकन्दरे ॥ ३२॥
अप्सरोगणसंकीर्णे किन्नरैश्चोपशोभिते । जीवंजीवकजातीनां वीरुद्भिरुपशोभिते ॥
कोकिलारावमधुरे सिद्धचारणसेविते । सौरभेयीनिनादाढ्ये मेघस्तनितनिस्वने ॥
विनायकभयोद्विग्नैः कुञ्जरैर्मुक्तकन्दरे । वीणावादित्रनिर्घोषैः श्रोत्रेन्द्रियमनोरमैः ॥
दोलालम्बितसम्पाते वनितासंघसेविते । ध्वजैर्लम्बितदोलानां घण्टानां निनदाकुले
मुखमर्दलवादित्रैर्वलिनां स्फोटितैस्तथा । क्रीडारवविचाराणां निर्घोषः पूर्णमन्दिरे ॥
हासैः संत्रासजननैर्विकरालमुखैस्तथा । देहगन्धैर्विचित्रैश्च प्रक्रीडितगणेश्वरैः ॥३८॥
वज्रस्फटिकसोपानचित्रपट्टशिलातलैः । व्याघ्रसिंहमुखैश्चान्यैर्गजवाजिमुखैस्तथा ॥
बिडालवदनैश्चोग्रैः क्रोष्टुकाकारमूर्तिभिः । ह्रस्वैर्दीर्घैः कृशैः स्थूलैर्लम्बोदरमहोदरैः
ह्रस्वजङ्घैश्च लम्बोष्ठैस्तालजङ्घैस्तथा परैः । गोकर्णैरेककर्णैश्च महाकर्णैरकर्णकैः

बहुपादैर्महापादैरेकपादैरपादकैः । बहुशीर्षैर्महाशीर्षैरेकशीर्षैरशीर्षकैः ॥ ४२ ॥
बहुनेत्रैर्महानेत्रैरेकनेत्रैरनेत्रकैः । एवंविधैर्महायोगी भूतैर्भूतपतिर्वृतः ॥४३ ॥

विशुद्धमुक्तामणिरत्नभूषिते शिलातले हेममये मनोरमे ।
सुखोपविष्टं मदनाङ्गनाशनं प्रोवाच वाक्यं गिरिराजपुत्री ४४ ॥

देव्युवाच

भगवन्भूतभव्येश गोवृषाङ्कितशासन ! । तव कण्ठे महादेव! भ्राजतेऽम्बुदसंनिभम् ॥

नात्युल्बणं नातिशुभ्रं नीलाञ्जनचयोपमम् ।
किमिदं दीप्यते देव ! कण्ठे कामाङ्गनाशन ! ॥ ४६ ॥

को हेतुः कारणं किंच कण्ठे नीलत्वमीश्वर । एतत्सर्वं यथान्यायंब्रूहिकौतूहलं हि मे
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्याःपार्वत्याःपार्वतीप्रियः । कथांमङ्गलसंयुक्तांकथयामासशंकरः
मथ्यमानेऽमृते पूर्वं क्षीरोदे सुरदानवैः । अग्रे समुत्थितं तस्मिन्विषं कालानलप्रभम्
तं दृष्ट्वा सुरसंघाश्च दैत्याश्चैव वरानने । विषण्णवदनाः सर्वे गतास्तेब्रह्मणोऽन्तिकम्
दृष्ट्वा सुरगणान्भीतान्ब्रह्मोवाच महद्युतिः । किमर्थं भो महाभागा भीता उद्विग्नचेतसः
मयाऽष्टगुणमैश्वर्यं भवतां संप्रकल्पितम् । केन व्यावर्तितैश्वर्या यूयं वै सुरसत्तमाः ॥

त्रैलोक्यस्येश्वरा यूयं सर्वे वै विगतज्वराः ।
प्रजासर्गे न सोऽस्तीह आज्ञां यो मे निवर्तयेत् ॥ ५३ ॥

विमानगामिनः सर्वे सर्वे स्वच्छन्दगामिनः । अध्यात्मेचाधिभूतेचअधिदैवेचनित्यशः

प्रजाः कर्मविपाकेन शक्ता यूयं प्रवर्तितुम् ॥ ५४ ॥

तत्किमर्थं भयोद्विग्ना मृगाःसिंहार्दिताइव । किं दुःखं केनसंतापः कुतोवाभयमागतम्

एतत्सर्वं यथान्यायं शीघ्रमाख्यातुमर्हथ ॥ ५५ ॥

श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य ब्रह्मणोवैमहात्मनः । ऊचुस्ते ऋषिभिःसार्धंसुरदैत्येन्द्रदानवाः
सुरासुरैर्मथ्यमाने पाथोधौ च महात्मभिः । भुजङ्गभृङ्गसंकाशं नीलजीमूतसंनिभम्

प्रादुर्भूतं विषं घोरं संवर्ताग्निसमप्रभम् ॥ ५७ ॥

कालमृत्युरिवोद्भूतं युगान्तादित्यवर्चसम् । त्रैलोक्योत्सादिसूर्याभंप्रस्फुरन्तंसमन्ततः

विषेणोत्तिष्ठमानेन कालानलसमत्विषा । निर्दग्धो रक्तगौराङ्गः कृतः कृष्णो जनार्दनः
दृष्ट्वा तं रक्तगौराङ्गं कृतं कृष्णं जनार्दनम् । भीताःसर्वे वयं देवास्त्वामेव शरणं गताः
सुराणामसुराणां च श्रुत्वावाक्यंपितामहः । प्रत्युवाचमहातेजालोकानांहितकाम्यया
शृणुध्वं देवताः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः । यत्तदग्रे समुत्पन्नं मथ्यमाने महोदधौ ॥
विषं कालानलप्रख्यं कालकूटेतिविश्रुतम् । येन प्रोद्भूतमात्रेण कृतः कृष्णो जनार्दनः
तस्य विष्णुरहं चापि सर्वे ते सुरपुङ्गवाः । न शक्नुवन्तिवैसोढुं वेगमन्ये तु शंकरात्
इत्युक्त्वापद्मगर्भाभःपद्मयोनिरयोनिजः । ततःस्तोतुं समारब्धो ब्रह्मा लोकपितामहः
नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्तेऽनेकचक्षुषे । नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय वै नमः ॥
नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतानां पतये नमः । नमः सुरारिसंहर्त्रे तापसाय त्रिचक्षुषे ॥
ब्रह्मणे चैव रुद्राय विष्णवे चैव ते नमः । सांख्याय चैव योगाय भूतग्रामाय वै नमः
मन्मथाङ्गविनाशाय कालकालाय वै नमः । रुद्राय च सुरेशाय देवदेवाय वै नमः ॥
कपर्दिने करालाय शंकराय कपालिने । विरूपायैकरूपाय शिवाय वरदाय च ॥७०॥
त्रिपुरघ्नाय वन्द्यायमातॄणां पतयेनमः । वुद्धाय चैव शुद्धाय मुक्ताय केवलाय च ॥७१॥
नमः कमलहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने । लोकत्रयविधात्रे च चन्द्राय वरुणाय च
अग्राय चैव चोग्राय विप्रायानेकचक्षुषे । रजसे चैव सत्त्वाय तमसेऽव्यक्तयोनये ॥
नित्यायानित्यरूपायनित्यानित्यायवैनमः । व्यक्तायचैवाव्यक्तायव्यक्ताव्यक्तायवैनमः

चिन्त्याय चैवाचिन्त्याय चिन्त्याचिन्त्याय वै नमः ।
भक्तानामार्तिनाशाय नरनारायणाय च ॥ ७५ ॥

उमाप्रियाय शर्वाय नन्दिचक्राङ्किताय च । पक्षमासार्धमासाय नमः संवत्सराय च ॥
बहुरूपाय मुण्डाय दण्डिनेऽथवरूथिने । नमः कपालहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने
ध्वजिने रथिने चैव यमिने ब्रह्मचारिणे । ऋग्यजुःसामवेदाय पुरुषायेश्वराय च ॥

इत्येवमादिचरितैस्तुभ्यं देव नमोऽस्तु ते ॥ ७८ ॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं स्तुत्वा ततो देवः प्रणिपत्य वरानने ! ॥ ७९ ॥

ज्ञात्वा तु भक्तिं मम देवदेवो गङ्गाजलाप्लावितकेशदेशः ॥
सूक्ष्मोऽतियोगातिशयादचिन्त्यो न हि प्लुतो व्यक्तमुपैति चन्द्रः ॥ ८० ॥

एवं भगवता पूर्वं ब्रह्मणा लोककर्तृणा । स्तुतोऽहं विविधैस्तोत्रैर्वेदवेदाङ्गसंभवैः ॥
तत प्रीतोह्यहं तस्मै ब्रह्मणे सुमहात्मने । ततोऽहं सूक्ष्मया वाचा पितामहमथाब्रवम्
भगवन्भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते । किं कार्यं ते मया ब्रह्मन्कर्तव्यं वद सुव्रत ॥
श्रुत्वा वाक्यं तथा ब्रह्मा प्रत्युवाचाम्बुजेक्षणः । भूतभव्यभवन्नाथ श्रूयतां कारणेश्वर
सुरासुरैर्मथ्यमाने पयोधावम्बुजेक्षण । भगवन्मेघसंकाशं नीलजीमूतसंनिभम् ॥८५॥
प्रादुर्भूतं विषं घोरं संवर्ताग्निसमप्रभम् । कालमृत्युरिवोद्भूतं युगान्तादित्यवर्चसम्

त्रैलोक्योत्सादसूर्याभं विस्फुरन्तं समन्ततः ।
अग्रे समुत्थितं तस्मिन्विषं कालानलप्रभम् ॥ ८७ ॥

तं दृष्ट्वा तु वयं सर्वे भीताः संभ्रान्तचेतसः । तत्पिबस्वमहादेवलोकानांहितकाम्यया

भवानग्र्यस्य भोक्ता वै भवांश्चैव वरः प्रभुः ॥ ८८ ॥
त्वामृतेऽन्यो महादेव ! विषं सोढुं न विद्यते ।
नास्ति कश्चित्पुमाञ्शक्तस्त्रैलोक्येषु च गीयते ॥ ८९ ॥

एवं तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । बाढमित्येव तद्वाक्यं प्रतिगृह्य वरानने ॥
ततोऽहं पातुमारब्धो विषमन्तकसंनिभम् । पिबतो मे महाघोरं विषं सुरभयंकरम् ॥

कण्ठः समभवत्तूर्णं कृष्णो मे वरवर्णिनि ! ॥ ९१ ॥

तं दृष्ट्वोत्पलपत्राभं कण्ठे सक्तमिवोरगम् । तक्षकं नागराजानं लेलिहानमिवस्थितम्
अथोवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः । शोभसे त्वं महादेव कण्ठेनानेन सुव्रत ॥
ततस्तस्य वचः श्रुत्वा मया गिरिवरात्मजे । पश्यतां देवसंघानां दैत्यानां च वरानने
यक्षगन्धर्वभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम् । धृतं कण्ठे विषं घोरं नीलकण्ठस्ततो ह्यहम्

तत्कालकूटं विषमुग्रतेजः कण्ठे मया पर्वतराजपुत्रि !।
निवेश्यमानं सुरदैत्यसंघो दृष्ट्वा परं विस्मयमाजगाम ॥ ९६ ॥

ततः सुरगणाः सर्वे सदैत्योरगराक्षसाः । ऊचुः प्राञ्जलयो भूत्वा मत्तमातङ्गगामिनि

अहो बलं वीर्यपराक्रमस्ते अहो पुनर्योगबलं तथैव ।
अहो प्रभुत्वं तव देवदेव ! गङ्गाजलास्फालितमुक्तकेश !॥ ९८ ॥
त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव मृत्युवरदस्त्वमेव ।
त्वमेव सूर्यो रजनीकरश्च त्वमेव भूमिः सलिलं त्वमेव ॥ ९९ ॥
त्वमेव यज्ञो नियमस्त्वमेव त्वमेव भूतं भविता त्वमेव ।
त्वमेव चाऽऽदिर्निधनं त्वमेव स्थूलश्च सूक्ष्मः पुरुषस्त्वमेव ॥ १०० ॥
त्वमेव सूक्ष्मस्य परः परस्य त्वमेव वह्निः पवनस्त्वमेव ।
त्वमेव सर्वस्य चराचरस्य लोकस्य कर्ता प्रलये च गोप्ता ॥ १०१ ॥
इतीदमुक्त्वा वचनं सुरेन्द्राः प्रगृह्य सोमं प्रणिपत्य मूर्ध्ना ।
गता विमानैरनिगृह्यवेगैर्महात्मनो मेरुमुपेत्य सर्वे ॥ १०२ ॥

इत्येतत्परमं गुह्यंपुण्यात्पुण्यतरं महत् । नीलकण्ठेति यत्प्रोक्तंविख्यातंलोकविश्रुतम्
स्वयं स्वयंभुवा प्रोक्तांकथांपापप्रणाशनीम् । यस्तु धारयतेनित्यमेनांब्रह्मोद्भवांकथाम्

तस्याहं संप्रवक्ष्यामि फलं वै विपुलं महत् ॥ १०४ ॥

विषं तस्य वरारोहे स्थावरं जङ्गमं तथा । गात्रंप्राप्य तु सुश्रोणि क्षिप्रंतत्प्रतिहन्यते
शमयत्यशुभं घोरं दुःस्वप्नं चापकर्षति । स्त्रीषु वल्लभतां याति सभायांपार्थिवस्य च
विवादे जयमाप्नोति युद्धे शूरत्वमेव च । गच्छतः क्षेममध्वानं गृहे च नित्यसंपदः
शरीरभेदे वक्ष्यामि गतिं तस्य वरानने । नीलकण्ठो हरिच्छ्मश्रुः शशाङ्काङ्कितमूर्धजः
त्र्यक्षस्त्रिशूलपाणिश्च वृषयानः पिनाकधृक् । नन्दितुल्यबलःश्रीमान्नन्दितुल्यपराक्रमः
विचरत्यचिरात्सर्वान्सर्वलोकान्ममाऽऽज्ञया । न हन्यतेगतिस्तस्यअनिलस्ययथाम्बरे

मम तुल्यबलो भूत्वा तिष्ठत्याभूतसंप्लवम् ॥११० ॥

ममभक्ता वरारोहे ये च शृण्वन्ति मानवाः । तेषां गतिं प्रवक्ष्यामि इह लोके परत्र च
ब्राह्मणो वेदमाप्नोतिक्षत्रियो जयते महीम् । वैश्यस्तु लभतेलाभं शूद्रःसुखमवाप्नुयात्

व्याधितो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
गुर्विणी लभते पुत्रं कन्या विन्दति सत्पतिम् ॥

नष्टं च लभते सर्वमिह लोके परत्र च ॥ ११३ ॥

गवांशतसहस्रस्यसम्यग्दत्तस्ययत्फलम् । तत्फलंभवतिश्रुत्वाविभोर्दिव्यामिमांकथाम्
पादं वा यदिवाऽप्यर्धंश्लोकंश्लोकार्धमेव वा । यस्तु धारयतेनित्यंरुद्रलोकंसगच्छति

इतिहासमेनं गिरिराजपुत्रि ! मया सुतुष्टेन तवाम्बुजेक्षणे ।
निवेदितं पुण्यफलादियुक्तं मया च गीतं चतुराननेन ॥ ११६ ॥
कथामिमां पुण्यफलादियुक्तां निवेद्य देव्याः शशिबद्धमूर्धजः ।
वृषस्य पृष्ठेन सहोमया प्रभुर्जगाम किष्किन्धगुहां गुहप्रियः ॥ ११७ ॥
क्रान्तं मया पापहरं महापदं निवेद्य तेभ्यः प्रददौ प्रभञ्जनः ।
अधीत्य सर्वं त्वखिलं सलक्षणं जगाम आदित्यपथं द्विजोत्तमाः !॥११८॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे नीलकण्ठस्तवो नाम
चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मविष्णुकृतशिवलिङ्गदर्शनवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

गुणकर्मप्रभावैश्च कोऽधिको वदतां वरः । श्रोतुमिच्छामहे सम्यगैश्वर्यगुणविस्तरम्

सूत उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । महादेवस्य माहात्म्यं, विभुत्वं च महात्मनः

पूर्वं त्रैलोक्यविजये विष्णुना समुदाहृतम् ।
बलिं बद्ध्वा महौजास्तु त्रैलोक्याधिपतिः पुरा ॥ ३ ॥

प्रनष्टेषु च दैत्येषु प्रहृष्टे च शचीपतौ । अथाऽऽजग्मुःप्रभुंद्रष्टुं सर्वे देवाःसवासवाः

यत्राऽऽस्तेविश्वरूपात्माक्षीरोदस्यसमीपतः । सिद्धब्रह्मर्षयोयक्षागन्धर्वाप्सरसांगणाः
नागा देवर्षयश्चैव नद्यः सर्वे च पर्वताः । अभिगम्य महात्मानं स्तुवन्ति पुरुषं हरिम्

त्वं धाता त्वं च कर्ताऽस्य त्वं लोकान्सृजसि प्रभो ! ।
त्वत्प्रसादाच्च कल्याणं प्राप्तं त्रैलोक्यमव्ययम् ॥
असुराश्च जिताः सर्वे बलिर्बद्धश्च वै त्वया ॥ ७ ॥

एवमुक्तः सुरैर्विष्णुः सिद्धैश्च परमर्षिभिः । प्रत्युवाच ततो देवान्सर्वांस्तान्पुरुषोत्तमः
श्रूयतामभिधास्यामि कारणं सुरसत्तमाः । यः स्रष्टा सर्वभूतानां कालःकालकरःप्रभुः
येनहि ब्रह्मणा सार्धं सृष्टालोकाश्च मायया । तस्यैव च प्रसादेनआदौसिद्धत्वमागतम्
पुरा तमसि चाव्यक्ते त्रैलोक्ये ग्रासिते मया । उदरस्थेषु भूतेषु लोकेऽहं शयितस्तदा
सहस्रशीर्षो भूत्वाऽथसहस्राक्षःसहस्रपात् । शङ्खचक्रगदापाणिःशयितोविमलेऽम्भसि
एतस्मिन्नन्तरे दूरात्पश्यामि ह्यमितप्रभम् । शतसूर्यप्रतीकाशं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ॥
चतुर्वक्त्रं महायोगं पुरुषं काञ्चनप्रभम् । कृष्णाजिनधरं देवंकमण्डलुविभूषितम् ॥

निमेषान्तरमात्रेण प्राप्तोऽसौ पुरुषोत्तमः ॥ १४ ॥

ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा सर्वलोकनमस्कृतः । कस्त्वं कुतो वा किंचेह तिष्ठसेवदमेविभो
अहं कर्ताऽस्मि लोकानांस्वयंभूर्विश्वतोमुखः । एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणाऽहमुवाचतम्
अहं कर्ता च लोकानांसंहर्ता च पुनः पुनः । एवंसंभाषमाणाभ्यांपरस्परजयैषिणाम्

उत्तरां दिशमास्थाय ज्वाला दृष्टाऽप्यधिष्ठिता ॥ १७ ॥
ज्वलां ततस्तामालोक्य विस्मितौ च तदाऽनघाः ।
तेजसा चैव तेनाथ सर्वं ज्योतिष्कृतं जलम् ॥ १८ ॥

वर्धमाने तदा वह्नावत्यन्तपरमाद्भुते । अतिदुद्राव तां ज्वालां ब्रह्मा चाहं च सत्वरौ

दिवं भूमिं च विष्टभ्य तिष्ठन्तं ज्वालमण्डलम् ।
तस्य ज्वालस्य मध्ये तु पश्यावो विपुलप्रभम् ॥ २० ॥

प्रादेशमात्रमव्यक्तं लिङ्गं परमदीपितम् । न च तत्काञ्चनंमध्ये नशैलं न चराजतम् ॥
अनिर्देश्यमचिन्त्यं च लक्ष्यालक्ष्यं पुनः पुनः । महौजसं महाघोरं वर्धमानं भृशंतदा

ज्वालामालायतं न्यस्तं सर्वभूतभयंकरम् ॥ २२ ॥

अस्यलिङ्गस्ययोऽन्तं वै गच्छतेयन्त्रकारणम् । घोररूपिणमत्यर्थंभिन्दन्तमिवरोदसी
ततो मामब्रवीद्ब्रह्माअधोगच्छत्वतन्द्रितः । अन्तमस्यविजानीमोलिङ्गस्यतुमहात्मनः
अहमूर्ध्वं गमिष्यामि यावदन्तोऽस्य दृश्यते । तदा तौ समयं कृत्वागतावूर्ध्वमधश्चह
ततो वर्षसहस्रं तु अहं पुनरधो गतः । न च पश्यामि तस्यान्तं भीतश्चाहं न संशयः॥
तथा ब्रह्मा च श्रान्तश्च न चान्तंतस्य पश्यति । समागतो मयासार्धंतत्रैवचमहाम्भसि
ततो विस्मयमापन्नावुभौ तस्य महात्मनः । मायया मोहितौ तेननष्टसंज्ञौव्यवस्थितौ
ततो ध्यानगतं तत्र ईश्वरं सर्वतोमुखम् । प्रभवं निधनं चैव लोकानां प्रभुमव्ययम् ॥
ब्रह्माऽञ्जलिपुटो भूत्वा तस्मै शर्वाय शूलिने । महाभैरवनादाय भीमरूपाय दंष्ट्रिणे ॥

अव्यक्ताय महान्ताय नमस्कारं प्रकुर्महे ॥ ३० ॥

नमोऽस्तु ते लोकसुरेश ! देव ! नमोऽस्तु ते भूतपते ! महान्त ! ॥

नमोस्तु ते शाश्वत ! सिद्धयोने ! नमोऽस्तु ते सर्वजगत्प्रतिष्ठ ! ॥ ३१ ॥

परमेष्ठि(ष्ठी) परं ब्रह्म अक्षरं परमं पदम् । श्रेष्ठस्त्वं वामदेवश्च रुद्रः स्कन्दः शिवःप्रभुः

त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारः परं पदम् ।

स्वाहाकारो नमस्कारः संस्कारः सर्वकर्मणाम् ॥ ३३ ॥

स्वधाकारश्च जाप्यश्चव्रतानिनियमास्तथा । वेदा लोकाश्चदेवाश्चभगवानेवसर्वशः
आकाशस्य च शब्दस्त्वं भूतानां प्रभवाव्ययम् । भूमेर्गन्धोरसश्चापां तेजोरूपंमहेश्वर
वायोः स्पर्शश्चदेवेशवपुश्चन्द्रसम(मस)स्तथा । बुधो ज्ञानं च देवेशप्रकृतौबीजमेव च

त्वं कर्ता सर्वभूतानां कालो मृत्युर्यमोऽन्तकः ।

त्वं धारयसि लोकांस्त्रींस्त्वमेव सृजसि प्रभो ! ॥ ३७ ॥

पूर्वेणवदनेनत्वमिन्द्रत्वं(स्त्वं) च प्रकाशसे । दक्षिणेनचवक्त्रेनलोकान्संक्षियसिप्रभो
पश्चिमेन तु वक्त्रेण वरुणत्वंकरोषि वै । उत्तरेणतु वक्त्रेणसौम्यत्वंचव्यवस्थितम्
राजसे बहुधा देव लोकानां प्रभवाव्ययः । आदित्या वसवोरुद्रामरुतश्चाश्विनीसुतौ

साध्या विद्याधरा नागाश्चारणाश्च तपोधनाः ।

वालखिल्या महात्मानस्तपःसिद्धाश्च सुव्रताः ॥

त्वत्तः प्रसूता देवेश ये चान्ये नियतव्रताः । उमा सीता सिनीवालीकुहूर्गायत्रिरेवच?
लक्ष्मीःकीर्तिधृतिर्मेधालज्जाक्षान्तिर्वपुःस्वधा । तुष्टिःपुष्टिःक्रियाचैववाचांदेवीसरस्वती

त्वतः प्रसूता देवेश संध्या रात्रिस्तथैव च ॥ ४३ ॥

सूर्यायुतानामयुतप्रभाव ! नमोऽस्तु ते चन्द्रसहस्रगोचर !।
नमोऽस्तु ते पर्वतरूपधारिणे नमोस्तु ते सर्वगुणाकराय ॥ ४४ ॥
नमोस्तु ते पट्टिशरूपधारिणे नमोऽस्तु ते चर्मविभूतिधारिणे ।
नमोऽस्तु ते रुद्रपिनाकपाणये नमोस्तु ते शायकचक्रधारिणे ॥ ४५ ॥
नमोऽस्तु ते भस्मविभूषिताङ्ग ! नमोऽस्तु ते कामशरीरनाशन ! ।
नभोऽस्तु ते देव ! हिरण्यवाससे नमोऽस्तु ते देव ! हिरण्यबाहवे !॥४६॥
नमोऽस्तु ते देव ! हिरण्यरूप ! नमोऽस्तु ते देव ! हिरण्यनाभ ! ।
नमोऽस्तु ते नेत्रसहस्रचित्र ! नमोऽस्तु ते देव ! हिरण्यरेतः ! ॥ ४७ ॥
नमोऽस्तु ते देव ! हिरण्यवर्ण ! नमोऽस्तु ते देव ! हिरण्यगर्भ ! ।
नमोऽस्तु ते देव ! हिरण्यचीर ! नमोस्तु ते देव ! हिरण्यदायिने ॥ ४८ ॥
नमोऽस्तु ते देव ! हिरण्यमालिने ! नमोस्तु ते देव ! हिरण्यवाहिने ।
नमोऽस्तु ते देव ! हिरण्यवर्मने नमोस्तु ते भैरवनादनादिने ॥ ४६ ॥
नमोऽस्तु ते भैरववेगवेग ! नमोस्तु ते शंकर ! नीलकण्ठ ! ।
नमोऽस्तु ते दिव्यसहस्रबाहो ! नमोऽस्तु ते नर्तनवादनप्रिय ! ॥ ५० ॥

एवं संस्तूयमानस्तु व्यक्तो भूत्वा महामतिः । भाति देवो महायोगीसूर्यकोटिसमप्रभः
अभिभाष्यस्तदा हृष्टो महादेवो महेश्वरः । वक्त्रकोटिसहस्रेण ग्रसमानइवाम्बरम् ॥
एकग्रीवस्त्वेकजटो नानाभूषणभूषितः । नानारत्नविचित्राङ्गो नानामाल्यानुलेपनः ॥
पिनाकपाणिर्भगवान्वृषभासनशूलधृक् । दन्डकृष्णाजिनधरः कपाली घोररूपधृक् ॥
व्यालयज्ञोपवीती च सुराणामभयंकरः । दुन्दुभिस्वननिर्घोषपर्जन्यनिनदोपमः ॥

मुक्तो हासस्तदा तेन नभः सर्वमपूरयत् ॥ ५५ ॥

तेन शब्देन महता वयं भीता महात्मनः। तदोवाच महायोगी प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ ॥
पश्येतां च महामायां भयं सर्वं प्रमुच्यताम्। युवां प्रसूतौ गात्रेषु मम पूर्वं सनातनौ
अयं मे दक्षिणो बाहुर्ब्रह्मा लोकपितामहः। वामो बाहुश्चमेविष्णुर्नित्यंयुद्धेषुतिष्ठति ॥
प्रीतोऽहं युवयोः सम्यग्वरं दद्मि यथेप्सितम् ॥ ५८ ॥
ततः प्रहृष्टमनसौ प्रणतौ पादयोः पुनः। ऊचतुश्च महात्मानौ पुनरेव तदाऽनघौ ॥
यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ। भक्तिर्भवतु नो नित्यंत्वयि देव सुरेश्वर

भगवानुवाच

एवमस्तु महाभागौ सृजतांविविधाःप्रजाः। एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत
एवमेष मयोक्तो वः प्रभावस्तस्य योगिनः। तेन सर्वमिदं सृष्टं हेतुमात्रावयं त्विह॥
एतद्धिरूपमज्ञातमव्यक्तं शिवसंज्ञितम्। अचिन्त्यं तद्दृश्यं च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥
तस्मै देवाधिपत्याय नमस्कारं प्रयुञ्ज्वहे। येनसूक्ष्ममचिन्त्यं च पश्यन्तिज्ञानचक्षुषः
महादेव!नमस्तेऽस्तु महेश्वर! नमोऽस्तुते। सुरासुरवरश्रेष्ठ मनोहंस नमोऽस्तु ते ॥

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा गताः सर्वेसुराः स्वं स्वंनिवेशनम्। नमस्कारंप्रयुञ्जानाःशंकरायमहात्मने
इमं स्तवं पठेद्यस्तु ईश्वरस्य महात्मनः। कामांश्च लभते सर्वान्पापेभ्यस्तु विमुच्यते
एतत्सर्वं सदा तेन विष्णुना प्रभविष्णुना। महादेवप्रसादेन उक्तं ब्रह्म सनातनम् ॥
एतद्वः सर्वमाख्यातं मया माहेश्वरं बलम् ॥ ६८ ॥
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे लिङ्गोद्भवस्तवोनामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सोमादित्याभ्यां सहैलस्य संयोगनिरूपणम्

शांशपायन उवाच

अगात्कथममावस्यां मासि मासि दिनं नृपः। ऐडः पुरूरवाःसूतकथंवाऽतर्पयत्पितॄन्

सूत उवाच

तस्य चाहं प्रवक्ष्यामिप्रभावंशांशपायन। ऐडस्याऽऽदित्यसंयोगंसोमस्यचमहात्मनः
अपां सारमयस्येन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः। ह्रासवृद्धी पितृमतःपक्षस्यच विनिर्णयः
सोमाच्चैवामृतप्राप्तिःपितॄणांतर्पणंतथा। कव्याग्नेश्चाऽऽत्तसोमानांपितॄणांचैवदर्शनम्
यथा पुरूरवाश्चैडस्तर्पयामास वै पितॄन्। एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामिपर्वाणि च यथाक्रमम्
यदा तु चन्द्रसूर्यौ तौ नक्षत्रेण समागतौ। अमावास्यां निवसत एकरात्रैकमण्डले॥
सगच्छति तदा द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरौ। अमावास्याममावास्यां मातामहपितामहौ
अभिवाद्य तदा तत्र कालापेक्षः प्रतीक्षति(ते)॥ ७॥
प्रसीदमानात्सोमाच्च पित्रर्थं तत्परिस्रवात्। ऐलः पुरूरवाविद्वान्मासिमासिप्रयत्नतः
उपास्ते पितृमन्तं तं ससोमं स दिवा स्थितः॥ ८॥
द्विलवं कुहुमात्रं तु ते उभे तु विचार्यसः। सिनीवालीप्रमाणेन सिनीवालीमुपासकः
कुहुमात्रां कलां चैव ज्ञात्वोपास्ते कुहुंपुनः। सतदा भानुमत्येककालावेक्षी प्रपश्यति
सुधामृतं कुतः सोमात्प्रस्रवेन्मासतृप्तये। दशभिः पञ्चभिश्चैव सुधामृतपरिस्रवैः॥११
कृष्णपक्षे तदा पीत्वा दुह्यमानं तथांऽशुभिः। सद्यःप्रक्षरतातेनसौम्येन मधुना च सः
निर्वापणार्थं दत्तेन पित्र्येण विधिना नृपः। सुधामृतेन राजेन्द्रस्तर्पयामास वै पितॄन्
सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च॥ १३॥
ऋतुरग्निस्तु यःप्रोक्तःसतु संवत्सरोमतः। जज्ञिरे ह्यृतवस्तस्मादृतुभ्यश्चाऽऽर्तवाश्च ये
आर्तवा ह्यर्धमासाख्याः पितरोह्यब्दसूनवः। ऋतुः पितामहा मासा ऋतुश्चैवाब्दसूनवः
प्रपितामहास्तु वै देवाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः।
सौम्यास्तु सौम्यजा ज्ञेयाः काव्या ज्ञेयाः कवेः सुताः॥ १६॥
उपहूताः स्मृता देवाः सोमजाः सोमपास्तथा।
आज्यपास्तु स्मृताः काव्यास्तृप्यन्ति पितृजातयः॥ १७॥
काव्याबर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्चतेत्रिधा। गृहस्था ये च यज्वान ऋतुर्बर्हिषदो ध्रुवम्
गृहस्थाश्चापि यज्वानो अ(ह्य)ग्निष्वात्तास्तथाऽऽर्तवाः।

अग्निष्वात्ताः पितरः काव्याः पञ्चाब्दास्तान्निबोधत ॥ १६ ॥

एषां संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस्तु परिवत्सरः । सोम इद्वत्सरः प्रोक्तो वायुश्चैवानुवत्सरः
रुद्रस्तुवत्सरस्तेषांपञ्चाब्दायेयुगात्मकाः। लेखाश्चैवोष्मपाश्चैवदिवाकीर्त्याश्चतेस्मृताः
एते पिबन्त्यमावास्यां मासिमासिसुधांदिवि । तांस्तेनतर्पयामासयावदासीत्पुरूरवाः
यस्मात्प्रस्रवतेसोमान्मासिमासिनिबोधत। तस्मात्सुधामृतंतद्वैपितॄणांसोमपायिनाम्
एवं तदमृतं सौम्यं सुधा च मधुचैवह । कृष्णपक्षेयथाचेन्दोः कलाः पञ्चदश क्रमात्
पिबन्त्यम्बुमयीर्देवास्त्रयस्त्रिंशत्तु छन्दजाः । पीत्वाचमासंगच्छन्तिचतुर्दश्यांसुधामृतम्
इत्येवं पीयमानस्तु दैवतैश्च निशाकरः । समागच्छदमावास्यां भागेपञ्चदशे स्थितः
सुषुम्नाप्यायितं चैव अमावास्यांयथाक्रमम् । पिबन्तिद्विकलंकालंपितरस्तेसुधामृतम्
ततः पीतक्षयेसोमे सूर्योऽसावेकरश्मिना । आप्याययत्सुषुम्नेनपितॄणांसोमपायिनाम्
निःशेषायां कलायांतुसोममाप्याययत्पुनः । सुषुम्नाप्यायमानस्यभागंभागमहःक्रमात्

कलाः क्षीयन्ति ताः कृष्णाः शुक्लाश्चाऽऽप्यायन्ति तम् ॥ २६ ॥

एवं सूर्यस्यवीर्येण चन्द्रस्याऽऽप्यायितातनुः । दृश्यतेपौर्णमास्यांवैशुक्लःसंपूर्णमण्डलः

संसिद्धिरेवं सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ ३० ॥

इत्येष पितृमान्सोमः स्मृतइद्वत्सरःक्रमात् । क्रान्तःपञ्चदशैः सार्धं सुधामृतपरिस्रवैः
अतः पर्वाणिवक्ष्यामि पर्वणांसंधयस्तथा । ग्रन्थिमन्तियथापर्वाणीक्षुवेण्वोर्भवन्त्युत
तथाऽर्धमासपर्वाणि शुक्लकृष्णानि वै विदुः । पूर्णामावास्ययोर्भेदैर्ग्रन्थियासंधयश्चवै
अर्धमासास्तु पर्वाणितृतीयाप्रभृतीनितु । अग्न्याध्यानक्रिया यस्मात्क्रियतेपर्वसंधिषु

सायाह्ने ह्यनुमत्याऽसौ द्वौ लवौ काल उच्यते ।

लवौ द्वावेव राकायाः कालो ज्ञेयोऽपराह्णिकः ॥ ३५ ॥

प्रपिपत्कृष्णपक्षस्य कालेऽतीतेऽपराह्णिकः । सायाह्नेप्रतिपच्चैवसकालःपौर्णमासिकः
व्यतीपातेस्थितेसूर्येलेखोर्ध्व?तुयुगान्तरे । युगान्तरोदिते चैव लेखोर्ध्वे? शशिनः क्रमात्
पौर्णमासे व्यतीपाते यदीक्षेते परस्परम् । यस्मिन्काले स सोमान्तेसव्यतीपात एव
कालंसूर्यस्यनिर्देशंदृष्ट्वा संख्यातुसर्पति । सवैपथं? क्रियाकालःकालात्सद्यो विधीयते

पूर्णेन्दोः पूर्णपक्षे तु रात्रिसंधिषु पूर्णिमा । यस्मात्तामनुपश्यन्ति पितरो दैवतैः सह
तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णिमा प्रथमा स्मृता ॥ ४० ॥
अत्यर्थं भ्राजते यस्मात्पौर्णमास्यांनिशाकरः । रञ्जनाच्चैवचन्द्रस्यराकेतिकवयोविदुः
अमावसेताम्ऋक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ । एकां पञ्चदशींरात्रिममावास्याततः स्मृता
ततोऽपरस्य तैर्व्यक्तः पौर्णमास्यां निशाकरः । यदीक्षतेव्यतीपातेदिवापूर्णौ परस्परम्
चन्द्रार्कावपराह्णे तु पूर्णात्मानौ तु पूर्णिमा ॥ ४३ ॥
विच्छिन्नांताममावास्यां पश्यतश्चसमागतौ । अन्योन्यंचन्द्रसूर्यौतौयदा तद्दर्श उच्यते
द्वौ द्वौ लवावमावास्यांयःकालःपर्वसंधिषु । द्व्यक्षरं कुहुमात्रंतुएवंकालस्तु स स्मृतः
नष्टचन्द्राप्यमावास्या मध्यसूर्येण संगता ॥ ४५ ॥
दिवसार्धेन रात्र्यर्धं सूर्यं प्राप्यतुचन्द्रमाः । सूर्येण सहसा मुक्तं गत्वा प्रातस्तनोत्सवौ
द्वौ कालौ संगमश्चैव मध्याह्ने निष्पतेद्रविः ॥ ४६ ॥
प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमाः सूर्यमण्डलात् । निर्मुच्यमानयोर्मध्ये तयोर्मण्डलयोस्तु व
स तदा ह्याहुतेः कालोदर्शस्यचवषट्क्रिया । एतद्दतुमुखं ज्ञेयममावास्याऽस्य पर्वणः॥
दिवा पर्वण्यमावास्यां क्षीणेन्दौवहुलेतुवै । तस्मादिवाह्यमावस्यांगृह्यतेऽसौदिवाकरः
गृह्यते वै दिवा ह्यस्मादमावास्यां दिविक्षयैः ॥ ४६ ॥
कलानामपि वै तासां वहुमान्याजडात्मकैः । तिथीनांनामधेयानिविद्वद्भिःसंज्ञितानिवै
दर्शयेतामथान्योन्यं सूर्याचन्द्रमसावुभौ । निष्क्रामत्यथ तेनैव क्रमशः सूर्यमण्डलात् ॥
द्विलवेन ह्यहोरात्रं भास्करं स्पृशते शशी । स तदा ह्याहुतेःकालोदर्शस्यच वषट्क्रिया
कुहेतिकोकिलेनोक्तोयःकालःपरिचिह्नितः। तत्कालसंज्ञितायस्मादमावास्याकुहूःस्मृता
सिनीवालीप्रमाणेन क्षीणशेषोनिशाकरः । अमावास्यांविशत्यर्कंसिनीवालीततःस्मृता
अनुमत्याःसराकायाःसिनीवालीकुहूस्तथा । एतासांद्विलवःकालःकुहूमात्रा कुहूस्तथा
इत्येष पर्वसंधीनां कालो वै द्विलवः स्मृतः ॥ ५५ ॥
पर्वणः पर्वकालस्तु तुल्योवैतुवषट्क्रिया । चन्द्रसूर्यव्यतीपाते उभे ते पूर्णिमे स्मृते ॥
प्रतिपत्पञ्चदश्योश्च पर्वकालोद्विमात्रकः । कालःकुहूसिनीवाल्योःसमुद्रोद्विलवःस्मृतः

अर्काग्निमण्डले सोमे पर्वकालः कलाश्रयः । एवं स शुक्लपक्षो वै रजन्याः पर्वसंधिषु
संपूर्णमण्डलः श्रीमांश्चन्द्रमा उपरज्यते । यस्मादाप्यायते सोमःपञ्चदश्यांतु पूर्णिमा
दशभिःपञ्चभिश्चैवकलाभिर्दिवसक्रमात् । तस्मात्कलाःपञ्चदशीसोमेनास्तितुषोडशी

तस्मात्सोमस्य भवति पञ्चदश्यां महाक्षयः ॥ ६० ॥

इत्येते पितरोदेवाःसोमपाःसोमवर्धनाः । आर्तवा ऋतवो यस्मात्ते देवा भावयन्ति च
अतःपितॄन्प्रवक्ष्यामिमासश्राद्धभुजस्तुये । तेषां गतिं चसत्त्वं च गतिश्राद्धस्य चैव हि
न मृतानां गतिः शक्या विज्ञातुं पुनरागतिः । तपसाऽपि प्रसिद्धेनकिंपुनर्मांसचक्षुषा

श्राद्धदेवान्पितॄनेतान्पितरो लौकिकाः स्मृताः ।
देवाः सौम्याश्च यज्वानः सर्वे चैव ह्ययोनिजाः ॥ ६४ ॥
देवास्ते पितरः सर्वे देवास्तान्भावयन्त्युत ।
मनुष्याः पितरश्चैव तेभ्योऽन्ये लौकिकाः स्मृताः ॥ ६५ ॥

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । यज्वानो ये तु सोमेन सोमवन्तस्तु तेस्मृताः
ये यज्वानःस्मृतास्तेषांतेवैवर्हिषदःस्मृताः । कर्मस्वेतेषु युक्तास्ते तृप्यन्त्यादेहसंभवात्

अग्निष्वात्ताः स्मृतास्तेषां होमिनो याज्ययाजिनः ।
तेषां ते धर्मसाधर्म्यात्स्मृता सा योज्यकैर्द्विजैः ॥
ये वाऽप्याश्रमधर्मेण प्रख्यानेषु व्यवस्थिताः ॥ ६८ ॥

अन्ते च नैव सीदन्ति श्रद्धायुक्तेन कर्मणा । ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया च वै ॥
श्रद्धया विद्यया चैव प्रदानेन च सप्तधा । कर्मस्वेतेषु ये युक्ता भवन्त्यादेहपातनात् ॥
देवैस्तैः पितृभिः सार्धं सूक्ष्मकैः सोमपायकैः । स्वर्गतादिविमोदन्तेपितृमन्तमुपासते
प्रजावतां प्रशंसैव स्मृतासिद्धाक्रियावताम् । तेषांनिवापदत्तान्नं तत्कुलीनैश्च बान्धवैः
मासं श्राद्धभुजस्तृप्तिंलभन्तेसोमलौकिकाः । एतेमनुष्याःपितरोमासिश्राद्धभुजस्तु ते

तेभ्योऽपरे तु ये चान्ये संकीर्णाः कर्मयोनिषु ।
भ्रष्टाश्चाऽऽश्रमधर्मेभ्यः स्वधास्वाहाविवर्जिताः ॥ ७४ ॥

भिन्नदेहा दुरात्मानः प्रेतभूता यमक्षये । स्वकर्माण्येव शोचन्ति यातनास्थानमागताः

दीर्घायुषाऽतिशुष्काश्च विवर्णाश्चविवाससः । क्षुत्पिपासापरीताश्चविद्रवन्तिततस्ततः
सरित्सरस्तडागानिवापीश्चैवजलेप्सवः । परान्नानिच लिप्सन्तेकाल्यमानास्ततस्ततः
स्थानेषु पाच्यमानाश्च यातायातेषुतेषुवै । शाल्मलौ वैतरण्यांच कुम्भीपाकेषु तेषु च
करम्भवालुकायां च असिपत्रवने तथा । शिलासंपेषणे चैव पात्यमानाः स्वकर्मभिः
तत्र स्थानानितेषांवैदुःखानामप्यनाकवत् । तेषांलोकान्तरस्थानां विविधैर्नामगोत्रतः
भूम्यापसव्यं? दर्भेषु दत्त्वा पिण्डत्रयंतुवै । पतितांस्तर्पयन्ते च प्रेतस्थानेष्वधिष्ठिताः
अप्राप्तायातनास्थानंसृष्टायेभुविपञ्चधा । पश्वादिस्थावरान्तेषु भूतानां तेषु कर्मसु ॥
नानारूपासु जातीषुतिर्यग्योनिषुजातिषु । यदाहारा भवन्त्येते तासु तास्विह योनिषु
तस्मिंस्तस्मिंस्तदाहारं श्राद्धे दत्तोपतिष्ठति ॥? ८३ ॥
काले न्यायागतं पात्रं विधिना प्रतिपादितम् । प्राप्नोत्यन्नं यदादत्तंवन्धुर्यत्रावतिष्ठते
यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सोविन्दतिमातरम् । तथा श्राद्धे तदिष्टानांमन्त्रःप्रापयतेपितॄन्
एवं ह्यविकलं श्राद्धं श्रद्धादत्तं तु मन्त्रतः । सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन्दिव्येनचक्षुषा
गतागतिज्ञः प्रेतानां प्राप्तश्राद्धस्य चैव हि ॥ ८६ ॥
वह्नीकाश्चोष्मपाश्चैवदिवाकीर्त्याश्चतेस्मृताः। कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषांशुक्लःस्वप्नायशर्वरी
इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च वै । ऋतार्तवा अनेके तु अन्योन्यपितरः स्मृताः
एते तु पितरो देवा मानुषाः पितरश्च ये । प्रीतेषु तेषु प्रीयन्ते श्रद्धायुक्तेन कर्मणा ॥
इत्येवं पितरः प्रोक्ताः पितॄणांसोमपायिनाम् । एतत्पितृमतत्वं हि पुराणेनिश्चयोमतः
इत्यर्कपितृसोमानां ऐलस्य च समागमः । सुधामृतस्यचावाप्तिः पितॄणां चैवतर्पणम
पूर्णिमावास्ययोः कालःपितॄणांस्थानमेव च । समासात्कीर्तितस्तुभ्यमेषसर्गःसनातनः
वैश्वरूप्यं तु सर्वस्य कथितं चैकदेशिकम् । न शक्यं परिसंख्यातुंश्रद्धेयंभूतिमिच्छता
स्वायंभुवस्य हीत्येष सर्गः क्रान्तो मयाऽत्र वै ।
विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम् ॥ ९४ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे पितृवर्णनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

———

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

निमेषादिकालनिरूपणम्

ऋषय ऊचुः

चतुर्युगानि(णि)यान्यासपूर्वं स्वायंभुवेऽन्तरे ।
तेषां निसर्गं तत्त्वं च श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ॥ १ ॥

सूत उवाच

पृथिव्यादिप्रसङ्गेन यन्मया प्रागुदाहृतम् । तेषां चतुर्युगं ह्येतत्प्रवक्ष्यामि निबोधत ॥
संख्ययेह प्रसंख्याय विस्तराच्चैव सर्वशः । युगं च युगभेदं च युगधर्मं तथैव च ॥
युगसंध्यंशकं चैव युगसंधानमेव च । षट्प्रकारयुगाख्यानां प्रवक्ष्यामीह तत्त्वतः ॥
लौकिकेन प्रमाणेन विबुद्धोऽब्दस्तु मानुषः । तेनाब्देन प्रसंख्याय वक्ष्यामीहचतुर्युगम्
निमेषकालः काष्ठा च कलाश्चापिमुहूर्तकाः । निमेषकालतुल्यं हि विद्याल्लघ्वक्षरंचयत्

काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत्कलास्ताः ।
त्रिंशत्कलाश्चैव भवेन्मुहूर्तास्तत्त्रिंशता रात्र्यहणी(नी)समेते ॥ ७ ॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके । तत्राहः कर्मचेष्टायां रात्रिः स्वप्नाय कल्प्यते
पित्र्ये रात्र्यहणीमासःप्रविभागस्तयोः पुनः । कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषांशुक्लःस्वप्नायशर्वरी

त्रिंशच्च मानुषा मासाः पित्र्यो मासश्च स स्मृतः ।
शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्यधिकानि वै ॥
पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ॥ १० ॥

मानुषेणैव मानेनवर्षाणांयच्छतं भवेत् । पितॄणां त्रीणिवर्षाणि संख्यातानीहतानि वै

चत्वारश्चाधिका मासाः पित्र्ये चैवेह कीर्तिताः ॥ ११ ॥

लौकिकेनैवमानेनअब्दोयोमानुषःस्मृतः । एतद्दिव्यमहोरात्रं शास्त्रेऽस्मिन्निश्चयो मतः
दिव्ये रात्र्यहणी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः । अहस्तत्रोदगयनंरात्रिःस्यादक्षिणायनम्

ये ते राज्यहणीदिव्येप्रसंख्यातेतयोःपुनः । त्रिंशच्चतानिवर्षाणिदिव्योमासस्तुसस्मृतः
मानुषं च शतंविद्धिदिव्यमासास्त्रयस्तु ते । दशचैवतथाऽहानिदिव्योह्येषविधिःस्मृतः
त्रीणि वर्षशतान्येवषष्टिव(र्व)र्षाणि यानिच । दिव्यःसंवत्सरो ह्येषमानुषेणप्रकीर्तितः
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः । त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः
नव यानि सहस्राणि वर्षाणांमानुषाणि तु । अन्यानिनवतिश्चैवक्रौञ्चःसंवत्सरःस्मृतः
षट्त्रिंशत्तु सहस्राणिवर्षाणांमानुषाणि तु । षष्टिश्चैव सहस्राणिवर्षाणां मानुषाणि तु
वर्षाणां तु शतं ज्ञेयं दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ॥ १९ ॥
त्रीण्येवनियुतान्याहुर्वर्षाणांमानुषाणि च । षष्टिश्चैव सहस्राणिसंख्यातानितुसंख्यया
दिव्यं वर्षसहस्रं तु प्राहुः संख्याविदो जनाः ॥ २० ॥
इत्येवमृषिभिर्गीतं दिव्यया संख्ययाऽन्वितम् । दिव्येनैवप्रमाणेनयुगसंख्याप्रकल्पनम्
चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः । पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ॥
द्वापरश्च कलिश्चैव युगान्येतान्यकल्पयत् ॥ २२ ॥
चत्वार्याहुःसहस्राणिवर्षाणां तु कृतंयुगम् । तत्रतावच्छतीसंध्यासंध्यांशश्चतथाविधः
इतरासु च संध्यासु संध्यांशेषु च वै त्रिषु । एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानिच
त्रेतात्रीणिसहस्राणिसंख्यैवपरिकीर्त्यते। तस्यास्तुत्रिशतीसंध्यासंध्यांशश्चतथाविधः
द्वापरं द्वे सहस्रे तु युगमाहुर्मनीषिणः । तस्यापि द्विशतीसंध्यासंध्यांशःसंध्ययासमः
कलिं वर्षसहस्रं तु युगमाहुर्मनीषिणः । तस्याप्येकशती संध्यासंध्यांशःसंध्ययासमः
एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या परिकीर्तिता । कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चैव चतुष्टयम्
अत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः । कृतस्य तावद्वक्ष्यामि वर्षाणांतत्प्रमाणतः
सहस्राणां शतान्यत्र चतुर्दश तु संख्यया । चत्वारिंशत्सहस्राणिकलिकालयुगस्य तु
एवं संख्यातकालश्च कालेष्विहविशेषतः । एवं चतुर्युगः कालोविनासंध्यांशकैःस्मृतः
नियुतान्येकषड्विंशन्निरंशानितु तानि वै । चत्वारिंशत्त्रीणिचैवनियुतानिचसंख्यया
विंशतिश्च सहस्राणि स संध्यांशश्चतुर्युगे ॥ ३२ ॥
एवं चतुर्युगाख्या तु साधिका ह्येकसप्ततिः । कृतत्रेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते

मन्वन्तरस्यसंख्या तु वर्षाग्रेणनिबोधत । त्रिंशत्कोट्यस्तु वर्षाणांमानुषेणप्रकीर्तिताः

सप्तषष्टिस्तथाऽन्यानि नियुतान्यधिकानि तु ।
विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं संधिकं विना ॥ ३५ ॥
मन्वन्तरस्य संख्यैषा संख्याविद्भिर्द्विजैः स्मृता ।
मन्वन्तरस्य कालोऽयं युगैः सार्धं प्रकीर्तितः ॥ ३६ ॥

चतुःसहस्रयुक्तं वै प्रथमं तत्कृतं युगम् । त्रेतावशिष्टं वक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च ॥
युगपत्समवेतार्थौ द्विधा वक्तुं न शक्यते । क्रमागतं मया ह्येतत्तुभ्यं प्रोक्तं युगद्वयम्

ऋषिवंशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वात्तथैव च ॥ ३८ ॥

तत्रत्रेतायुगस्याऽऽदौमनुःसप्तर्षयश्च ते । श्रौतंस्मार्तं च धर्मं च ब्रह्मणा च प्रचोदितम्
दाराग्निहोत्रसंयोगमृग्यजुःसामसंज्ञितम् । इत्यादिलक्षणं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन्
परम्परागतं धर्मंस्मार्तंचाऽऽचारलक्षणम् । वर्णाश्रमाचारयुतं मनुःस्वायंभुवोऽब्रवीत्
सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा च वै । तेषां सुतप्ततपसामार्षेयेण क्रमेण तु ॥ ४२ ॥
सप्तर्षीणां मनोश्चैव आद्ये त्रेतायुगस्य तु । अबुद्धिपूर्वकंतेषामक्रियापूर्वमेव च ॥४३॥
अभिव्यक्तास्तु ते मन्त्रास्तारकाद्यैर्निदर्शनैः । आदिकल्पेषुदेवानांप्रादूर्भूतास्तुतेस्वयम्
प्रणाशे त्वथसिद्धीनामन्यासां च प्रवर्तनम् । आसन्मन्त्राव्यतीतेषु ये कल्पेषुसहस्रशः

ते मन्त्रा वै पुनस्तेषां प्रतिभाससमुत्थिताः ॥ ४५ ॥
ऋचोयजूंषि सामानि मन्त्राश्चाथर्वणानि च ।
सप्तर्षिभिस्तु ते प्रोक्ताःस्मार्तंधर्मं मनुर्जगौ ॥ ४६ ॥

त्रेतादौ संहिता वेदाः केवला धर्मशेषतः । संरोधादायुषश्चैव व्यस्यन्ते द्वापरेषु ते ॥
ऋषयस्तपसा देवाः कलौ च द्वापरेषु वै । अनादिनिधना दिव्याः पूर्वंसृष्टाःस्वयंभुवा
सधर्माः सप्रजाः साङ्गा यथाधर्मं युगे युगे । विक्रियन्तेसमानार्थावेदवादायथायुगम्
आरम्भयज्ञाः क्षत्त्रस्य हविर्यज्ञाविशांपतेः । परिचारयज्ञाःशूद्रास्तुजपयज्ञाद्विजोत्तमाः
तदा प्रमुदितावर्णास्त्रेतायांधर्मपालिताः । क्रियावन्तःप्रजावन्तःसमृद्धाःसुखिनस्तथा
ब्राह्मणाननुवर्तन्ते क्षत्त्रियाः क्षत्त्रियान्विशः । वैश्यानुवर्तिनः शूद्राः परस्परमनुव्रताः

शुभाः प्रवृत्तयस्तेषां धर्मा वर्णाश्रमास्तथा । संकल्पितेन मनसा वाचोक्तेनस्वकर्मणा

त्रेतायुगे त्वविकलः कर्मारम्भः प्रसिध्यति ॥ ५३ ॥

आयुर्मेधा बलं रूपमारोग्यं धर्मशीलता । सर्वसाधारणा ह्येते त्रेतायां वै भवन्त्युत ॥

वर्णाश्रमव्यवस्थानं तेषां ब्रह्मा तथाऽकरोत् ।

पुनः प्रजास्तु ता मोहात्तान्धर्मान्न ह्यपालयन् ॥ ५५ ॥

परस्परविरोधेन मनुं ताः पुनरन्वयुः । मनुः स्वायंभुवो दृष्ट्वा याथातथ्यं प्रजापतिः ध्यात्वा तु शतरूपायाः पुमान्स उदपादयत् । प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रथमं तौ महीपती ततः प्रभृति राजान उत्पन्ना दण्डधारिणः । प्रजानां रञ्जनाच्चैव राजानस्त्वभवन्नृपाः प्रच्छन्नपापा ये जेतुमशक्या मनुजा भुवि । धर्मसंस्थापनार्थाय तेषां शास्त्रेतपोमयाः वर्णानां प्रविभागाश्च त्रेतायांसंप्रकीर्तिताः । संहिताश्चततोमन्त्राऋषिभिर्ब्राह्मणैस्तुते यज्ञः प्रवर्तितश्चैव तदा ह्येवं तु दैवतैः । यामैः शुक्रैर्जपैश्चैव सर्वसंभारसंवृतैः ॥ ६१ ॥ सार्धं विश्वभुजा चैव देवेन्द्रेण महौजसा । स्वायंभुवेऽन्तरे देवैर्यज्ञास्तेप्राक्प्रवर्तिताः सत्यं जपस्तपो दानं त्रेतायां धर्म उच्यते । क्रिया धर्मश्च ह्रसते सत्यधर्मः प्रवर्तते ॥ प्रजायन्ते ततः शूरा आयुष्मन्तोमहाबलाः । न्यस्तदण्डमहाभागायज्वानोब्रह्मवादिनः पद्मपत्रायताक्षाश्च पृथूरस्काः सुसंहिताः । सिंहान्तका महासत्त्वा मत्तमातङ्गगामिनः महाधनुर्धराश्चैव त्रेतायां चक्रवर्तिनः । सर्वलक्षणसंपन्ना न्यग्रोधपरिमण्डलाः ॥६६॥

न्यग्रोधौ तौ स्मृतौ बाहू व्यामो न्यग्रोध उच्यते ।

व्यामेनैवोच्छ्रयो यस्य सम ऊर्ध्वं तु देहिनः ॥

समुच्छ्रयपरीणाहो ज्ञेयो न्यग्रोधमण्डलः ॥ ६७ ॥

चक्रं रथो मणिर्भार्या निधिरश्वा गजास्तथा । सप्तातिशयरत्नानिसर्वेषांचक्रवर्तिनाम् चक्रं रथो मणिःखड्गंधनूरत्नं च पञ्चमम् । केतुर्निधिश्चसप्तैतेप्राणहीनाःप्रकीर्तिताः भार्या पुरोहितश्चैव सेनानी रथकृच्च यः । मन्त्र्यश्वः कलभश्चैव प्राणिनःसंप्रकीर्तिताः रत्नान्येतानि दिव्यानि संसिद्धानिमहात्मनाम् । चतुर्दशविधेयानिसर्वेषांचक्रवर्तिनाम् विष्णोरंशेन जायन्ते पृथिव्यां चक्रवर्तिनः । मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेषु वै ॥

भूतभव्यानि यानीह वर्तमानानि यानि च । त्रेतायुगादिकेष्वत्र जायन्ते चक्रवर्तिनः
भद्राणीमानि तेषां वै भवन्तीहमहीक्षिताम् । अद्भुतानि च चत्वारिबलंधर्मःसुखंधनम्
अन्योन्यस्याविरोधेनप्राप्यन्ते वै नृपैः समम् । अर्थोधर्मश्च कामश्चयशोविजयएवच
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्त्या तथैव च । अन्नेन तपसा चैव ऋषीनभिभवन्ति च ॥
बलेन तपसा चैव देवदानवमानुषान् ॥ ७६ ॥
लक्षणैश्चापिजायन्तेशरीरस्थैरमानुषैः । केशस्थितालल्लाटोर्णाजिह्वा चाऽऽस्यप्रमार्जनी
ताम्रप्रभोष्ठदन्तोष्ठाः श्रीवत्साश्चोर्ध्वरोमशाः ॥ ७७ ॥
आजानुबाहवश्चैव जालहस्ता वृषाङ्किताः । न्यग्रोधपरिणाहाश्चसिंहस्कन्धाःसुमेहनाः
गजेन्द्रगतयश्चैव महाहनव एव च ॥ ७८ ॥
पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपद्मौतुहस्तयोः । पञ्चाशीतिसहस्राणितेभवन्त्यजरानृपाः
असङ्गा गतयस्तेषां चतस्रश्चक्रवर्तिनाम् । अन्तरिक्षे समुद्रे च पाताले पर्वतेषु च ॥
इज्यादानं तपः सत्यं त्रेतायां धर्म उच्यते । तदा प्रवर्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः ॥
मर्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्तते । हृष्टपुष्टाः प्रजाः सर्वा ह्यरोगाःपूर्णमानसाः
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायुगविधौस्मृतः । त्रीणि वर्षसहस्राणितदाजीवन्तिमानवाः
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण तु । एष त्रेतायुगे धर्मस्त्रेतासंधौ निबोधत ॥
त्रेतायुगस्वभावस्तु संध्यापादेन वर्तते । संध्यायां वै स्वभावस्तु युगपादेन तिष्ठति

शांशपायन उवाच

कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्याऽऽसीत्प्रवर्तनम् । पूर्वं स्वायंभुवे सर्गेयथावत्तद्ब्रवीहि मे ॥
अन्तर्हितायां संध्यायां सार्धं कृतयुगेन वै । कलाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगेतदा
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृतवन्तश्च वै पुनः ॥ ८७ ॥
संभारांस्तांश्च संभृत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः । एतच्छ्रुत्वाऽब्रवीत्सूतः श्रूयतांशांशपायन
यथा त्रेतायुगमुखे यज्ञस्याऽऽसीत्प्रवर्तनम् । ओषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने
प्रतिष्ठितायां वार्तायां गृहाश्रमपुरेषु च ॥ ८६ ॥
वर्णाश्रमव्यवस्थानंकृत्वामन्त्रांश्च संहिताम् । मन्त्रान्संयोजयित्वाऽथइहामुत्रेषुकर्मसु

तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत्तदा। दैवतैः सहितः सर्वैः सर्वसंभारसंभृतम्॥
अथाश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः। यजन्ते पाशुभिर्मेध्यैर्हुत्वा सर्वे समागताः॥
कर्मव्यग्रेषु ऋत्विक्षु सतते यज्ञकर्मणि। संप्रगीतेषु तेष्वेवमागमेष्वथ सुस्वरम्॥
परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्युवृषभेषु च। आलब्धेषु च मेध्येषु तथा पशुगणेषु वै॥
हविष्यग्नौ हूयमाने देवानां देवहोतृभिः। आहूतेषु च देवेषु यज्ञभाक्षु महात्मसु॥
य इन्द्रियात्मका देवायज्ञभाजस्तथा तु ये। तान्यजन्ते तदादेवाःकल्पादिषुभवन्तिये
अध्वर्यवःप्रैषकालेव्युत्थिता ये महर्षयः। महर्षयस्तु तान्दृष्ट्वादीनान्पशुगणान्स्थितान्
पप्रच्छुरिन्द्रं संभूय कोऽयं यज्ञविधिस्तव॥ ९७॥
अधर्मो वलवानेष हिंसाधर्मेप्सया तव। नेष्टः पशुवधस्त्वेष तव यज्ञे सुरोत्तम!॥९८॥
अधर्मोधर्मघातायप्रारब्धःपशुभिस्त्वया। नायं धर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसा धर्मउच्यते
आगमेन भवान्यज्ञं करोतु यदिहेच्छसि। विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मेमव्ययहेतुना॥
यज्ञवीजैः सुरश्रेष्ठ! येषु हिंसा न विद्यते॥ १००॥
त्रिवर्षपरमं कालमुषितैरप्ररोहिभिः। एष धर्मो महानिन्द्र स्वयंभुविहितः पुरा॥१०१
एवं विश्वभुगिन्द्रस्तु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। जङ्गमैः स्थावरैर्वेति कैर्यष्टव्यमिहोच्यते
ते तु खिन्ना विवादेन तत्त्वयुक्ता महर्षयः। संधाय वाक्यमिन्द्रेणपप्रच्छुश्चेश्वरंवसुम्

ऋषय ऊचुः

महाप्राज्ञ कथं दृष्टस्त्वया यज्ञविधिर्नृप। उत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं छिन्धिनः प्रभो
श्रुत्वा वाक्यं ततस्तेषामविचार्य वलावलम्। वेदशास्त्रमनुस्मृत्ययज्ञतत्त्वमुवाच ह॥
यथोपदिष्टैर्यष्टव्यमिति होवाच पार्थिवः॥ १०५॥
यष्टव्यं पशुभिर्मेध्यैरथ वीजैः फलैस्तथा। हिंसास्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शयत्यसौ
यथेह संहितामन्त्रा हिंसालिङ्गा महर्षिभिः। दीर्घेण तपसा युक्तैर्दर्शनैस्तारकादिभिः
तत्प्रामाण्यांन्मया चोक्तं तस्मान्मा मन्तुमर्हथ॥ १०७॥
यदि प्रमाणं तान्येव मन्त्रवाक्यानि(णि) वै द्विजाः।
तदाप्रवर्ततांयज्ञो ह्यन्यथानोऽनृतं वचः। एवं कृतोत्तरास्ते वै युक्तात्मानस्तपोधनाः

अधश्च भवनंदृष्ट्वा तमर्थं वाग्यतो भव । मिथ्यावादीनृपो यस्मात्प्रविवेश रसातलम्
इत्युक्तमात्रे नृपतिः प्रविवेश रसातलम् । ऊर्ध्वचारी वसुर्भूत्वा रसातलचरोऽभवत्
वसुधातलवासीतुतेनवाक्येनसोऽभवत् । धर्माणांसंशयच्छेत्ताराजावसुरथाऽऽगतः
तस्मान्न वाच्यमेकेन बहुज्ञेनापि संशयः । बहुद्वारस्य धर्मस्य सूक्ष्माद्दूरमुपागतिः ॥
तस्मान्न निश्चयाद्वक्तुं धर्मः शक्यस्तु केनचित् । देवानृषीनुपादायस्वायंभुवमृतेमनुम्
तस्मान्न हिंसा धर्मस्य द्वारमुक्तंमहर्षिभिः । ऋषिकोटिसहस्राणिकर्मभिःस्वैर्दिवंययुः
तस्मान्न दानं यज्ञं वा प्रशंसन्ति महर्षयः । तुच्छं मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः
एवं दत्त्वा विभवतः स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः ॥ ११५ ॥
अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तपः । ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशः क्षमा धृतिः ॥
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद् दुरासदम् ॥ ११६ ॥
धर्ममन्त्रात्मको यज्ञस्तपश्चानशनात्मकम् । यज्ञेन देवानाप्नोति वैराग्यं तपसापुनः
ब्राह्मण्यं कर्मसंन्यासाद्वैराग्यात्प्रेक्षते लयम् ।
ज्ञानात्प्राप्नोति कैवल्यं पञ्चैता गतयः स्मृताः ॥ ११८ ॥
एवं विवादः सुमहान्यज्ञस्याऽऽसीत्प्रवर्तने । ऋषीणांदेवतानां च पूर्वंस्वायंभुवेऽन्तरे
ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वाऽद्भुतं वर्त्म बलेन तु । वसोर्वाक्यमनादृत्य जग्मुस्ते वै यथागताः
गतेषु देसंघेषु देवा यज्ञमवाप्नुयुः । श्रूयन्ते हि तपःसिद्धाब्रह्मक्षत्रमया नृपाः ॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसुः । सुमेधा विरजाश्चैव शङ्खपाद्रज एव च ॥
प्राचीनबर्हिः पर्जन्यो हविर्धानादयो नृपाः ॥ १२२ ॥
एते चान्येच बहवोनृपाःसिद्धादिवंगताः । राजर्षयोमहासत्त्वा येषां कीर्तिः प्रतिष्ठिता
तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तपः सर्वैस्तु कारणैः । ब्रह्मणा तपसा सृष्टं जगद्विश्वमिदं पुरा
तस्मान्नात्येति तद्यज्ञस्तपोमूलमिदं स्मृतम् । यज्ञप्रवर्तनं ह्येवमेतः स्वायंभुवेऽन्तरे ॥
ततः प्रभृति यज्ञोऽयं युगैः सह व्यवर्तत ॥ १२५ ॥
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे यज्ञप्रवर्तनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

चतुर्युगाख्यानवर्णनम्

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः । तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते ॥
द्वापरादौ प्रजानां तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या । परिवृत्तेयुगे तस्मिंस्ततःसासंप्रणश्यति
ततः प्रवर्तते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः । लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः

संभेदश्चैव वर्णानां कार्याणां च विनिर्णयः ।
याञ्चा वधः पणो दण्डो मदो दम्भोऽक्षमाऽबलम् ॥
एषां रजस्तमोयुक्ता प्रवृत्तिर्द्वापरे स्मृता ॥ ४ ॥

आद्ये कृते न धर्मोऽस्तित्रेतायां संप्रपद्यते । द्वापरे व्याकुली भूत्वा प्रणश्यतिकलौयुगे
वर्णानां विपरिध्वंसः संकीर्त्यतेतथाऽऽश्रमः । द्वैधमुत्पद्यतेचैवयुगेतस्मिञ्श्रुतौस्मृतौ
द्वैधाच्छ्रुतेः स्मृतेश्चैव निश्चयो नाधिगम्यते । अनिश्चयाधिगमनाद्धर्मतत्त्वं न विद्यते

धर्मतत्त्वे तु भिन्नानां मतिभेदो भवेन्नृणाम् ॥ ७ ॥

परस्परविभिन्नैस्तैर्दृष्टीनां विभ्रमेण च । अयं धर्मो ह्ययं नेति निश्चयो नाभिगम्यते
कारणानां च वैकल्यात्कारणस्याप्यनिश्चयात् । मतिभेदेचतेषांवैदृष्टीनांविभ्रमोभवेत्
ततो दृष्टिविभिन्नैस्तैः कृतं शास्त्रकुलंत्विदम् । एकोदेवश्चतुष्पादस्त्रेतास्विहविधीयते
संरोधादायुषश्चैव दृश्यते द्वापरेषु च । वेदव्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ॥
ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः । मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः ॥

संहिता ऋग्यजुःसाम्नां संहन्यन्ते श्रुतर्षिभिः ।
सामान्याद्वैकृताच्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित्क्वचित् ॥१३ ॥

ब्राह्मणंकल्पसूत्राणिमन्त्रप्रवचनानि च । अन्येतुप्रहितास्तीर्थैःकेचित्तान्प्रत्यवस्थिताः
द्वापरेषु प्रवर्तन्ते भिन्नवृत्ताश्रमाद्विजाः । एकमाध्वर्यवं पूर्वमासीद्द्वैधं पुनस्ततः ॥

सामान्यविपरीतार्थैः कृतंशास्त्रकुलंत्विदम् । आध्वर्यवस्यप्रस्तावैर्वहुधाव्याकुलंकृतम्
तथैवाथर्वऋक्साम्नां विकल्पैश्चाप्यसंक्षयैः । व्याकुलं द्वापरे भिन्नं क्रियते भिन्नदर्शनैः
तेषां भेदाः प्रभेदाश्च विकल्पैश्चाप्यसंक्षयाः । द्वापरेसंप्रवर्तन्ते विनश्यन्ति पुनः कलौ
तेषां विपर्ययाश्चैव भवन्ति द्वापरे पुनः । अवृष्टिर्मरणं चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः ॥
वाङ्मनःकर्मजैर्दुखैःर्निर्वेदो जायते पुनः । निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा ॥
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम् । दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसंभवः ॥
तेषां च मानिनां पूर्वमाद्येस्वायंभुवेऽन्तरे । उत्पद्यन्ते हि शास्त्राणांद्वापरेपरिपन्थिनः
आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गानांज्योतिषस्य च । अर्थशास्त्रविकल्पश्चहेतुशास्त्रविकल्पनम्
स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्चप्रस्थानानिपृथक्पृथक् । द्वापरेष्वभिवर्तन्तेमतिभेदास्तथानृणाम्
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्ता प्रसिध्यति । द्वापरे सर्वभूतानांकायक्लेशपुरस्कृता
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः । वेदशास्त्रप्रणयनं धर्माणां संकरस्तथा
द्वापरेषु प्रवर्तन्ते रागो लोभो वधस्तथा । वर्णाश्रमपरिध्वंसाः कामद्वेषौ तथैव च ॥
पूर्णे वर्षसहस्त्रे द्वे परमायुस्तथा नृणाम् । निःशेषे द्वापरे तस्मिंस्तस्यसंध्यातुपादतः
प्रतिष्ठते गुणैर्हीनो धर्मोऽसौ द्वापरस्य तु । तथैव संध्यापादेन अंशस्तस्यावतिष्ठते ॥
द्वापरस्य च वर्षे या तिष्यस्य तु निबोधत । द्वापरस्यांशशेषें तु प्रतिपत्तिः कलेरतः

हिंसाऽसूयाऽनृतं माया वधश्चैव तपस्विनाम् ।
एते स्वभावास्तिष्यस्य साधयन्ति च वै प्रजाः ॥ ३१ ॥

एष धर्मः कृतः कृत्स्नोधर्मस्यपरिहीयते । मनसा कर्मणा स्तुत्यावार्तासिध्यतिवानवा
कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद्भयानि वै । अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विपर्ययः
न प्रमाणं स्मृतेरस्तितिष्येलोके युगे युगे । गर्भस्थोम्रियतेकश्चिद्यौवनस्थस्तथाऽपरः

स्थाविरे माध्यकौमारे म्रियन्ते वै कलौ प्रजाः ॥ ३४ ॥

अधार्मिकास्त्वनाचारामोहकोपाल्पतेजसः । अनृतब्रुवाश्चसततं तिष्येजायन्तिवैप्रजाः
दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः । विप्राणां कर्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भयम् ॥

हिंसा माया तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाऽक्षमाऽनृतम् ।

तिष्ये भवन्ति जन्तूनां रागो लोभश्च सर्वशः ॥ ३७ ॥
संक्षोभोजायतेऽत्यर्थंकलिमासाद्य वै युगम् । नाधीयन्तेतदावेदा न यजन्तेद्विजातयः
उत्सीदन्ति नराश्चैव क्षत्त्रियाः सविशः क्रमात् ॥ ३८ ॥
शूद्राणामन्त्ययोनेस्तु संवन्धा ब्राह्मणैः सह । भवन्तीहकलौतस्मिञ्शयनासनभोजनैः
राजानः शूद्रभूयिष्ठाः पाषण्डानां प्रवर्तकाः । भ्रूणहत्याः प्रजास्तत्र प्रजा एवं प्रवर्तते
आयुर्मेधा वलं रूपं कुलं चैव प्रहीयते । शूद्राश्चब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्चब्राह्मणाः
राजवृत्तेस्थिताश्चौराश्चौरवृत्ताश्चपार्थिवाः । भृत्याश्चनष्टसुहृदोयुगान्तेपर्युपस्थिते
अशीलिन्योऽव्रताश्चापि स्त्रियो मद्यामिषप्रियाः ।
मायामात्रा भविष्यन्ति युगान्ते प्रत्युपस्थिते ॥ ४३ ॥
श्वापदप्रवलत्वं च गवां चैवाप्युपक्षयः । साधूनां विनिवृत्तिश्च विद्यात्तस्मिन्कलौयुगे
तदा सूक्ष्मो महोदर्को दुर्लभो दानमूलवान् । चतुराश्रमशैथिल्याद्धर्मः प्रविजलिष्यति
तदाह्यल्पफला देवी भवेद्भूमिर्महीयसी । शूद्रास्तपश्चरिष्यन्ति युगान्तेप्रत्युपस्थिते
तदा ह्यैकाह्निको धर्मो द्वापरे यश्चमासिकः । त्रेतायांवत्सरस्थश्चएकाह्नादतिरिच्यते
अरक्षितारो हर्तारो वलिभागस्य पार्थिवाः । युगान्तेषुभविष्यन्तिस्वरक्षणपरायणाः
अक्षत्त्रियाश्च राजानो विशःशूद्रोपजीविनः । शूद्राभिवादिनःसर्वेयुगान्तेद्विजसत्तमाः
यतयश्च भविष्यन्ति वहवोऽस्मिन्कलौ युगे । चित्रवर्षी तदादेवोयदास्यात्तुयुगक्षयः
सर्वे वाणिजकाश्चापिभविष्यन्त्यधमे युगे । शूद्राश्चयतिनश्चैवगूढवासास्तपस्विनः
लोलुपाः परदारेषु नष्टमार्गाः कलौ युगे । भूयिष्ठं कूटमानैश्च पण्यं विक्रीयते जनैः
कुशीलचर्या पाषण्डैर्वृथारूपैः समावृतम् । पुरुषाल्पं वहुस्त्रीकं युगान्ते पर्युपस्थिते ॥
वहुयाचनको लोको भविष्यति परस्परम् । क्रव्यादनः क्रूरवाक्योऽनार्जवोनानसूयकः
न कृते प्रतिकर्ता च क्षीणोलोकोभविष्यति । अशङ्का चैव पतितेतद्युगान्तस्यलक्षणम्
नरशून्या वसुमती शून्याचैव भविष्यति । मण्डलानि भवन्त्यत्र देशेषु नगरेषु च
अल्पोदकाचाल्पफलाभविष्यतिवसुंधरा । गोप्तारश्चाप्यगोप्तारःप्रभविष्यन्त्यशासनाः
हर्तारः पररत्नानां परदारप्रधर्षकाः । कामात्मानो दुरात्मानोह्यधर्मात्साहसप्रियाः ॥

प्रनष्टचेतनाः पुंसो मुक्तकेशास्तु चूलिकाः । ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये ॥
शुक्लदन्ता जिताक्षाश्चमुण्डाःकाषायवाससः । शूद्रा धर्मंचरिष्यन्तियुगान्तेपर्युपस्थिते
सस्यचौरा भविष्यन्ति तथाचैलाभिमर्शनाः । चौराश्चौरस्य हर्तारो हर्तुर्हर्तार एव च
ज्ञानकर्मण्युपरते लोके निष्क्रियतां गते । कीटमूषिकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान्

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सामर्थ्यं दुर्लभं भवेत् ।
कौशिकाः प्रतिवत्स्यन्ति देशान्क्षुद्भयपीडितान् ॥ ६३ ॥

दुःखेनाभिप्लुतानांचपरमायुःशतंभवेत् । दृश्यन्ते न च दृश्यन्तेवेदाःकलियुगेऽखिलाः
उत्सीदन्तितथायज्ञाःकेवलाधर्मपीडिताः । कषायिणश्चनिर्ग्रन्थास्तथाकापालिनश्चह
वेदविक्रयिणश्चान्येतीर्थविक्रयिणोऽपरे । वर्णाश्रमाणांयेचान्येपाषण्डाःपारपन्थिनः
उत्पद्यन्ते तथा ते वै संप्राप्ते तु कलौ युगे । नाधीयन्तेतदावेदाःशूद्रा धर्मार्थकोविदाः
यजन्ते नाश्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः । स्त्रीवधं गोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम्

उपहन्युस्तदाऽन्योन्यं साधयन्ति तथा प्रजाः ॥ ६८ ॥
दुःखप्रचारतोऽल्पायुर्देशोत्सादः सरोगता ।
मोहो ग्लानिस्तथा सौख्यं तमोवृत्तं कलौस्मृतम् ॥ ६९ ॥

प्रजासु भ्रूणहत्या च अथ वै संप्रवर्तते । तस्मादायुर्बलं रूपं कलिं प्राप्य प्रहीयते ॥

दुःखेनाभिप्लुतानां वै परमायुः शतं नृणाम् ॥ ७० ॥

दृश्यन्ते नाभिदृश्यन्तेवेदाःकलियुगेऽखिलाः । उत्सीदन्तेतदायज्ञाःकेवलाधर्मपीडिताः
तदात्वल्पेनकालेनसिद्धिंयास्यान्तिमानवाः । धन्याधर्मंचरिष्यन्तियुगान्तेद्विजसत्तमाः
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं ये चरन्त्यनसूयकाः । त्रेतायां वार्षिकोधर्मोद्वापरेमासिकःस्मृतः

यथाशक्ति चरन्प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुयात्कलौ ॥ ७३ ॥

एषाकलियुगेऽवस्थासंध्यांशंतुनिबोध मे । युगेयुगे तु हीयन्तेत्रींस्त्रीन्पादांश्चसिद्धयः

युगस्वभावात्संध्यास्तु तिष्ठन्तीमास्तु पादशः ।
संध्यास्वभावाच्चांशेषु पादशस्ते प्रतिष्ठिताः ॥ ७५ ॥

एवं संध्यांशकेकालेसंप्राप्ते तु युगान्तिके । तेषांशास्ताह्यसाधूनांभृगूणांनिधनोत्थितः

गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्नाप्रमितिरुच्यते । माधवस्य तु सोंऽशेनपूर्वंस्वायंभुवेऽन्तरे
समाः स विंशतिं पूर्णाःपर्यटन्वैवसुंधराम् । आचकर्ष स वै सेनांसवाजिरथकुञ्जराम्
प्रगृहीतायुतैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः । स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान्हन्तिसहस्रशः
सहत्वासर्वगश्चैवराज्ञस्ताञ्शूद्रयोनिजान् । पाषण्डान्सततःसर्वान्निशेषान्कृतवान्प्रभुः
नात्यर्थंधार्मिका ये च तान्सर्वान्हन्तिसर्वशः । वर्णव्यत्यासजातांश्चयेचतानुपजीविनः

उदीच्यान्मध्यदेशांश्च पार्वतीयांस्तथैव च ।
प्राच्यान्प्रतीच्यांश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान् ॥ ८२ ॥

तथैव दाक्षिणात्यांश्चद्रविडान्सिहलैः सह । गान्धारान्पारदांश्चैवपह्लवान्यवनांस्तथा
तुषारान्बर्वरांश्चीनाञ्शूलिकान्दरदान्खसान् । लम्पाकानथकेतांश्चकिरातानांचजातयः
प्रवृत्तचक्रो बलवान्म्लेच्छानामन्तकृद्विभुः । अधृष्यः सर्वभूतानां चचाराथ वसुंधराम्
माधवस्य तु सोंऽशेनदेवस्य हि विजज्ञिवान् । पूर्वजन्मविधिज्ञैश्चप्रमितिर्नामवीर्यवान्
गोत्रेण वै चन्द्रमसः पूर्वे कलियुगे प्रभुः । द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रान्तेविंशतिसमाः
विनिघ्नन्सर्वभूतानि मानवानि सहस्रशः । कृत्वा वीर्यावशेषां तु पृथ्वीं रूढेणकर्मणा

परस्परनिमित्तेन कोपेनाऽऽकस्मिकेन तु ॥ ८८ ॥

स साधयित्वावृषलान्प्रायशस्तानधार्मिकान् । गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठांप्राप्तःसहानुगः
ततोव्यतीतेतस्मिंस्तुअमात्येसत्यसैनिके । उत्साद्यपार्थिवान्सर्वान्म्लेच्छांश्चैवसहस्रशः

तत्र संध्यांशके काले संप्राप्ते तु युगान्तिके ।
स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्क्वचित् ॥ ९१ ॥

अप्रग्रहास्ततस्ता वै लोकचेष्टास्तु वृन्दशः । उपहिंसन्ति चान्योन्यं प्रपद्यन्तेपरस्परम्
अराजके युगवशात्संशये समुपस्थिते । प्रजास्ता वै ततः सर्वाः परस्परभयार्दिताः ॥

व्याकुलाश्च परिश्रान्तास्त्यक्त्वा दारान्गृहाणि च ।
स्वान्प्राणान्समपेक्षन्तो निष्करुण्याः सुदुःखिताः ॥ ९४ ॥

नष्टे श्रौते स्मृते धर्मे परस्परहतास्तदा । निर्मर्यादानिराक्रन्दा निस्नेहा निरपत्रपाः॥
नष्टे वर्षे प्रतिहताह्रस्वकाःपञ्चविंशकाः । हित्वा दाराश्चपुत्रांश्चविषादव्याकुलेन्द्रियाः

अनावृष्टिहताश्चैव वार्तामुत्सृज्य दुःखिताः।
प्रत्यन्तास्तान्निषेवन्ते हित्वा जनपदान्स्वकान् ॥ ९७ ॥
सरितः सागरानूपान्सेवन्ते पर्वतांस्तदा। मधुमांसैर्मूलफलैर्वर्तयन्ति सुदुःखिताः ॥
चीरवस्त्राजिनधरा निष्पत्रा निष्परिग्रहाः। वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः संकरं घोरमास्थिताः
एतां काष्ठामनुप्राप्ताअल्पशेषाःप्रजास्तथा। जराव्याधिक्षुधाविष्टादुःखान्निर्वेदमागमन्
विचारणं तु निर्वेदात्साम्यावस्था विचारणात्।
साम्यावस्थासु संबाधः संबोधाद्धर्मशीलता ॥ १०१ ॥
तासूपगमयुक्तासु कलिशिष्टासु वै स्वयम्। अहोरात्रं तदा तासां युगं तु परिवर्तते
चित्तसंमोहनं कृत्वा तासां तैः सप्तमं तु तत्। भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततःकृतमवर्तत
प्रवृत्ते तु पुनस्तस्मिस्ततः कृतयुगे तु वै। उत्पन्नाःकलिशिष्टास्तुकार्तयुग्यःप्रजास्तदा
तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धाःसुहृष्टाविचरन्ति च। सदासप्तर्षयश्चैवतत्र ते च व्यवस्थिताः
ब्रह्मक्षत्त्रविशःशूद्राबीजार्थं ये स्मृता इह। कलिजैः सह ते सर्वेनिर्विशेषास्तदाऽभवन्
तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीतरेषु च। वर्णाश्रमाचारयुक्तः श्रौतःस्मार्तो द्विधा तु स
ततस्तेषु क्रियावत्सुवर्तन्ते वै प्रजाः कृते। श्रौतःस्मार्तःकृतानां तु धर्मः सप्तर्षिदर्शित
तासु धर्मव्यवस्थार्थंतिष्ठन्तीहाऽऽयुगक्षयात्। मन्वन्तराधिकारेषुतिष्ठन्तिमुनयस्तु वै
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह तपे ऋतौ। नवानां प्रथमं दृष्टस्तेषां मूले तु संभवः
तथा कार्तयुगानां तु कलिजेष्विह संभवः। एवं युगाद्युगस्येह संतानस्तु परस्पर
वर्तते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षयः ॥ १११ ॥
सुखमायुर्बलं रूपं धर्मार्थौ काम एव च। युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रीणि पादक्रमेण
ससंध्यांशेषु हीयन्ते युगानां धर्मसिद्धयः। इत्येष प्रतिसंधिर्वः कीर्तितस्तुमयाद्विज
चतुर्युगाना(णां)सर्वेषामेतेनैव प्रसाधनम्। एषां चतुर्युगावृत्तिरासहस्रात्प्रवर्तते
ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं रात्रिश्च तावती स्मृता।
अत्राऽऽर्जवं जडीभावोभूतानामायुगक्षयात् ॥ ११५ ॥
एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणंस्मृतम्। एषांचतुर्युगानां(णां)तु गणनाह्येकसप्त

क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरन्तरमुच्यते ॥ ११६ ॥
चतुर्युगे तथैकस्मिन्भवतीह यथाश्रुतम् । तथा चान्येषु भवति पुनस्तद्वै यथाक्रमम् ॥
सर्गे सर्गे यथा भेदा उत्पद्यन्ते तथैव तु । पञ्चविंशत्परिमिता न न्यूनानाधिकास्तथा
तथा कल्पयुगैः सार्धं भवन्ति समलक्षणाः । मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम्
तथा युगानां परिवर्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।
तथा न संतिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः ॥ १२० ॥
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः । अतीतानागतानां वै सर्वमन्वन्तरेष्विह ॥
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता । मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ॥
मन्वन्तरेणचैकेनसर्वाण्येवान्तराणि वै । व्याख्यातानि विजानीध्वंकल्पेकल्पेनचैवहि
अस्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत । देवा ह्यष्टविधा ये च इह मन्वन्तरेश्वराः ॥
ऋषयो मनवश्चैव सर्वे तुल्याः प्रयोजनैः । एवं वर्णाश्रमाणां तु प्रविभागो युगे युगे
युगस्वभावाच्च तथा विधत्ते वै सदा प्रभुः । वर्णाश्रमविभागश्च युगानि युगसिद्धये
अनुषङ्गः समाख्यातः सृष्टिसर्गं निबोधत ।
विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च स्थितिं वक्ष्ये युगेष्विह ॥ १२७ ॥
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे चतुर्युगाख्यानं
नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

ऊनषष्टितमोऽध्यायः

दिव्यमानुषभावानां निरूपणम्

सूत उवाच

[यु]गेषु यास्तु जायन्तेप्रजास्ता वै निबोधत । आसुरीसर्पगोपक्षिपैशाचीयक्षराक्षसी ॥
यस्मिन्युगे च संभूतिस्तासां यावत्तु जीवितम् ॥ १ ॥

पिशाचासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । युगमात्रं तु जीवन्ति ऋते मृत्युं वधेन ते ॥
मनुष्याणां पशूनां च पक्षिणां स्थावरैः सह । तेषामायुः परिक्रान्तंयुगधर्मेषु सर्वशः
अस्थितिस्तु कलौदृष्टाभूतानामायुषस्तु वै । परमायुः शतंत्वेतन्मुष्याणांकलौस्मृतम्
देवासुरप्रमाणात्तु सप्तसप्ताङ्गुलं ह्रसत् । अङ्गुलानां शतं पूर्णमष्टपञ्चाशदुत्तरम् ॥ ५ ॥
देवासुरप्रमाणं तदुच्छ्रायं कलिजैः स्मृतम् । चत्वारश्चाप्यशीतिश्चकलिजैरङ्गुलैःस्मृतम्
स्वेनाङ्गुलप्रमाणेन उर्ध्वमापादमस्तकम् । इत्येष मानुषोत्सेधो ह्रसतीहयुगान्तिके ॥
सर्वेषु युगकालेषु अतीतानागतेष्विह । स्वेनाङ्गुलप्रमाणेन अष्टतालः स्मृतो नरः ॥८॥
आपादतो मस्तकं तु नवतालो भवेत्तु यः । संहताजानुबाहुस्तु स सुरैरपि पूज्यते ॥
गवाश्वहस्तिनां चैव महिषस्थावरात्मनाम् । क्रमेणैतेन योगेन ह्रासवृद्धी युगे युगे ॥
षट्सप्तत्यङ्गुलोत्सेधः पशूनां ककुदस्तु वै । अङ्गुलाष्टशतं पूर्णमुत्सेधः करिणां स्मृतः

अङ्गुलानां सहस्रं तु चत्वारिंशाङ्गुलं विना ।
पञ्चाशतं हयानां च उत्सेधः शाखिनां स्मृतः ॥ १२ ॥

मानुषस्य शरीरस्य संनिवेशस्तु तादृशः । तल्लक्षणस्तु देवानां दृश्यते तत्त्वदर्शनात् ॥
बुद्ध्याऽतिशययुक्तं च देवानां कायमुच्यते । देवानतिशयं चैव मानुषं कायमुच्यते
इत्येते वै परिक्रान्ताभावा ये दिव्यमानुषाः । पशूनांपक्षिणांचैवस्थावराणांनिबोधत

गावो ह्यजा महिष्योऽश्वा हस्तिनः पक्षिणो नगाः ।
उपयुक्ताः क्रियास्वेते यज्ञियास्विह सर्वशः ॥ १६ ॥

देवस्थानेषु जायन्ते तद्रूपा एव ते पुनः । यथाशयोपभोगास्तु देवानां शुभमूर्तयः ॥
तेषां रूपानुरूपैस्तैः प्रमाणैः स्थाणुजङ्गमैः । मनोज्ञैस्तत्त्वभावज्ञैः सुखिनो ह्युपपेदिरे ॥
अतः शिष्टान्प्रवक्ष्यामि सतःसाधूंस्तथैव च । सदितिब्रह्मणःशब्दस्तद्वन्तोयेभवन्त्युत॥

सायुज्यं ब्रह्मणोऽत्यन्तं तेन सन्तः प्रचक्षते ॥ १९ ॥

दशात्मके ये विषयेकारणेचाष्टलक्षणे । न क्रुध्यन्तिनहृष्यन्तिजितात्मानस्तु तेस्मृताः
सामान्येषु च धर्मेषु तथावैशेषिकेषु च । ब्रह्मक्षत्रविशोयुक्तायस्मात्तस्माद्द्विजातयः
वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गगोमुखचारिणः । श्रौतस्मार्तस्यधर्मस्यज्ञानाद्धर्मः स उच्यते

विद्यायाःसाधनात्साधुर्ब्रह्मचारीगुरोर्हितः । क्रियाणांसाधनाच्चैवगृहस्थःसाधुरुच्यते
साधनात्तपसोऽरण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः ।
यतमानो यति साधुः स्मृतो योगस्य साधनात् ॥ २४ ॥
एवमाश्रमधर्माणांसाधनात्साधवःस्मृताः । गृहस्थोब्रह्मचारीचवानप्रस्थोऽथभिक्षुकः
न च देवा न पितरोमुनयो न च मानवाः । अयं धर्मो ह्ययं नेति ब्रुवते भिन्नदर्शनाः ॥
धर्माधर्माविह प्रोक्तौ शब्दावेतौ क्रियात्मकौ । कुशलाकुशलंकर्मधर्माधर्मावितिस्मृतौ
धारणा धृतिरित्यर्थाद्धातोर्धर्मः प्रकीर्तितः । अधारणेऽमहत्त्वे च अधर्म इतिचोच्यते
अत्रेष्टप्रापको धर्म आचार्यैरुपदिश्यते । वृद्धा ह्यलोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदम्भकाः
सम्यग्विनीता ऋजवस्तानाचार्यान्प्रचक्षते ॥ २६ ॥
स्वयमाचरते यस्मादाचारंस्थापयत्यपि । आचिनोति च शास्त्रार्थान्यमैःसंनियमैर्युतः
पूर्वेभ्यो वेदयित्वेहश्रौतंसप्तर्षयोऽब्रुवन् । ऋचो यजूंषि सामानिब्रह्मणोऽङ्गानिचश्रुतिः
मन्वन्तरस्यातीतस्य स्मृत्वाऽऽचारं पुनर्जगौ ।
तस्मात्स्मार्तः स्मृतो धर्मो वर्णाश्रमविभागजः ॥ ३२ ॥
स एष द्विविधो धर्मः शिष्टाचारइहोच्यते । शेषशब्दाच्छिष्ट इतिशिष्टाचारःप्रचक्ष्यते
मन्वन्तरेषु ये शिष्टा इह तिष्ठन्ति धार्मिकाः । मनुः सप्तर्षयश्चैव लोकसंतानकारणात्
धर्मार्थं ये च शिष्टा वै याथातथ्यं प्रचक्षते ॥ ३४ ॥
मन्वादयश्च ये शिष्टा ये मया प्रागुदीरिताः । तैः शिष्टैश्चरितो धर्मःसम्यगेव युगेयुगे
त्रयी वार्तादण्डनीतिरिज्यावर्णाश्रमास्तथा । शिष्टैराचर्यतेयस्मान्मनुना च पुनःपुनः
पूर्वैः पूर्वगतत्वाच्च शिष्टाचारः स शाश्वतः ॥ ३६ ॥
दानंसत्यंतपोऽलोभोविद्येज्याप्रजनोदया । अष्टौतानिचरित्राणिशिष्टाचारस्यलक्षणम्
शिष्टा यस्माच्चरन्त्येनं मनुः सप्तर्षयश्च वै । मन्वन्तरेषु सर्वेषु शिष्टाचारस्ततः स्मृतः
विज्ञेयः श्रवणाच्छ्रौतः स्मरणात्स्मार्त उच्यते ।
इज्यावेदात्मकः श्रौतः स्मार्तो वर्णाश्रमात्मकः ॥
प्रत्यङ्गानि च वक्ष्यामि धर्मस्येह तु लक्षणम् ॥ ३६ ॥

दृष्ट्वा प्रभूतमर्थं यः पृष्टो वै न निगूहति । यथा भूतप्रसादस्तु इत्येतत्सत्यलक्षणम् ॥
ब्रह्मचर्यं जपो मौनं निराहारात्वमेव च । इत्येत्तपसो मूलं सुघोरं तद्दुरासदम् ॥
पशूनां द्रव्यहविषामृक्सामयजुषां तथा । ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगोयज्ञउच्यते
आत्मवत्सर्वभूतेषु या हितायाहिताय च । समा प्रवर्ततेदृष्टिःकृत्स्नाह्येषा दया स्मृता

आक्रुष्टोभिहतो वाऽपि नाऽऽक्रोशेद्यो न हन्ति वा ।
वाङ्मनःकर्मभिः क्षान्तिस्तितिक्षैषा क्षमा स्मृता ॥ ४४ ॥

स्वामिनाऽरक्ष्यमाणानामुत्सृष्टानांचसत्सु च । परस्वानामनादानमलोभ इहकीर्त्यते
मैथुनस्यासमाचारो ह्यचिन्तनमकल्पनम् । निवृत्तिर्ब्रह्मचर्यं तदच्छिद्रं दम उच्यते ॥
आत्मार्थं वा परार्थंस्वाइन्द्रियाणीहयस्यवै । न मिथ्यासंप्रवर्तन्ते शमस्यैतत्तु लक्षणम्
दशात्मके यो विषये कारणे चाष्टलक्षणे । न क्रुध्येत्तुप्रतिहतः स जितात्माविभाव्यते
यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनोपागतं च यत् । तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम् ॥४६
दानं त्रिविधमित्येतत्कनिष्ठज्येष्ठमध्यमम् । तत्र नैःश्रेयसं ज्येष्ठं कनिष्ठंस्वार्थसिद्धये

कारुण्यात्सर्वभूतेभ्यः सुविभागस्तु बन्धुषु ॥ ५० ॥

श्रुतिस्मृतिभ्यांविहितोधर्मोवर्णाश्रमात्मकः । शिष्टाचाराविरुद्धश्चधर्मःसत्साधुसङ्गतः
अप्रद्वेषो ह्यनिष्टेषु तथेष्टानभिनन्दनम् । प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिर्विरक्तता ॥
संन्यासः कर्मणो न्यासःकृतानामकृतैः सह । कुशलाकुशलानां च प्रहाणंत्यागउच्यते
अव्यक्ताद्योऽविशेषाच्च विकाराऽस्मिन्नचेतने । चेतनाऽचेतनान्यत्वविज्ञानंज्ञानमुच्यते
प्रत्यङ्गानां तु धर्मस्य इत्येतल्लक्षणं स्मृतम् । ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैः पूर्वेस्वायंभुवेऽन्तरे ॥
अत्र वो वर्तयिष्यामि विधिर्मन्वन्तरस्य यः । इतरैतरवर्णस्य चातुर्वर्ण्यस्य चैव हि ॥

प्रतिमन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्या विधीयते ॥ ५६ ॥

ऋचो यजूंषि सामानि यथावत्प्रतिदैवतम् । आभूतसंप्लवस्थायि वर्ज्यैकं शतरुद्रियम्
विधिर्होत्रं तथा स्तोत्रं पूर्ववत्संप्रवर्तते । द्रव्यं स्तोत्रंगुणस्तोत्रं कर्मस्तोत्रं तथैव च

चतुर्थमाभिजनिकं स्तोत्रमेतच्चतुर्विधम् ॥ ५८ ॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु यथा देवा भवन्ति ये । प्रवर्तयति तेषां वै ब्रह्मा स्तोत्रं चतुर्विधम्

विद्यायाःसाधनात्साधुर्ब्रह्मचारीगुरोर्हितः । क्रियाणांसाधनाच्चैवगृहस्थःसाधुरुच्यते

साधनात्तपसोऽरण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः ।

यतमानो यति साधुः स्मृतो योगस्य साधनात् ॥ २४ ॥

एवमाश्रमधर्माणांसाधनात्साधवःस्मृताः । गृहस्थोब्रह्मचारीचवानप्रस्थोऽथभिक्षुकः

न च देवा न पितरोमुनयो न च मानवाः । अयं धर्मो ह्ययं नेति ब्रुवते भिन्नदर्शनाः ॥

धर्माधर्माविह प्रोक्तौ शब्दावेतौ क्रियात्मकौ । कुशलाकुशलंकर्मधर्माधर्मावितिस्मृतौ

धारणा धृतिरित्यर्थाद्धातोर्धर्मः प्रकीर्तितः । अधारणेऽमहत्त्वे च अधर्म इतिचोच्यते

अत्रेष्टप्रापको धर्म आचार्यैरुपदिश्यते । वृद्धा ह्यलोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदम्भकाः

सम्यग्विनीता ऋजवस्तानाचार्यान्प्रचक्षते ॥ २६ ॥

स्वयमाचरते यस्मादाचारंस्थापयत्यपि । आचिनोति च शास्त्रार्थान्यमैःसंनियमैर्युतः

पूर्वेभ्यो वेदयित्वेहश्रौतंसप्तर्षयोऽब्रुवन् । ऋचो यजूंषि सामानिब्राह्मणोऽङ्गानिचश्रुतिः

मन्वन्तरस्यातीतस्य स्मृत्वाऽऽचारं पुनर्जगौ ।

तस्मात्स्मार्तः स्मृतो धर्मो वर्णाश्रमविभागजः ॥ ३२ ॥

स एष द्विविधो धर्मः शिष्टाचारइहोच्यते । शेषशब्दाच्छिष्ट इतिशिष्टाचारःप्रचक्ष्यते

मन्वन्तरेषु ये शिष्टा इह तिष्ठन्ति धार्मिकाः । मनुः सप्तर्षयश्चैव लोकसंतानकारणात्

धर्मार्थं ये च शिष्टा वै याथातथ्यं प्रचक्षते ॥ ३४ ॥

मन्वादयश्च ये शिष्टा ये मया प्रागुदीरिताः । तैः शिष्टैश्चरितो धर्मःसम्यगेव युगेयुगे

त्रयी वार्तादण्डनीतिरिज्यावर्णाश्रमास्तथा । शिष्टैराचर्यतेयस्मान्मनुना च पुनःपुनः

पूर्वैः पूर्वगतत्वाच्च शिष्टाचारः स शाश्वतः ॥ ३६ ॥

दानंसत्यंतपोऽलोभोविद्येज्याप्रजनोदया । अष्टौतानिचरित्राणिशिष्टाचारस्यलक्षणम्

शिष्टा यस्माच्चरन्त्येनं मनुः सप्तर्षयश्च वै । मन्वन्तरेषु सर्वेषु शिष्टाचारस्ततः स्मृतः

विज्ञेयः श्रवणाच्छ्रौतः स्मरणात्स्मार्त उच्यते ।

इज्यावेदात्मकः श्रौतः स्मार्तो वर्णाश्रमात्मकः ॥

प्रत्यङ्गानि च वक्ष्यामि धर्मस्येह तु लक्षणम् ॥ ३६ ॥

दृष्ट्वा प्रभूतमर्थं यः पृष्टो वै न निगूहति। यथा भूतप्रसादस्तु इत्येतत्सत्यलक्षणम् ॥
ब्रह्मचर्यं जपो मौनं निराहारात्वमेव च। इत्येत्तपसो मूलं सुघोरं तद्दुरासदम् ॥
पशूनां द्रव्यहविषामृक्सामयजुषां तथा। ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगोयज्ञउच्यते
आत्मवत्सर्वभूतेषु या हितायाहिताय च। समा प्रवर्ततेदृष्टिःकृत्स्नाह्येषा दया स्मृता

आक्रुष्टोभिहतो वाऽपि नाऽऽक्रोशेद्यो न हन्ति वा।
वाङ्मनःकर्मभिः क्षान्तिस्तितिक्षैषा क्षमा स्मृता ॥ ४४ ॥

स्वामिनाऽरक्ष्यमाणानामुत्सृष्टानांचसत्सु च। परस्वानामनादानमलोभ इहकीर्त्यते
मैथुनस्यासमाचारो ह्यचिन्तनमकल्पनम्। निवृत्तिर्ब्रह्मचर्यं तदच्छिद्रं दम उच्यते ॥
आत्मार्थं वा परार्थंस्वाइन्द्रियाणीहयस्यवै। न मिथ्यासंप्रवर्तन्ते शमस्यैतत्तु लक्षणम्
दशात्मके यो विषये कारणे चाष्टलक्षणे। न क्रुध्येत्तुप्रतिहतः स जितात्माविभाव्यते
यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनोपागतं च यत्। तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम् ॥४६
दानं त्रिविधमित्येतत्कनिष्ठज्येष्ठमध्यमम्। तत्र नैःश्रेयसं ज्येष्ठं कनिष्ठंस्वार्थसिद्धये

कारुण्यात्सर्वभूतेभ्यः सुविभागस्तु बन्धुषु ॥ ५० ॥

श्रुतिस्मृतिभ्यांविहितोधर्मोवर्णाश्रमात्मकः। शिष्टाचाराविरुद्धश्चधर्मःसत्साधुसङ्गतः
अप्रद्वेषो ह्यनिष्टेषु तथेष्टानभिनन्दनम्। प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिर्विरक्तता ॥
संन्यासः कर्मणो न्यासःकृतानामकृतैः सह। कुशलाकुशलानां च प्रहाणंत्यागउच्यते
अव्यक्ताद्योऽविशेषाच्च विकाराऽस्मिन्नचेतने। चेतनाऽचेतनान्यत्वविज्ञानंज्ञानमुच्यते
प्रत्यङ्गानां तु धर्मस्य इत्येतल्लक्षणं स्मृतम्। ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैः पूर्वेस्वायंभुवेऽन्तरे ॥
अत्र वो वर्तयिष्यामि विधिर्मन्वन्तरस्य यः। इतरेतरवर्णस्य चातुर्वर्ण्यस्य चैव हि ॥

प्रतिमन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्या विधीयते ॥ ५६ ॥

ऋचो यजूंषि सामानि यथावत्प्रतिदैवतम्। आभूतसंप्लवस्थायि वर्ज्यैकं शतरुद्रियम्
विधिर्होत्रं तथा स्तोत्रं पूर्ववत्संप्रवर्तते। द्रव्यं स्तोत्रंगुणस्तोत्रं कर्मस्तोत्रं तथैव च

चतुर्थमाभिजनिकं स्तोत्रमेतच्चतुर्विधम् ॥ ५८ ॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु यथा देवा भवन्ति ये। प्रवर्तयति तेषां वै ब्रह्मा स्तोत्रं चतुर्विधम्

एवं मन्त्रगुणानां च समुत्पत्तिश्चतुर्विधा ॥ ५६ ॥

अथर्वयजुषां साम्नां वेदेष्विह पृथक्पृथक् । ऋषीणां तप्यतामुग्रं तपः परमदुश्चरम्
मन्त्राः प्रादुर्बभूवुर्हि पूर्वमन्वन्तरेष्विह । परितोषाद्भयाद्दुःखात्सुखाच्छोकाच्चपञ्चधा
ऋषीणां तपः कात्स्न्र्येनदर्शनेनयदृच्छया । ऋषीणांयदृषित्वं हि तद्वक्ष्यामीहलक्षणैः
अतीतानागतानां तु पञ्चधा ऋषिरुच्यते । अतस्त्वृषीणांवक्ष्यामिह्यार्षस्यचसमुद्भवम्
गुणसाम्ये वर्तमाने सर्वसंप्रलये तदा । अतिचारे तु देवानामतिदेशे तयोर्यथा ॥ ६४॥
अबुद्धिपूर्वकं तद्वै चेतनार्थं प्रवर्तते । तेन ह्यबुद्धिपूर्वं तच्चेतनेन ह्यधिष्ठितम् ॥ ६५ ॥
वर्तते च यथा तौ तु यथा मत्स्योदके उभौ । चेतनाधिष्ठितं तत्त्वं प्रवर्ततिगुणात्मना
कारणत्वात्तथा कार्यं तदा तस्य प्रवर्तते । विषये विषयित्वाच्च ह्यर्थेऽर्थित्वात्तथैव च
कालेन प्रापणीयेन भेदास्तुकारणात्मकाः । संसिध्यन्ति तदाव्यक्ताःक्रमेणमहदादयः
महतश्चाप्यहंकारस्तस्माद्भूतेन्द्रियाणि च । भूतभेदास्तु भेदेभ्यो जज्ञिरे ते परस्परम्

संसिद्धिकारणं कार्यं सद्य एव विवर्तते ॥ ६६ ॥

यथोल्मुकस्त्रुटन्नूर्ध्वमेककालं प्रवर्तते । तथा विवृत्तः क्षेत्रज्ञः कालेनैकेन कर्मजा ॥
यथाऽन्धकारे खद्योतः सहसा संप्रदृश्यते । तथा विवृत्तोह्यव्यक्तात्खद्योतइवचोल्वणः
स महान्सशरीरस्तुयत्रैवाग्रे व्यवस्थितः । तत्रैवसंस्थितोविद्वान्द्वारशालामुखेस्थितः
महांस्तु तमसः पारेवैलक्षण्याद्विभाव्यते । तत्रैवसंस्थितोविद्वांस्तमसोऽन्तइतिश्रुतिः
बुद्धिर्विवर्तमानस्य प्रादुर्भूता चतुर्विधा । ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्चेति चतुष्टयम् ॥
सांसिद्धिकान्यथैतानि सुप्रतीकानि तस्य वै । महतःसशरीरस्यवैवर्त्यातिसिद्धिरुच्यते
अत्र शेते च यत्पुर्यां क्षेत्रज्ञानमथापि वा । पुरीशत्वाच्च पुरुषः क्षेत्रज्ञानात्समुच्यते ॥
क्षेत्रज्ञःक्षेत्रविज्ञानाद्भगवान्मतिरुच्यते । यस्माद्बुद्ध्याऽनुशेतेहतस्माद्बोधात्मकःसवै

संसिद्धये परिगतं व्यक्ताव्यक्तमचेतनम् ॥ ७७ ॥

एवं निवृत्तिः क्षेत्रज्ञा क्षेत्रज्ञेनाभिसंहिता । क्षेत्रज्ञेन परिज्ञातोभोग्योऽयंविषयस्त्विवति
ऋषीत्येष गतौ धातुःश्रुतौसत्येतपस्यथ । एतत्संनियतस्तस्मिन्ब्रह्मणासऋषिःस्मृतः॥

निवृत्तिसमकालं तु बुद्ध्याऽव्यक्तमृषिः स्वयम् ।

परं हि ऋषते यस्मात्परमर्षिस्ततः स्मृतः ॥ ८० ॥
गत्यर्थादृषतेर्धातोर्नामनिर्वृत्तिरादितः । यस्मादेष स्वयंभूतस्तस्माच्च ऋषितास्मृता ॥
ईश्वराः स्वयमुद्भूता मानसा ब्रह्मणः सुताः ॥ ८१ ॥
यस्मान्न हन्यते मानैर्महान्परिगतः पुरः । यस्माऽदृषन्ति ये धीरा महान्तं सर्वतोगुणैः
तस्मान्महर्षयः प्रोक्ता बुद्धेः परमदर्शिनः ॥ ८२ ॥
ईश्वराणां शुभास्तेषां मानसा औरसाश्चते । अहंकारं तमश्चैवत्यक्त्वाचऋषितांगताः
तस्मात्तु ऋषयस्ते वै भूतादौ तत्त्वदर्शनाः । ऋषिपुत्रा ऋषीकास्तु मैथुनाद्गर्भसंभवाः
तन्मात्राणि च सत्यं च ऋषन्ते ते महौजसः । सप्तर्षयस्ततस्ते वै परमाःसत्यदर्शनाः
ऋषीणां च सुतास्ते तु विज्ञेयाऋषिपुत्रकाः । ऋषन्ति वै श्रुतंयस्माद्विशेषांचैवतत्त्वतः
तस्माच्छ्रुतर्षयस्तेऽपि श्रुतस्य परिदर्शनात् ॥ ८६ ॥
अव्यक्तात्मा महात्मा चाहंकारात्मा तथैव च ।
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च तेषां तज्ज्ञानमुच्यते ॥
इत्येता ऋषिजातीस्तु नामभिः पञ्च वै शृणु ॥ ८७ ॥
भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः । मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश ॥
ब्रह्मणो मानसा ह्येत उद्भूताः स्वयमीश्वराः ॥ ८८ ॥
प्रवर्तत ऋषेर्यस्मान्महांस्तस्मान्महर्षयः । ईश्वराणां सुतस्त्वेत ऋषयस्तान्निबोधत ॥
काव्यो बृहस्पतिश्चैवकश्यपश्चोशनास्तथा । उतथ्योवामदेवश्चअयोज्यश्चौशिजस्तथा
कर्दमो विश्रवाःशक्तिर्वालखिल्यस्तथाधराः । इत्येत ऋषयःप्रोक्ताज्ञानतोऋषितांगताः
ऋषिपुत्रानृषीकांस्तु गर्भोत्पन्नान्निबोधत । वत्सरो नग्नहूश्चैव भारद्वाजस्तथैव च ॥
बृहदुक्थः शरद्वांश्च अगस्त्यश्चौशिजस्तथा । ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव बृहदुक्थः शरद्वतः ॥
वाजश्रवाः सुवित्तश्च सुवाग्वेषपरायणः । दधीचः शङ्खमांश्चैव राजा वैश्रवणस्तथा
इत्येत ऋषिकाः प्रोक्तास्ते सत्यादृषितां गताः ॥ ९४ ॥
ईश्वराऋषिकाश्चैव ये चान्ये वै तथा स्मृताः । एतेमन्त्रकृतःसर्वेकृत्स्नशस्तान्निबोधत
भृगुः काव्यःप्रचेतस्तुदधीचोह्यात्मवानपि । और्वोऽथजमदग्निश्चविदःसारस्वतस्तथा

अद्भिषेणो ह्यरूपश्च वीरहव्यः सुमेधसः । वैन्यः पृथुर्दिवोदासः पश्वास्योगृत्समान्नभः
एकोनविंशदित्येत ऋषयो मन्त्रवादिनः ॥ ९७ ॥

अङ्गिरा वेधसश्चैव भारद्वाजोऽथ बाष्कलिः । तथाऽमृतस्तथागार्ग्यःशैनीसंहृतिरेवच
पुरुकुत्सोऽथमांधाताअम्बरीषस्तथैव च । युवनाश्वःपौरुकुत्सस्त्रसद्‌स्युःसदस्युमान्
आहार्योऽथाजमीढश्च ऋषभो वलिरेव च । पृषदश्वो विरूपश्च कण्वश्चैवाथ मुद्गलः
उतथ्यश्च भरद्वाजस्तथा वाजश्रवा अपि । आयाप्यश्च सुवित्तिश्च वामदेवस्तथैव च
औगजो वृहदुक्थश्च ऋषिदीर्घतपास्तथा । कक्षीवांश्च त्रयस्त्रिंशत्स्मृताअङ्गिरसोवराः
एते मन्त्रकृतः सर्वे काश्यपांस्तु निबोधत ।

कश्यपश्चैव वत्सारो विभ्रमो रैभ्य एव च । असितो देवलश्चैव षडेते ब्रह्मवादिनः ॥
अत्रिरर्चिसनश्चैव श्यामावांश्चाथविष्ठुरः । वल्गूतकोमुनिर्धीमांस्तथापूर्वातिथिश्चयः
इत्येते चात्रयः प्रोक्ता मन्त्रकारा महर्षयः ॥ १०४ ॥

वसिष्ठश्चैव शक्तिश्च तथैव च पराशरः । चतुर्थ इन्द्रप्रमतिः पञ्चमस्तु भरद्वसुः ॥
षष्ठस्तु मैत्रावरुणः कुण्डिनः सप्तमस्तथा । एते सप्तर्षयो विप्रा ब्रह्मक्षेत्रनिवासिनः ॥
ब्रह्मक्षेत्रं महातीर्थं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । कुरुक्षेत्रे पुण्यतमे पितामहनिषेविते ॥१०७॥
देवानां च ऋषीणां च मुनीनां तत्र सङ्गमः । ब्रह्मणा च कृतं प्रश्नं क दृष्टा वायुदेवता
ऋषिगणैस्तदाप्रोक्तं न दृष्टो (ष्टा) वायुदेवता । इतिचिन्तयतांतेषामणुमात्रस्तुदृष्टवान्
दृष्टं पुरं च तत्राऽऽसीद्वायोर्नाम्ना पुरं परम् ।
अष्टादशसहस्राणि द्विजाः संस्थापितास्तदा ॥ ११० ॥

शूद्रास्तद्द्विगुणास्तत्र स्थापितामातरिश्वना । तानुवाचततोदेवोमातरिश्वामहाविभुः
यूयं मद्भक्तिकर्तारोमन्नाम्नाख्यातिमाप्नुथ । द्वयं दूतं नु प्रत्येकंद्विजान्भजतभोद्विजाः
भवतांतुभविष्यन्तिगोत्राह्ये(ण्ये)कादशैव हि । विवाहकालोऽभिमतश्चत्वरस्नपनादरः
तत्राकोत्सासिहस्तास्तु रक्ष्याः सुवलिनो नराः ।
तत्र स्नानं न पश्यन्ति यथाऽन्ये स विधिः शुभः ॥ ११४ ॥

गोत्रजायाश्च नैवेद्यं तथा कार्यं पृथक्पृथक् । चतस्रः सुभगास्तत्रकुर्युःकुण्डनमादराद्

एवमेषकुलाचारो भवतां कथितः कियान् । मर्जुनेन च वापीयं भवज्वरविनाशिनी ॥
अस्यांनान्याधिकारोऽस्तिमर्जुनेमर्त्यपुङ्गवाः । षट्स्थानानिचमन्त्राम्नाद्दृष्ट्वापूतोभवेन्नरः
तत्तीर्थं भुवि विख्यातं हनुमान्यत्रजीवितः । तत्र वै स्थापिताविप्रावायुनाब्रह्मवादिना
देवत्रयाणामादेशाद्धर्मसंरक्षणाय च । यत्र रुद्रः स्थिरश्चाऽऽसीद्दिक्षु सर्वासुमूर्तिमान्
वाडादित्यश्च देवेशः स्थापितो वायुना तदा । कामदः सर्वदःसूर्योप्रभुरीशःप्रतापवान्
सहस्रकरसंयुक्तः सर्वायुधविभूषितः । रत्नादेवीयुतः श्रीमांस्त्रयाधारस्त्रयीमयः ॥
सूर्यकुण्डं च तत्राऽऽसीद्ब्रह्मकुण्डमतःपरम् । रुद्रकुण्डं हरेः कुण्डमेतत्कुण्डचतुष्टयम्
नवदुर्गाः स्थितातत्र क्षेत्रसंरक्षणाय च । हहिद्वयं त्रिगुण्येशं तथा यज्ञचतुष्टयम् ॥
विवाहव्रतचूडासु करं तेषां प्रदीयते । आचारा विविधाः प्रोक्ता वाडवानां प्रयत्नतः

तावन्तो द्विगुणाः शूद्रा यावन्तो ब्राह्मणाः स्मृताः ।
कुशरूपा द्विजाः पूर्वं मूर्तिमन्तस्ततः स्थिताः ॥ १२५ ॥

मन्त्रैर्मन्त्रविदां श्रेष्ठैः कृता वै शास्त्रकोविदैः । वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च
धर्मशालाऽपि वहुला वायुस्थाने महापुरे । रत्नावती स्वर्णमयी गङ्गा चामृतवाहिनी
कलौ दृषद्वती नाम महापातकनाशिनी । वायुना स्थापितं ह्येतच्छासनं पापनाशनम्
सुनन्दनं वनं तत्र रम्यं राजर्षिसेवितम् । एतत्स्थानं मया प्रोक्तं सर्वेषां च समासतः
निरू(रु)पमाश्च ते विप्रावायुनास्थापिताश्चये । उपमा चैव देवेशिविधेयाब्राह्मणस्यतु
सुयुम्नश्चाष्टमश्चैव नवमोऽथ वृहस्पतिः । दशमस्तु भरद्वाजो मन्त्रब्राह्मणकारकाः ॥
एते चैव हि कर्त्तारो विधर्मध्वंसकारिणः । लक्षणं ब्रह्मणश्चैतद्विहितं सर्वशाश्विनाम्
हेतुर्हितेः स्मृतो धातोर्यन्निहन्त्युदितं परैः । अथ वार्थपरिप्राप्तेर्हिनोतेर्गतिकर्मणः ॥
तथा निर्वचनंब्रूयाद्वाक्यार्थस्यावधारणम् । निन्दांतमाहुराचार्यायद्दोषान्निन्द्यतेवचः॥
प्रपूर्वाच्छंसतेर्धातोः प्रशंसा गुणवत्तया । इदं त्विदमिदं नेदमित्यनिश्चित्य संशयः

इदमेव विधातव्यमित्ययं विधिरुच्यते ।
अन्यस्यान्यस्य चोक्तत्वाद् बुधाः परकृतिः स्मृता ॥ १३६ ॥

यो ह्यत्यन्ततरोक्तश्चपुराकल्पःसउच्यते । पुराकिलत्वमित्यात्पुराकल्पस्य कल्पना

मन्त्रब्राह्मणकल्पैस्तु निगमैः शुद्धविस्तरैः । अनिश्चित्य कृतामाहुर्व्यवधारणकल्पनाम्
यथा हीदं तथा तद्वै इदं वाऽपि तथैव तत् । इत्येष ह्युपदेशोऽयं दशमो ब्राह्मणस्य तु
इत्येतद्ब्राह्मणस्याऽदौ विहितंलक्षणंबुधैः । तस्यतद्वृत्तिरुद्दिष्टाव्याख्याऽप्यनुपदंद्विजैः
मन्त्राणां कल्पनंचैवविधिदृष्टेषु कर्मसु । मन्त्रोमन्त्रयतेर्धातोर्ब्राह्मणोब्रह्मणोऽवनात्
अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् । अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे ऋषिलक्षणं
नामोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

षष्टितमोऽध्यायः

वेदविभागकथनम्

ऋषय ऊचुः

ऋषयस्तद्वचः श्रुत्वा सूतमाहुः सुदुस्तरम् । कथं वेदाः पुराव्यस्तास्तन्नोब्रूहिमहामते

सूत उवाच

द्वापरे च पुरावृत्ते मनोः स्वायंभुवेऽन्तरे । ब्रह्मा मनुमुवाचेदं तद्वदिष्ये महामते ॥१॥
परिवृत्ते युगे तात स्वल्पवीर्या द्विजातयः । संवृत्ता युगदोषेण सर्वे चैव यथाक्रमम्
भ्रश्यमानं युगवशादल्पशिष्टं हि दृश्यते । दशसाहस्रभागेन ह्यवशिष्टं कृतादिदम् ॥
वीर्यं तेजो बलं वाक्यं सर्वं चैव प्रणश्यति । वेदवेदाहि कार्याःस्युर्माभूद्वेदविनाशनम्
वेदे नाशमनुप्राप्ते यज्ञो नाशं गमिष्यति । यज्ञे नष्टेदेवनाशस्ततः सर्वं प्रणश्यति ॥
आद्योवेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसंज्ञितः । पुनर्दशगुणः कृत्स्नो यज्ञो वै सर्वकामधुक् ॥
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा मनुर्लोकहिते रतः । वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्धा व्यभजत्प्रभुः ॥
ब्रह्मणो वचनात्तात लोकानां हितकाम्यया । तदिदं वर्तमानेन युष्माकं वेदकल्पनम्
मन्वन्तरेण वक्ष्यामि व्यतीतानां प्रकल्पनम् । प्रत्यक्षेण परोक्षं वै तन्निबोधतसत्तमाः

अस्मिन्युगे कृतो व्यासःपाराशर्यः परंतपः। द्वैपायनइतिख्यातोविष्णोरंशःप्रकीर्तितः

ब्रह्मणा चोदितः सोऽस्मिन्वेदं व्यस्तुं प्रचक्रमे।

अथ शिष्यान्स जग्राह चतुरो वेदकारणात्॥ १२॥

जैमिनिं च सुमन्तुं च वैशम्पायनमेव च। पैलं तेषां चतुर्थं तु पञ्चमं लोमहर्षणम्॥

ऋग्वेदश्रावकं पैलं जग्राह विधिवद्द्विजम्। यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च॥१४

जैमिनिं सामवेदार्थश्रावकं सोऽन्वपद्यत। तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम्॥

इतिहासपुराणस्य वक्तारं सम्यगेव हि। मांचैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वरः प्रभुः॥

एक आसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत्। चतुर्होत्रमभूत्तस्मिंस्तेन यज्ञमकल्पयत्॥

आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्रं तथैव च। उद्गात्रं सामभिश्चक्रेब्रह्मत्वंचाप्यथर्वभिः

ब्रह्मत्वमकरोद्यज्ञे वेदेनाथर्वणेन तु॥ १८॥

ततः स ऋचमुद्धृत्य ऋग्वेदं समकल्पयत्। होतृकं कल्प्यते तेन यज्ञवाहं जगद्धितम्

सामभिः सामवेदं च तेनोद्गात्रमरोचयत्। राज्ञस्त्वथर्ववेदेन सर्वकर्माण्यकारयत्॥

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कुलकर्मभिः।

पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः॥ २१॥

यच्छिष्टं तु यजुर्वेदे तेन यज्ञमथायुजत्। युञ्जानः स यजुर्वेद इति शास्त्रविनिश्चयः॥

पदानामुद्धृतत्वाच्च यजूंषि विषमाणि वै। स तेनोद्धृतवीर्यस्तु ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः

प्रयुज्यते ह्यश्वमेधस्तेन वा युज्यते तु सः॥ २३॥

ऋचो गृहीत्वा पैलस्तु व्यभजत्तद्द्विधा पुनः।

द्विः कृत्वा संयुगे चैव शिष्याभ्यामददात्प्रभुः॥ २४॥

इन्द्रप्रमतये चैकांद्वितीयां बाष्कलाय च। चतस्रःसहिताःकृत्वा बाष्कलिर्द्विजसत्तमः॥

शिष्यानध्यापयामास शुश्रूषाभिरतान्हितान॥ २५॥

बोध्यं तु प्रथमांशाखांद्वितीयामग्निमाठरम्। पाराशरंतृतीयां तु याज्ञवल्क्यमथापराम्

इन्द्रप्रमतिरेकां तु संहितां द्विजसत्तमः। अध्यापयन्महाभागं मार्कण्डेयं यशस्विनम्

सत्यश्रवसमग्र्यं तु पुत्रं स तु महायशाः। सत्यश्रवाः सत्यहितं पुनरध्यापयद्द्विजः

सोऽपि सत्यतरं पुत्रं पुनरध्यापयद्विभुः । सत्यश्रियं महात्मानं सत्यधर्मपरायणम्
अभवंस्तस्य शिष्यावैत्रयस्तुसुमहौजसः । सत्यश्रियस्तुविद्वांसःशास्त्रग्रहणतत्पराः ॥
शाकल्यः प्रथमस्तेषां तस्मादन्यो रथान्तरः । वाष्कलिश्च भरद्वाजइतिशाखाप्रवर्तकाः
देवमित्रस्तु शाकल्यो ज्ञानाहंकारगर्वितः । जनकस्य स यज्ञे वै विनाशमगमद्द्विजः॥

शांशपायन उवाच

कथं विनाशमगमत्स मुनिर्ज्ञानगर्वितः । जनकस्याश्वमेधेन कथं वादो बभूव ह ॥३३
किमर्थं चाभवद्वादः केन सार्धमथापि वा । सर्वमेतद्यथावृत्तमाचक्ष्व विदितं तव ॥
ऋषीणां तु वचः श्रुत्वा तदुत्तरमथाब्रवीत् ॥ ३४ ॥

सूत उवाच

जनकस्याश्वमेधे तु महानासीत्समागमः । ऋषीणां तु सहस्राणितत्राऽऽजग्मुरनेकशः
राजर्षेर्जनकस्याथ तं यज्ञं हि दिदृक्षवः ॥ ३५ ॥
आगतान्ब्राह्मणान्दृष्ट्वा जिज्ञासाऽस्याभवत्ततः ।
को न्वेषां ब्राह्मणः श्रेष्ठः कथं मे निश्चयो भवेत् ॥
इति निश्चित्य मनसा बुद्धिं चक्रे जनाधिपः ॥ ३६ ॥
गवां सहस्रमादाय सुवर्णमधिकं ततः । ग्रामान्रत्नानि दासांश्च मुनीन्प्राह नराधिपः
सर्वानहं प्रपन्नोऽस्मि शिरसा श्रेष्ठभागिनः ॥ ३७ ॥
यदेतदाहृतं वित्तं यो वः श्रेष्ठतमो भवेत् । तस्मै तदुपनीतं हि विद्यावित्तं द्विजोत्तमाः
जनकस्य वचः श्रुत्वा मुनयस्ते श्रुतिक्षमाः । दृष्ट्वा धनं महासारं धनवृद्ध्याजिघृक्षवः
आह्वयांचक्रुरन्योन्यं वेदज्ञानमदोल्वणाः ॥ ३८ ॥
मनसा गतचित्तास्ते ममेदं धनमित्युत । ममैवैतन्नवेत्यन्यो ब्रूहि किं वा विकल्प्यते
इत्येवं धनदोषेण वादांश्चक्रुरनेकशः ॥ ४० ॥
तथाऽन्यस्तत्र वै विद्वान्ब्रह्मवाहसुतःकविः । याज्ञवल्क्योमहातेजास्तपस्वीब्रह्मवित्तमः
ब्रह्मणोऽङ्गात्समुत्पन्नोवाक्यंप्रोवाचसुस्वरम् । शिष्यंब्रह्मविदांश्रेष्ठोधनमेतद्गृहाणभो
नयस्व च गृहं वत्स ममैतन्नात्र संशयः । सर्ववेदेष्वहं वक्ता नान्यः कश्चित्तु मत्समः

यो वा न प्रीयते विप्रः समे ह्वयतु मा चिरम् ॥ ४३ ॥

ततो ब्रह्मार्णवः क्षुब्ध समुद्र इव संप्लवे । तानुवाच ततः स्वस्थो याज्ञवल्क्योहसन्निव
क्रोधं मा कार्षुर्विद्वांसो भवन्तः सत्यवादिनः । वदामहेयथायुक्तंजिज्ञासन्तःपरस्परम्
ततोऽभ्युपागमंस्तेषां वादा जग्मुरनेकशः । सहस्रधा शुभैरर्थैः सूक्ष्मदर्शनसंभवैः ॥
लोके वेदे तथाऽध्यात्मे विद्यास्थानैरलंकृताः । शापोत्तमगुणैर्युक्ता नृपौघपरिवर्जनाः

वादाः समभवंस्तत्र धनहेतोर्महात्मनाम् ॥ ४७ ॥

ऋषयस्त्वेकतः सर्वे याज्ञवल्क्यस्तथैकतः । सर्वे ते मुनयस्तेन याज्ञवल्क्येन धीमता

एकैकशस्ततः पृष्टा नैवोत्तरमथाब्रुवन् ॥ ४८ ॥

तान्विजित्य मुनीन्सर्वान्ब्रह्मराशिर्महाद्युतिः । शाकल्यमिति होवाच वादकर्तारमञ्जसा
शाकल्य वद वक्तव्यं किं ध्यायन्नवतिष्ठसे । पूर्णस्त्वं जडमानेनवाताध्मातोयथादृतिः
एवं स धर्षितस्तेन रोषात्ताम्रास्यलोचनः । प्रोवाच याज्ञवल्क्यं तं परुषं मुनिसंनिधौ
त्वमस्मांस्तृणवत्कृत्वातथैवेमान्द्विजोत्तमान् । विद्याधनंमहासारंस्वयंग्राहंजिघृक्षसि
शाकल्येनैवमुक्तः स याज्ञवल्क्यः समब्रवीत् । ब्रह्मिष्ठानांबलंविद्धि विद्यातत्वार्थदर्शनम्
कामश्चार्थेन संबद्धस्तेनार्थं कामयामहे । कामप्रश्नधना विप्राः कामप्रश्नान्वदामहे ॥
पणश्चैषोऽस्यराजर्षेस्तस्मान्नीतंधनंमया । एतच्छ्रुत्वावचस्तस्यशाकल्यःक्रोधमूर्च्छितः

याज्ञवल्क्यमथोवाच कामप्रश्नार्थवद्वचः ॥ ५५ ॥

ब्रूहीदानीं मयोद्दिष्टान्कामप्रश्नान्यथार्थतः । ततः समभवद्वादस्तयोर्ब्रह्मविदोर्महान् ॥
साग्रंप्रश्नसहस्रं तु शाकल्यस्तमचूचुदत् । याज्ञवल्क्योऽब्रवीत्सर्वानृषीणांश्रृण्वतांतदा

शाकल्ये चापि निर्वादे याज्ञवल्क्यस्तमब्रवीत् ।

प्रश्नमेकं ममापि त्वं वद शाकल्य ! कामिकम् ॥

शापः पणोऽस्य वादस्य अब्रुवन्मृत्युमाव्रजेत् ॥ ५८ ॥

अथ सञ्चोदितंप्रश्नंयाज्ञवल्क्येनधीमता । शाकल्यस्तमविज्ञायसद्योमृत्युमवाप्नुयात्
एवंमृतः स शाकल्यःप्रश्नव्याख्यानपीडितः । एवंवादश्चसुमहानासीत्तेषांधनार्थिनाम्

ऋषीणां मुनिभिः सार्धं याज्ञवल्क्यस्य चैव हि ॥ ६० ॥

सर्वैः पृष्टांस्तु संप्रश्नाञ्शतशोऽथसहस्रशः । व्याख्याय वै मुनेतेषांप्रश्नसारंमहागतिः

याज्ञवल्क्यो धनं गृह्य यशो विख्याप्य चाऽऽत्मनः ।

जगाम वै गृहं स्वस्थः शिष्यैः परिवृतो वशी ॥ ६२ ॥

देवमित्रस्तु शाकल्यो महात्मा द्विजसत्तमः । चकार संहिताःपञ्चबुद्धिमान्पदवित्तमः

तच्छिष्या अभवन्पञ्च मुद्गलोगोलकस्तथा । खालीयश्चतथामत्स्यःशौशरेयस्तुपञ्चमः

प्रोवाच संहितास्तिस्रः शाकपूर्णरथीतरः । निरुक्तं च पुनश्चक्रे चतुर्थं द्विजसत्तमः ॥

तस्य शिष्यास्तु चत्वारः केतवो दालकिस्तथा । धर्मशर्मादेवशर्मासर्वेव्रतधरा द्विजाः

शाकल्ये तु मृते सर्वेब्रह्मघ्नास्ते बभूविरे । तदाचिन्तांपरांप्राप्यगतास्तेब्रह्मणोऽन्तिकम्

ताञ्ज्ञात्वा चेतसा ब्रह्मा प्रेषितः पवने पुरे । तत्र गच्छत यूयं वः रुद्राः पापंप्रणश्यति

द्वादशार्कं नमस्कृत्य तथा वै वालुकेश्वरम् । एकादश तथा रुद्रान्वायुपुत्रं विशेषतः

कुण्डे चतुष्टये स्नात्वा ब्रह्महत्यां तरिष्यथ ॥ ६६ ॥

सर्वे शीघ्रतरा भूत्वा तत्पुरं समुपागताः । स्नानं कृतं विधानेन देवानां दर्शनं कृतम्

उत्तरेश्वरं नमस्कृत्य वाडवानां प्रसादतः । सर्वे पापविनिर्मुक्ता गतास्ते सूर्यमण्डलम्

तदा प्रभृति तत्तीर्थं जातं पातकनाशनम् । वायोः पुरं पवित्रं च वायुना निर्मितं पुरा

अञ्जनीगर्भसंभूतो हनुमान्पवनात्मजः । यदाजातो महादेव हनुमान्सत्यविक्रमः ॥

तदैव निर्मितं तीर्थं वायुना ब्रह्मयोनिना ॥ ७३ ॥

उर्व्यां जातास्तु ये शूद्राब्राह्मणानां निवेदिताः । वृत्त्यर्थं ब्रह्मयज्ञार्थंकरस्तेषुकृतोमहान्

अनेन विधिना जातंविप्राणांशासनंमहत् । गोघ्नोवाऽपिकृतघ्नो वा सुरापीगुरुतल्पगः

वाडदित्यं नमस्कृत्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७५ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे महास्थानतीर्थवेदशाखाप्रणयनवर्णनं

नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

शाखाभेदनिरूपणम्

ऋषय ऊचुः

भारद्वाजोयाज्ञवल्क्योगालकिःसालकिस्तथा । धीमाञ्शतवलाकश्चनैगमश्चद्विजोत्तमः
वाष्कलिश्च भरद्वाजस्तिस्रः प्रोवाच संहिताः । रथीतरो निरुक्तं च पुनश्चक्रेचतुर्थकम्

त्रयस्तस्याभवञ्शिष्या महात्मानो गुणान्विताः ।
धीमान्नन्दायनीयश्च पन्नगारिश्च बुद्धिमान् ॥
तृतीयश्चाऽऽर्यवस्ते च तपसा संशितव्रताः ॥ ३ ॥

वीतरागा महातेजाः संहिताज्ञानपारगाः । इत्येते वह्वृचाःप्रोक्ताःसंहितायैःप्रवर्तिताः
वैशम्पायनगोत्रोऽसौयजुर्वेदं व्यकल्पयत् । षडशीतिस्तु येनोक्ताःसंहितायजुषांशुभाः
शिष्येभ्यः प्रददौ तांश्च जगृहुस्तेविधानतः । एकस्तत्रपरित्यक्तोयाज्ञवल्क्योमहातपाः

षडशीतिश्च तस्यापि संहितानां विकल्पकाः ॥ ६ ॥

सर्वेषामेव तेषां वै त्रिधाभेदाःप्रकीर्तिताः । त्रिधाभेदास्तु ते प्रोक्ताभेदेऽस्मिन्नवमेशुभे
उदीच्या मध्यदेशाश्च प्राच्याश्चैवपृथग्विधाः । श्यामायनिरुदीच्यानांप्रधानःसंबभूवह
मध्यदेशप्रतिष्ठानामारुणिः प्रथमः स्मृतः । आलम्बिरादिःप्राच्यानांत्रयोदश्यादयस्तुते
इत्येतेचरकाःप्रोक्ताःसंहितावादिनोद्विजाः । ऋषयस्तद्वचःश्रुत्वासूतंजिज्ञासवोऽब्रुवन्
चरकाध्वर्यवः केन कारणं ब्रूहि तत्त्वतः । किंचीर्णं कस्य हेतोश्च चरकत्वं च भेजिरे

इत्युक्तः प्राह तेषां स चरकत्वमभूद्यथा ॥ ११ ॥

सूत उवाच

कार्यमासीदृषीणांचकिंचिद्ब्राह्मणसत्तमाः । मेरुपृष्ठंसमासाद्यतैस्तदात्वितिमन्त्रितम्
योनोऽत्रसप्तरात्रेणनाऽऽगच्छेद्द्विजसत्तमाः । सकुर्याद्ब्रह्मवध्यांवैसमयोनःप्रकीर्तितः
ततस्ते सगणाः सर्वे वैशम्पायनवर्जिताः । प्रययुः सप्तरात्रेण यत्र संधिः कृतोऽभवत्

ब्राह्मणानांतुवचनाद्ब्रह्मवध्यांचकारसः । शिष्यानथसमानीयसवैशम्पायनोऽब्रवीत् ॥
ब्रह्मवध्यां चरध्वं वै मत्कृते द्विजसत्तमाः । सर्वे यूयं समागम्य ब्रूत मेतद्धितं वचः ॥

याज्ञवल्क्य उवाच

अहमेव चरिष्यामि तिष्ठन्तुमुनयस्त्विमे । बलं चोत्थापयिष्यामितपसास्वेनभावितः
एमुक्तस्ततः क्रुद्धो याज्ञवल्क्यमथाब्रवीत् । उवाच यत्त्वयाऽधीतं सर्वं प्रत्यर्पयस्व मे
एवमुक्तः स रूपाणि यजूंषि प्रददौ गुरोः । रुधिरेण तथाक्तानि छर्दित्वाब्रह्मवित्तमः॥
ततः स ध्यानमास्थाय सूर्यमाराधयद्द्विजाः । सूर्यब्रह्मयदुच्छिन्नं खं गत्वाप्रतितिष्ठति
ततो यानि गतान्यूर्ध्वं यजूंष्यादित्यमण्डलम् । तानि तस्मैददौतुष्टःसूर्यो वै ब्रह्मरातये
अश्वरूपाय मार्तण्डो याज्ञवल्क्याय धीमते ।
यजूंष्यधीयन्ते यानि ब्राह्मणा येन केन च । अश्वरूपायदत्तानिततस्तेवाजिनोऽभवन्॥
ब्रह्महत्या तु यैश्चीर्णाचरणाच्चरकाःस्मृताः । वैशम्पायनशिष्यास्तेचरकाःसमुदाहृताः
इत्येतेचरकाःप्रोक्तावाजिनस्तान्निबोधत । याज्ञवल्क्यस्यशिष्यास्तेकण्ववैधेयशालिनः
मध्यन्दिनश्च शापेयी विधिग्धश्चाप्य उद्दलः । ताम्रायणश्चवात्स्यश्चतथागालवशैशिरी
आटवी च तथा पार्णी वीरणी सपरायणः ॥ २५ ॥
इत्येतेवाजिनःप्रोक्तादशपञ्च च संस्मृताः । शतमेकाधिकंकृत्स्नंयजुषां वै विकल्पकाः
पुत्रमध्यापयामास सुमन्तुमथ जैमिनिः । सुमन्तुश्चापि सुत्वानं पुत्रमध्यापयत्प्रभुः ॥
सुकर्माणं सुतं सुत्वा पुत्रमध्यापयत्प्रभुः ॥ २७ ॥
ससहस्रमधीत्याऽऽशुसुकर्माऽप्यथसंहिताः । प्रोवाचाथ सहस्रस्य सुकर्मा सूर्यवर्चसः
अनध्यायेष्वधीयानांस्ताञ्जघानशतक्रतुः । प्रायोपवेशमकरोत्ततोऽसौ शिष्यकारणात्
क्रुद्धं दृष्ट्वा ततः शक्रो वरमस्मै ददौ पुनः । भाविनौ ते महावीर्यौ शिष्यावनलवर्चसौ
अधीयानौ महाप्राज्ञौ सहस्रं संहितावुभौ । एतौ सुरौमहाभागौ मा क्रुध्यद्विजसत्तम
इत्युक्त्वा वासवः श्रीमान्सुकर्माणंयशस्विनम् । शान्तक्रोधंद्विजंदृष्ट्वातत्रैवान्तरधायत
तस्य शिष्यो भवेद्धीमान्पौष्यञ्जी द्विजसत्तमाः ।
हिरण्यनाभः कौशिल्यो द्वितीयोऽभून्नराधिपः ॥ ३३ ॥

अध्यापयत्तु पौष्यञ्जी सहस्रार्धं तु संहिताः ।
ते नाम्नोदीच्यसामान्याः शिष्याः पौष्यञ्जिनः शुभाः ॥ ३४ ॥
शतानि पञ्च कौशिल्यः संहितानां च वीर्यवान् ।
शिष्या हिरण्यनाभस्य स्मृतास्ते प्राच्यसामगाः ॥ ३५ ॥
लोकाक्षीकुथुमिश्चैवकुशीतीःलाङ्गलिस्तथा।पौष्यञ्जिशिष्याश्चत्वारस्तेषांभेदान्निबोधत
राणायनीयः सहितण्डिपुत्रस्तस्मादन्यो मूलचारी सुविद्वान् ।
सकैतिपुत्रः सहसात्यपुत्र एतान्भेदान्वित्त लोकाक्षिणस्तु ॥ ३७ ॥
त्रयस्तुकुथुमेःपुत्राऔरसोरसपासरः । भागवित्तिश्चतेजस्वीत्रिविधाःकौथुमाःस्मृताः
शौरिद्युः शृङ्गिपुत्रश्च द्वावेतौ चरितव्रतौ । राणायनीयःसौमित्रिःसामवेदविशारदौ॥
प्रोवाच संहितास्तिस्रः शृङ्गिपुत्रोमहातपाः । चैलःप्राचीनयोगश्चसुरालश्चद्विजोत्तमाः
प्रोवाच संहिताः षट् तु पाराशर्यस्तु कौथुमः । आसुरायणवैशाख्यौवेदवृद्धपरायणौ
प्राचीनयोगपुत्रश्चबुद्धिमांश्चपतञ्जलिः । कौथुमस्य तु भेदास्तेपाराशर्यस्य षट् स्मृताः
लाङ्गलिः शालिहोत्रश्च षट्षट् प्रोवाच संहिताः ॥ ४२ ॥
भालुकिःकामहानिश्चजैमिनिर्लोमगायिनिः । कण्डुश्च कीहलश्चैवषडेतेलाङ्गलाःस्मृताः
एते लाङ्गलिनः शिष्याः संहिता यैः प्रसाधिताः ॥ ४३ ॥
ततो हिरण्यनाभस्य कृतशिष्यो नृपात्मजः । सोऽकरोच्चचतुर्विंशत्संहिताद्विपदांवरः
प्रोवाच चैव शिष्येभ्यो येभ्यस्तांश्च निबोधत ॥ ४४ ॥
राडश्च महवीर्यश्च पञ्चमो वाहनस्तथा । तालकः पाण्डकश्चैवकालिकोराजिकस्तथा
गौतमश्चाजवस्तश्च सोमराजाऽपतत्ततः ॥ ४५ ॥
पृष्ठघ्नः परिकृष्टश्च उलूखलक एव च । यवीयसश्च वैशालो अङ्गुलीयश्च कौशिकः ॥
सालिमञ्जरिसत्यश्चकापीयःकानिकश्च यः । पराशरश्चधर्मात्माइतिक्रान्तास्तुसामगाः
सामगानां तु सर्वेषांश्रेष्ठौद्वौतुप्रकीर्तितौ । पौष्यञ्जिश्चकृतिश्चैवसंहितानांविकल्पकौ
अथर्वाणंद्विधाकृत्वासुमन्तुरददाद्द्विजाः । कबन्धाय गुरुःकृत्स्नंसचविद्याद्यथाक्रमम्
कबन्धस्तु द्विधा कृत्वापथ्यायैकं पुनर्ददौ । द्वितीयंवेदस्पर्शाय स चतुर्धाऽकरोत्पुनः

मोदो ब्रह्मबलश्चैव पिप्पलादस्तथैव च । शौष्कायनिश्च धर्मज्ञश्चतुर्थस्तपनः स्मृतः

वेदस्पर्शस्य चत्वारः शिष्यास्त्वेते दृढव्रताः ॥ ५१ ॥

पुनश्च त्रिविधं विद्धि पथ्यानांभेदमुत्तमम् । जाजलिःकुमुदादिश्चतृतीयःशौनकःस्मृतः

शौनकस्तु द्विधा कृत्वा ददावेकं तु बभ्रवे । द्वितीयांसंहितांधीमान्सैन्धवायनसंज्ञिते

सैन्धवोमुञ्जकेशायभिन्ना सा च द्विधापुनः । नक्षत्रकल्पोवैतानस्तृतीयःसंहिताविधिः

चतुर्थोऽङ्गिरसः कल्पः शान्तिकल्पश्च पञ्चमः ॥ ५४ ॥

श्रेष्ठास्त्वथर्वणो ह्येते संहितानां विकल्पनाः ।

षट्शः कृत्वा मयाऽप्युक्तं पुराणमृषिसत्तमाः ॥ ५५ ॥

आत्रेयः सुमतिर्धीमान्काश्यपोह्यकृतव्रणः । भारद्वाजोऽग्निवर्चाश्चवशिष्ठो मित्रयुश्चयः

सावर्णिः सौमदत्तिस्तु सुशर्मा शांशपायनः ॥ ५६ ॥

एते शिष्या मम ब्रह्मन्पुराणेषु दृढव्रताः । त्रिभिस्तिस्त्रः कृतास्तिस्त्रः संहिताःपुनरेवहि

काश्यपः संहिताकर्ता सावर्णिः शांशपायनः ।

सामिका च चतुर्थी स्यात्सा चेषा पूर्वसंहिता ॥ ५८ ॥

सर्वास्ताहि चतुष्पादाःसर्वाश्चैकार्थवाचिकाः । पाठान्तरैपृथग्भूतावेदशाखायथातथा

चतुःसाहस्त्रिकाः सर्वाः शांशपायनिकामृते ॥ ५९ ॥

लोमहर्षणिका मूलास्ततः काश्यपिकाःपराः ।

सावर्णिकास्तृतीयास्ता यजुर्वाक्यार्थपण्डिताः ॥ ६० ॥

शांशपायनिकाश्चान्या नोदनार्थविभूषिताः । सहस्राणि ऋचामष्टौषट्शतानितथैवच

एताः पञ्चदशान्याश्च दशान्या दशभिस्तथा ।

वालखिल्याः सहप्रैषाः ससावर्णाः प्रकीर्तिताः ॥ ६२ ॥

अष्टौ साम सहस्राणिसामानि च चतुर्दश । आरण्यकंसहोमं च एतद्गायन्तिसामगाः

द्वादशैव सहस्राणि छन्द आध्वर्यवं स्मृतम् ।

यजुषां ब्राह्मणानां च तथा व्यासो व्यकल्पयत् ॥ ६४ ॥

सग्राम्यारण्यकं तत्स्यात्समन्त्रकरणं तथा । अतः परंकथानां तु पूर्वा इतिविशेषणम्

ग्राम्यारण्यंसमन्त्रंचऋग्ब्राह्मणयजुःस्मृतम् । तथाहारिद्रवीयाणांखिलान्युपखिलानिच
तथैव तैत्तिरीयाणां परक्षुद्रा इतिस्मृतम् ॥ ६६ ॥
द्वे सहस्रे शतेन्यूने वेदे वाजसनेयके । ऋग्गणः परिसंख्यातो ब्राह्मणं तु चतुर्गुणम् ॥
अष्टौ सहस्राणि शतानि चाष्टावशीतिरन्यान्यधिकश्च पादः ।
एतत्प्रमाणं यजुषामृचां च सशुक्रियं साखिलयाज्ञवल्क्यम् ॥ ६८ ॥
तथा चरणविद्यानां प्रमाणं संहितां शृणु । षट्साहस्रमृचामुक्तमृचः षड्विंशतिःपुनः
एतावदधिकं तेषां यजुः कामं विवक्ष्यति ॥ ६९ ॥
एकादश सहस्राणि दशचान्या दशोत्तराः । ऋचां दश सहस्राणिअशीतित्रिशतानि च
सहस्रमेकं मन्त्राणामृचामुक्तं प्रमाणतः । एतावद्भृगुविस्तारमन्यच्चाथर्विकं बहु ॥
ऋचामथर्वणां पञ्च सहस्राणि विनिश्चयः । सहस्रमन्यद्विज्ञेयमृषिभिर्विंशति विना ॥
एतदङ्गिरसा प्रोक्तं तेषामारण्यकं पुनः । इति संख्या प्रसंख्याता शाखाभेदास्तथैव च
कर्तारश्चैव शाखानां भेदे हेतुस्तथैव च । सर्वमन्वन्तरेष्वेवं शाखाभेदाःसमाः स्मृताः
प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे स्मृताः ।
अनित्यभावाद्देवानां मन्त्रोत्पत्तिः पुनः पुनः ॥ ७५ ॥
मन्वन्तराणां क्रियते सुराणां नामनिश्चयः । द्वापरेषु पुनर्भेदाः श्रुतीनां परिकीर्तिताः
एवं वेदं तदा न्यस्य भगवानृषिसत्तमः । शिष्येभ्यश्च पुनर्दत्त्वा तपस्तप्तुं गतोवनम्
तस्य शिष्यप्रशिष्यैस्तु शाखाभेदास्त्विमे कृताः ॥ ७७ ॥
अङ्गानिवेदाश्चत्वारोमीमांसान्यायविस्तरः । धर्मशास्त्रंपुराणंचविद्यास्त्वेताश्चतुर्दश
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः । अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्यास्त्वष्टादशैव तु
ज्ञेया ब्रह्मर्षयः पूर्वं तेभ्यो देवर्षयः पुनः । राजर्षयः पुनस्तेभ्य ऋषिप्रकृतयस्त्रयः ॥
तेभ्य ऋषिप्रकृतयो मुनिभिः संशितव्रतैः ॥ ८० ॥
कश्यपेषु वशिष्ठेषु तथा भृग्वङ्गिरोऽत्रिषु । पञ्चस्वेतेषु जायन्ते गोत्रेषु ब्रह्मवादिनः
यस्माद्दृषन्ति ब्रह्माणं तेन ब्रह्मर्षयः स्मृताः ॥ ८१ ॥
धर्मस्याथ पुलस्त्यस्य क्रतोश्च पुलहस्य च । प्रत्यूषस्य प्रभासस्यकश्यपस्यतथापुनः

देवर्षयः सुतास्तेषां नामतस्तान्निबोधत । देवर्षी धर्मपुत्रौ तु नरनारायणावुभौ ॥
वालखिल्यःक्रतोः पुत्राःकर्दमः पुलहस्य तु । कुवेरश्चैवपौलस्त्यःप्रत्यूषस्याचलःस्मृतः
पर्वतो नारदश्चैवकश्यपस्यात्मजावुभौ । ऋषन्ति देवान्यस्मात्तेतस्माद्देवर्षयःस्मृताः
मानवे वैषये वंशे ऐडवंशे च ये नृपाः । ऐडा ऐक्ष्वाकनाभागा ज्ञेया राजर्षयस्तु ते
ऋषन्ति रञ्जनाद्यस्मात्प्रजा राजर्षयस्ततः । ब्रह्मलोकप्रतिष्ठास्तु स्मृता ब्रह्मर्षयो मताः
देवलोकप्रतिष्ठाश्च ज्ञेया देवर्षयः शुभाः । इन्द्रलोकप्रतिष्ठास्तु सर्वे राजर्षयो मताः ॥
अभिजात्या च तपसा मन्त्रव्याहरणैस्तथा । एवं ब्रह्मर्षयः प्रोक्तादिव्याराजर्षयस्तुये
देवर्षयस्तथाऽन्ये च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् । भूतभव्यभवज्ञानंसत्याभिव्याहृतंतथा

संबुद्धास्तु स्वयं ये तु संवद्धा ये च वै स्वयम् ।
तपसेह प्रसिद्धा ये गर्भे यैश्च प्रनो (णो) दितम् ॥ ६१ ॥

मन्त्रव्याहारिणो ये च ऐश्वर्यात्सर्वगाश्च ये । इत्येत ऋषिभिर्युक्ता देवद्विजनृपास्तुये
एतान्भावानधीयाना ये चैत ऋषयो मताः । सप्तैते सप्तभिश्चैव गुणैः सप्तर्षयःस्मृताः
दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दिव्यचक्षुषः । वुद्धाः प्रत्यक्षधर्माणो गोत्रप्रावर्तकाश्च ये
षट्कर्माभिरता नित्यं शालिनो गृहमेधिनः । तुल्यैर्व्यवहरन्ति स्म अदृष्टैःकर्महेतुभिः
अग्राम्यैर्वर्तयन्ति स्म रसैश्चैवस्वयंकृतैः । कुटुम्बिनऋद्धिमन्तोवाह्यान्तरनिवासिनः
कृतादिषु युगाख्येषु सर्वेष्वेव पुनः पुनः । वर्णाश्रमव्यवस्थानं क्रियन्ते प्रथमं तु वै
प्राप्ते त्रेतायुगमुखे पुनः सप्तर्षयस्त्विह । प्रवर्तयन्ति ये वर्णानाश्रमांश्चैव सर्वशः ॥

तेषामेवान्वये वीरा उत्पद्यन्ते पुनः पुनः ॥ ९८ ॥

जायमाने पितापुत्रे पुत्रः पितरि चैव हि । एवं समेत्याविच्छेदाद्वर्तयन्त्यायुगक्षयात्

अष्टाशीतिसहस्राणि प्रोक्तानि गृहमेधिनाम् ॥ ९९ ॥

अर्यम्णोदक्षिणायेतुपितृयाणंसमाश्रिताः । दाराग्निहोत्रिणस्तेवै ये प्रजाहेतवःस्मृताः
गृहमेधिनांचसंख्येयाःश्मशानान्याश्रयन्ति ते । अष्टाशीतिसहस्राणिनिहिताउत्तरायणे
ये श्रूयन्ते दिवं प्राप्ता ऋषयो ह्यूर्ध्वरेतसः । मन्त्रब्राह्मणकर्तारो जायन्ते ह युगक्षये ॥
एवमावर्तमानास्ते द्वापरेषु पुनः पुनः । कल्पानां भाष्यविद्यानां नानाशास्त्रकृतः क्षये

क्रियते तैर्विवरणं त्रेतादौ संयुगे प्रभुः ॥ १०३ ॥

भविष्ये द्वापरे चैवद्रौणिर्द्वैपायनः पुनः । वेदव्यासो ह्यतीतेऽस्मिन्भवितासुमहातपाः
भविष्यन्ति भविष्येषु शाखाप्रणयनानि तु । तस्मै तद्ब्रह्मणाब्रह्म तपसा प्राप्तमव्ययम्
तपसा कर्मसंप्राप्तंकर्मणा हि ततो यशः । यशसाप्राप्यसत्यं हि सत्येनाप्तोहिचाव्ययः
अव्ययादमृतं शुक्रममृतात्सर्वमेव हि । ध्रुवमेकाक्षरमिदं स्वात्मन्येव व्यवस्थितम् ॥
बृहत्वाद् बृंहणाच्चैव तद्ब्रह्मेत्यभिधीयते ॥ १०७ ॥

प्रणवावस्थितं भूयो भूर्भुवः स्वरिति स्मृतम् । ऋग्यजुःसामाथर्वाणंयत्तस्मैब्रह्मणेनमः
जगतः प्रलयोत्पत्तौ यत्तत्कारणसंज्ञितम् । महतः परमं गुह्यं तस्मै सुब्रह्मणे नमः ॥
अगाधपारमक्षय्यं जगत्संमोहनालयम् । सप्रकाशप्रवृत्तिभ्यां पुरुषार्थप्रयोजनम् ॥
सांख्यज्ञानवतां निष्ठा गतिः संगदमात्मनः । यत्तदव्यक्तममृतं प्रकृतिब्रह्म शाश्वतम् ॥
प्रधानमात्मयोनिश्च गुह्यं सत्त्वं च शब्द्यते । अविभागस्तथा शुक्रमक्षरंबहुवाचकम् ॥
परमब्रह्मणे तस्मै नित्यमेव नमोनमः ॥ ११२ ॥

कृते पुनः क्रिया नास्ति कुत एवाकृतक्रिया । सकृदेव कृतं सर्वं यद्वै लोके कृताकृतम्
श्रोतव्यं वै श्रुतंवाऽपितथैवासाधुसाधुताम् । ज्ञातव्यंचाथमन्तव्यंस्पृष्टव्यंभोज्यमेवच
द्रष्टव्यं चाथ श्रोतव्यं ज्ञातव्यं वाऽथ किंचन ॥ ११४ ॥

दर्शितं यदनेनैव ज्ञानं तद्वै सुरर्षिणाम् । यद्वै दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमर्हति ॥
सर्वाणि सर्वान्सर्वांश्च भगवानेव सोऽब्रवीत् ॥ ११५ ॥

यदा यत्क्रियते येन तदा तत्सोऽभिमन्यते । येनेदं क्रियते पूर्वं तदन्येन विभावितम्
यदा तु क्रियते किंचित्केन चिद्वाङ्मयं क्वचित् । तेनैव तत्कृतं पूर्वं कर्तॄणांप्रतिभातिवै
विरक्तं चातिरिक्तं च ज्ञानाज्ञाने प्रियाप्रिये । धर्माधर्मौ सुखं दुःखं मृत्युश्चामृतमेव च
ऊर्ध्वं तिर्यगधोभागस्तस्यैवादृष्टकारणम् ॥ ११८ ॥

स्वायंभुवोऽथ ज्येष्ठस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । प्रत्येकविद्यं भवति त्रेतास्विह पुनः पुनः
व्यस्यते ह्येकविद्यं तद्द्वापरेषु पुनः पुनः । ब्रह्मा चैतदुवाचाऽऽदौतस्मिन्वैवस्वतेऽन्तरे
आवर्तमाना ऋषयो युगाख्यासु पुनः पुनः । कुर्वन्ति संहिता ह्येतेजायमानाःपरस्परम्

अष्टाशीतिसहस्राणि श्रुतर्षीणां स्मृतानि वै। ता एव संहिता ह्येत आवर्तन्तेपुनःपुनः
श्रिता दक्षिणपन्थानं ये श्मशानादि भेजिरे।
युगे युगे तु ताः शाखा व्यस्यन्ते तैः पुनः पुनः ॥ १२३ ॥
द्वापरेष्विह सर्वेषु संहिताश्च श्रुतर्षिभिः। तेषां गात्रेष्विमाः शाखा भवन्तीहपुनःपुनः
ताः शाखास्तत्र कर्तारो भवन्तीह युगक्षयात् ॥ १२४ ॥
एवमेव तु विज्ञेयं व्यतीतानागतेष्विह। मन्वन्तरेषु सर्वेषु शाखाप्रणयनानि वै ॥
अतीतेषु अतीतानि वर्तन्तेसांप्रतेषु च। भविष्याणि च यानिस्युर्वर्ण्यन्तेऽनागतेष्वपि
पूर्वेण पश्चिमं ज्ञेयं वर्तमानेन चोभयम्। एतेन क्रमयोगेन(ण)मन्वन्तरविनिश्चयः ॥
एवं देवाश्च पितर ऋषयो मनवश्च ये। मन्त्रैः सहोर्ध्वं गच्छन्ति ह्यावर्तन्ते च तैः सह
जनलोकात्सुराः सर्वे पशुकल्पात्पुनः पुनः। पर्याप्तकाले संप्राप्तेसंभूता नैव(ध्व)नस्यतु
अवश्यंभाविनाऽर्थेन संवध्यन्ते तदा तु ते। ततस्ते दोषवज्जन्म पश्यन्ते रागपूर्वकम्
निवर्तते तदा वृतिस्तेषामादोषदर्षनात्। एवं देवयुगानीह दश कृत्वा निवर्तते ॥
जनलोकात्तपोलोकं गच्छन्तीहानिवर्तनम्। एवं देवयुगानीह व्यतीतानि सहस्रशः
निधनं ब्रह्मलोके वै गतानि मुनिभिः सह ॥ १३२ ॥
न शक्यमानुपूर्वेण तेषां वक्तुंसविस्तरात्। अनादित्वाच्चकालस्यअसंख्यानाच्चसर्वशः
मन्वन्तराण्यतीतानि यानि कल्पैः पुरा सह। पितृभिर्मुनिभिर्देवैः सार्धंसप्तर्षिभिश्चवैं
कालेन प्रतिसृष्टानां युग्रानां च निवर्तनम् ॥ १३४ ॥
एतेन क्रमयोगेन(ण)कल्पमन्वन्तराणि तु। सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रशः
मन्वन्तरान्ते संहारः संहारान्ते च संभवः। देवतानामृषीणां च मनो पितृगणस्य च
नशक्यमानुपूर्व्येण वक्तुं वर्षशतैरपि। विस्तरस्तु निसर्गस्य संहारस्य च सर्वशः ॥
मन्वन्तरस्य संख्या तु मानुषेण निबोधत ॥ १३७ ॥
देवतानामृषीणां च संख्यानार्थविशारदैः।
त्रिंशत्कोट्यस्तु संपूर्णाः संख्याताः संख्यया द्विजैः ॥ १३८ ॥
सप्तषष्टिस्तथाऽन्यानि नियुतानि च संख्यया।

विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं सांधिकाद्विना ॥ १३९ ॥

मन्वन्तरस्य संख्यैषा मानुषेण प्रकीर्तिता । वत्सरेणैव दिव्येन प्रवक्ष्याम्यन्तरं मनोः

अष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया संख्यया स्मृतम् ।

द्विपञ्चाशत्तथाऽन्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ॥ १४१ ॥

चतुर्दशगुणो ह्येष काल आभूतसंप्लवः । पूर्णं युगसहस्रं स्यात्तदहर्ब्रह्मणः स्मृतम् ॥

तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यरश्मिभिः । ब्रह्माणमग्रतः कृत्वासहदेवर्षिदानवैः

प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं देवदेवं महेश्वरम् ॥ १४३ ॥

स स्रष्टा सर्वभूतानि कल्पादिषु पुनः पुनः । इत्येषस्थितिकालो वै मनोर्देवर्षिभिःसह

सर्वमन्वन्तराणांवैप्रतिसंधिंनिबोधत । युगाख्यायासमुद्दिष्टाप्रागेवास्मिन्मयाऽनघाः

कृतत्रेतादिसंयुक्तं चतुर्युगमिति स्मृतम् । तदेकसप्ततिगुणं परिवृत्तं तु साधिकम् ॥

मनोरेतमधीकारं प्रोवाच भगवान्प्रभुः ॥ १४६ ॥

एवं मन्वन्तराणां तु सर्वेषामेव लक्षणम् । अतीतानागतानां वै वर्तमानेन कीर्तितम्

इत्येष कीर्तितः सर्गो मनोःस्वायंभुवस्य ह । प्रतिसंधिं तु वक्ष्यामितस्यचैवापरस्यतु

मन्वन्तरं यथा पूर्वमृषिभिर्दैवतैः सह । अवश्यंभाविनाऽर्थेन यथा तद्वै निवर्तते ॥

अस्मिन्मन्वन्तरे पूर्वं त्रैलोक्यस्येश्वरास्तु ये । सप्तर्षयश्च देवास्ते पितरो मनवस्तथा

मन्वन्तरस्य काले तु संपूर्णे साधकास्तथा ॥ १५० ॥

क्षीणाधिकाराः संवृत्ता बुद्ध्वा पर्यायमात्मनः ।

महर्लोकाय ते सर्वे उन्मुखा दधिरे गतिम् ॥ १५१ ॥

ततोमन्वन्तरेतस्मिन्प्रक्षीणादेवतास्तुताः । संपूर्णस्थितिकाले तु तिष्ठन्त्येकंकृतंयुगम्

उत्पद्यन्ते भविष्याश्च यावन्मन्वन्तरेश्वराः । देवताः पितरश्चैव ऋषयो मनुरेव च ॥

मन्वन्तरे तु संपूर्णे यद्यन्यद्वै कलौ युगे । संपद्यते कृतं तेषु कलिशिष्टेषु वै तदा ॥

यथा कृतस्य संतानः कलिपूर्वः स्मृतो बुधैः । तथामन्वन्तरान्तेषुआदिर्मन्वन्तरस्यच

क्षीणे मन्वन्तरे पूर्वे प्रवृत्ते चापरे पुनः । मुखे कृतयुगस्याथ तेषां शिष्टास्तु ये तदा ॥

सप्तर्षयो मनुश्चैवकालावेक्षास्तु ये स्थिताः । मन्वन्तरंप्रतीक्षन्तेक्षीयन्तेतपसिस्थिताः

मन्वन्तरव्यवस्थार्थं संतत्यर्थं च सर्वशः । पूर्ववत्संप्रवर्तन्ते प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ॥१५८
द्वन्द्वेषु संप्रवृत्तेषुउत्पन्नास्वौषधीषु च । प्रजासु च निकेतासुसंस्थितासुकचित्कचित्
वार्तायां तु प्रवृत्तायां सद्धर्मे ऋषिभाविते । निरानन्दे गते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥
अग्रामनगरे चैव वर्णाश्रमविवर्जिते । पूर्वमन्वन्तरे शिष्टे ये भवन्तीह धार्मिकाः ॥

सप्तर्षयो मनुश्चैव संतानार्थं व्यवस्थिताः ॥ १६१ ॥

प्रजार्थं तपतां तेषां तपः परमदुश्चरम् । उत्पद्यन्तीह सर्वेषां निधनेष्विह सर्वशः ॥
देवासुराः पितृगणाः मुनयोमनवस्तथा । सर्पा भूताः पिशाचाश्चगन्धर्वायक्षराक्षसाः
ततस्तेषां तु ये शिष्टाः शिष्टाचारान्प्रचक्षते । सप्तर्षयो मनुश्चैव आदौ मन्वन्तरस्य ह

प्रारभन्ते च कर्माणि मनुष्या दैवतैः सह ॥ १६४ ॥

मन्वन्तरादौ प्रागेव त्रेतायुगमुखे ततः । पूर्वं देवास्ततस्ते वै स्थिते धर्मे तु सर्वशः
ऋषीणां ब्रह्मचर्येण गत्वाऽनृण्यं तु वै ततः । पितॄणां प्रजयाचैवदेवानामिज्ययातथा
शतंवर्षसहस्राणिधर्मेवर्णात्मके स्थिताः । त्रयींवार्तांदण्डनीतिंधर्मान्वर्णाश्रमांस्तथा

स्थापयित्वाऽऽश्रमांश्चैव स्वर्गाय दधिरे मतीः ॥ १६७ ॥

पूर्वं देवेषु तेष्वेव स्वर्गाय प्रमुखेषु च । पूर्वं देवास्ततस्ते वै स्थिता धर्मेण कृत्स्नशः
मन्वन्तरेपरावृत्तेस्थानान्युत्सृज्यसर्वशः । मन्त्रः सहोर्ध्वंगच्छन्तिमहर्लोकमनामयम्॥

विनिवृत्तविकारास्ते मानसीं सिद्धिमास्थिताः ।
अवेक्ष्यामाणा वशिनस्तिष्ठन्त्याभूतसंप्लवम् ॥ १७० ॥

ततस्तेषु व्यतीतेषु सर्वेष्वेतेषु सर्वदा । शून्येषु देवस्थानेषु त्रैलोक्ये तेषु सर्वशः ॥

उपस्थिता इहैवान्ये देवा ये स्वर्गवासिनः ॥ १७१ ॥

ततस्ते तपसा युक्ता स्थानान्यापूरयन्ति वै । सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च समन्विताः
सप्तर्षीणां मनोश्चैव देवानां पितृभिः सह । निधनानीहपूर्वेषामादिना च भविष्यताम्
तेषामत्यन्तविच्छेद इहं मन्वन्तरक्षयात् । एवं पूर्वानुपूर्वेण स्थितिरेषाऽनवस्थिता

मन्वतरेषु सर्वेषु यावदाभूतसंप्लवम् ॥ १७४ ॥

एवं मन्वन्तराणां तु प्रतिसंधानलक्षणम् । अतीतानागतानां तु प्रोक्तं स्वायंभुवेन तु

मन्वन्तरेष्वतीतेषु भविष्याणांतु साधनम् । एवमत्यन्तविच्छिन्नं भवत्याभूतसंप्लवम्

मन्वन्तराणां परिवर्तनानि एकान्ततस्तानि महर्गतानि ।
महर्जनं चैव जनं तपश्च एकान्तगानि स्म भवन्ति सत्ये ॥ १७७ ॥
तद्भाविनां तत्र तु दर्शनेन नानात्वदृष्टेन च प्रत्ययेन ।
सत्ये स्थितानीह तदा तु तानि प्राप्ते विकारे प्रतिसर्गकाले ॥ १७८ ॥
मन्वन्तराणां परिवर्तनानि मुञ्चन्ति सत्यं तु ततोऽपरान्ते ।
ततोऽभियोगाद्विषमप्रमाणं विशन्ति नारायणमेव देवम् ॥ १७९ ॥
मन्वन्तराणां परिवर्तनेषु चिरप्रवृत्तेषु विधिस्वभावात् ।
क्षणं रसं तिष्ठति जीवलोकाः क्षयोदयाभ्यां परिवन्दमानः ॥ १८० ॥
इत्युत्तराण्येवमृषिस्तुतानां धर्मात्मनां दिव्यदृशां मनूनाम् ।
वायुप्रणीतान्युपलभ्य दृश्यं दिव्यौजसा व्याससमासयोगैः ॥ १८१ ॥
सर्वाणि राजर्षिसुरर्षिमन्ति ब्रह्मर्षिदेवोरगवन्ति चैव ।
सुरेशसप्तर्षिपितृप्रजेशैर्युक्तानि सम्यक्परिवर्तनानि ॥ १८२ ॥
उदारवंशाभिजनद्युतीनां प्रकृष्टमेधाभिसमेधितानाम् ।
कीर्तिद्युतिख्यातिभिरन्वितानां पुण्यं हि विख्यापनमीश्वराणाम् ॥१८३॥
स्वर्गीयमेतत्परमं पवित्रं पुत्रीयमेतच्च परं रहस्यम् ।
जप्यं महत्पर्वसु चैतदग्र्यं दुःस्वप्नशान्तिः परमायुषेयम् ॥ १८४ ॥
प्रजेशदेवर्षिमनुप्रधानां पुण्यप्रसूतिं प्रथितामजस्य ।
ममापि विख्यापनसंयमाय सिद्धिं जुषध्वं सुमहेशतत्त्वम् ॥ १८५ ॥

इत्येतदन्तरंप्रोक्तंमनोःस्वायंभुवस्य तु । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च भूयःकिंवर्णयाम्यहम्

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे प्रजापतिवंशानुकीर्तनं
नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

स्वायम्भुवादिमनूनां सर्गनिरूपणम्

शांशपायन उवाच

क्रमंमन्वन्तराणां तु ज्ञातुमिच्छामितत्त्वतः । दैवतानां च सर्वेषां ये च यस्यान्तरेमनोः

सूत उवाच

मन्वन्तराणि यानि स्युरतीतानागतानि ह । समासाद्विस्तराच्चैवब्रुवतो वै निबोधत

स्वायंभुवो मनुः पूर्वं मनुः स्वारोचिषस्तथा । औत्तमस्तामसश्चैव तथा रैवतचाक्षुषौ

षडेते मनवोऽतीता वक्ष्याम्यष्टावनागतान् ॥ ३ ॥

सावर्णाःपञ्चरौच्यश्चभौत्योवैवस्वतस्तथा । वक्ष्याम्येतान्पुरस्तात्तुमनोर्वैवस्वतस्यह

मनवः पञ्चयेऽतीतामानवांस्तान्निबोधत । मन्वन्तरंमया चोक्तं क्रान्तंस्वायंभुवस्यह

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामिमनोःस्वारोचिषस्य च । प्रजासर्गंसमासेनद्वितीयस्यमहात्मनः

आसन्वै तुषिता देवामनुस्वारोचिषेन्तरे । पारावताश्चविद्वांसोद्वावेव तु गणौस्मृतौ

तुषितायां समुत्पन्नाः क्रतोः पुत्राः स्वरोचिषः ।

पारावताश्च शिष्टाश्च द्वादशौ तौ गणौ स्मृतौ ॥

छन्दजाश्च चतुर्विंशद्देवास्ते वै तदा स्मृताः ॥ ८ ॥

धैवस्य शोथ वामान्यो गोपा देवायतस्तथा । अजश्च भगवान्देवो दुरोणश्चमहाबलः

आपश्चापि महाबाहुर्महौजाश्चापिवीर्यवान् । चिकित्वानिभृतोयश्च अंशोयश्चैवपठ्यते

अजश्च द्वादशस्तेषां तुषिताःपरिकीर्तिताः । इत्येतेक्रतुपुत्रास्तुतदाऽऽसन्सोमपायिनः

प्रचेताश्चैव यो देवो विश्वदेवास्तथैव च । समञ्जो विश्रुतो यश्च अजिह्मश्चारिमर्दनः

अजिह्मानमहीयानौ विद्यवन्तौ तथैव च । अजोषौ च महाभागौ यवीयश्च महाबलः

होता यज्वा च इत्येतेपराक्रान्ताः परावताः । इत्येतादेवताह्यासन्मनुस्वारोचिषेऽन्तरे

सोमपास्तु तदा ह्येताश्चतुर्विंशतिदेवताः । तेषामिन्द्रस्तदा ह्यासीद्वैधश्चलोकविश्रुतः

ऊर्जो वसिष्ठपुत्रस्तुस्तम्भःकाश्यपएव च । भार्गवश्च, तदाद्रोणोऋषभोऽङ्गिरसस्तथा
पौलस्त्यश्चैवदत्तात्रिरात्रेयोनिश्चलस्तथा । पौलहस्य च धावांस्तुएतेसप्तर्षयःस्मृताः
चैत्रः कविरुतश्चैव कृतान्तो विभृतो रविः । वृहद्गुहो नवश्चैव शुभाश्चैते नवस्मृताः
मनोः स्वारोचिषस्यैते पुत्रा वंशकराःस्मृताः । पुराणेपरिसंख्याताद्वितीयंचैतदन्तरम्
सप्तर्षयो मनुर्देवाः पितरश्च चतुष्टयम् । मूलं मन्वन्तरस्यैते तेषां चैवान्तरे प्रजाः ॥
ऋषीणां देवताः पुत्राः पितरो देवसूनवः । ऋषयो देवपुत्राश्च इति शास्त्रविनिश्चयः
मनोः क्षत्रं विशश्चैव सप्तर्षिभ्योद्विजातयः । एतन्मन्वन्तरंप्रोक्तंसमासान्नतुविस्तरात्
स्वायंभुवेन विस्तारो ज्ञेयःस्वारोचिषस्य तु । न शक्योविस्तरस्तस्यवक्तुंवर्षशतैरपि

पुनरुक्तबहुत्वात्तु प्रजानां वै कुले कुले ॥ २३ ॥

तृतीयस्त्वथपर्यायऔत्तमस्यान्तरे मनोः । पञ्चदेवगणाःप्रोक्तास्तान्वक्ष्यामिनिबोधत
सुधामानश्च देवाश्च ये चान्ये वशवर्तिनः । प्रतर्दनाः शिवाः सत्यगणाद्वादशवैस्मृताः

सत्यो धृतिर्दमो दान्तः क्षमः क्षामो धृतिः शुचिः ।
ईषोर्जाश्च तथा ज्येष्ठो वपुष्मांश्चैव द्वादश ॥
इत्येते नामभिः क्रान्ताः सुधामानस्तु द्वादश ॥ २६ ॥

सहस्रधारोविश्वात्माशमितारोवृहद्वसुः । विश्वधाविश्वकर्माचमनस्वन्तोविराड्यशाः

ज्योतिश्चैव विभाव्यश्च कीर्तिमान्वंशकारिणः ।
अन्यानाराधितो देवो वसुधिष्णो विवस्वसुः ॥ २८ ॥

दिनक्रतुः सुधर्मा च धृतवर्मा यशस्विनः । केतुमांश्चैव इत्येते कीर्तितास्तु प्रमर्दनाः
हंसस्वरोऽहिहा चैव प्रतर्दनयशस्करौ । सुदानो वसुदानश्च सुमञ्जसविषावुभौ ॥३०
यत्तु वाहयतिश्चैव सुवित्तसुनयस्तथा । शिवाह्येते तु विज्ञेया यज्ञियाद्वादशापराः ॥
सत्त्वानामपि नामानिनिबोधत यथामतम् । दिक्पतिर्वाक्पतिश्चैवविश्वःशंभुस्तथैवच
स्वमृडीकोऽधिपश्चैव वर्चोधा मुह्यसर्वशः । वासवश्च सदाश्वश्च क्षेमानन्दौतथैव च
सत्या ह्येतो परिक्रान्ता यज्ञियाद्वादशापराः । इत्येतादेवताह्यासन्नौत्तमस्यान्तरेमनोः
अजश्च परशुश्चैव दिव्ये दिव्यौषधिर्नयः । देवानुजश्चाप्रतिमो महोत्साहौशिजस्तथा

विनीतश्च सुकेतुश्च सुमित्रः सुबलः शुचिः । औत्तमस्यमनोःपुत्रास्त्रयोदशमहात्मनः

एते क्षत्रप्रणेतारस्तृतीयं चैतदन्तरम् ॥ ३६ ॥

औत्तमो परिसंख्यातः गर्गः स्वारोचिषेण तु ।

विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च तामसांस्तान्निबोधत ॥ ३७ ॥

चतुर्थे त्वथ पर्याये तामसस्यान्तरे मनोः । सत्याः स्वरूपाःसुधियोहरयश्चतुरोगणाः

पुलस्त्यपुत्रस्य सुतास्तामसस्यान्तरे मनोः । गणस्तु तेषां देवानामेकैकः पञ्चविंशकः

इन्द्रियाणां शतं यद्विमुनयःप्रतिजानते । सत्यप्राणास्तु शीर्षण्यास्तमश्चैवाघ्रमस्तथा

इन्द्रियाणि तदा देवा मनोस्तस्यान्तरे स्मृताः ॥ ४० ॥

तेषां च प्रभुर्देवानां शिविरिन्द्रः प्रतापवान् । सप्तर्षयोऽन्तरे चैव तान्निबोधतसत्तमाः

काव्यो हर्षस्तथा चैवकाश्यपःपृथुरेव च । आत्रेयश्चाग्निरित्येवज्योतिर्धामाचभार्गवः

पौलहो वनपीठश्च गोत्रवाशिष्ठ एव च । चैत्रस्तथाऽपि पौलस्त्यऋषयस्तामसेऽन्तरे

जनुघण्डस्तथा शान्तिर्नरः ख्यातिर्भयस्तथा । प्रियभृत्यो ह्यवक्षिश्चपृष्ठलोढोदृढोधतः

ऋतश्च ऋतवन्धश्च तामसस्य मनोः सुताः ॥ ४४ ॥

पञ्चमे त्वथपर्याये मनोश्चारिष्णवेऽन्तरे । गणास्तु सुसमाख्याता देवतानांनिबोधत

अमृतात्माभूतरजोविकुण्ठाः ससुमेधसः । चरिष्णोस्तु शुभाःपुत्रावसिष्ठस्यप्रजापतेः

चतुर्दश च चत्वारो गणास्तेषां तु भास्वराः ॥ ४६ ॥

स्वप्नविप्रोऽग्निभासश्च प्रत्येतिष्ठामृतस्तथा ।

सुमतिर्वाविरावश्च वाचिनोदः स्ववास्तथा ॥ ४७ ॥

प्रविराशी च वादश्च प्राशश्चेति चतुर्दश । अमृताभाःस्मृताह्येतेदेवाश्चारिष्णवेऽन्तरे

मतिश्च सुमतिश्चैव ऋतसत्यौ तथैव च । आवृतिर्विवृतिश्चैव मदो विनय एव च

जेता जिष्णुः सहश्चैव द्युतिमाञ्श्रवसस्तथा । इत्येतानीह नामानिआभूतरजसांविदुः

वृषभेत्ता जयो भीमः शुचिर्दान्तो यशोदमः । नाथोविद्वानजेयश्चकृशोगौरोध्रुवस्तथा

कीर्तितास्तु विकुण्ठा वै सुमेधांस्तु निबोधत ॥ ५० ॥

मेधा मेधातिथिश्चैव सत्यमेधा तथैव च । पृश्निमेधाल्पमेधाश्च भूयोमेधादयः प्रभुः

दीप्तिमेधा यशोमेधास्स्थिरमेधास्तथैव च । सर्वमेधाश्वमेधाश्चप्रतिमेधाश्च यः स्मृतः
मेधावान्मेधहर्ता च कीर्तितास्तु सुमेधसः ॥ ५३ ॥
विभुरिन्द्रस्तदा तेषामासीद्विक्रान्तपौरुषः । पौलस्त्योवेदबाहुश्चयजुर्नामाचकाश्यपः
हिरण्यरोमाङ्गिरसौ वेदश्रीश्चैव भार्गवः । ऊर्ध्वबाहुश्च वाशिष्ठः पर्जन्यःपौलहस्तथा
सत्यनेत्रस्तथाऽऽत्रेया ऋषयो रैवतान्तरे ॥ ५५ ॥
महापुराणसंभाव्यः प्रत्यङ्गपरहा शुचिः । बलवन्धुरनिरामित्रः केतुभृङ्गो दृढव्रतः ॥
चरिष्णवस्य पुत्रास्ते पञ्चमं चैतदन्तरम् ॥ ५६ ॥
स्वारोचिषोत्तमश्चैव तामसो रैवतस्तथा । प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवस्तथा
षष्ठे खल्वथपर्यायेदेवा ये चाक्षुषेऽन्तरे । आद्याःप्रसूताभाव्याश्चपृथुकाश्चदिवौकसः
महानुभावा लेखाश्च पञ्च देवगणाः स्मृताः ॥ ५८ ॥
दिवौकसः सर्ग एष प्रोच्यते मातृनामभिः । अत्रे पुत्रस्य नप्तार आरण्यस्य प्रजापतेः
गणश्च तेषां देवानामेकैको ह्यष्टकः स्मृतः ॥ ५९ ॥
अन्तरीक्षो वसुहयो ह्यतिथिश्चप्रियव्रतः । श्रोतामन्ता सुमन्ताचआद्याह्येतेप्रकीर्तिताः
श्येनभद्रस्तथा पश्यः पथ्यनेत्रो महायशाः । सुमनाश्च सुवेताश्च रैवतः सुप्रचेतसः
द्युतिश्चैव महासत्त्वः प्रसूत्याः परिकीर्तिताः ॥ ६१ ॥
विजयः सुजयश्चैव मनोद्यानौ तथैव च । सुमतिः सुपरिश्चैव विज्ञातोऽर्थपतिश्चयः
भाव्या ह्येते स्मृता देवाः पृथुकांस्तु निबोधत ॥ ६२ ॥
अजिष्टः शाक्यनो देवोवानपृष्ठस्तथैव च । शांकरःसत्यधृष्णुश्चविष्णुश्चविजयस्तथा
अजितश्च महाभागः पृथुकास्ते दिवौकसः ॥ ६३ ॥
लेखांस्तथा प्रवक्ष्यामिब्रुवतो मे निबोधत । मनोजवः प्रघासस्तुप्रचेतास्तुमहायशाः
वातो ध्रुवक्षितिश्चैव अद्भुतश्चैववीर्यवान् । अवनोबृहस्पतिश्चैवलेखाःसंपरिकीर्तिताः
मनोजवो महावीर्यस्तेषामिन्द्रस्तदाऽभवत् । उन्नतो भार्गवश्चैवहविष्मानङ्गिरःसुतः
सुधामाकाश्यपश्चैववशिष्ठोविरजस्तथा । अतिमानश्चपौलस्त्यःसहिष्णुःपौलहस्तथा
मधुरात्रेय इत्येते सप्त वै चाक्षुषेऽन्तरे ॥ ६७ ॥

ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कृतिः । अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव
अभिमन्युश्च दशमो नाड्वलेया मनोः सुताः । चक्षुषस्य सुता ह्येते षष्ठं चैवतदन्तरम्
वैवस्वतेन संख्यातस्तस्य सर्गो महात्मनः ।
विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च कथितं यै मया द्विजाः !॥ ७० ॥

ऋषय ऊचुः

चाक्षुषस्य तु दायादः संभूतःकश्यपान्वये । तस्यान्ववायेयेऽप्यन्येतन्नोब्रूहियथातथम्

सूत उवाच

चाक्षुषस्य निसर्गं तु समासाच्छ्रोतुमर्हथ । तस्यान्ववाये संभूतः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्
प्रजानां पतयश्चान्ये दक्षः प्राचेतसस्तथा । उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः ॥
दक्षकस्य तु पुत्रोऽस्यराजाह्यासीत्प्रजापतेः । स्वायंभुवेन मनुनादत्तोऽत्रेःकारणंप्रति
मन्वन्तरमथाऽऽसाद्य भविष्यं चाक्षुषस्य ह । षष्ठंतदनुवक्ष्यामिउपोद्घातेनवैद्विजाः
उत्तानपादाच्चतुरा सूनृता चित्तभाविनी । धर्मस्य कन्या धर्मज्ञा सूनृता नाम विश्रुता
उत्पन्ना चाधिधर्मेण ध्रुवस्य जननी शुभा ।
धर्मस्य पत्न्यां लक्ष्यां (लक्ष्म्यां) वै उत्पन्ना सा शुचिस्मिता ॥ ७७ ॥
ध्रुवं च कीर्तिमन्तं च अयस्मन्तंवसुंतथा । उत्तानपादोऽजनयत्कन्येद्वे च शुचिस्मिते
मनस्विनीं स्वरां चैव तयोः पुत्राः प्रकीर्तिताः ॥ ७८ ॥
ध्रुवो वर्षसहस्राणि दश दिव्यानि वीर्यवान् । तपस्तेपे निराहारः प्रार्थयन्विपुलंयशः
त्रेतायुगे तु प्रथमे पौत्रःस्वायंभुवस्य सः । आत्मानंधारयन्योगात्प्रार्थयन्सुमहद्यशः
तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतोज्योतिषांस्थानमुत्तमम् । आभूतसंप्लवं ह्यमस्तोदयविवर्जितम्
तस्यातिमात्रामृद्धिंचमहिमानंनिरीक्ष्य ह । दैत्यासुराणामाचार्यःश्लोकमप्युशनाजगौ
अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहोद्भुतम् । स्थिताः सप्तर्षयः कृत्वायदेनमुपरिध्रुवम्
ध्रुवे दिवं समासक्तमीश्वरः स दिवस्पतिः ॥ ८३ ॥
ध्रुवात्पुष्टिं च भव्यं च भूमिः सा सुषुवे नृपौ ।
स्वां छायामाह वै पुष्टिर्भव नारी तु तां विभुः ॥ ८४ ॥

सत्याभिव्याहृतेतस्यसद्यः स्त्रीसाऽभवत्तदा । दिव्यसंहननाच्छायादिव्याभरणभूषिता
छायायां पुष्टिराधत्त पञ्च पुत्रानकल्मषान् । प्राचीनगर्भं वृषकं वृकं च वृकलंधृतिम्
पत्नी प्राचीनगर्भस्य सुवर्चा सुषुवे नृपम् । नाम्नोदारधियं पुत्रमिन्द्रो यः पूर्वजन्मनि
संवत्सरसहस्रान्ते सकृदाहारमाहरत् । एवं मन्वन्तरं युक्तमिन्द्रत्वं प्राप्तवान्विभुः ॥
उदारधेः सुतं भद्राऽजनयत्सा दिवंजयम् । रिपुं रिपुंजयं जज्ञे वराङ्गी सा दिवंजयात्
रिपोराधत्त वृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् । तस्य पुत्रो मनुर्विद्वान्ब्रह्मक्षत्रप्रवर्तकः ॥
व्यजीजनत्पुष्करिण्यांवारुण्यांचाक्षुषं मनुम् । प्रजापतेरात्मजायामरण्यस्यमहात्मनः
चाक्षुषं नाम विख्यातं मनुं धर्मार्थकोविदम् । मनोरजायन्तदश नड्वलायांशुभाःसुताः
कन्यायां वै महाभाग ! वैराजस्य प्रजापतेः ॥ ६२ ॥

ऊरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कविः । अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव
अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायां मनोः सुताः ॥ ६३ ॥

ऊरोरजनयत्पुत्रान्षडाग्नेयी महाप्रभान् । अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं शिवम्
अङ्गात्सुनीथाऽपत्यं वै वेनमेकं व्यजायत । अपचारेण वेनस्य प्रकोपः सुमहानभूत्
प्रजार्थमृषयस्तस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् । वेनस्य पाणौ मथिते संबभूव महान्नृपः ॥
वैन्यो नाम महीपालो यः पृथुः परिकीर्तितः ॥ ६६ ॥

स धन्वी कवची जातस्तेजसा प्रज्वलन्निव । पृथुर्वैन्यः सर्वलोकान्ररक्ष क्षत्रपूर्वजः ॥
राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिपः । तस्य स्तवार्थमुत्पन्नौनिपुणौसूतमागधौ
तेनेयं गौर्महाराज्ञा दुग्धा सस्यानि धीमता । प्रजानांवृत्तिकामानांदेवैर्ऋषिगणैःसह
पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैरप्सरोगणैः । सर्वैः पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा ॥
तेषु तेषु तु पात्रेषु दुह्यमाना वसुंधरा । प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन लोकांस्त्वधारयत्

ऋषय ऊचुः

विस्तरेण पृथोर्जन्म कीर्तयस्व महामते । यथा महात्मना दुग्धा पूर्वं तेन वसुंधरा ॥
यथा देवैश्च नागैश्च यथा ब्रह्मर्षिभिः सह । यथा यक्षैः सगन्धर्वैरप्सरोभिर्यथापुरा
यथा यथा च तैर्दुग्धा विधिना येन येन च ॥ १०३ ॥

तेषां पात्रविशेषांश्च दोग्धारं क्षीरमेव च । तथा वत्सविशेषांश्चतन्नःप्रब्रूहि पृच्छताम्
यस्मिंश्च कारणे पाणिर्वैनस्य मथितः पुरा । क्रुद्धैर्महर्षिभिः पूर्वं तत्सर्वं कथयस्वनः

सूत उवाच

वर्णयिष्यामि वोविप्राःपृथोर्वैन्यस्यसंभवम् । एकाग्राःप्रयताश्चैवशुश्रूषध्वंद्विजोत्तमाः
नाशुचेर्नापि पापाय नाशिष्यायाहिताय च । वर्णयेयमिमं पुण्यं नाव्रतायकथंचन॥
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यंपुण्यं वेदैश्चसंमितम् । रहस्यमृषिभिःप्रोक्तंश्रृणुयाद्योऽनसूयकः

यश्चेमं श्रावयेन्मर्त्यः पृथोर्वैन्यस्य संभवम् ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत्कृताकृतम् ॥
गोप्ता धर्मस्य राजाऽसौ बभूवात्रिसमः प्रभुः ॥ १०६ ॥

अत्रिवंशसमुत्पन्नो ह्यङ्गो नाम प्रजापतिः । यस्यपुत्रोऽभवद्वेनोनात्यर्थंधार्मिकस्तथा
जातो मृत्युसुतायांवैसुनीथायांप्रजापतिः । स मातामहदोषेणवेनःकालात्मजात्मजः
स धर्मं पृष्ठतः कृत्वा कामाल्लोभे व्यवर्तत । स्थापनंस्थापयामासधर्मापेतंसपार्थिवः

वेदशास्त्राण्यतिक्रम्य ह्यधर्मे निरतोऽभवत् ।
निःस्वाध्यायवषट्काराः प्रजास्तस्मिन्प्रशासति ॥
आसन्न च पपुः सोमं हुतं यज्ञेषु देवताः ॥ ११३ ॥

न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः आसीत्प्रतिज्ञा क्रूरेयंविनाशे प्रत्युपस्थिते
अहमिज्यश्चपूज्यश्च सर्वयज्ञे द्विजातिभिः । मयियज्ञोविधातव्योमयिहोतव्यमित्यपि
तमतिक्रान्तमर्यादमाददानमसांप्रतम् । ऊचुर्महर्षयः सर्वे मरीचिप्रमुखास्तथा ॥
वयं दीक्षां प्रवक्ष्यामःसंवत्सरशतान्बहून् । माऽधर्मं वेन कार्षीस्त्वंनैषधर्मः सनातनः

निधने च प्रसूतोऽसि प्रजापतिरसंशयः ॥ ११७ ॥

पालयिष्ये प्रजाश्चेति त्वया पूर्वं प्रतिश्रुतम् । तांस्तथावादिनःसर्वान्ब्रह्मर्षीनब्रवीत्तदा
स प्रहस्य तु दुर्बुद्धिरिदं वचनकोविदः । स्रष्टा धर्मस्य कश्चान्यः श्रोतव्यंकस्यवैमया
वीर्यश्रुततपःसत्यैर्मया वा कः समो भुवि । महात्मानमनूनं मां यूयं जानीततत्त्वतः
प्रभवः सर्वलोकानां धर्माणां च विशेषतः । इच्छन्दहेयं पृथिवीं प्लावयेयं जलेन वा

सृजेयं वा ग्रसेयं वा नात्र कार्या विचारणा ॥ १२१ ॥
यदा न शक्यते स्तम्भान्मानाच्च भृशमोहितः । अनुनेतुं नृपो वेनस्ततः क्रुद्धा महर्षयः
निगृह्य तं महाबाहुं विस्फुरन्तं यथाऽनलम् । ततोऽस्य वामहस्तं ते ममन्थुर्भृशकोपिताः
तस्मात्प्रमथ्यमानाद्वै जज्ञे पूर्वमभिश्रुतः । ह्रस्वोऽतिमात्रं पुरुषः कृष्णश्चापि तथा द्विजाः
स भीतः प्राञ्जलिश्चैव स्थितवान्व्याकुलेन्द्रियः । तमार्तं विह्वलं दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रुवन्किल
निषादवंशकर्ताऽसौ बभूवानन्तविक्रमः । धीवरानसृजत्सोऽपि वेनकल्मषसंभवान्
ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तुम्बुरास्तुवराः खसाः । अधर्मरुचयश्चापि संभूता वेनकल्मषात्
पुनर्महर्षयस्तस्य पाणिं वेनस्य दक्षिणम् । अरणीमिव संरम्भान्ममन्थुर्जातमन्यवः ॥
पृथुस्तस्मात्समुत्पन्नः करास्फालनतेजसः । पृथोः करतलाद्वाऽपि यस्माज्जातः पृथुस्ततः
दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिवोज्ज्वलन् ॥ १२६ ॥
आद्यमाजगवं नाम धनुर्गृह्य महारवम् । शरांश्च बिभ्रद्रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम् ॥
तस्मिञ्जातेऽथ भूतानि संप्रहृष्टानि सर्वशः । समुत्पन्ने महाराज्ञि वेनश्च त्रिदिवं गतः
समुत्पन्नेन राजर्षिः ससत्पुत्रेण धीमता । त्रातः स पुरुषव्याघ्रः पुन्नाम्नो नरकात्तदा
तं नद्यश्च समुद्राश्च रत्नान्यादाय सर्वशः । अभिषेकाय तोयं च सर्वे एवोपतस्थिरे ॥
पितामहश्च भगवानङ्गिरोभिः सहामरैः । स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि च सर्वशः
समागम्य तदा वैन्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम् । महता राजराज्येन महाराजं महाद्युतिम्
सोऽभिषिक्तो महाराजो देवैरङ्गिरसः सुतैः । आदिराजो महाराजः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्
पित्राऽपरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः । ततो राजेति नामास्य अनुरागादजायत
आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः । पर्वताश्च विशीर्यन्ते ध्वजभङ्गश्च नाभवत्
अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नानि चिन्तया । सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु
एतस्मिन्नेव काले च यज्ञे पैतामहे शुभे । सूतः सुत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः
तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः ॥ १४० ॥
सामगेषु तु गायत्सु स्रुग्भाण्डे वैश्वदेवके । सामगाने समुत्पन्नस्तस्मान्मागध उच्यते
ऐन्द्रेण हविषा चापि हविः पृक्तं बृहस्पतेः । जुहावेन्द्राय देवेन ततः सूतो व्यजायत

प्रमादस्तत्र संजज्ञे प्रायश्चित्तं च कर्मसु। शिष्यहव्येन यत्पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः॥
अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृतम्॥ १४३॥
यच्च क्षत्रात्समभवद्ब्राह्मण्यां हीनयोनितः। सूतः पूर्वेणसाधर्म्यात्तुल्यधर्मःप्रकीर्तितः
मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षत्रोपजीवनम्। रथनागाश्वचरितंजघन्यं च चिकित्सतम्
पृथोस्तवार्थं तौ तत्र समाहूतौ सुरर्षिभिः। तावूचुर्मुनयः सर्वे स्तूयतामेष पार्थिवः॥
कर्मैतदनुरूपं वां पात्रं स्तोत्रस्य चाप्ययम्॥ १४६॥
तावूचतुस्तदा सर्वांस्तानृषीन्सूतमागधौ। आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावःस्वकर्मभिः
न चास्य कर्म वै विद्मो न तथा लक्षणं यशः।
स्तोत्रं येनास्य कुर्यावो राज्ञस्तेजस्विनो द्विजाः॥ १४८॥
ऋषिभिस्तौनियुक्तौतुभविष्यैःस्तूयतामिति।दानधर्मरतोनित्यंसत्यवाक्संजितेन्द्रियः
ज्ञानशीलो वदान्यस्तु संग्रामेष्वपराजितः॥ १४६॥
यानि कर्माणि कृतवान्पृथुश्चापि महावलः। तानि शीलेन वद्धानिस्तुवद्भिःसूतमागधैः
ततस्स्तवान्ते सुप्रीतः पृथुः प्रादात्प्रजेश्वरः। अनूपदेशं सूताय मगधान्मागधाय च॥
तदा वै पृथिवीपालाःस्तूयन्ते सूतमागधैः। आशीर्वादैःप्रवोध्यन्तेसूतमागधवन्दिभिः
तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजा ऊचुर्महर्षयः। एष वो वृत्तिदो वैन्यो भवत्विति नराधिपः
ततो वैन्यं महाभागं प्रजाः समभिदुद्रुवुः। त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेतिमहर्षेर्वचनात्तदा
सोऽभिद्रुतः प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया॥ १५४॥
धनुर्गृहीत्वा वाणांश्च वसुधामार्दयद्वली। अस्यार्दनभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही
तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत। सा लोकान्ब्रह्मलोकादीन्गत्वा वैन्यभयात्तदा
ददर्श चाग्रतो वैन्यं कार्मुकोद्यतधारिणम्॥ १५६॥
ज्वलद्भिर्विशिखैर्वाणैर्दीप्ततेजसमच्युतम्। महायोगं महात्मानं दुर्धर्षममरैरपि॥ १५७
अलभन्ती तदा त्राणं वैन्यंमेवान्वपद्यत। कृताञ्जलिपुटा देवी पूज्या लोकैस्त्रिभिःसदा
उवाच वैन्यं नाधर्मं स्त्रीवधे परिपश्यसि। कथं धारयिता चासिप्रजाराजन्मयाविना
मयि लोकाः स्थिता राजन्मयेदंधार्यतेजगत्। मद्वते च विनश्येयुःप्रजाःपार्थिवसत्तम

न मामर्हसि वै हन्तुं श्रेयश्चेत्त्वं चिकीर्षसि । प्रजानां पृथिवीपाल शृणु चेदं वचोमम
उपायतः समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः ।
हत्वाऽपि मां न शक्तस्त्वं प्रजानां पालने नृप !॥ १६२ ॥
अन्नभूता भविष्यामिजहि कोपं महाद्युते । अवध्याश्चस्त्रियः:प्राहुस्तिर्यग्योनिशतेष्वपि
मत्वैवं पृथिवीपाल ! धर्मं न त्यक्तुमर्हसि ॥ १६३ ॥
एवं बहुविधं वाक्यंश्रुत्वा राजामहामनाः । क्रोधं निगृह्यधर्मात्मावसुधामिदमब्रवीत्
एकस्यार्थाय यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा ।
एकं प्राणं बहून्वाऽपि कामं तस्यास्ति पातकम् ॥ १६५ ॥
यस्मिंस्तु निहते भद्रे लभन्तेबहवःसुखम् । तस्मिन्हते शुभे नास्तिपातकंचोपपातकम्
सोऽहं प्रजानिमित्तंत्वांवधिष्यामिवसुंधरे । यदि मे वचनं नाद्यकरिष्यसिजगद्धितम्
त्वां निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम् ।
आत्मानं प्रथयित्वेह धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥ १६८ ॥
सा त्वं वचनमासाद्य मम धर्मभृतां वरे । संजीवयप्रजा नित्यं शक्ताःह्यसि न संशयः
दुहितृत्वं च मे गच्छएवमेतं महद्धरम् । नियच्छे त्वां तु धर्मार्थं प्रयुक्तं घोरदर्शने ॥
प्रत्युवाच ततो वैन्यमेवमुक्ता सती मही । एवमेतदहं राजन्विधास्यामि न संशयः ॥
वत्सं तु मम तं यच्छ क्षरेयं येन वत्सला । समां च कुरु सर्वत्र मां त्वं धर्मभृतांवर
यथा विष्यन्दमानं च क्षीरं सर्वत्र भावयेत् ॥ १७२ ॥
तत उत्सारयामासशिलाजालानिसर्वशः । धनुष्कोट्याततोवैन्यस्तेनशैलाविवर्धिताः
मन्वन्तरेष्वतीतेषु विषमाऽऽसीद्वसुंधरा । स्वभावेनाभवंस्तस्याःसमानिविषमाणिच
न हि पूर्वविसर्गे वै विषमेपृथिवीतले । प्रविभागःपुराणां वा ग्रामाणांवाऽपिविद्यते
न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथः । चाक्षुषस्यान्तरेपूर्वमेतदासीत्पुराकिल
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्सर्वस्यैतस्य संभवः ॥ १७६ ॥
समत्वं यत्रयत्राऽऽसीद्भूयस्तस्मिंस्तदेव हि । तत्रतत्रप्रजास्ता वै निवसन्तिस्मसर्वदा
आहारफलमूलं तु प्रजानामभवत्किल । कृच्छ्रेणैव तदा तासामित्येवमनुशुश्रुम ॥

वैन्यात्प्रभृति लोकेऽस्मिन्सर्वस्यैतस्य संभवः ॥ १७८ ॥

कृच्छ्रेण महतासोऽपिप्रनष्टास्वोषधीषु वै। स कल्पयित्वावत्सं तु चाक्षुषंमनुमीश्वरः

पृथुर्दुदोह सस्यानि स्वतले पृथिवीं ततः ॥ १७६ ॥

सस्यानितेनदुग्धानिवैन्येन तु वसुंधरा। मनुं च चाक्षुषं कृत्वावत्संपात्रेचभूमये

तेनान्नेन तदा ता वै वर्तयन्ते प्रजाः सदा ॥ १८० ॥

ऋषिभिःस्तूयतेवाऽपिपुनर्दुग्धावसुंधरा। वत्सःसोमस्त्वभूत्तेषांदोग्धाचापिबृहस्पतिः

पात्रमासीत्तु च्छन्दांसि गायत्र्यादीनि सर्वशः।

क्षीरमासीत्तदा तेषां तपो ब्रह्म च शाश्वतम् ॥ १८२ ॥

पुनः स्तुत्वा देवगणैः पुरंदरपुरोगमैः। सौवर्णं पात्रमादाय अमृतं दुदुहे तदा॥

तेनैव वर्तयन्ते च देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ १८३ ॥

नागैश्च स्तूयतेदुग्धा विषं क्षीरंतदा मही। तेषां च वासुकिर्दोग्धाकाद्रवेयामहौजसः

नागानां वै द्विजश्रेष्ठः सर्पाणां चैव सर्वशः। तेनैववर्तयन्त्युग्रामहाकायामहोल्वणाः

तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तु तदाश्रयाः ॥ १८५ ॥

आमपात्रे पुनर्दुग्धा त्वन्तर्धानमियं मही। वत्सं वैश्रवणं कृत्वा यक्षैः पुण्यजनैस्तथा

दोग्धा च जतुनाभस्तुपितामणिवरस्य सः। यक्षात्मजोमहातेजावशी स सुमहाबलः

तेन ते वर्तयन्तीति परमर्षिरुवाच ह ॥ १८७ ॥

राक्षसैश्च पिशाचैश्च पुनर्दुग्धा वसुंधरा। ब्रह्मोपेतस्तु दोग्धा वै तेषामासीत्कुबेरकः

रक्षः सुमाली बलवान्क्षीरं रुधिरमेव च। कपालपात्रे निर्दुग्धा अन्तर्धानं चराक्षसैः

तेन क्षीरेण रक्षांसि वर्तयन्तीह सर्वशः ॥ १८६ ॥

राजतं पात्रमादायपितृभिःस्तूयतेमही। स्वधामृतं च पितृणामासीद्दोग्धाऽर्यमातथा

यमो वत्सोऽभवत्तेषां मासो (सं) तृप्तिस्तु सर्वदा ॥ १६० ॥

पद्मपात्रे पुनर्दुग्धा गन्धर्वैरप्सरोगणैः। वत्सं चित्ररथं कृत्वा शुचीन्गान्धांस्तथैव च

तेषां विश्वावसुस्त्वासीद्दोग्धा पुत्रो मुनेः शुचिः।

गन्धर्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसंनिभः ॥ १६२ ॥

शैलैश्च स्तूयते दुग्धा पुनर्देवी वसुंधरा । तत्रौषधीर्मूर्तिमती रत्नानि विविधानि च
वत्सस्तु हिमवांस्तेषांमेरुर्दोग्धामहागिरिः । पात्रं तु शैलमेवाऽऽसीत्तेनशैलःप्रतिष्ठितः
स्तूयते वृक्षवीरुद्भिः पुनर्दुग्धा वसुंधरा । पलाशपात्रमादाय दुग्धं छिन्नप्ररोहणम् ॥

कामधुक्पुष्पितः शैलः पक्षो वत्सो यशस्विनी ।
सर्वकामदुधा दोग्ध्री पृथिवी भूतभाविनी ॥ १९६ ॥

सैषाधात्रीविधात्री च धारणीचवसुंधरा । दुग्धाहितार्थंलोकानांपृथुनाइतिनःश्रुतम्

चराचरस्य लोकस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥ १९७ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे पृथिवीदोहनं नाम
द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

पृथोर्यशोवर्णनम्

सूत उवाच

आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता । वसु धारयते यस्माद्वसुधा तेन चोच्यते
मधुकैटभयोः पूर्वं मेदसा संपरिप्लुता । ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञः पृथोर्वैन्यस्य धीमतः
इयं चाऽऽसीत्समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता । दुहितृत्वमनुप्राप्ता पृथिवीत्युच्यतेततः
प्रथिता प्रविभक्ता च शोभिता च वसुंधरा । सस्याकरवती राज्ञा पत्तनाकरमलिनी

चातुर्वर्ण्यसमाकीर्णा रक्षिता तेन धीमता ॥ ४ ॥

एवंप्रभावोराजाऽऽसीद्वैन्यः स नृपसत्तमः । नमस्यश्चैव पूज्यश्चभूतग्रामेणसर्वशः ॥
ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः । पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः ॥६॥
पार्थिवैश्च महाभागैः प्रार्थयद्भिर्महद्यशः । आदिराजा नमस्कार्यः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्
योधैरपि च सङ्ग्रामे प्रार्थयानैर्जयं युधि । आदिकर्ता नराणां वै नमस्यः पृथुरेव हि

यो हि योद्धा रणं याति कीर्तयित्वा पृथुं नृपम् ।
स घोररूपे सङ्ग्रामे क्षेमी तरति कीर्तिमान् ॥ ६ ॥
वैश्यैरपि च राजर्षिर्वैश्यवृत्तिसमास्थितैः । पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायशाः
एते वत्सविशेषाश्चदोग्धारःक्षीरमेव च । पात्राणि च मयोक्तानिसर्वाण्येवयथाक्रमम्
ब्रह्मणा प्रथमं दुग्धा पुरा पृथ्वी महात्मना । वायुं कृत्वा तदावत्संबीजानिवसुधातले
ततः स्वायंभुवे पूर्वं तदामन्वन्तरे पुनः । वत्सं स्वायंभुवंकृत्वादुग्धाऽऽग्नीध्रेणवैमही
मनौ स्वारोचिषे दुग्धा मही चैत्रेण धीमता ।
मनुं स्वारोचिषं कृत्वा वत्सं सस्यानि वै पुरा ॥ १४ ॥
उत्तमेऽनुत्तमेनापि दुग्धा देवभुजेन तु । मनुं कृत्वोत्तमं वत्सं सर्वसस्यानि धीमता
पुनश्च पञ्चमे पृथ्वी तामसस्यान्तरे मनोः । दुग्धेयं तामसंवत्सं कृत्वा तु बलबन्धुना
चारिष्णवस्य देवस्यसंप्राप्ते चान्तरे मनोः । दुग्धा मही पुराणेन वत्संचारिष्णवंप्रति
चाक्षुषेऽपि च संप्राप्ते तदा मन्वन्तरे पुनः । दुग्धामहीपुराणेनवत्संकृत्वा तु चाक्षुषम्
चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वते पुनः । वैन्येनेयं मही दुग्धा यथा ते कीर्तितंमया
एतैर्दुग्धा पुरा पृथ्वी व्यतीतेष्वन्तरेषु वै । देवादिभिर्मनुष्यैश्च तथा भूतादिभिश्च या
एवं सर्वेषु विज्ञेया ह्यतीतानागतेष्विह । देवा मन्वन्तरेष्वस्य पृथोस्तु शृणुत प्रजाः
पृथोस्तु पुत्रौ विक्रान्तौ जज्ञातेऽन्तर्धिपालनौ ।
शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद् व्यजायत ॥ २२ ॥
हविर्धानात्षडाग्नेयी धिषणाऽजनयत्सुतान् । प्राचीनबर्हिषं शुक्रंगयंकृष्णंव्रजाजिनौ
प्राचीनबर्हिर्भगवान्महानासीत्प्रजापतिः । बलश्रुततपोवीर्यैः पृथिव्यामेकराडसौ ॥
प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य तस्मात्प्राचीनबर्ह्यसौ ॥ २४ ॥
समुद्रतनयायां तु कृतदारः स वै प्रभुः । महतस्तमसः पारे सवर्णायां प्रजापतिः ॥
सवर्णाऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ॥ २५ ॥
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः । अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ॥
दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥ २६ ॥

तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतःसु महीरुहाः । अरक्ष्यमाणाः खं वव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः
प्रत्याहृते तदा तस्मिंश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । नाशकन्मारुतो वातुं वृतं खमभवद्द्रुमैः
दशवर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः ॥ २८ ॥
तदुपश्रुत्य तपसा सर्वे युक्ताः प्रचेतसः । मुखेभ्यो वायुमग्निं च ससृजुर्जातमन्यवः ॥
उन्मूलानथ तान्वृक्षान्कृत्वा वायुरशोषयत् । तानग्निरदहद्घोर एवमासीद्द्रुमक्षयः ॥
द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा किंचिच्छेषेषु शाखिषु ।
उपगम्याब्रवीदेतान्राजा सोमः प्रचेतसः ॥ ३१ ॥
दृष्ट्वा प्रयोजनं सर्वं लोकसंतानकारणात् । कोपं त्यजत राजानः सर्वं प्राचीनबर्हिषः
वृक्षाःक्षित्यांजनिष्यन्तिशाम्येतामग्निमारुतौ । रत्नभूत्वा तुकन्येयंवृक्षाणांवरवर्णिनी
भविष्यं जानताह्येषा मयागोभिर्विवर्धिता । मारिषा नामनाम्नैषावृक्षैरेव विनिर्मिता
भार्या भवतु वो ह्येषा सोमगर्भविवर्धिता ॥ ३४ ॥
युष्माकं तेजसोऽर्धेन ममचार्धेन तेजसः । अस्यामुत्पत्स्यतेविद्वान्दक्षोनामप्रजापतिः
स इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन वै । अग्निनाऽग्निसमो भूयःप्रजाःसंवर्धयिष्यसि
ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः । संहृत्यकोपं वृक्षेभ्यः पत्नींधर्मेण मारिषाम्
मारिषायां ततस्ते वै मनसा गर्भमादधुः । दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्योमारिषायांप्रजापतिः
दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन वीर्यवान् ।
असृजन्मनसा चाऽऽदौ प्रजा दक्षो न मैथुनात् ॥ ३६ ॥
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः । विसृज्य मनसा दक्षः पश्चादसृजत स्त्रियः
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ॥
एभ्यो दत्त्वाततोऽन्या वै चतस्रोऽरिष्टनेमिने । द्वे चैवबाहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा
कन्यामेकां कृशाश्वाय तेभ्योऽपत्यं निबोधत ॥ ४२ ॥
अन्तरं चाक्षुषस्यात्र मनोः षष्ठं तु हीयते । मनोर्वैवस्वतस्यापि सप्तमस्य प्रजापतेः
तासु देवा खगा गावोनागादितिजदानवाः । गन्धर्वाप्सरसश्चैवजज्ञिरेऽन्याश्चजातयः
ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्प्रजामैथुनसंभवाः । संकल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषांसृष्टिरुच्यते

ऋषय ऊचुः

देवानां दानवानां च देवर्षीणां च ते शुभः । संभवः कथितः पूर्वंदक्षस्य च महात्मनः
प्राणात्प्रजापतेर्जन्म दक्षस्य कथितं त्वया । कथं प्राचेतसत्वं च पुनर्लेभे महातपाः॥
एतं न संशयं सूत व्याख्यातुं त्वमिहार्हसि । स दौहित्रश्चसोमस्य कथंश्वशुरतांगतः

सूत उवाच

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यं भूतेषुसत्तमाः । ऋषयोऽत्र न मुह्यन्तिविद्यावन्तश्चयेनराः
युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो द्विजाः । पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति
ज्यैष्ठ्यं कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्वं नासीद् द्विजोत्तमाः ।।
तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ॥ ५१ ॥
इमां विसृष्टिं यो वेद चाक्षषस्य चराचरम् । प्रजानामायुरुत्तीर्णः स्वर्गलोके महीयते
एष सर्गः समाख्यातश्चाक्षुषस्य समासतः ।
इत्येते षड् विसर्गा हि क्रान्ता मन्वन्तरात्मकाः ॥
स्वायंभुवाद्याः संक्षेपाच्चाक्षुषान्ता यथाक्रमम् ॥ ५३ ॥
एते सर्गा यथाप्रश्नं प्रोक्ता वै द्विजसत्तमाः । वैवस्वतविसर्गेण तेषां ज्ञेयस्तु विस्तरः
अनन्ता नातिरिक्ताश्च सर्वेसर्गा विवस्वतः । आरोग्यायुःप्रमाणेनधर्मतःकामतोऽर्थतः
एतानेव गुणानेति यः पठत्यनसूयकः ॥ ५५ ॥
वैवस्वतस्यवक्ष्यामि सांप्रतस्य महात्मनः । समासाद्व्यासतः सर्गं ब्रुवतोमेनिबोधत

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे पृथुवंशानुकीर्तनं नाम
त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

———

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

वैवस्वतसर्गवर्णनम्

सूत उवाच

सप्तमे त्वथपर्याये मनोर्वैवस्वतस्य ह । मारीचात्कश्यपाद्देवा जज्ञिरे परमर्षयः ॥१॥

आदित्या वसवोरुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणाः ।

भृगवोऽङ्गिरसश्चैव ह्यष्टौ देवगणाः स्मृताः ॥ २ ॥

आदित्या मरुतो रुद्रा विज्ञेयाः कश्यपात्मजाः ।

साध्याश्च वसवो विश्वे धर्मपुत्रास्त्रयो गणाः ॥ ३ ॥

भृगोस्तुभार्गवोदेवोह्यङ्गिरोऽङ्गिरसःसुतः । वैवस्वतेऽन्तरेह्यस्मिन्नित्यंतेछन्दजाःसुराः

एतेऽपि च गमिष्यन्ति महतः कालपर्ययात् ॥ ४ ॥

एष मार्गस्तुमारीचोविज्ञेयःसांप्रतः शुभः । तेजस्वीसांप्रतस्तेषामिन्द्रोनाम्नामहाबलः

अतीतानागता ये च वर्तन्ते ये चसांप्रतम् । सर्वेमन्वन्तरेन्द्रास्तुविज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः

भूतभव्यभवन्नाथाः सहस्राक्षाः पुरंदराः । मघवन्तश्च ते सर्वे शृङ्गिणो वज्रपाणयः

सर्वैः क्रतुशतेनेष्टं पृथक्शतगुणेन तु ॥ ७ ॥

त्रैलोक्ये यानिसत्त्वानिगतिमन्त्यबलानि च । अभिभूयावतिष्ठन्तेधर्माद्यैः कारणैरपि

तेजसा तपसा बुद्ध्या बलश्रुतपराक्रमैः । भूतभव्यभवन्नाथा यथा ते प्रभविष्णवः ॥

एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि ब्रुवतो मे निबोधत ॥ ६ ॥

भूयं भव्यं भविष्यंतत्स्मृतंलोकत्रयंद्विजैः । भूर्लोकोऽयंस्मृतोभूमिरन्तरिक्षंभुवंस्मृतम्

भव्यं स्मृतं दिवं ह्येतत्तेषां वक्ष्यामि साधनम् ॥ १० ॥

ध्यायता पुत्रकामेण ब्रह्मणाऽग्रेविभाषितम् । भूरिति व्याहृतं पूर्वं भूर्लोकोऽयमभूत्तदा

भूसत्तायां स्मृतो धातुस्तथाऽसौ लोकदर्शने । भूत्वाद्दर्शनत्वाच्च भूर्लोकोऽयमभूत्ततः

अतोऽयं प्रथमो लोको भूतत्वाद्भूर्द्विजैः स्मृतः ॥ १२ ॥

भूतेऽस्मिन्भवदित्युक्तं द्वितीयं ब्रह्मणा पुनः। भवत्युत्पद्यमानेनकालशब्दोऽयमुच्यते
भवनात्तु भुवर्लोको निरुक्तज्ञैर्निरुच्यते। अन्तरिक्षं भुवस्तस्माद्द्वितीयो लोक उच्यते
उत्पन्ने तु भुवर्लोकेतृतीयंब्रह्मणा पुनः। भव्येतिव्याहृतंयस्माद्भव्योलोकस्तदाऽभवत्
अनागते भव्य इतिशब्दएषविभाव्यते। तस्माद्भव्यो ह्यसौ लोकोनामतस्तुदिवंस्मृतम्

स्वरित्युक्तं तृतीयोऽन्यो भाव्यो लोकस्तदाऽभवत्।
भाव्य इत्येष धातुर्वै भाव्ये काले विभाव्यते॥ १७॥

भूरितीयं स्मृता भूमिरन्तरिक्षं भुवं स्मृतम्। दिवंस्मृतंतथाभाव्यंत्रैलोक्यस्यैषसंग्रहः
त्रैलोक्ययुक्तैर्व्याहारैस्तिस्रो व्याहृतयोऽभवन्। नाथ इत्येषधातुर्वैधातुज्ञैःपालनेस्मृतः

यस्माद् भूतस्य लोकस्य भव्यस्य भवतस्तदा।
लोकत्रयस्य नाथास्ते तस्मादिन्द्रा द्विजैः स्मृताः॥ २०॥

प्रधानभूता देवेन्द्रा गुणभूतास्तथैव च। मन्वन्तरेषु ये देवा यज्ञभाजो भवन्ति हि।
यक्षगन्धर्वरक्षांसि पिशाचोरगदानवाः। महिमानः स्मृता ह्येते देवेन्द्राणां तु सर्वशः
देवेन्द्रा गुरवो नाथा राजानः पितरो हि ते। रक्षन्तीमाःप्रजाःसर्वाधर्मेणेहसुरोत्तमाः
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं देवेन्द्राणांसमासतः। सप्तर्षीन्संप्रवक्ष्यामिसांप्रतं ये दिविस्थिताः
गाधिजःकौशिकोधीमान्विश्वामित्रोमहातपाः। भार्गवोजमदग्निश्चऊरुपुत्रःप्रतापवान्
बृहस्पतिसुतश्चापिभारद्वाजोमहातपाः। औतथ्यो गौतमोविद्वाञ्शरद्वान्नामधार्मिकः
स्वायंभुवोऽत्रिर्भगवान्ब्रह्मकोशस्तु पञ्चमः। षष्ठो वशिष्ठपुत्रस्तु वसुमां ल्लोकविश्रुतः
वत्सारः काश्यपश्चैव सप्तैते साधुसंमताः। एते सप्तर्षयः सिद्धा वर्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च। नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाम उद्दिष्टएव च
करूषश्च पृषध्रश्च वसुमान्नवमः स्मृतः। मनोर्वैवस्वतस्यैते नव पुत्राः प्रकीर्तिताः॥

कीर्तिता वै मया ह्येते सप्तमं चैतदन्तरम्॥ ३०॥

इत्येषवैमयापादोद्वितीयःकथितो द्विजाः। विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्याचभूयःकिंवर्णयाम्यहम्
इति श्रीमहापुराणेवायुप्रोक्तेउपोद्घातपादे वैवस्वतसर्गवर्णनंनामचतुःषष्टितमोऽध्यायः

———

अथानुषङ्गपादः

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

भृग्वादीनामुत्पत्तिनिरूपणम्

ऋषय ऊचुः

श्रुत्वा पादं द्वितीयं तु क्रान्तं सूतेन धीमता । अतस्तृतीयंपप्रच्छपादं वै शांशपायनः
पादः क्रान्तो द्वितीयोऽयमनुषङ्गेण यस्त्वया । तृतीयंविस्तरात्पादंसोपोद्घातंप्रकीर्त्य
एवमुक्तोऽब्रवीत्सूतः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ २ ॥

सूत उवाच

कीर्तयिष्ये तृतीयं च सोपोद्घातं सविस्तरम् । पादं समुदयाद्विप्रा गदतो मे निबोधत
मनोर्वैवस्वतस्येमं सांप्रतस्यमहात्मनः । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च निसर्गंश्रृणुतद्विजाः
चतुर्युगैकसप्तत्या संख्यातः पूर्वमेव तु । सह देवगणैश्चैव ऋषिभिर्दानवैः सह ॥५॥
पितृगन्धर्वयक्षैश्च रक्षो भूतगणैस्तथा । मानुषैः पशुभिश्चैव पक्षिभिः स्थावरैः सह ॥
मन्वादिकं भविष्यान्तमाख्यानैर्बहुविस्तरम् । वक्ष्ये वैवस्वतं सर्गंनमस्कृत्यविवस्वते
आद्ये मन्वन्तरेऽतीताः सर्गाः प्रावर्तकाश्च ये । स्वायंभुवेऽन्तरेपूर्वंसप्ताऽऽसन्येमहर्षयः
चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वते पुनः ॥ ८ ॥
दक्षस्य च ऋषीणां च भृग्वादीनां महौजसाम् ।
शापान्महेश्वरस्याऽऽसीत्प्रादुर्भावो महात्मनाम् ॥ ६ ॥
भूयः सप्तर्षयस्ते च उत्पन्नाः सप्त मानसाः । पुत्रत्वे कल्पिताश्चैव स्वयमेवस्वयंभुवा
प्रजासंतानकृद्भिस्तैरुत्पद्यद्भिर्महात्मभिः । पुनः प्रवर्तितः सर्गो यथापूर्वं यथाक्रमम् ॥
तेषां प्रसूतिं वक्ष्यामि विशुद्धज्ञानकर्मणाम् । समासव्यासयोगाभ्यां यथावदनुपूर्वशः
येषामन्वयसंभूतैर्लोकोऽयं सचराचरः । पुनः स पूरितः सर्गो ग्रहनक्षत्रमण्डितः ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य मुनीनां संशयोऽभवत् । ततस्तं संशयाविष्टाःसूतंसंशयनिश्चये
सत्कृत्य परिपप्रच्छुर्मुनयः सशितव्रताः ॥ १४ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं सप्तर्षयः पूर्वमुत्पन्नाः सप्त मानसाः । पुत्रत्वे कल्पिताश्चैव तन्नो निगद सत्तम
ततोऽब्रवीन्महातेजाः सूतः पौराणिकः शुभम् ॥ १५ ॥

सूत उवाच

कथं सप्तर्षयः सिद्धा ये वै स्वायंभुवेऽन्तरे । मन्वन्तरं समासाद्य पुनर्वैवस्वतं किल
भवाभिशापात्संविद्धा ह्यप्राप्तास्ते तदा नृपः । उपपन्ना जने लोके सकृदागामिनस्तु ते
ऊचुः सर्वे ततोऽन्योन्यं जनलोके महर्षयः । ऊचुरेव महाभागा वारुणे वितते क्रतौ
सर्वे वयं प्रसूयामश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः । पितामहात्मजाः सर्वे ततः श्रेयोभविष्यति
स्वायंभुवेऽन्तरे शप्ताः सत्यार्थं ते भवेन तु । जज्ञिरे वै पुनस्ते ह जनलोकाद्दिवंगताः
देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं विभ्रतस्तनुम् । ब्रह्मणो जुह्वतः शुक्रमग्नौ पूर्वं प्रजेप्सया ॥
ऋषयो जज्ञिरे पूर्वं द्वितीयमिति नः श्रुतम् ॥ २१ ॥

भृगुरङ्गिरा मरीचिःपुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च अष्टौ ते ब्रह्मणःसुताः
तथाऽस्य वितते यज्ञेदेवाःसर्वेसमागताः । यज्ञाङ्गानि च सर्वाणिवषट्कारश्चमूर्तिमान्
मूर्तिमन्ति च सामानि यजूंषि च सहस्रशः । ऋग्वेदश्चाभवत्तत्र पदक्रमविभूषितः ॥
यजुर्वेदश्च वृत्ताढ्य ओंकारवद्नोज्ज्वलः । स्थितो यज्ञार्थसंपृक्तसूक्तब्राह्मणमन्त्रवान्
सामवेदश्च घृत्ताढ्यः सर्वगेयपुरःसरः । विश्वावस्वादिभिःसार्धंगन्धर्वैःसंभृतोऽभवत्
ब्रह्मवेदस्तथा घोरैः कृत्याविधिभिरन्वितः । प्रत्यङ्गिरसयोगैश्च द्विशरीरशिरोऽभवत्
लक्षणानि स्वरा स्तोभा निरुक्तस्वरभक्तयः । आश्रयस्तु वषट्कारो निग्रहप्रग्रहावपि
दीप्ता दीप्तिरिला देवी दिशः प्रदिशगीश्वराः । देवकन्याश्च पत्न्यश्च तथा मातरएव च
आयुः सर्वत एवैते देवस्य यजतो मुखे । मूर्तिमन्तः स्वरूपाख्या वरुणस्य वपुर्भृतः ॥
स्वयंभुवस्तु ता दृष्ट्वा रेतः समपतद्भुवि । ब्रह्मर्षेर्भावभूतस्य विधानाच्च न संशयः ॥
कृत्वा जुहाव स्रुग्भ्यां च स्रुवेणपरिगृह्य च । आज्यवज्जुह(ह)वांचक्रेमन्त्रवच्चपितामहः

ततः स जनयामास भूतग्रामं प्रजापतिः । तस्यार्वाक्तेजसस्तस्य यज्ञे लोकेषु तैजसम्

तमसा भावव्याप्यत्वं तथा सत्त्वं तथा रजः ॥ ३३ ॥

सगुणात्तेजसो नित्यं आकाशे तमसिस्थितम् । तमसस्तेजसत्वाच्चसर्वभूतानिजज्ञिरे

यदा तस्मिन्नजायन्तकालेपुत्रास्तुकर्मजाः । आज्यस्थाल्यामुपादायस्वशुक्रंहुतवांश्चह

शुक्रे हुतेऽथ तस्मिंस्तु प्रादुर्भूता महर्षयः । ज्वलन्तो वपुषायुक्ताः सप्त वै प्रसवैर्गुणैः

हुते चाग्नौ सकृच्छुक्रे ज्वालाया निःसृतः कविः ।

हिरण्यगर्भस्तं दृष्ट्वा ज्वालां भित्त्वा विनिःसृतम् ॥

भृगुस्त्वमिति होवाच यस्मात्तस्मात्स वै भृगुः ॥ ३७ ॥

महादेवस्तथोद्भूतं दृष्ट्वा ब्रह्माणमब्रवीत् । ममैष पुत्रकामस्य दीक्षितस्य त्वयं प्रभोः

विजज्ञेऽथ भृगुर्देवो मम पुत्रो भवत्वयम् ॥ ३८ ॥

तथेति समनुज्ञातो महादेवः स्वयंभुवा । पुत्रत्वे कल्पयामास महादेवस्तथा भृगुम् ॥

वारुणा भृगवस्तस्मात्तदपत्यं च स प्रभुः ॥ ३९ ॥

द्वितीयं तु ततः शुक्रमङ्गारेष्वपतत्प्रभुः । अङ्गारेष्वङ्गिरोऽङ्गानि संहितानिततोऽङ्गिराः

संभूतिंतस्य तां दृष्ट्वावह्निर्ब्रह्माणमब्रवीत् । रेतोधास्तुभ्यमेवाहंद्वितीयोऽयंममास्त्विति

एवमस्त्विति सोऽप्युक्तो ब्रह्मणा सदसस्पतिः ।

तस्मादङ्गिरसश्चापि आग्नेया इति नः श्रुतम् ॥ ४२ ॥

षट्कृत्वस्तु पुनः शुक्रे ब्रह्मणा लोककारिणा । हुते समभवंस्तत्र षड्ब्रह्माणइतिश्रुतिः

मरीचिःप्रथमस्तत्रमरीचिभ्यःसमुत्थितः । क्रतौ तस्मिन्सुतोजज्ञेयतस्तस्मात्सवैक्रतुः

अहं तृतीय इत्यर्थस्तस्मादत्रिः स कीर्त्यते । केशैश्च निशितैर्भूतःपुलस्त्यस्तेनसस्मृतः

केशैर्लम्बैः समुद्भूतस्तस्मात्तु पुलहः स्मृतः । वसुमध्यात्समुत्पन्नोवसुमान्वसुधाश्रयः

वशिष्ठ इति तत्त्वज्ञैः प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः । इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा मानसाःषण्महर्षयः

लोकस्यसंतानकरास्तैरिमा वर्धिताः प्रजाः । प्रजापतय इत्येवंपठ्यन्ते ब्रह्मणः सुताः

अपरे पितरो नाम एतैरेव महर्षिभिः । उत्पादिता ऋषिगणाः सप्त लोकेषु विश्रुताः

मारीचा भार्गवाश्चैव तथैवाङ्गिरसोऽपरे । पौलस्त्याःपौलहाश्चैववाशिष्ठाश्चैवविश्रुताः

आत्रेयाश्च गणाः प्रोक्ताः पितॄणां लोकविश्रुताः ॥ ५० ॥
एते समासतस्तात पुरैव तु गुणास्त्रयः ।
अमूर्ताश्च प्रकाशाश्च ज्योतिष्मन्तश्च विश्रुताः ॥ ५१ ॥

तेषां राजा यमो देवो यमैर्विहतकल्मषः । अपरे प्रजानां पतयस्ताञ्शृणुध्वमतन्द्रिताः
कर्दमः कश्यपः शेषो विक्रान्तःसुश्रवास्तथा । बहुपुत्रःकुमारश्च विवस्वान्सशुचिश्रवाः
प्रचेतसोऽरिष्टनेमिर्बहुलश्च प्रजापतिः । इत्येवमादयोऽन्तेऽपि बहवश्च प्रजेश्वराः ॥
कुशोच्चया वालखिल्याःसंभूताः परमर्षयः । मनोजवाःसर्वगताःसार्वभौमाश्चतेऽभवन्
जाता भस्मव्यपोहिन्यां ब्रह्मर्षिगणसंमताः । वैखानसा मुनिगणास्तपःश्रुतपरायणाः
श्रोतोभ्यस्तस्य चोत्पन्नावश्विनौरूपसंमितौ । विदुर्जन्माक्षरजो विमला नेत्रसंभवाः
ज्येष्ठा प्रजानां पतयः श्रोतोभ्यस्तस्य जज्ञिरे । ऋषयोरोमकूपेभ्यस्तथास्वेदमलोद्भवाः

दारुणा हि ऋते मासा निर्यासाः पक्षसंधयः ।
वत्सरा ये त्वहोरात्राः पित्रं (त्र्यं) ज्योतिश्च दारुणम् ॥ ५६ ॥

रौद्रं लोहितमित्याहुर्लोहितं कनकं स्मृतम् । तन्मैत्रमिति विज्ञेयं धूमश्चपशवः स्मृताः

येऽर्चिषस्तस्य ते रुद्रास्तथाऽऽदित्याः समुद्भवाः ।
अङ्गारेभ्यः समुत्पन्ना ज्योतिषो दिव्यमानुषाः ॥ ६१ ॥

आदिमानस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मसमुद्भवः । सर्वकामदमित्याहुस्तत्र कन्यामुदाहरन्
ब्रह्मा सुरगुरुस्तत्र त्रिदशैः संप्रसीदति । इमे वै जनयिष्यन्ति प्रजाः सर्वाः प्रजेश्वराः
सर्वे प्रजानां पतयः सर्वेचापितपस्विनः । तत्प्रसादादिमांल्लोकान्धारयेयुरिमाक्रियाः
द्वन्द्वं संवर्धयामास तव तेजो विवर्धनम् । देवेषु वेदविद्वांसः सर्वे राजर्षयस्तथा ॥
वेदमन्त्रपराः सर्वे प्रजापतिगुणोद्भवाः । अनन्तं ब्रह्म सत्यं च तपश्च परमं भुवि ॥
सर्वे हि वयमेते च तथैव प्रसवः प्रभो । ब्रह्म च ब्राह्मणाश्चैव लोकाश्चैव चराचराः ॥
मरीचिमादितःकृत्वा देवाश्च ऋषिभिः सह । अपत्यानीहसंचिन्त्यतेऽपत्यंकामयामहे
तस्मिन्यज्ञे महाभागादेवाश्चऋषिभिः सह । एतद्वंशसमुद्भूताःस्थानकालाभिमानिनः
न च तेनैव रूपेण स्थापयेयुरिमाः प्रजाः । युगादिनिधनाश्चैव स्थापयेयुरिमाः प्रजाः

ततोऽब्रवील्लोकगुरुः परमित्यविचारयन् । एवं देवा विनिश्चित्यमयासृष्टा न संशयः
भवतां वंशसंभूताः पुनरेते महर्षयः ॥ ७१ ॥
तेषां भृगोः कीर्तयिष्ये वंशंपूर्वंमहात्मनः । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च प्रथमस्यप्रजापतेः
भार्ये भृगोरप्रतिमे उत्तमेऽभिजने शुभे । हिरण्यकशिपोः कन्या दिव्यानाम परिश्रुता
पुलोम्नश्चापि पौलोमी दुहिता वरवर्णिनी ॥ ७३ ॥
भृगोस्त्वजनयद्दिव्या काव्यं वेदविदांवरम् । देवासुराणामाचार्यंशुक्रंकविसुतंग्रहम्
स शुक्रश्चोशना ख्यातः स्मृतः काव्योऽपि नामतः ।
पितॄणां मानसी कन्या सोमपानां यशस्विनी ॥
शुक्रस्य भार्या गोनाम विजज्ञे चतुरः सुतान् ॥ ७५ ॥
ब्राह्मेण तेजसा युक्तः स जातो ब्रह्मवित्तमः । तस्यामेव तु चत्वारःपुत्राशुक्रस्यजज्ञिरे
त्वष्टा वरूत्री द्वावेतौ शण्डामर्कौ च तावुभौ ।
ते तदाऽऽदित्यसंकाशा ब्रह्मकल्पाः प्रभावतः ॥ ७७ ॥
रजतः पृथुरश्मिश्च विद्वान्यस्य बृहद्गिराः । वरूत्रिणः सुता ह्येते ब्रह्मिष्ठाःसुरयाजकाः
इज्याधर्मविनाशार्थं मनुमेत्याभ्ययोजयन् । निरस्यमानं वै धर्मं दृष्ट्वेन्द्रो मनुमब्रवीत्
एतैरेव तु कामंत्वांप्रापयिष्यामियाजनम् । श्रुत्वेन्द्रस्यतुतद्वाक्यंतस्माद्देशादपाक्रमात्
तिरोभूतेषुतेष्विन्द्रोधर्मपत्नीं च चेतनाम् । ग्रहेणमोचयित्वा तु ततःसोऽनुससारताम्
ततइन्द्रविनाशाययतमानान्यतींस्तुतान् । तत्राऽऽगतान्पुनर्दृष्ट्वादुष्टानिन्द्रःप्रहन्य(ण्य)तु
सुष्वाप देवदेवस्य वेद्यां वै दक्षिणे ततः ॥ ८२ ॥
तेषां तु भक्ष्यमाणानां तत्रशालावृकैः सह । शीर्षाणिन्यपतंस्तानिखर्जूराण्यभवंस्ततः
एवं वरूत्रिणः पुत्रा इन्द्रेण निहता पुरा । यजन्यां देवयानी च शुक्रस्यदुहिताऽभवत्
त्रिशिराविश्वरूपस्तुत्वष्टुःपुत्रोऽभवन्महान् । यशोधरायामुत्पन्नोवैरोचन्यांमहायशाः
विश्वरूपानुजश्चापि विश्वकर्मा यमः स्मृतः ॥ ८५ ॥
भृगोस्तु भृगवो देवा जज्ञिरे द्वादशाऽऽत्मजाः ।
देव्यां तान्सुषुवे सर्वान्काव्यश्चैवाऽऽत्मजान्प्रभुः ॥ ८६ ॥

भुवनो भावनश्चैव अन्यश्चान्यायतस्तथा। क्रतुःश्रवाश्च मूर्धा च व्यजयोव्यश्रुषश्चयः
प्रसवश्चाप्यजश्चैव द्वादशोऽधिपतिः स्मृतः ॥ ८७ ॥
इत्येते भृगवो देवाः स्मृताद्वादशयाज्ञिकाः। पौलोम्यजनजत्पुत्रंब्रह्मिष्ठंवसिनंविभुम्
व्याधितः सोऽष्टमेमासिगर्भःक्रूरैण कर्मणा। च्यवनाच्च्यवनःसोऽथचेतनस्तुप्रचेतसः
प्राचेतसाच्च्यवनक्रोधाद्ध्वानं पुरुषादजः ॥ ८९ ॥
जनयामास पुत्रौद्वौसुकन्यायां च भार्गवः। आत्मवानंदधीचं च तावुभौसाधुसंमतौ
सारस्वतः सरस्वतत्यांदधीचाच्चोपपद्यते। रुची पत्नी महाभागाआत्मवानस्यनाहुषी
तस्य तूर्वोऋर्षिर्जज्ञेऊरूभित्वामहायशाः। और्वश्चाऽऽसीदृचीकस्तुदीप्ताग्निसदृशप्रभः
जमदग्निर्ऋचीकस्य सत्यवत्यां व्यजायत। भृगोश्च चरुपर्यासे रौद्रवैष्णवयोस्तथा
जमनाद्वैष्णवस्याग्नेर्जमदग्निरजायत। रेणुका जमदग्नेस्तु शक्रतुल्यपराक्रमम्॥
ब्रह्मक्षत्रमयं रामं सुषुवेऽमिततेजसम् ॥ ९४ ॥
और्वस्याऽऽसीत्पुत्रशतं जमदग्निपुरोगमम्। तेषां पुत्रसहस्राणिभार्गवाणांपरस्परात्
ऋष्यन्तरेषु वै बाह्या बहवो भार्गवाः स्मृताः।
वत्सो विश्वोऽश्विषेणश्च पाण्डः पथ्यः सशौनकः ॥
गोत्रेण सप्तमा ह्येते पक्षा ज्ञेयास्तु भार्गवाः ॥ ९६ ॥
श्रृणुताङ्गिरसो वंशमग्नेः पुत्रस्य धीमतः। यस्यान्ववाये संभूताभारद्वाजाःसगौतमाः
देवाश्चाङ्गिरसो मुख्यास्त्विषुमन्तो महौजसः ॥ ९७ ॥
सुरूपा चैव मारीची कार्दमी च तथा स्वराट्।
पथ्या च मानवी कन्या तिस्रो भार्यास्त्वथर्वणः ॥
इत्येताऽङ्गिरसः पत्न्यस्तासु वक्ष्यामि संततिम् ॥ ९८ ॥
अथवर्णस्तुदायादास्तासुजाताःकुलोद्वहाः। उत्पन्नामहताचैव तपसाभावितात्मनाम्
बृहस्पतिः सुरूपायां गौतमः सुषुवे स्वराट्। अवन्ध्यं वामदेवं च उतथ्यमुशिजंतथा
धिष्णुःपुत्रस्तु पथ्यायां संवर्तश्चैवमानसः। विचित्तश्चतथायस्यशरद्वांश्चाप्युतथ्यजः
उशिजो दीर्घतमा बृहदुक्थो वामदेवजः। धिष्णोःपुत्रः सुधन्वान ऋषभश्च सुधन्वनः

रथकाराः स्मृता देवा ऋषयो ये परिश्रुताः। बृहस्पतेर्भरद्वाजो विश्रुतः सुमहायशाः॥
अङ्गिरसस्तु संवर्तो देवानङ्गिरसः शृणु। बृहस्पतेर्यवीयांसो देवा ह्यङ्गिरसः स्मृताः॥
औरसाङ्गिरसः पुत्राः सुरूपायां विजज्ञिरे। औदार्यायुर्दनुर्दक्षो दर्भः प्राणस्तथैव च॥

हविष्मांश्च हविष्णुश्च क्रतुः सत्यश्च ते दश॥ १०५॥

अयस्यस्तुउतथ्यश्चवामदेवस्तथोशिजः। भारद्वाजाःशांकृतिका गार्ग्यकान्वरथीतराः
मुद्गलाविष्णुवृद्धाश्चहरितावायवस्तथा। तथा भाक्षा भरद्वाजाआर्षभाःकिंभयास्तथा
एते ह्यङ्गिरसः पक्षा विज्ञेयादशपञ्च च। ऋष्यन्तरेषु वै वाह्या बहवोऽङ्गिरसः स्मृताः
मारीचं परिवक्ष्यामि वंशमुत्तमपूरुषम्। यस्यान्ववाये संभूतं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥
मरीचिरापश्चकमे ताभिर्ध्यायन्प्रजेप्सया। पुत्रः सर्वगुणोपेतः प्रजावान्सुरुचिर्दितिः

संपूज्यते प्रशस्तायां मनसा भाविता प्रभुः॥ ११०॥

आहूताश्च ततःसर्वाआपः समवसत्प्रभुः। तासु प्रणिहितात्मानमेकः सोऽजनयत्प्रभुः
पुत्रमप्रतिमन्नाम्नाऽरिष्टनेमिः प्रजापतिः। पुत्रं मरीचं सूर्याभं वर्धौ वेशो व्यजीजनत्

प्रध्यायन्हि सतां वाचं पुत्रार्थी सलिले स्थितः।
सप्त वर्षसहस्राणि ततः सोऽप्रतिमोऽभवत्॥ ११३॥

कश्यपः सवितुर्विद्वांस्तेन स ब्रह्मणः समः। मन्वन्तरेषु सर्वेषुं ब्रह्मणांऽशेन जायते॥
कन्यानिमित्तमित्युक्ते दक्षेणकुपिताःप्रजाः। अपिवत्सतदाकश्यं कश्यं मद्यमिहोच्यते
हाश्चेकसा हिविज्ञेया वाङ्नःकश्यउच्यते। कश्यं मद्यंस्मृतंविप्रैःकश्यपानात्तु कश्यपः
करोति नाम यद्वाचो वाचं क्रूरमुदाहृतम्। दक्षाभिशप्तःकुपितः कश्यपस्तेनसोऽभवत्
तस्माच्च कश्यपेनोक्तो ब्रह्मणा परमेष्ठिना। तस्माद्दक्षः कश्यपायकन्यास्ताः प्रत्यपद्यत

सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वास्ता लोकमातरः॥ ११८॥

इत्येतमृषिसर्गं तु पुण्यंयोवेद वारुणम्। आयुष्मान्पुण्यवाञ्शुद्धःसुखमाप्नोत्यनुत्तमम्

धारणाच्छ्रवणाच्चैव सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ११९॥

अथाब्रुवन्पुनः सर्वे मुनयो रोमहर्षणम्। विनिवृत्ते प्रजासर्गे षष्ठे वै चाक्षुषस्य ह॥

निसर्गः संप्रवृत्तोऽयं मनोर्वैवस्वतस्य ह॥ १२०॥

सूत उवाच

प्रजाः सृजेतिव्यादिष्टः स्वयंदक्षःस्वयंभुवा । ससर्जदक्षोभूतानि गतिमन्तिध्रुवाणि च
उपस्थितेऽन्तरे ह्यस्मिन्मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥ १२१ ॥
ततः प्रवृत्तो दक्षस्तुप्रजाःस्रष्टुंचतुर्विधाः । जरायुजाण्डजाश्चैवउद्भिज्जाःस्वेदजास्तथा
दश वर्षसहस्राणि तप्त्वा घोरं महत्तपः । संभावितो योगबलैरणिमाद्यैर्विशेषतः ॥
आत्मानं व्यभजच्छ्रीमान्मनुष्योरगराक्षसान् । देवासुरसगन्धर्वान्दिव्यसंहननप्रजान्
ईश्वरानात्मनस्तुल्यान्रूपद्रविणतेजसा ॥ १२४ ॥
तथैवान्यानि मुदितोगतिमन्तिध्रुवाणि च । मानसान्येवभूतानिसिसृक्षुर्विविधाःप्रजाः
ऋषीन्देवान्सगन्धर्वान्मनुष्योरगराक्षसान् । यक्षभूतपिशाचांश्च वयःपशुमृगांस्तथा
यदाऽस्य मनसा सृष्टा,न व्यवर्धन्तताःप्रजाः । अपध्याता भगवता महादेवेन धीमता
मैथुनेन च भावेन सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः । असिक्नींचावहत्पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः
सुतां सुमहता युक्तां तपसालोकधारिणीम् । यया धृतमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्
अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौप्राचेतसंप्रति । दक्षस्योद्वहतोभार्यामसिक्नीं वीरणीं पराम्
कूपानां नियुतंदक्षः सर्पिणांसाभिमानिनाम् । नदीगिरिषुसर्जंस्ताःपृष्ठतोऽनुययौप्रभुः
तं दृष्ट्वा ऋषिभिः प्रोक्तं प्रतिष्ठास्यति वै प्रजाः ।
प्रथमाऽत्र द्वितीया तु दक्षस्येह प्रजापतेः ॥ १३२ ॥
तथाऽगच्छद्यथाकालंकूपानांनियुतेतुसः । असिक्नींवैरिणीं यत्र दक्षः प्राचेतसोऽवहत्
अथ पुत्रसहस्रं स वैरिण्याममितौजसा । असिक्न्यां जनयामासदक्षः प्राचेतसः प्रभुः
तांस्तु दृष्ट्वा महातेजाः सविवर्धयिषून्प्रजाः । देवर्षिः प्रियसंवादो नारदो ब्रह्मणः सुतः
नाशाय वचनं तेषां शापायैवाऽऽत्मनोऽब्रवीत् ॥ १३५ ॥
यः स वै प्रोच्यते विप्रः कश्यपस्येति कृत्रिमः । दक्षशापभयाद्भीतो ब्रह्मर्षिस्तेनकर्मणा
यः कश्यपसुतस्याथ परमेष्ठी व्यजायत । मानसः कश्यपस्येह दक्षशापभयात्पुनः ॥
तस्मात्स कश्यपस्याथ द्वितीयं मानसोऽभवत् । सहि पूर्वसमुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः
न दक्षस्य पुत्रास्ते हर्यश्वा इतिविश्रुताः । निन्दार्थं नाशिताः सर्वेविनष्टाश्चनसंशयः

तस्योद्यतस्तदा दक्षः क्रुद्धो नाशाय वै प्रभुः । ब्रह्मर्षीन्वै पुरस्कृत्ययाचितः परमेष्ठिना
ततोऽभिसंधितं चक्रे दक्षस्तु परमेष्ठिना । कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रोभवत्विति
ततो दक्षःसुतांप्रादात्प्रियांवै परमेष्ठिने । तस्मात्सनारदो जज्ञे भूयः शान्तो भयादृषिः
तदुपश्रुत्य विप्रास्ते जातकौतूहलाः पुनः । अपृच्छन्वदतां श्रेष्ठं सूतं तत्त्वार्थदर्शिनम्

ऋषय ऊचुः

कथं विनाशिताः पुत्रा नारदेन महात्मना । प्रजापतिसुतास्तेवै प्रजाःप्राचेतसात्मजाः

स तथ्यं वचनं श्रुत्वा जिज्ञासासंभवं शुभम् ।
प्रोवाच मधुरं वाक्यं तेषां सर्वगुणान्वितम् ॥ १४५ ॥

दक्षपुत्राश्च हर्यश्वा विवर्धयिषवः प्रजाः । समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ॥
बालिशा वत यूयं वै न प्रजानीथ भूतलम् । अन्तमूर्ध्वमधश्चैव कथंस्रक्ष्यथ वै प्रजाः
किं प्रमाणं तु मेदिन्याः स्रष्टव्यानि तथैव च । अविज्ञायेहस्रष्टव्यंअन्यथाकिंनुस्रक्ष्यथ

अल्पं वाऽपि बहुर्वाऽ(वाऽ)पि तत्र दोषस्तु दृश्यते ॥ १४८ ॥

ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताःसर्वतोदिशम् । वायुं तु समनुप्राप्यगतास्ते वै पराभवम्
अद्यापि न निवर्तन्ते भ्रमन्तो वायुमिश्रिताः । एवं वायुपथं प्राप्य भ्रमन्ते ते महर्षयः
स्वेषु पुत्रेषु नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः । वैरिण्यामेवपुत्राणां सहस्रमसृजत्प्रभुः ॥
प्रजा विवर्धयिषवः शबलाश्वाः पुनस्तुते । पूर्वमुक्तं वचस्तत्र श्राविता नारदेन ह ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं सर्वे कुमारास्ते महौजसः । अन्योन्यमूचुस्तेसर्वेसम्यगाहमहानृषिः

भ्रातृणां पदवी चैव गन्तव्या नात्र संशयः ॥ १५३ ॥
ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च सुखं स्रक्ष्यामहे प्रजाः ।
तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्वतोदिशम् ॥
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवाऽऽपगाः ॥ १५४ ॥

ततः प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे रतः । प्रयातो नश्यति तथा तन्न कार्यं विजानता
नष्टेषु शबलाश्वेषु दक्षः क्रुद्धोऽभवद्विभुः । नारदं नाशमेहीति गर्भवासं वसेति च
तथा तेष्वपि नष्टेषु महात्मसुपुरा किल । षष्टिकन्याऽसृजद्दक्षोवैरिण्यामेवविश्रुताः

तास्तदा प्रतिजग्राह पत्न्यर्थे कश्यपः प्रभुः । धर्मः सोमस्तु भगवांस्तथैवान्ये महर्षयः

इमांविसृष्टिंदक्षस्यकृत्स्नां यो वेदतत्त्वतः ।आयुष्मान्कीर्तिमान्धन्यःप्रजावांश्चभवत्युत

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे प्रजापतिवंशानुकीर्तनं
नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

धर्मवंशकथनम्

ऋषयऊचुः

देवानां दानवानां च दैत्यानां चैव सर्वशः । उत्पत्तिं विस्तरेणेह ब्रूहिवैवस्वतेऽन्तरे

सूत उवाच

धर्मस्य तावद्वक्ष्यामि निसर्गं तं निबोधत । अरुन्धती वसुर्यामी लम्बाभानुर्मरुत्वती

संकल्पा च मुहूर्ता च साध्याविश्वातथैव च । धर्मपत्न्यो दशत्वेतादक्षःप्राचेतसोददौ

साध्या पुत्रांस्तु धर्मस्य साध्यान्द्वादश जज्ञिरे ।
साध्या नाम महाभागाश्छन्दजा यज्ञभागिनः ॥
देवेभ्यस्तान्परान्देवान्देवज्ञाः परिचक्षते ॥ ४ ॥

ब्रह्मणो वै मुखात्सृष्टाजयादेवाः प्रजेप्सया । सर्वे मन्त्रशरीरास्तेस्मृतामन्वन्तरेष्विह

दर्शश्च पौर्णमासश्च बृहद्यच्च रथंतरम् । चित्तिश्चैव विचित्तिश्च आकूतिः कूतिरेव च

विज्ञाता चैव विज्ञातो मनो यज्ञश्च ते स्मृताः ।
नामान्येतानि तेषां वै जयानां प्रथितानि च ॥ ७ ॥

ब्रह्मशापेन ते जाताःपुनःस्वायंभुवे जिताः । स्वारोचिषेवैतुषिताःसत्याश्चैवोत्तमेपुनः

तामसे हरयो नाम वैकुण्ठा रैवतान्तरे । साध्याश्च चाक्षुषे नाम्नाछन्दजाजज्ञिरेसुराः

धर्मपुत्रा महाभागाःसाध्या ते द्वादशामराः । पूर्वं स्म अनुसूयन्तेचाक्षुषस्यान्तरेमनोः
स्वारोचिषेऽन्तरेऽतीतादेवा ये वै महौजसः । तुषितानामतेऽन्योन्यमूचुर्वैचाक्षुषेऽन्तरे
किंचिच्छिष्टेतदातस्मिन्देवावैतुषिताऽब्रुवन् । इतरेतरंमहाभागान्वयंसाध्यान्प्रविश्यवै

मन्वन्तरे भविष्यामस्तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥ १२ ॥

एवमुक्त्वातुतेसर्वेचाक्षुषस्यान्तरे मनोः । तस्माद्द्वादशसंभूताधर्मात्स्वायंभुवात्पुनः
नरनारायणौ तत्र जज्ञाते पुनरेव हि । विपश्चिदिन्द्रो यश्चाऽऽसीत्तथासत्योहरिश्चतौ

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वमास्तां तौ तुषितौ सुरौ ॥ १४ ॥
तुषितानां तु साध्यत्वे नामान्येतानि वक्ष्यते ।
मनोऽनुमन्ता प्राणश्च नरो यानश्च वीर्यवान् ॥ १५ ॥

चित्तिर्हयो नयश्चैव हंसो नारायणस्तथा । प्रभवोऽथ विभुश्चैव साध्याद्वादशजज्ञिरे
स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वं ततःस्वारोचिषे पुनः । नामान्यासन्पुनस्तानितुषितानांनिबोधत
प्राणोऽपानस्तथोदानःसमानोव्यानएव च । चक्षुःश्रोत्रंतथाप्राणःस्पर्शोबुद्धिर्मनस्तथा
प्राणापानावुदानश्च समानोव्यान एव च । नामान्येतानि पूर्वं तु तुषितानांस्मृतानिह
वसोस्तुवसवःपुत्राःसाध्यानांमनुजास्मृताः ।धरोध्रुवश्चसोमश्चआपश्चैवानलोऽनिलः

प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ २० ॥

धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा । ध्रुवपुत्रो भवो नाम्ना कालोलोकप्रकालनः
सोमस्य भगवान्वर्चा बुधश्चग्रहबोधनः । रोहिण्यां तौ समुत्पन्नौ त्रिषुलोकेषुविश्रुतौ
धारोर्मिकलिलाश्चैव त्रयश्चन्द्रमसः सुताः । आपस्यपुत्रोवैतण्ड्यःशमःशान्तस्तथैवच
स्कन्दः सनत्कुमारश्च जज्ञे पादेन तेजसः । अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत

तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ॥ २४ ॥

अनिलस्य शिवाभार्यातस्याःपुत्रोमनोजवः । अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्यच
प्रत्यूषस्य विदुःपुत्रऋषिर्नाम्ना तु देवलः । द्वौ पुत्रौदेवलस्यापिक्षमावन्तौमनीषिणौ
बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी । योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता विचरत्युत
प्रभासस्य तु या भार्यावसूनामष्टमस्यह । विश्वकर्मासुतस्तस्याजातःशिल्पिप्रजापतिः

सकर्ता सर्वशिल्पानांत्रिदशानां च वर्धकिः । भूषणानां च सर्वेषांकर्ताकारयिताचसः

सर्वेषां च विमानानि देवतानां करोति सः ।

मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पानि शिल्पिनः ॥ ३० ॥

विश्वे(श्व)देवास्तु विश्वाया जज्ञिरे दश विश्रुताः ।

क्रतुर्दक्षः श्रवः सत्यः कालः कामोधुनिस्तथा ॥ ३१ ॥

कुरुवान्प्रभवांश्चैव रोचमानश्च ते दश । धर्मपुत्राः स्मृता ह्येते विश्वायां जज्ञिरेशुभाः

मरुत्वत्यां तु मरुतो भानवो भानुजाःस्मृताः । मुहूर्ताश्चमुहूर्तायांघोषंलम्बाव्यजायत

संकल्पायांतुसंजज्ञे विद्वान्संकल्प एव च । नागवीथ्यस्तुजाम्यां च पथत्रयसमाश्रिताः

पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यां व्यजायत । एष सर्गः समाख्यातोविद्वान्धर्मस्यशाश्वतः

मुहूर्ताश्चैव तिथ्यश्च पतिभिः सह सुव्रताः । नामतः संप्रवक्ष्यामिब्रुवतो मे विबोधत

अहोरात्रविभागश्च नक्षत्राणि समासतः । मुहूर्ताः सर्वनक्षत्रा अहोरात्रविदस्तथा ।

अहोरात्रकलानां तु षट्शतीत्यधिका स्मृता । रवेर्गतिविशेषेण सर्वेषु ऋतुमिच्छत

ततो वेदविदश्चैतां तिथिमिच्छन्ति पर्वसु । अविशेषेषु कालेषुयोज्यः स पितृदानतः

रौद्रः सार्वस्तथामैत्रःपिण्ड्यवासवएव च । आप्योऽथवैश्वदेवश्चब्राह्मोमध्याह्नसंश्रितः

प्राजापत्यस्तथा ऐन्द्रस्तथेन्द्रो निर्ऋतिस्तथा ।

वारुणश्च तथाऽर्यम्णो भागाश्चापि दिनाश्रिताः ॥ ४१ ॥

एते दिनमुहूर्ताश्च दिवाकरविनिर्मिताः । शंकुच्छायाविशेषेण वेदितव्याः प्रमाणतः

अजस्तथाऽहिर्बुध्नश्चपूषा हि यमदेवताः । आग्नेयश्चापि विज्ञेयःप्राजापत्यस्तथैव च

ब्रह्मसौम्यस्तथाऽऽदित्यो वार्हस्पत्योऽथ वैष्णवः ।

सावित्रोऽथ तथा त्वाष्ट्रो वायव्यश्चेति संग्रहः ॥ ४४ ॥

एकरात्रिमुहूर्ताः स्युःक्रमोक्तादशपञ्च च । इन्दोर्गत्युदयाज्ज्ञेयानालिकाःपादिकास्तथा

कालावस्थास्त्विमास्त्वेते मुहूर्ता देवताः स्मृताः ॥ ४५ ॥

सर्वग्रहाणांत्रीण्येवस्थानानिविहितानि च । दक्षिणोत्तरमध्यानितानिविद्याद्यथाक्रमम्

स्थानं जारद्गवं मध्ये तथैरावतमुत्तरम् । वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वतः ॥

अश्विनीकृत्तिकायाम्यानागवीथिरितिस्मृता। पुष्योऽश्लेषापुनर्वसूवीथिरैरावतीमता

तिस्रस्तु वीथयो चेता उत्तरो मार्ग उच्यते ॥ ४८ ॥

पूर्वोत्तरे फाल्गुन्यौ च मघा चैवार्यमी स्मृता।

हस्तचित्रे तथा स्वाती गोवीथीत्यभिशब्दिता ॥ ४६ ॥

ज्येष्ठाविशाखाऽनुराधावीथीजारद्गवीस्मृता। एतास्तुवीथयस्तिस्रोमध्यमोमार्गउच्यते

मूलंचाऽऽषाढे द्वे चापि अजवीथ्यभिशब्दिता। श्रवणंचधनिष्ठाचगार्गीशतभिषक्तथा

वैश्वानरी भाद्रपदेरेवती चैव कीर्तिता। स्मृता वीथ्यस्तुतिस्रस्तामार्गोवैदक्षिणोबुधैः

सप्तविंशत्तुयाःकन्यादक्षःसोमायतादद‍ौ। सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ताज्योतिषेचैवकीर्तिताः

तासामपत्यान्यभवन्दीप्तान्यमिततेजसा ॥ ५३ ॥

यास्तु शेषास्तदाकन्याःप्रतिजग्राह कश्यपः। चतुर्दशमहाभागाःसर्वास्तालोकमातरः

अदितिर्दितिर्दनुः काला अरिष्टासुरसा तथा। सुरभिर्विनताचैवताम्राक्रोधवशाइरा

कद्रूर्मुनिश्च धर्मज्ञः प्रजास्तासां निबोधत ॥ ५५ ॥

चाक्षुषेऽन्तरेऽतीते ये द्वादशपुरोगमाः। वैकुण्ठानाम ते साध्याबभूवुश्चाक्षुषेऽन्तरे

उपस्थितेऽन्तरेह्यस्मिन्पुनर्वैवस्वतस्यह। आराधिताह्यदित्यातेसमेत्याऽऽहुःपरस्परम्

एतामेव महाभागामदितिं संप्रविश्य वै। वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन्योगादर्धेन तेजसः ॥

गच्छामः पुत्रतामस्यास्तन्नः श्रेयो भविष्यति।

अदित्यास्तु प्रसूतानामादित्यत्वं भविष्यति ॥ ५६ ॥

एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाक्षुषस्याऽन्तरे मनोः।

जज्ञिरे द्वादशाऽऽदित्या मारीचात्कश्यपात्पुन ॥ ६० ॥

शतक्रतुश्च विष्णुश्च जज्ञाते पुनरेव हि। वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन्नरनारायणौ सुरौ ॥

तेषामपि हि देवानां निधनोत्पत्तिरुच्यते। यथासूर्यस्यलोकेऽस्मिन्नुदयास्तमयावुभौ

प्रजापतेश्च विष्णोश्च भवस्य च महात्मनः ॥ ६२ ॥

श्रेष्ठानुश्रविकेयस्माच्छक्ताःशब्दादिलक्षणे। अष्टात्मकेऽणिमाद्ये च तस्मात्तेजज्ञिरेसुराः

इत्येष विषये रागः संभूत्याः कारणं स्मृतम्। ब्रह्मशापेनसंभूताजयाःस्वायंभुवेजिताः

स्वारोचिषे वै तुषिताः सत्याश्चैवोत्तमे पुनः । तामसेहरयोदेवाजाताश्चारिष्णवेतुवै
वैकुण्ठाश्चाक्षुषे साध्या आदित्याः सांप्रते पुनः ॥ ६५ ॥
धाताऽर्यमाचमित्रश्चवरुणोंऽशोभगस्तथा । इन्द्रोविवस्वान्पूषाचपर्जन्योदशमःस्मृतः
ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्योऽजघन्यजः ।
इत्येते द्वादशाऽऽदित्याः कश्यपस्य सुताः स्मृताः ॥ ६७ ॥
सुरभी कश्यपाद्रुद्रानेकादश विजज्ञिरे । महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती ॥
अङ्गारकं तथा सर्पं निर्ऋतिं सदसस्पतिम् । अजैकपादहिर्बुध्नमूर्ध्वकेतुं ज्वरं तथा ॥
भुवनं चेश्वरं मृत्युं कपालं चैव विश्रुतम् । देवानेकादशैतांस्तु रुद्रांस्त्रिभुवनेश्वरान्
तपसा तेन महता सुरभी तानजीजनत् ॥ ७० ॥
ततो दुहितरावन्ये सुरभी द्वे व्यजायत । रोहिणीचैवरुद्राभागान्धारी च यशस्विनी
रोहिण्यां जज्ञिरेकन्याश्चतस्रोलोकविश्रुताः । सुरूपाहंसकीला च भद्राकामदुघातथा
सुषुवे कामदुघा तु सुरूपा तनयद्वयम् ॥ ७२ ॥
हंसकीला नृमहिषा भद्रायास्तुव्यजायत । विश्रुतास्तुमहाभागागन्धर्वावाजिनःसुताः
ऊच्चैःश्रवास्तदा जाताः खेचरास्ते मनोजवाः ।
श्वेताः शोणाः पिशङ्गाश्च सारङ्गा हरितार्जुनाः ॥
रुद्रा देवोपवाह्यास्ते गन्धर्वयोनयो हयाः ॥ ७४ ॥
भूयो जज्ञे सुरभ्यास्तु श्रीमांश्चन्द्राभसुप्रभः । वृषो दक्ष इतिख्यातःकण्ठेमणिदलप्रभः
स्रग्वी ककुद्मीद्युतिमानमृतालयसंभवः । सुरभ्यनुमते दत्तो ध्वजो माहेश्वरस्तु सः ॥
इत्येते कश्यपसुता रुद्रादित्याः प्रकीर्तिताः ।
धर्मपुत्राः स्मृताः साध्या विश्वे च वसवस्तथा ॥ ७७ ॥
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश । बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ॥
प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः ॥ ७८ ॥
कृशाश्वस्य तु देवर्षेर्देवप्रहरणाः स्मृताः । एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ॥
सर्वे देवगणाविप्रास्त्रयस्त्रिंशत्तु च्छन्दजाः । एतेषामपि देवानां निरोधोत्पत्तिरुच्यते

यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन्नुदयास्तमयावुभौ। एते देवनिकायास्तेसंभवन्ति युगेयुगे

ऋषय ऊचुः

साध्याश्च वसवो विश्वे रुद्रादित्यास्तथैव च। अभिजात्याप्रभावैश्चकर्मभिश्चैवविश्रुताः

प्रजापतेश्चविष्णोश्चभवस्य च महात्मनः। अन्तरंज्ञातुमिच्छामोयश्चयस्माद्विशिष्यते

यश्च यस्मात्प्रभवति यश्च यस्मिन्प्रतिष्ठितः। ज्यायान्योमध्यमश्चैवकनीयान्यश्चतेषुवै

प्रधानभूतो यस्तेषांगुणभूतश्चतेषु यः। कर्मभिश्चाभिजात्या च प्रभावेण च योमहान्

एतत्प्रब्रूहि नः सर्वं त्वं हि वेत्थ यथायथम् ॥ ८५ ॥

सूत उवाच

अत्र वो वर्णयिष्येऽहमन्तरं तेषु यत्स्मृतम्। यद्ब्रह्मविष्णुरुद्राणांश्रृणुध्वंमेविवक्षतः

राजसी तामसी चैव सात्त्विकी चैव ताः स्मृताः।
तन्वः स्वयंभुवः प्रोक्ताः काले काले भवन्ति याः ॥ ८७ ॥

एतासामन्तरं वक्तुं नैव शक्यं द्विजोत्तमाः। गुणवृद्धिनिबद्धत्वाद्बुद्धिधानुग्रहबन्धतः

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च गुणवृद्धिमिह द्विजः। यथाशक्त्या प्रवक्ष्यामितनूनांतन्निबोधत

ब्राह्मी तु राजसी तेषां कालाख्या तामसी स्मृता।
सात्त्विकी पौरुषी चैव कर्म तासां निबोधत ॥ ९० ॥

एका तु कुरुतेतासांराजसीसर्वतःप्रजाः। एकाचैवार्णवस्थातुसाऽनुगृह्णातिसात्त्विकी

एका सा क्षिपते काले तामसी ग्रसते प्रजाः ॥ ९१ ॥

रजसा तु समुद्रिक्तो ब्रह्मा संभवते यदा। पुरुषाख्या तदा तस्यसात्त्विकी विनिवर्तते

यदाभवतिकालात्माउद्रेकात्तमसस्तु सः। ब्रह्माख्यासातदात्वस्य राजसीविनिवर्तते

सत्त्वोद्रेकात्तु पुरुषो यदा भवति स प्रभुः। कालाख्या सा तदा तस्यपुनर्नभवतीतिवै

क्रमात्तस्य निवर्तन्ते रूपं नाम च कर्म च। त्रैलोक्ये वर्तमानस्य सर्गानुग्रहनिग्रहैः ॥

यदा भवति ब्रह्मा च तदा चान्तरमुच्यते। यदा च पुरुषो ब्रह्मा न चैव पुरुषस्तु सः

यदा च पुरुषो भवति ब्रह्मा न भवते तदा। यदा भक्षद्भवति हि तदा न पुरुषस्तु सः

यदा भद्रो भवेद्भूयो ब्रह्मा न भवते तदा। यदा न भवति ब्रह्मा न चैव पुरुषस्तु सः

मणिर्विभजते वर्णान्विचित्रान्स्फटिकेयथा । वैमल्यादाश्रयवशात्तद्वर्णः स्यात्तदञ्जन
तदागुणवशात्तस्य स्वयंभोरनुरञ्जनम् । एकत्वे च पृथक्त्वे च प्रोक्तमेतन्निदर्शनम्।
एको भूत्वा यथा मेघः पृथक्त्वेनावतिष्ठते । रूपतो वर्णतश्चैव तथा गुणवशात्तु स
भवत्येको द्विधा चैव त्रिधामूर्तिविनाशनात् । एकोब्रह्माऽन्तकृच्चैवपुरुषश्चेतियेत्रय
एकस्यैताःस्मृतास्तिस्रस्तनवस्तुस्वयंभुवः । ब्राह्मीचपौरुषीचैव अन्तकारी च ते त्रय
तत्रयाराजसीतस्यतनुः सा वै प्रजाकरी । यातामसीं तु कालाख्याप्रजाक्षयकरीतुस

सात्त्विकी पौरुषी या तु सानुग्रहकरी स्मृता ॥ १०४ ॥

राजस्या ब्रह्मणोंऽशेनमरीचिःकश्यपोऽभवत् । तामसीचान्तकृद्या तु तदंशेनाभवद्भव

सात्विकी पौरुषी या सा तस्यांशो विष्णुरुच्यते ।
त्रैलोक्ये ताः स्मृतास्तिस्रस्तनवस्तु स्वयंभुवः ॥ १०६ ॥

नानाप्रयोजनार्थांहिकालोऽवस्थांकरोतियः । ब्रह्मत्वेन प्रजाःसृष्ट्वाविष्णुत्वेनानुगृह्य

वैष्णव्याऽनुगृहीतास्ता रौद्र्याऽनुग्रसते पुनः ॥ १०७ ॥

एकः स्वयंभुवः कालस्त्रिभिस्त्रीन्वै करोति सः । सृजते चानुगृह्णातिप्रजाःसंहरतेतथ

इत्येताः कथितास्तिस्रस्तनवस्तु स्वयंभुवः ।
प्राजापत्या च रौद्री च वैष्णवी चैव ताः स्मृताः ॥ १०९ ॥

एका तनुः स्मृता वेदे धर्मशास्त्रेपुरातने । सांख्ययोगपरैर्धीरैः पृथक्त्वैकत्वदर्शिभि

अभिजातप्रभावज्ञैर्ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ११० ॥

एकत्वे च पृथक्त्वे च तासु भिन्नाःप्रजास्त्विह । इदं परमिदंनेति ब्रुवन्तोभिन्नदर्शन
ब्रह्माणं कारणं केचित्केचित्प्राहुः प्रजापतिम् । केचिच्छिवं परत्वेनप्राहुर्विष्णुंतथाप

अविज्ञानेन संसक्ताः सक्ता रत्यादिचेतसा ॥ ११२ ॥
तत्त्वं कालं च देशं च कार्याण्यावेक्ष्य तत्त्वतः ।
कारणं च स्मृता ह्येता नानार्थेष्विह देवताः ॥ ११३ ॥

एकं निन्दति यस्तेषां सर्वानेव स निन्दति । एकं प्रशंसमानस्तु सर्वानेव प्रशंसति
एकं निन्दति यस्तेषां सर्वानेव स निन्दति । एकं यो वेत्ति पुरुषंतमाहुर्ब्रह्मवादिन

अद्वेषस्तु सदा कार्यो देवतासु विजानता । न शक्यमीश्वरं ज्ञातुमैश्वर्येणव्यवस्थितम्
एकात्मा स त्रिधा भूत्वा संमोहयति यः प्रजाः ।
एतेषां च त्रयाणां तु विचरन्त्यन्तरं जनाः ॥ ११७ ॥
जिज्ञासन्तः परीक्षन्तः सक्ता रूपाविचेतसः । इदं परमिदं नेति वदन्ति भिन्नदर्शिनः
यातुधानान्विशन्त्येताः पिशाचांश्चैव तान्नरान् । एकत्वेनपृथक्त्वेनस्वयंभूर्व्यवतिष्ठते
गुणमात्रात्मिकाभिस्तु तनुभिर्मोहयन्प्रजाः । तेष्वेकं यजते यस्तु सतदा यजतेत्रयम्
तस्माद्देवास्त्रयो ह्येते नैरन्तर्ये व्यवस्थिताः ।
तस्मात्पृथक्त्वमेकत्वसंख्या संख्यागतागतम् ॥
एकत्वं वा वहुत्वं वा तेषु को ज्ञातुमर्हति ॥ १२१ ॥
यस्मात्सृष्ट्वाऽनुगृह्णातेग्रसतेचैव ते प्रजाः । गुणात्मकत्वात्त्रैकाल्येतस्मादेकःसउच्यते
रुद्रं ब्रह्माणमिन्द्रं च लोकपालानृषीन्दनून् । देवं तमेकं वहुधा प्राहुर्नारायणं द्विजाः
प्राजापत्या तनुर्या च तनुर्या चैव वैष्णवी । मन्वन्तरे च कल्पे च आवर्तन्तेपुनःपुनः
क्षेत्रज्ञो अ(ह्य)पि चाऽऽनेष्य विभजेदित्यनुग्रहात् ।तेजसायशसाबुद्ध्याश्रुतेनचवलेनच
जायन्ते तत्समाश्चैव तानपीह निवोधत ॥ १२५ ॥
राजस्या ब्रह्मणोंऽशेन मरीचिः कश्यपोऽभवत् ।
तामस्यास्तस्य चांशेन कालात्मा रुद्र उच्यते ॥
सात्त्विक्या पुरुषांशेन यज्ञे विष्णुरभूत्तदा ॥ १२६ ॥
त्रिषु कालेषु तस्यैता ब्रह्मणस्तनवोंऽशजाः । कालोभूत्वा पुनश्चासौरुद्रःसंहरतेप्रजाः
संप्राप्ते चैव कल्पान्तेसप्तरश्मिर्दिवाकरः । भूत्वासंवर्तकादित्योलोकांस्त्रीन्सतदादहन्
विष्णुः प्रजाऽनुगृह्णाति नामरूपविपर्ययैः । तस्यांतस्यामवस्थायांतत्तदुत्पाद्यकारणम्
सत्त्वोद्रिक्ता तु या प्रोक्ता ब्रह्मणःपौरुषी तनुः । तस्यांशेनविजज्ञेसइहस्वायंभुवेऽन्तरे
आकूत्यां मनसो देव उत्पन्नः प्रथमे विभुः ॥ १३० ॥
ततः पुनः स वै देवः प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे । तुषितायांसमुत्पन्नोह्यजितस्तुषितैःसह
औत्तमे चान्तरे चैव तुषितास्तु विदुः स वै । वशवर्तिभिरुत्पन्नो वशवर्ती हरिः पुनः

सत्यायामभवत्सत्यः सत्यैः सह सुरोत्तमैः । तामसस्यान्तरे चापि संप्राप्ते पुनरेव हि
भार्यायां हरिभिः सार्धं हरिरेव बभूव ह ॥ १३३ ॥
चारिष्णवेऽन्तरे चापिहरिर्देवः पुनस्तु सः । विकुण्ठायामजो जज्ञे ह्याभूतरजसैः सह
वैकुण्ठः स पुनर्देवः संप्राप्ते चाक्षुषेऽन्तरे ॥ १३४ ॥
धर्मो नारायणः साध्यः साध्यैः सह सुरैरभूत् ।
स तु नारायणः साध्यः प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे ॥ १३५ ॥
मारीचात्कश्यपाद्विष्णुरदित्यां संबभूव ह ।
त्रिभिः क्रमैरिमांल्लोकाञ्जित्वा विष्णुमुरुक्रमम् ॥ १३६ ॥
प्रत्यपादयदिन्द्राय देवेभ्यश्चैव स प्रभुः । इत्येतास्तनवस्तस्य व्यतीताः सप्त सप्तसु ।
मन्वन्तरेष्वतीतेषु याभिः संरक्षिताः प्रजाः ॥ १३७ ॥
यस्माद्विष्टमिदंसर्वंवामनेनेहजायता । तस्मात्स वै स्मृतोविष्णुर्विशेर्धातोःप्रवेशनात्
इत्येद्ब्रह्मणश्चैव वामनस्यमहात्मनः । एकत्वं च पृथक्त्वञ्च विशिष्टत्वं च कीर्तितम्
देवतानामिहांशेन जायन्ते यास्तु देवताः । तासां तास्तेजसा बुद्ध्या श्रुतेनचबलेनच
जायन्ते त्त्समाश्चैव ता वै तेषामनुग्रहात् ॥ १ ४०॥
यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तदेवावगच्छध्वं विष्णोस्तेजोंऽशसंभवम्
स एवं जायतेंऽशेन केचिदिच्छन्ति मानवाः । ततोऽपरे ब्रुवन्तीममन्योन्यांशेनजायते
एवं विवदमानास्ते दृष्ट्वा तान्वै ब्रुवन्ति ह । यस्मान्न विद्यते भेदो मनसश्चेतसश्च ह
तस्मादनुग्रहास्तेषां क्षेत्रज्ञास्ते भवन्त्युत ॥ १४३ ॥
एकस्तु प्रभुशक्त्या वै बहुधा भवतीश्वरः । भूत्वा यस्माच्चबहुधाभवत्येकःपुनस्तुसः
तस्मात्सुमनसो भेदाज्जायन्तेतेजसश्च ह । मन्वन्तरेषु सर्वेषु प्रजाः स्थावरजङ्गमाः ॥
सर्गादौ सकृदुत्पन्नास्तिष्ठन्तीह प्रशंसया ॥ १४५ ॥
प्राप्तेप्राप्ते तु कल्पान्तेरुद्रःसंहरति प्रजाः । जायन्ते मोहयन्तोऽन्यानीश्वरायोगमायया
ऐश्वर्येण चरन्तस्ते मोहयन्ति ह्यनीश्वराः । तस्माद्दोषप्रचारेषु युक्तायुक्तं न विद्यते ॥
भूतापवादिनो दुष्टा मध्यस्थाभूतभाविनः । भूतापवादिनःशक्याल्पयोवेदाःप्रवादिनाम्

परीक्ष्ययो न गृह्णातिगृह्णाति च विपर्ययात्। दृढपूर्वश्रुतत्वाच्चप्रवादाच्चैवलौकिकात्
चतुर्भिः कारणैरेभिर्यथातत्त्वं न विन्दति ॥ १४६ ॥
पूर्वमर्थान्तरे न्यस्ताः कालान्तरगता अपि। तेनान्यत्सन्तमप्यर्थं द्वेषान्न प्रतिपद्यते ?
दशानां द्रव्यभूतो यो गुणभूतस्तु तेषु यः। कर्मणांमहतांकर्ताअभिजात्याचयोमहान्
श्रुतज्ञैः कारणैरेतैश्चतुर्भिः परिकीर्त्यते ॥ १५१ ॥
अशक्तरुष्टो जानाति देवताः प्रविभागशः। इमौ चोदाहरन्त्यत्र श्लोकौ योगेश्वरंप्रति
आत्मनः प्रतिरूपाणि परेषां च सहस्रशः। कुर्याद्योगबलंप्राप्यतैश्चसर्वैःसहाऽऽचरेत्
प्राप्नुयाद्विषयांश्चैव तथैवोग्रतपश्चरन्। संहरेच्च पुनः सर्वान्सूर्यतेजो गुणानिव ॥
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे गुणनैरन्तर्ये कश्यपीयप्रजासर्गो नाम
षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

ब्रह्मणःसकाशादाकूतादिपुत्राणामुत्पत्तिः

ऋषय ऊचुः

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य नैमिषेयास्तपस्विनः। पप्रच्छुर्ऋषयः श्रेष्ठंवचनस्ययथाक्रमम्
सप्तस्विह कथं देवाजातामन्वन्तरेष्विह। इन्द्रविष्णुप्रधानास्तेआदित्यास्तुमहौजसः
एतत्प्रब्रूहि नः सर्वं विस्तराद्रोमहर्षण !॥ २ ॥
एवमुक्तस्तदा सूतो विनयी ब्रह्मवादिभिः। उवाच वदतां श्रेष्ठो यथा पृष्टो महर्षिभिः

सूत उवाच

ब्रह्मणो वै मुखात्सृष्टायथादेवाः प्रजेप्सया। सर्वे मन्त्रशरीरास्तेस्मृतामन्वन्तरेष्विह
दर्शश्च पौर्णमासश्च बृहद्यच्च रथन्तरम्। आकूतः प्रथमस्तेषां ततस्त्वाकूतिरेव च ॥५

विचित्तिश्चैव सुविचित्तिश्च आकूतिः कूतिरेव च। अधीष्टस्तु ततोज्ञेयःअधीतिश्चैवतत्त्वतः
विज्ञातिश्चैव विज्ञातो मनवो ये च द्वादश ॥ ६ ॥
ज्ञेयो द्वादशपुत्रश्च यश्चाब्देन समाजयेत्। तं दृष्ट्वा चाब्रवीद्ब्रह्मा जया देवानसूयत॥
दाराग्निहोत्रसंयोगमिज्यामारभतेति च। एवमुक्त्वा तु तं ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत॥
ततस्ते नाभ्यनन्दन्त तद्वाक्यं परमेष्ठिनः। सन्यस्येह तु कर्माणि वाङ्मनःकर्मजानि तु
यमेष्वेवावतिष्ठन्ते दोषं दृष्ट्वा तु कर्मसु। क्षयातिशययुक्तं तु ते दृष्ट्वा कर्मणां फलम्॥
जुगुप्सन्तः प्रसूतिं च निस्तन्द्रा निर्ममाऽभवन्।
अजस्त्वं काङ्क्षमाणास्ते विरक्ता दोषदर्शिनः ॥ ११ ॥
अर्थं धर्मं च कामं च हित्वा ते वै व्यवस्थिताः।
पौरुषं ज्ञानमास्थाय तेजः संक्षिप्य चाऽऽस्थिताः ॥ १२ ॥
तेषां च तमभिप्रायं ज्ञात्वा ब्रह्मा चुकोपह। तानब्रवीत्तदा ब्रह्मा निरुत्साहान्सुरानथ
प्रजार्थमिह यूयं वै प्रजास्रष्टाऽस्मिनान्यथा। प्रसूयध्वंयजध्वंचेत्युक्तवानस्मि यत्पुरा
यस्माद्वाक्यमनादृत्य ममवैराग्यमास्थिताः। जुगुप्समानाःस्वंजन्मसंततिंनाभिनन्दथ
कर्मणां च कृतो न्यासो ह्यमृतत्वाभिकाङ्क्षया।
तस्माद्यूयमनादृत्य सप्तकृत्वस्तु यास्यथ ॥ १६ ॥
ते शप्ता ब्रह्मणा देवा जयास्तं वै प्रसादयन्। क्षमास्माकंमहादेवयदज्ञानात्कृतं विभो
प्रणिपत्य सानुनयं ब्रह्मा तानब्रवीत्पुनः। लोके मयाऽननुज्ञातःकः स्वातन्त्र्यमिहार्हति
मया परिगतं सर्वं कथमच्छन्दतोमम। प्रतिपत्स्यन्ति भूतानिशुभंवा यदि वाऽशुभम्
लोके यदस्ति किंचिद्वै सच्चासच्च व्यवस्थितम्।
बुद्ध्यात्मना मया व्याप्तं को मां लोकेऽतिसंधयेत् ॥ २० ॥
भूतानां तर्कितं यच्च यच्चाप्येषां विधारितम्। तथा विधारितं यच्च तत्सर्वंविदितंमम
मया स्थितमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्। आशामयेन तत्त्वेन कथं छेत्तुमिहोत्सहे॥
यस्माच्चाहं विवृत्तो वै सर्गार्थमिहनान्यथा। इह कर्माण्यनारभ्यकोमेछन्दाद्विमोक्ष्यते
परिभाष्य ततो देवान्जयान्वै नष्टचेतसः। अब्रवीत्स पुनस्तान्वै धृतान्दण्डे प्रजापतिः

यस्मान्मामभिसंधायसंन्यासोवःकृतःपुरा। यस्मात्सविफलोयत्नोह्यपारस्त्वेषयःकृतः
भविताऽतः सुखोदर्को देवा भावेषु जायताम् ॥ २५ ॥
आत्मच्छन्देन वो जन्मभविष्यतिसुरोत्तमाः। मन्वन्तरेषुसंमूढाःषट्सु सर्वे गमिष्यथ
वैवस्वतान्तेषु सुरास्तथा स्वायंभुवादिषु। ताञ्ज्ञात्वाब्रह्मणातत्रश्लोकोगीतःपुरातनः
त्रयीं विद्यां ब्रह्मचर्यं प्रसूतिं श्राद्धमेव च। यज्ञं चैव तु दानं च एषामेव तु कुर्वताम् ॥
स हि स्म विरजा भूत्वा वसतेऽन्यप्रशंसया ॥ २८ ॥
स एवं श्लोकमुक्त्वातु जयान्देवानथाब्रवीत्। वैवस्वतेऽन्तरेऽतीते मत्समीपमिहेष्यथ
ततो यूयं मयासार्धंसिद्धिंप्राप्स्यथशाश्वतीम्। एवमुक्त्वा तु तान्ब्रह्मातत्रैवान्तरधीयत
ततो देवास्तिरोभूत ईश्वरे ह्यकुतोभयाः। प्रपन्ना अणिमाद्यैश्च युक्ता योगबलान्विताः
ततस्तेषांतुयास्तन्वस्ताऽभवन्द्वादशहृदाः। जयाइतिसमाख्याताजाताश्चोदधिसंनिभाः
ततःस्वायंभुवे तस्मिन्सर्गेतेजज्ञिरे सुराः। अजितायां रुचेःपुत्रा अजिताद्वादशात्मकाः
विधिश्चमुनयश्चैवक्षेमोनन्दोऽव्ययस्तथा। प्राणोऽपानःसुधामाचक्रतुशक्तिव्यवस्थिताः
इत्येते मानसाः सर्वे अजिता द्वादश स्मृताः ॥ ३५ ॥
ते च यज्ञे सुरैःसार्धं यज्ञभाजस्तदास्मृताः। स्वायंभुवेऽन्तरेपूर्वंततः स्वारोचिषे पुनः
तुषितानामतेह्यासन्प्राणाख्यायज्ञियाःसुराः। पुनस्तेतुषितादेवाउत्तमे त्वन्तरे स्वयम्
तुषितायां समुत्पन्नाः पुनः पुत्राः स्वरोचिषः ॥ ३६ ॥
उत्तमस्यतुतेपुत्राःसत्यायांजज्ञिरेशुभाः। ततः सत्याः स्मृता देवा उत्तमे चान्तरे तदा
अभवन्यज्ञभाजस्ते तृतीये द्वापरान्तरे। ते तु सत्याः पुनर्देवाः संप्राप्ते तामसेऽन्तरे
हर्या ये तमसः पुत्रा जज्ञिरे द्वादशैव तु। हरयो नाम ते देवा यज्ञभाजस्तथाऽभवन् ॥
ततस्ते हरयो देवाः प्राप्तेचारिष्णवेऽन्तरे। वैकुण्ठायांततस्ते वै चरिष्णोर्जज्ञिरेसुराः
वैकुण्ठा नाम ते देवाः पञ्चमस्यान्तरे मनोः ॥ ४० ॥
ततस्ते वै पुनर्देवा वैकुण्ठाः प्राप्य चाक्षुषम्। साध्यायां द्वादश सुताजज्ञिरेधर्मसूनवः
ततस्ते वै पुनः साध्याः संक्षीणे चाक्षुषेऽन्तरे। उपस्थिते मनोः सर्गेपुनर्वैवस्वतस्यह
आद्येत्रेतायुगमुखेप्राप्तेवैवस्वतस्य तु। अंशेनसाध्यास्तेऽदित्यांमारीचात्कश्यपात्पुनः

जज्ञिरे द्वादशाऽऽदित्या वर्तमानेऽन्तरे पुनः । यदात्वेतेसमुत्पन्नाश्चाक्षुषस्यान्तरेमनोः
ततः स्वायंभुवे साध्याजज्ञिरे द्वादशामराः । एवमाद्याजयास्ते वै शापात्समभवंस्तदा
य इमां सप्तसंभूतिं देवानां देवशासनात् । पठेद्यः श्रद्धया युक्तः प्रत्यवायं न गच्छति
इत्येता भूतयः सप्त जयानां सप्तलक्षणाः । परिक्रान्तामयाचाद्य किं भूयःश्रोतुमिच्छथ

ऋषय ऊचुः

दैत्यानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् । सर्पभूतपिशाचानां पशूनांपक्षिवीरुधाम्
उत्पत्तिं निधनं चैव विस्तरात्कथयस्व नः ॥ ४८ ॥
एवमुक्तस्तदा सूत उवाच ऋषिसत्तमान् । दितेः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम्
कश्यपस्याऽऽत्मजौ तौ वै सर्वेभ्यः पूर्वजौ स्मृतौ ।
सौत्येऽहन्यतिरात्रस्य कश्यपस्याऽऽश्वमेधिके ॥ ५० ॥
हिरण्यकशिपुर्नामप्रथमंह्यृत्विगासनम् । दित्यागर्भाद्विनिःसृत्यतत्राऽऽसीनोच्चसंसदि
हिरण्यकशिपुस्तस्मात्कर्मणा तेन स स्मृतः ॥ ५१ ॥

ऋषय ऊचुः

हिरण्यकशिपोर्नाम जन्म चैव महात्मनः । प्रभावं चैव दैत्यस्यविस्तराद्ब्रूहिनःप्रभो

सूत उवाच

कश्यपस्याश्वमेधोऽभूत्पुण्यो वै पुष्करे पुरा । ऋषिभिर्देवताभिश्चगन्धर्वैरुपशोभितः
उत्कृष्टेनैव विधिनाआख्यानादौयथाविधि । आसनान्युपक्लृप्तानिकाञ्चनानितुपञ्चवै
कुशपूतानि त्रीण्यत्र कूर्चः फलकमेव च । मुख्यर्त्विजश्च चत्वारस्तेषां तान्युकल्पयेत्
शुभं तत्राऽऽसनं यत्तु होतुरर्थे प्रकल्पितम् ।
हिरण्मयं तथा दिव्यं दिव्यास्तरणसंस्तृतम् ॥ ५६ ॥
अन्तर्वत्नी दितिश्चैव पत्नीत्वं समुपागता । दश वर्षसहस्राणि गर्भस्तस्या अवर्तत ॥
स तु गर्भो विनिःसृत्य मातुर्वै उदरात्तदा । उपक्लृप्तासनं यत्तु होतुरर्थे हिरण्मयम्
निषसाद स गर्भोऽत्र तत्राऽऽसीनः शशंस च ॥ ५८ ॥
आख्यानपञ्चमान्वेदान्महर्षिःकाश्यपो यथा । तं दृष्टामुनयस्तस्यनामाकुर्वंस्तुतद्विधम्

हिरण्यकशिपुस्तस्मात्कर्मणातेनविश्रुतः। हिरण्याक्षोऽनुजस्तस्यसिंहिकातस्यचानुजा
राहोः सा जननी देवी विप्रचित्तेः परिग्रहः ॥ ६० ॥
हिरण्यकशिपुर्दैत्यश्चचार परमं तपः । शतं वर्षसहस्राणां निराहारो ह्यधःशिराः ॥६१
तं ब्रह्मा छन्दयामास दैत्यं तुष्टो वरेण तु । सर्वामरत्वं विप्रेशाः सर्वभूतेभ्य एव च
योगाद्देवान्विनिर्जित्य सर्वदेवत्वमास्थितः ॥ ६२ ॥
दानवाश्चासुराश्चैव देवाः समा भवन्तु वै । मारुतेर्यन्महैश्वर्यमेष मे दीयतां वरः ॥
एवमुक्तोऽथब्रह्मा तु तस्मैदत्त्वायथेप्सितम् । दत्त्वातस्मैवरान्दिव्यांस्तत्रैवान्तरधीयत
हिरण्यकशिपुर्दैत्यः श्लोकैर्गीतः पुरातनैः ॥ ६४ ॥
राजा हिरण्यकशिपुर्यांयामाशां निषेवते । तस्यै तस्यै दिशे देवा नमश्चक्रुर्महर्षिभिः
एवं प्रभावो दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुर्द्विजाः।
तस्याऽऽसीन्नरसिंहःस विष्णुर्मृत्युः पुराकिल ॥
नखैस्तु तेन निर्भिन्नानार्द्रशुष्का नखाः स्मृताः ॥ ६६ ॥
हिरण्याक्षसुताः पञ्च विक्रान्ताः सुमहाबलाः । उत्कुरः शकुनिश्चैवकालनाभस्तथैवच
महानाभश्च विक्रान्तो भूतसंतापनस्तथा । हिरण्याक्षसुता ह्येते देवैरपि दुरासदाः ॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्चबाडेयः स गणः स्मृतः । शतंतानिसहस्राणिनिहतास्तारकामये
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारस्तु महाबलाः । प्रह्लादः पूर्वजस्तेषामनुह्लादस्तथैव च ॥
संह्लादश्च ह्लदश्चैव ह्लदपुत्रान्निबोधत ॥ ७० ॥
ह्लादो निसुन्दश्च तथा ह्लदपुत्रौ बभूवतुः । सुन्दोपसुन्दौ विक्रान्तौ निसुन्दतनयावुभौ
ब्रह्मघ्नस्तु महावीर्यो मूकस्तु ह्लददायिनः । मारीचः सुन्दपुत्रस्तु ताडकामुपपद्यते ॥
ताडका निहता साऽथराघवेण बलीयसा । मूकोविनिहतश्चापिकिरातेसव्यसाचिना
उत्पन्नामहताचैवतपसाभाविताःस्वयम् । तिस्रःकोट्यस्तुतेषांवै मणिवर्तनिवासिनाम्
अवध्या देवतानां वै निहताः सव्यसाचिना ॥ ७४ ॥
अनुह्लादसुतो वायुः सिनीवाली तथैव च । तेषां तु शतसाहस्रो गणोहालाहलःस्मृतः
विरोचनस्तु प्राह्लादिः पञ्च तस्याऽऽत्मजाः स्मृताः ।

गवेष्ठी कालनेमिश्च जम्भो वाष्कल एव च ॥
शंभुस्तु अनुजस्तेषां स्मृताः प्रह्लादसूनवः ॥ ७६ ॥

यथाप्रधानंवक्ष्यामितेषांपुत्रान्दुरासदान् । शुम्भश्चैवनिशुम्भश्च विष्वक्सेनोमहौजसः
गवेष्ठिनः सुता ह्येते जम्भस्य शतदुन्दुभिः । तथा दक्षश्च खण्डश्च चत्वारोजम्भसूनवः
विरोधश्च मनुश्चैव वृक्षायुः कुशलीमुखः । वाष्कलस्य सुता ह्येतेकालनेमिसुताञ्शृणु
ब्रह्मजित्क्षत्रजिच्चैव देवान्तकनरान्तकौ । कालनेमिसुता ह्येते शंभोस्तु शृणुतप्रजाः
धनुको ह्यसिलोमाच नावलश्चसगोमुखः । गवाक्षश्चैवगोमांश्चशंभोपुत्राःप्रकीर्तिताः
विरोचनस्य पुत्रस्तु वलिरेकः प्रतापवान् । बले पुत्रशतं जज्ञे राजानः सर्व एव ते ॥
तेषां प्रधानाश्चत्वारो विक्रान्ताः सुमहाबलाः । सहस्रबाहुर्ज्येष्ठस्तुवाणोद्रविणसंमतः
कुम्भनाभो गर्दभाक्षः कुशिरित्येवमादयः ॥ ८३ ॥

शकुनी पूतना चैव कन्ये द्वे तु वलेः सुते । वलेः पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथसहस्रशः
वलियों नामविख्यातो गणो विक्रान्तपौरुषः । वाणस्य चेन्द्रमनसोलौहित्यमुपपद्यते
दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामासकश्यपम् । स कश्यपःप्रसन्नात्मासम्यगाराधितस्तया
वरेण च्छन्दयामास सा च वव्रे वरं ततः । स तु तस्यै वरं प्रादात्प्रार्थितंभगवान्प्रभुः
किमिच्छसीति चाप्युग्रो मारीचस्तामभाषत ॥ ८७ ॥

मारीचं कश्यपं तुष्टं भर्तारं प्राञ्जलिस्तथा । हतपुत्राऽस्मिभगवन्नादित्यैस्तवसूनुभिः
शक्रहन्तारमिच्छेयं पुत्रं दीर्घतपोन्वितम् । अहं तपश्चरिष्यामि गर्भमाधातुमर्हसि ॥
तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वामारीचः कश्यपस्तथा । प्रत्युवाच महातेजा दितिंपरमदुःखिताम्
एवं भवतु भद्रं ते शुचिर्भव तपोधने । जनयिष्याति सत्पुत्रं शक्रहन्तारमाहवे ॥९१॥
पूर्णं वर्षशतं तावच्छुचिर्यदि भविष्यसि । पुत्रं त्रिलोकप्रवरमथ त्वं जनयिष्यसि ॥
एवमुक्त्वा महातेजास्तया समवसत्प्रभुः । तामालिङ्गय त्रिभुवनं जगामभगवानृषिः
गते भर्तरि सा देवी दितिः परमहर्षिता । कुशलं वनमासाद्य तपस्तेपे सुदारुणम् ॥
तपस्तस्यां तु कुर्वत्यां परिचर्यां चकार ह । सहस्राक्षः सुरश्रेष्ठः परया गुणसंपदा ॥
अग्निं समित्कुशं काष्ठं फलं मूलं तथैव च । न्यवेदयत्सहस्राक्षो यच्चान्यदपिकिंचन

गात्रसंवाहनैश्चैव श्रमापनयनैस्तथा। शक्रः सर्वेषु लोकेषु दितिं परिचचारह ॥
एवमाराधिता शक्रमुवाचाथ दितिस्तथा ॥ ९७ ॥

दितिरुवाच

प्रीता तेऽहं सुरश्रेष्ठ ! दश वर्षाणि पुत्रक। अवविष्टानि भद्रं ते भ्रातरं द्रक्ष्यते ततः ॥
जयलिप्सुं समाधास्ये लब्ध्वाऽहं तादृशं सुतम्।
त्रैलोक्यविजयं पुत्र! प्राप्स्यामि सह तेन वै ॥ ९९ ॥

एवमुक्त्वा दितिःशक्रंमध्यंप्राप्ते दिवाकरे। निद्रयाऽपहृतादेवीजान्वोःकृत्वाशिरस्तदा
दृष्ट्वा तामशुचिं शक्रः पादयोर्गतमूर्धजाम्। तस्यास्तदन्तरं लब्ध्वाजहास च मुमोद च
तस्याः शरीरं विवृतं विवेशाथ पुरंदरः। प्रविश्य चामितं दृष्ट्वा गर्भमिन्द्रो महौजसम्
अभिनत्सप्तधा तं तु कुलिशेन महायशाः ॥ १०२ ॥

भिद्यमानस्तदा गर्भो वज्रेण शतपर्वणा। रुरोद सस्वरं भीमं वेपमानः पुनः पुनः ॥
मा रोदीरिति तं गर्भं शक्रः पुनरभाषत ॥ १०३ ॥

तं गर्भं सप्तधा कृत्वा ह्येकैकं सप्तधा पुनः। कुलिशेन विभेदेन्द्रस्ततो दितिरबुध्यत ॥
न हन्तव्यो न हन्तव्य इत्येवं दितिरब्रवीत्। निष्पपातोदराद्वज्री मातुर्वचनगौरवात्
प्राञ्जलिर्वज्रसहितो दितिं शक्रोऽभ्यभाषत ॥ १०५ ॥

अशुचिर्देवि सुप्ताऽसि पादयोर्गतमूर्धजा। तदन्तरमहं लब्ध्वा शक्रहन्तारमाहवे ॥
भिन्नवान्गर्भमेतं ते बहुधा क्षन्तुमर्हसि ॥ १०६ ॥

तस्मिंस्तु विफले गर्भेदितिःपरमदुःखिता। सहस्राक्षंततोवाक्यं सा सानुनयमब्रवीत्
ममापराधाद्गर्भोऽयं यदि ते विफलीकृतः। नापराधोऽस्ति देवेश ऋषिपुत्र महाबल
शत्रोर्वधे न दोषोऽस्ति तेन त्वां न शपामि भोः।
प्रियं तु कर्तुमिच्छामि श्रेयो गर्भस्य मे कुरु ॥ १०९ ॥

भवन्तु मम पुत्राणांसप्तस्थानानि वै दिवि। वातस्कन्धानिमान्सप्तचरन्तुममपुत्रकाः
मरुतश्चेति विख्याता गणास्ते सप्त सप्तकाः ॥ ११० ॥

पृथिव्यां प्रथमस्कन्धोद्वितीयश्चैवभास्करे। सोमे तृतीयोविज्ञे यश्चतुर्थोज्योतिषांगणे

ग्रहेषु पञ्चमश्चैव षष्ठः सप्तर्षिमण्डले । ध्रुवेतु सप्तमश्चैव वातस्कन्धः परस्तु सः ॥

तानेते विचरन्त्वद्य कालेकाले ममाऽऽत्मजाः ।
वातस्कन्धानिमान्भूत्वाचरन्तु मम पुत्रकाः ॥ ११३ ॥

पृथिव्यां प्रथमस्कन्ध आमेघेभ्यो य आवहः । चरन्तु मम पुत्रास्ते सप्तमे प्रथमे गणे
द्वितीयश्चापि मेध्येभ्यआसूर्यात्प्रवहस्तु यः । वातस्कन्धंद्वितीयं तु द्वितीयश्चरतांगणः
सूर्योर्ध्वं तु ततःसोमादुद्वहोयस्तु वै स्मृतः । वातस्कन्धं तु तं प्राहुस्तृतीयश्चरतांगणः
सोमादूर्ध्वं तथर्क्षेभ्यश्चतुर्थः सुवहस्तु यः । चतुर्थो मम पुत्राणां गणस्तु चरतां विभो

यक्षेभ्यश्च तथैवोर्ध्वमाग्रहाद्विवहस्तु यः ।
पञ्चमं पञ्चमः सौम्यः स्कन्धस्तु चरतां गणः ॥ ११८ ॥

ऊर्ध्वं ग्रहादृषिभ्यस्तु षष्ठो यो वै पराहतः । चरन्तु मम पुत्रास्तु तत्र षष्ठे गणे तु ये
सप्तर्षयस्तथैवोर्ध्वमाध्रुवात्सप्तमस्तु यः । वातस्कन्धः परिवहस्तत्र तिष्ठन्तु मे सुताः
एतत्सर्वं चरन्त्येतेकालेकालेममात्मजाः । त्वत्कृतेन च नाम्ना वै भवन्तुमरुतस्त्विमे
ततस्तेषां तु नामानि मातापुत्रौ प्रचक्रतुः । तत्कृते कर्मभिश्चैव मरुतो वै पृथक्पृथक्

सत्त्वज्योतिस्तथाऽऽदित्यः सत्यज्योतिस्तथाऽपरः ।
तिर्यग्ज्योतिश्च सज्योतिर्ज्योतिष्मानपरस्तथा ॥ १२३ ॥

प्रथमस्तु गणःप्रोक्तोद्वितीयं मे निबोधत । ऋतजित्सत्यजिच्चैव सुषेणःसेनजित्तथा
सत्यमित्रोऽभिमित्रश्च हरिमित्रस्तथाऽपरः । गण एष द्वितीयस्तु तृतीयं मे निबोधत
ऋतः सत्यो ध्रुवोधर्ताविधर्ताऽथविधारयः । ध्वान्तश्चैवधुनिश्चैवह्युग्रोभीमस्तथैवच

अभियुः साक्षिपश्चैवमाह्वयश्च गणः स्मृतः ॥ १२६ ॥

ईदृक्चैव तथाऽन्यादृग्यादृक्चप्रतिकृत्तथा । ऋक्तथा समितिश्चैवसंरम्भश्चतथागणः
ईदृक्च पुरुषश्चैव अन्यादृक्षाच्च चेतसः । समितासमिदृक्षाच्च प्रतिदृक्षाच्च वै गणाः
मरुतिद्रसरतश्चैव तथादेवोदिशोऽपरः । यजुश्चैवानुदृक्सामस्तथाऽन्योमानुषीविशः

दैत्या देवाः समाख्याताः सप्तैते सप्तका गणाः ॥ १२६ ॥

एते ह्येकोनपञ्चाशन्मरुतोनामतःस्मृताः । प्रसंख्यातास्तथाताभ्यांदित्याचेन्द्रेणचैवहि

कृत्वा तेषां तु नामानि दितिरिन्द्रमुवाच ह। वातस्कन्धं चरन्त्वेतेममपुत्राश्चपुत्रक
विचरन्तु च भद्रं ते देवैः सह ममाऽऽत्मजाः ॥ १३१ ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सहस्राक्षः पुरंदरः। उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा मातर्भवतु तत्तथा ॥
सर्वमेतद्यथोक्तं ते भविष्यति न संशयः। देवभूता महात्मानः कुमारा देवसंमताः ॥
देवैः सह भविष्यन्ति यज्ञभाजस्तवाऽऽत्मजाः ॥ १३३ ॥
तस्मात्ते मरुतो देवाःसर्वेचेन्द्रानुजामराः। विज्ञेयाश्चामराःसर्वेदितिपुत्रास्तपस्विनः
एवं तौ निश्चयं कृत्वामातापुत्रौतपोधनौ। जग्मतुस्त्रिदिवं हृष्टौशक्रोऽपित्रिदिवंगतः
मरुतां हि शुभं जन्म श्रृणुयाद्यः पठेत वा। नावृष्टिभयमाप्नोति बह्वायुश्च भवत्युत
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे कश्यपीयप्रजासर्गो नाम
सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

दनुवंशवर्णनम्

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दनुपुत्रान्निबोधत। अभवन्दनुपुत्रास्तु वंशे ख्याता महासुराः
विप्रचित्तिप्रधानास्ते शतं तीव्रपराक्रमाः। सर्वे लब्धवराश्चैव सुतप्ततपसस्तथा ॥
सत्यसंधाः पराक्रान्ताः क्रूरा मायाविनश्च ते।
महाबला अयज्वानो ह्यब्रह्मण्याश्च दानवाः ॥
कीर्त्यमानान्मया सर्वान्प्राधान्येन निबोधत ॥ ३ ॥
द्विमूर्धा शङ्कुकर्णश्च तथा शङ्कुनिरामयः। शङ्कुकर्णौ महाविश्वो गवेष्ठिर्दुन्दुभिस्तथा
अजामुखोऽथभगवाञ्शिलो वामनसस्तथा। मरीचिरक्षकश्चैवमहागार्ग्योऽङ्गिरावृतः
विक्षोभ्यश्च सुकेतुश्च सुवीर्यः सुहृदस्तथा। इन्द्रजिद्विश्वजिच्चैव तथा सुरविमर्दनः

एकचक्रः सुवाहश्च तारकश्च महावलः। वैश्वानरः पुलोमा च प्रवीणोऽथमहाशिराः
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च मुण्डकश्च महासुरः। धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्र इन्द्रश्च तापिनः
सूक्ष्मश्चैव निचन्द्रश्च ऊर्णनाभो महागिरिः। असिलोमासुकेशश्चसदश्चवलकोदश
तथा गगनमूर्धा च कुम्भनाभो महोदरः। प्रमोदाहश्च कुपथो हयग्रीवश्च वीर्यवान
असुरश्च विरूपाक्षः सुपथोऽथ महासुरः। अजो हिरण्मयश्चैव शतमायुश्च शम्बरः
शरभः शलभश्चैव सूर्याचन्द्रमसावुभौ। असुराणां सुरावेतौ सुराणां सांप्रताविमौ
इति पुत्रा दनोर्वंशे प्रधानाः परिकीर्तिताः। तेषामपरिसंख्येयं पुत्रपौत्राद्यनन्तकम्॥

इत्येते त्वसुराः प्रोक्ता दैतेया दानवाश्च ये।
स्वर्भानुस्तु स्मृतो दैत्यो ह्यनुभानुर्दनोः सुतः॥
इमे तु वंशानुगता दनोः पुत्रास्तु ये स्मृताः॥ १४॥

एकाक्ष ऋषभोऽरिष्टः प्रलम्बनरकावपि। इन्द्रबाधनकेशी च मेरुः शंवोऽथ धेनुकः॥
गवेष्ठिश्च गवाक्षश्च तालकेतुश्च वीर्यवान्। एतेमनुष्यधर्मास्तु दनोःपुत्रामयास्मृताः
दैत्यदानवसंघर्षे जाताभीमपराक्रमाः। सिंहिकायामथोत्पन्नाविप्रचित्तिसुतास्त्विमे
सैंहिकेया इति ख्यातश्चतुर्दश महासुराः। शतगालश्च वलवान्न्यासःशाम्वस्तथैवव
अनुलोमः शुचिश्चैव वातापिश्चसितांशुकः। हरकल्पःकालनाभोभौमश्चनरकस्तथा
राहुर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै चन्द्रसूर्यप्रमर्दनः। इत्येते सिंहिकापुत्रा देवैरपि दुरासदाः॥
दारुणाभिजनाः क्रूराः सर्वेब्रह्मद्विषश्च ते। दशान्यानिसहस्राणिसैंहिकेयोगणःस्मृतः
निहतो जामदग्न्येनभार्गवेणवलीयसा। स्वर्भानोस्तु प्रभाकन्यापुलोम्नोऽथशचीसुता
उपदानवीयमस्यापि शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। पुलोमा कालिमा चैव वैश्वानरसुते उभे
प्रभाया नहुषः पुत्रो जयन्तश्च शचीसुतः। पुरुं जज्ञेऽथ शर्मिष्ठा दुष्यन्तमुपदानवी
वैश्वानरसुते ह्येते पुलोमाकालिके उभे। उभे ह्यपि तु ते कन्ये मारीचस्य परिग्रहे॥
ताभ्यां पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवपुङ्गवाः। चतुर्दश तथाऽन्यानि हिरण्यपुरवासिनाम्
पौलोमाःकालकेयाश्चदानवाःसुमहावलाः। अवध्यादेवतानां ते निहताःसव्यसाचिना
मयस्य जाता ये पुत्राः सर्वे वीरपराक्रमाः। मायावी दुन्दुभिश्चैववृषश्चमहिषस्तथा

वालिको वज्रकर्णश्च कन्या मन्दोदरी तथा । दैत्यानांदानवानां च सर्गएषप्रकीर्तितः
दनायुषायाः पुत्रास्तु स्मृताःपञ्चमहाबलाः । अरूरुर्बलिजन्मौ च विरक्षश्चविषस्तथा
अरूरोस्तनयः क्रूरो धुन्धुर्नाम महासुरः । निहतः कुवलाश्वेन उत्तङ्कवचनात्किल ॥
बलेः पुत्रौ महावीर्यौतेजसाऽप्रतिमावुभौ । कुम्भिलश्चक्रवर्मा च स कर्णःपूर्वजन्मनि
विरक्षस्यापिपुत्रौ द्वौ कामकश्चवरश्च तौ । विषस्यत्वभवन्पुत्राश्चत्वारःक्रूरकर्मिणः
श्राद्धहा यज्ञहा चैव ब्रह्महा पशुहा तथा ॥ ३३ ॥
क्रान्ता दनायुषापुत्रा वृत्रस्यापि निबोधत । जज्ञिरेश्वसनाद्घोराद्वृत्रस्येन्द्रेणयुध्यतः
भर्तारो मनसाख्यातारा क्षसाःसुमहाबलाः । शतं तानिसहस्राणिमहेन्द्रानुचराःस्मृताः
सर्वेब्रह्मविदःसौम्याधार्मिकाःसूक्ष्ममूर्तयः । प्रजास्वन्तर्गताःसर्वेनिवसन्तिसुधार्मिकाः
दैत्यानां दानवानां च सर्ग एष प्रकीर्तितः । प्रवाह्यजनयत्पुत्रान्यज्ञे वै गायनोत्तमान्
सत्वनः सत्त्वात्मकश्चैवकलापश्चैववीर्यवान् । कृतवीर्योब्रह्मचारीसुपाण्डुश्चैवसप्तमः
पनश्चैव तरण्यश्च सुचन्द्रो दशमस्तथा । इत्येते देवगन्धर्वा विज्ञेयाः परिकीर्तिताः

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे कश्यपीयप्रजासर्गो नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

नवषष्टितमोऽध्यायः

मौनेयाख्यदेवगन्धर्वादीनां निरूपणम्

सूत उवाच

गन्धर्वाप्सरसः पुण्या मौनेयाः परिकीर्तिताः । चित्रसेनोग्रसेनश्चऊर्णायुरनघस्तथा
धृतराष्ट्रः पुलोमाच सूर्यवर्चास्तथैव च । युगपत्तृणपत्कालिदितिश्चित्ररथस्तथा ॥२॥
त्रयोदशो भ्रमिशिराः पर्जन्यश्च चतुर्दशः । कलिः पञ्चदशश्चैव नारदश्चैव षोडशः
इत्येते देवगन्धर्वा मौनेयाः परिकीर्तिताः ॥ ३ ॥

चतुस्त्रिंशद्यवीयस्यस्तेषामप्सरसः शुभाः। अन्तरा दारवत्या च प्रियमुख्यासुरोत्तमा
मिश्रकेशी तथा चाशी पर्णिनी वाऽप्यलम्बुषा।
मारीची पुत्रिका चैव विद्युद्वर्णा तिलोत्तमा ॥ ५ ॥
अद्रिका लक्षणा चैव देवी रम्भा मनोरमा। सुवरा च सुबाहुश्च पुर्णितासुप्रतिष्ठिता
पुण्डरीका सुगन्धा च सुदन्ता सुरसा तथा। हेमा शारद्वती चैवसुवृत्ताकमलाचया
सुभुजाहंसपादाचलौकिक्योऽप्सरसस्तथा। गन्धर्वाप्सरसोह्येतामौनेयाःपरिकीर्तिताः
गन्धर्वाणां दुहितरो मया याः परिकीर्तिताः।
तासां नामानि सर्वासां कीर्त्यमानानि मे शृणु ॥ ६ ॥
सुयशा प्रथमा तासां गान्धर्वी तदनन्तरम्। विद्यावतीचारुमुखी सुमुखी च वरानना
तत्रेमे सुयशापुत्रा महाबलपराक्रमाः। प्रचेतसः सुता यक्षास्तेषां नामानि मे शृणु॥
कम्बलो हरिकेशश्च कपिलः काञ्चनस्तथा। मेघमाली तु यक्षाणां गण एष उदाहृतः
सुयशाया दुहितरश्चतस्रोऽप्सरसःस्मृताः। तासांनामानि वै सम्यग्ब्रुवतोमेनिबोधत
लोहेयी त्वभवज्ज्येष्ठा भरता तदनन्तरम्। कृशाङ्गी च विशाला च रूपेणाप्रतिमातथा
ताभ्योऽपरैयक्षगणाश्चत्वारःपरिकीर्तिताः। उत्पादिता विशालेनविक्रान्तेनमहात्मना
लोहेया भरतेयाश्च कृशाङ्गेयाश्च विश्रुताः। विशालेयाश्च यक्षाणांपुराणे प्रथितागणाः
इत्येतैरसुरैर्घोरैर्महाबलपराक्रमैः। नैकैर्यक्षगणैर्व्याप्ता लोका लोकविदां वराः ॥ १७॥
गन्धर्वाश्चाथ वालेयाविक्रान्तेनमहात्मना। उत्पादिता महावीर्यामहागन्धर्वनायकाः
विक्रमौदार्यसंपन्ना महाबलपराक्रमाः। तेषां नामानि वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः॥
चित्राङ्गदो महावीर्यश्चित्रवर्मा तथैव च। चित्रकेतुर्महाभागः सोमदत्तोऽथ वीर्यवान्
तिस्रो दुहितरश्चैव तासां नामानि वक्ष्यते (मे शृणु) ॥ २० ॥
प्रथमा त्वग्निका नाम कम्बला तदनन्तरम्। तथा वसुमती नाम रूपेणाप्रतिमौजसः
ताभ्यः परे कुमारेण गणा उत्पादितास्त्विमे।
त्रयो गन्धर्वमुख्यानां(णां) विक्रान्ता युद्धदुर्मदाः ॥ २२ ॥
आग्नेयाः काम्बलेयाश्च तथा वसुमतीसुताः। तैर्पपौत्रैर्विवैर्व्याप्तमिमंलोकंचराचरम्

विद्यावन्तश्च तेनैव विक्रान्तेन महात्मना । उत्पादिता महाभागा रूपविद्याधनेश्वराः
तेषामुदीर्णवीर्याणांगन्धर्वाणांमहात्मनाम् । नामानिकीर्त्यमानानिशृणुध्वंमेविचक्षतः
हिरण्यरोमा कपिलः सुलोमामागधस्तथा । चन्द्रकेतुश्च वै गाङ्गोगोदश्चैवमहाबलः
महाविद्यावदातानांविक्रान्तानांतपस्विनाम् । इत्येवमादिर्हिगणो द्वे चान्येचसुलोचने
शिवा च सुमनाश्चैव ताभ्यामपिमहात्मना । उत्पादिताविश्रवसाविद्याचरणगोचराः
शैवेयाश्चैव विक्रान्तास्तथासौमनसा गणाः । एतैर्व्याप्तमिमंलोकंविद्याधरगणैस्त्रिभिः
एभ्योऽनेकानिजातानिअम्बरान्तरचारिणाम् ।लोकेगणशतान्येवविद्याधरविचेष्टितात्
अश्वमुख्याश्च तेनैव विक्रान्तेनमहात्मना । उत्पादिताह्यश्वमुखाःकिंनरांस्तान्निबोधत
समुद्रसेनः कालिन्दो महानेत्रो महाबलः । सुवर्णघोषः सुग्रीवो महाघोषश्च वीर्यवान्
इत्येवमादिर्हि गणः किंनराणांमहात्मनाम् । हयाननानांविद्वद्भिर्विस्तीर्णःपरिकीर्त्यते
तथा समुत्थितेनैव विक्रान्तेन महात्मना । उत्पादिता नरमुखाःकिंनराःशांशपायनाः
हरिषेणः सुषेणश्च वारिषेणश्च वीर्यवान् । रुद्रदत्तेन्द्रदत्तौ च चन्द्रद्रुममहाद्रुमौ ॥
विन्दुश्च विन्दुसारश्च चन्द्रवंशाश्च किंनराः ।
इत्येते किंनराः श्रेष्ठा लोके ख्याताः सुशोभनाः ॥ ३६ ॥
नृत्यगीतप्रगल्भानामेतेषां द्विजसत्तमाः । लोके गणशतान्येव किंनराणां महात्मनाम्
यक्षा यक्षोपशान्तश्च लौहेया रूपशालिनी । दुहिता सुरविन्देति प्रकाशासिद्धसंमता
उपायाकेतनस्याहि स्वयमुत्पादितो गणः । करालकेन भूतानां तेषांनामानि मे शृणु
भूता भूतगणैर्ज्ञेया आवेशकनिवेशकाः । सुतारः कालभवनानिर्देशकविदेशकाः ॥
इत्येवमादिर्हि गणो भूमिगोजरकः स्मृतः ॥ ४० ॥
विज्ञेय इह लोकेऽस्मिन्भूतानांभूतनायकः । ये तूत्कृष्टाभवन्त्येषामम्बरान्तरचारिणाम्
वृक्षाग्रमात्रमाकाशं ते चरन्ति न संशयः ॥ ४१ ॥
तत्रेमे देवगन्धर्वाः प्रायेण कथिता मया । देवोपस्थाननिरता विज्ञेयास्तेयशस्विनः
नारायणं सुरगुरुं विरजं पुष्करेक्षणम् । हिरण्यगर्भं च तथा चतुर्वक्त्रं स्वयंभुवम् ॥
शंकरं च महादेवमीशानं च जगत्प्रभुम् । इन्द्रपूर्वांस्तथाऽऽदित्यान्रुद्रांश्चवसुभिःसह

चतुस्त्रिंशद्यवीयस्यस्तेषामप्सरसः शुभाः। अन्तरा दारवत्या च प्रियमुख्यासुरोत्तमा।

मिश्रकेशी तथा चाशी पर्णिनी वाऽप्यलम्बुषा।

मारीची पुत्रिका चैव विद्युद्वर्णा तिलोत्तमा ॥ ५ ॥

अद्रिका लक्षणा चैव देवी रम्भा मनोरमा। सुवरा च सुबाहुश्च पुर्णितासुप्रतिष्ठिता।

पुण्डरीका सुगन्धा च सुदन्ता सुरसा तथा। हेमा शारद्वती चैवसुवृत्ताकमलाचया।

सुभुजाहंसपादाचलौकिक्योऽप्सरसस्तथा। गन्धर्वाप्सरसोह्येतामौनेयाःपरिकीर्तिताः।

गन्धर्वाणां दुहितरो मया याः परिकीर्तिताः।

तासां नामानि सर्वासां कीर्त्यमानानि मे शृणु ॥ ६ ॥

सुयशा प्रथमा तासां गान्धर्वी तदनन्तरम्। विद्यावतीचारुमुखी सुमुखी च वरानना।

तत्रेमे सुयशापुत्रा महाबलपराक्रमाः। प्रचेतसः सुता यक्षास्तेषां नामानि मे शृणु।

कम्बलो हरिकेशश्च कपिलः काञ्चनस्तथा। मेघमाली तु यक्षाणां गण एष उदाहृतः।

सुयशाया दुहितरश्चतस्रोऽप्सरसःस्मृताः। तासांनामानि वै सम्यग्ब्रुवतोमेनिबोधत।

लोहेयी त्वभवज्ज्येष्ठा भरता तदनन्तरम्। कृशाङ्गी च विशाला च रूपेणाप्रतिमातथा।

ताभ्योऽपरेयक्षगणाश्चत्वारःपरिकीर्तिताः। उत्पादिता विशालेनविक्रान्तेनमहात्मना।

लोहेया भरतेयाश्च कृशाङ्गेयाश्च विश्रुताः। विशालेयाश्च यक्षाणांपुराणे प्रथितागणाः।

इत्येतैरसुरैर्घोरैर्महाबलपराक्रमैः। नैकैर्यक्षगणैर्व्याप्ता लोका लोकविदां वराः ॥ १७॥

गन्धर्वाश्चाथ वालेयाविक्रान्तेनमहात्मना। उत्पादिता महावीर्यामहागन्धर्वनायकाः।

विक्रमौदार्यसंपन्ना महाबलपराक्रमाः। तेषां नामानि वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः॥

चित्राङ्गदो महावीर्यश्चित्रवर्मा तथैव च। चित्रकेतुर्महाभागः सोमदत्तोऽथ वीर्यवान्।

तिस्रो दुहितरश्चैव तासां नामानि वक्ष्यते (मे शृणु) ॥ २० ॥

प्रथमा त्वग्निका नाम कम्बला तदनन्तरम्। तथा वसुमती नाम रूपेणाप्रतिमौजसः।

ताभ्यः परे कुमारेण गणा उत्पादितास्त्विमे।

त्रयो गन्धर्वमुख्यानां(णां) विक्रान्ता युद्धदुर्मदाः ॥ २२ ॥

आग्नेयाः काम्बलेयाश्च तथा वसुमतीसुताः। तैर्यपैर्विविधैर्व्याप्तमिमंलोकंचराचरम्

विद्यावन्तश्च तेनैव विक्रान्तेन महात्मना । उत्पादिता महाभागा रूपविद्याधनेश्वराः
तेषामुदीर्णवीर्याणांगन्धर्वाणांमहात्मनाम् । नामानिकीर्त्यमानानिशृणुध्वंमेविवक्षतः
हिरण्यरोमा कपिलः सुलोमामागधस्तथा । चन्द्रकेतुश्च वै गाङ्गोगोदश्चैवमहावलः
महाविद्यावदातानांविक्रान्तानांतपस्विनाम् । इत्येवमादिर्हिगणो द्वे चान्येचसुलोचने
शिवा च सुमनाश्चैव ताभ्यामपिमहात्मना । उत्पादिताविश्रवसाविद्याचरणगोचराः
शैवेयाश्चैव विक्रान्तास्तथासौमनसा गणाः । एतैर्व्याप्तमिमंलोकंविद्याधरगणैस्त्रिभिः
एभ्योऽनेकानिजातानिअम्बरान्तरचारिणाम् ।लोकेगणशतान्येवविद्याधरविचेष्टितात्
अश्वमुख्याश्च तेनैव विक्रान्तेनमहात्मना । उत्पादिताह्यश्वमुखाःकिंनरांस्तान्निबोधत
समुद्रसेनः कालिन्दो महानेत्रो महाबलः । सुवर्णघोषः सुग्रीवो महाघोषश्च वीर्यवान्
इत्येवमादिर्हि गणः किंनराणांमहात्मनाम् । हयाननानांविद्वद्भिर्विस्तीर्णःपरिकीर्त्यते
तथा समुत्थितेनैव विक्रान्तेन महात्मना । उत्पादिता नरमुखाःकिंनराःशांशपायनाः
हरिषेणः सुषेणश्च वारिषेणश्च वीर्यवान् । रुद्रदत्तेन्द्रदत्तौ च चन्द्रद्रुममहाद्रुमौ ॥

विन्दुश्च विन्दुसारश्च चन्द्रवंशाश्च किंनराः ।
इत्येते किंनराः श्रेष्ठा लोके ख्याताः सुशोभनाः ॥ ३६ ॥

नृत्यगीतप्रगल्भानामेतेषां द्विजसत्तमाः । लोके गणशतान्येव किंनराणां महात्मनाम्
यक्षा यक्षोपशान्तश्च लौहेया रूपशालिनी । दुहिता सुरविन्देति प्रकाशासिद्धसंमता
उपायाकेतनस्याहि स्वयमुत्पादितो गणः । करालकेन भूतानां तेषांनामानि मे शृणु
भूता भूतगणैर्ज्ञेया आवेशकनिवेशकाः । सुतारः कालभवनानिर्देशकविदेशकाः ॥

इत्येवमादिर्हि गणो भूमिगोजरकः स्मृतः ॥ ४० ॥

विज्ञेय इह लोकेऽस्मिन्भूतानांभूतनायकः । ये तूत्कृष्टाभवन्त्येषामम्बरान्तरचारिणाम्

वृक्षाग्रमात्रमाकाशं ते चरन्ति न संशयः ॥ ४१ ॥

तत्रेमे देवगन्धर्वाः प्रायेण कथिता मया । देवोपस्थाननिरता विज्ञेयास्तेयशस्विनः
नारायणं सुरगुरुं विरजं पुष्करेक्षणम् । हिरण्यगर्भं च तथा चतुर्वक्त्रं स्वयंभुवम् ॥
शंकरं च महादेवमीशानं च जगत्प्रभुम् । इन्द्रपूर्वांस्तथाऽऽदित्यान्रुद्रांश्चवसुभिःसह

उपतस्थुः सगन्धर्वा नृत्यगीतविशारदाः । त्रिदशाः सर्वलोकस्थानिपुणागीतवादि
हंसो ज्येष्ठः कनिष्ठोऽन्यो मध्यमौ च हहा हुहुः ।
चतुर्थो धिषणश्चैव ततो वासिरुचिस्तथा ॥ ४६ ॥
षष्ठस्तुतुम्बुरुस्तेषांततोविश्वावसुःस्मृतः । इमाश्चाप्सरसोदिव्याविहिताःपुण्यलक्षण
सुषुवेऽष्टौमहाभागा वरिष्ठादेवपूजिताः । अनवद्यामनवशामन्वतां मदनप्रियाम्
अरूपां सुभगां भासीमरिष्टाऽष्टौ व्यजायत ॥ ४८ ॥
मनोवतीसुकेशा च तुम्बुरोस्तुसुतेउभे । पञ्चचूडास्त्विमादिव्यादैविक्योऽप्सरसो
मेनकासहजन्या च पर्णिनीपुञ्जिकस्थला । घृतस्थलाघृताची च विश्वाचीपूर्वचीत्य
प्रम्लोचेत्यभिविख्याताऽनुम्लोचन्ती तथैव च ॥ ५० ॥
अनादिनिधनस्याथ जज्ञे नारायणस्य या । ऊरोः सर्वानवद्याङ्गीउर्वश्येकादशीस्मृ
मेनस्य मेनका कन्या ब्रह्मणो हृष्टचेतसः । सर्वाश्चब्रह्मवादिन्योमहायोगाश्चताःस्मृ
गणअप्सरसांख्यातः पुण्यास्तेवैचतुर्दश । आहूताः शोभयन्तश्च गणा ह्येते चतु
ब्रह्मणो मानसीः कन्याः शोभयन्त्यो मनोः सुताः ।
वेगवन्तस्त्वरिष्टाया ऊर्जायाश्चाग्निसंभवाः ॥ ५४ ॥
आयुष्मत्यश्चसूर्यस्यरश्मिजाताःसुभास्वराः । गर्भस्तेजश्चसोमस्यज्ञेयास्तेकुरवःशुभ
यज्ञोत्पन्नाः शुभा नाम ऋक्सामान्यास्तु वह्नयः ।
वारिजा ह्यमृतोत्पन्ना अमृता नामतः स्मृताः ॥ ५६ ॥
वायूत्पन्नासुदानामभूमिजाताभवास्तु वै । विद्युतश्चरुचोनाममृत्योःकन्याश्चभैरव
शोभयन्त्यश्च कामस्यगणाः प्रोक्ताश्चतुर्दश । सेन्द्रोपेन्द्रैःसुरगणैरूपातिशयनिर्मित
शुभरूपा महाभागा दिव्यानारी तिलोत्तमा । ब्रह्मणश्चाग्निकुण्डाच्चदेवनारीप्रभाव
रूपयौवनसंपन्ना उत्पन्ना लोकविश्रुता ॥ ५९ ॥
वेदीतलसमुत्पन्ना चतुर्वक्त्रस्य धीमतः । नाम्ना वेदवती नाम सुरनारी महाप्रभा
तथा यमस्य दुहिता रूपयौवनशालिनी । वरहेमनिभा हेमा देवनारी सुलोचना
इत्येते बहुसाहस्रं भास्वरा ह्यप्सरोगणाः । देवतानामृषीणां च पत्न्यस्तामातरस्त

सुगन्धाश्चस्वपवर्णाश्चसर्वाश्चाप्सरसःसमाः। संप्रयोगेतुकान्तेनमाद्यन्तिमदिरांविना
तासामाप्यायते स्पर्शादानन्दश्च विवर्धते ॥ ६३ ॥
पर्वते नारदे पूर्वं रेतः स्कन्नं प्रजापतेः। पर्वतस्तत्र संभूतो नारदश्चैव तावुभौ ॥
तयोर्यवीयसी चैव तृतीयाऽरुन्धती स्मृता। देवरूप्यो (?)सूर्यजन्म तस्मिन्नारदपर्वतौ
विनतायास्तु पुत्रौ द्वावरुणो गरुडश्च ह। षट्त्रिंशत्तुस्वसारश्च यवीस्यस्तु ताःस्मृताः
गायत्र्यादीनि च्छन्दांसि सौपर्णेयाश्च पक्षिणः।
हव्यवाहानि सर्वाणि दिक्षु संनिहितानि च ॥ ६७ ॥
कण्डूर्नागसहस्रं वै चराचरमजीजनत्। अनेकशिरसां तेषां खेचराणां महात्मनाम् ॥
बहुधा नामधेयानां प्रायशस्तु निबोधत ॥ ६८ ॥
तेषां प्रधाननागाश्च शेषवासुकितक्षकाः। सकर्णीरश्चजम्भश्च अञ्जनो वामनस्तथा ॥
ऐरावतमहापद्मौ कम्बलाश्वतरावुभौ। ऐलपत्रश्च शङ्खश्च कर्कोटकधनंजयौ ॥ ७० ॥
महाकर्णो महानीलो धृतराष्ट्रबलाहकौ। कुमारः पुष्पदन्तश्च सुमुखो दुर्मुखस्तथा ॥
शिलीमुखो दधिमुखः कालीयः शालिपिण्डकः।
बिन्दुपादः पुण्डरीको नागश्चापूरणस्तथा ॥ ७२ ॥
कपिलश्चाम्बरीषश्च धृतपादश्च कच्छपः। प्रह्लादः पद्मचित्रश्च गन्धर्वोऽथ मनस्विकः
नहुषः खररोमा च मणिरित्येवमादयः। काद्रवेया मया ख्याताःखशायास्तुनिबोधत
खशा विजज्ञे पुत्रौ द्वौ विश्रुतौपुरुषादकौ। ज्येठंपश्चिमसंख्यायांपूर्वस्यांमनुजास्तथा
विलोहितं विकर्णं च पूर्वं साऽजनयत्सुतम्। चतुर्भुजं चतुष्पादंद्विमूर्धानंद्विधागतिम्
सर्वाङ्गकेशं स्थूलाङ्गं तुङ्गनासं महोदरम्। स्थूलशीर्षं महाकर्णं मुञ्जकेशं मनोरथम् ॥
हस्त्योष्ठंदीर्घजङ्घं च अश्वदंष्ट्रं महाहनुम्। रक्तजिह्वंजटाक्षंचस्थूलास्यंदीर्घनासिकम्
गुह्यकं शितकर्णं च महानन्दंमहामुखम्। एवंविधं खशा पुत्रं विजज्ञेसाऽतिभीषणम्
तस्यानुजंद्वितीयं तु खशाचैवव्यजायत। त्रिशीर्षं च त्रिपादं च त्रिहस्तंकृष्णलोचनम्
ऊर्ध्वकेशं हरिच्छ्मश्रुं शिलासंहननं दृढम्। ह्रस्वकायं सुबाहुं च महाकायं महाबलम्
आकर्णदारितास्यं च लम्बभ्रूं स्थूलनासिकम्। स्थूलोष्ठमष्टदंष्ट्रं चद्विजिह्वंशङ्कुकर्णकम्

पिङ्गलोद्वृत्तनयनं जटिलं पिङ्गलं तथा। महाकर्णं महोरस्कं कटिहीनंकृशोदरम्॥
नखिनं लोहितग्रीवं सा कनिष्ठं प्रसूयते ॥ ८३ ॥

सद्यः प्रसूतमात्रौ तु विवृद्धौ च प्रमाणतः। उपभोगसमर्थाभ्यांशरीराभ्यामुपस्थितौ॥
सद्योजातविवृद्धाङ्गौ मातरं पर्यभूषताम् ॥ ८४ ॥

ज्यायांस्तयोस्तुयःक्रूरोमातरंसोऽभ्यकर्षत। अब्रवीन्मातरायाहिभक्षार्थेक्षुधयाऽर्दितः
न्यषेधयत्पुनर्ह्येनं ज्यायांसं तु कनिष्ठकः। अब्रवीत्सोऽसकृत्त्वं वै रक्षेमां मातरंखशाम्
बाहुभ्यां परिगृह्यैनं मातरं तां व्यमोचयत् ॥ ८६ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु प्रादुर्भूतस्तयोः पिता। तौ दृष्ट्वा विकृताचारौ वसतांहीत्यभाषत
तौ तु तं पितरं दृष्ट्वा बलवन्तौ त्वरान्वितौ। मातुरेव पुनश्चाङ्के प्रलपेतां स्वमायया
अथाब्रवीदृषिर्भार्यामावाभ्यामुक्तवत्यसि। पूर्वमाचक्ष्वतत्त्वेनतथैवाऽऽभ्यांव्यतिक्रमम्
मातुलं भजते पुत्रः पितॄन्भजति कन्यका। यथाशीला भवेन्मातातथाशीलोभवेत्सुतः
यद्वर्णा तु भवेद्भूमिस्तद्वर्णं सलिलं ध्रुवम्। मातॄणां शीलदोषेण तथाशीलगुणैःपुनः
विभिन्नास्तु प्रजाः सर्वास्तथा ख्यातिवशेन च ॥ ९१ ॥

बलशीलादिभिस्तासामदितिर्धर्मतत्परा। गन्धशीला दितिश्चैव प्रवाध्ययनशालिनी
धर्मशीलादिभिश्चैव प्रबोधबलशालिनी ॥ ९२ ॥

गीतशीला तथाऽरिष्टामायाशीला दनुः स्मृता। विनता तु पुनर्देवीवैहायसगतिप्रिया
तपोमयेन शीलेन सुरभिः समलंकृता। क्रोधशीला तथा कद्रूः क्रोधेनाखुखशीलका
दनायुषायाः शीलं वै वैरानुग्रहलक्षणम्। त्वं च देविमहाभागेक्रोधशीलामताऽसि मे
इत्येतानिस्वशीलानिस्वभावालोकनान्नृणाम्। कर्मतोयत्ततोबुद्ध्यारूपतोबलतस्तथा
क्षमातश्चैव भिन्नानि भावितार्थबलेन च ॥ ९६ ॥

रजःसत्त्वतमोवृत्तेर्विश्वरूपाः स्वभावतः। मातुलं त्वनुयातास्ते पुत्रकागुणवृत्तिभिः
इत्येवमुक्त्वा भगवान्खशामप्रतिमां तदा। पुत्रावाहूय साम्ना वै चक्रेसोममभीतयः
ताभ्यां च यत्कृतं तस्यास्तदाचष्ट तदा खशा।
मात्रा यथा समाख्यातं कर्म ताभ्यां पृथक्पृथक् ॥

तेन धात्वर्थयोगेन तत्वदर्शी चकार ह ॥ ६६ ॥

यक्ष इत्येष धातुर्वैखादनेकृपणे च सः । यक्षयत्युक्तवान्यस्मात्तस्माद्यक्षोभवत्वयम् ॥
रक्ष इत्येष धातुर्यः पालने स विभाव्यते । उक्तवांश्चैव यस्मात्तु रक्ष मे मातरंखशाम्
नाम्नाऽयं राक्षसस्तस्माद्भविष्यति तवाऽऽत्मजः ॥ १०१ ॥
स तदा तद्विधान्दृष्ट्वा विज्ञायतुतयोः पिता । तथाभाविनमर्थञ्च बुद्ध्वामातृकृतंतयोः
तावुभौ क्षुधितौ दृष्ट्वा विस्मितः परिमृग्य च । तयोः प्रादिशदाहारं प्रजापतिरसृग्वसे
पिता तौ क्षुधितौ दृष्ट्वा वरं चेमं तयोर्ददौ । युवयोर्हस्तसंस्पर्शोनक्तमेव तु सर्वशः ॥

नक्ताहारविहारौ च दिवास्वप्नोपभोगिनौ ।
नक्तं चैव बलीयांसौ दिवास्वप्नावुभौ युवाम् ॥ १०५ ॥

मातरं रक्षतं चैव धर्मश्चैवानुशिष्यताम् । इत्युक्त्वा कश्यपः पुत्रौ तत्रैवान्तरधीयत
गते पितरि तौ वीरौ निसर्गादेव दारुणौ । विपर्ययेण वर्तन्तौकिंभक्षौप्राणिहिंसकौ
महाबलौ महासत्त्वौमहाकायौ दुरासदौ । मायाविनौ च दृश्यौतावन्तर्धानगतावुभौ
तौ कामरूपिणौ घोरौ विकृतिज्ञौ स्वभावतः । रूपानुरूपैराहारैः प्रभवेतामुभावपि
देवासुरानृषींश्चैव गन्धर्वान्किन्नरानपि । पिशाचांश्च मनुष्यांश्चपन्नगान्पक्षिणःपशून्
भक्षार्थमपिलिप्सन्तौसर्वतस्तौनिशाचरौ । इन्द्रेन तु वरौ चैवधृतौदत्त्वात्ववध्यताम्
यक्षस्तु न कदाचिद्वै निशीथे ह्येककश्चिरम् । आहारं स परीप्सन्वै शब्देनानुचचार ह

आससाद पिशाचौ द्वौ जनुचण्डौ च तावुभौ ।
पिङ्गाक्षवूर्ध्वरोमाणौ वृत्ताक्षौ तु सुदारुणौ ॥ ११३ ॥

असृङ्मांसवसाहारौपुरुषादौमहाबलौ । कन्याभ्यांसहितौतौ तु ताभ्यांप्रियचिकीर्षया
द्वे कन्येकामरूपिण्यौतदाचारे च ते शुभे । आहारार्थमटन्तौतौकन्याभ्यांसहितावुभौ
तेऽपश्यन्राक्षसं तत्रकामरूपंमहाबलम् । सहसा संनिपाते तु दृष्ट्वा चैव परस्परम्
रक्षमाणौ ततोऽन्योन्यं परस्परजिघृक्षवः । पितरावूचतुः कन्ये युवामानयतं द्रुतम्
जीवग्राहं विगृह्यैनं विस्फुरन्तं पदे पदे । ततः समभिसृत्यैनं कन्ये जगृहतुस्तदा ॥

गृहीत्वा हस्तयोस्ताभ्यामानीते पितृसंसदि ॥ ११८ ॥

ताभ्यां करे गृहीतं तु पिशाचावथ राक्षसम् ।
पृच्छतां कोऽसि कस्य त्वं स च सर्वमभाषत ॥ ११९ ॥
तस्य कर्माभिविज्ञातं ज्ञात्वा तौ राक्षसर्षभौ । अजस्य खण्डं तस्यैतेप्रत्यपादयतांसुते
तौ तुष्टौ कर्मणा तस्य कन्ये द्वे ददतुस्तु ते ॥ १२० ॥
पैशाचेन विवाहेन सुदत्या बुद्धवाहनः । अजः खण्डश्चताभ्यां तौ तदाश्रावयतांघनम्
इयं ब्रह्मधना नाम मम कन्याह्यलोमिका । ब्रह्मसत्वधनाहारा इति खण्डोऽभ्यभाषत
इयं जन्तुधना नाम कन्यासर्वाङ्गसुन्दरी । जन्तवोऽस्याधनाहारास्ताचश्रावयतांघनम्
सर्वाङ्गकेशी नाम्ना च कन्या जन्तुधना तथा ।
अकर्णान्ताऽप्यरोमा च कन्या ब्रह्मधना तु या ॥ १२४ ॥
ब्रह्मधनं प्रसूता सा तत्वलां चैव कन्यका । एवं पिशाचकन्ये ते मिथुने द्वे प्रसूयताम्
तयोः प्रजाविसर्गं च ब्रुवतो मे निबोधत ॥ १२५ ॥
हेतृप्रहेतृरुग्रश्च(?)पोरुषेयो वधस्तथा । विस्फूर्जिश्चैव वातश्च आपो व्याघ्रस्तथैव च
सर्पश्च राक्षसा ह्येते यातुधानात्मजा दश । सूर्यस्यानुचरा ह्येते सह तेन भ्रमन्ति च
हेतुपुत्रस्तथा लङ्कुर्लङ्कोर्द्वावेव चात्मजौ । माल्यवांश्च सुमाली च प्रहेतृतनयाञ्छृणु ॥
प्रहेतृतनयः श्रीमान्पुलोमा नामविश्रुतः ॥ १२८ ॥
वधपुत्रौ दुराचारौ विघ्नश्च शमनश्च ह । विद्युत्पुत्रो दुराचारो रुमनो नाम राक्षसः
स्फूर्जपुत्रो निकुम्भश्च क्रूरो वै ब्रह्मराक्षसः । वातपुत्रो विरागस्तुआपपुत्रस्तु जम्बुकः
व्याघ्रपुत्रो निरानन्दो जन्तूनां विघ्नकारकः ।
इत्येते वै पराक्रान्ताः क्रूराः सर्वे तु राक्षसाः ॥ १३१ ॥
कीर्तिता यातुधानास्तुब्रह्मधानान्निबोधत । यज्ञःपिताधुनिःक्षेमो ब्रह्मा पापोऽथयज्ञहा
स्वाकोटकः कलिः सर्पो ब्रह्मधानात्मजा दश ।
स्वसारो ब्रह्मराक्षस्यस्तेषां चेमाः सुदारुणाः ॥ १३२ ॥
रक्तकर्णा महाजिह्वाऽक्षया चैवोपहारिणी । एतेषामन्वयेजाताः पृथिव्यांब्रह्मराक्षसाः
श्लेष्मातकतरुष्वेते प्रायशस्तु कृतालयाः । इत्येतेराक्षसाःक्रान्ता यक्षस्यापिनिबोधत

वक्रमेऽप्सरसं यक्षः पञ्चस्थूलांक्रतुस्थलीम् । तां लिप्सुश्चिन्तयानश्चनन्दनंसचचारह
वैभ्राजं सुरभिं चैव तथा चैत्ररथं च यत् । दृष्टवान्नन्दने तस्मिन्नप्सरोभिःसहासतीम्
नोपायं विन्दते तत्र तस्या लाभाय चिन्तयन् । दूषितः स्वेन रूपेणकर्मणा तेन दूषितः
ममोद्विजन्ते भूतानि भयाद्वृत्तस्य सर्वशः । तत्कथं नाम चार्वङ्गींप्राप्नुयामहमङ्गनाम्
दृष्ट्वोपायं ततः सोऽथ शीघ्रकारी व्यवर्तत । कृत्वा रूपं वसुरुचेर्गन्धर्वस्य तु गुह्यकः

ततः सोऽप्सरसां मध्ये तां जग्राह क्रतुस्थलीम् ॥ १४० ॥

वुद्ध्वावसुरुचिं तं साभावेनैवाभ्यवर्तत । संवृतः स तयासार्धंदृश्यमानोऽप्सरोगणैः
तत्र संसिद्धकरणःसद्योजातःसुतोऽस्यवै । परिणाहोच्छ्रयैर्युक्तःसद्योवृद्धोज्वलञ्श्रिया
राजाऽहमिति नाभिर्हि पितरंसोऽभ्यभाषत । तवात्रजाते न भीतिःपितातंप्रत्युवाचह
मात्राऽनुरूपो रूपेण पितुर्वीर्येण जायते । जाते स तस्मिन्हर्षेण स्वरूपं प्रत्यपद्यत ॥
स्वभावं प्रतिपद्यन्ते वृहन्तो यक्षराक्षसाः । म्रियमाणाःप्रसुप्ताश्चक्रुद्धाभीताःप्रहर्षिताः
ततोऽब्रवीदप्सरसं स्मयमानः स गुह्यकः । गृहं मे गच्छ सुश्रोणि सपुत्रा वरवर्णिनी

इत्युक्ता सहसा तं च दृष्ट्वा स्वं रूपमास्थितम् ।
विभ्रान्ताः प्राद्रवन्भीताः क्रोधमानाप्सरोगणाः ॥ १४७ ॥

गच्छन्तीरन्वगच्छद्यापुत्रस्तांसान्त्वयन्गिरा । गन्धर्वाप्सरसांमध्येतांनीत्वासन्यवर्तत

तां च दृष्ट्वा समुत्पत्तिं यक्षस्याप्सरसां गणाः ।
यक्षाणां त्वं जनित्रीति प्रोचुस्तां वै क्रतुस्थलीम् ॥ १४९ ॥

जगाम सह पुत्रेण ततो यक्षः स्वमालयम् । न्यग्रोधरोहिणं नाम गुह्यका यत्र शेरते

तस्मिन्निवासो यक्षाणां न्यग्रोधः सर्वतः प्रियः ॥ १५० ॥

यक्षो रजतनाभस्तु गुह्यकानां पितामहः । अनुह्लादस्य दैत्यस्य भद्रामतिवरां सुताम्

उपयेमे स भद्रायां यस्यां मणिवरो वशी ॥ १५१ ॥
जज्ञे सा मणिभद्रं च शक्रतुल्यपराक्रमम् ।
तयोः पत्न्यौ भगिन्यौ तु क्रतुस्थल्यात्मजे शुभे ॥ १५२ ॥

नाम्ना पुण्यजनी चैव तथा देवजनी च या । विजज्ञे मणिभद्रात्तुपुत्रान्पुण्यजनीशुभान्

सिद्धार्थं सूर्यतेजं च सुमन्तं नन्दनं तथा । कन्यकं यविकं चैव मणिदत्तं वसुं तथा
सर्वानुभूतं शङ्खं च पिङ्गाक्षं भीरुमेव च । तथा मन्दरशोभिं च पद्मं चन्द्रप्रभं तथा ॥
मेघपूर्णं सुभद्रञ्च प्रद्योतं च महौजसम् । द्युतिमत्केतुमन्तौ च मित्रं मौलिसुदर्शनौ ॥
चत्वारो विंशतिश्चैवपुत्राःपुण्यजनाः शुभाः । जज्ञिरेमणिभद्रस्य ते सर्वेपुण्यलक्षणाः
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च यक्षाः पुण्यजनाः शुभाः ॥ १५७ ॥
विजज्ञे देवजननी पुत्रान्मणिवरात्मजात् । पूर्णभद्रं हेमरथं मणिमन्नन्दिवर्धनौ ॥
कुस्तुम्बुरुं पिशङ्गाभं स्थूलकर्णं महाजयम् । श्वेतं च विपुलं चैवपुष्पवन्तंभयावहम्
पद्मवर्णं सुनेत्रं च यक्षं बालं बकं तथा । कुमुदं क्षेमकं चैव वर्धमानं तथा दमम् ॥
पद्मनाभं वराङ्गं च सुवीरं विजयं कृतिम् । पूर्णमासं हिरण्याक्षं सुरूपं चैवमादयः ॥
पुत्रा मणिवरस्यैते यक्षा वै गुह्यकाःस्मृताः । सुरूपाश्चविरूपाश्चस्रग्विणःप्रियदर्शनाः
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १६३ ॥
खशायास्त्वपरे पुत्रा राक्षसाःकामरूपिणः । तेषां यथाप्रधानान्वैवर्ण्यमानान्निबोधत
लालाविः कुथनोभीमःसुमालीमधुरेव च । विस्फूर्जितोविद्युज्जिह्वोमातङ्गोधूम्रितस्तथा
चन्द्रार्कः सुकरो बुध्नः कपिलोमः प्रहासकः ।
क्रीडः परशुनाभश्च चक्राक्षश्च निशाचरः ॥ १६५ ॥
त्रिशिराः शतदंष्ट्रश्च तुण्डकेशश्च राक्षसः । यक्षश्चाकम्पनश्चैव दुर्मुखश्च शिलीमुखः ॥
इत्येते राक्षसवरा विक्रान्ता गणरूपिणः । सर्वलोकचरास्ते तु त्रिदशानां समक्रमाः
सप्त चान्या दुहितरस्ताः शृणुध्वं यथाक्रमम् ।
तासां च यः प्रजासर्गो येन चोत्पादिता गणाः ॥ १६९ ॥
आलम्बा उत्कचा कृष्णा निर्ऋता कपिला शिवा ।
केशिनी च महाभागा भगिन्यः सप्त याः स्मृताः ॥ १७० ॥
ताभ्यो लोकामिषादश्च हन्तारो युद्धदुर्मदाः । उदीर्णाराक्षसगणाइमेउत्पादिताःशुभाः
आलम्बेयो गणः क्रूरःउत्कचेयो गणस्तथा । तथाकार्ष्णेयशैवेयाराक्षसाह्युत्तमागणाः
तथैव नैर्ऋतो नाम त्र्यम्बकानुचरेण ह । उत्पादितः प्रजासर्गो गणेश्वरचरेण तु ॥

उत्पादिता वलवता उदीर्णा यक्षराक्षसाः । विक्रान्ताःशौर्यसंपन्नानैर्ऋतादेवराक्षसाः
येषामधिपतिर्युक्तो नाम्ना ख्यातो विरूपकः ॥ १७४ ॥
तेषां गणशतानेका उद्धतानां महात्मनाम् । प्रायेणानुचरन्त्येते शंकरं जगतः प्रभुम् ॥
दैत्यराजेन कुम्भेन महाकाया महात्मना । उत्पादिता महावीर्या महावलपराक्रमाः
कापिलेया महावीर्या उदीर्णा दैत्यराक्षसाः । कम्पनेन च यक्षेणकेशिन्यास्तेपरेजनाः
उत्पादिता वलवता उदीर्णा यक्षराक्षसाः । केशिनीदुहितुश्चैव नीलायाःक्षुद्रमानसाः
आलम्बेयेन जनिता नैकाः सुरसिक्केन हि । नैला इति समाख्यातादुर्जयाघोरविक्रमाः
चरन्ति पृथिवीं कृत्स्नां तत्र ते देवलौकिकाः । वहुत्वाच्चैव सर्गस्य तेषांवक्तुंनशक्यते
तस्यास्त्वपि च नीलाया विकचा नाम राक्षसी ।
दुहिता स्वभावविकचा मन्दसत्त्वपराक्रमा ॥ १८१ ॥
तस्याअपिविरूपेणनैर्ऋतेनेह च प्रजाः । उत्पादिताः सुरा(?)घोराश्शृणुतांस्त्वनुपूर्वशः
दंष्ट्राकरालविकृता महाकर्णा महोदराः । हारका भीषकाश्चैव तथैव क्रामकाः परे
वैनकाश्च पिशाचाश्च वाहकाः प्राशकाः परे । भूमिराक्षसका ह्येतेमन्दाःपुरुषविक्रमाः
चरन्त्यदृष्टपूर्वाश्च नानाकारा ह्यनेकशः । उत्कृष्टवलसत्त्वा ये ते च वै खेचराः स्मृताः
लक्षमात्रेण चाऽऽकाशं स्वल्पाः स्वल्पं चरन्ति वै ।
एतैर्व्याप्तमिमं लोकं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १८६ ॥
भूमिराक्षसकैः सर्वैरनेकैः क्षुद्रराक्षसैः । नानाप्रकारैराक्रान्ता नानादेशाः समन्ततः ॥
समासाभिहताश्चैव ह्यष्टौ राक्षसमातरः । अष्टौविभागा ह्येषां हि विख्याताअनुपूर्वशः
भद्रका निकराःकेचिद्यज्ञनिष्पत्तिहेतुकाः(?) । सहस्रशतसंख्यातामर्त्यलोकविचारिणः
पूतना मातृसामान्यास्तथा भूतभयंकराः । वालानां मानुषे लोके ग्राहावैमानहेतुकाः
स्कन्दग्रहादयश्चैव आपकास्त्रासकादयः । कौमारास्ते तु विज्ञेया वालानां ग्रहवृत्तयः
स्कन्दग्रहविशेषाणां मायिकानांतथैव च । पूतनानामभूतानां ये च लोकविनायकाः
सहस्रशतसंख्यानां मर्त्यलोकविचारिणाम् । एवं गणशतान्येव चरन्तिपृथिवीमिमाम्
यक्षाः पुण्यजना नाम तथा ये केऽपिगुह्यकाः । यक्षादेवजनाश्चैवतथापुण्यजनाश्चये

सिद्धार्थं सूर्यतेजं च सुमन्तं नन्दनं तथा । कन्यकं यविकं चैव मणिदत्तं वसुं तथा
सर्वानुभूतं शङ्खं च पिङ्गाक्षं भीरुमेव च । तथा मन्दरशोभिं च पद्मं चन्द्रप्रभं तथा ॥
मेघपूर्णं सुभद्रञ्च प्रद्योतं च महौजसम् । द्युतिमत्केतुमन्तौ च मित्रं मौलिसुदर्शनौ ॥
चत्वारो विंशतिश्चैवपुत्राःपुण्यजनाः शुभाः । जज्ञिरेमणिभद्रस्य ते सर्वेपुण्यलक्षणाः

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च यक्षाः पुण्यजनाः शुभाः ॥ १५७ ॥

विजज्ञे देवजननी पुत्रान्मणिवरात्मजात् । पूर्णभद्रं हेमरथं मणिमन्नन्दिवर्धनौ ॥
कुस्तुम्बुरुं पिशङ्गाभं स्थूलकर्णं महाजयम् । श्वेतं च विपुलं चैवपुष्पवन्तंभयावहम्
पद्मवर्णं सुनेत्रं च यक्षं बालं बकं तथा । कुमुदं क्षेमकं चैव वर्धमानं तथा दमम् ॥
पद्मनाभं वराङ्गं च सुवीरं विजयं कृतिम् । पूर्णमासं हिरण्याक्षं सुरूपं चैवमादयः ॥
पुत्रा मणिवरस्यैते यक्षा वै गुह्यकाःस्मृताः । सुरूपाश्चविरूपाश्चस्रग्विणःप्रियदर्शनाः

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १६३ ॥

खशायास्त्वपरे पुत्रा राक्षसाःकामरूपिणः । तेषां यथाप्रधानान्वैवर्ण्यमानान्निबोधत
लालाविः कुथनोभीमःसुमालीमधुरेव च । विस्फूर्जितोविद्युज्जिह्वोमातङ्गोधूम्रितस्तथा

चन्द्रार्कः सुकरो बुध्नः कपिलोमः प्रहासकः ।
क्रीडः परशुनाभश्च चक्राक्षश्च निशाचरः ॥ १६५ ॥

त्रिशिराः शतदंष्ट्रश्च तुण्डकेशश्च राक्षसः । यक्षश्चाकम्पनश्चैव दुर्मुखश्च शिलीमुखः ॥
इत्येते राक्षसवरा विक्रान्ता गणरूपिणः । सर्वलोकचरास्ते तु त्रिदशानां समक्रमाः

सप्त चान्या दुहितरस्ताः शृणुध्वं यथाक्रमम् ।
तासां च यः प्रजासर्गो येन चोत्पादिता गणाः ॥ १६९ ॥
आलम्बा उत्कचा कृष्णा निर्ऋता कपिला शिवा ।
केशिनी च महाभागा भगिन्यः सप्त याः स्मृताः ॥ १७० ॥

ताभ्यो लोकामिषादश्च हन्तारो युद्धदुर्मदाः । उदीर्णाराक्षसगणाइमेउत्पादिताःशुभाः
आलम्बेयो गणः क्रूरःउत्कचेयो गणस्तथा । तथाकार्ष्णेयशैवेयाराक्षसाह्युत्तमागणाः
तथैव नैर्ऋतो नाम त्र्यम्बकानुचरेण ह । उत्पादितः प्रजासर्गो गणेश्वरचरेण तु ॥

उत्पादिता वलवता उदीर्णा यक्षराक्षसाः । विक्रान्ताःशौर्यसंपन्नानैर्ऋतादेवराक्षसाः

येषामधिपतिर्युक्तो नाम्ना ख्यातो विरूपकः ॥ १७४ ॥

तेषां गणशतानेका उद्धतानां महात्मनाम् । प्रायेणानुचरन्त्येते शंकरं जगतः प्रभुम् ॥

दैत्यराजेन कुम्भेन महाकाया महात्मना । उत्पादिता महावीर्या महावलपराक्रमाः

कापिलेया महावीर्या उदीर्णा दैत्यराक्षसाः । कम्पनेन च यक्षेणकेशिन्यास्तेपरेजनाः

उत्पादिता वलवता उदीर्णा यक्षराक्षसाः । केशिनीदुहितुश्चैव नीलायाःक्षुद्रमानसाः

आलम्बेयेन जनिता नैकाः सुरसिकेन हि । नैला इति समाख्यातादुर्जयाघोरविक्रमाः

चरन्ति पृथिवीं कृत्स्नां तत्र ते देवलौकिकाः । वहुत्वाच्चैव सर्गस्य तेषांवक्तुंनशक्यते

तस्यास्त्वपि च नीलाया विकचा नाम राक्षसी ।

दुहिता स्वभावविकचा मन्दसत्त्वपराक्रमा ॥ १८१ ॥

तस्याअपिविरूपेणनैर्ऋतेनेह च प्रजाः । उत्पादिताः सुरा(?)घोराश्शृणुतांस्त्वनुपूर्वशः

दंष्ट्राकरालविकृता महाकर्णा महोदराः । हारका भीषकाश्चैव तथैव क्रामकाः परे

वैनकाश्च पिशाचाश्च वाहकाः प्राशकाः परे । भूमिराक्षसका ह्येतेमन्दाःपुरुषविक्रमाः

चरन्त्यदृष्टपूर्वाश्च नानाकारा ह्यनेकशः । उत्कृष्टवलसत्त्वा ये ते च वै खेचराः स्मृताः

लक्षमात्रेण चाऽऽकाशं स्वल्पाः स्वल्पं चरन्ति वै ।

एतैर्व्याप्तमिमं लोकं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १८६ ॥

भूमिराक्षसकैः सर्वैरनेकैः क्षुद्रराक्षसैः । नानाप्रकारैराक्रान्ता नानादेशाः समन्ततः ॥

समासाभिहताश्चैव ह्यष्टौ राक्षसमातरः । अष्टौविभांगा ह्येषां हि विख्याताअनुपूर्वशः

भद्रका निकराःकेचिद्यज्ञनिष्पत्तिहेतुकाः(?) । सहस्रशतसंख्यातामर्त्यलोकविचारिणः

पूतना मातृसामान्यास्तथा भूतभयंकराः । वालानां मानुषे लोके ग्राहावैमानहेतुकाः

स्कन्दग्रहादयश्चैव आपकास्त्रासकादयः । कौमारास्ते तु विज्ञेया वालानां ग्रहवृत्तयः

स्कन्दग्रहविशेषाणां मायिकानांतथैव च । पूतनानामभूतानां ये च लोकविनायकाः

सहस्रशतसंख्यानां मर्त्यलोकविचारिणाम् । एवं गणशतान्येव चरन्तिपृथिवीमिमाम्

यक्षाः पुण्यजना नाम तथा ये केऽपिगुह्यकाः । यक्षादेवजनाश्चैवतथापुण्यजनाश्चये

गुह्यकानां च सर्वेषामगस्त्या ये च राक्षसाः ।
पौलस्त्या राक्षसा ये च विश्वामित्राश्च ये स्मृताः ॥ १९५ ॥

यक्षाणांराक्षसानां च पौलस्त्यागस्तयश्च ये । तेषां राजामहाराजःकुबेरोह्यलकाधिपः
यक्षा दृष्ट्वा पिवन्तीह नृणां मांसमसृग्वसाम् । रक्षांस्यनुप्रवेशेन पिशाचाः परिपीडनैः
सर्वलक्षणसंपन्नाः समक्षेत्राश्च दैवतैः । भास्वरा वलवन्तश्च ईश्वराः कामरूपिणः॥

अनाभिभाष्या विक्रान्ताः सर्वलोकनमस्कृताः ।
सूक्ष्माश्चौजस्विनो मेध्या वरदा यज्ञियाश्च ये ॥ १९९ ॥

देवानांतुल्यधर्माणांह्यसुराःसर्वशः स्मृताः । त्रिभिःपादैस्तु गन्धर्वादेवैर्हीनाःप्रभावतः
गन्धर्वेभ्यस्त्रिभिःपादैर्हीना वै सर्वगुह्यकाः । प्रभावतुल्यायक्षाणांविज्ञेयाःसर्वराक्षसाः

ऐश्वर्यहीना यक्षेभ्यः पिशाचास्त्रिगुणं पुनः ॥ २०१ ॥

एवं धनेनरूपेणआयुषा च वलेन च । धर्मैश्वर्येण वुद्ध्या च तपःश्रुतपराक्रमैः ॥२०२
देवासुरेभ्यो हीयन्तेत्रीन्पादान्वैपरस्परम् । गन्धर्वाद्याःपिशाचान्ताश्चतस्रोदेवयोनयः

सूत उवाच

अतःशृणुतभद्रं वः प्रजाःक्रोधवशात्मकाः । क्रोधायांकन्यकाजज्ञे द्वादशह्यात्मसंभवाः

ता भार्याः पुलहस्याऽऽसन्नामतस्ता निवोधत ॥ २०४ ॥

मृगी च मृगमन्दा च हरिभद्रा इरावती । भूता च कपिशा दंष्ट्रा निशा तिर्यातथैव च

श्वेता चैव स्वरा चैव सुरसा चेति विश्रुताः ॥ २०५ ॥

मृग्यास्तु हरिणाः पुत्रा मृगाश्चान्याः शशास्तथा ।
न्यङ्कवः शरभा ये च रुरवः पृषताश्च ये ॥ २०६ ॥

मृगराजा मृगमन्दायागवयाश्चापरे तथा । महिषोष्ट्रवराहाश्चखड्गगौरमुखास्तथा
हरेस्तु हरयः पुत्रा गोलाङ्गूलतरक्षवः । वानराः किंनराश्चैव व्याघ्राः किंपुरुषास्तथा

इत्येवमादयोऽन्येऽपि इरावत्या निवोधत ॥ २०८ ॥

सूर्यस्याण्डकपाले द्वे समानीय तु भौवनः । हस्ताभ्यां परिगृह्याथ रथंतरमगायत ॥
साम्ना प्रसूयमानेन सद्य एव गजोऽभवत् । स प्रागच्छदिरावत्यैपुत्रार्थे स तु भौवनः

इरावत्याः सुतोयस्मात्तस्मादैरावतःस्मृतः । देवराजोपवाह्यत्वात्प्रथमः स मतङ्गराट्
शुभ्राभ्राभश्चतुर्दंष्ट्रः श्रीमानैरावतो गजः ॥ २११ ॥

अष्टुजस्यैकमूलस्य सुवर्णाभस्यहस्तिजः । षड्दन्तस्य हि भद्रस्यऔपवाह्यश्च वैबलः
तस्य पुत्रोऽञ्जनश्चैव सुप्रतीकोऽथ वामनः । पद्मश्चैव चतुर्थोऽभूद्धस्तिनीचाभ्रमुस्तथा
दिग्गजांस्तांश्च चत्वा(तु)रः श्वेताऽजनयताऽऽशुगान् ।
भद्रं मृगं च मन्दं च संकीर्णं चतुरः सुतान् ॥ २१४ ॥

संकीर्णोऽप्यञ्जनो यस्तु उपवाह्यो यमस्य तु । भद्रो यः सुप्रतीकस्तुहरितःसह्यपांपतेः
पद्मो मन्दस्तु यो गौरो द्विपो ह्यैलविलस्य सः ।
मृगः श्यामस्तु यो हस्ती उपवाह्यः स पावकैः ॥ २१६ ॥

पद्मोत्तरस्तु यः पद्मो गजो वै वरुणोगणः । उपलेपनमेषश्च तस्याष्टौ जज्ञिरे सुताः ॥
उदग्रभावेनोपेता जायन्ते तस्य चान्वये । श्वेतबालनखाः पिङ्गावर्ष्मवन्तो मतङ्गजाः
मतङ्गजान्प्रवक्ष्यामि नागानन्यानपि क्रमात् ॥ २१८ ॥

कपिलः पुण्डरीकश्च सुमनाभो रथान्तरः । जातौ नाम्ना सुतौताभ्यांसुप्रतिष्ठप्रमर्दनौ
शूलाः स्थूलाः शिरोदान्ताः शुद्धबालनखास्तथा ।
बलिनः शक्तिनःश्चैव स्मृतास्त्वाकुलिका गजाः ॥ २२० ॥

पुष्पदन्तोबृहत्सामाषड्दन्तोदन्तपुष्पवान् । ताम्रवर्णी च तत्पुत्रःसहचारिविपाणितः
अन्वयेचास्यजायन्तेलम्बोष्ठाश्चारुदर्शिनः । श्यामाःसुदर्शनाश्चण्डानानापीडायताननाः
वामदेवोऽञ्जनश्यामः साम्नो जज्ञेऽथ वामनः । भार्याचैवाङ्गदातस्यनीलवल्लक्षणौसुतौ
चण्डाश्चारुशिरोग्रीवाव्यूढोरस्कास्तरस्विनः । नरैर्वद्धाःकुलेतेषांजायन्तेविकृतागजाः
सुप्रतीकस्तु रूपेण नास्त्यस्यसदृशो गजः । तस्य प्रहारीसंपातीपृथुश्चित्तिसुतास्त्रयः
पशवो दीर्घताल्वोष्ठाः सुविभक्तशिरोदराः । जायन्ते मृदुसंभूता वंशे तस्य मतङ्गजाः
अञ्जनादञ्जना साम्नो विजज्ञे चाञ्जनावती । एवं माता तयोश्चापिप्रथितायुरजः सुतौ
महाविभक्तशिरसः स्निग्धजीमूतसंनिभाः । सुदर्शनाः सुवर्ष्माणःपद्माभाःपरिमण्डलाः
शूनाः पीतायतमुखा गजास्तस्यान्वयेऽभवन् ॥ २२८ ॥

जज्ञे चन्द्रमसः साम्नःपिङ्गला कुमुदद्युतिः । पिङ्गलायाःसुतौतस्यामहापद्मोर्मिमालिनौ
समायवरदांश्चण्डान्प्रवृद्धबलिनोदरान् । हस्तियुद्धे प्रियान्नागान्विद्धितस्यकुलोद्भवान्
एतान्देवासुरे युद्धे जायर्थं जगृहुः सुराः । कृतार्थैश्च विसृष्टास्तैः पूर्वोक्ताः प्रययुर्दिशः
एतेषामन्वये जातान्विनीतांस्त्रिदशा ददुः । अङ्गाय लोमपादायसूक्तकाराय वै द्विपान्
द्विरदो द्विरदाभ्यां च हस्ताद्धस्तीकरात्करी । वरणाद्वारणोदन्तीदन्ताभ्यांगर्जनाद्गजः

कुञ्जरः कुञ्जचारित्वान्नागो नगविरोधतः ।
मत्वा यातीति मातङ्गो द्विपो द्वाभ्यां पिबन्स्मृतः ॥
सामजः सामजातत्वादिति निर्वचनक्रमः ॥ २३४ ॥

एषांजिह्वापरावृत्तिरि(र)वाक्त्वंह्यग्निशापजम् । बलस्यानवतोयातुयाचैषांगूढमुष्कता
उभयं दन्तिनामेतत्स्वयंभूसुरशापजम् ॥ २३५ ॥

देवदानवगन्धर्वाःपिशाचोरगराक्षसाः । कन्यासु जातादिग्नागैर्नानासत्त्वास्ततोगजाः
संभूतिश्च प्रभूतिश्च नामनिर्वचनं तथा । एतद्गजानां विज्ञेयं येषां राजा विभावसुः॥
कौशिकाद्याः समुद्रात्तु गङ्गायास्तदनन्तरम् । अञ्जनस्यैकमूलस्य प्राच्यान्नागवनंतुतत्

उत्तरा तस्य विन्ध्यस्य गङ्गाया दक्षिणं च यत् ।
गङ्गोद्भेदात्करूषेभ्यः सुप्रतीकस्य तद्वनम् ॥ २३६ ॥

अपरेणोत्कलाच्चैव ह्यावेदिभ्यश्च पश्चिमम् । एकभूवात्मजस्यैतद्वामनस्य वनं स्मृतम्
अपरेण तु लौहित्यमासिन्धोः पश्चिमेन तु । यमस्यैतद्वनं प्रोक्तमनुपर्वतमेव तत् ॥
भूतिर्विजज्ञे भूतांश्चरुद्रस्यानुचरान्प्रभो । स्थूलान्कृशांश्चदीर्घांश्चवामनान्ह्रस्वकान्समान्

लम्बकर्णान्प्रलम्बोष्ठांल्लम्बजिह्वास्तनोदरान् ।
एकरूपान्विरूपांश्च लम्बस्फिक्स्थूलपिण्डिकान् ॥ २४३ ॥

सरोवरसमुद्रादिनदीपुलिनवासिनः । कृष्णान्गौरांश्च नीलांश्चश्वेतांश्चलोहितारुणान्
बभ्रन्वै शबलान्धूम्रान्कद्रून्राक्षसदारुणान् । मुञ्जकेशान्हृषीकेशान्सर्पयज्ञोपवीतिनः ॥

विसृष्टाक्षान्विरूपाक्षान्कृशाक्षानेकलोचनान् ।
बहुशीर्षान्विशीर्षांश्च एकशीर्षानशीर्षकान् ॥ २४६ ॥

चण्डांश्च विकटांश्चैव विरोमान्रोमशांस्तथा।
अन्धांश्च जटिलांश्चैव कुब्जान्हेषकवामनान् ॥ २४७ ॥
सरोवरसमुद्रादिनदीपुलिनसेविनः । एककर्णान्महाकर्णाञ्शङ्कुकर्णानकर्णिकान् ॥
दंष्ट्रिणो नखिनश्चैव निर्दन्तांश्च द्विजिह्वकान् ।
एकहस्तान्द्विहस्तांश्च त्रिहस्तांश्चाप्यहस्तकान् ॥ २४६ ॥
एकपादान्द्विपादांश्च त्रिपादान्बहुपादकान्। महायोगान्महासत्त्वान्सुतपकान्महाबलान्
सर्वत्रगानप्रतिघान्ब्रह्मज्ञान्कामरूपिणः । घोरान्क्रूरांश्चमेध्यांश्चशिवान्पुण्यान्सवादिनः
कुशहस्तान्महाजिह्वान्महाकर्णान्महाननान्। हस्तादांश्चसुखादांश्च शिरोदांश्चकपालिनः
धन्विनो मुद्गरधरानसिशूलधरांस्तथा । दीप्तास्यान्दीप्तनेत्रांश्च चित्रमाल्यानुलेपनान्
अन्नादान्पिशितादांश्च बहुरूपान्सुरूपकान् ।
रात्रिसंध्याचरान्घोरान्कचित्सौम्यान्दिवाचरान् ॥
नक्तंचरान्सुदुःप्रेक्ष्यान्घोरांस्तान्वै निशाचरान् ॥ २५४ ॥
परत्वे च भवंदेवंसर्वे ते गतमानसाः । नैषां भार्याऽस्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः
शतं तानि सहस्राणि भूतानामात्मयोगिनाम् ।
एते सर्वे महात्मानो भूत्याः पुत्राः प्रकीर्तिताः ॥ २५६ ॥
कपिशा जज्ञे कूष्माण्डीकूष्माण्डाञ्जज्ञिरे पुनः । मिथुनानिपिशाचानांवर्णेनकपिशेनच
कपिशत्वात्पिशाचास्ते सर्वे च पिशिताशनाः ॥ २५७ ॥
युग्यानिषोडशान्यानिवर्तमानास्तदन्वयाः । नामतस्तान्प्रवक्ष्यामिपुरुषादांस्तदन्वयान्
छगलश्छगली चैव वक्रोवक्रमुखी तथा । षोडशानां गणा चैवसूचीसूचीमुखस्तथा ॥
कुम्भपात्रश्च कुम्भी च वज्रदंष्ट्रश्च दुन्दुभिः । उपचारोऽपचारश्चउलूखल उलूखली
अनर्कश्चअनर्काचकुखण्डश्चकुखण्डिका । पाणिपात्रःपाणिपात्रीपांशुःपांशुमतीतथा
नितुण्डश्च नितुण्डी च निपुणा निपुणस्तथा ।
छलादोच्छेषणा चैव प्रस्कन्दः स्कन्दिका तथा ॥
षोडशानां पिशाचानां गणाः प्रोक्तास्तु षोडश ॥ २६२ ॥

अजामुखा बकमुखाः पूरिणः स्कन्दिनस्तथा। विपादाङ्गारिकाश्चैव कुम्भपात्राः प्रकुन्दकाः।

उपचारोलूखलिका ह्यनर्काश्च कुखण्डिकाः।

पाणिपात्राश्च वैतुण्डा ऊर्णाशा निपुणास्तथा ॥ २६४ ॥

सूचीमुखोच्छेषणादाः कुलान्येतानि षोडश।

इत्येता ह्यभिजातास्तु कूष्माण्डानां प्रकीर्तिताः ॥ २६५ ॥

पिशाचास्ते तु विज्ञेयाः सकुल्या इति जज्ञिरे। बीभत्सं विकृताचारं पुत्रपौत्रमनन्तकम्

अतस्तेषां पिशाचानां लक्षणं च निबोधत ॥ २६६ ॥

सर्वाङ्गकेशा वृत्ताख्या दंष्ट्रिणो नखिनस्तथा। तिर्यङ्गाः पुरुषादाश्च पिशाचास्ते ह्यधोमुखाः

अकेशका ह्यरोमाणस्त्वग्वसाश्चर्मवाससः।

कूष्माण्डिकाः पिशाचास्ते तिलभक्षाः सदामिषाः ॥ २६८ ॥

वक्राङ्गहस्तपादाश्च वक्रशीलागतास्तथा। ज्ञेया वक्रपिशाचास्ते वक्रगाः कामरूपिणः

लम्बोदरास्तुण्डनाशा ह्रस्वकायशिरोभुजाः।

नितुन्दकाः पिशाचास्ते तिलभक्षाः प्रियश्रवाः ॥ २७० ॥

वामनाकृतयश्चैव वाचालाः प्लुतगामिनः। पिशाचानर्कमर्कास्ते वृक्षवासादनप्रियाः

ऊर्ध्वबाहूर्ध्वरोमाण उद्वृत्ताश्च तथालयाः। मुञ्चन्ति पांशूनङ्गेभ्यः पिशाचाः पांशवश्च ते

धमनीमन्तकाः शुष्काः श्मश्रुलाश्चीरवाससः। उपवीराः पिशाचाश्च श्मशानायतनास्तथा

विवृत्ताक्षा महाजिह्वा लेलिहाना ह्युलूखलाः। हस्त्युष्ट्रस्थूलशिरसो विरता बद्धपिण्डकाः

पिशाचाः कुम्भपात्रास्ते अदृष्टान्नानि भुञ्जते। सूक्ष्मास्तु रोमशाः पिङ्गा दृष्टादृष्टाश्चरन्ति वै

अयुक्तांश्च विशन्तीह निपुणास्ते पिशाचकाः।

आकर्णदारितास्याश्च लम्बभ्रूस्थूलनासिकाः ॥ २७५ ॥

शून्यागाराश्रयाः स्थूलाः पिशाचाः घूरणास्तु ते।

हस्तपादाक्रान्तगणा ह्रस्वकाः क्षितिदृष्टयः ॥ २७६ ॥

वालादास्ते पिशाचा वै सूतिकागृहसेविनः ॥ २७७ ॥

पृष्ठतः पाणिपादाश्च ह्रस्वका वातरंहसः। पिशितादाः पिशाचास्ते सङ्ग्रामे रुधिराशिनः

नग्नका ह्यनिकेताश्च लम्बकेशाश्च पिण्डकाः ।
पिशाचाः स्कन्दिनस्ते वै अन्या उच्छेषणाशिनः ॥
षोडश जातयस्तेषां पिशाचानां प्रकीर्तिताः ॥ २७९ ॥
एवंविधान्पिशाचांस्तुदीनान्दृष्ट्वाऽनुकम्पया । तेभ्योब्रह्मावरंप्रादात्कारुण्यादल्पचेतसः
अन्तर्धानं प्रजास्तेषां कामरूपत्वमेव च ॥ २८० ॥
उभयोः संध्ययोश्चारं स्थानान्याजीवमेव च ।
गृहाणि यानि भग्नानि शून्यान्यल्पजनानि च ॥ २८१ ॥
विध्वस्तानिचयानिस्युरनाचारोषितानिच । असंसृष्टोपलिप्तानिसंस्कारैर्वर्जितानिच
राजमार्गोपरथ्याश्चनिष्कुटाश्चत्वराणिच । द्वाराण्यट्टालकाश्चैवनिर्गमान्संक्रमांस्तथा
पथोनद्योऽथतीर्थानिचैत्यवृक्षान्महापथान् । पिशाचाविनिविष्टावेस्थानेष्वेतेषुसर्वशः
अधार्मिका जनास्ते वै आजीवा विहिताः सुरैः ।
वर्णाश्रमाः संकरिकाः कारुशिल्पिजनास्तथा ॥ २८५ ॥
अमृतोपमसत्त्वानां चौरविश्वासघातिनाम् । एतैरन्यैश्च बहुभिरन्यायोपार्जितैर्धनैः ॥
आरभन्ते क्रिया यास्तु पिशाचास्तत्र देवताः ॥ २८६ ॥
मधुमांसौदनैर्दध्ना तिलचूर्णसुरासवैः । धूपैर्हारिद्रकृशरैस्तैलभद्रगुडौदनैः ॥ २८७ ॥
कृष्णानि चैव वासांसि धूपाः सुमनसस्तथा । एवं युक्ताःसुबलयस्तेषां वै पर्वसंधिषु
पिशाचानामनुज्ञाय ब्रह्मा सोऽधिपतिर्ददौ ॥ २८८ ॥
सर्वभूतपिशाचानांगिरिशंशूलपाणिनम् । दंष्ट्रात्वजनयत्पुत्रान्व्याघ्रान्सिंहांश्चभामिनी
द्वीपिनश्च सुतास्तस्य व्यालेयाश्चाऽऽमिषाशिनः ।
ऋषायाश्चापि कार्त्स्न्येन प्रजासर्गं निबोधत ॥
तस्या दुहितरः पञ्च तासां नामानि मे शृणु ॥ २९० ॥
मीना माता तथा वृत्तापरिवृत्तातथैव च । अनुवृत्ता तु विज्ञेया यासां वै शृणुतप्रजाः
सहस्रदन्ता मकराः पाठीनास्तिमिरोहिताः । इत्येवमादिर्हि गणोमैनोविस्तीर्णउच्यते
ग्राहाश्चतुर्विधा ज्ञेयातथाऽनुज्येष्ठकाअपि । निष्कांश्चशिशुमारांश्चमीनाव्यजनयत्प्रजाः

वृत्ता कूर्मविकाराणिनैकानिजलचारिणाम् । तथा शङ्खविकाराणिजनयामासनैकशः
मण्डूकानां विकाराणिअनुवृत्ताव्यजायत । ऐणेयानां विकाराणिशम्बूकानांतथैव च
तथा शुक्तिविकाराणि वराटककृतानि च । तथा शङ्खविकाराणि परिवृत्ता व्यजायत
कालकूटविकाराणि जलौकविहितानि च । इत्येष हि ऋषेर्वंशः पञ्चशाखाःप्रकीर्तिताः
तिर्यग्घेतुकमाद्याद्दुर्बहुलं (?) वंशविस्तरम् । संस्वेदजविकाराणि यथायेभ्योभवन्तिह

स्वस्तिपिकशरीरेभ्यो जायन्त्युत्पादका द्विजाः ।
मनुष्याः स्वेदमलजा उशना नाम जन्तवः ॥ २९९ ॥
तथा शिरसि चैले च यूकाः संस्वेदजाः स्मृताः ।
चन्द्रादित्याग्नितप्तायां पृथिव्यां संभवन्ति ये ॥ ३०० ॥

तृणमेघमसिक्तायाः स्मृताःसंस्वेदजन्तवः । नानापिपीलिकगणाःकीटकावद्धपादकाः
शङ्खोपलविकाराणिकीलकाचारकाणि च । इत्येवमादिवहुलाःस्वेदजाःपार्थिवागणाः
तथाघर्मादितप्ताभ्यस्त्वद्भ्योवृष्टिभ्यएव च । नैकामृगशरीरेभ्योजायन्तेजन्तवस्त्विमे
मीनकाः पिप्पलादंशास्तथातित्तिरपुत्रिकाः । नीलचित्राश्चजायन्तेह्यलकावहुविस्तराः
जलजाःस्वेदजाश्चैवजायन्तेजन्तवस्त्विमे । काशतोयञ्ज(ज)काःकीटानलदावहुपादकाः
सिंहला रोमलाश्चैव पिच्छलाःपरिकीर्तिताः । इत्येवमादिर्हिगणोजलजःस्वेदजःस्मृतः
सर्पिर्भ्यो माषमुद्गानां जायन्ते क्रमशस्तथा । विल्वजम्वाम्रपूगेभ्यःफलेभ्यश्चैवजन्तवः
मुद्गेभ्यः पनसेभ्यश्च तण्डुलेभ्यस्तथैव च । तथाकोटरशुष्केभ्यो निहितेभ्योभवन्तिहि
अन्येभ्योऽपि च जायन्तेनहितेभ्यश्चिरंसदा । जन्तवस्तुरगादिभ्योविषादिभ्यस्तथैव च
वहून्यहानि निक्षिप्ते संभवन्ति च गोमये । जायन्ते कृमयोविप्राःकाष्ठेभ्यश्चघुणादयः

क्रमा द्रुमाणां जायन्ते विविधा नीलमक्षिकाः ।
तथा शुष्कविकारेभ्यः पुत्रिकाः प्रभवन्ति च ॥ ३११ ॥
कालिका शतिकेभ्यश्च सर्पा जायन्ति सर्वशः ।
संस्वेदजाश्च जायन्ते वृश्चिकाः शुष्कगोमयात् ॥ ३१२ ॥

गोभ्योहि महिषेभ्यश्चजायन्तेजन्तवःप्रभो । मत्स्याण्डश्च ... अण्डकुक्षौविशेषतः

चैवीरिकाश्च जायन्ते यथा गोजाकुलानि च।
तथाऽन्यानि च सूक्ष्माणि जलौकादीनि जातयः ॥ ३१४ ॥
कपोतकुररादिभ्यः सूक्ष्मा यूकास्तथैवच। तथैवान्येऽपि संख्याताअष्टापदकलीरकाः
मक्षिकाणां विकाराणिजायन्तेजातयोऽपरे। प्रायेणतुवसन्त्यस्मिन्नुच्छिष्टोदककर्दमे
मशकानां विकाराणि भ्रमराणां तथैव च। तृणेभ्यः समजायन्त पुत्रिकाःपुत्रसप्तकाः
मणिच्छेदास्तथा व्यालाः पोतजाः परिकीर्तिताः।
शतवेरिविकाराणि करीषेभ्यो भवन्ति हि ॥ ३१८ ॥
एवमादिरसंख्यातो गणः संस्वेदजो मया। समासाभिहतो ह्येष प्राक्कर्मवशजःस्मृतः
तथाऽन्ये नैर्ऋताः सत्त्वास्ते स्मृता उपसर्गजाः।
पूतास्तु योनिजाः केचित्केचिदौत्पत्तिकाः स्मृताः ॥ ३२० ॥
प्रायेण देवाः सर्वे वै विज्ञेया ह्युपपत्तिजाः। केचित्तु योनिजादेवाःकेचिद्देवानिमित्ततः
तूलालाघश्च कोलश्च शिवा कन्या तथैव च। अपत्यं सरमायास्तुगणा वै सरमादयः
श्यामश्च शवलश्चैव अर्जुनो हरितस्तथा। कृष्णो धूम्रारुणश्चैव तूलालावूश्च कद्रुकाः
सुरसाऽथ विजज्ञे तु शतमेकंशिरोमृतम्। सर्पाणांतक्षकोराजानागानांचापिवासुकिः
तमोवहुल इत्येष गणः क्रोधवशात्मकः ॥ ३२४ ॥
पुलहस्याऽऽत्मजात्सर्गस्ताम्रायास्तन्निबोधत।
वह्न्यास्त्वभिविख्यातास्ताम्रायाश्च विजज्ञिरे ॥ ३२५ ॥
श्येनीभासीतथाक्रौञ्चीधृतराष्ट्रीशुकीतथा। अरुणस्यभार्याश्येनीतुवीर्यवन्तौ महाबलौ
सम्पातिश्च जटायुश्च प्रसूता पक्षिसत्तमौ ॥ ३२६ ॥
सम्पातिरजनयत्पुत्रं कन्यामेकांतथैव च। जटायुषश्च येपुत्राः काकगृध्राश्वकर्णिनः ॥
भार्या गरुत्मतश्चापि भासी क्रौञ्ची तथा शुकी।
धृतराष्ट्री च भद्रा च तास्वपत्यानि वक्ष्यते (वक्ष्यहम्) ॥ ३२८ ॥
शुकी गरुत्मतः पुत्रान्सुषुवे षट् परिश्रुतान्। त्रिशिरं सुसुखं चैव बलंपृष्ठं महाबलम्
त्रिशङ्कुनेत्रं सुमुखं सुरूपं सुरसं बलम्। एषां पुत्राश्च पौत्राश्च गरुडानां महात्मनाम्

चतुर्दश सहस्राणि क्रूराणां पन्नगाशिनाम्। पुत्रपौत्रविसर्गाच्च तेषां वै वंशविस्तरः

व्याप्तानि यानि देशानि (स्थानानि) तानि वक्ष्ये यथाक्रमम्।

शाल्मलिद्वीपमखिलं देवकूटं च पर्वतम् ॥ ३३२ ॥

मणिमन्तं च शैलेन्द्रं सहस्रशिखरं तथा। पर्णमालं सुकेशं च शतशृङ्गंतथाऽचलम्॥

कौरजं पञ्चशिखरं हेमकूटं च पर्वतम्। प्रचण्डवायुप्रभवैर्दीपितैः पद्मरागिभिः।

शैलजालानि व्याप्तानि गारुडैस्तैर्महात्मभिः।

भासीपुत्राः स्मृताः भासा उलूकाः काककुक्कुटाः ॥ ३३५ ॥

मयूराः कलविङ्काश्च कपोता लावतित्तिराः।

क्रौञ्ची वार्ध्रीणसाञ्श्येनी कुररान्सारसान्बकान् ॥ ३३६ ॥

इत्येवमाद्योऽन्येऽपिक्रव्यादा ये च पक्षिणः। धृतराष्ट्रीचहंसांश्चकलहं सांश्चभामिनी

चक्रवाकांश्च विहगान्सर्वांश्चैवादकान्द्विजान्। एतानेवविजज्ञे ऽथपुत्रपौत्रमनन्तकम्

गरुडस्याऽऽत्मजाःप्रोक्ताइरायाःशृणुतप्रजाः। इराप्रजज्ञेकन्या वै तिस्रःकमललोचनाः

वनस्पतीनां वृक्षाणां वीरुधां चैव मातरः। लताचैवाथवल्ली च वीरुधा चेतितास्तु वै

लता वनस्पतीञ्जज्ञे ह्यपुष्पान्पुलिनस्थितान्। युक्तान्पुष्पफलैर्वृक्षाँल्लता वै संप्रसूयते

अथवल्ली तु गुल्मांश्च त्वक्सारास्तृणजातयः। वीरुधातदपत्यानिवंशश्चात्रसमाप्यते

एते कश्यपदायादा व्याख्याताः स्थाणुजङ्गमाः।

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च यैरिदं पूरितं जगत् ॥ ३४३ ॥

इति सर्गैकदेशस्य कीर्तितोऽवयवो मया। मारीचोऽयं प्रजासर्गः समासेन प्रकीर्तितः

न शक्यं व्यासतो वक्तुमपि वर्षशतैर्द्विजाः ॥ ३४४ ॥

अदितिर्धर्मशीला तु वलशीलादितिःस्मृता। तपःशीलातुसुरभिर्मायाशीलादनुःस्मृता

मुनिश्च गन्धशीला वै प्रावाध्ययनशालिनी।

गीतशीला त्वरिष्टाऽथ क्रोधशीला खशा स्मृता ॥ ३४६ ॥

क्रूरशीला तथा कद्रुः क्रौञ्च्यथश्रुतिशालिनी। इराऽनुग्रहशीला तु दनायुर्भक्षणेरता

वाहशीलातुविनताताम्रा वै पाशशालिनी। स्वभावालोकमातृणांशीलान्येतानिसर्वशः

धर्मतः शीलतो बुद्ध्या क्षमया बलरूपतः। रजःसत्त्वतमोवृत्ताधार्मिकाधार्मिकास्तुवै
मातृतुल्याश्चाभिजाताःकश्यपस्याऽऽत्मजाःप्रजाः। देवतासुरगन्धर्वायक्षराक्षसपन्नगाः
पिशाचाः पशवश्चैव मृगाः पतगवीरुधः ॥ ३५० ॥

यस्माद्दाक्षायणीष्वेते जज्ञिरे मानुषीष्विह। मन्वन्तरेषु सर्वेषुतस्माच्छ्रेष्ठास्तुमानुषाः
धर्मार्थकाममोक्षाणांमानुषाःसाधकास्तु वै। ततोऽधःश्रोतसस्तेवैउत्पद्यन्तेसुरासुराः
जायन्ते कार्यसिद्ध्यर्थं मानुषेषु पुनः पुनः। इत्येव वंशप्रभवःप्रसंख्यातस्तपस्विनाम्
सुराणामसुराणां च गन्धर्वाप्सरसां तथा। यक्षरक्षःपिशाचानां सुपर्णोरगपक्षिणाम्
व्यालानां शिखिनां चैवओषधीनां च सर्वशः। कृमिकीटपतङ्गानांक्षुद्राणांजलजाश्चये
पशूनां ब्राह्मणानां च श्रीमतां पुण्यलक्षणः ॥ ३५५ ॥

आयुष्यश्चैव धन्यश्चश्रीमान्हितसुखावहः। श्रोतव्यश्चैव सततं ग्राह्यश्चैवानसूयता ॥
इमं तु वंशं नियमेन यः पठेन्महात्मनां ब्राह्मणवैद्यसंसदि।
अपत्यलाभं हि लभेत पुष्कलं श्रियं धनं प्रेत्य च शोभनां गतिम् ॥३५७॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे ऋषिलक्षणं
नाम नवषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

सोमादीनामाधिपत्यकथनम्

सूत उवाच

एवं प्रजासु सृष्टासु कश्यपेन महात्मना। प्रतिष्ठितासु सर्वासु स्थावरासु चरासु च
अभिषिच्याधिपत्येषु(?) तेषांमुख्यःप्रजापतिः। ततःक्रमेणराज्यानिव्यादेष्टुमुपचक्रमे
द्विजातीनां वीरुधां च नक्षत्राणां ग्रहैःसह। यज्ञानांतपसांचैव सोमंराज्येऽभ्यषेचयत्
बृहस्पतिं तु विश्वेषां ददावङ्गिरसां पतिम्। भृगूणामधिपंचैवकाव्यंराज्येऽभ्यषेचयत्

आदित्यानां पुनर्विष्णुं वसूनामथ पावकम् । प्रजापतीनां दक्षं च मरुतामथ वासवम्
दैत्यानामथ राजानं प्रह्लादं दितिनन्दनम् । नारायणं तु साध्यानां रुद्राणां वृषभध्वजम्
विप्रचित्तिं च राजानं दानवानामथाऽऽदिशत् ।
अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं पविम् ॥
यक्षाणां राक्षसानां च पार्थिवानां धनस्य च ॥ ७ ॥
वैवस्वतं पितॄणां च यमं राज्येऽभ्यषेचयत् । सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम्
शैलानां हिमवन्तं च नदीनामथ सागरम् । गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं तदा
उच्चैःश्रवसमश्वानां राजानं चाभ्यषेचयत् । मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषं च चतुष्पदाम्
पक्षिणामथ सर्वेषां गरुडं पततां वरम् । गन्धानां मारुतं चैव भूतानामशरीरिणाम्
शब्दाकाशबलानां च वायुं बलवतां वरम् । सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषं नागानामथ वासुकिम्
सरीसृपाणां सर्पाणां नागानां चैव तक्षकम् । सागराणां नदीनां च मेघानां वर्षितस्य च ॥
आदित्यानामन्यतमं पर्जन्यमभिषिक्तवान् ॥ १३ ॥
सर्वाप्सरोगणानां च कामदेवं तथैव च । ऋतूनामथ मासानामार्तवानां तथैव च ॥
पक्षाणां च विपक्षाणां मुहूर्तानां च पर्वणाम् । कलाकाष्ठाप्रमाणानां गतेरयनयोस्तथा
गणितस्याथ योगस्य चक्रे संवत्सरं प्रभुम् ॥ १५ ॥
प्रजापतिर्वै रजसः पूर्वस्यां दिशि विश्रुतम् । पुत्रं नाम्ना सुधामानं राजानं सोऽभ्यषेचयत्
पश्चिमस्यां(मायां) दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम् ।
केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥ १७ ॥
मनुष्याणाधिपतिं चक्रे वैवस्वतं मनुम् । तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ॥
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण परिपाल्यते ॥ १८ ॥
स्वायंभुवेऽन्तरे पूर्वं ब्रह्मणा तेऽभिषेचिताः ।
नृपा ह्येतेऽभिषिच्यन्ते मनवो ये भवन्ति वै ॥ १६ ॥
मन्वन्तरेष्वतीतेषु गता ह्येतेषु पार्थिवाः । एवमन्येऽभिषिच्यन्ते प्राप्ते मन्वन्तरे पुनः
अतीतानागताः सर्वे स्मृता मन्वन्तरेश्वराः ॥ २० ॥

राजसूयेऽभिषिक्तश्च पृथुरेभिर्नरोत्तमैः । वेददृष्टेन विधिना कृतो राजा प्रतापवान्
एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासंतानकारणात् । पुनरेव महाभागः प्रजानांपतिरीश्वरः ॥
कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार परमं तपः । पुत्रौ गोत्रकरौ मह्यंभवेतामित्यचिन्तयत्
तस्य प्रध्यायमानस्यकश्यपस्यमहात्मनः । ब्रह्मणोंऽशौसुतौपश्चात्प्रादुर्भूतौमहौजसौ
वत्सारश्चासितश्चैवताबुभौब्रह्मवादिनौ । वत्साराग्निध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्चसमहायशाः
रैभ्यस्य रैभ्या विज्ञेया निध्रुवस्यनिबोधत । च्यवनस्य सुकन्यायांसुमेधाःसमपद्यत
निध्रुवस्य तु या पत्नीमाता वै कुण्डपायिनाम् । असितस्यैकपर्णायांब्रह्मिष्ठःसमपद्यत

शाण्डिल्यानां वचः श्रुत्वा देवलः सुमहायशाः ।
निध्रुवाः शाण्डिला रैभ्यास्त्रयः पश्चात्तु कश्यपाः ॥ २८ ॥

वरप्रभृतयो देवा देवलस्य प्रजास्त्विमाः । चतुर्युगे त्वतिक्रान्ते मनोर्ह्येकादशे प्रजाः

अथावशिष्टे तस्मिंस्तु द्वापरे संप्रवर्तते ॥ २९ ॥

मानसस्य च रिष्यन्तस्तस्यपुत्रोदमःकिल । मानसस्तस्यदायादस्तृणविन्दुरितिश्रुतः
त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये संबभूव ह । तस्य कन्या त्विडिविलारूपेणाप्रतिमाऽभवत्

पुलस्त्याय स राजर्षिस्तां कन्यां प्रत्यपादयत् ॥ ३१

ऋषिरिडिविलायांतु विश्रवाः समपद्यत । तस्यपत्न्यश्चतस्रस्तुपौलस्त्यकुलवर्धनाः ॥
बृहस्पतेर्बृहत्कीर्तिर्देवाचार्यस्यकीर्तिता । कन्यांतस्योपयेमे स नाम्ना वै देववर्णिनीम्

पुष्पोत्कटां च वाकां च सुते माल्यवतः स्थिते ।
कैकसीं मालिनः कन्यां तासां तु श्रृणुत प्रजाः ॥ ३४ ॥

ज्येष्ठं वैश्रवणं तस्य सुषुवे देववर्णिनी । दिव्येन विधिना युक्तमार्षेणैव श्रुतेन च

राक्षसेन च रूपेण आसुरेण बलेन च ॥ ३५ ॥

त्रिपादं सुमहाकायं स्थूलशीर्षं महातनुम् । अष्टदंष्ट्रं हरिच्छ्मश्रुं शङ्कुकर्णंविलोहितम्
ह्रस्वबाहुं प्रबाहुं च पिङ्गलं सुविभीषणम् । वैवर्तज्ञानसंपन्नं संबुद्धं ज्ञानसंपदा ॥
एवंविधं सुतं दृष्ट्वा विश्वरूपधरं तथा । पिता दृष्ट्वाऽब्रवीत्तत्र कुबेरोऽयमिति स्वयम्
कुत्सायां कितिशब्दोऽयंशरीरंबेरमुच्यते । कुबेरःकुशरीरत्वान्नाम्ना तेन च सोऽङ्कितः

यस्माद्विश्रवसोऽपत्यंसादृश्याद्विश्रवा इव । तस्माद्वैश्रवणोनामनाम्ना लोकेभविष्यति
ऋद्ध्यां कुबेरोऽजनयद्विश्रुतं नलकूबरम् । रावणं कुम्भकर्णं च कन्यां शूर्पणखां तथा

विभीषणचतुर्थांस्तान्कैकस्यजनयत्सुतान् ॥ ४१ ॥

शङ्कुकर्णो दशग्रीवः पिङ्गलो रक्तमूर्धजः । चतुष्पाद्विंशतिभुजो महाकायो महाबलः॥
जात्याऽञ्जननिभो दंष्ट्री लोहितग्रीव एव च । राजसेनो यथा युक्तोरूपेण च बलेनच
सत्यबुद्धिर्दृढतनू राक्षसैरेव रावणः । निसर्गाद्दारुणः क्रूरो रावणाद्रावणस्तु सः॥

हिरण्यकशिपुस्त्वासीत्स राजा पूर्वजन्मनि ।
चतुर्युगानि(णि) राजाऽत्र त्रयोदश स राक्षसः ॥ ४५ ॥
ताः पञ्च कोट्यो वर्षाणामाख्याताः संख्यया द्विजैः ।
नियुतान्येकषष्टिश्च संख्याविद्भिरुदाहृता ॥ ४६ ॥

षष्टिं शतसहस्राणि वर्षाणां तु स रावणः । देवतानामृषीणां च घोरं कृत्वाप्रजागरम्
त्रेतायुगे चतुर्विंशे रावणस्तपसः क्षयात् । रामं दाशरथिं प्राप्य सगणःक्षयमीयिवान्

महोदरः प्रहस्तश्च महापांशुः खरस्तथा ।
पुष्पोत्कटायाः पुत्रास्ते कन्या कुम्भीनसी तथा ॥ ४९ ॥

त्रिशिरा दूषणश्चैवविद्युज्जिह्वश्चराक्षसः । कन्या ह्यसलिकाचैववाकायाःप्रसवाःस्मृताः
इत्येते क्रूरकर्माणः पौलस्त्या राक्षसा दश । दारुणाभिजनाः सर्वे देवैरपि दुरासदाः
सर्वे लब्धवराश्चैव पुत्रपौत्रसमन्विताः । यक्षाणांचैवसर्वेषांपौलस्त्या ये च राक्षसाः
आगस्त्यवैश्वामित्राणां क्रूराणां ब्रह्मरक्षसाम् । वेदाध्ययनशीलानांतपोव्रतनिषेविणाम्
तेषामैडविलो राजा पौलस्त्यः सव्यपिङ्गलः । इतरे वै यज्ञमुखास्तेन रक्षोगणास्त्रयः

यातुधाना ब्रह्मधाना वार्ताश्चैव दिवाचराः ।
निशाचरगणास्तेषां चत्वारः कविभिः स्मृताः ॥ ५५ ॥
पौलस्त्या नैर्ऋताश्चैव आगस्त्याः कौशिकास्तथा ।
इत्येताः सप्त तेषां वै जातयो राक्षसाः स्मृताः ॥ ५६ ॥

तेषां रूपं प्रवक्ष्यामि स्वभावेनव्यवस्थितम् । वृत्ताक्षाःपिङ्गलाश्चैवमहाकायामहोदराः

अष्टदंष्ट्राः शङ्कुकर्णाऊर्ध्वरोमाणएव च । आकर्णदारितास्याश्च मुञ्जधूमोर्ध्वमूर्धजाः
स्थूलशीर्षाः सिताभाश्च ह्रस्वकाश्च प्रबाहुकाः ।
ताम्रास्या लम्बजिह्वोष्ठा लम्बभ्रूस्थूलनासिकाः ॥ ५९ ॥
नीलाङ्गा लोहितग्रीवा गम्भीराक्षा विभीषणाः ।
महाघोरस्वराश्चैव विकटा बद्धपिण्डिकाः ॥ ६० ॥
स्थूलाश्च तुङ्गनासाश्चशिलासंहनना दृढाः । दारुणाभिजनाःक्रूराःप्रायशःक्लिष्टकर्मिणः
सकुण्डलाङ्गदापीडा मुकुटोष्णीषधारिणः । विचित्रवस्त्राभरणाश्चित्रस्रगनुलेपनाः ॥
अन्नादाः पिशितादाश्चपुरुषादाश्च ते स्मृताः । इत्येतद्रूपसाधर्म्यंराक्षसानांबुधैःस्मृतम्
न समस्तबलं बुद्धं यतो मायाकृतं हि तत् ॥ ६३ ॥
पुलहस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्यालाश्च दंष्ट्रिणः ।
भूताः पिशाचाः सर्पाश्च भ्रमरा हस्तिनस्तथा ॥ ६४ ॥
वानराः किंनराश्चैवमयूकिंपुरुषास्तथा । येऽन्येचैव परिक्रान्ता मायाक्रोधवशानुगाः
अनपत्यः क्रतुस्तस्मिन्स्मृतो वैवस्वतेऽन्तरे ।
न तस्य पुत्रः पौत्रो वा तेजः संक्षिप्य वा स्थितः ॥ ६६ ॥
अत्रेर्वंशं प्रवक्ष्यामि तृतीयस्य प्रजापतेः । तस्य पत्न्यश्च सुन्दर्योदशैवाऽऽसन्पतिव्रताः
भद्राश्वस्यघृताच्यां वै दशाप्सरसिसूनवः । भद्रा शूद्रा च मद्रा च शलदामलदातथा
वेला खला च सप्तैता या च गोचपला स्मृता । तथा मानरसा चैव रत्नकूटाचतादश
आत्रेयवंशकृत्तासां भर्ता नाम्ना प्रभाकरः । भद्रायां जनयामास सोमं पुत्रंयशस्विनम्
स्वर्भानुना हते सूर्ये पतमाने दिवो महीम् । तमोभिभूतेलोकेऽस्मिन्प्रभा येन प्रवर्तिता
स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्तः स पतन्निह दिवाकरः ।
ब्रह्मर्षेर्वचनात्तस्य न पपात दिवो महीम् ॥ ७२ ॥
अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः । यज्ञेष्वत्रिघनश्चैव सुरैर्यश्च प्रवर्तितः(?)
सता स्वजनयत्पुत्रानात्मतुल्याननामकान् । दशतास्वेव महता तपसा भावितप्रभाः
स्वस्त्यात्रेया इतिख्याता ऋषयोवेदपारगाः । तेषांविख्यातयशसौब्रह्मिष्ठौसुमहौजसौ

दत्तात्रेयस्तस्य ज्येष्ठो दुर्वासास्तस्यचानुजः । यवीयसीसुतातस्यामवलाब्रह्मवादिनी ।
अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकं पौराणिकाः पुरा ॥ ७६ ॥
अत्रे पुत्रं महात्मानं शान्तात्मानमकल्मषम् । दत्तात्रेयं तनुंविष्णोःपुराणज्ञाःप्रचक्षते
तस्यगोत्रान्वये जाताश्चत्वारःप्रथिता भुवि । श्यामाश्चमुद्गलाश्चैववलारकगविष्ठिराः
एते नृणां तु चत्वारः स्मृताः पक्षा महौजसाम् ॥ ७८ ॥
कश्यपान्नारदश्चैव पर्वतोऽरुन्धतीतथा । जज्ञिरे च त्वरुन्धत्यास्तान्निबोधतसत्तमाः
नारदस्तु वसिष्ठायारुन्धतीं प्रत्यपादयत् । ऊर्ध्वरेता महातेजा दक्षशापात्तु नारदः ॥
पुरा देवासुरे तस्मिन्सङ्ग्रामे तारकामये । अनावृष्ट्या हते लोके व्यग्रे शक्रे सुरैःसह
वशिष्ठस्तपसा धीमान्धारयामास वे प्रजाः ॥ ८१ ॥
अन्नौषधं मूलफलमोषधीश्च प्रवर्तयन् । तास्तेन जीवयामास कारुण्यादौषधेन तु ॥
अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयद्द्विजाः । सागरं जनयच्छक्तेरदृश्यन्तीपराशरम्
काली पराशराज्जज्ञे कृष्णद्वैपायनं प्रभुम् ।
द्वैपायनादरण्यां वै शुको जज्ञे गुणान्वितः ॥ ८४ ॥
उत्पद्यन्ते च पीवर्यां षडिमे शुकसूनवः । भूरिश्रवाः प्रभुः शंभुः कृष्णो गौरश्चपञ्चमः
कन्या कीर्तिमती चैव,योगमाता दृढव्रता । जननी ब्रह्मदत्तस्य पत्नी सात्वगुहस्य च
श्वेताः कृष्णाश्च गौराश्च श्यामा धूम्राः समूलिकाः ।
उष्मपा दारकाश्चैव नीलाश्चैव पराशराः ॥
पाराशराणामष्टौ ते पक्षाः प्रोक्ता महात्मनाम् ॥ ८७ ॥
अत ऊर्ध्वं निबोधध्वमिन्द्रप्रतिमसंभवम् । वसिष्ठस्य कपिञ्जल्यां घृताच्यां समपद्यत
कुशीतियः समाख्यात इन्द्रप्रतिम उच्यते ॥ ८८ ॥
पृथोः सुतायाः संभूतः पुत्रस्तस्याभवद्वसुः । उपमन्युः सुतस्तस्य यस्येमे उपमन्यवः
मित्रावरुणयोश्चैवकुण्डिनो ये परिश्रुताः । एकार्षेयास्तथैवान्येवसिष्ठानामविश्रुताः
एते पक्षा वसिष्ठानां स्मृता एकादशैव तु ॥ ९० ॥
इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा मानसा ह्यष्ट विश्रुताः । भ्रातरःसुमहाभागा येषांवंशाःप्रतिष्ठिताः

त्रीँल्लोकान्धारयन्तीमान्देवर्षिगणसंकुलान्। तेषांपुत्राश्चपौत्राश्चशतशोऽथसहस्रशः
यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्यस्येव गभस्तिभिः ॥ ६२ ॥
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे ऋषिवंशानुकीर्तनं नाम
सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

पितृसर्गनिरूपणम्

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य सूतस्य विदितात्मनः। उत्तरं परिपप्रच्छुः सूतपुत्रं द्विजातयः

शांशपायन उवाच

कथं द्वितीयमुत्पन्ना भवानी प्राक्सती तु या। आसीद्दाक्षायणी पूर्वमुमाकथमजायत
मेनायां पितृकन्यायां जनयामास शैलराट्। के चैते पितरश्चैवयेषां मेना तु मानसी
मैनाकश्चैव दौहित्रोदौहित्री च तथा ह्युमा। एकपर्णातथाचैव तथा या चैकपाटला
गङ्गा चैव सरिच्छ्रेष्ठा सर्वासां पूर्वजा तथा। पूर्वमेव मयोद्दिष्टं श्रृणुध्वं मम सर्वशः
क एते पितरश्चैववर्तन्ते क्व च वा पुनः। श्रोतुमिच्छामिभद्रंतेश्राद्धस्य च परंविधिम्
पुत्राश्च ते स्मृताः केषां कथं च पितरस्तु ते।
पितरः कथमुत्पन्नाः कस्य पुत्राः किमात्मकाः ॥ ७ ॥
स्वर्गे तु पितरोऽन्ये ये देवानामपिदेवताः। एवं वै श्रोतुमिच्छामिपितृणांसर्गमुत्तमम्
यथावद्दत्तमस्माभिः श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन् ॥ ८ ॥
यदर्थं ते न दृश्यन्ते तत्र किं कारणं स्मृतम्। स्वर्गे हि केतु वर्तन्तेपितरो नरके तु के
अभिसंधाय पितरं पितुश्च पितरं तथा। पितुः पितामहं चैव त्रिषु पिण्डेषु नामतः
कानि श्राद्धानि देयानि कथं गच्छन्ति वै पितॄन्।
कथं च शक्तास्ते दातुं नरकस्थाः फलं पुनः ॥ ११ ॥
के चेह पितरो नाम कान्यजामोवयं पुनः। देवाअपिपितॄन्स्वर्गेयजन्तीतिहि नःश्रुतम्

एतदिच्छामि वै श्रोतुं विस्तरेण बहुश्रुत । स्पष्टाभिधानमर्थं वै तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥
ऋषीणां तु वचः श्रुत्वासूतस्तत्त्वार्थदर्शिवान् । आचचक्षेयथाप्रश्नंऋषीणांमानसंततः

सूत उवाच

अत्र वो वर्णयिष्यामि यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् । मन्वन्तरेषु जायन्ते पितरो देवसूनवः
अतीतानागते ज्येष्ठाः कनिष्ठा क्रमशस्तु ते । देवैः सार्धंपुराऽतीताः पितरोयेऽन्तरेपुवै
वर्तन्ते सांप्रतं ये तु तान्वै वक्ष्यामि निश्चयात् ॥ १६ ॥
श्राद्धं चैषां मनुष्याणां श्राद्धमेव प्रवर्तते । देवानसृजत ब्रह्मा नायक्षन्निति वै पुनः ॥
तमुत्सृज्य तदात्मानमसृजंस्ते फलार्थिनः ॥ १७ ॥
ते शप्ता ब्रह्मणा मूढानष्टसंज्ञाभविष्यथ । न स्म किंचिद्विजानन्ति ततो लोकोह्यमुह्यत
ते भूयः प्रणताः सर्वे याचन्ति स्म पितामहम् । अनुग्रहायलोकानांपुनस्तानब्रवीत्प्रभुः
प्रायश्चित्तंचरध्वंवैव्यभिचारोहिवः कृतः । पुत्रान्स्वान्परिपृच्छध्वंततोज्ञानमवाप्स्यथ
ततस्तेस्वान्सुतांश्चैवप्रायश्चित्तजिगृक्षवः । अपृच्छन्संयतात्मानोविधिवच्चमिथोमिथः
तेभ्यस्ते नियतात्मानः प्रशशंसुरनेकधा । प्रायश्चित्तानि धर्मज्ञा वाङ्मनःकर्मजानि तु
ते पुत्रानब्रुवन्प्रीता लब्धसंज्ञादिवौकसः । यूयं वै पितरोऽस्माकं ये वयंप्रतिबोधिताः
धर्मज्ञानं त्र कामश्च को वरो वः प्रदीयताम् ॥ २३ ॥
पुनस्तानब्रवीद्ब्रह्मा यूयं वै सत्यवादिनः । तस्माद्यदुक्तं युष्माभिस्तत्तथान तदन्यथा
उक्तंचपितरोऽस्माकमितिवैतनयाःस्वकाः । पितरस्तेभविष्यन्तितेभ्योऽयंदीयताम्वरः
तेनैव वचसा पुत्रा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । पुत्राः पितृत्वमाजग्मुः पुत्रत्वं पितरः पुनः ॥
तस्मात्ते पितरः पुत्राःपितृत्वंतेषुतत्स्मृतम् । एवंस्मृत्वापितॄन्पुत्रान्पुत्रांश्चपितरस्तथा
व्याजहार पुनर्ब्रह्मा पितॄनात्मविवृद्धये ॥ २७ ॥
यो ह्यनिष्ट्वा पितॄञ्श्राद्धे क्रियां कांचित्करिष्यति ।
राक्षसा दानवाश्चैव फलं प्राप्स्यन्ति तस्य तत् ॥ २८ ॥
श्राद्धैराप्यायिताश्चैव पितरः सोममव्ययम् ।
आप्याय्यमाना युष्माभिर्वर्धयिष्यन्ति नित्यशः ॥ २९ ॥

श्राद्धैराप्यायितः सोमो लोकानाप्याययिष्यति। कृत्स्नंसपर्वतवनंजङ्गमाजङ्गमैर्वृतम्

श्राद्धानि पुष्टिकामाश्च ये करिष्यन्ति मानवाः।
तेभ्यः पुष्टिं प्रजाश्चैव दास्यन्ति पितरः सदा ॥ ३१ ॥

श्राद्धे येभ्यः प्रदास्यन्ति त्रीन्पिण्डान्नामगोत्रतः। सर्वत्रवर्तमानास्तेपितरःप्रपितामहम्
तेषामाप्याययिष्यन्ति श्राद्धदानेन वै प्रजाः ॥ ३२ ॥

एवमाज्ञा कृता पूर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना। तेनैतत्सर्वथा सिद्धं दानमध्ययनं तपः ॥३३

ते तु ज्ञानप्रदातारः पितरो वो व संशयः। इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरःपुनः ॥
अन्योन्यपितरो ह्येते देवाश्च पितरश्च ह ॥ ३४ ॥

एतद्ब्रह्मवचः श्रुत्वा सूतस्य विहितात्मनः। पप्रच्छुर्मुनयो भूयः सूतं तस्माद्यदुत्तरम्

ऋषय ऊचुः

कियन्तो वै पितृगणाः कस्मिन्काले च ते गणाः। वर्तन्तेदेवप्रवरादेवानांसोमवर्धनाः

सूत उवाच

एतद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि पितृसर्गमनुत्तमम्। शंयुः पप्रच्छ यत्पूर्वं पितरं वै बृहस्पतिम्

बृहस्पतिमुपासीनं सर्वज्ञानार्थकोविदम्। पुत्रःशंयुरिमं प्रश्नं पप्रच्छ विनयान्वितः ॥

क एते पितरो नाम कियन्तः के च नामतः। समुद्भूताः कथंचैतेपितृत्वंसमुपागताः

कस्माच्च पितरं पूर्वंयज्ञेऽयुज्यन्तनित्यशः। क्रियाश्चसर्वावर्तन्तेश्राद्धपूर्वामहात्मनाम्
कस्मै श्राद्धानि देयानि किं च दत्तं महाफलम्।
केषु वाऽप्यक्षयं श्राद्धं तीर्थेषु च नदीषु च ॥ ४१ ॥

केषु वै सर्वमाप्नोतिश्राद्धंकृत्वाद्विजोत्तमः। कश्च कालोभवेच्छ्राद्धेविधिःकश्चानुवर्तते

एतदिच्छामि भगवान्विस्तरेण यथातथम्। व्याख्यातुमानुपूर्व्येण यत्र चोदाहृतंमया

बृहस्पतिरिदं सम्यगेवं पृष्टो महामतिः। व्याजहाराऽऽनुपूर्व्येण प्रश्नं प्रश्नविदां वरः

बृहस्पतिरुवाच

कथयिष्यामि ते तातयन्मांत्वं परिपृच्छसि। विनयेनयथान्यायं गम्भीरंप्रश्नमुत्तमम्

द्यौरन्तरीक्षंपृथिवी नक्षत्राणि दिशस्तथा। सूर्याचन्द्रमसौ चैवतथाऽहोरात्रमेव च ॥

न बभूवुस्तदा ताततमोभूतमिदं जगत्। ब्रह्मैकोदुश्चरंतत्र चचार परमं तपः ॥ ४७॥
शंयुस्तमब्रवीद्भूयः पितरं ब्रह्मवित्तमम्। सर्वदैव व्रतस्नातं सर्वज्ञानविदां वरम्
कीदृशं सर्वभूतेशस्तपस्तेपे प्रजापतिः। एवमुक्तो बृहत्तेजा बृहस्पतिरुवाच तम्
सर्वेषांतपसांयुक्तिस्तपोयोगमनुत्तमम्। ध्यायंस्तदा तद्भगवांस्तेनलोकानवासृजत्।
भूतभव्यानिज्ञानानिलोकान्वेदांश्च कृत्स्नशः। योगमाविश्यतत्सृष्टंब्रह्मणायोगचक्षुषा

लोकाः सांतानिका नाम यत्र तिष्ठन्ति भास्वराः।
ते वैराजा इतिख्याता देवानां दिवि देवताः ॥ ५२ ॥

योगेन तपसा युक्तः पूर्वमेव तदा प्रभुः। देवानसृजत ब्रह्मा योगं युक्त्वा सनातनम्।
आदिदेवा इति ख्याता महासत्त्वा महौजसः। सर्वकामप्रदाः पूज्या देवदानवमानवैः
तेषां सप्त समाख्याता गणास्त्रैलोक्यपूजिताः। अमूर्तयस्त्रयस्तेषांचत्वारस्तुसुमूर्तयः
उपरिष्टात्त्रयस्तेषां वर्तन्ते भावमूर्तयः। तेषामधस्ताद्वर्तन्ते चत्वारः सूक्ष्ममूर्तयः॥
ततो देवास्ततो भूमिरेषा लोकपरम्परा। लोके वर्तन्ति ते ह्यस्मिस्तेभ्यःपर्जन्यसंभवः

वृष्टिर्भवति तैर्वृष्ट्या लोकानां संभवः पुनः ॥ ५७ ॥
आप्याययन्ति ते यस्मात्सोमं चान्नं च योगतः।
ऊचुस्तान्वै पितॄंस्तस्माल्लोकानां लोकसत्तमाः ॥ ५८ ॥

मनोजवाःस्वधाभक्षाःसर्वकामपरिच्छदाः। लोभमोहभयापेतानिश्चिताःशोकवर्जिताः

एते योगं परित्यज्य प्राप्ता लोकान्सुदर्शनान्।
दिव्याः पुण्या महात्मानो विपाप्मानो भवन्त्युत ॥ ६० ॥

ततो युगसहस्रान्ते जायन्ते ब्रह्मवादिनः। प्रतिलभ्य पुनर्योगं मोक्षं गच्छन्त्यमूर्तयः॥
व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्य महायोगबलेन च। नश्यन्त्युल्केव गगने क्षीणविद्युत्प्रभेव वा।
उत्सृज्य देहजातानि महायोगबलेन च। निराख्योपाख्यतांयान्तिसरितः सागरेयथा
क्रियया गुरुपूजाभिर्योगं कुर्वन्ति नित्यशः। ताभिराप्याययन्त्येते पितरोयोगवर्धनाः

श्राद्धे प्रीताः पुनः सोमं पितरो योगमास्थिताः।
आप्याययन्ति योगेन त्रैलोक्यं येन जीवति ॥ ६५ ॥

तस्माच्छ्राद्धानि देयानि योगिभ्यो यत्नतः सदा।
पितॄणां हि बलं योगो योगात्सोमः प्रवर्तते ॥ ६६ ॥

सहस्रशस्तु विप्रान्वै भोजयेद्यावदागतान्। एकस्तु योगवित्प्रीतः सर्वानर्हति तच्छृणु
कल्पितानां सहस्रेण स्नातकानां शतेन च। योगाचार्येण यद्भुक्तं त्रायते महतो भयात्
गृहस्थानां सहस्रेण वानप्रस्थशतेन च। ब्रह्मचारिसहस्रेण योगी ह्येको विशिष्यते ॥

नास्तिको वा विकर्मा वा संकीर्णस्तस्करोऽपि वा।
नान्यत्र कारणं दानं योगेष्वाह प्रजापतिः ॥ ७० ॥

पितरस्तस्यतुष्यन्तिसुवृष्टेनेवकर्षकाः। पुत्रोवाऽप्यथवापौत्रोध्यानिनं भोजयिष्यति
अलाभेध्यानिभिक्षणांभोजयेद्ब्रह्मचारिणौ। तदलाभेऽप्युदासीनंगृहस्थमपिभोजयेत्
यस्तिष्ठेदेकपादेन वायुभक्षः शतंसमाः। ध्यानयोगी परस्तस्मादिति ब्रह्मानुशासनम्
सिद्धाहिविप्ररूपेणचरन्तिपृथिवीमिमाम्। तस्मादतिथिमायान्तमभिगच्छेत्कृताञ्जलिः
पूजयेच्चार्घ्यपाद्येन वेश्मना भोजनेन च। उर्वीं सागरपर्यन्तां देवा योगेश्वराः सदा

नानारूपैश्चरन्त्येते प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ ७५ ॥

तस्माद्दद्याच्च वै दानंविप्रायातिथये नरः। प्रदानानि प्रवक्ष्यामि फलं चैषां तथैव च ॥
अश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च। पुण्डरीकसहस्रेण योगिष्वावसथो वरम् ॥७७॥
आद्यएषगणःप्रोक्तःपितॄणाममितौजसाम्। भावयन्सप्त कालान्वै स्थितएष गणःसदा
अतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामिसर्वान्पितृगणान्पुनः। संततिंसंस्थितिंचैव भावनांच यथाक्रमम्

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे श्राद्धक्रियारम्भो
नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

पितृगणानां निरूपणम्

सूत उवाच

सप्त मेधावतां श्रेष्ठाः स्वर्गे पितृगणाः स्मृता। चत्वारो मूर्तिमन्तश्चत्रयस्तेषाममूर्तयः
तेषां लोकविसर्गं तु कीर्तयिष्ये निबोधत ॥ १ ॥
या वै दुहितरस्तेषां दौहित्राश्चैव ये स्मृताः। धर्ममूर्तिधरास्तेषां ये त्रयः परमा गणाः
नामानि लोकसर्गंचतेषांवक्ष्येसमासतः । लोकाविरजसोनाम्नायत्रतिष्ठन्ति भास्वराः
अमूर्तयः पितृगणाः पुत्रास्ते वै प्रजापतेः । विरजस्यद्विजाः श्रेष्ठा वैराजाइतिविश्रुताः
एष वै प्रथमः कल्पो वैराजानां प्रकीर्तितः ॥ ४ ॥
तेषां तु मानसी कन्या मेनानाम महागिरेः । पत्नीहिमवतःशुभ्रा यस्यांमैनाक उच्यते
जातः सर्वौषधिधरः सर्वरत्नाकरात्मवान् ।
पर्वतः प्रवरः पुण्यः क्रौञ्चस्तस्याऽऽत्मजोऽभवत् ॥ ६ ॥
तिस्रः कन्यास्तु मेनायां जनयामास शैलराट् । अपर्णामेकपर्णांचतृतीयामेकपाटलाम्
आश्रिते द्वे ह्यपर्णातु अनिकेता तपोऽचरत् । न्यग्रोधमेकपर्णी तु पाटलामेकपाटला
शतं वर्षसहस्राणि दुश्चरं देवदानवैः ॥ ८ ॥
आहारमेकपर्णेन एकपर्णी समाचरत् । पाटलेनैव चैकेन विदध्यादेकपाटला ॥ ९ ॥
पूर्णे पूर्णे सहस्रे द्वे आहारं वै प्रचक्रतुः । एका तत्र निराहारा तां माता प्रत्यभाषत
निषेधयन्ती ह्युमेति माता स्नेहेन दुःखिता । सातथोक्तातयादेवीमात्रा दुश्चरचारिणी
उमेति सा महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता । तथेतिनाम्नातेनासौनिरुक्ताकर्मणाशुभा
एतत्तु त्रिकुमारीकं जगत्स्थास्यति शाश्वतम् । एतासां तपसाद्गप्तंयावद्भूमिर्धरिष्यति
तपःशरीरास्ताः सर्वास्तिस्रो योगबलान्विताः ।
देव्यस्ताः सुमहाभागाः सर्वाश्च स्थिरयौवनाः ॥ १४ ॥

सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वाश्चैवोर्ध्वरेतसः। उमा तासां वरिष्ठा च श्रेष्ठा च वरवर्णिनी
महायोगबलोपेता महादेवमुपस्थिता। दन्तकाण्वोशनास्तस्याः पुत्रो वै भृगुनन्दनः
असितस्यैकपर्णी तु पत्नी साध्वी दृढव्रता। दत्ताहिमवतातस्मै योगाचार्याय धीमते

देवलं सुषुवे सा तु ब्रह्मिष्ठं मानसं सुतम् ॥ १७ ॥

या चैतासां कुमारीणां तृतीया त्वेकपाटला। पुत्रं शतशिलाकस्यजैगीषव्यमुपस्थिता
तस्यापि शङ्खलिखितौस्मृतौपुत्रावयोनिजौ। इत्येतावैमहाभागाःकन्याहिमवतःशुभाः
रुद्राणी सा तु प्रवरा स्वगुणैरतिरिच्यते। अन्योन्यप्रीतिरनयोरुमाशंकरयोरथ ॥
श्लेषं संसक्तयोर्ज्ञात्वाशङ्कितः किलवृत्रहा। ताभ्यां मैथुनसक्ताभ्यामपत्योद्भवभीरुणा

तयोः सकाशमिन्द्रेण प्रेषितो हव्यवाहनः ॥ २१ ॥

अनयो रतिविघ्नश्च त्वमाचर हुताशन। सर्वत्र गत एव त्वं न दोषो विद्यते तदा ॥
इत्येवमुक्ते तु तथा वह्निना च तथा कृतम्। उमादेहं समुत्सृज्य शुक्रं भूमौ विसर्जितम्
ततो रुषितया देव्या शप्तोऽग्निः शांशपायन। इदं चोक्तवती वह्निं रोषगद्गदया गिरा
यस्मान्मय्यवितृप्तायां रतिविघ्नं हुताशन। कृतवानस्य कर्तव्यं तस्मात्त्वमसि दुर्मतिः
यदेवं विभृतं गर्भं रौद्रं शुक्रं महाप्रभम्। गर्भं त्वं धारयस्वैवमेषा ते दण्डधारणा ॥
स शापरोषाद्रुद्राण्या अन्तर्गर्भो हुताशनः। बहून्वर्षगणान्गर्भं धारयामास वै द्विजाः
स गङ्गामुपगम्याऽऽह श्रूयतां सरिदुत्तमे। सुमहान्परिखेदो मे गर्भधारणकारणात् ॥
मद्धितार्थमिमं गर्भमतो धारय निम्नगे। मत्प्रसादाच्च खेदो वै मन्दस्तव भविष्यति ॥
तथेत्युक्त्वा तदा सा तु संप्रहृष्टा महानदी। तंगर्भं धारयामास दह्यमानेन तेजसा ॥
साऽपि कृच्छ्रेण महता खिद्यमाना महानदी। कालं प्रकृष्टं सुमहद्गर्भधारणतत्परा ॥
तया परिगतं गर्भं कुक्षौ हिमवतः शुभे। शुभं शरवणं नाम चित्रं पुष्पितपादपम् ॥

तत्र तं व्यसृजद्गर्भं दीप्यमानमिवानलम् ॥ ३२ ॥

रुद्राग्निगङ्गातनयस्तत्र जातोऽरुणप्रभः। आदित्यशतसंकाशो महातेजाः प्रतापवान्
तस्मिञ्जाते महाभागे कुमारे जाह्नवीसुते। विमानयानैराकाशं पतत्त्रिभिरिवावृतम् ॥
देवदुन्दुभयो नेदुराकाशे मधुरस्वराः। मुमुचुः पुष्पवर्षं च खेचराः सिद्धचारणाः ॥

जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च सर्वशस्तत्र तत्र ह। यक्षा विद्याधराः सिद्धाः किंनराश्चैव सर्वश
महानागसहस्राणि प्रवराश्च पतत्रिणः। उपतस्थुर्महाभागमाग्नेयं शंकरात्मजम्
प्रभावेण हतास्तेन दैत्यदानवराक्षसाः ॥ ३७ ॥
सह सप्तर्षिभार्याभिरादावेवाग्निसंभवः। अभिषेकप्रयाताभिर्दृष्टो वर्ज्यं त्वरुन्धतीम्
ताभिःसबालार्कनिभोरौद्रःपरिवृतःप्रभुः। स्निह्यमानाभिरत्यर्थं स्वकाभिरिव मातृभि
युगपत्सर्वदेवीर्हि दिदृक्षुर्जाह्नवीसुतः। षण्मुखान्यसृजच्छ्रीमांस्तासां प्रीत्या महाद्युति
श्रीमान्कमलपत्राक्षस्तरुणादित्यसंनिभः। येन जातेन लोकानामाक्षेपस्तेजसा कृतः
तेनजातेनमहतादेवानामसहिष्णवः। स्कन्दिता दानवगणास्तस्मात्स्कन्दः प्रतापवा
कृत्तिकाभिस्तु यस्मात्स वर्धितः सपुरातनः। कार्तिकेयइति ख्यातस्तस्मादसुरसूद
जृम्भतस्तस्य दैत्यारेर्ज्वालामालाकुलात्तदा।
मुखाद्विनिर्गता तस्य स्वशक्तिरपराजिता ॥ ४४ ॥
क्रीडार्थं चैव स्कन्दस्य विष्णुना प्रभविष्णुना। गरुडादतिसृष्टौहिपक्षिणौहिप्रभद्रौ
मयूरः कुक्कुटश्चैव पताका चैव वायुना। यस्यदत्ता सरस्वत्यामहावीणा महास्वन
अजः स्वयंभुवा दत्तो मेषो दत्तश्च शंभुना ॥ ४६ ॥
मायाविहरणे विप्रा गिरौ क्रौञ्चे निपातिते। तारके चासुरवरे समुदीर्णे निपातिते
सेन्द्रोपेन्द्रैर्महाभागैर्देवैरग्निसुतः प्रभुः। सैनापत्येन दैत्यारिरभिषिक्तः प्रतापवान्
देवसेनापतिस्त्वेवं पठ्यते नरनायकः। देवारिस्कन्दनः स्कन्दः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः
प्रमथैर्विविधैर्देवैस्तथा भूतगणैरपि। मातृभिर्विविधाभिश्च विनायकगणैस्तथा

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे सेनान्युत्पत्तिकथनं
नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

———

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

अच्छोदसरोवरवर्णनम् अग्निष्वात्तादि पितॄणां निरूपणञ्च

वृहस्पतिरुवाच

लोकाः सोमपदा नाम मारीचेर्यत्रवै सुताः। पितरोदिविवर्तन्तेदेवास्तान्भावयन्तिवै

अग्निष्वात्ता इति ख्याताः सर्व एवामितौजसः।

एतेषां मानसी कन्या अच्छोदा नाम निम्नगा ॥ २ ॥

अच्छोदं नाम तद्दिव्यं सरो यस्याः समुच्छ्रितम्।

अद्रिकाप्सरसा युक्तं विमानैर्धिष्ठितं दिवि ॥ ३ ॥

अमूर्तिमतश्च पितॄन्ददृशे सा तु विस्मिता। पीडिताऽनेन दुःखेन बभूव वरवर्णिनी ॥

सा दृष्ट्वा पितरं वव्रे वसूनामन्तरिक्षगम्। अमावसुरिति ख्यातमायोः पुत्रं यशस्विनम्

सा तेन व्यभिचारेण मनसः कामचारिणी। पतिकामा तदासा च योगभ्रष्टा पपातह

सा त्वपश्यद्विमानानिपतन्तीसादिवश्च्युता। त्रसरेणुप्रमाणानितेष्वपश्यच्चतान्पितॄन्

सुसूक्ष्मानपरित्यक्तानग्नीनग्निष्विवाऽऽहितान्।

त्रायध्वमित्युवाचाथ पतन्ती तानवाक्शिराः ॥ ८ ॥

तैरुक्ता सा तु मा भैषीरित्युक्ताऽधिष्ठिताऽभवत्।

ततः प्रसादयत्सा वै पितॄंस्तान्दीनया गिरा ॥ ६ ॥

ऊचुस्तेपितरःकन्यां भ्रष्टैश्वर्यांव्यतिक्रमात्। भ्रष्टैश्वर्यास्वदोषेणपतसित्वंशुचिस्मिते

यैः क्रियन्ते च कर्माणि शरीरैरिह दैवतैः। तैरेव तत्कर्मफलं प्राप्नुवन्तीह देवताः ॥

सद्यः फलन्ति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे।

तस्मादमावसौ (सुं) पत्यं (तिं) त्वं प्रेत्य प्राप्स्यसे फलम् ॥ १२ ॥

इत्युक्तया वै पितरःपुनस्तेतुप्रसादिताः। ध्यात्वाप्रसादंसंचक्रुस्तस्यास्तेत्वनुकम्पया

अवश्यंभाविनं दृष्ट्वा ह्यर्थमूचुस्ततः सुराः। सोमपाः पितरः कन्यांराज्ञश्चैवह्यमावसोः

उत्पन्नस्य पृथिव्यां तु मानुषत्वे महात्मनः ।
कन्या भूत्वा त्विमाँल्लोकान्पुनः प्राप्स्यसि स्वानिति ॥ १५ ॥

अष्टाविंशे भवित्री त्वं द्वापरे मत्स्ययोनिजा । अस्यैव राज्ञो दुहिता अद्रिकायां ह्यमावसोः ।
पराशरस्य दायादमृषेस्त्वं जनयिष्यसि । स वेदमेकं विप्रर्षिश्चतुर्धा वै करिष्यति ।
महाभिषस्य पुत्रौ द्वौ शंतनोः कीर्तिवर्धनौ । विचित्रवीर्यं धर्मज्ञं त्वमेवोत्पादयिष्यसि ।
चित्राङ्गदश्च राजानं तेजोबलगुणान्वितम् । एतानुत्पाद्य पुत्रांस्त्वं पुनर्लोकानवाप्स्यसि ।

व्यतिक्रमात्पितॄणां त्वं प्राप्स्यसे जन्म कुत्सितम् ।
तस्यैव राज्ञस्त्वं कन्या अद्रिकायां भविष्यसि ॥ २० ॥

कन्याभूत्वा ततश्च त्वमिमाँल्लोकानवाप्स्यसि । एवमुक्ता तु दासेयी जाता सत्यवती तु ।
अद्रिकायां सुता मत्स्यां सुता जाता ह्यमावसोः । अद्रिका मत्स्यसंभूता गङ्गायमुनसं
तस्य राज्ञो हि सा कन्या राज्ञो वीर्येस दैवहि । विरजा नाम ते लोका दिवि रोचन्ति ते गवा
अग्निष्वात्ताः स्मृतास्तत्र पितरो भास्वरप्रभाः । तान्दानवगणा यक्षा रक्षोगन्धर्वकिन्नरा
भूतसर्पपिशाचाश्च भावयन्ति फलार्थिनः । एते पुत्राः समाख्याताः पुलहस्य प्रजाप
त्रय एते गणाः प्रोक्ता धर्ममूर्तिधराः शुभाः । एतेषां मानसी कन्या पीवरी नाम विश्रु
योगिनी योगपत्नी च योगमाता तथैव च । भविता द्वापरं प्राप्य अष्टाविंशं तदैव
पराशरकुलोद्भूतः शुको नाम महातपाः । श्रीमान्योगी महायोगी योगस्तस्माद्द्विजोत्त
व्यासादरण्यां संभूतो विधूम इव पावकः । स तस्यां पितृकन्यायां योगाचार्यान्परिश्रुत
कृष्णं गौरं प्रभुं शंभुं तथा भूरिश्रुतं च वै । कन्यां कीर्तिमतीं चैव योगिनीं योगमात
ब्रह्मदत्तस्य जननी महिषी त्वणुहस्य तु । एतानुत्पाद्य धर्मात्मा पुत्रान्योगमवाप्य
महायोगतपाश्चैव अपरावर्तिनीं गतिम् । आदित्यकिरणोपेतं त्वपुनर्भावमास्थित
सर्वव्यापी विनिर्मुक्तो भविष्यति महामुनिः । अमूर्तिमन्तः पितरो धर्ममूर्तिधरास्
त्रय एते गणास्तेषां चत्वारोऽन्ये निबोधत । यान्वक्ष्यामि द्विजश्रेष्ठा मूर्तिमन्तो महाप्र

उत्पन्नास्ते स्वधायास्तु कन्या ह्यग्नेः कवेः सुताः ।
पितरो देवलोकेषु ज्योतिर्भासि तु भास्वराः ॥ ३५ ॥

सर्वकामसमृद्धेषु द्विजास्तान्भावयन्त्युत । एतेषां मानसीकन्यागौर्नाम दिविविश्रुता
दत्तसेना कुमारेण शुक्रस्य महिषी प्रिया । एकत्रिंशच्च विख्याता भृगूणांकीर्तिवर्धनाः
मरीचिगर्भास्ते लोकाः समावृत्य दिवि श्रुताः ।
एते ह्यङ्गिरसः पुत्राः साध्यैः सह विवर्धिताः ॥ ३८ ॥
उपहूताःस्मृतास्तेतु पितरोभास्वरादिवि । तान्क्षत्त्रियगणान्दृष्ट्वाभावयन्तिफलार्थिनः
एतेषां मानसी कन्यायशोदानाम विश्रुता । पत्नीसा विश्वमहतः स्नुषावैविश्वशर्मणः
राजर्षेर्जननी देवी खट्वाङ्गस्य महात्मनः । यस्ययज्ञे पुरागीता गाथा दिव्यैर्महर्षिभिः
अग्नेर्जन्म तथादृष्ट्वा शाण्डिल्यस्य महात्मनः । यजमानंदिलीपंयेपश्यन्तिसुसमाहिताः
सत्यव्रतं महात्मानं ते स्वर्गंजयिनोऽमराः । आज्यपा नामपितरः कर्दमस्य प्रजापतेः
समुत्पन्नस्य पुलहादुत्पन्नास्तस्य वै पुनः । लोकेष्वेतेषु वर्तन्ते कामगेषु विहंगमा ॥
एतान्वैश्यगणाः श्राद्धे भावयन्ति फलार्थिनः । एतेषांमानसीकन्याविरजानामविश्रुता
ययातेर्जननी साध्वी पत्नी सा नहुषस्य तु । सुकालानाम पितरो वसिष्ठस्यप्रजापतेः
हिरण्यगर्भस्य सुताः शूद्रास्तान्भावयन्त्युत । मानसा नाम तेलोका वहन्तेयत्रतेदिवि
एतेषां मानसी कन्या नर्मदा सरितां वरा । साभावयति भूतानि दक्षिणापथगामिनी
जननी त्रसदस्योर्हि पुरुकुत्सपरिग्रहः । एतेषामभ्युपगमान्मनुर्मन्वन्तरेश्वरः ॥ ४६ ॥
मन्वन्तरादौ श्राद्धानि प्रवर्तयति सर्वशः । पितॄणामानुपूर्व्येण सर्वेषां द्विजसत्तमाः ॥
तस्मादिह स्वधर्मेण श्राद्धं देयं तु श्रद्धया । सर्वेषां राजतैःपात्रैरपि वा रजतान्वितैः ॥
दत्तंस्वधांपुरोधायतथाप्रीणातिवैपितॄन् । सोमस्याऽऽप्यायनंकृत्वाह्यग्नेर्वैवस्वतस्यच
उदगायनंचाप्यौचअश्वमेधंतदाप्नुयात् । पितॄन्प्रीणातिवैभक्त्या पितरःप्रीणयन्ति तम्
पितरः पुष्टिकामस्य प्रजाकामस्य वा पुनः । पुष्टिंप्रजां च स्वर्गंच प्रयच्छन्तिनसंशयः
देवकार्यादपि सदा पितृकार्यं विशिष्यते । देवताभ्यः पितॄणांहि पूर्वमाप्यायनंस्मृतम्
न हि योगगतिः सूक्ष्मा पितॄणामपि तृप्तयः । तपसा हि प्रसिद्धेन दृश्यन्तेमांसचक्षुषा
इत्येते पितरश्चैव लोका दुहितरश्च वै । दौहित्रा यजमानाश्च प्रोक्ता ये भावयन्तितान्
चत्वारो मूर्तिमन्तश्च त्रयस्तेषाममूर्तयः । तेभ्यः श्राद्धानि सत्कृत्यदेवाः कुर्वन्तियत्नतः

भक्ताः प्राञ्जलयः सर्वे सेन्द्रास्तद्गतमानसाः ।
विश्वे च सिकताश्चैव पृश्निजाः शृङ्गिन (ण) स्तथा ॥ ५६ ॥
कृष्णाः श्वेतास्त्वजाश्चैव विधिवत्पूजयन्त्युत ।
प्रजास्ता वातरशना दिवाकीर्त्यास्तथैव च ॥ ६० ॥

लेखाश्च मरुतश्चैव ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः । अत्रिभृग्वङ्गिराद्याश्च ऋषयः सर्व एव च
यक्षा नागाः सुपर्णाश्च किंनरा राक्षसैःसह । पितॄंस्त्वपूजयन्सर्वे नित्यमेवफलार्थिन
एवमेते महात्मानःश्राद्धेसत्कृत्यपूजिताः । सर्वान्कामान्प्रयच्छन्ति शतशोऽथसहस्रश
हित्वा त्रैलोक्यसंसारं जरामृत्युभयं तथा । मोक्षंयोगमथैश्वर्यंप्रयच्छन्ति पितामहा
मोक्षोपायमथैश्वर्यं सूक्ष्मदेहाश्च देवताः । कृत्स्नंवैराग्यमानन्त्यंप्रयच्छन्तिपितामहा
ऐश्वर्यं विहितं योगमैश्वर्यं वित्तमुत्तमम् । योगैश्वर्याद्वृते मोक्षः कथं चिन्नोपपद्यते
अपक्षस्यैव गमनं गगने पक्षिणो यथा । वरिष्ठः सर्वधर्माणां मोक्षधर्मः सनातनः

विमानानां सहस्राणि युक्तान्यप्सरसां गणैः ।
सर्वकामप्रसिद्धानि प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ ६८ ॥

प्रज्ञापुष्टिः स्मृतिर्मेधा राज्यमारोग्यमेव च । पितॄणांहि प्रसादेनप्राप्यतेसुमहात्मना
मुक्तावैदूर्यवासांसिवाजिनागायुतानिच । कोटिशश्चापिरत्नानिप्रयच्छन्तिपितामह
हंसबर्हिणयुक्तानि मुक्तावैदूर्यवन्ति च । किङ्किणीजालनद्धानि सदापुष्पफलानि च

प्रीत्या नित्यं प्रयच्छन्ति मनुष्याणां पितामहाः ॥ ७१ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पो नाम
त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

पितृपात्राणामभिधानम् पितृस्थाननिरूपणञ्च

वृहस्पतिरुवाच

सौवर्णं राजतं ताम्रं पितृणां पात्रमुच्यते । रजतं रजताक्तं वा पितृणां पात्रमुच्यते
रजतस्य कथा वाऽपि दर्शनं दानमेव च । अनन्तमक्षयं स्वर्ग्यं पितृणां दानमुच्यते ॥
पितृनेतेन दानेन सत्पुत्रास्तारयन्त्युत ॥ २ ॥
राजते हि स्वधा दुग्धा पात्रेऽस्मिन्पितृभिः पुरा ।
स्वधादायार्थिभिस्तात तस्मिन्दत्ते तदक्षयम् ॥ ३ ॥
कृष्णाजिनस्य सांनिध्यं दर्शनं दानमेव वा । रक्षोघ्नं ब्रह्मवर्चस्यं पितृं स्तत्तद्धितारयेत्
काञ्चनं राजतं ताम्रं दौहित्रं कुतपस्तिलाः । वस्त्रं च पावनीयानित्रिदण्डीयोगएवच
श्राद्धकर्मण्ययं श्रेष्ठो विधिर्ब्राह्मः सनातनः । आयुःकीर्तिः प्रजाश्चैव प्रज्ञासंततिवर्धनः
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां विदिक्स्थानं विशेषतः । सर्वतोऽरत्निमात्रंतुचतुरस्रंसुसंहितम्
वक्ष्यामि विधिवत्स्थानं पितृणामनुशासनात् ।
धन्यमारोग्यमायुष्यं बलवर्णविवर्धनम् ॥ ८ ॥
तत्रगर्तास्त्रयः कार्यास्त्रयोदण्डाश्चखादिराः । रत्निमात्रास्तुतेकार्यारजतेनविभूषिताः
ते वितस्त्यायताः कार्याः सर्वतश्चतुरङ्गुलाः ॥ ६ ॥
प्राग्दक्षिणमुखान्भूमौ स्थितानसुषिरांस्तथा । अद्भिः पवित्रपूताभिःप्लावयेत्सततंशुचिः
पायसा ह्यजगव्येन शोधनं वार्भिरेव तु । तर्पणात्सततं ह्येवं तृप्तिर्भवति शाश्वती ॥
इह चामुत्र च श्रीमान्सर्वकर्मसमन्वितः । एवं त्रिषवणस्नातो योऽर्चयेत पितॄन्सदा ॥
मन्त्रेण विधिवत्सम्यगश्वमेधफलं लभेत् ॥ १२ ॥
तत्स्थापयेदमावास्यां (?) गर्ते भूचतुरङ्गुले । त्रिःसप्तसंज्ञास्तेयज्ञास्त्रैलोक्यंधार्यतेतुवै
तस्य पुष्टिरथैश्वर्यमायुः संततिरेव च । विचित्रा भजते लक्ष्मीर्मोक्षंच लभते क्रमात् ॥

पाप्मापहं पावनीयमश्वमेधफलं तथा। अश्वमेधफलं ह्येतद्द्विजैः सत्कृत्य पूजितम्॥
मन्त्रं वक्ष्याम्यहं तस्मादमृतं ब्रह्मनिर्मितम्॥ १५॥
देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च। नमःस्वधायैस्वाहायै नित्यमेवभवन्त्युत
आद्यावसाने श्राद्धस्य त्रिरावर्तं जपेत्सदा। पिण्डनिर्वपणे चैव जपेदेतत्समाहितः॥
पितरः क्षिप्रमायान्ति राक्षसाः प्रद्रवन्ति च॥ १७॥
पितॄंस्तत्त्रिषु लोकेषु मन्त्रोऽयं तारयत्युत। पठ्यमानः सदाश्राद्धेनियतंब्रह्मवादिभिः
राज्यकामो जपेदेनं सदा मन्त्रमतन्द्रितः। वीर्यशौचार्थसत्त्वं च श्रीरायुर्बलवर्धनम्॥
प्रीयन्ते पितरो येन जप्येन नियमेन च। सप्तार्चिषं प्रवक्ष्यामि सर्वकामप्रदं शुभम्॥
अमूर्तानांसमूर्तानांपितॄणांदीप्ततेजसाम्। नमस्यामि सदातेभ्योध्यानिभ्योयोगचक्षुषः
इन्द्रादीनांजनयितारोभृगुमारीचयोस्तथा। सप्तर्षीणांपितॄणांचतान्नमस्यामिकामदान्
मन्वादीनांसुरेशानांसूर्याचन्द्रमसोस्तथा। तान्नमस्कृत्यसर्वान्वैपितॄन्कुशलदायकान्॥
नक्षत्राणां चरादीनांपितॄनथपितामहान्। द्यावापृथिव्योश्च तथानमस्यामिकृताञ्जलिः
देवर्षीणां जनयितॄंश्च सर्वलोकनमस्कृतान्। अभयस्य सदा दातॄन्नमस्येऽहंकृताञ्जलिः
प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च। योगयोगेश्वरेभ्यश्च नमस्यामि कृताञ्जलिः
पितृगणेभ्य सप्तभ्यो नमो लोकेषु सप्तसु। स्वयंभुवे नमश्चैवब्रह्मणे योगचक्षुषे॥
एतदुक्तं ससप्तर्षिब्रह्मर्षिगणपूजितम्। पवित्रं परमं ह्येतच्छ्रीमद्रक्षोविनाशनम्॥
अनेन विधिना युक्तस्त्रीन्वरांल्लभते नरः। अन्नमायुः सुतांश्चैव ददते पितरो भुवि॥
भक्त्या परमया युक्तः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः। सप्तार्चिषं जपेद्यस्तु नित्यमेवसमाहितः
सप्तद्वीपसमुद्रायां पृथिव्यामेकराड् भवेत्॥ ३०॥
यत्किंचित्पच्यते गेहे भक्ष्यं वा भोज्यमेव च। अनिवेद्यनभोक्तव्यं तस्मिन्नायतनेसदा
क्रमशः कीर्तयिष्यामि बलिपात्राण्यतः परम्। येषुयच्चफलंप्रोक्तं तन्मेनिगदतः शृणु

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पो नाम
चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७४॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

पितृभ्योमाल्यादिदानाल्लक्ष्म्यादिप्राप्तिनिरूपणम्

वृहस्पतिरुवाच

पालाशं ब्रह्मवर्चस्यमश्वत्थे राज्यभावना । सर्वभूताधिपत्यं च प्लक्षे नित्यमुदाहृतम् ॥
पुष्टिकामं च न्यग्रोधं बुद्धिं प्रज्ञां धृतिंस्मृतिम् । रक्षोघ्नंचयशस्यंचकाश्मर्यंपात्रमुच्यते
सौभाग्यमुत्तमंलोके मधुके समुदाहृतम् । फल्गुपात्रेचकुर्वाणःसर्वान्कामानवाप्नुयात्
परा द्युतिरथो कर्तुःप्राकाश्यं च विशेषतः । बिल्वेलक्ष्मीस्तथामेधानित्यमायुष्यमेवच
क्षेत्रारामतडागेषु सर्वसस्येषु चैव हि । वर्षेदजस्रं पर्जन्यो वेणुपात्रेषु कुर्वतः ॥ ५ ॥
एतेष्वेव सुपात्रेषु ये चैवाऽऽग्रयणं ददुः । सकृदप्यत्र यज्ञानां सर्वेषां फलमुच्यते ॥

पितृभ्यो यस्तु माल्यानि सुगन्धीनि न सर्वशः ।
सदा दद्याच्छ्रिया युक्तः स विभाति दिवाकरः ॥ ७ ॥
गुग्गुलादींस्तथा धूपान्पितृभ्यो यः प्रयच्छति ।
संयुक्तान्मधुसर्पिर्भ्यां सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ८ ॥

धूपं गन्धगुणोपेतं कान्तं पितृपरायणम् । लभते स्त्रीष्वपत्यानि इह चामुत्र चोभयोः

दद्यादेव पितृभ्यस्तु नित्यमेव ह्यतन्द्रितः ॥ ९ ॥

दीपं पितृभ्यः प्रयतः सदा यस्तु प्रयच्छति । स लोकेऽप्रतिमं चक्षुः सदाचलभतेशुभम्
तेजसा यशसा चैव कान्त्या चैव बलेन च । भुविप्रकाशो भवति भ्राजते च त्रिविष्टपे

अप्सरोभिः परिवृतो विमानाग्रे स मोदते ॥ ११ ॥

गन्धान्पुष्पाणि धूपांश्च दद्यादाज्याहुतीश्च वै । फलमूलनमस्कारैः पितॄणांप्रयतःशुचिः

पूर्वं कृत्वा द्विजान्पश्चात्पूजयेदन्नसंपदा ॥ १२ ॥

श्राद्धकाले तु सततं वायुभूताःपितामहाः । आविशन्तिद्विजान्दृष्ट्वातस्मादेतद्ब्रवीमिते
वस्त्रैरन्नैः प्रदानैस्तैर्भक्ष्यपेयैस्तथैव च । गोभिरश्वैस्तथा ग्रामैः पूजयित्वाद्विजोत्तमान्

भवन्तिः पितरः प्रीताः पूजितेषु द्विजातिषु । तस्मादन्नेनविधिवत्पूजयेद्द्विजसत्तमान्
सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां कुर्यादुल्लेखनं द्विजः ।
प्रोक्षणं च तथा कुर्याच्छ्राद्धकर्मण्यतन्द्रितः ॥ १६ ॥
दर्भान्पिण्डांस्तथाभक्ष्यान्पुष्पाणिविविधानिच । गन्धदानमलंकारमेकैकंनिर्वपेद्बुधः
पोपयित्वा जनं सम्यग्वैश्वः स्यादुत्तरो द्विजः ।
अभ्यङ्गदर्भपिञ्जूलैस्त्रिभिः कुर्याद्यथाविधि ॥ १८ ॥
अपसव्यं पितृभ्यश्च दद्यादन्नमनुत्तमम् । तानुच्चार्याथ सर्वेषां वस्त्रार्थं सूत्रमेव च॥
खण्डनं पेषणं चैव तथैवोल्लेखनं तथा । सकृदेव हि देवानां पितृणां त्रिभिरुच्यते
एकं पवित्रं हस्तेन पितॄन्सर्वान्सकृत्सकृत् । चैलमन्त्रेण पिण्डेभ्योदत्त्वादर्शनजंहितम्
सदा सर्पिस्तिलैर्युक्तांस्त्रीन्पिण्डान्निर्वपेद्भुवि । जानुं कृत्वातथासव्यंभूमौपितृपरायणः
पितॄन्पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान् । आहूय च पितॄन्प्राज्ञान्पितृतीर्थेन यत्नतः॥
पिण्डान्परिक्षिपेत्सम्यगपसव्यमतन्द्रितः ॥ २३ ॥
अन्नेनाद्भिश्च पुष्पैश्च भक्ष्यैश्चैव पृथग्विधैः पृथङ्मातामहानां तु केचिदिच्छन्ति मानवाः
त्रीन्पिण्डानानुपूर्व्येण साङ्गुष्ठान्पुष्टिवर्धनान् ।
जान्वन्तराभ्यां यत्नेन पिण्डान्दद्याद्यथाक्रमम् ॥ २५ ॥
सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां धर्मे मन्त्रे च पर्ययः । नमोवःपितरःशुष्मैसदाह्येवमतन्द्रितः
दक्षिणस्यां तु पाणिभ्यां प्रथमं पिण्डमुत्सृजेत् ।
नमो व पितरः सौम्याः पठन्नित्यमतन्द्रितः ॥ २७ ॥
सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां धर्मे सर्वमतन्द्रितः । उलूखलस्य लेखायामुदपात्राच्चसेचनम्
क्षौमसूत्रं नवं दद्याच्छोणं कार्पासिकं तथा । पत्रोर्णं पितृसूत्रं च कौशेयं परिवर्जयेत्
वर्जयेत्तद्दशां यज्ञे यदप्यहतवस्त्रजाम् । न प्रीणन्ति तथैतानि दातुराप्यायतो भवेत्॥
श्रेष्ठमाहुस्त्रिककुदमञ्जनं नित्यमेव च । कृष्णेभ्यश्च तिलेभ्यश्च यत्तैलं परिरक्षितम्॥
चन्दनागुरुणी चोभे तमालोशीरपद्मकम् ।
धूपं च गुग्गुलं श्रेष्ठं तुरुष्कं धूपमेव च ॥ ३२ ॥

शुक्लाः सुमनसः श्रेष्ठास्तथा पद्मोत्पलानि च ।
गन्धवन्त्युपपन्नानि यानि चान्यानि कृत्स्नशः ॥ ३३ ॥

जपासुमनसोभण्डीरूपकामकुरण्डकाः । पुष्पाणि वर्जनीयानि श्राद्धकर्मणिनित्यशः
यानिगन्धादपेतानिउग्रगन्धानि यानि च । वर्जनीयानि पुष्पाणिभूतिमन्विच्छतातदा
द्विजातयस्तथाऽन्विष्टा नियताःस्युरुदङ्मुखाः । पूजयेद्यजमानस्तुविधिवद्दक्षिणामुखः
तेषामभिमुखो दद्याद्दर्भान्पिडांश्च यत्नतः । अनेनविधिनासाक्षादर्चयेत्स्वान्पितामहान्
हरिता वै सपिञ्जूल्यःपुष्पस्निग्धाःसमाहिताः । रत्निमात्रप्रदानेनपितृतीर्थेनसंस्थिताः
उपमूले तथा नीलाः प्रस्तराद्यकुलोद्यमाः । तथा श्यामाकनीवारादुर्वाराःसमुदाहृताः
पूर्वं कीर्तितवाञ्श्रेष्ठोवभूवाथप्रजापतिः । तस्य वालानिपतिताभूमौचाऽऽकाशमार्गतः

तस्मान्मेध्या सदा काशाः श्राद्धकर्मणि पूजिताः ।
पिण्डनिर्वपणं तेषु कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ ४१ ॥
प्रजापुष्टिर्द्युतिः कीर्तिः प्रज्ञाकान्तिसमन्विता ।
भवन्ति रुचिरा नित्यं विपाप्मानोऽघवर्जिताः ॥ ४२ ॥
सकृदेवाऽऽस्तरेद्दर्भान्पिण्डार्थं दक्षिणामुखः ।
प्राग्दक्षिणाग्रनियतो विधिं चाप्यनुवक्ष्यति ॥ ४३ ॥

न दीनोवाऽपि वा क्रुद्धो न चैवान्यमना नरः । एकाग्रमाधायमनःश्राद्धंकुर्यात्सदाबुधः

निहन्मि सर्वं यदमेध्यवद्भवेद्धताश्च सर्वेऽसुरदानवा मया ।
रक्षांसि यक्षाश्च पिशाचसंघा हता मयो यातुधानाश्च सर्वे ॥ ४५ ॥
एतेन मन्त्रेण सुसंयतात्मा तां वै वेदीं सकृदुल्लिख्य धीरः ।
भूतिं शिवां हि ध्रुवमिच्छमानः क्षिपेद्द्विजातिर्दिशमुत्तरां गतः ॥ ४६ ॥
एवं पित्रे दृष्टमन्नं हि यस्य तस्यासुरा वर्जयन्तीह सर्वे ।
यस्मिन्देशे पठ्यते एष मन्त्रस्तं वै देशं राक्षसा वर्जयन्ति ॥ ४७ ॥
अन्नप्रकारान्नाशुचिः साधु वीक्षन्नचैवान्नं संस्पृशंश्चापि दद्यात् ।
पवित्रपाणिश्च भवेत्तथा हि सहस्रकृत्तस्य फलं समश्नुते ॥ ४८ ॥

अनेन विधिनानित्यंश्राद्धंकुर्याद्द्विजःसदा । मनसाकाङ्क्षितंयद्यत्तत्तद्द्युःपितामहाः
पितरो हृष्टमनसो रक्षांसि विमनांसि च । भवन्त्येवं कृते श्राद्धे नित्यमेव प्रयत्नतः
शूद्राः श्राद्धेक्षीरचाशु(?)बल्वजास्तरवस्तथा । वारणाश्च लवाश्चैवलववर्षाश्चनित्यशः
एवमादीन्यथान्यानि तृणानि परिवर्जयेत् ॥ ५१ ॥

अञ्जनाभ्यञ्जनागन्धामानुप्रलयनं (?) तथा । काशैः पुनर्भवैः कार्यं सर्वमेव फलं भवेत्
काशाः पुनर्भवा ये च वर्हणाः उपवर्हणाः । अथ ते पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः
पुष्पगन्धादिधूपानामेष मन्त्र उदाहृतः । आहृत्य दक्षिणायां तु होमार्थे विप्रयत्नतः
अस्वर्ग्यंलौकिकं वाऽपि जुहुयात्कर्मसिद्धये । अन्तराधाय समिधंतथाहोमोविधीयते
समाहितेन मनसा प्रयताग्निः प्रयत्नतः ॥ ५५ ॥

अग्नये कव्यवाहाय स्वधा अङ्गिरसे नमः ।
सोमाय वै पितृमते स्वधा अङ्गिरसे नमः ॥
यमाय चैवाङ्गिरसे स्वधा नम इति ब्रुवन् ॥ ५६ ॥

इत्येते वै होममन्त्रा मन्त्राणामनुपूर्वशः । दक्षिणातोऽग्नये नित्यं सोमायान्तरतस्तथा
एतयोरन्तरं नित्यं जुहुयाद्वै विवस्वते । उपचारं स्वधाकारं तथैवोल्लेखनं च यत् ॥
होमजप्ये नमस्कारः प्रोक्षणं च विशेषतः । अञ्जनाभ्यञ्जने चैव पिण्डसंवपनं तथा ॥
अश्वमेधफलेनैव तत्स्मृतं मन्त्रपूर्वकम् । क्रियाः सर्वा यथोद्दिष्टाः प्रयत्नेनसमाचरेत्
बहुहव्यत्वमेवाग्नौ सुसमिद्धे विशेषतः । विधूमे लेहिहाने च होतव्यं कर्मसिद्धये ॥
अप्रबुद्धे सधूमे च जुहुयाद्यो हुताशने । यजमानो भवेदन्धः सोऽपुत्र इति नः श्रुतम्
अल्पेन्धनो वा रूक्षो वा विस्फुलिङ्गश्च सर्वशः ।
ज्वालाधूमोऽपसव्यश्च स तु वह्निर्न सिद्धये ॥ ६३ ॥

दुर्गन्धश्चैव नीलश्च कृष्णश्चैव विशेषतः । भूमिं विगाहते यत्र तत्र विद्यात्पराभवम्
अर्चिष्मान्पिण्डितशिखः सर्पिष्काञ्चनसंभवः ।
स्निग्धः प्रदक्षिणश्चैव वह्निः स्यात्कार्यसिद्धये ॥ ६५ ॥

नरनारीगणेभ्यश्चपूजां प्राप्नोतिशाश्वतीम् । अक्षयाःपूजितास्तेनभवन्तिपितरोऽव्ययाः

स्थाल्युदुम्बरपात्राणि फलानि समिधस्तथा।
श्राद्धे चातिपवित्राणि मेध्यानीति विशेषतः॥ ६७॥
पवित्रं वा द्विजश्रेष्ठ! शुद्धये जन्मकर्मसु। पात्रेषु फलमुद्दिष्टं यन्मया श्राद्धकर्मणि
तदेव कृत्स्नंविज्ञेयंसमित्सु च यथाक्रमम्। कृत्वासमाहितंचित्तमग्नये वै करोम्यहम्
अनुज्ञातः कुरुष्वेति तथैव द्विजसत्तमैः। पत्नीमादाय पुत्रांश्च जुहुयाद्धव्यवाहनम्॥
समानप्लक्षन्यग्रोधप्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः। उदुम्बरास्तथा बिल्वचन्दना यज्ञियाश्च ते
सरलो देवदारुश्च शालश्च खदिरस्तथा। समिदर्थं प्रशस्ताः स्युरेते वृक्षा विशेषतः
ग्राम्याः कण्टकिनश्चैव यज्ञिया येन केन च। पूजिताः समिदर्थे तु पितॄणांवचनंतथा
समिद्भिः कल्कलेयाभिर्जुहुयाद्यो हुताशनम्। फलं यत्कर्मणस्तस्य तन्मेनिदगतःशृणु
आयसं सर्वकामीयमश्वमेधफलं हि तत्।
श्लेष्मातको नक्तमालः कपित्थः शाल्मलिस्तथा॥ ७५॥
नीपो विभीतकश्चैव वल्लीभिश्च तथैव च। शकुनानां निवासश्च वर्जयेच्चमहीरुहान्
अयज्ञियाः स्मृता ये च वृक्षांश्चैव तु वर्जयेत्॥ ७६॥
स्वधेति चैव मन्त्रान्ते पितॄणां वचनं तथा। स्वाहेति चैव देवानांयज्ञकर्मण्युदाहृतम्॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पो नाम
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७५॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

विश्वेदेवानामुत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

देवाश्च पितरश्चैव तेभ्योऽन्ये पितरस्तथा। आथर्वणविधिर्ह्येष प्रत्युवाच वृहस्पतिः
पूजयेच्च पितॄन्पूर्वं देवांश्चापि विशेषतः। देवेभ्योऽपि पितृन्पूर्वमर्चयन्तीह यत्नतः
दक्षस्य दुहिताख्यातालोकेविश्वेतिनामतः। विधिना सा तु धर्मज्ञ दत्ता धर्मायधर्मतः

तस्याः पुत्रा महात्मानो विश्वे देवा इति श्रुतिः ॥ ३ ॥

प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु सर्वलोकनमस्कृताः। समस्तास्ते महात्मानश्चेरुरुग्रं महत्तपः
हिमवच्छिखरे रम्ये देवगन्धर्वसेविते। सर्वाप्सरोभिश्चरितं देवगन्धर्वसेवितम् ॥५॥
शुद्धेन मनसा प्रीताः पितरस्तानथाब्रुवन्। वरं वृणीध्वं प्रीताः स्म कं कामंकरवामहे
एवमुक्ते तु पितृभिस्तदा त्रैलोक्यभावनः। प्रजानामधिपो ब्रह्माविश्वानितीदमब्रवीत्

ब्रह्मोवाच

महातेजा महादेवस्तपसा तैस्तु तापितः। तपसा तेन सुप्रीतः कं कामं विदधामिवः
एवमुक्तास्तदा विश्वेब्रह्मणालोककर्तृणा। ऊचुस्ते सहिताःसर्वेब्रह्माणंलोकभाविनम्
श्राद्धेऽस्माकंभवेदंशोह्येषनःकाङ्क्षितोवरः। प्रत्युवाचततोब्रह्मातान्वैत्रिदिवपूजितान्
भविष्यत्येवमेवेति काङ्क्षितोवो वरस्तु यः। पितृभिस्तुतथेत्युक्त्वाएवमेतन्नसंशयः

सहास्माभिस्तु वो भाव्यं यत्किंचित्क्रियते त्विह।
अस्माकं कल्पिते श्राद्धे युष्मानग्रासनं ह वै ॥ १२ ॥

भविष्यतिमनुष्येषुसत्यमेतद्ब्रवीमिते। माल्यैर्गन्धैस्तथाऽन्नेन युष्मानग्रेऽर्चयिष्यति
प्रदाता चेति युष्माकमस्माकं दास्यते ततः। विसर्जनमथास्माकं पूर्वं पश्चात्तुदेवताः
रक्षणं चैवश्राद्धस्यआतिथ्यं च विधिद्वयम्। भूतानांदेवतानां च पितॄणांश्राद्धकर्मणि

एवं विधिकृतः(तं)सम्यक्सर्वमेतद्भविष्यति ॥ १५ ॥

एवं दत्त्वा वरं तेषां ब्रह्मा पितृगणैः सह । भूतानुग्रहकृद्देवः संचचार यथासुखम् ॥
वेदे पञ्च महायज्ञा नराणां समुदाहृताः । एतान्पञ्च महायज्ञान्निर्वपेत्सततं नरः ॥
यत्र यास्यन्तिदातारःसंस्थानं वै निबोधत । निर्भयं निरहंकारंनिःशोकंनिर्व्यथक्रमम्
ब्रह्मस्थानमवाप्नोति सर्वकामपुरस्कृतम् ॥ १८ ॥
शूद्रेणापिप्रकर्तव्याःपञ्चैतेमन्त्रवर्जिताः । अतोऽन्यथा तु योभुङ्क्तेसऋणंनित्यमश्नुते
ऋणंच भुङ्क्तेपापात्मा यःपचेदात्मकारणात् । तस्मान्निर्वर्तयेत्पञ्चमहायज्ञान्सदाबुधः
नैवेद्यं केचिदिच्छन्ति जीवत्यपि प्रयत्नतः । उदक्पूर्वं वलिं कुर्यादुदकुम्भं तथैव च ॥
वलिं सुविदितं कुर्यादुच्चादुच्चतरं क्षिपेत् । परश्रृङ्गवां पूर्वं वलिं सूक्ष्मं समुत्क्षिपेत् ॥
न निवेद्योभवेत्पिण्डः पितॄणां यस्तुजीवति । इष्टेनान्नेनभक्ष्यैश्चभोजयेतयथाविधि
विधानं वेदविहितमेतद्वक्ष्यामि यत्नतः ॥ २३ ॥
देवदेवामहात्मानोह्येतेऽपिपितरो ह्युत । इच्छन्तिकेचिदाचार्याःपश्चात्पिण्डनिवेदनम्
पूजनं चैव विप्राणां पूर्वमेव हि नित्यशः । तद्विधर्मार्थकुशलानित्युवाच बृहस्पतिः
पूर्वं निवेदयेत्पिण्डं पश्चाद्विप्रांश्च भोजयेत् ।
योगात्मानो महात्मानः पितरो योगसंभवाः ॥
सोममाप्याययन्त्येते पितरो योगमास्थिताः ॥ २६ ॥
तस्माद्दद्याच्छुचिःपिण्डान्योगिभ्यस्तत्परायणः ।
पितॄणां हि भवेदेतत्साक्षादिव हुतं हविः ॥ २७ ॥
ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यो योगी चाग्रासने यदि ।
यजमानं च भोक्तॄंश्च नौरिवाम्भसि तारयेत् ॥ २८ ॥
असतां प्रग्रहो यत्र सतां चैव विमानना । दण्डो दैवकृतस्तत्र सद्यः पतति दारुणः
हित्वाऽऽगमं सधर्माणंबालिशंयत्र भोजयेत् । आदिकर्मसमुत्सृज्यदातातत्रविनश्यति
पिण्डमग्नौ सदा दद्याद्भोगार्थी तु प्रयत्नतः । प्रजार्थी योषिते दद्यान्मध्यमं तत्रपूर्वकम्
उत्तमां द्युतिमन्विच्छन्गोषु नित्यं प्रयच्छति ।
प्रज्ञां पूजां यशः कीर्तिं गोषु नित्यं प्रयच्छति ॥ ३२ ॥

प्रार्थयन्दीर्घमायुश्च वायसेभ्यः प्रयच्छति । सौकुमार्यमथान्विच्छन्कुक्कुटेभ्यः प्रयच्छ

एवमेतत्समुद्दिष्टं पिण्डनिर्वपणात्फलम् ।
आकाशं शमयेद्वाऽपि स्थितोऽप्सु दक्षिणामुखः ॥
पितृणां स्थानमाकाशं दक्षिणा चैव दिग्भवेत् ॥ ३४ ॥
एकं विप्राः पुनः प्राहुः पिण्डोद्धरणमग्रतः ।
अनुज्ञाते तु तैर्विप्रैर्वानमुद्धि(द्धि)यतामिति(?) ॥ ३५ ॥

पुष्पाणां च फलानां च भक्ष्याणामन्नतस्तथा । अन्नमुद्धृत्य सर्वेषां जुहुयाज्जातवेदसि

भक्ष्यमन्नं तथा पेयमनुत्तमफलानि च । हुत्वा चाग्नौ ततः पिण्डान्निर्वपेद्दक्षिणामुख

वैवस्वताय सोमाय हुत्वा पिण्डं निवेद्य सः । उदकानयनं कृत्वा पश्चाद्विप्रांश्च भोजये

आनुपूर्व्यात्तथा विप्रान्भक्ष्यैरन्नैश्च शक्तितः ॥ ३८ ॥

स्निग्धैर्भक्ष्यैः सुगन्धैश्च तर्पयेत रसैस्तथा । एकाग्रः पर्युपासीत प्रयतः प्राञ्जलिः स्थित

तत्परः श्रद्दधानश्च कामानाप्नोति मानवः ॥ ३९ ॥

अक्षुद्रत्वं कृतज्ञत्वं दाक्षिण्यं सत्कृतं च यत् । ततो यज्ञं च दानं च प्रयच्छन्ति पितामहा

अतः परं विधिं सौम्यं भुक्तवत्सु द्विजातिषु । आनुपूर्व्येण विहितं तन्मे निगदतः शृ

प्रोक्ष्य भूमिमथोद्धृत्य पूर्वं पितृपरायणः । ततोऽत्र विकिरं कुर्याद्विधिदृष्टेन कर्मण

स्वधां वाच्य ततो विप्रान्विधिवद्भूरिदक्षिणान् । अन्नशेषमनुज्ञाप्य सत्कृत्य द्विजसत्तमा

प्राञ्जलिः प्रयतश्चैव अनुगम्य विसर्जयेत् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पो नाम
षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

अमरकण्टकादिस्थानविशेषेषु पिण्डदानात्फलाधिक्यबोधनम्

बृहस्पतिरुवाच

सकृदभ्यर्चिताः प्रीता भवन्ति पितरोऽव्ययाः ।
योगात्मानो महात्मानो विपाप्मानो महौजसः ॥ १ ॥
प्रेत्य च स्वर्गलाभाय कामैश्वर्यं सुविस्तरम् । येषां चाप्यनुगृह्णन्तिमोक्षप्राप्तिक्रमेण तु
तानि वक्ष्याम्यहं सौम्याः सरांसि सरितस्तथा ।
तीर्थानि चैव पुण्यानि देशाञ्शैलांस्तथाऽऽश्रमान् ॥ ३ ॥
पुण्यो यस्त्रिषु लोकेष्वमरकण्टकपर्वतः । पर्वतप्रवरः पुण्यः सिद्धचारणसेवितः ॥४॥
यत्र वर्षसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च । तपः सुदुश्चरं तेपे भगवानङ्गिराः पुरा ॥ ५
यत्रमृत्योर्गतिर्नास्तितथैवासुररक्षसाम् । न भयं चैव वाऽलक्ष्मीर्यावद्भूमिर्धरिष्यति
तेजसा यशसा चैव भ्राजते स नगोत्तमः । श्रृङ्गमाल्यवतो नित्यं वह्निःसंवर्तको यथा
मृदवश्च सुगन्धाश्च हेमाभाः प्रियदर्शनाः ।
शान्ताः कुशा इति ख्याताः पिवन्दक्षिणनर्मदाम् ॥ ८ ॥
दृष्टवान्स्वर्गसोपानं भगवानङ्गिराः पुरा । अग्निहोत्रे महातेजः प्रस्तरार्थकुशोत्तमान्
तेषु दर्भेषु पिण्डान्योऽमरकण्टकपर्वते । दद्यात्सकृदपि प्राज्ञस्तस्यवक्ष्यामियत्फलम्
तद्भवत्यक्षयं श्राद्धं पितॄणां प्रीतिवर्धनम् । अन्तर्धानं च गच्छन्तिक्षेत्रमासाद्यतत्सदा
तत्र ज्वालारसः पुण्यो दृश्यतेऽद्यापि सर्वशः ।
सशल्यानां च सत्त्वानां विशल्यकरणी नदी ॥ १२ ॥
प्राग्दक्षिणा तु सावर्ता वापी सा पर्वतोत्तमे । कलिङ्गदेशपार्श्वार्धेपितॄणांप्रीतिवर्धनम्
सिद्धक्षेत्रमृषिश्रेष्ठा यदुक्तं परमं भुवि । संमतो देवदैत्यानां श्लोकमप्युशना जगौ ॥
धन्यास्ते पुरुषालोके ये प्राप्यामरकण्टकम् । पितॄन्संतर्पयिष्यन्तिश्राद्धेपितृपरायणाः

अल्पेन तपसा सिद्धिं गमिष्यन्ति न संशयः । सकृद्देवार्चितास्तत्र स्वर्गममरकण्टके
महेन्द्रपर्वते रम्ये पुण्यं शक्रनिषेवितम् । तत्राऽऽरुह्य भवेत्प्रीतिः श्राद्धं चैवमहत्फलम्
बिल्वाधः शिखरे युक्ता दिव्यं चक्षुः प्रवर्तते । अदृश्यं चैव भूतानां देववच्चरते महीम्
सप्तगोदावरे चैव गोकर्णे च तपोवने । अश्वमेधफलं तत्र स्नात्वा च लभते नरः ॥
धूतपापस्थलं प्राप्य पूतः स्नात्वा भवेन्नरः । रुद्रस्तत्र तपस्तेपे देवदेवो महेश्वरः ॥
गोकर्णे वर्णितं विप्रैर्नास्तिकानां निदर्शनम् । अब्राह्मणस्यसावित्रीपठतःसंप्रणश्यति
देवर्षिभवने शृङ्गे सिद्धचारणसेविते । आरुह्य तं तु नियमात्तमो यान्ति त्रिविष्टपम्
दिव्यैश्चन्दनवृक्षैश्च पादपैरुपशोभितम् । आपश्चन्दनसंपृक्ता वहन्ति सततं यतः ।
नदी प्रवर्तते ताभ्यस्ताम्रपर्णीति नामतः । योषेव समदाखेदा दक्षिणं याति सागरम्
नद्यास्तस्यास्तुयाआपोमूर्छमानामहोदधौ । शङ्खाभवन्तिमुक्ताश्चजायन्तेशङ्खमुक्तिकाः
उदकानयनंकृत्वाशङ्खमौक्तिकसंयुतम् । आधिभिर्व्याधिभिश्चैवमुक्तायान्त्यमरावतीम्
चन्दनेभ्यः प्रयुक्तानां शङ्खानांमौक्तिकस्य च । पापकर्तृनपिपितृंस्तारयन्तियथाश्रुति
चन्द्रतीर्थे वरे पुण्ये पुण्यकृद्भिर्निषेविते । चन्द्रतीर्थे कुमार्यां तु कावेर्यां प्रभवेऽक्षये ।

श्रीपर्वतस्य तीर्थेषु वैकृते च यथा गिरौ ॥ २८ ॥
एकस्था यत्र दृश्यन्ते वृक्षा ह्यौशिरपर्वते ।
पालाशाः खादिरा बिल्वा प्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः ॥ २९ ॥
एतद्धि मण्डलं सिद्धं यज्ञियं द्विजसत्तमाः ।
अस्मिन्मुक्त्वा जनोऽङ्गानि क्षिप्रं यात्यमरावतीम् ॥ ३० ॥

कर्माणि स्वप्रयुक्तानिसिध्यन्तिप्रभवात्यये । दुष्प्रसक्तानि पितृषु प्रयुक्तानिभवन्त्युत
पितॄणां दुहिता पुण्या नर्मदासरितां वरा । तत्र श्राद्धानिदत्तानिअक्षयाणिभवन्त्युत
माठरस्य वने पुण्येसिद्धचारणसेविते । अन्तर्धानं न गच्छन्तिसक्तास्तस्मिन्महागिरौ
विन्ध्येचैवगिरौपुण्येधर्माधर्मनिदर्शनम् । पापाधारां न पश्यन्तिधारांपश्यन्तिसाधवः
तस्यां तु दृश्यतेपापंकेषांचित्पापकर्मणाम् । स्पष्टाभवतिसाधाराप्रायशःशुभकर्मणाम्
कोशलायां मतङ्गस्य वापीपापनिषूदनी । स्नातास्तस्यांदिवंयान्तिकामचारविहंगमाः

कुमारकोशलातीर्थे पर्वते पालपञ्जरे। पाण्डुकूले समुद्रान्ते पण्डारकवने तथा ॥३७
विमले च विपापे च सत्कृत्यप्रभवेऽभयम्। श्रीवृक्षेगृध्रकूटे च जम्बूमार्गे च नित्यशः

असितस्य गुरोः पुण्ये योगाचार्यस्य धीमतः।
तत्रापि श्राद्धमानन्त्यमसितायां च नित्यशः ॥ ३६ ॥

पुष्करेष्वक्षयं श्राद्धं तपश्चैव महाफलम्। महोदधौ प्रभासे च तस्मादेवंविनिर्दिशेत्
देविकायां वृषोनामकूपःसिद्धनिषेवितः। समुत्पतन्तितस्याऽऽपोगवांशब्देननित्यशः

योगेश्वरैः सदा जुष्टः सर्वपापवहिष्कृतैः।
दद्याच्छ्राद्धं तु यस्तस्मिंस्तस्य वक्ष्यामि यत्फलम् ॥ ४२ ॥

अक्षयं सर्वकामीयं श्राद्धंप्रीणाति वै पितॄन्। जातवेदः शिलातत्रसाक्षादग्नेःसनातनी
यस्त्वग्निं प्रविशेत्तत्र नाकपृष्ठे स मोदते। अग्निःशान्तः पुनर्जातस्तस्मिन्दत्तंतदक्षयम्
दशाश्वमेधिके तीर्थे तीर्थे पञ्चाश्वमेधिके। यथोद्दिष्टं फलं तेषां क्रतूनां नात्र संशयः
ख्यातं हयशिरो नाम तीर्थं सद्यो वरप्रदम्। श्राद्धं तत्र तदाऽक्षय्यंदत्त्वास्वर्गेचमोदते
श्राद्धं कुम्भे विमुञ्चन्ति ज्ञेयं पापनिषूदनम्। श्राद्धंतत्राक्षयं प्रोक्तं जप्यहोमतपांसि च
अजतुङ्गे शुभे तीर्थे तर्पयेत्सततं पितॄन्। दृश्यन्ते पर्वसु च्छायास्तत्रनित्यंदिवौकसाम्

पृथिव्यामक्षयं दत्तं नीरुजा यत्र पाण्डवाः ॥ ४८ ॥
योगेश्वरैः सदा जुष्टं सर्वपापवहिष्कृतैः।
दद्याच्छ्राद्धं तु यस्तस्मिंस्तस्य वक्ष्यामि यत्फलम् ॥ ४६ ॥
अर्चितास्तेन वै साक्षाद्भवन्ति पितरः सदा।
अस्मिँल्लोके वशी यः स्यात्प्रेत्य स्वर्गे स मोदते ॥ ५० ॥

प्रायशः प्रवरः पुण्यः शिवो नाम ह्रदस्तथा। तत्र व्याससरः पुण्यंदिव्यंब्रह्मसरस्तथा
उज्जन्तः पर्वतःपुण्योयस्मिन्योगेश्वरालयः। तत्रैवचाऽऽश्रमःपुण्योवसिष्ठस्यमहात्मनः
ऋग्यजुःसामशिरसः कापोतः पुष्पसाह्वयः। आख्यातः पञ्चमो वेदोसृष्टाह्येतेषुब्रह्मणा
गत्वैतान्मुच्यते पापाद्द्विजोवह्निःसनातनः। श्राद्धंचाऽऽनन्त्यमेतेषुजप्यहोमतपांसिच
पुण्डरीके महातीर्थे पुण्डरीकसमं फलम्। ब्रह्मतीर्थे महातीर्थे अश्वमेधफलं लभेत् ॥

सिन्धुसागरसंभेदे तथा पञ्चनदेऽक्षयम् । कीरकात्मा ततः पुण्योमण्डवायां च पर्व
देयं सप्तरदे श्राद्धं मानसे च विशेषतः । महाकूटे च वन्दे च गिरौ त्रिककुदे तथा
संध्यायां च महावेद्यांदृश्यतेमहदद्भुतम् । अश्रद्दधानान्नास्येतिसाऽभ्येति च धृतव्रता
जातवेदःशिलातत्रसाक्षादग्नेःसनातनी । श्राद्धानिचाग्निकार्यं च तत्रकुर्यात्सदाऽक्षय
संश्रयित्वैकमेकेन सायाह्नं प्रति नित्यशः । तस्मिन्देयंसदा श्राद्धं पितॄणामक्षयार्थि
कृतात्मा वाऽकृतात्मा वा यत्र विज्ञायते नरः । स्वर्ग्यमार्गप्रदंनामतीर्थं सद्योवरप्र

वैराण्युत्सृज्य तस्मिंस्तु दिवं सप्तर्षयो गताः ॥ ६१ ॥
अद्यापि तानि दृश्यन्ते वैराण्येव गतानि तु ।
स्नात्वा स्वर्गमवाप्नोति तस्मितीर्थोत्तमे नरः ॥ ६२ ॥

ख्यातमायतनं तत्र नन्दिसिद्धनिषेवितम् । नन्दीश्वरस्य या मूर्तिर्दुराचारैर्न दृश्यते

दृश्यन्ते काञ्चना यूपाः संचिष्ये(दृष्टे) भास्करोदये ।
कृत्वा प्रदक्षिणं तांस्तु गच्छन्त्यन्तर्हिता दिवम् ॥ ६४ ॥

सर्वतश्च कुरुक्षेत्रं सुतीर्थं च विशेषतः । पुण्यं सनत्कुमारस्य योगेशस्य महात्मनः

कीर्त्यते च तिलान्दत्त्वा पितॄणां वै सदाऽक्षयम् ॥ ६५ ॥

ओजसे चाक्षयं श्राद्धं धर्मराजनिवेशने । श्राद्धं दत्तममावस्यांविधिना च यथाक्रम
पुनः संनिहतानां वै कुरुक्षेत्रे विशेषतः । अर्चयेद्वा पितॄंस्तत्र सत्पुत्रस्त्वनृणो भवे
विनशने सरस्वत्यां प्लक्षप्रश्रवणे तथा । व्यासतीर्थे सरस्वत्यां त्रिप्लक्षे च विशे
देयमोङ्कारपवने श्राद्धमक्षयमिच्छता । सर्वतश्चैव गङ्गायां मैनाके च नगोत्तमे
यमुनाप्रभवे चैव सर्वपापैः प्रमुच्यते । अत्युष्णाश्चातिशीताश्च आपस्तत्र निदर्शं
यमस्य भगिनीपुण्यामार्तण्डदुहितातथा । तत्राक्षयं तदा श्राद्धंपितृभिःपूर्वकीर्ति
ब्रह्मतुङ्गह्रदे स्नात्वा सद्योभवति ब्राह्मणः । तस्मिन्हिश्राद्धमानन्त्यंजपहोमतपांसि
स्थाणुभूतश्चरंस्तत्रवसिष्ठो वै महातपाः । अद्यापि यत्र दृश्यन्तेपादपामणिचर्चि
तुला तु दृश्यते यत्र धर्माधर्मप्रदर्शिनी । यया वै तुलितं विप्रैस्तीर्थानांफलमुत्त
पितॄणां दुहिता योगा गन्धकालीति विश्रुता । चतुर्थोब्रह्मणश्चांशःपराशरकुलो

व्यस्यत्वेकंचतुर्धा तु वेदंधीमान्महामुनिः । महायोगंमहात्मानंयोव्यासंजनयिष्यति
अच्छोदकंनामसरोयत्राच्छोदासमुच्छ्रिता । मत्स्ययोनौपुनर्जातानियोगाद्धारणेनतु
तस्यायत्राऽऽश्रमः पुण्यःपुण्यकृद्भिर्निषेवितः । सकृद्दत्तं तु वै श्राद्धमक्षयंसमुदाहृतम्

तस्यां योगसमाधाने दत्तं युगपदुद्भवेत् ॥ ७८ ॥
कुबेरतुङ्गे व्यामोच्चे व्यासतीर्थे तथैव च ।
पुण्यः स ब्राह्मणो दद्याच्छ्राद्धमानन्त्यमक्षयम् ॥ ७९ ॥
सिद्धैस्तु सेविता नित्यं दृश्यते नाकृतात्मभिः ।
अनिवर्तनं तु नन्दायां वेद्यां प्रागुत्तरे (?) दिशि ॥ ८० ॥

सिद्धक्षेत्रं तु वै जुष्टं यत्प्राप्य न निवर्तते । महालये पदं न्यस्तं महादेवेनधीमता
देव्यालये तपस्तप्त्वा एकपादेन ईश्वरः । नीहारश्चयुगंदिव्यमुमातुङ्गे स्थितंजलम्
उमातुङ्गे भृगोस्तुङ्गेब्रह्मतुङ्गे महालये । कादम्बत्यां च शाण्डिल्यांगुहायांवामनस्य च

गत्वा चैतानि पूतः स्याच्छ्राद्धमक्षयमेव च ।
जपो होमस्तथा ध्यानं यत्किञ्चितत्सुकृतं भवेत् ॥ ८४ ॥
ब्रह्मचर्यं यजन्ते वै गुरुभक्ताः शतं समाः ।
एवमादीनि सद्यस्तां स्नात्वा प्राप्नोति सत्फलम् ॥ ८५ ॥

कुमारधारा तत्रैव दृष्ट्वा पापप्रणाशनी । यानासनं च तत्रैव सद्यःस्याद्यत्प्रदृश्यते
शैलकीर्तिपुरास्यांसेकामानाप्नोतिपुष्कलान् । अदृश्यः सर्वभूतानां देववच्चरतेमहीम्
काश्यपस्य महातीर्थंकालसर्पिरिति श्रुतम् । तत्रश्राद्धानिदेयानिनित्यमक्षयमिच्छता
अक्षयं तु भवेच्छ्राद्धं शालग्रामसमन्ततः । दृष्ट्वा न दृश्यते तत्र प्रत्यक्षमकृतात्मनाम्
प्रत्यादेशोह्यशिष्टानांशिष्टानां च निवेशनम् । तत्र चैवह्रदेपुण्येदिव्यो वै नागराट्ततः
पिण्डंगृह्णाति हि सतां न गृह्णात्यसतांहिसः । अतिप्रदीप्तैर्भुजगैर्भोक्तुमन्नंनशक्यते(?)
प्रत्यक्षं दृश्यते धर्मस्तीर्थयोरनयोर्द्वयोः । देवदारुवने चापि चारयेस्तं निदर्शनम् ॥
विधूतानि तु पापानिदृश्यन्तेसुकृतात्मनाम् । भागीरथ्यांप्रयागे च नित्यमक्षयमुच्यते
कालञ्जरे दशार्णायां नैमिषे कुरुजाङ्गले । वाराणस्यांनगर्यान्तु देयं श्राद्धं तु यत्नतः

तस्यांयोगेश्वरोनित्यंतत्तस्यांदत्तमक्षयम् । दत्त्वाचैतेषुपूतःस्याच्छ्राद्धमानन्त्यमेव
जपोहोमस्तथाध्यानं यत्किंचित्सुकृतंभवेत् । लौहित्येवैतरण्यांवैस्वर्णवेद्यांतथैव
सकृदेव समुद्रान्ते दृश्यते पुण्यकर्मभिः । गङ्गायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणस्तथा ।
गयायां गृध्रकूटे च श्राद्धं दत्तं महाफलम् । हिमं च पतते तत्रसमन्तात्पञ्चयोजनम्
भरतस्याऽऽश्रमे पुण्येऽरण्यंपुण्यतमं स्मृतम् । मतङ्गस्य पदं तत्रदृश्यतेमांसचक्षुषा
ख्यापितं धर्मसर्वस्वं लोकस्यास्यनिदर्शनम् । एवंपञ्चवनं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम्

यस्मिन्पाण्डुविशालेति तीर्थं सद्यो निदर्शनम् ॥ १०० ॥

तुलामानैस्तथाचापैःशास्त्रैश्चविविधैस्तथा । उन्मज्जन्तितथालग्ने येवैपापकृतोजनाः

तृतीयायां तथा पादे निःस्वरे पावमण्डले (?) ।
महाह्रदे वै कौशिक्यां दत्तं श्राद्धं महाफलम् ॥ १०२ ॥

मुण्डपृष्ठे पदं न्यस्तंमहादेवेन धीमता । बहून्देवयुगांस्तप्त्वा तपस्तीव्रं सुदुश्चरम्
अल्पेनाप्यत्र कालेन नरो धर्मपरायणः । पाप्मानमुत्सृजत्याशु जीर्णत्वचमिवोरगः
सिद्धानां प्रीतिजननैः पापानां च भयंकरैः । लेलिहानैर्महाभोगैरक्षितं तु दिवानिशम्
नाम्ना कनकनन्दीति तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् । उदीच्यांमुण्डपृष्ठस्यदेवर्षिगणसेवितम्

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति कामचारा विहंगमाः ॥ १०६ ॥
दत्तं चापि तथा श्राद्धमक्षयं समुदाहृतम् ।
ऋणैस्त्रिभिस्तदा स्नात्वा निक्षिणोति नरोत्तमः ॥ १०७ ॥

तीरे तु सरस्तत्र देवस्याऽऽयतनं महत् । आरुह्य तज्जपंस्तत्रसिद्धो याति दिवं ततः
उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् । तत्र गत्वा सुरश्रेष्ठंदृश्यतेमहदद्भुतम्

तस्मिन्निर्वर्तयेच्छ्राद्धं यथाशक्ति यथाबलम् ।
कामान्स लभते दिव्यान्मोक्षोपायं च नित्यशः ॥ ११० ॥

मानसे सरसि श्रेष्ठे दृश्यते महदद्भुतम् । दिवश्च्युता महाभागा ह्यन्तरिक्षे विराजते
गङ्गा त्रिपथगादेवीसोमपादाच्च्युता भुवि । आकाशे दृश्यते तत्रतोरणंसूर्यसंनिभम्
जाम्बूनदमयं दिव्यं स्वर्गद्वारमिवाऽऽयतम् । यतः प्रवर्तते भूयः पूर्वसागरमन्तिमम् ।

पावनी सर्वभूतानां धर्मज्ञानां विशेषतः । चन्द्रभागा च सिन्धुश्च उभे मानससंनिभे
सागरं पश्चिमं याति दिव्यसिन्धुर्नदीवरः ॥ ११४ ॥
पर्वतो हिमवान्नाम नानाधातुविभूषितः । योजनानां सहस्राणिआयतोऽशीतिरुच्यते
सिद्धचारणसंकीर्णः सिद्धचारणसेवितः । तत्र पुष्करणी रम्या सुषुम्ना नाम विश्रुता
दश वर्षसहस्राणि तत्र जातस्तु जीवति । श्राद्धं भवतिचाऽऽनन्त्यंतस्यांदत्तंमहोदयम्
तारयेच्च यदा श्राद्धं दशपूर्वान्दशापरान् ॥ ११७ ॥
सर्वं पुण्यं हिमवतो गङ्गापुण्या च सर्वतः । समुद्रगाःसमुद्राश्च सर्वे पुण्याःसमन्ततः
एवमादिषु सर्वेषु श्राद्धं निर्वर्तयेद्बुधः । पूतो भवति स्नात्वा तु दत्त्वादत्त्वातथैव च
शैलसानुषु तुङ्गेषु कन्दरेषु गुहासु च । उपह्वरनितम्बेषु तथा प्रश्रवणेषु च ॥ १२० ॥
पुलिनेष्वापगानां च तथैव प्रभवे शुभे । महोदधौ गवां गोष्ठे संगमेषु वनेषु च ॥
असंसृष्टोपलिप्तासु हृद्यासु सुरभीषु च । गोमयेनोपलिप्तेषु विविक्तेषुगृहेषु च ॥१२२
कुर्याच्छ्राद्धमथैतेषु नित्यमेव यथाविधि । प्रदक्षिणं दिशं गत्वा सर्वकामचिकीर्षकः
एवमेतेषु सर्वेषु श्राद्धं कुर्यादतन्द्रितः । एवमेव तु मेधावी ब्राह्मीं सिद्धिमवाप्नुयात्
त्रैवर्ण्ये विहितेस्थानेधर्मवर्णाश्रमे तथा । कोपस्थानस्यसंत्यागात्प्राप्यतेपितृपूजनम्
तीर्थान्यनुसरन्धीरः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः । कृतशापश्च शुध्येत किं पुनः शुभकर्मकृत्
तिर्यग्योनिं न गच्छेच्च कुदेशे न च जायते ।
स्वर्गी भवति वै विप्रो मोक्षोपायं च विन्दति ॥ १२७ ॥
अश्रद्दधानाःपाप्मानोनास्तिकाःस्थितसंशयाः । हेतुद्रष्टा च पञ्चैते न तीर्थफलमश्नुते
गुरुतीर्थे परा सिद्धिस्तीर्थानां परमं पदम् । ध्यानं तीर्थपरं तस्माद्ब्रह्मतीर्थंसनातनम्
उपवासात्परं ध्यानमिन्द्रियाणां निवर्तनम् । उपवासनिबद्धा हि प्राणैरिह पुनः पुनः
प्राणापानौ समौ कृत्वा विषयाणीन्द्रियाणि च ।
बुद्धिं मनसि संयम्य सर्वेषां तु निवर्तनम् ॥ १३१ ॥
प्रत्याहारं पुनर्विद्धि मोक्षोपायमसंशयम् । इन्द्रियाणां मनोघोरंबुद्ध्यादीनांप्रवर्तनम्
अनाहारात्क्षयं याति विद्यादनशनं तपः । निग्रहाद्बुद्धिमनसो रम्या बुद्धिस्तु जायते

क्षीणेषु सर्वपापेषु क्षीणेष्वेवेन्द्रियेषु च। परिनिर्वाति शुद्धात्मा यथा वह्निर्निरिन्धनः

कारणेभ्यो गुणेभ्योऽथ व्यक्ताव्यक्तस्य कृत्स्नशः।
वियोजयति क्षेत्रज्ञं तेभ्यो योगेन योगवित् ॥ १३५ ॥
तस्य नास्ति गतिस्थानं व्यक्ताव्यक्तं न संशयः।
नासन्न सदसच्चैव नैव किंचित्स्थितेरिति ॥ १३६ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पे तीर्थयात्रा नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

श्राद्धोपादेयानि

बृहस्पतिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानानि च फलानि च।
श्राद्धकर्मणि मेध्यानि वर्जनीयानि यानि च ॥ १ ॥

हिमप्रपतने कुर्यादाहरेद्वा हिमं ततः। अग्निहोत्रमतः पुण्यं परमं हि ततः स्मृतम्
नक्तं तु वर्जयेच्छ्राद्धं राहोरन्यत्र दर्शनात्। सर्वस्वेनापि कर्तव्यं क्षिप्रं वै राहुदर्शने
उपरागे न कुर्याद्यः पङ्के गौरिव सीदति। कुर्वाणस्तूद्धरेत्पापान्मज्जनैरिव सागरे
विश्वदेवं च सौम्यं च बहुमांसपरं हविः। विषाणं वर्जयेत्खाड्गमसूयानाशनाय वै
त्वष्टा वै वार्यमाणस्तु देवेशेन महात्मना। पिबञ्शचीपतेः सोमं पृथिव्यामपतत्पुरा

श्यामाकास्तु तथोत्पन्नाः पित्रर्थमपि पूजिताः।
विप्रुषस्तस्य नासाभ्यामसक्ताभ्यां तथेक्षवः ॥ ७ ॥
श्लेष्माणः शीतला हृद्या मधुराश्च तथेक्षवः

श्यामाकैरिक्षुभिश्चैव पितॄणां सार्वकामिकम् ॥
कुर्यादाग्रयणं यस्तु स शीघ्रं सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ८ ॥
श्यामाका हस्तिनामा च पटोलं बृहतीफलम् ।
अगस्त्यस्य शिखा तीव्रा कषायाः सर्व एव च ॥ ६ ॥

एवमादीनि चान्यानि स्वादूनि मधुराणि च । नागरं चात्र वै देयं दीर्घमूलकमेव च वंशीकरीराः सुरसाःसर्जकंभूस्तृणानि च । वर्जनीयानिवक्ष्यामिश्राद्धकर्मणिनित्यशः लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुः पिण्डमूलकम् । करम्भाद्यानिचान्यानिहीनानिरसगन्धतः श्राद्धकर्मणि वर्ज्यानिकारणंचात्र वक्ष्यते । पुरा दे(दै)वासुरे युद्धेनिर्जितस्यबलेःसुरैः व्रणेभ्योविस्फुरन्तो वै पतितारक्तबिन्दवः । तत एतानिवर्ज्यानि श्राद्धकर्मणिनित्यशः अथ वेदोक्तनिर्यासांल्लवणान्यूषणानि च । श्राद्धकर्मणिवर्ज्यानियाश्चनार्योरजस्वलाः दुर्गन्धं फेनिलं चैव तथा वै पल्वलोदकम् । न लभेद्यत्र गौस्तृप्तिं नक्तं यच्चैवगृह्यते आविकं मार्गमौष्ट्रं च सर्वमेकशफं च यत् । माहिषं चामरं चैवपयोवर्ज्यं विजानता

अतः परं प्रवक्ष्यामि वर्ज्यान्देशान्प्रयत्नतः ।
न द्रष्टव्यं च यैः श्राद्धं शौचाशौचं च कृत्स्नशः ॥ १८ ॥

वन्यमूलफलाहारैः श्राद्धं कुर्यात्तु श्रद्धया । राष्ट्रमिष्टमवाप्नोति स्वर्गंमोक्षंयशस्करम् अनिष्टशब्दसंकीर्णं जन्तुव्याप्तमथापि वा । पूतिगन्धां तथा भूमिंश्राद्धकर्मणिवर्जयेत् नद्यः सागरपर्यन्ता द्वारं दक्षिणपूर्वतः । त्रिशङ्कुं वर्जयेद्देशं सर्वं द्वादशयोजनम् ॥ उत्तरेण महानद्या दक्षिणेन च कैकटात् । देशस्त्रैशङ्कवो नाम वर्जितः श्राद्धकर्मणि ॥ कारस्कराः कलिङ्गाश्च सिन्धोरुत्तरमेव च । प्रनष्टाश्रमधर्माश्च वर्ज्या देशाः प्रयत्नतः नग्नादयो न पश्येयुःश्राद्धमेवंव्यवस्थितम् । गच्छन्तितैस्तैर्दृष्टानि न पितॄन्नपितामहान्

शंयुवाच

नग्नादीन्भगवन्सम्यङ्नमाद्य परिपृच्छतः । कथय द्विजमुख्याग्र्य विस्तरेणयथातथम् एवमुक्तो महातेजा बृहस्पतिरुवाचतम् । सर्वेषामेव भूतानां त्रयी संवरणं स्मृतम् ॥ परित्यजति यो मोहात्ते वै नग्नादयो जनाः । प्रलीयते नरो यस्मान्निरालम्बश्चयोवृषः

वृषंयश्चपरित्यज्यमोक्षमन्यत्र मार्गति । वृथावेदाश्रमास्तस्मिन्यो वै सम्यङ्नपश्यति
ब्राह्मणाः क्षत्त्रियावैश्यावृषलाश्चैव सर्वशः । पुरा दे(दै)वासुरेयुद्धे निर्जितैरसुरैस्तदा

पाषण्डवैकृतास्तात नैषा सृष्टिः स्वयंभुवः ।
यद्विश्राद्धकनिर्ग्रन्थाः शक्त्या जीवन्ति कर्पटाः ॥ ३० ॥

ये धर्मं नानुवर्तन्ते ते वै नग्नादयो जनाः । वृथाजटी वृथामुण्डीवृथानग्नश्च यो द्विजः
वृथाव्रतीवृथाजापी ते वै नग्नादयो जनाः । कुलंधमा निकाशाश्चतथा पुष्टिकलंशकाः
कृतकर्माक्षितास्त्वेतेकुपथाःपरिकीर्तिताः । एभिर्निर्वृत्तं वा श्राद्धंवृथागच्छतिमानवान्
ब्रह्मघ्नश्च कृतघ्नश्च नास्तिका गुरुतल्पगाः । दस्यवश्च नृशंसाश्च दर्शनेनैव वर्जिताः॥
ये चान्ये पापकर्माणः सर्वांस्तान्परिवर्जयेत् । देवदेवर्षिनिंदायां रताश्चैव विशेषतः॥
असुरान्यातुधानांश्च दृष्टमेभिर्व्रजन्त्युत । ब्राह्मं कृतयुगंप्रोक्तंत्रेता तु क्षत्त्रियं स्मृतम्

वैश्यं द्वापरमित्याहुः शूद्रं कलियुगं स्मृतम् ॥ ३६ ॥

'पितर ऊचुः

वेदाः कृतयुगे पूज्यास्त्रेतायां तु सुरास्तदा । युद्धानि द्वापरेनित्यंपाषण्डाश्चकलौयुगे
अपमानापवित्रश्च कुक्कुटो ग्रामसूकरः । श्वा चैव दर्शनादेव हन्ति श्राद्धं न संशयः
शावसूतकसंसृष्टो दीर्घरोगिभिरेव च । मलिनैः पतितैश्चैव न द्रष्टव्यं कथञ्चन ॥ ३६
अन्नंपश्येयुरेते व नैतत्स्याद्धव्यकव्ययोः । तत्संस्पृष्टंप्रधानार्थंसंस्कारश्वापदोभवेत्
हविषां संहतानां तु पूर्वमेव विवर्जनम् । मृत्संयुक्ताभिरद्भिश्च प्रोक्षणं च विधीयते॥

सिद्धार्थकैः कृष्णतिलैः कार्यं वाऽप्यवकीरणम् ।
गुरुसूर्याग्निवस्तूनां दर्शनं वाऽपि यत्नतः ॥ ४२ ॥

आसनारूढमानेषु पादोपहतमेव च । अमेध्यैर्जंगमैर्दृष्टं शुष्कं पर्युषितं च यत् ॥ ४३
अशितं परिदुष्टं च तथैवाग्रावलेहितम् । शर्कराकेशपाषाणैः कीटैर्यच्चाप्युपद्रुतम्॥
पिण्याकमथितं चैव तथातिलयवादिषु । सिद्धाक्षताश्च ये भक्ष्याःप्रत्यक्षलवणीकृताः
वाससा चावधूतानि वर्ज्यानि श्राद्धकर्मणि । सन्तिवेदविरोधेन केचिद्विज्ञानमानिनः
अयज्ञपतयोनाम ते श्राद्धस्ययथा रजः । दधि शक्तंतथाऽभक्ष्याशुक्लंचौषंविवर्जितम्

वार्ताकं वर्जयेद्द्वात्सर्वानभिपवानपि । सैन्धवं लवणं यच्च तथा मानससंभवम् ॥
पवित्रं परमं ह्येतत्प्रत्यक्षमपि वर्तते । अग्नौ निक्षिप्य गृह्णीयाद्धस्तौ प्रक्षिप्य यत्नतः
गमयेन्मस्तकं चैव ब्रह्मतीर्थं हि तत्स्मृतम् । द्रव्याणां प्रोक्षणं कार्यंतथैवाऽऽवपनंपुनः
निधाय चाद्भिः सिञ्चेत तथैवाप्सु निवेशनम् । अरिष्टतुमुलेबिल्वंत्विङ्गुदश्वदनान्यपि
विदलानांचसर्वेषांचर्मवच्छौचमिष्यते । तथा दन्तास्थिदारूणांशृगाणांचावलेखनम्
सर्वेषां मृन्मयानां तु पुनर्दाह उदाहृतः । मणिवज्रप्रवालानां मुक्ताशङ्खमणेस्तथा ॥

सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः ।
स्याच्छौचं सर्ववालानामाविकानां च सर्वशः ॥ ५४ ॥

आविकानां च सर्वेषां मृद्भिरद्भिर्विधीयते । आद्यन्तयोस्तु शौचानामद्भिःप्रक्षालनंपुनः
तथा कार्पासिकानां च भस्मनासमुदाहृतम् । फलपुष्पशलाकानांप्लावनंचाद्भिरिष्यते
संमार्जनं प्रोक्षणं च भूमेश्चैवोपलेपनम् । निष्क्रम्य बाह्यतो ग्रामाद्वायुपूता वसुंधरा
धनुष्मत्पक्षिणां चैव मृद्भिः शौचं विधीयते । एवमेष समुद्दिष्टः शौचानांविधिरुत्तमः

अतः परं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ ५८ ॥
प्रातर्गृहात्पश्चिमदक्षिणेन इषुक्षेपं चाक्षमात्रं पदं च ।
कुर्यात्पुरीषं च शिरोऽवगुण्ठ्य न च स्पृशेत्तत्र शिरः करेण ॥ ५६ ॥

शुष्कैस्तृणैर्वा काष्ठैर्वा पत्रैर्वेणुदलेन वा । मृन्मयैर्भाजनैर्वाऽपि तिरोधाय वसुंधराम्
उद्धृतोदकमादाय मृत्तिकांचैव वाग्यतः । दिवाउदङ्मुखः कुर्याद्रात्रौ वै दक्षिणामुखः
दक्षिणेन च हस्तेन गृह्णीयाद्वै कमण्डलुम् । शौचं च वामहस्तेन गुदेतिस्रस्तुमृत्तिकाः
दश चापि पुनर्दद्याद्वामहस्तक्रमेण तु । द्वाभ्यां वाऽपि पुनर्दद्याद्धस्तानांपञ्चमृत्तिकाः

मृदा प्रक्षाल्य पादौ च आचम्य च यथाविधि ।
आपस्त्याज्यास्त्रयश्चैव सूर्याग्निपवनाम्भसाम् ॥ ६४ ॥

कुर्यात्संनिहितं नित्यंप्राज्ञस्तीर्थेकमण्डलुम् । असत्कार्यंकार्यमेतैर्यथावत्पादधावनम्
आचमनं द्वितीयेन देवकार्यं ततः परम् । उपवासस्त्रिरात्रं तु दुष्टहस्ते ह्युदाहृतः ॥
विप्रकृष्टेन कृच्छ्रेण प्रायश्चित्तमुदाहृतम् । स्पृष्ट्वा श्वानंश्वपाकं वा तप्तकृच्छ्रंसमाचरेत्

मानुषास्थीनि संस्पृश्यउपोष्यंशुद्धिकारणम् । त्रिरात्रमुक्तंसस्नेहमेकरात्रमतोऽन्यथा

कारस्कराः पुलिन्दाश्च तथाऽऽन्ध्रशवरादयः ।
पीत्वा चापो भूतिलये गत्वा चैव युगंधराम् ॥ ६९ ॥

सिन्धोरुत्तरपर्यन्तं तथा दिव्यन्तरे शतम् । पापदेशाश्च ये केचित्पापैरध्युषिता जनैः
शिष्टैश्च वर्जिता ये च ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । गत्वा देशानपुण्यांस्तुकृत्स्नं पापंसमश्नुते
मनोव्यक्तिरथाग्निश्च काले चैवोपलेपनम् । विख्यापनं च शौचानां नित्यमज्ञानमेव च

अतोऽन्यथा तु यः कुर्यान्मोहाच्छौचस्य संकरम् ।
पिशाचान्यातुधानांश्च फलं गच्छत्यसंशयम् ॥ ७३ ॥

शौचमश्रद्दधानस्य म्लेच्छजातिषु जायते । अयज्ञाश्चैव पापोवातिर्यग्योनिगतोऽपिवा
शौचेन मोक्षं कुर्वाणः स्वर्गवासी भवेन्नरः । शुचिकामा हि देवा वै देवैरेतदुदाहृतम्
बीभत्समशुचिं चैव वर्जयन्ति सुराः सदा । त्रीणिशौचानिकुर्वन्तिन्यायतःशुभकर्मणः
ब्रह्मण्यायाऽऽतिथेयायशौचयुक्ताय धीमते । पितृभक्तायदान्तायसानुक्रोशायचद्विजाः

तैस्तैः प्रीताः प्रयच्छन्ति पितरो योगवर्धनाः ।
मनसा काङ्क्षितान्कामांस्त्रैलोक्यप्रभवानिति ॥ ७८ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पोनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

नवसप्ततितमोऽध्यायः

श्राद्धे ब्राह्मणपरीक्षणम्

ऋषय ऊचुः

अहो धीमंस्त्वया सूत ! श्राद्धकल्पस्तु कीर्तितः ।
श्रुतो नः श्राद्धकल्पो वै ऋषिभिः परिकीर्तितः ॥ १ ॥

अतीव विस्तरो यस्य विशेषेण प्रकीर्तितः । वद शेषं महाप्राज्ञ ऋषेस्तस्य यथामतम्

सूत उवाच

कीर्तयिष्यामिते विप्राऋषेस्तस्यमततुयत् । श्राद्धंप्रतिमहाभागास्तन्मेश्रृणुतविस्तरात्
उक्तं श्राद्धं मया पूर्वं विधिश्चश्राद्धकर्मणि । परिशिष्टंप्रवक्ष्यामिब्राह्मणानांयथाक्रमम्
न मीमांस्याः सदाविप्राः पवित्रंह्येतदुत्तमम् । दैवेपित्र्ये च सततंश्रूयते वै परीक्षणम्
यस्मिन्दोषाः प्रपश्येरन्सद्भिर्वावर्जितस्तु यः । जानीयाद्वाऽपिसंवासाद्वर्जयेत्तंप्रयत्नतः
अविज्ञातं द्विजं श्राद्धे परीक्षेतसदा बुधः । सिद्धा हि विप्ररूपेणचरन्तिपृथिवीमिमाम्
तस्मादतिथिमायान्तमभिगच्छेत्कृताञ्जलिः । पूजयेच्चापि पाद्येनपादाभ्यञ्जनभोजनैः
उर्वीं सागरपर्यन्तां देवायोगेश्वरास्तथा । नानारूपैश्चरन्त्येते प्रजा धर्मेण पालयन् ॥
अर्चयित्वा ततो दद्याद्विप्रायातिथये नरः । व्यञ्जनानि च भक्ष्याणि फलं तेषांतथैवच
आग्निष्टोमं तु पयसा प्राप्नुयाद्वैतथाश्रुतम् । सर्पिषा तु शुभं चक्षुःषोडशाहफलंलभेत्

मधुना त्वतिरात्रस्य फलं च समवाप्नुयात् ॥ ११ ॥
तत्प्राप्नुयाच्छ्रद्दधानो नरो वै सर्वैः कामैर्भोजयेद्यस्तु विप्रान् ।
सर्वार्थदः सर्वविप्रातिथेयः फलं भुङ्क्ते सर्वमेधस्य नित्यम् ॥ १२ ॥

यस्तुश्राद्धेऽतिथिंप्राप्यदैवेवाऽप्यवमन्यते । तं वैदेवानिरस्यंतिहोतायद्वत्परांवसुम्(?)
देवाश्च पितरश्चैववह्निश्चैव हि तान्द्विजान् । आविश्य भुञ्जते तद्वै लोकानुग्रहकारणात्
अपूजिता दहन्त्येते दद्युः कामांश्च पूजिताः । सर्वस्वेनापि तस्माद्वैपूजयेदतिथीन्सदा
वानप्रस्थोगृहस्थश्चगृहमभ्यागतोऽथवा । बालाः खिन्नायतिश्चैवजानीयादतिथीन्सदा

अभ्यागतो याचकः स्यादतिथिः स्यादयाचकः ।
अतिथेरतिथिः श्रेष्ठः सोऽतिथिर्योग उच्यते ॥ १७ ॥
न घोरो नापि संकीर्णो नाविद्यो न विशेषवित् ।
न च सन्तानसमृद्धो न सेवी नाचरोऽतिथिः ॥ १८ ॥

पिपासिताय श्रान्तायभ्रान्तायातिबुभुक्षते । तस्मैसत्कृत्यदातव्यंयज्ञस्यफलमिच्छता
आरुह्य भृगुतुङ्गे तु गत्वापुण्यांसरस्वतीम् । आपगां तु नदींपुण्यांगङ्गांदेवींमहानदीम्

हिमवत्प्रभवा नद्यो याश्चान्या ऋषिपूजिताः । सरस्तीर्थाभिसंवेद्यानदीनववहास्तथा
गत्वैतान्मुच्यते पापैः स्वर्गे नित्यं महीयते । दशरात्रमशौचं तु प्रोक्तं वै मृतसूतके ॥
ब्राह्मणस्यविशेषेणक्षत्त्रियेद्वादशंस्मृतम् । अर्धमासं तु वैश्यस्यमासाच्छूद्रस्तुशुध्यति
उदक्यासर्ववर्णानांत्रिरात्रेण तु शुध्यति । उदक्यांसूतिकांचैवश्वानमन्त्यावसायिनम्
नग्नादीन्मृतहारांश्चस्पृष्ट्वाऽशौचंविधीयते । स्नात्वासचैलोमृद्भिस्तुद्वादशभिस्तुशुध्यति
एतदेव भवेच्छौचं मैथुने वमने तथा । मृदा प्रक्षाल्य हस्तौ तु कुर्याच्छौचविधिंनरः
प्रक्षाल्य चाद्भिर्हस्तौ च स्नात्वा चैव मृदा पुनः । मृदं गुह्ये ततो द्विस्तुपुनरेवमृदंबुधः
एवं शौचविधिर्दृष्टः सर्ववर्णेषु नित्यदा । परिदद्यान्मृदस्तिस्रो हस्तपादावसेचनम्

आरण्यं शौचमेतत्तु ग्राम्यं वक्ष्याम्यतः परम् ।
मृदस्तिस्रः पादयोस्तु हस्तयोस्तिस्र एव च ॥ ३० ॥

मृदः पञ्चदशामेध्ये हस्तादीनां विभागशः । अनिर्णिक्ते मृदं दद्यान्मृदन्ते त्वद्भिरेव तु

कण्ठं शिरो वा प्रावृत्य रथ्यापादगतस्तु वा ।
अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ ३२ ॥

प्रक्षाल्यपात्रंनिक्षिप्यआचम्याभ्युक्षणंपुनः । द्रव्यस्यान्यस्य तु तथाकुर्यादभ्युक्षणंपुनः
पुष्पादीनां तृणानां च प्रोक्षणंहविषां तथा । पराहतानांद्रव्याणांनिधायाभ्युक्षणंतथा
नाप्रोक्षितं हरेत्किंचिच्छ्राद्धे दैवे तथा पुनः । उत्तरेणाऽऽहरेद्धेयांदक्षिणेन विसर्जयेत्
विच्छिन्नं स्याद्विपर्यासेदैवेपित्र्ये तथैव च । दक्षिणेन तु हस्तेनदक्षिणांवेदिमालिखेत्
कराभ्यामेव देवानां पितॄणां विंकरं(?)शुभम् । क्षुभितस्वप्नयोश्चैवतथामूत्रपुरीषयोः

निष्ठीविते तथा व्यक्ते भुक्त्वा विपरिधाय च ।
उच्छिष्टस्य च संस्पर्शे तथा पादावसेचने ॥ ३६ ॥

उत्सृष्टस्य सुसंभाषे ह्यशुचि(?) प्रयतस्य च । संदेहेषु च सर्वेषु शिखांमुक्त्वातथैवच
विना यज्ञोपवीतेन मोहात्तु यद्युपस्पृशेत् । ओष्ठस्यदन्तसंस्पर्शेदर्शनेचान्त्यवासिनाम्
जिह्वया चैव संस्पृश्य दन्तासक्तं तथैव च । सशब्दमङ्गुलीभिश्च प्रणतश्चावलोकयन् ॥
यश्चाधर्मे स्थितोमोहादाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् । उपविश्यशुचौदेशेप्रणतःप्रागुदङ्मुखः

पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ तु अन्तर्जानुरुपस्पृशेत् । प्रसन्नस्त्रिःपिबेच्चापः प्रयतःसुसमाहितः
द्विरेव मार्जनं कुर्यात्सकृदभ्युक्षणं ततः । खानि मूर्धानमात्मानं हस्तौपादौ तथैव च
अभ्युक्षणं तथा तस्य यच्चमीमांसितं भवेत् । एवमाचमनं तस्य वेदायज्ञास्तपांसि च
दानानिब्रह्मचर्यं च भवन्तिसफलास्तथा । क्रियां यः कुरुतेमोहादनाचम्यैवनास्तिकः
भवन्तिचवृथातस्यक्रियाह्येतानसंशयः । वाग्भावशुद्धनिर्णिक्तमदुष्टं वाऽप्यनिन्दितम्

मेध्यान्येतानि ज्ञेयानि दुष्टमेभ्यो विपर्ययः ।
न वक्तव्यः सदा विप्रः क्षुधितो नास्ति किंचन ॥ ४८ ॥

तस्मै सत्कृत्य यो दद्याद्यूपोयज्ञउच्यते । अप्लुष्टान्नं श्रुतान्नं तु कृशवृत्तिमयाचकम् ।
एकान्तशीलंह्रीमन्तंसदाश्राद्धेषुभोजयेत् । यो ददात्यन्तिमेभ्यश्च स ब्रह्मघ्नोदुरात्मवान्

अपि जातिशतं गत्वा न स मुच्येत किल्बिषात् ।
विषमं भोजयेद्विप्रानेकपङ्क्त्यां च यो नरः ॥ ५१ ॥
नियुक्तो वाऽनियुक्तो वा पङ्क्त्या हरति दुष्कृतम् ।
पापेन गृह्यते क्षिप्रमिष्टापूर्तं च नश्यति ॥ ५२ ॥

यतिस्तु सर्वविप्राणांसर्वेषामग्र्य उत्सवे । इतिहासपञ्चमान्वेदान्यः पठेत्तुद्विजोत्तमः
अनन्तरं यथायोग्यंनियोक्तव्यो विजानता । त्रिवेदोऽनन्तरस्तस्यद्विवेदस्तदनन्तरः ॥

एकवेदस्तथा पश्चान्न्यायाध्यायी ततः परम् ।
पावना ये च पङ्क्त्या वै तान्प्रवक्ष्ये निबोधत ॥ ५५ ॥

य एते पूर्वनिर्दिष्टाः सर्वे ते ह्यनुपूर्वशः । षडङ्गी विनयी योगी सर्वतन्त्रस्तथैव च ॥
यायावरश्चपञ्चैतेविज्ञेयाःपङ्क्तिपावनाः। अष्टादशानांविद्यानामेकःस्यात्पारगोऽपियः
यथावद्वर्तमानश्च सर्वे ते पङ्क्तिपावनाः । त्रिनाचिकेतस्त्रैविद्योयश्च धर्मान्पठेद्द्विजः
बार्हस्पत्येतथाशास्त्रेपारंयश्चद्विजो गतः । सर्वे ते पावनाविप्राःपङ्क्तीनांसमुदाहृताः
आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे योषितं सेवते द्विजः । पितरस्तस्य तं मासंतस्यरेतसिशेरते
श्राद्धंदत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनंयोनिषेवते । पितरस्तस्य तं मासंरेतःस्थानात्रसंशयः
तस्मादतिथये देयं भोजयेद्ब्रह्मचारिणम् । ध्याननिष्ठायदातव्यंसानुक्रोशायधार्मिकम्

यतिवावालखिल्यान्वाभोजयेच्छ्राद्धकर्मणि । वानप्रस्थोपकुर्वाणःपूजामात्रेणतोषितः
गृहस्थं भोजयेद्यस्तु विश्वे देवास्तु पूजिताः । वानप्रस्थेन ऋषयोवालखिल्यैः पुरंदरः
यतीनां पूजने चापिसाक्षाद्ब्रह्मा तु पूजितः । आश्रमाःपावनाःपञ्चउपधाभिरनाश्रमाः
चत्वार आश्रमाः पूज्याः श्राद्धे दैवे तथैव च । चतुराश्रमबाह्येभ्यः श्राद्धंनैवप्रदापयेत
स तिष्ठेद्वावुभुक्षुस्तु चतुराश्रमबाह्यतः । अयतिर्मोक्षवादी च उभौ तौ पङ्क्तिदूषकौ
वृथामुण्डाश्चजटिलाःसर्वेकार्पटिकास्तथा । निर्घृणान्भिन्नवृत्तांश्चसर्वभक्षान्विवर्जयेत
कारुकादीननाचारान्सर्ववेदबहिष्कृतान् । गायनान्देववृत्तांश्च हव्यकव्येषु वर्जयेत् ॥
द्विजेष्वपि कृतं नित्यं श्राद्धकर्मणि वर्जयेत् । एतेषु वर्तते यश्च कृष्णवर्णं स गच्छति

योऽश्नाति सह शूद्रेण सर्वे ते पङ्क्तिदूषकाः ॥ ७० ॥
व्यापादनं शक्तिनिवर्हणं कृषिर्वाणिज्यकार्यं पशुपालनं च ।
शुश्रूषणं वाऽप्यगुरोरहो वा कार्यं नैतद्विद्यते ब्राह्मणस्य ॥ ७१ ॥
ये तु विप्राः स्थिता नित्यं ज्ञानिनो ध्यानिनस्तथा ।
मिथ्यासंकल्पिनः सर्वे दुर्वृत्ता वा द्विजातयः ॥ ७२ ॥

मिथ्यातत्त्वविदो वर्ज्यास्तथादाम्भिकसूचकाः । उपपातकसंयुक्ताःपातकैश्चविशेषतः
वेदे नियोगदातारो लोभमोहफलार्थिनः । ब्रह्मविक्रयिणश्चैव श्राद्धकर्मणि वर्जिताः ।

न नियोगोऽस्ति वेदानां यो नियुङ्क्ते स पापकृत् ।
भोक्ता वेदफलाद्भ्रश्येद्दाता दानफलात्तथा ॥ ७३ ॥

भृतोऽध्यापयतेयस्तु भृतकाध्यापितस्तु यः । नार्हतस्तावपिश्राद्धंब्राह्मणःक्रयविक्रयी
क्रयविक्रयिणौ चैव जीवितार्थंविगर्हितौ । वृत्तिरेषा तु वैश्यस्यब्राह्मणस्यतुपातकम्
प्राहुर्वेदान्वेदविदो वेदान्यश्चोपजीवति । उभौ तौ नार्हतः श्राद्धं पुत्रिकापतिरेव च
वृथादारांश्च यो गच्छेद्योयजेतवृथाऽध्वरे । नार्हतस्तावपिश्राद्धंद्विजोयश्चैवनास्तिकः
आत्मार्थं यः पचेदन्नं न देवातिथिकारकम् । नार्हतस्तावपि श्राद्धंपतितौब्रह्मराक्षसौ
स्त्रियो नक्तंपरा येषां परदाररताश्च ये । अर्थकामरताश्चैव न ताञ्श्राद्धेषु भोजयेत् ॥
वर्णाश्रमाणांधर्मेषुविरुद्धाःश्राद्धकर्मणि । [illegible] सर्वे ते पङ्क्तिदूषकाः

यश्च शूकरवद्भुङ्क्ते यश्च पाणितले द्विजः । न तदश्नन्ति पितरो यश्च वामं समश्नुते
शूद्रायानुपेताय श्राद्धोच्छिष्टं न दापयेत् । यो दद्याद्रागमोहात्तु न तद्गच्छेत्पितॄन्सदा
तस्मान्न देयमुच्छिष्टमन्नाद्यं श्राद्धकर्मणि । अन्यत्र दधिसर्पिभ्यां शिष्येपुत्राय नान्यथा
अनुच्छिष्टं तु दातव्यं अन्नाद्यं वै विशेषतः । पुष्पमूलफलैर्वाऽपि तुष्टिंगच्छन्ति चान्नतः
यावन्त्यन्नानि पूतानि यावदुष्णं न मुञ्चति । तावदश्नन्ति पितरो यावदश्नन्ति वाग्यताः
दानं प्रतिग्रहो होमो भोजनं बलिरेव च । साङ्गुष्ठेन तथा कार्यं नासुरेभ्यो यथा भवेत्
एतान्येव च सर्वाणि दानादीनि विशेषतः । अन्तर्जान्वविशेषेण तद्वदाचमनं भवेत्

मुण्डाञ्जटिलकाषायाञ्छ्राद्धकालेऽपि वर्जयेत् ।
शिखिभ्यो वा त्रिदण्डिभ्यः श्राद्धं यत्नात्प्रदापयेत् ॥ ६० ॥

ये तु व्रते स्थिता नित्यं ज्ञानिनो ध्यानिनस्तथा । देवभक्ता महात्मानः पुनीयुर्दर्शनादपि
सर्वं योगेश्वरैर्व्याप्तं त्रैलोक्यं वै निरन्तरम् । तस्मात्पश्यन्ति ते सर्वं यत्किञ्चिज्जगतीगतम्
व्यक्ताव्यक्तं वशीकृत्य सर्वस्याऽपि च यत्परम् । सदसच्चेति यैर्दृष्टं सदसच्च महात्मनाम्
सर्वज्ञानानि दृष्टानि मोक्षादीनि महात्मनाम् । तस्मात्तेषु सदासक्तः प्राप्नोत्यनुपमं शुभम्

ऋचो हि यो वेद स वेद वेदान्यजूंषि यो वेद स वेद यज्ञम् ।
सामानि यो वेद स वेद ब्रह्म यो मानसं वेद स वेद सर्वम् ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पे ब्राह्मणपरीक्षणं नाम
नवसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अशीतितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पे दानफलम्

बृहस्पतिरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानानि च फलानि च । तारणं सर्वभूतानां स्वर्गमार्गं सुखावहम्
लोके श्रेष्ठतमं स्वर्ग्यमात्मनश्चापि यत्प्रियम् । सर्वं पितॄणां दातव्यं तेषामेवाक्षयार्थिना

जांम्बूनदमयं दिव्यं विमानं सूर्यसन्निभम् । दिव्याप्सरोभिःसङ्कीर्णमन्नदोलभतेफलम्
आच्छादानं तु यो दद्यादहतं श्राद्धकर्मणि । आयुः प्रकाममैश्वर्यं रूपं च लभतेसुतम्
उपवीतन्तु यो दद्याच्छ्राद्धकालेषु धर्मवित् । पानंच सर्वविप्राणांब्रह्मदानस्ययत्फलम्
कृतं विप्रेषु यो दद्याच्छ्राद्धकाले कमण्डलुम् । मधुक्षीरस्त्रवा धेनुर्दातारमुपतिष्ठति॥
चक्राविद्धंतु योदद्याच्छ्राद्धकालेकमण्डलुम् । धेनुंसलभतेदिव्यांपयोदांकामदोहिनीम्

पूर्णशय्यां तु यो दद्यात्पुष्पमालाविभूषिताम् ।
प्रासादो ह्युत्तमो भूत्वा गच्छन्तमनुगच्छति ॥ ८ ॥

भवनं रत्नसम्पूर्णं सशय्यासनभोजनम् । श्राद्धे दत्वा यतिभ्यस्तु नाकपृष्ठे स मोदते
मुक्तावैदूर्यवासांसि रत्नानि विविधानि च । वाहनानिचदिव्यानि अयुतान्यर्बुदानिच
सुमहज्ज्वलनप्रख्यं रत्नकामसमन्वितम् । सूर्यचन्द्रप्रभं दिव्यं विमानं लभतेऽक्षयम्
अप्सरोभिः परिवृतं कामगन्तु मनोजवम् । वसते स विमानाग्र्ये स्तूयमानःसमन्ततः
दिव्यैर्गन्धैः प्रसिञ्चन्ति पुष्पवृष्टिभिरेव च । गन्धर्वाप्सरसस्तत्र गायन्ते वादयन्तिच
कन्या युवतयो मुख्याः सहिताश्चाप्सरोगणैः । सुस्वरैस्ते विबुध्यन्तेसततंहिमनोरमैः
अश्वदानसहस्रेण रथदानशतेन च । दन्तिनां च सहस्रेण योगिन्या वसते नरः ॥

दद्यात्पितृभ्यो योगिभ्यो यस्तूज्ज्वलनमम्भसि ।
अथ निष्कसहस्राणां फलं पाप्नोति मानवः ॥ १६ ॥

जीवितस्य प्रदानाद्धि नान्यद्दानं विशिष्यते । तस्मात्सर्वप्रयत्नेनदेयंप्राणाभिरक्षणम्
अहिंसा सर्वदेवेभ्यः पवित्रा सर्वदायिनी । दानंहिजीवितस्याऽऽहुःप्राणिनांपरमंबुधाः
लक्षणानिसुवर्णानिश्राद्धेपात्राणिदापयेत् । रसास्तमुपतिष्ठन्तिभक्ष्याःसौभाग्यमेवच
पात्रं वै तैजसं दद्यान्मनोज्ञं श्राद्धभोजने । पात्रं भवति कामानां रूपस्य च धनस्य च
राजतं काञ्चनं वाऽपि दद्याच्छ्राद्धे तु कर्मणि । दत्त्वा तु लभते दाताप्रकामंधर्ममेव च
धेनुंश्राद्धेतुयो दद्याद्गृष्टिं कुम्भोपदोहनीम् । गावस्तमुपतिष्ठन्ति गवां पुष्टिस्तथैव च
शिशिरेषु तथा त्वग्निं बहुकाष्ठं तथैवच । इन्धनानितुयोदद्याद्द्विज्येभ्यः शिशिरागमे
नित्यं जयति सङ्ग्रामे श्रिया युक्तश्चदीप्यते । सुरभीणिचमाल्यानिगन्धवन्तितथैवच

पूजयित्वा तु पात्राणि श्राद्धे सत्कृत्य दापयेत् ।
गन्धवाहा महानद्यः सुखानि विविधानि च ॥ २६ ॥

दातारमुपतिष्ठन्ति युवत्यश्च मनोरमाः । शयनासनानि रम्याणि भूमयो वाहनानि च
श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यादश्वमेधफलं लभेत् । श्राद्धकाले निवेद्यं च दर्शश्राद्ध उपस्थिते
विप्राणांगुणयुक्तानांस्मृतिमेधांचविन्दति। सर्पिष्पूर्णानिपात्राणिश्राद्धेसत्कृत्यदापयेत्
कुम्भदोहनधेनूनां बह्वीनां च फलं लभेत् । अस्मिंस्तु मोदतेलोकेस्यन्दनैश्च सुवाहनैः
श्राद्धे यथेप्सितं दत्त्वा पुण्डरीकस्ययत्फलम् । रम्यमावसथंदत्त्वाराजसूयफलं लभेत्
वनं पुष्पफलोपेतं दत्त्वा सौरभमश्नुते । कूपारामतडागानि क्षेत्रघोषगृहाणि च ॥
दत्त्वैतान्मोदते स्वर्गे नित्यमाचन्द्रतारकम् । आस्तीर्णशयनंदत्त्वाश्राद्धेरत्नविभूषितम्
पितरस्तस्यतुष्यन्तिस्वर्गंचाऽऽनन्त्यमश्नुते । राजभिःपूज्यतेचापिधनधान्यैश्च वर्धते

ऊर्णाकौशेयवस्त्राणि तथा प्रवरकम्बलौ ।
अजिनं काञ्चनं पट्टं प्रवेणीमृगलोमकम् ॥ ३४ ॥

दानान्येतानिविप्रेभ्योभोजयित्वायथाविधि। प्राप्नोतिश्रद्दधानस्तुवाजपेयशतस्यफलम्
बह्वीनार्यःसुरूपास्तुपुत्राभृत्याश्चकिङ्कराः । वशेतिष्ठन्तिभूतानि अस्मिँल्लोकेत्वनामयम्
कौशेयक्षौमकार्पासंदुकूलमहतंतथा । श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात्कामानाप्नोतिपुष्कलान्
अलक्ष्मीं विनुदत्याशु तमः सूर्योदयेयथा । भ्राजते स विमानाग्र्ये नक्षत्रेष्विवचन्द्रमाः
वासोहिसर्वदेवत्यंसर्वदेवैस्त्वभिष्टुतम् । वस्त्राभावे क्रियानास्तियज्ञावेदास्तपांसिच
तस्माद्वस्त्राणि देयानि श्राद्धकाले विशेषतः । तानि सर्वाण्यवाप्नोतियज्ञवेदतपांसिच
नित्यं श्राद्धेषुयोदद्यात्प्रयतस्तत्परायणः । सर्वान्कामानवाप्नोतिस्वर्गंराज्यंतथैवच॥
सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते । भक्ष्यान्धानाः करम्भांश्च पिष्टकान्घृतशर्कराः
क्षीरान्मधुपर्कं च पयः पायसमेव च । स्निग्धांश्च पूपान्यो दद्यादग्निष्टोमस्य यत्फलम्
दधि गव्यमसंसृष्टं भक्ष्यान्नानाविधांस्तथा । तदन्नं शोचति श्राद्धे वर्षासुचमघासुच
घृतेन भोजयेद्विप्रान्घृतं भूमौ समुत्सृजेत् । गयायां हस्तिनश्चैव दत्त्वा श्राद्धेनशोचति
ओदनं पायसं सर्पिर्मधुमूलफलानि च । भक्ष्यांश्च विविधान्दत्त्वाप्रेत्य चेह च मोदते

शर्कराक्षीरसंयुक्तं पृथुकं नित्यमक्षयम् । स्युश्च सम्वत्सरं प्रीताः कृशरैर्मसुरेण च ॥

सक्कुलाजास्तथा पूपाः कुल्माषव्यञ्जनैस्तथा ।

सर्पिःस्निग्धानि हृद्यानि दध्ना सक्तूंस्तु भोजयेत् ॥

श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात्पद्मानि लभते निधिम् ॥ ४८ ॥

नवसस्यानि यो दद्याच्छ्राद्धेसत्कृत्ययत्नतः । सर्वभोगानवाप्नोतिपूज्यते च दिवंगतः

भक्ष्यभोज्यानि चोष्याणिपेयलेह्यवराणि च । सर्वश्रेष्ठानि यो दद्यात्सर्वश्रेष्ठोभवेन्नरः

वैश्वदेवं च सौम्यं च खाड्गमांसं परं हविः । विप्राणंवर्जयेत्खाड्गंअसूयांनाशयामहे

भोजनेऽभ्यासनंदद्यादतिथिभ्यःकृताञ्जलिः । सर्वयज्ञक्रियाणां स फलंप्राप्नोत्यनुत्तमम्

क्षिप्रमत्युष्णमक्लिष्टं दद्याच्चान्नं बुभुक्षते । व्यञ्जनंच तथा स्निग्धं भक्त्यासत्कृत्ययत्नतः

तरुणादित्यसङ्काशं विमानं हंसवाहनम् । अन्नदो लभते तिस्रः कन्याकोटीस्तथैव च

अन्नदानात्परं दानं विद्यते नेह किञ्चन । अन्नाद्भूतानि जायन्तेजीवन्ति च न संशयः

जीवदानात्परं दानं न किञ्चिदिह विद्यते । अन्नैर्जीवतित्रैलोक्यमन्नस्यैव हि तत्फलम्

अन्ने लोकाःप्रतिष्ठन्तिलोकदानस्य तत्फलम् । अन्नं प्रजापतिःसाक्षात्तेनसर्वमिदंततम्

तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ ५७ ॥

यानिरत्नानिमेदिन्यांवाहनानिस्त्रियस्तथा । क्षिप्रं प्राप्नोतितत्सर्वंपितृभक्तोहिमानवः

प्रतिश्रयं सदा दद्यादतिथिभ्यः कृताञ्जलिः । देवास्ते संप्रतीक्षन्तेदिव्यातिथ्यैःसहस्रशः

सर्वाण्येतानियोदद्यात्पृथिव्यामेकराड्भवेत् । त्रिभिर्द्वाभ्यामथैकेनदानेनतुसुखीभवेत्

दानानि परमो धर्मः सद्भिः सत्कृत्य पूजितः ।

त्रैलोक्यस्याऽऽधिपत्यं हि दानादेव व्यवस्थितम् ॥ ६१ ॥

राजा तु लभते राज्यमधनश्चोत्तमंधनम् । क्षीणायुर्लभते चाऽऽयुःपितृभक्तः सदा नरः

यान्कामान्मनसाऽर्थेत तांस्तस्य पितरो ददुः ॥ ६२ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पे दानफलं

नामाऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पेतिथिविशेषेश्राद्धफलवर्णनम्

बृहस्पतिरुवाच

अतः ऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिश्राद्धकर्मणिपूजितम् । काम्यनैमित्तिकाजस्रंश्राद्धकर्मणिनित्यशः

पुत्रदा धनमूलाः स्युरष्टकास्तिस्त्र एव च । पूर्वपक्षो वरिष्ठो हि पूर्वा चित्री उदाहृता

प्राजापत्या द्वितीया स्यात्तृतीया वैश्वदैविकी ।

आद्या पूपैः सदा कार्या मांसैरन्या भवेत्सदा ॥ ३ ॥

शाकैरन्या तृतीया स्यादेवं द्रव्यगतोविधिः । अन्वष्टकापितॄणां वै नित्यमेवविधीयते

यथन्या च चतुर्थीस्यात्ताञ्चकुर्याद्विशेषतः । तासुश्राद्धंबुधःकुर्यात्सर्वस्वेनापिनित्यशः

परत्रेह च सर्वेषु नित्यमेव सुखीभवेत् । पूजकानां सदोत्कर्षो नास्तिकानामधोगतिः

पितरः पर्वकालेषु तिथिकालेषु देवताः । सर्वे पुरुषमायान्ति निपानमिव धेनवः ॥

मा स्म ते प्रतिगच्छेयुरष्टकाःसुरपूजिताः । मोघस्तस्यभवेल्लोकोलब्धंचास्यविनश्यति

देवांस्तु दायिनोयान्तितिर्यग्गच्छन्त्यदायिनः । प्रज्ञां पुष्टिं स्मृतिंमेधांपुत्रानैश्वर्यमेवच

कुर्वाणःपौर्णमास्याञ्च पूर्णं पूर्णं समश्नुते । प्रतिपद्धनलाभाय लब्धं चाऽस्य न नश्यति

द्वितीयायां तु यः कुर्याद्द्विपदाधिपतिर्भवेत् । वरार्थिनांतृतीयातु शत्रुघ्नीपापनाशिनी

चतुर्थ्यां कुरुते श्राद्धं शत्रोश्छिद्राणि पश्यति ।

पञ्चम्यां वै प्रकुर्वाणः प्राप्नोति महतीं श्रियम् ॥ १२ ॥

षष्ठ्यां श्राद्धानि कुर्वाणं द्विजास्तं पूजयन्त्युत । कुरुतेयस्तुसप्तम्यांश्राद्धानिसततंनरः

महासत्रमवाप्नोतिगणानामधिपो भवेत् । सम्पूर्णामृद्धिमाप्नोतियोऽष्टम्यांकुरुतेनरः

श्राद्धं नवम्यां कुर्वाण ऐश्वर्यं काङ्क्षितां स्त्रियम् ।

कुर्वन्दशम्यान्तु नरो ब्राह्मीं श्रियमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥

वेदांश्चैवाऽऽप्नुयात्सर्वान्प्रणाशमेनसस्तथा । एकादश्यां परं दानमैश्वर्यं सततं तथा

द्वादश्यां राष्ट्रलाभन्तु जयमाहुर्वसूनि च ॥ १६ ॥
प्रजां बुद्धिं पशून्मेधां स्वातन्त्र्यं पुष्टिमुत्तमाम् । दीर्घमायुरथैश्वर्यंकुर्वाणस्तुत्रयोदशीम्
युवानश्च मृता यस्य गृहे तेषां प्रदापयेत् । शस्त्रेण तु हता ये वै तेषां दद्याच्चतुर्दशीम्
तथा विषमजातानां यमलानान्तु सर्वशः । अमावास्यां प्रयत्नेनश्राद्धंकुर्याच्छुचिःसदा
सर्वान्कामानवाप्नोति स्वर्गमानन्त्यमश्नुते । श्रुतं दद्यादमावस्यांसोममाप्यायनंमहत्

एवमाप्यायितः सोमस्त्रींल्लोकान्धारयिष्यति ।
सिद्धचारणगन्धर्वैः स्तूयमानस्तु नित्यशः ॥ २१ ॥

स्तवैः पुष्पैर्मनोज्ञैश्च सर्वकामपरिच्छदैः । नृत्यवादित्रगीतैश्च अप्सरोभिः सहस्रशः
उपक्रीडैर्विमानैस्तु पितृभक्तं दृढव्रतम् । स्तुवन्ति देवगन्धर्वाः सिद्धसङ्घाश्च तं सदा॥
पितृभक्तस्त्वमावस्यांसर्वान्कामानवाप्नुयात् । प्रत्यक्षमर्चितास्तेनभवन्तिपितरःसदा

पितृदेवा मघा यस्मात्तस्मात्तास्वक्षयं स्मृतम् ।
पित्र्यं कुर्वन्ति तस्यान्तु विशेषेण विचक्षणाः ॥ २५ ॥
तस्मान्मघां वै वाञ्छन्ति पितरो नित्यमेव हि ।
पितृदैवतभक्ता ये तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ २६ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पे तिथिविशेषे श्राद्धफलवर्णनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

नक्षत्रविशेषेश्राद्धफलवर्णनम्

बृहस्पतिरुवाच

यमस्तु यानिश्राद्धानिप्रोवाचशिवबिन्दवे । तानिमे श्रृणुकात्स्न्र्येननक्षत्रेषुपृथक्पृथक्
श्राद्धं यः कृत्तिकायोगे करोति सततं नरः । अग्नीनाधाय सापत्यो जायतेसगतज्वरः

अपत्यकामो रोहिण्यां सौम्येनौजस्विता भवेत् ।
प्रायशः क्रूरकर्मा तु चाऽऽर्द्रायां श्राद्धमाचरेत् ॥ ३ ॥
क्षेत्रभागी भवेत्पुत्री श्राद्धं कुर्वन्पुनर्वसौ । धनधान्यसमाकीर्णः पुत्रपौत्रसमाकुलः
तुष्टिकामः पुनस्तिष्ये श्राद्धं कुर्वीत मानवः । आश्लेषासु पितॄनर्च्य वीरान्पुत्रानवाप्नुयात्
श्रेष्ठो भवति ज्ञातीनां मघासु श्राद्धमाचरन् । फल्गुनीषु पितॄनर्च्य सौभाग्यं लभते नरः
प्रधानशीलः सापत्य उत्तरासु करोति यः । स सत्सु मुख्यो भवति हस्ते यस्तर्पयेत्पितॄन्
चित्रायां चैव यः कुर्यात्पश्येद्रूपवतः सुतान् । स्वातिना चैव यः कुर्याद्विद्यालाँभमवाप्नुयात्
पुत्रार्थं तु विशाखासु श्राद्धमीहेत मानवः । अनुराधासु कुर्वाणो नरश्चक्रं प्रवर्तयेत्
आधिपत्यं लभेच्छ्रैष्ठ्यं ज्येष्ठायां सततन्तु यः ।
मूलेनाऽऽरोग्यमिच्छन्ति आषाढासु महद्यशः ॥ १० ॥
आषाढाभिश्चोत्तराभिर्वीतशोको भवेन्नरः । श्रवणेन तु लोकेषु प्राप्नुयात्परमां गतिम्
राज्यभागवै धनिष्ठासु प्राप्नुयाद्विपुलं धनम् ।
श्राद्धं त्वभिजिता कुर्वन्वेदान्साङ्गानवाप्नुयात् ॥ १२ ॥
नक्षत्रे वारुणे कुर्वन्भिषक्सिद्धिमवाप्नुयात् । पूर्वे प्रोष्ठपदे कुर्वन्विन्दतेऽजाविकं फलम्
उत्तरास्वनतिक्रम्य विन्देद्गाश्च सहस्रशः । बहुरूपकृतं द्रव्यं विन्देत्कुर्वंस्तु रेवतीम् ॥
अश्वांश्चैवाश्विनीयुक्तो भरण्यामायुरुत्तमम् ॥ १४ ॥
इमं श्राद्धविधिं कुर्वञ्छशबिन्दुर्महीमिमाम् । कृत्स्नान्तु लेभे सकृत्स्नां लब्ध्वा च प्रशशंस तम्

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे नक्षत्रविशेषे श्राद्धफलवर्णनं नाम
द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

ऽयशीतितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पेभिन्नकालिकतृप्तिसाधनद्रव्यविशेषणयाश्राद्धादिफलब्राह्मण-परीक्षादिकथनम्

शंयुरुवाच

किञ्चिद्दत्तं पितृणान्तु धिनोति वदतांवरः ।
किं हि स्विच्चिररात्राय किं चाऽऽनन्त्याय कल्प्यते ॥ १ ॥

बृहस्पतिरुवाच

हवींषि श्राद्धकाले तु यानिश्राद्धविदोविदुः । तानिमेशृणुसर्वाणिफलंचैषां यथाबलम्
तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन च । दत्तेन मासं प्रीयन्ते श्राद्धेन तु पितामहाः ॥३॥
मत्स्यैः प्रीणन्ति द्वौ मासौ त्रीन्मासान्हारिणेन तु ।
शाशन्तु चतुरो मासान्पञ्च प्रीणाति शाकुनम् ॥ ४ ॥
वाराहेणतुषण्मासांश्छागलंसाप्तमासिकम् । आष्टमासिकमित्युक्तंयच्चपार्षतकंभवेत्
रौरवेण तु प्रीयन्ते नव मासान्पितामहाः । गवयस्य तु मांसेनतृप्तिःस्याद्दशमासिकी
कूर्मस्य चैव मांसेन मासानेकादशैव तु । श्राद्धमेवं विजानीयाद्गव्यं संवत्सरं भवेत्
तथा गव्यसमायुक्तं पायसं मधुसर्पिषा । वध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥
आनन्त्याय भवेद्युक्तं खाड्गमांसैः पितृक्षये ।
कृष्णच्छागस्तथा गोधा आनन्त्यायैव कल्प्यते ॥ ६ ॥
अत्रगाथाः पितृगीताःकीर्तयन्तिपुराविदः । तास्तेऽहंसम्प्रवक्ष्यामियथावत्संनिबोधत
अपिनः स्वकुले जायाद्योऽन्नंदद्यात्त्रयोदशीम् । पायसंमधुसर्पिर्भ्यांछायायांकुञ्जरस्यतु
आजेन सर्वलोहेन वर्षासु च मघासु च । एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपिगयां व्रजेत्
गौरीं वाऽप्युद्वहेद्भार्यां नीलम्वा वृषमुत्सृजेत् ॥ १२ ॥

शंयुरुवाच

गयादीनां फलं तात प्रब्रूहि मम पृच्छतः । पितृणां चैव यत्पुण्यं निखिलेन ब्रवीहि मे

बृहस्पतिरुवाच

अब्दमध्ये गयाश्राद्धं यः करोति च मानवः । सर्वान्कामान्स लभतेस्वर्गलोकेमहीयते
यदिपुत्रोगयांगच्छेच्छ्राद्धंकुर्यादतन्द्रितः । कामान्सलभतेदिव्यान्मोक्षोपायश्चविन्दति
उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः । विधायकर्पटीवेषंग्रामस्यापिप्रदक्षिणम्
ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्यभोजनम् । कृत्वा प्रदक्षिणंगच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः
केशश्मश्रुनखादीनां वपनं न प्रशस्यते । अतो न कार्यं वपनं श्राद्धार्थी ना गयासदा(?)

वित्तशाठ्यं न कुर्वीत गयाश्राद्धे सदा नरः ।
वित्तशाठ्यन्तु कुर्वाणो न तीर्थफलभाग्भवेत् ॥ १६ ॥

ब्रह्मकुण्डे प्रभासे च ब्रह्मवेद्यां तथैव च । प्रेतपर्वतमासाद्य श्राद्धं कुर्याद्विधानतः ॥
उत्तरे मानसे चैव यत्र मैनाकसञ्ज्ञकाः । उदीच्यां कनखले चैव दक्षिणे मानसे तथा
स्नात्वा कृत्वा तथाश्राद्धंपितृलोकंसमुद्धरेत् । स्वर्गपातालमर्त्येषुनास्तितीर्थसमंभुवि
तेषु श्राद्धं प्रकुर्वीत यदीच्छेत्परमाङ्गतिम् । धर्मारण्यं ततो गच्छेदाद्यं दृष्ट्वा गदाधरम्
मतङ्गे स पुनर्दृष्ट्वा बुद्धवानारायणंतथा । श्राद्धं कृत्वा विधानेन कुलकोटीः समुद्धरेत्
यदिपुत्रोगयांगच्छेत्कदाचित्कालपर्ययात् । तानेवभोजयेद्विप्रान्ब्राह्मणाये प्रकल्पिताः
अमानुषतया विप्रा ब्राह्मणा ये प्रकल्पिताः । तेषु तुष्टेषु सन्तुष्टाःपितृभिःसह देवताः

न विचार्यं कुलं शीलं विद्याञ्च तप एव च ।
पूजितैस्तैस्तु राजेन्द्र मुक्तिं प्राप्नोति मानवः ॥ २७ ॥

ततः प्रवर्तयेच्छ्राद्धं यथाशक्तिबलाबलम् । कामान्सलभतेदिव्यान्मोक्षोपायंच विन्दति
सवर्णा जातयो मित्रा बान्धवाःसुहृदश्चये । तेभ्योभूपगयाकूपे पिण्डादेयाविधानतः
तेऽपियान्तिदिवंसर्वे पिण्डदाइतिइतिनःश्रुतम् । अज्ञातनामगोत्राणांमन्त्रएषप्रकीर्तितः
पितृवंशे समुत्पन्ना मातृवंशे तथैव च । गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवास्तथा
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः । विरूपा आमगर्भाश्चज्ञाताज्ञाताःकुलेमम॥

क्रियालोपगतायेचयेचान्येगर्भसंस्थिताः । तेभ्योदत्तोमयापिण्डोह्यक्षय्यमुपतिष्ठिताम्
आत्मनस्तुमहाबुद्धे गयायांतु तिलैर्विना । पिण्डनिर्वपणंकुर्यात्तथाचान्येऽन्यगोत्रजाः
पुत्रेभ्योऽपि दुहितृभ्यश्चतेभ्योऽपिचसर्वशः । दद्यात्पिण्डंप्रयत्नेनबुद्धिमान्सुसमाहितः
त्रिदिवं यान्ति ते सर्वे पिण्डदा इति च श्रुतिः । ब्रह्महाच कृतघ्नश्च महापातकिनश्चये
ते सर्वे निष्कृतिं यान्ति गयायांपिण्डपातनात् । ब्रह्मघ्नस्य सुरापस्य बालवृद्धगुरुद्रुहः
नाशमायातिवै पापं गयायामनुयाति यः । यन्नाम्ना पातयेत्पिडं तं नयेद्ब्रह्मशाश्वतम्
दुर्लभंत्रिपुलोकेषुनास्तितीर्थंगयासमम् । नरकस्थादिवंयान्तिस्वर्गस्थामोक्षमाप्नुयुः॥

अपि नस्ते भविष्यन्ति कुले सन्मार्गशीलिनः ।
गयामुपेत्य ये पिण्डान्दास्यन्त्यस्माकमादरात् ॥ ४० ॥

मकरे वर्तमाने तु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । प्रेतपक्षे च चैत्रे च दुर्लभं पिण्डपातनम् ॥४१
अधिमासे जन्मदिने चाऽस्तेच गुरुशुक्रयोः । नत्यक्तव्यंगयाश्राद्धंसिंहस्थेच बृहस्पतौ

गयायां सर्वकालेषुपिण्डं दद्याद्विचक्षणः ।

गयायामक्षयं श्राद्धं जपहोमतपांसि च । पितृक्षयाहे ते पुत्र तस्मात्तत्राऽक्षयं स्मृतम
पुनीयादेकविंशंतुगौर्यामुत्पादितः सुतः । मातामहांस्तु षड्भूयइतितस्य फलं स्मृतम
फलं वृषस्य वक्ष्यामि गदतो मे निबोधत । वृषोत्सृष्टा पुनात्येवदशातीतान्दशावरान्
यत्किञ्चित्स्पृश्यतेतोयैरुत्तीर्णेनजलान्महीम् । वृषोत्सर्गे पितॄणांतु अक्षयंसमुदाहृतम
यद्यद्धि संस्पृशेत्तोयंलाङ्गूलादिभिरन्ततः । सर्वं तदक्षयं तस्यपितॄणांनात्रसंशयः॥
श्रृङ्गैः खुरैर्वायद्भूमिमुल्लिखत्यमिशंवृषः । मधुकुल्याःपितॄंस्तस्य अक्षयास्ताभवन्तिवै
सहस्रनल्वमात्रेणतडाकेन यथा श्रुतिः । तृप्तिस्तृप्तिःपितॄणां वै तद्वृषस्याधिकोच्यते
योददाति गुडैर्मिश्रांस्तिलान्वै श्राद्धकर्मणि । मधुना मधुमिश्रान्वा अक्षयंसर्वमेव तत्

बृहस्पतिरुवाच

न ब्राह्मणान्परीक्षेत सदा देये तु मानवः । दैवेकर्मणि पित्र्ये च श्रूयते वै परीक्षणम्
सर्ववेदव्रतस्नाताःपङ्क्तीनांपावकाद्विजाः । ये चभाष्यविदो मुख्यायेच व्याकरणेरताः
अधीयते पुराणं च धर्मशास्त्रं तथैव च । त्रिणाचिकेतपञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित्॥

ब्रह्मदेयसुतश्चैव छन्दोगो ज्येष्ठसामगः। पुण्येषु येषु तीर्थेषु अभिषेककृतव्रताः ॥५४॥
मुख्येषु येषु सत्रेषु भवन्त्यवभृथप्लुताः। ये च सद्योव्रता नित्यं स्वकर्मनिरताश्च ये
अक्रोधनाः शान्तिपरास्तान्वै श्राद्धे निमन्त्रयेत् ॥ ५७ ॥
ये चापि नित्यंदशसुसुकृतेषुव्यवस्थिताः। स्वकर्मनिरतानित्यंतान्श्राद्धेषुनिमन्त्रयेत्
एतेषु दत्तमक्षय्यमेते वै पङ्क्तिपावनाः। श्रद्धया ब्राह्मणा ये तु योगधर्ममनुव्रताः॥५७
धर्माश्रमवरिष्ठास्ते हव्यकव्येषु ते वराः। त्रयोऽपि पूजितास्तेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
पितृभिः सह लोकाश्च यो ह्येतान्पूजयेन्नरः। पवित्राणां पवित्रंचमङ्गलानांच मङ्गलम्
प्रथमः सर्वधर्माणां योगधर्मो निगद्यते। अपाङ्क्तेयांस्तु वक्ष्यामि गदतोमे निबोधत
कितवो मद्यपोयक्ष्मीपशुपालोनिराकृतिः। ग्रामप्रेष्योवार्धुषिकोगायनो वणिजस्तथा
अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रियी। समुद्रयायी दुश्चर्मा तैलिकःकूटकारकः
पित्रा विवदमानश्च यस्य चोपपतिर्गृहे। अभिशस्तस्तथा स्तेनःशिल्पैर्यश्चोपजीवति
सूचकः पर्वकारी च यस्तु मित्रेषु द्रुह्यति। गणयाचनकश्चैवनास्तिकोवेदवर्जितः॥६४
उन्मत्तः षण्डकशठौ भ्रूणहा गुरुतल्पगः। भिषक्जीवः प्रैषणिकः परस्त्रीं यश्चगच्छति
विक्रीणाति च यो ब्रह्मव्रतानिचतपांसि च। नष्टं स्यान्नास्तिकेदत्तंकृतघ्नेचैवशंसके
यच्च वाणिजके चैव नेह नामुत्र तद्भवेत्। निक्षेपहारिणे चैव कितवे वेदनिन्दके॥६७॥
तथा वाणिजके चैवकारुके धर्मवर्जिते। निन्दन्क्रीणाति पण्यानि विक्रीणंश्चप्रशंसति
अनृतस्य समावासो न वणिक्श्राद्धमर्हति। भस्मनीव हुतं हव्यं दत्तं पौनर्भवे द्विजे
षष्टिं काणः शतं षण्डः श्वित्रीयावत्प्रपश्यति। पापरोगीसहस्रस्यदातुर्नाशयते फलम्
भ्रश्यते सत्फलात्तस्माद्दाता यस्यतु बालिशः। यो वेष्टितशिरा योभुङ्क्तेदक्षिणामुखः
सोपानत्कश्च यो भुङ्क्ते यच्च दद्यात्तिरस्कृतम्।
सर्वं तदसुरेन्द्राणां ब्रह्मा भागमकल्पयत् ॥ ७२ ॥
श्वानश्च यातुधानाश्च नावेक्षेरन्कथञ्चन। तस्मात्परिवृतिं दद्यात्तिलैश्चान्ववकीरयन्
राक्षसानां तिलाः प्रोक्ताः शुनांपरिवृतिस्तथा। दर्शनात्सूकरोहन्तिदक्षपातेनकुक्कुटः
रजस्वालानुस्पर्शेन क्रुद्धो यश्च प्रयच्छति। यस्य मित्रप्रदेयानि श्राद्धानि च हवींषि च

न प्रीणाति पितॄन्देवान्स्वर्गं न च स गच्छति ॥ ७५ ॥

नदीतीरेषु रम्येषु सरित्सु च सरस्सु च । विविक्तेषु च प्रीयन्ते दत्तेनेह पितामहाः
न चाश्रु पातयेज्जातु न शुक्तो वाचमीरयेत् । न च कुर्वीत भुञ्जानोह्यन्योन्यंमत्सरं तदा
अपसव्ये कृते तेन विधिवद्दर्भपाणिना । पिध्यमानिधनं कार्यमेवं प्रीणाति वै पितॄन्
अनुमत्याऽऽदितो विप्रानग्नौकुर्याद्धयथाविधि । पितॄणां निर्वपेद्भूमौसूपैर्वा दर्भसंस्तरे
शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । कृष्णपक्षेऽपराह्णे तु रौहिणं न विलङ्घयेत्
एवमेतेमहात्मानो महायोगा महौजसः । सदा वै पितरः पूज्या द्रष्टारो देशकालयोः
पितृभक्तिरतोनित्यंयोगंप्राप्नोत्यनुत्तमम् । ध्यानेनमोक्षंगच्छन्तिहित्वाकर्मशुभाशुभम्

यज्ञहेतोर्यदुद्धृत्य मोहयित्वा जगत्तदा ।
गुहायां निहतं योगं कश्यपेन महात्मना ॥ ८३ ॥

अमृतं गुह्यमुद्धृत्य योगं योगविदाम्वर । प्रोक्तं सनत्कुमारेण महान्तं धर्मशाश्वतम् ॥
देवानां परमंगुह्यमृषीणाञ्च परायणम् । पितृभक्त्या प्रयत्नेन पितृभक्तैश्च नित्यशः ॥
तच्च योगं समासेन पितृभक्तस्तु कृत्स्नशः । प्रयत्नात्प्राप्नुयात्तत्र सर्वमेव न संशयः ॥
यस्मै श्राद्धानि देयानि यच्च दत्तंमहाफलम् । येषु वाऽप्यक्षयं श्राद्धं तीर्थेषुच नदीषुच

येषु च स्वर्गमाप्नोति तत्ते प्रोक्तं ससंग्रहम् ॥ ८७ ॥

बृहस्पतिरुवाच

श्रुत्वैवं श्राद्धकल्पन्तु योऽसूयांकुरुतेनरः । स मज्जेन्नरकेघोरेनास्तिकस्तमसाऽऽवृतः
महारोगावसायस्तु स यः संयतमानसः । वेदाश्रमान्मुक्तचित्तः कुम्भीकानभिगच्छति

जिह्वाछेदं स्तेनमेत्य प्राप्नुयुस्तेन चैव ह ॥ ८६ ॥
सीदन्ति ते सागरे लोष्ठभूता योगद्विषः स्थास्यन्ते यावदुर्वी ॥
तस्माच्छ्राद्धे धर्म उद्दिष्ट एष नित्यं कार्यः श्रद्दधानेन पुंसा ॥ ९० ॥

परिवादो न कर्तव्यो योगिनाञ्च विशेषतः । परिवादात्कृमिर्भूत्वा तत्रैव परिवर्तते ॥
योगं परिवदेद्यस्तु ध्यानिनां मोक्षकारणम् । स गच्छेन्नरकं घोरं श्रोतायश्चनसंशयः
आवृतं तमसा सर्वं नरकं घोरदर्शनम् । योगीश्वरपरीवादान्निश्चियं याति मानवः ॥

योगेश्वराणामाक्रोशंश्रृणुयाद्योयतात्मनाम् । सहिकालंचिरंमज्जेत्कुम्भीपाकेनसंशयः
मनसा कर्मणा वाचा द्वेषं योगिषु वर्जयेत् । प्रेत्याऽन्यं तत्फलं भुङ्क्तेइहचैवनसंशयः

न पारगो विन्दति पारमात्मनस्त्रिलोकमध्ये चरति स्वकर्मभिः ।
ऋचो यजुः साम तदङ्गपारगो विकारमेवं ह्यनवाप्य सीदति ॥ ९६ ॥
विकारपारः प्रकृतेश्च पारगस्त्रयीगुणानां त्रिगुणान्तपारगः ।
तत्त्वं चतुर्विंशतियोगपारगः स पारगो यस्त्वयनान्तपारगः ॥ ९७ ॥
कृत्स्नं यथा तत्त्वविसर्गमात्मनस्तथैव भूयः प्रलयं सदाऽऽत्मनः ।
प्रत्याहरैर्योगबलेन योगवित्स सर्वपारक्रमयानगोचरः ॥ ९८ ॥

वेदस्य वेदिता यो वै वेद्यं विन्दति योगवित् । तं वै वेदविदं प्राहुस्तंप्राहुर्वेदपारगम्
वेद्यश्च वेदितव्यश्च विदित्वा वै यथाविधि । एवं वेदविदंप्राहुस्ततोऽन्येवेदचिन्तकाः
यज्ञान्वेदांस्तथाकामाञ्ज्ञानानिविविधानिच।प्राप्नोत्यायुःप्रजाश्चैवपितृभक्तोधनानिच
श्राद्धेयःश्राद्धकल्पंवैयस्त्विमंनियतं पठेत् । सर्वाण्येतान्यवाप्नोतितीर्थदानफलानि च॥

सपङ्क्तिपावनश्चैवद्विजानामग्रभुग्भवेत् ।
अध्याप्य वा द्विजान्सर्वान्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ १०३ ॥

यश्चैव श्रृणुयान्नित्यमानन्त्यं स्वर्गमश्नुते । अनसूयो जितक्रोधो लोभमोहविवर्जितः॥
तीर्थानाञ्च फलं कृत्स्नंदानादीनां तथैव च । मोक्षोपायो ह्ययंश्रेष्ठःस्वर्गोपायोह्ययंपरः

इह चाऽपि परा तुष्टिस्तस्मात्कुर्वीत यत्नतः ॥ १०५ ॥
इमं विधिं यो हि पठेदतन्त्रितः समाहितः संसदि पर्वसन्धिषु ।
अपत्यभाग्भवति परेण तेजसा दिवौकसां स व्रजते सलोकताम् ॥१०६॥

येन प्रोक्तस्त्वयं कल्पो नमस्तस्मै स्वयम्भुवे । महायोगेश्वरेभ्यश्चसदाच प्रणतोह्यहम्
इत्येते पितरस्तात देवानामपि देवताः । सप्तस्वेतेषु ते नित्यं स्थानेषु पितरोऽव्यथाः
प्रजापतिसुता ह्येते सर्वे चैव महात्मनः । आद्योगणस्तुयोगानां स नित्योयोगवर्धनः

द्वितीयो देवतानान्तु तृतीयो देवताऽरिणाम् ।
शेषास्तु वर्णिनां ज्ञेया इति सर्वे प्रकीर्तिताः ॥ ११० ॥

देवास्त्वेतान्यजन्ते वै सर्वेष्वेतेष्ववस्थिताः ।
आश्रमास्तु यजन्त्येतांश्चत्वारस्तु यथाक्रमम् ॥ १११ ॥
वर्णाश्चापियजन्त्येतांश्चत्वारस्तुयथाविधि । तथा संकरजाताश्चम्लेच्छाश्चैवयजन्तिवै
पितृंश्च यो यजेद्भक्त्या पितरःपूजयन्ति तम् । पितरःपुष्टिकामस्यप्रजाकामस्यवापुनः
पुष्टिं प्रजाश्च स्वर्गञ्च प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ ११३ ॥
देवकार्यादपि सूनोः पितृकार्यं विशिष्यते । देवतानां हि पितरः पूर्वमाप्यायनंस्वयम
न हि योगगतिः सूक्ष्मा पितृणाञ्च परा गतिः । तपसा विप्रकृष्टेनदृश्यतेमांसचक्षुषा
सर्वेषां राजतं पात्रमथवा रजतान्वितम् । पावनं ह्युत्तमं प्रोक्तं देवानांपितृभिः सह ॥
येषां दास्यन्ति पिण्डांस्त्रीन्बान्धवा नामगोत्रतः ।
भूमौ कुशोत्तरायाञ्चअपसव्यविधानतः ॥ ११७ ॥
सर्वत्र वर्तमानांस्तेपिण्डाःप्रीणन्तिवैपितॄन् । यदाहारोभवेज्जन्तुराहारःसोऽस्यजायते
यथा गोष्ठे प्रनष्टांवै वत्सो विन्दति मातरम् । तथा तं नयते मन्त्रोजन्तुर्यत्रावतिष्ठते
नाम गोत्रं च मन्त्रश्च दत्तमन्नं नयन्ति तम् । अपियोनिशतंप्राप्तांस्तृप्तिस्ताननुगच्छति
एवमेषा स्थितासंस्थाब्रह्मणा परमेष्ठिना । पितृणामादिसर्गस्तुलोकानामक्षयार्थिनाम्
इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः । दौहित्रा यजमानाश्च प्रोक्ताश्चैवमयाऽनघाः
लोकादुहितरश्चैवदौहित्राश्चसुतास्तथा। दानानिसह शौचेन तीर्थानि च फलानि च॥
अक्षयत्वं द्विजाश्चैव यायावरविधिस्तथा ।
प्रोक्तं सर्वं यथान्यायंयथाब्रह्माऽब्रवीत्पुरा ॥ १२४ ॥

वृहस्पतिरुवाच

इत्येतदङ्गिराः प्राह ऋषीणां शृण्वतां तदा । पृष्टस्तु संशयं सर्वं पितृणां प्राह संसदि
सत्रे वै वितते पूर्वं तदा वर्षसहस्रिके । यस्मिन्गृहपतिर्ह्यासीद्ब्रह्मा वै देवता प्रभुः ॥
संवत्सरशतान्पञ्च तत्रोपेता इति श्रुतिः । श्लोकाश्चात्रपुरागीताऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः
दीक्षितस्य तदा सत्रे ब्रह्मणः परमात्मनः । तत्रैव जातमत्युग्रं पितृणामक्षयार्थिनाम्
लोकानाञ्च हितार्थाय ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ १२८ ॥

सूत उवाच

एवं बृहस्पतिः पूर्वं पृष्टः पुत्रेण धीमता। प्रोवाच पितृवंशं तु यत्तद्वै समुदाहृतम् ॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वरुणस्य निबोधत ॥ १३६ ॥

इति श्रीवायुमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे श्राद्धकल्पे श्राद्धेकरणीयकर्तव्यवर्णनं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पेवरुणवंशवर्णनम्

ऋषयश्चैवमुक्तास्तु परं हर्षमुपागताः। परं शुश्रूषवो भूयः पप्रच्छुस्तदनन्तरम् ॥ १ ॥

ऋषय ऊचुः

वंशानामानुपूर्व्येण राज्ञांचामिततेजसाम्। स्थितिं चैषांप्रभावञ्चब्रूहिनः परिपृच्छताम्
एवमुक्तस्ततः सूतस्तथाऽसौ लोमहर्षणः। शुश्रूषामुत्तराख्यानेऋषीणांवाक्यकोविदः
आख्यानकुशलो भूयः परं वाक्यमुवाच ह।

सूत उवाच

ब्रुवतो मे निबोधस्व ऋषिराह यथा मम ॥ ४ ॥
वंशानामानुपूर्व्येण राज्ञां चामिततेजसाम्। स्थितिं चैषांप्रभावञ्च ब्रुवतो मे निबोधत
वरुणस्य पत्नीसामुद्रीशुनादेवीत्युदाहृता। तस्याः पुत्रौकलिर्वैद्यःसुता च सुरसुन्दरी
कलिपुत्रौ महावीर्यौ जयश्च विजयश्च ह। वैद्यपुत्रौ घृणिश्चैव मुनिश्चैव महाबलौ ॥
प्रजानामत्तुकामानामन्योन्यस्य प्रभक्षिणौ। भक्षयित्वा तावन्योन्यंविनाशंसमवापतुः
कलिः सुरायां सञ्जज्ञे तस्य पुत्रो मदः स्मृतः।
त्वाष्ट्री हिंसा कलेर्भार्या ज्येष्ठा या निकृतिः स्मृता ॥६ ॥
असूताऽन्यान्कलेः पुत्रांश्चतुरः पुरुषादकान्। नाकं निघ्नश्च विख्यातंसद्रमंविघमंतथा

अशिरस्कस्तयोर्विघ्नोनाकश्चैवाशरीरवान् । सद्मश्चैकहस्तोऽभूद्धिधमश्चैकपात्स्मृतः
सद्मस्य तथापत्नी तामसी पूतनास्मृता । रेवती विधमस्याऽपि तयोःपुत्राः सहस्रशः
नाकस्य शकुनिः पत्नी विघ्नस्य च अयोमुखी ।
राक्षसास्तु महाशीर्षाः सन्ध्याद्वयविचारिणः ॥ १३ ॥
रेवती पूतनापुत्रा नैर्ऋता नामतः स्मृताः । ग्रहास्ते राक्षसाःसर्वेबालानान्तुविशेषतः
स्कन्दस्तेषामधिपतिर्ब्रह्मणोऽनुमते प्रभुः ॥ १४ ॥
बृहस्पतेर्या भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी । योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता चरते सदा
प्रभासस्य तु साभार्यावसूनामष्टमस्य तु । विश्वकर्मासुतस्तस्याजातःशिल्पिप्रजापतिः
त्वष्टाविराजोरूपाणांधर्मपौत्रउदारधीः । कर्ता शिल्पसहस्राणांत्रिदशानाञ्चवास्तुकृत्
यः सर्वेषां विमानानिदेवतानां चकार ह । मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्यशिल्पंमहात्मनः
प्रह्लादी विश्रुता तस्यत्वष्टुःपत्नीविरोचना । विरोचनस्यभगिनीमातात्रिशिरसस्तुसा
देवाचार्यस्य महतो विश्वकर्माऽस्य धीमतः । विश्वकर्मात्मजश्चैवविश्वकर्मामयःस्मृतः
सुरेणुरिति विख्याता स्वसा तस्य यवीयसी ।
त्वाष्ट्री सा सवितुर्भार्या पुनः सञ्ज्ञेति विश्रुता ॥ २१ ॥
असूत तपसा सा तु मनुं ज्येष्ठं विवस्वतः । यमौ पुनरसूताऽसौ यमञ्च यमुनाञ्च ह
सातुगत्वाकुरून्देवीवडवारूपधारिणी । सवितुश्चाश्वरूपस्यनासिकाभ्यान्तुतौस्मृतौ
असूत सा महाभागा त्वन्तरीक्षेऽश्विनौ किल ।
नासत्यं चैव दस्रञ्च मार्तण्डस्याऽऽत्मजावुभौ ॥ २४ ॥

ऋषय उचुः

कस्मान्मार्तण्डइत्येषविवस्वानुच्यतेबुधैः । किमर्थंसाऽश्वरूपावैनासिकाभ्यामसूयत॥
एतद्वेदितुमिच्छामस्तत्त्वं विब्रूहि पृच्छताम् ॥ २५ ॥

सूत उवाच

चिरोत्पन्नमतिभिन्नमण्डंत्वष्ट्राविदारितम् । दृष्ट्वागर्भवधाद्भीतःकश्यपोदुःखितोऽभवत
अण्डे द्विधाकृते त्वण्डं दृष्ट्वा त्वष्टारमब्रवीत् । नैतदण्डं भवान्हन्तं मार्तण्डस्त्वंभवानघ

न खल्वयंमृतोऽण्डस्थइतिस्नेहात्पिताऽब्रवीत् । तस्यतद्वचनंश्रुत्वानामान्वर्थमुदाहरत्
यन्मार्तण्डोभवेत्युक्तःपित्राऽण्डेवैद्विधाकृते।तस्माद्विवस्वान्मार्तण्डःपुराणज्ञैर्विभाष्यते
ततः प्रजाःप्रवक्ष्यामिमार्तण्डस्यविवस्वतः । विजज्ञेसवितुःसञ्ज्ञाभार्यायान्तुत्रयम्पुरा

मनुर्यवीयान्सावर्णिः संज्ञायाश्च तथाऽश्विनौ ।
शनैश्चरश्चसप्तैते मार्तण्डस्याऽऽत्मजाःस्मृताः ॥ ३० ॥

विवस्वान्कश्यपाज्जज्ञेदाक्षायण्यांमहायशाः । तस्यभार्याऽभवत्त्वाष्ट्रीमहादेवीविवस्वतः

सुरेणुरिति विख्याता पुनः सञ्ज्ञेति विश्रुता ॥ ३२ ॥

सा तु भार्या भगवतो मार्तण्डस्याऽतितेजसः । नातुष्यद्भर्तृ रूपेण रूपयौवनशालिनी
आदित्यस्य हि तद्रूपंमार्तण्डस्यहि तेजसा । गात्रेषु प्रतिरुद्धंवैनातिकान्तमिवाऽभवत
न खल्वयं मृतो ह्यण्डेइतिस्नेहात्तमब्रवीत् । अज्ञानःकश्यपःस्नेहान्मातण्डइतिचोच्यते
तेजस्त्वभ्यधिकंतस्यनित्यमेवविवस्वतः । येनापितापयामासत्रींल्लोकान्कश्यपात्मजः

त्रीण्यपत्यानि सञ्ज्ञायां जनयामास वै रविः ।
द्वौ सुतौ तु महावीर्यौ कन्यां कालिन्दिमेव च ॥ ३६ ॥

मनुर्विवस्वतो ज्येष्ठः श्राद्धदेवः प्रजापतिः । ततो यमो यमी चैव यमजौ सम्बभूवतुः
श्यावर्णन्तु तद्रूपं दृष्ट्वा सञ्ज्ञा विवस्वतः । असहन्ती स्वकां छायां सवर्णांनिर्ममेपुनः
महीमयी तु सा नारी तस्याश्छायासमुद्गता । प्राञ्जलिः प्रयताभूत्वापुनःसञ्ज्ञामभाषत

वदस्व किं मया कार्यं सा सञ्ज्ञा तामथाब्रवीत् ।
अहं यास्यामि भद्रन्ते स्वमेव भवनं पितुः ॥ ४१ ॥

त्वयेह भवने मह्यं वस्तव्यं निर्विशङ्कया । इमौ च बालकौ मह्यं कन्या च वरवर्णिनी
भर्त्रे वै नैवमाख्येयमिदं भगवते त्वया । एवमुक्ताऽब्रवीत्सञ्ज्ञांसञ्ज्ञयापार्थिवीतुसा
आकेशग्रहणाद्देविआशयंनैवकर्हिचित् । आख्यास्यामिमतंतुभ्यंगच्छदेवि स्वमालयम्
समाधायच तां सञ्ज्ञातथेत्युक्तातयाच सा । त्वष्टुः समीपमगमद्व्रीडितेवतपस्विनी
पिता तामागतांदृष्ट्वाक्रुद्धःसञ्ज्ञामथाब्रवीत् । भर्तुःसमीपंगच्छत्वंमाजुगुप्सदिवाकरम्
सैवमुक्ता तदा पित्रा नियुक्ता च पुनः पुनः । वर्षाणान्तु सहस्रं वै वसतिस्म पितुर्गृहे

भर्तुः समीपंगच्छत्वंनियुक्ता च पुनः पुनः । अगमद्वडवाभूत्वाऽऽच्छाद्यरूपमनिन्दिता

उत्तरान्सा कुरून्गत्वा तृणान्यथ चचार सा ॥ ४८ ॥

द्वितीयायान्तु सञ्ज्ञायां सञ्ज्ञेयमिति चिन्त्य ताम् ।

आदित्यो जनयामास पुत्रावादित्यवर्चसौ ॥ ४९ ॥

पूर्वजस्य मनोस्तुल्यौ सादृश्येन तु तौ प्रभुः । श्रुतश्रवन्तु धर्मज्ञं श्रुतकर्माणमेव च ॥ श्रुतश्रवा मनु सोऽपिसावर्णिर्वैभविष्यति । श्रुतकर्मा तु विज्ञेयो ग्रहो वै यः शनैश्चरः मनुरेवाभवत्स वै सावर्ण इति बुध्यते । सञ्ज्ञातु पार्थिवी सा वै स्वस्यपुत्रस्यवैतदा चकाराभ्यधिकं स्नेहं न तथा पूर्वजेषु वै । मनुस्तच्चाक्षमत्सर्वं यमस्तद्वै न चाऽक्षमत्

बहुशो यस्य मानस्तु(अवमानितश्च बहुशः)सापत्न्याददतिदुःखितः ।

तां वै रोषाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात ॥ ५३ ॥

पदा सन्तर्जयामास सञ्ज्ञां वैवस्वतोयमः । सा शशापततः क्रोधात्सवर्णाजननीयमम् पदा तर्जयसे यस्मात्पितृभार्यां यशस्विनीम् । तस्मात्तवैषचरणःपतिष्यति न संशयः यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः । मनुना सह धर्मात्मा पितुः सर्वं न्यवेदयत् भृशंशापभयोद्विग्नःसञ्ज्ञावाक्यैर्विनिर्जितः । बाल्याद्वायदिवामोहान्मांभवांस्त्रातुमर्हति शप्तोऽहमस्मि लोकेश जनन्या तपतां वर । तव प्रसादो नस्त्रातु ह्येतस्मान्महतोभयात् विवस्वानेवमुक्तस्तु यमं प्रोवाच वै प्रभुः । असंशयं पुत्र महद्भविष्यत्यत्र कारणम् ॥ येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञंसत्यवादिनम् । न शक्यमेतन्मिथ्यातुकर्तुं मातुर्वचस्तव

क्रिमयो मांसमादाय यास्यन्ति तु महीं तव ।

ततः पादं महाप्राज्ञ पुनः सम्प्राप्स्यसे सुखम् ॥ ६१ ॥

कृतमेवं वचः सत्यं मातुस्तव भविष्यति । शापस्य परिहारेण त्वं चत्रातोभविष्यसि आदित्यस्त्वब्रवीत्सञ्ज्ञां किमर्थंतनयेषुवै । तुल्येष्वप्यधिकःस्नेहएकस्मिन्क्रियतेत्वया सा तत्परिहरन्ती वै नाऽऽचचक्षेविवस्वतः । आत्मनाससमाधाय योगं तथ्यमपश्यत तां शप्तुकामो भगवान्नाशाय कुपितः प्रभुः । सा तत्सर्वं यथातत्त्वमाचचक्षेविवस्वतः

विवस्वानथ तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्ययात् ।

त्वष्टा तु तं यथान्यायमर्चयित्वा विभावसुम् ॥ ६६ ॥
निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास वै शनैः । तवाऽतितेजसा युक्तमिदं रूपंन शोभते
असहन्तीतुतत्सञ्ज्ञावनेचरति शाड्वले । द्रक्ष्यतेतांभवानद्यस्वां भार्यां शुभचारिणीम्
श्लाघ्यां यौवनसम्पन्नां योगमास्थाय गोपते ।
अनुकूलं भवेदेवं यदिस्यात्समयो मतः ॥ ६६ ॥
रूपं निवर्तयेऽयं ते आद्यं श्रेष्ठमरिन्दम । रूपं विवस्वतस्त्वासीत्तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥
तेनाऽसौ व्रीडितोदेवो रूपेण तु दिवस्पतिः । तस्मात्त्वष्टासचक्रंतु बहु मेने महातपाः
अनुज्ञातस्ततस्त्वष्टा रूपनिर्वर्तनाय तु । ततोऽभ्युपगमात्त्वष्टा मार्तण्डस्य विवस्वतः॥
भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातयामास तस्य वै । तत्तु निर्भासितं तेजस्तेजसाऽपहृतेन तु
कान्तात्कान्ततरं द्रष्टुमशुभं शुशुभे ततः । ददर्श योगमास्थाय स्वांभार्यांवडवां तथा
अदृश्यां सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च । अश्वरूपेण मार्तण्डस्तां मुखे समभावयत्
मैथुनाय विचेष्टन्ती परपुंसोपशङ्कया । सा तन्निरधमच्छुक्रं नासिकाभ्यां विवस्वतः ॥
देवौ तस्मादजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ । नासत्यश्चैव दस्रश्चस्मृतौद्वावश्विनाविति
मार्तण्डस्य सुतावेतावष्टमस्य प्रजापतेः । तां तु रूपेण कान्तेन दर्शयामास भास्करः
सा तं दृष्ट्वा तदा भार्या तुतोष च मुमोह च ।
यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः ॥ ७६ ॥
धर्मेण रञ्जयामास धर्मराजस्ततस्तु सः । सोऽलभत्कर्मणा तेन शुभेन परमद्युतिः ॥
पितॄणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेवच । मनुः प्रजापतिस्त्वेवं सावर्णःस महायशाः
भाव्यसौ नागते तस्मिन्मनुः सावर्णिकेऽन्तरे । मेरुपृष्ठे सुरम्ये वै अद्यापिचरते प्रभुः
भ्राता शनैश्चरस्तत्र ग्रहत्वं सतु लब्धवान् । त्वष्टातु तेन रूपेणविष्णोश्चक्रमकल्पयत्
महाप्रतिहतं युद्धे दानवप्रतिवारणे ॥ ८२ ॥
यवीयसी तयोर्यातु यमुना च यशस्विनी । अभवत्सासरिच्छ्रेष्ठा यमुनालोकभाविनी
यस्तुज्येष्ठोमहातेजाः सर्गोयस्यतुसाम्प्रतम् । विस्तरंतस्य वक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्यह
इदं तु जन्म देवानां शृणुयाद्वा पठेत वा । वैवस्वतस्य पुत्राणां सप्तानांतु महौजसाम्

आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महद्यशः ॥ ८६ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे वैवस्वतोत्पत्तिवर्णनं नाम
चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

वैवस्वतमनोःसृष्टिकथनम्

सूत उवाच

ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषे दैवतैः सह । वैवस्वताय महते पृथिवीराज्यमादिशत् ॥
तस्य वैवस्वतो वक्ष्येसाम्प्रतस्यमहात्मनः । आनुपूर्व्येण वै विप्राःकीर्त्यमानंनिबोधत ॥
मनोर्वैवस्वतस्येह सर्गमादाय साम्प्रतम् । मनोः प्रथमजस्याऽऽसन्नवपुत्रास्तुतत्समाः
इक्ष्वाकुर्नहुषश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च । नरिष्यन्तस्तथा प्रांशुर्नाभागोऽरिष्ट एव च ॥

करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मानवाः स्मृताः ॥ ४ ॥

ब्रह्मणा तु मनुः पूर्वं चोदितस्तु निबोधत । स्रष्टुं प्रचक्रमे कामं निष्फलं समवर्तत ॥
अथाकरोत्पुत्रकामः परामिष्टिं प्रजापतिः । मित्रावरुणयोरंशे मनुराहुतिमावपत् ॥६
तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता । दिव्यसंहनना चैव इडा जज्ञे इति श्रुतिः ॥
तामिलेत्यथ होवाच मनुर्दण्डधरःस्मृतः । अनुगच्छामि भद्रं ते तमिला प्रत्युवाच ह
धर्मयुक्तमिदं वाच्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् । मित्रावरुणयोरंशे जाताऽस्मि वदतां वर
तयोः सकाशंयास्यामिमानोधर्मोहतोऽवधीत् । सैवमुक्त्वापुनर्देवीतयोरन्तिकमागमत्

गत्वाऽन्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ।
अंशोऽस्मि युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि वाम् ॥ ११ ॥

मनुनैवाहमुक्ताऽस्मिअनुगच्छस्वमामिति । तथातु वदतींसाध्वीमिडामाश्रित्यतावुभौ
देवौ च मित्रावरुणाविदं वचनमूचतुः । अनेन तव धर्मज्ञे प्रश्रयेण दमेन च ॥ १२ ॥

सत्येनचैवसुश्रोणिप्रीतौस्वोवरवर्णिनि। आवयोस्त्वंमहाभागेख्यातिंकन्याप्रयास्यसि
सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिपुलोकेषु पूजितः । जगत्प्रियो धर्मशीलो मनोवंशविवर्धनः ॥
मानवः स तु सुद्युम्नः स्त्रीभावमगमत्प्रभुः । सा तु देवी वरं लब्ध्वा निवृत्तापितरंप्रति
बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता । सोमपुत्राद्बुधाच्चास्या ऐलो जज्ञे पुरूरवाः
बुधात्सा जनयित्वा तु सुद्युम्नं पुनरागता । सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयःपरमधार्मिकाः
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वस्तथैव च । उत्कलस्योत्कलं राष्ट्रं विनताश्वस्यपश्चिमम्
दिक्ष्ववातस्य राजर्षेर्गयस्य तु गया पुरी ॥ १६ ॥
प्रावसृष्टे मनौ तस्मिन्प्रजाःसृष्ट्वादिवाकरः । दशधा तद्दधत्क्षेत्रमकरोत्पृथिवीमिमाम्
इक्ष्वाकुरेव दायादानन्यान्दशसमाप्नुयात् । कन्याभावात्तुसुद्युम्नोनैनंभागमवाप्नुयात्
वशिष्ठवचनाच्चाऽऽसीत्प्रतिष्ठा नो महाद्युतिः । प्रतिष्ठाधर्मराजस्यसुद्युम्नस्य महात्मनः
तत्पुरूरवसे प्रादाद्राष्ट्रं प्राप्य महायशाः । मानवेभ्यो महाभागा स्त्रीपुंसोर्लक्षणं प्रति
मानवः स तु सुद्युम्नः स्त्रीभावमगमत्पुनः ॥ २३ ॥
एतच्छ्रुत्वा तु ऋषयः पप्रच्छुस्तदनन्तरम् । मानवः सतु सुद्युम्नः स्त्रीभावमगमत्कथम्

सूत उवाच

प्रोवाच वचनं देवी प्रियहेतोः प्रियंप्रिया । समे ममाऽऽश्रमेदेव यः पुमान्सम्प्रवेक्ष्यति
भविष्यति ध्रुवं नारी सा तुल्याप्सरसां शुभा ॥ २५ ॥
तत्र सर्वाणि भूतानि पिशाचाः पशवश्चये । स्त्रीभूताःसह रुद्रेण क्रीडन्त्यप्सरसोयथा
उमावनं प्रविष्टस्तु स राजा मृगयांगतः । पिशाचैः सह भूतैस्तुरुद्रैःस्त्रीभावमास्थितैः
तस्मात्स राजासुद्युम्नःस्त्रीभावंलब्धवान्पुनः । महादेवप्रसादाच्चगाणपत्यमवाप्नुयात्

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे वैवस्वतमनोः सृष्टिकथनं नाम
पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

———

षडशीतितमोऽध्यायः

वैवस्वतमनुवंशगान्धर्वमूर्छनावर्णनम्

सूत उवाच

निसर्गं मनुपुत्राणां विस्तरेण निबोधत । पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गावमभक्षयत् ॥
शापाच्छूद्रत्वमापन्नश्च्यवनस्य महात्मनः । करूषस्यतु कारूषाः क्षत्त्रिया युद्धदुर्मदाः
सहस्रक्षत्त्रियगणविक्रान्तः सम्बभूव ह । नाभागोऽरिष्टपुत्रस्तु विद्वानासीद्भलन्दनः ॥
भलन्दनस्य पुत्रोऽभूत्प्रांशुर्नाम महाबलः । प्रांशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजानिरिति विश्रुतः
प्रजानेरभवत्पुत्रः खनित्रोनाम वीर्यवान् । तस्य पुत्रोऽभवच्छ्रीमान्क्षुपोनाममहायशाः
क्षुपस्य विंशः पुत्रस्तु प्रतिमानं बभूवह । विंशपुत्रस्तुकल्याणो विविंशोनामधार्मिकः
विविंशपुत्रो धर्मात्मा खनिनेत्रः प्रतापवान् । करन्धमस्तस्यपुत्रस्त्रेतायुगमुखेऽभवत्
करन्धमसुतश्चाऽपि आविक्षिन्नामवीर्यवान् । आविक्षितोव्यतिक्रामत्पितरंगुणवत्तया
मनुचो नाम धर्मात्मा चक्रवर्तिसमो नृपः । सम्वर्तेन दिवं नीतः ससुहृत्सह बान्धवैः

विवादोऽत्र महानासीत्सम्वर्तस्य बृहस्पतेः ।
ऋद्धिं दृष्ट्वा तु यज्ञस्य क्रुद्धस्तस्य बृहस्पतिः ॥ १० ॥

सम्वर्तेन हृते यज्ञे चुकोप सुभृशं तदा । लोकानां स हि नाशाय दैवतैर्हि प्रसादितः ॥
मनुत्तश्चक्रवर्ती स नरिष्यन्तमवाप्तवान् । नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दण्डधरो दमः
तस्य पुत्रस्तु विक्रान्तोराजाऽऽसीद्राष्ट्रवर्धनः । सुधृतीतस्य पुत्रस्तु नरःसुधृतिनःसुतः
केवलस्तस्य पुत्रस्तु बन्धुमान्केवलात्मजः । अथ बन्धुमतः पुत्रो धर्मात्मा वेगवान्नृपः
बुधो वेगवतः पुत्रस्तृणबिन्दुर्बुधात्मजः । त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये सम्बभूव ह ॥१५

कन्या तु तस्य द्रविडा माता विश्रवसो हि सा ।
पुत्रश्चाऽस्य विशालोऽभूद्राजा परमधार्मिकः ॥ १६ ॥

विशालस्य समुत्पन्ना विशालायेर्नानिर्मिता । विशालस्य सुतोराजाहेमचन्द्रोमहाबलः

सुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरम् । सुचन्द्रतनयो राजा धूम्राश्व इतिविश्रुतः
धूम्राश्वतनयो विद्वान्सृञ्जयः समपद्यत । सृञ्जयस्य सुतः श्रीमान्सहदेवः प्रतापवान् ॥
कृशाश्व सहदेवस्य पुत्रः परमधार्मिकः । कृशाश्वस्य महातेजाः सोमदत्तः प्रतापवान्
सोमदत्तस्य राजर्षेः सुतोऽभूज्जनमेजयः । जनमेजयात्मजश्चैव प्रमतिर्नाम विश्रुतः ॥
तृणविन्दुप्रसादेन सर्वे वैशालका नृपाः । दीर्घायुषो महात्मानोवीर्यवन्तःसुधार्मिकाः
शर्यातेर्मिथुनंत्वासीदानार्तोनामविश्रुतः । पुत्रःसुकन्या कन्याच भार्याया च्यवनस्यतु

आनार्तस्य तु दायादो रैवो नाम्ना तु वीर्यवान् ।
आनार्तो विषयो यस्य पुरी चाऽपि कुशस्थली ॥ २४ ॥

रैवस्यरैवतःपुत्रःककुद्मीनामधार्मिकः । ज्येष्ठोभ्रातृशतस्याऽऽसीद्राजाप्राप्यकुशस्थलीम्
कन्यया सह श्रुत्वा च गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके । मुहूर्तं देवदेवस्य मार्त्यं बहुयुगंविभो
आजगाम युवा चैव स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् । कृतां द्वारवतीं नाम बहुद्वारांमनोरमाम्
भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वसुदेवपुरोगमैः । तां कथां रैवतः श्रुत्वा यथातत्त्वमरिन्दमः ॥
कन्यान्तु बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम् । दत्त्वा जगामशिखरंमेरोस्तपसिसंस्थितः
रेमे रामश्चधर्मात्मा रेवत्या सहितःकिल । तां कथामृषयः श्रुत्वा पप्रच्छुस्तदनन्तरम्

ऋषय ऊचुः

कथं बहुयुगे काले व्यतीते सूतनन्दन ! । न जरां रेवती प्राप्ता पलितश्च कुतः प्रभो ॥

मेरुं गतस्य वा तस्य शर्यातेः सन्ततिः कथम् ।
स्थिता पृथिव्यामद्याऽपि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३२ ॥

कियन्तो वा सुरगणागन्धर्वास्तत्रकीदृशाः । यच्छ्रुत्वा रैवतःकालान्मूहूर्तमिवमन्यते

सूत उवाच

न जराक्षुत्पिपासा वा न च मृत्युभयन्ततः । नच रोगः प्रभवति ब्रह्मलोकगतस्य हि
गान्धर्वं प्रति यच्चापि पृष्टस्तुमुनिसत्तमाः । ततोऽहंसम्प्रवक्ष्यामियाथातथ्येनसुव्रताः

सूत उवाच

सप्तस्वरास्त्रयोग्रामामूर्छनास्त्वेकविंशतिः । तालाश्चैकोनपञ्चाशदित्येतत्स्वरमण्डलम्

षड्जर्षभौ चगान्धारोमध्यमःपञ्चमस्तथा। धैवतश्चापि विज्ञेयस्तथाचापिनिषादवान्
सौवीरीमध्यमग्रामो हरिणास्या तथैव च। स्यात्कलोपवलोपेता चतुर्थीशुद्धमध्यमा
शार्ङ्गी च पावनीचैवदृष्टाकाचयथाक्रमम्। मध्यमग्रामिकाःख्याताःषड्जग्रामंनिबोधत
उत्तरमन्द्रा जनी तथा या चोत्तरायता। शुद्धषड्जा तथा चैव जानीयात्सप्तमींचताम्
गान्धारग्रामिकांश्चान्यान्कीर्त्यमानान्निबोधत। आग्निष्टोमिकमाद्यंतुद्वितीयंवाजपेयिकम्
तृतीयंपौण्ड्रकं प्रोक्तं चतुर्थं चाऽऽश्वमेधकम्। पञ्चमं राजसूयं च षष्ठं चक्रसुवर्णकम्
सप्तमं गोसवं नाम महावृष्टिकमष्टमम्। ब्रह्मदानं च नवमं प्राजापत्यमनन्तरम् ॥४३॥
नागपक्षाश्रयं विद्याद्गोतरं च तथैव च। हयक्रान्तं मृगक्रान्तं विष्णुक्रान्तं मनोहरम्
सूर्यक्रान्तं वरेण्यं च मत्तकोकिलवादिनम्। सावित्रधर्मसावित्रं सर्वतोभद्रमेव च
सुवर्णं च सुतन्द्रं च विष्णुवैष्णुवरावुभौ। सागरं विजयं चैव सर्वभूतमनोहरम् ॥
हंसं ज्येष्ठं विजानीमस्तुम्बुरुप्रियमेव च। मनोहरमधाख्यं च गन्धर्वानुगतश्च यः ॥
अलम्बुषेष्टश्चतथा नारदप्रिय एव च। कथितो भीमसेनेन नागराणां यथा प्रियः ॥
विकलोपनीतविनताश्रीराख्योभार्गवप्रियः। अभिरम्यश्चशुक्रश्चपुण्यःपुण्यारकःस्मृतः

विंशतिर्मध्यमग्रामः षड्जग्रामश्चतुर्दश ॥ ४६ ॥

तथा पञ्चदशेच्छन्तिगान्धारग्रामसंस्थितान्। ससौवीरातुगान्धारीब्रह्मणाह्यपगीयते
उत्तरादिस्वरस्यैव ब्रह्मा वै देवताऽत्र च। हरिदेशसमुत्पन्ना हरिणास्या व्यजायत

मूर्छना हरिणास्यैव अस्या इन्द्रोऽधिदैवतम् ॥ ५१ ॥

करोपनीतवितता मरुद्भिः स्वरमण्डले। सा कलोपनता तस्मान्मारुतश्चाऽत्र दैवतम्
मरुद्देशसमुत्पन्ना मूर्छना शुद्धमध्यमा। मध्यमोऽत्रस्वरः शुद्धो गन्धर्वश्चाऽत्र देवता
मृगैःसहसञ्चरतेसिद्धानांमार्गदर्शने। यस्मात्तस्मात्स्मृतामार्गीमृगेन्द्रोऽस्याश्च देवता
सा चाऽऽश्रमसमायुक्ता अनेकान्पौरवान्नवान्। मूर्छना योजना ह्येषारजसारजनीतल
ताल उत्तरमन्द्राशः षड्जदैवतकां विदुः। तस्मादुत्तरतालं च प्रथमं स्वायतं विदुः

तस्मादुत्तरमन्द्रोऽयं देवताऽस्य ध्रुवो ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

आयामादुत्तरत्वाच्च धैवतस्योत्तरायणः। स्यादियं मूर्छना ह्येवं पितरःश्राद्धदेवताः ॥

शुद्धषड्जस्वरं कृत्वा यस्मादग्निमहर्षयः । उपतिष्ठन्तितस्मात्तंजानीयाच्छुद्धषड्जिकम्
यः सतांमूर्छनांकृत्वापञ्चमस्वरकोभवेत् । यक्षीणां मूर्छनांसातुयाक्षिकामूर्छनास्मृता
नागदृष्टिविषागीतानोपसर्पन्तिमूर्छनाम् । भवन्तीव हता ह्येते ब्रह्मणा नागदेवताः ॥
अहीनां मूर्छनाह्येषा वरुणश्चाऽत्र देवता । जलाधिपेन दृष्टा स्यादप्सुलीला तथैव च
शकुन्तकानां कृत्वाचउपगायन्तिकिन्नराः । उत्तमा मूर्छना तस्मात्पक्षिराजोऽत्रदेवता
मनोमन्दयतीतेषांमूर्छनामन्दनीत्यपि । ऋषीणांस्नातकानांचविश्वेदेवात्र(स्तु) दैवतम्
अश्वाक्रमंतकतावा रमन्तेवाऽत्रवाजिनः । अश्वक्रन्तेतिनित्यावैअश्विनीवाऽत्र दैवतम्

गान्धाररागशब्देन गां धारयतेऽर्थतः ।
तस्माद्विशुद्धगान्धारी गान्धर्वश्चाऽधिदैवतम ॥ ६५ ॥

गान्धारानन्तरं गत्वा सृष्टेयं मूर्छना यतः । तस्मादुत्तरगान्धारी वसवश्चाऽत्रदेवताः
सेयं खलु महाभूता पितामहमुपस्थिता । षड्जेयं मूर्छना तस्मात्स्मृता ह्यनलदेवता
दिव्येयं चाऽऽयता तेन मन्दषष्ठा च मूर्छने । निवृत्तगुण नामानं पञ्चमं चाऽत्र दैवतम्
पूर्णाःसप्त स्वरा ह्येवं मूर्छनाः सम्प्रकीर्तिताः । नानारूधारणाश्चैव षडेवानुविदस्तथा
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे वैवस्वतमनुवंशगान्धर्वमूर्च्छनालक्षणकथनं नाम षडशीतितिमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

गीतालङ्कारनिर्देशवर्णनम्

पूर्वाचार्यमतं बुद्ध्वा प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः । त्रिशतं वै अलङ्कारास्तान्मे निगदतः शृणुः
अलङ्कारास्तु वक्तव्याः स्वैः स्वैर्वर्णैःप्रहेतवः । संस्थानयोगैश्चतथापदानांचान्ववेक्षया
वाक्यार्थपदयोगार्थैरलङ्कारस्यपूरणम् । पदानिगीतकस्याऽऽहुःपुरस्तात्पृष्ठतोऽथवा ॥
स्थानानि त्रीणि जानीयादुरःकण्ठःशिरस्तथा । एतेषुत्रिषुस्थानेषुप्रवृत्तोविधिरुत्तमः

चत्वारः प्रकृतौ वर्णाः प्रविचारश्चतुर्विधः । विकल्पमष्टधा चैवदेवाः षोडशधा विदुः
स्थायीवर्णः प्रसञ्चारी तृतीयमवरोहणम् । आरोहणं चतुर्थं तु वर्णं वर्णविदो विदुः
तत्रैकः सञ्चरस्थायी सचरास्तु चरीभवन् । अथ रोहणवर्णानामवरोहं विनिर्दिशेत्
आरोहणेन चाऽऽरोहवर्णं वर्णविदो विदुः । एतेषामेव वर्णानामलङ्कारान्निबोधत ॥
अलङ्कारास्तु चत्वारः स्थापनो क्रमरेजिनः । प्रमादश्चाप्रमादश्चतेषांवक्ष्यामिलक्षणम्
विस्वरोष्टकलाश्चैव स्थानादेकान्तरं गताः । आवर्तस्याक्रमोत्पत्तीद्वेकार्येपरिणामतः
कुमारमपरं विद्याद्विस्तरं वमनं गतम् । एष वै चाप्यपाङ्गस्तु कुतारैकः कलाधिकः
श्येनस्त्वेकान्तरे जातःकलामात्रान्तरैस्थितः । तस्मिंश्चैवस्वरैवृद्धिस्त्रिष्ठतेतद्विलक्षणा
श्येनस्तु अपरोहस्तु उत्तरः परिकीर्तितः । कलाकलप्रमाणाच्च सबिन्दुर्नाम जायते

बिन्दुरेककला कार्या वर्णान्तस्थायिनी भवेत् ।
विपर्ययस्वरोऽपि स्याद्यस्य दुर्ग्रटितोऽपि न ॥ १४ ॥

एकान्तरातु वाद्यन्तुषड्जतःपरमःस्वरः । आक्षेपास्कन्दनं कार्यंकाकस्येवोच्चपुष्कलम्
सन्तारौ तौ तु सञ्चार्यौ कार्यं वा कारणंतथा । आक्षिप्रमवरोह्यापिप्रोक्षमद्यस्तथैवच
द्वादशश्च कलास्थानमेकान्तरगतं ततः । प्रेङ्खोलितमलङ्कारमेवं स्वरसमन्वितम् ॥१७॥
स्वरसंक्रामकाच्चैव ततः प्रोक्तन्तु पुष्कलम् । प्रक्षिप्तमेव कलया पादानीतरयोभवेत्
द्विकलं वा यथा भूतं यत्तदुद्भासितमुच्यते । उच्चाराद्विस्वरारूढातथाचाष्टस्वरान्तरम्
यस्तु स्यादवरोहो वा तारतो मन्द्रतोऽपि वा । एकान्तरहिता ह्येते तमेवस्वरमन्ततः
मक्षिप्रच्छेदनो नाम चतुष्कलगणः स्मृतः । अलङ्कारा भवन्त्येतेत्रिंशद्वै वै प्रकीर्तिताः

वर्णस्थानप्रयोगेण कलामात्राप्रमाणतः ॥ २१ ॥

संस्थानञ्च प्रमाणञ्च विकारो लक्षणं तथा । चतुर्विधमिदं ज्ञेयमलङ्कारप्रयोजनम् ॥
यथाऽऽत्मनोह्यलङ्कारोविपर्यस्तोऽतिगर्हितः । वर्णमेवाप्यलंकर्तुंविषमंह्यात्मसम्भवात्
नानाभरणसंयोगाद्यथानार्याविभूषणम् । वर्णस्यचैवाऽलङ्कारोविपर्ययस्तोऽतिगर्हितः
न पादे कुण्डले दृष्टे न कण्ठे रसना तथा । एवमेव ह्यलङ्कारो विपर्यस्तो विगर्हितः
क्रियमाणोऽप्यलङ्कारो रागं यश्चैवदर्शयेत् । यथोद्दिष्टस्य मार्गस्यकर्तव्यस्यविधीयते

लक्षणं पर्यवस्यापि वर्णिकाभिः प्रवर्तनम् । याथातथ्येन वक्ष्यामि मासोद्भवमुखोद्भवे
त्रयोविंशत्यशीतिस्तु तेषामेतद्विपर्ययः । षड्जपक्षोऽपि तत्त्वादौमध्योहीनस्वरोभवेत्
षड्जमध्यमयोश्चैव ग्रामयोः पर्ययस्तथा । मानो योत्तरमन्द्रस्य षडेवांत्राविकस्य च
स्वरालम्प्रत्ययश्चैव सर्वेषां प्रत्ययः स्मृतः । अनुगम्य बहिर्गीतं विज्ञातं पञ्चदैवतम् ॥
गोरूपाणां पुरस्तात्तुमध्यमांशस्तुपर्ययः । तयोर्विभागो गीतानांलावण्यमार्गसंस्थितः
अनुषङ्गं मयोद्दिष्टं स्वसारञ्च स्वरान्तरम् । पर्ययः सम्प्रवर्तेत सप्तस्वरपदक्रमम् ॥
गान्धरांशेन गीयन्ते चत्वारि मद्रकानि च । पञ्चमो मध्यमश्चैव धैवते तु निषादजैः

षड्जर्षभैश्च जानीमो मद्रकेष्वेव नान्तरम् ॥ ३३ ॥

द्वे चापरान्तिके विद्याद्द्वयशुल्लाष्टकस्य तु । प्राकृते वैणवैश्चैव गान्धारांशे प्रयुज्यते ॥
पदस्य तु त्रयं रूपं सप्तरूपन्तुकैशिकम् । गान्धारांशेनकार्त्स्न्येनपर्ययस्यविधिःस्मृतः

एवं चैव क्रमोद्दिष्टो मध्यमांशस्य मध्यमः ॥ ३५ ॥

यानि गीतानि प्रोक्तानि रूपेण तु विशेषतः । तत्तु सप्तस्वरं कार्यंसप्तरूपञ्चकौशिकम्
अङ्गदर्शनमित्याहुर्माने द्वे समके तथा । द्वितीयभावाचरणा मात्रा नाभिप्रतिष्ठिता ॥
उत्तरे च प्रकृत्येवं मात्रा तल्लीयते तथा । हन्तारः पिण्डको यत्र मात्रायां नातिवर्तते
पादेनैकेन मात्रायां पादोनामतिवोरणा । संख्यायाश्चोपहननं तत्र यानमिति स्मृतम्
द्वितीयं पादभङ्गश्च ग्राहेणाभिप्रतिष्ठितम् । पूर्वमष्टतृतीये तु द्वितीयं चापरीतके ॥४०॥
अर्धेन पादसाम्यस्य पादभागाच्च पञ्चके । पादभागं सपादन्तु प्रकृत्यामपि संस्थितम्
चतुर्थमुत्तरे चैव मद्रवत्याञ्च मद्रके । मद्रके दक्षिणस्याऽपि यथोक्ता वर्तते कला ॥
पूर्वमेवानुयोगन्तु द्वितीया वुद्धिरिष्यते । पादौ चाऽऽहरणं चास्मत्पारंनात्र विधीयते
एकत्वमुपयोगस्य द्वयोर्यद्धि द्विजोत्तम !। अनेकसमवायस्तु पताकाहरिणं स्मृतम् ॥
तिसृणाञ्चैव वृत्तीनां वृत्तौ वृत्ताचदक्षिणा । अष्टौतुसमवायास्तेसौवीरीमूर्छनातथा
कुशत्यनुत्तरः सत्यं सप्तसत्त्वस्वरन्तु यः । चित्रशाखासुतं तस्य धार्मिकस्यमहात्मनः
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते गीतालङ्कारनिर्देशो नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

———

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

वैवस्वतमनुवंशवर्णनम्

सूत उवाच

ककुद्मिनस्तु तं लोकं रैवतस्य गतस्य ह । हता पुण्यजनैः सर्वा राक्षसैः साकुशस्थली
तद्वै भ्रातृशतं तस्य धार्मिकस्यमहात्मनः । निबध्यमाना रक्षोभिर्दिशः सम्प्राद्रवन्भयात्
तेषान्तुतेभयाक्रान्ताःक्षत्त्रियास्तत्रतत्रहि । अन्ववायस्तुसुमहान्महांस्तत्र द्विजोत्तमाः
प्रयता इति विख्याता दिक्षु सर्वासु धार्मिकाः । धृष्टस्य धार्ष्टकं क्षत्त्रं रणधृष्टं बभूव ह

त्रिसाहस्रन्तु सगणं क्षत्त्रियाणां महात्मनाम् ।
नभगस्य च दायादो नाभागो नाम वीर्यवान् ॥ ५ ॥

अम्बरीषस्तुनाभागिर्विरूपस्तस्य चाऽऽत्मजः पृषदश्वो विरूपस्य तस्य पुत्रो रथीतरः
एते क्षत्त्रप्रसूता वै पुनश्चाङ्गिरसः स्मृताः । रथीतराणां प्रवराः क्षात्त्रोपेता द्विजातयः
क्षुवतस्तुमनोःपूर्वमिक्ष्वाकुरभिनिःसृतः । तस्य पुत्रशतंत्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम्

तेषां ज्येष्ठो विकुक्षिश्च नेमिर्दण्डश्च ते त्रयः ।
शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चशतं तु ते ॥ ६ ॥

उत्तरापथदेशस्य रक्षितारौ महीक्षितः । चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च दक्षिणायां च तेदिशि
विंशतिप्रमुखास्तेतुदक्षिणापथरक्षिणः । इक्ष्वाकुस्तुविकुक्षिंवैअष्टकायामथाऽऽदिशत्

राजोवाच

मांसमानय श्राद्धेयं मृगान्हत्वा महाबल !। श्राद्धमद्य नु कर्तव्यमष्टकायां न संशयः ॥
स गतस्तु मृगव्यां वै वचनात्तस्यधीमतः । मृगान्सहस्रशोहत्वापरिश्रान्तश्चवीर्यवान्

भक्षयच्छशकं तत्र विकुक्षिर्मृगयां गतः ॥ १३ ॥

आगते स विकुक्षौ तु समांसेसहसैनिके । वसिष्ठं चोदयामास मांसं प्रोक्षयतामिति
तथेति चोदितो राज्ञा विधिवत्समुपस्थितः । स दृष्ट्वोपहतं मांसंक्रुद्धोराजानमब्रवीत्

श्रुद्रेणोपहतं मांसं पुत्रेण तव पार्थिव । शशभक्षाददभोज्यं वै तव मांसं महाद्युते ॥
शशो दुरात्मना पूर्वमरण्ये भक्षितोऽनघ । तेन मांसमिदं दुष्टं पितृणां नृपसत्तम ॥
इक्ष्वाकुस्तु ततः क्रुद्धो विकुक्षिमिदमब्रवीत् । पितृकर्मणि निर्दिष्टोमयात्वंमृगयांगतः

शशं भक्षयसेऽरण्ये निर्घृणः पूर्वमद्य नु ॥ १८ ॥

तस्मात्परित्यजामित्वांगच्छत्वंस्वेनकर्मणा । एवमिक्ष्वाकुनात्युक्तोवसिष्ठवचनात्सुतः

इक्ष्वाकौ संस्थिते तस्मिञ्शशास पृथिवीमिमाम् ।

प्राप्तः परमधर्मात्मा स चाऽयोध्याधिपोऽभवत् ॥ २० ॥

तदाऽकरोत्स राज्यं वै वसिष्ठपरिनोदितः । ततस्तेनैनसापूर्णोराज्यावस्थोमहीपतिः
कालेनगतवांस्तत्र स च न्यूनतरां गतिम् । ज्ञात्वैवमेतदाख्यानं नाविधिर्भक्षयेत्तु वै
मांसभक्षयिताऽमुत्रयस्यमांसमिहाद्म्यहम् । एतन्मांसस्यमांसत्वंप्रवदन्तिमनीषिणः
शशादस्य तु दायादःककुत्स्थोनामवीर्यवान् । इन्द्रस्यवृषभूतस्यककुत्स्थोजायतेपुरा
पूर्वमाडीवके युद्धे ककुत्स्थस्तेन सस्मृतः । अनेनास्तुककुत्स्थस्यपृथुरानेनसः स्मृतः

पृषदश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादन्ध्रस्तु वीर्यवान् ।

आन्ध्रस्तु यवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ २६ ॥

जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्तीयेननिर्मिता । श्रावस्तस्यतु दायादोबृहदश्वोमहायशाः
बृहदश्वसुतश्चापि कुवलाश्व इतिश्रुतिः । यः स धुन्धुवधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागतः

ऋषय ऊचुः

धुन्धेर्वाधं महाप्राज्ञ ! श्रोतुमिच्छामि विंस्तरात् ।

यदर्थं कुवलाश्वः स धुन्धुमारत्वमागतः ॥ २९ ॥

सूत उवाच

बृहदश्वस्य पुत्राणांसहस्राण्येकविंशतिः । सर्वे विद्यासुनिष्णाता बलवन्तो दुरासदाः
बभूवुर्धार्मिकाः सर्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः । कुवलाश्वं महावीर्यं शूरमुत्तमधार्मिकम्
बृहदश्वोऽभ्यषिञ्चत्तं तस्मिन्राष्ट्रे नराधिपः । पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वनं राजा विवेश ह
बृहदश्वं महाराजं शूरमुत्तमधार्मिकम् । प्रयातं तमुत्तङ्कस्तु ब्रह्मर्षिः प्रत्यधारयत् ॥

उत्तङ्क उवाच

भवता रक्षणं कार्यं तत्तावत्कर्तुमर्हति। निरुद्विग्नस्तपः कर्तुं न हि शक्नोमि पार्थिव ॥
ममाऽऽश्रमसमीपेषु समेषु मरुधन्वसु। समुद्रो वालुकापूर्णस्तत्र तिष्ठति भूपते॥
देवतानामवध्यस्तु महाकायो महाबलः। अन्तर्भूमिगतस्तत्र वालुकान्तर्हितो महान्॥
स मनोस्तनयः क्रूरो धुन्धुर्नाम सुदारुणः। शतं लोकविनाशायतपआस्थायदारुणम्॥
सम्वत्सरस्य पर्यन्ते स निश्वासं प्रमुञ्चति। यदा तदा मही तत्रचलतिस्मसकानना॥
तस्य निश्वासवातेन रज उद्धूयते महत्। आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम्॥

सविस्फुलिङ्गं सज्वालं सधूममतिदारुणम्।
तेन राजन्न शक्नोमि तस्मिन्स्थातुं स्व आश्रमे ॥ ४० ॥
तं वारय महाबाहो! लोकानां हितकाम्यया।
तेजस्ते सुमहाविष्णुस्तेजसाऽऽप्याययिष्यति ॥ ४१ ॥

लोकाःस्वस्थाभवन्त्यद्यतस्मिन्विनिहतेऽसुरे। त्वंहितस्यवधायाऽद्यसमर्थःपृथिवीपते॥
विष्णुना च वरो दत्तो मम पूर्वंततोऽनघ। न हि धुन्धुर्महावीर्यस्तेजसाऽल्पेनशक्यते॥
निर्दग्धुं पृथिवीपाल अपि वर्षशतैरिह। वीर्यं हि सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम्॥
एवमुक्तस्तु राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना। कुवलाश्वं सुतं प्रादात्तस्मिन्धुन्धुनिवारणे॥
राजा संन्यस्तशस्त्रोऽहमयन्तु तनयो मम। भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः॥
स तं व्यादिश्य तनयं धुन्धुमारणमुद्यतम्। जगामपर्वतायैव तपसे शंसितव्रतः॥४७॥
कुवलाश्वस्तु धर्मात्मा पितुर्वचनमास्थितः। सहस्रैरेकविंशत्या पुत्राणां सह पार्थिवः।

प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य निवारणे ॥ ४८ ॥

तमाविशत्ततो विष्णुर्भगवान्स्वेनतेजसा। उत्तङ्कस्य नियोगात्तुलोकानांहितकाम्यया॥
तस्मिन्प्रयाते दुर्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत्। अद्यप्रभृत्येष नृपो धुन्धुमारोभविष्यति॥
दिव्यैः पुष्पैश्च तं देवाः समन्तात्समवाकिरन्... समभ्यसत अद्भुतम्। स गत्वा पुरुषव्याघ्रस्तनयैःसहवीर्यवान्॥
समुद्रं खनयामास वालुकार्णवमव्ययम्। नारायणेनराजर्षिस्तेजसाऽऽप्यायितोहि सः॥

बभूवाऽतिबलो भूय उत्तङ्कस्य वशे स्थितः ॥ ५३ ॥

तस्य पुत्रैःखनद्भिश्चवालुकान्तर्हितस्तदा । धुन्धुरासादितस्तत्रदिशमाश्रित्यपश्चिमाम्
मुखजेनाऽग्निना क्रुद्धो लोकानुद्वर्तयन्निव । वारि सुस्राव योगेन महोदधिरिवोदये ॥

सोमस्य सोमपश्रेष्ठ धारोर्मिकलिलो महान् ।

तस्य पुत्रास्तु निर्दग्धास्त्रिभिरूनास्तु राक्षसाः ॥ ५६ ॥

ततः स राजाऽतिबलो धुन्धुबन्धुनिबर्हणः । तस्य वारिमयं वेगमपिबत्स नराधिपः
योगी योगेन वह्निं वा शमयामास वारिणा । निरस्यत्तं महाकायं बलेनोदकराक्षसम्
उत्तङ्कं दर्शयामास कृतकर्मा नराधिपः । उत्तङ्कश्च वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने ॥
अदात्तस्याऽक्षयंवित्तं शत्रुभिश्चाप्यधृष्यताम् । धर्मे रतिञ्चसततंस्वर्गेवासंतथाऽक्षयम्

पुत्राणां चाऽक्षयाँल्लोकान्स्वर्गे ये रक्षसा हताः ॥ ६० ॥

तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते ।

भद्राश्वः कपिलाश्वश्च कनीयांसौ तु तौ स्मृतौ ॥ ६१ ॥

धौन्धुमारिर्दृढाश्वस्तु हर्यश्वस्तस्य चाऽऽत्मजः ।

हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत्क्षत्त्रधर्मरतः सदा ॥ ६२ ॥

संहताश्वो निकुम्भस्य श्रुतो रणविशारदः । कृशाश्वश्चाक्षयाश्वश्च संहताश्वसुतावुभौ
यस्य पत्नी हैमवती सतां मतिदृषद्वती । विख्याता त्रिषुलोकेषुपुत्रस्तस्याःप्रसेनजित्
युवनाश्वः सुतस्तस्यत्रिषुलोकेष्वतिद्युतिः । अत्यन्तधार्मिकोगौरीतस्यपत्नीपतिव्रता
अभिशस्ता तु सा भर्त्रा नदी सा बाहुदा कृता । तस्यास्तुगौरिकःपुत्रश्चक्रवर्तीबभूवह

मान्धाता यौवनाश्वो वै त्रैलोक्यविजयी नृपः ।

अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौ पौराणिका द्विजाः ॥ ६७ ॥

यावत्सूर्य उदयति यावच्च प्रतितिष्ठति । सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ॥
अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकंवंशविदो जनाः । यौवनाश्वंमहात्मानंयज्वानममितौजसम्

मान्धाता तु तनुर्विष्णोः पुराणज्ञाः प्रचक्षते ॥ ६९ ॥

तस्य चैत्ररथीभार्याशशबिन्दोःसुताऽभवत् । साध्वीबिन्दुमतीनामरूपेणाप्रतिमासुवि
पतिव्रताचज्येष्ठाचभ्रातणामयुतस्यसा । तस्यामुत्पादयामासमान्धातात्रीन्सुतान्प्रभुः

पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च विश्रुतम् । अम्बरीषस्य दायादोयुवनाश्वोऽपरः स्मृतः
हरितो युवनाश्वस्य हारिताःशूरयःस्मृताः । एते ह्यङ्गिरसःपुत्राःक्षात्त्रोपेताद्विजातयः
पुरुकुत्सस्यदायादस्त्रसदस्युर्महायशाः । नर्मदायां समुत्पन्नःसम्भूतस्तस्यचाऽऽत्मजः
सम्भूतस्याऽत्मजःपुत्रोह्यनरण्यः प्रतापवान् । रावणोनिहतोयेनत्रिलोकीविजयेपुरा ।
त्रसदश्वोऽनरण्यस्य हर्यश्वस्तस्य चाऽऽत्मजः । हर्यश्वात्तु दृषद्वत्यां जज्ञेवसुमतोनृपः

तस्य पुत्रोऽभवद्राजा त्रिधन्वा नाम धार्मिकः ।
आसीत्त्रैधन्वनश्चाऽपि विद्वांस्त्रय्यारुणः प्रभुः ॥ ७६ ॥

तस्य सत्यव्रतो नामकुमारोऽभून्महाबलः । तेन भार्याविदर्भस्यहृताहत्वादिवौकसा
पाणिग्रहणमन्त्रेषु निष्ठांसम्प्रापितेष्विह । विष्णुवृद्धःसुतस्तस्यविष्णुवृद्धायतःस्मृता

एते ह्यङ्गिरसः पुत्राः क्षात्त्रोपेताः समाश्रिताः ॥ ७६ ॥

कामाद्बलाच्च मोहाच्च सङ्कर्षणबलेन च । भाविनोऽर्थस्यच बलात्तत्कृतं तेन धीमता
तमधर्मेण संयुक्तं पिता त्रय्यारुणोऽत्यजत् । अपध्वंसेतिबहुशोऽवदत्क्रोधसमन्वित
पितरं सोऽब्रवीदेकः क्व गच्छामीति वै मुहुः । पिता चैनमथोवाच श्वपाकैः सहवर्त
नाऽहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाऽद्य कुलपांसन । इत्युक्तः स निराक्रामन्नगराद्वचनाद्भि
नचैनंधारयामासवसिष्ठोभगवानृषिः । स तु सत्यव्रतोधीमाञ्श्वपाकावसथान्तिक

पिता मुक्तोऽवसद्वीरः पिता चाऽस्य वनं ययौ ॥ ८४ ॥

तस्मिंस्तु विषये तस्य नावर्षत्पाकशासनः । समा द्वादश सम्पूर्णास्तेनाधर्मेणवै
दारांस्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः । संन्यस्य सागरानूपे चचारविपुलं
तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् । शिष्टानांभरणार्थायव्यक्रीणाद्गोशतेन
तं तु बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रीतं तं नरोत्तमः । महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास सुव्र
सत्यव्रतो महाबुद्धिर्भरणं तस्य चाऽकरोत् । विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव
सोऽभवद्गालवो नाम गले बद्धो महातपाः । महर्षिःकौशिकस्तातस्तेनवीर्येणमोक्षि
तस्य व्रतेन भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया । विश्वामित्रकलत्रञ्च बभारविनयेस्थि
हत्वा मृगान्वराहांश्च महिषांश्चवनेचरान् । विश्वामित्राश्रमाभ्यासेतन्मांसमपव

उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् । पितुर्नियोगादभजन्नृपे तु वनमास्थिते
अयोध्यां चैव राज्यञ्च तथैवाऽन्तःपुरंमुनिः । याज्योपाध्यायसंयोगाद्वशिष्ठःपर्यरक्षत

सत्यव्रतस्तु वाल्यात्तु भाविनोऽर्थस्य वै वलात् ।
वशिष्ठेऽस्यधिकं मन्युं धारयामास मन्युना ॥ ६५ ॥

पित्रा रुदंस्तदा राष्ट्रात्परित्यक्तं स्वमात्मजम् । न वारयामासमुनिर्वसिष्ठःकारणेनवै
पाणिग्रहमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे । एवं सत्यव्रतस्तान्वै हृतवान्सप्तमे पदे ॥
जानन्धर्मान्वसिष्ठस्तुनचमन्त्रानिहेच्छति । इतिसत्यव्रतेरोषंवशिष्ठोमनसाऽकरोत्
गुरुबुद्ध्या तु भगवान्वसिष्ठः कृतवांस्तदा । न तु सत्यव्रतोऽवुध्यदुपांशुव्रतमस्य वै
तस्मिश्चोपरते यो यत्पितुरासीन्महामनाः । तेन द्वादशवर्षाणि नाऽवर्षत्पाकशासनः

तेन त्विदानीं वहुधा दीक्षां तां दुर्वलां भुवि ।
कुलस्य निष्कृतिः स्वस्य कृतेयञ्च भवेदिति ॥ १०१ ॥

ततोवसिष्ठोभगवान्पित्रा त्यक्तं न्यवारयत् । अभिषेक्ष्याम्यहंराज्येपश्चादेनमिति प्रभु
स तु द्वादश वर्षाणि दीक्षां तामुद्वहन्वली । अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्यमहात्मन.
सर्वकामदुघां धेनुं स ददर्शनृपात्मजः । तां वै क्रोधाच्चमोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधान्वितः

दस्युधर्मं गतो दृष्ट्वा जघान वलिनाम्वरः ।
स तु मांसं स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चाऽऽत्मजान् ॥ १०५ ॥
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठस्तं तदाऽत्यजत् ।
प्रोवाच चैव भगवान्वसिष्ठस्तं नृपात्मजम् ॥ १०६ ॥

पातये क्रूर हे क्रूर तव शङ्कुमयोमयम् । यदि ते त्रीणि शङ्कूनि न स्युर्हि पुरुषाधम॥
पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च । अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः
एवंस त्रीणिशङ्कूनिदृष्ट्वातस्य महातपाः । त्रिशङ्कुरितिहोवाचत्रिशङ्कुस्तेन स स्मृतः॥
विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते । ततस्तस्मै वरं प्रादात्तदा प्रीतस्त्रिशङ्कवे॥
छन्द्यमानो वरेणाऽथ गुरुं वव्रे नृपात्मजः । अनावृष्टिभये तस्मिन्गते द्वादशवार्षिके
अभिषिच्य तदाराज्येयाजयामास तं मुनिः । मिषतांदेवतानाञ्चवशिष्ठस्यचकौशिकः

विन्ध्यपार्श्वे महापुण्यानिम्नगागिरिकानने । तस्य स्नानेन सम्भूताकर्मनाशाशुभानदी
स शरीरं तदा तं वै दिवमारोपयत्प्रभुः ॥ ११३ ॥
मिषतस्तुवशिष्ठस्यतदद्भुतमिवाऽभवत् । अत्राप्युदाहरन्तीमौश्लोकौपौराणिकाजनाः
विश्वामित्रप्रसादेन त्रिशङ्कुर्दिवि राजते । देवैः सार्धं महातेजाऽनुग्रहात्तस्य धीमतः ॥
शनैर्यात्यबला रम्या हेमन्ते चन्द्रमण्डिता । अलंकृता त्रिभिर्भावैस्त्रिशङ्कुग्रहभूषिता ॥
तस्य सत्यरतानाम भार्या केकयवंशजा । कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥
स तु राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति श्रुतः । आहर्ता राजसूयस्य सम्राडिति परिश्रुत
हरिश्चन्द्रस्य तु सुतो रोहितो नामवीर्यवान् । हरितोरोहितस्याऽथचञ्चुर्हारीतउच्यते
विजयश्च सुदेवश्च चञ्चुपुत्रौ बभूवतुः । जेता सर्वस्य क्षत्त्रस्य विजयस्तेन स स्मृत
रुरुकस्तनयस्तत्र राजा धर्मार्थकोविदः । रुरुकाद्धृतकः पुत्रस्तस्माद्बाहुश्च जज्ञिवान्
हैहयैस्तालजङ्घैश्च निरस्तो व्यसनी नृपः । शकैर्यवनकाम्बोजैः पारदैः पह्लवैस्तथा
नात्यर्थं धार्मिकोऽभूत्स धर्म्ये सत्ययुगे तथा । सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सहगरेण वै
भृगोराश्रममासाद्य तुर्वेण परिरक्षितः ॥ १२३ ॥
आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वातुभार्गवात्सगरो नृपः । जघानपृथिवींगत्वातालजङ्घान्सहैहयान्
शकानां पह्लवानाञ्च धर्मान्निरसदच्युतः । क्षत्त्रियाणां तथातेषांपारदानाञ्चधर्मवित्

ऋषय ऊचुः

कथं स सगरोराजागरेणसह जज्ञिवान् । किमर्थञ्चशकादीनांक्षत्त्रियाणांमहौजसाम्
धर्मान्कुलोचितान्क्रुद्धो राजा निरसदच्युतः ॥ १२६ ॥

सूत उवाच

बाहोर्व्यसनिनस्तस्य हृतं राज्यं पुरा किल । हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकैःसार्धंसमागतैः
यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवास्तथा । हैहयार्थं पराक्रान्ताएते पञ्चगतास्तदा
हृतं राज्यं बलीयोभिरेभिः क्षत्त्रियपुङ्गवैः । हृतराज्यस्तदा बाहुःसंन्यस्यनु तदा नृप
वनं प्रविश्य धर्मात्मा सह पत्न्या तपोऽचरत् ॥ १२९ ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्यतोयार्थंप्रस्थितो नृपः । वृद्धत्वाद्दुर्बलत्वाच्चअन्तरास ममार

पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात् । सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया
सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा वह्निं तं समरोहयत् । और्वस्तां भार्गवो दृष्ट्वा कारुण्याद्विन्यवर्तयत्
तस्याऽऽश्रमे तु तं गर्भं सा गरेण तदा सह । व्याजायत महाबाहुं सगरं नाम धार्मिकम्

और्वस्तु जातकर्मादीन्कृत्वा तस्य महात्मनः ।
अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ॥ १३४ ॥

जामदन्त्यात्तदाग्नेयममरैरपि दुःसमम् । स तेनास्त्रबलेनैव बलेन च समन्वितः ॥

जघान हैहयान्क्रुद्धो रुद्रः पशुगणानिव ॥ १३५ ॥

ततः शकान्सयवनान्काम्बोजान्पारदांस्तथा । पह्लवांश्चैव निःशेषान्कर्तुं व्यवसितो नृपः
ते बध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना । वसिष्ठं शरणं सर्वे प्रपन्नाः शरणैषिणः ॥
वसिष्ठस्तांस्तथेत्युक्त्वा समयेन महामुनिः । सगरं वारयामास तेषां दत्त्वाऽभयं तदा
सगरः स्वां प्रतिज्ञाञ्च गुरोर्वाक्यं निशम्य च । धर्मं जघान तेषां वै वेषान्यत्वं चकार ह
अर्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् । यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानां तथैव च
पारदा मुक्तकेशाश्च पल्हवाः श्मश्रुधारिणः । निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना

शका यवनकाम्बोजाः पल्हवाः पारदैः सह ।
कलिस्पर्शा माहिषिका दार्वाश्चोलाः खसास्तथा ॥ १४२ ॥

सर्वे ते क्षत्त्रियगणा धर्मस्तेषां निराकृतः । वसिष्ठवचनात्पूर्वं सगरेण महात्मना
स धर्मविजयी राजा विजित्वेमां वसुन्धराम् । अश्वं विचारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः
तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्वदक्षिणे । वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः
स तं देशं सुतैः सर्वैः खानयामास पार्थिवः । आसेदुश्च ततस्तस्मिंस्तदन्तस्ते महार्णवे
तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम् । विष्णुं कपिलरूपेण हंसं नारायणं प्रभुम् ॥
तस्य चक्षुः समासाद्य तेजस्तत्प्रतिपद्यते । दग्धाः पुत्रास्तदा सर्वे चत्वारस्त्ववशेषिताः
बर्हिकेतुः सकेतुश्च तथा धर्मरतश्च यः । शूरः पञ्चवनश्चैव तस्य वंशकराः प्रभोः ॥
प्रादाच्च तस्य भगवान्हरिर्नारायणो वरान् । अक्षयत्वं स्ववंशस्य वाजिमेधशतन्तथा

विभुं पुत्रं समुद्रञ्च स्वर्गे वासं अथाऽक्षयम् ॥ १५० ॥

स समुद्रोऽश्वमादाय ववन्दे सरितां पतिः । सागरत्वञ्च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै
तं चाऽऽश्वमेधिकंसोऽश्वंसमुद्रात्प्राप्यपार्थिवः । आजहाराश्वमेधानांशतंचैवपुनःपुनः
षष्टिपुत्रसहस्राणिदग्धान्यश्वानुसारिणाम् । तेषां नारायणंतेजःप्रविष्टानांमहात्मनाम्

पुत्राणान्तु सहस्राणि षष्टिस्तु इति नः श्रुतम् ॥ १५३ ॥

ऋषय ऊचुः

सगरस्याऽऽत्मजा राज्ञः कथं जाता महाबलाः ।
विक्रान्ताः षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा वद ॥ १५४ ॥

सूत उवाच

द्वेपत्न्यौसगरस्याऽऽस्तांतपसादग्धकिल्बिषे । ज्येष्ठाविदर्भदुहिताकेशिनीनामनामतः
कनीयसी तु या तस्य पत्नी परमधर्मिणी । अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाऽप्रतिमा भुवि
और्वस्ताभ्यामवरंप्रादात्तपसाऽऽराधितःप्रभुः । एकाजनिष्यतेपुत्रंवंशकर्तारमीप्सितम्

षष्टिपुत्रसहस्राणि द्वितीया जनयिष्यति ॥ १५७ ॥

मुनेस्तु वचनं श्रुत्वा केशिनी पुत्रमेककम् । वंशस्य कारणं श्रेष्ठा जग्राह नृपसंसदि
षष्टिपुत्रसहस्राणि सुपर्णभगिनी तथा । महात्मनस्तु जग्राह सुमतिः स्वमतिर्यथा ॥

अथ काले गते ज्येष्ठा ज्येष्ठं पुत्रं व्यजायत ।
असमञ्ज इति ख्यातं काकुत्स्थं सगरात्मजम् ॥ १६० ॥

सुमतिस्त्वपिजज्ञे वै गर्भं तुम्बंयशस्विनी । षष्टिपुत्रसहस्राणि तुम्बमध्याद्विनिःसृताः
घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान्गर्भान्यदधत्ततः । धात्रीश्चैकैकशः प्रादात्तावतीः पोषणे नृपः ।
ततो नवसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथासुखम् । कुमारास्ते महाभागाः सगरप्रीतिवर्धनाः ॥
कालेन महता चैव यौवनं प्रतिपेदिरे । षष्टिपुत्रसहस्राणि तेषामश्वानुसारिताम् ॥
स तु ज्येष्ठो नरव्याघ्रःसगरस्याऽऽत्मसम्भवः । असमञ्जइतिख्यातोबर्हिकेतुर्महाबलः ॥
पौराणामहितेयुक्तः पित्रानिर्वासितःपुरा । तस्य पुत्रोंऽशुमान्नाम असमञ्जस्यवीर्यवान्
तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा दिलीप इति विश्रुतः । दिलीपात्तुमहातेजावीरोजातो भगीरथः
येन गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा विमानैरुपशोभिता । ईजानेन समुद्राद्वै दुहितृत्वेन कल्पिता ॥

अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकं पौराणिका जनाः ॥ १६८ ॥

भगीरथस्तु तां गङ्गामानयामास कर्मभिः । तस्माद्भागीरथीगङ्गाकथ्यते वंशवित्तमैः

भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह । नाभागस्तस्य दायादो नित्यं धर्मपरायणः ॥

अम्बरीषः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् ।

एवं वंशपुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् ॥ १७१ ॥

नाभागेरम्बरीषस्य भुजाभ्यां परिपालिता । बभूव वसुधाऽत्यर्थं तापत्रयविवर्जिता ॥

आयुतायुः सुतस्तस्यसिन्धुद्वीपस्यवीर्यवान् । आयुतायोस्तुदायादऋतुपर्णोमहायशाः

दिव्याक्षहृदयज्ञोऽसौ राजा नलसखो बली । नलौ द्वाविति विख्यातौ पुराणेषु दृढव्रतौ

वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः । ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत्सर्वकामो जनेश्वरः ॥

सुदासस्तस्यतनयोराजाहंसमुखोऽभवत् । सुदासस्यसुतःप्रोक्तःसौदासोनाम पार्थिवः

ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहश्चसः । वसिष्ठस्तुमहातेजाःक्षेत्रेकल्माषपादके

अश्मकं जनयामास इक्ष्वाकुकुलवृद्धये ॥ १७७ ॥

अश्मकस्योरुकामस्तु मूलकस्तत्सुतोऽभवत् । अत्राप्युदाहरन्तीमं मूलकं वै नृपं प्रति

सहि रामभयाद्राजास्त्रीभिःपरिवृतोऽवसत् । विवस्त्रस्त्राणमिच्छन्वैनारीकवचमीश्वरः

मूलकस्यापि धर्मात्माराजा शतरथःस्मृतः । तस्माच्छतरथाज्जज्ञे राजाचैडविडोबली

आसीत्त्वैडविडः श्रीमान्कृतशर्माप्रतापवान् । पुत्रो विश्वमहत्तस्यपुत्रिकस्य व्यजायत

दिलीपस्तस्य पुत्रोऽभूत्खट्वाङ्ग इति श्रुतिः ।

येन स्वर्गादिहाऽऽगम्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम् ॥

त्रयोऽभिसंहिता लोका बुद्ध्या सत्येन चैव हि ॥ १८२ ॥

दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत । अजः पुत्रो रघोश्चापितस्माज्जज्ञेसवीर्यवान्

राजा दशरथो नाम इक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥ १८३ ॥

रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः । भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः ॥

माधवं लवणं हत्वा गत्वा मधुवनं च तत् । शत्रुघ्नेन पुरी तत्र मथुरा सन्निवेशिता॥

सुबाहुः शूरसेनश्च शत्रुघ्नसहितावुभौ । पालयामासतुः सुतौ वैदेह्यौ मथुरां पुरीम् ॥

अङ्गदश्चन्द्रकेतुश्च लक्ष्मणस्याऽऽत्मजावुभौ । हिमवत्पर्वताभ्यासेस्फीतौजनपदौतयोः
अङ्गदस्याङ्गदीया तु देशे कारपथे पुरी । चन्द्रकेतोस्तु मल्लस्य चन्द्रवक्त्रा पुरी शुभा
भरतस्याऽऽत्मजौ वीरौ तक्षः पुष्करएवच । गान्धारविषयेसिद्धेतयोःपुर्यौमहात्मनोः
तक्षस्यदिक्षु विख्यातारम्यातक्षशिलापुरी । पुष्करस्यापिवीरस्यविख्यातापुष्करावती

गाथां चैवाऽत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ।
रामे निबद्धास्तत्त्वार्था माहात्म्यात्तस्य धीमतः ॥ १६१ ॥
श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषितः ।
आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः ॥ १६२ ॥

दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् । ऋक्सामयजुषां घोषोज्याघोषश्चमहास्वनः
अविच्छिन्नोऽभवद्राष्ट्रे दीयतांभुज्यतामिति । जनस्थानेवसन्कार्यं त्रिदशानांचकारसः
तमागस्कारिणं पूर्वं पौलस्त्यं मनुजर्षभः । सीतायाः पदमन्विच्छन्निजघानमहायशाः
सत्त्ववान्गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा । अति सूर्यं च वह्निंच रामोदाशरथिर्बभौ
एवमेव महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः । रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे विभुः॥१६७
श्रीरामस्याऽऽत्मजो जज्ञे कुश इत्यभिधीयते । लवश्चान्योमहावीर्यस्तयोर्देशौनिबोधत
कुशस्य कोशलाराज्यं पुरी चाऽपि कुशस्थली । रम्यानिवेशितातेनविन्ध्यपर्वतसानुषु
उत्तराकोशले राज्यं लवस्य च महात्मनः । श्रावस्तीलोकविख्याताकुशवंशं निबोधत

कुशस्य पुत्रो धर्मात्मा ह्यतिथिः सुप्रियातिथिः ।
अतिथेरपि विख्यातो निषधो नाम पार्थिवः ॥ २०१ ॥

निषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु । नभसःपुण्डरीकस्तुक्षेमधन्वाततः स्मृतः
क्षेमधन्वसुतो राजा देवानीकः प्रतापवान् । आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मजः प्रभुः
अहीनगोस्तुदायादःपारिपात्रोमहायशाः । दलस्तस्याऽऽत्मजश्चापितस्माज्जज्ञेबलोनृपः
औक्थो नाम स धर्मात्मा बलपुत्रोबभूवह । वज्रनाभसुतस्तस्यशङ्खनस्तस्यचाऽऽत्मजः
शङ्खनस्य सुतो विद्वान्व्युषिताश्वइतिश्रुतः । व्युषिताश्वसुतश्चापिराजाविश्वसहःकिल
हिरण्यनाभकौशल्योवशिष्ठस्तत्सुतोऽभवत् । पौत्रस्यजैमिनेःशिष्यःस्मृतःसर्वेषुशर्मसु

शतानिसंहितानान्तुपञ्चयोऽधीतवांस्ततः। तस्मादधिगतोयोगोयाज्ञवल्क्येनधीमता
पुष्यस्तस्य सुतो विद्वान्ध्रुवसन्धिश्चतत्सुतः। सुदर्शनस्तस्यसुतःअग्निवर्णःसुदर्शनात्
अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तुशीघ्रकस्यमनुःस्मृतः। मनुस्तुयोगमास्थायकलापग्राममास्थित
एकोनविंशप्रयुगे क्षत्त्रप्रावर्तकः प्रभुः ॥ २१० ॥
प्रसुश्रुतोमनोःपुत्रःसुसन्धिस्तस्यचाऽऽत्मजः। सुसन्धेश्चतथामर्षःसहस्वान्नामनामतः
आसीत्सहस्वतःपुत्रोराजाविश्रुतवानिति। तस्याऽऽसीद्विश्रुतवतःपुत्रोराजाबृहद्बलः
एते इक्ष्वाकुदायादा राजानः प्रायशः स्मृताः।
वंशे प्रधाना ये तेऽस्मिन्प्राधान्येन तु कीर्तिताः ॥ २१३ ॥
पठन्सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः। प्रजावानेतिसायुज्यंमनोर्वैवस्वतस्यसः
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च। विपाप्माविरजश्चैवआयुष्मान्भवतेऽच्युतः
अपुत्रो लभते पुत्रं दीर्घायुः परमाङ्गतिम् ॥ २१५ ॥
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे इक्ष्वाकुवंशानुकीर्तनं
नामाऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

नवाशीतितमोऽध्यायः

मिथिसकाशान्मैथिलवंशानुकीर्त्तनम्

सूत उवाच

अनुजस्य विकुक्षेस्तु निमेर्वंशं निबोधत। योऽसौ निवेशयामास परं देवपुरोपमम् ॥
जयन्तमितिविख्यातंगौतमस्याऽऽश्रमाभितः। यस्यान्ववायेजज्ञेवैजनकाद्वृषिसत्तमात्
नेमिर्नाम सुधर्मात्मा सर्वसत्त्वनमस्कृतः। आसीत्पुत्रो महाराज इक्ष्वाकोर्भूरितेजसः
स शापेन वशिष्ठस्य विदेहः समपद्यत। तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनितः पर्वभिस्त्रिभिः
अरण्यां मथ्यमानायां प्रादुर्भूतो महायशाः।

नाम्ना मिथिरितिख्यातो जननाज्जनकोऽभवत् ॥ ५ ॥

मिथिर्नाममहावीर्योयेनासौमिथिलाऽभवत् ।राजाऽसौजनकोनामजनकाच्चाप्युदावसुः

उदावसोः सुधर्मात्मा जानितो नन्दिवर्धनः । नन्दिवर्धनतः शूरः सुकेतुर्नामधार्मिकः

सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः । देवरातस्य धर्मात्मा बृहदुत्थ इति श्रुतिः

बृहदुत्थस्य तनयोमहावीर्यःप्रतापवान् । महावीर्यस्यधृतिमान्सुधृतिस्तस्यचाऽऽत्मजः

सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः परन्तपः । धृष्टकेतुसुतश्चापि हर्यश्वो नाम विश्रुतः ॥१०

हर्यश्वस्य मरुः पुत्रोमरोपुत्रः प्रतित्वकः । प्रतित्वकस्य धर्मात्माराजाकीर्तिरथःसुतः

पुत्रः कीर्तिरथस्याऽपि देवमीढ इति श्रुतः । देवमीढस्य विबुधो विबुधस्यसुतो धृतिः

महाधृतिसुतो राजाकीर्तिराजःप्रतापवान् । कीर्तिराजात्मजोविद्वान्महारोमेतिविश्रुतः

महारोम्णस्तु विख्यातः स्वर्णरोमा व्यजायत ।

स्वर्णरोमात्मजश्चापि ह्रस्वरोमाऽभवन्नृपः ॥ १४ ॥

ह्रस्वरोमात्मजो विद्वान्सीरध्वज इति श्रुतिः । उद्भिन्नाकृषतायेनसीता राज्ञायशस्विनी

रामस्य महिषी साध्वी सुव्रताऽतिपतिव्रता ॥ १५ ॥

शांशपायन उवाच

कथं सीता समुत्पन्ना कृष्यमाणायशस्विनी । किमर्थंचाकृषद्राजाक्षेत्रंयस्मिन्बभूवसा

सूत उवाच

अग्निक्षेत्रे कृष्यमाणे अश्वमेधे महात्मनः । विधिर्नासुप्रयुक्तेनतस्मात्सा तु समुत्थिता

सीरध्वजात्तुजातस्तुभानुमान्नाममैथिलः । भ्राताकुशध्वजस्तस्य स काश्याधिपतिर्नृपः

तस्य भानुमतः पुत्रः प्रद्युम्नश्च प्रतापवान् । मुनिस्तस्य सुतश्चापि तस्मादूर्जवहः स्मृतः

ऊर्जवाहात्सुतद्वाजः शकुनिस्तस्य चाऽऽत्मजः ।

स्वागतः शकुनेः पुत्रः सुवर्चास्तत्सुतः स्मृतः ॥ २० ॥

श्रुतोयस्तस्यदायादःसुश्रुतस्तस्यचाऽऽत्मजः । सुश्रुतस्य जयः पुत्रोजयस्यविजयःसुतः

विजयस्य ऋतः पुत्र ऋतस्यः सुनयःस्मृतः । सुनयाद्वीतहव्यस्तुवीतहव्यात्मजोधृतिः

धृतेस्तुबहुलाश्वोऽभूद्बहुलाश्वसुतःकृतिः । तस्मिन्संतिष्ठतेवंशोजनकानां महात्मनाम्

इत्येते मैथिलाः प्रोक्ताः सोमस्याऽपि निबोधत ॥ २३ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे मैथिलवंशानुकीर्तनं नाम नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

नवतितमोऽध्यायः

सोमजन्मविवरणम्

सूत उवाच

पिता सोमस्य वै विप्रा जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः । तत्रात्रिःसर्वलोकानांतस्थौस्वेनमयेधृतः
कर्मणा मनसा वाचा शुभान्येव समाचरन् । काष्ठकुड्यशिलाभूत ऊर्ध्वबाहुर्महाद्युतिः
सुदुश्चरं नाम तपो येन तप्तं महत्पुरा । त्रीणि वर्षसहस्राणिदिव्यानीति हि नः श्रुतम्
तस्योर्ध्वरेतसस्तत्र स्थितस्यानिमिषस्पृहा । सोमत्वंतनुरापेदेमहाबुद्धिः स वै द्विजः
ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्यसोमत्वंभावितात्मनः । सोमः सुस्रावनेत्राभ्यांदशधाद्योतयन्दिशः
तं गर्भं विधिनाऽऽदिष्टा दश देव्योदधुस्तदा । समेत्यधारयामासुर्नचतास्तमशक्नुवन्

स ताभ्यः सहसैवाऽथ दिग्भ्यो गर्भः प्रभान्वितः ।
यथाऽवभासयँल्लोकान्शीतांशुः सर्वभावनः ॥ ७ ॥

यदानधारणेशक्तास्तस्यगर्भस्य ताः स्त्रियः । ततःस ताभिःशीतांशुर्निपपातवसुन्धराम्
पतन्तं सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः । रथमारोपयास लोकानां हितकाम्यया ॥
स हि देवमयो विप्रा धर्मार्थीसत्यसंगरः । युक्तोवाजिसहस्रेणसितेनेति हि नः श्रुतम्
तस्मिन्निपतिते देवाः पुत्रेऽत्रेः परमात्मनि । तुष्टुवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सप्तविश्रुताः
तत्रैवाङ्गिरसस्तस्य भृगोश्चैवाऽऽत्मजास्तथा । ऋग्भिर्यजुर्भिर्बहुभिरथर्वाङ्गिरसैरपि
ततःसंस्तूयमानस्यतेजःसोमस्यभास्वतः । आप्यायमानंलोकांस्त्रीन्भावयामाससर्वशः
स तेन रथमुख्येन सागरान्तांवसुन्धराम् । त्रिःसप्तकृत्वोविपुलश्चकाराभिप्रदक्षिणम्

तस्य यच्चापि तत्तेजः पृथिवीमन्वपद्यत । ओषध्यस्ताःसमुद्भूतास्तेजसासंज्वलन्त्युत
ताभिर्धार्यत्ययं लोकान्प्रजाश्चापि चतुर्विधाः ।
पोष्टा हि भगवान्सोमो जगतो हि द्विजोत्तमाः ॥ १६ ॥
स लब्धतेजास्तपसा संस्तवैस्तैश्च कर्मभिः । तपस्तेपे महाभागः पद्मानां दशतीर्दश ।
हिरण्यवर्णा या देव्यो धारयन्त्यात्मना जगत् ।
विभुस्तासां भवेत्सोमः प्रख्यातः स्वेन कर्मणा ॥ १८ ॥
ततस्तस्मै ददौ राज्यंब्रह्माब्रह्मविदाम्वरः । बीजौषधिषुविप्राणामपाञ्चद्विजसत्तमाः ॥
सोऽभिषिक्तोमहातेजामहाराज्येनराजराट् । लोकानांभावयामासस्वभावात्तपताम्वरः
सप्तविंशतिरिन्द्रोस्तुदाक्षायण्यो महाव्रताः । ददौ प्राचेतसोदक्षोनक्षत्राणीतियाविदुः
स तत्प्राप्य महद्राज्यं सोमः सोमवताम्प्रभुः । समा जज्ञे राजसूयं सहस्रशतदक्षिणम्
हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्मा ब्रह्मत्वमेयिवान् । सदस्यस्तत्र भगवान्हरिर्नारायणः प्रभुः
सनत्कुमारप्रमुखैराद्यैर्ब्रह्मर्षिभिर्वृतः ॥ २३ ॥
दक्षिणामददत्सोमस्त्रींल्लोकानिति नः श्रुतम् ।
तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च वै द्विजाः ॥ २४ ॥
तं सिनी च कुहूश्चैववपुः पुष्टिः प्रभावसुः । कीर्तिर्धृतिश्चलक्ष्मीश्च नव देव्यः सिषेविरे
प्राप्यावभृथमव्यग्रः सर्वदेवर्षिपूजितः । अतिराजातिराजेन्द्रो दशधाऽतापयद्दिशः ॥
तदा तत्प्राप्य दुष्प्रापमैश्वर्यमृषिसंस्तुतम् । स विभ्रममतिर्विप्रा विनयोऽविनयाहतः
बृहस्पतेः स वै भार्यां तारांनाम यशस्विनीम् । जहारसहसासर्वानवमत्याङ्गिरःसुतान्
स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिश्च ह । नैव व्यसर्जयत्तारां तस्मायाङ्गिरसे तदा
उशना तस्य जग्राहपार्ष्णिमङ्गिरसो द्विजाः । स हि शिष्योमहातेजाःपितुःपूर्वंबृहस्पतेः
तेन स्नेहेन भगवान्रुद्रस्तस्य बृहस्पतेः । पार्ष्णिग्राहोऽभवद्देवः प्रगृह्याऽऽजगवं धनुः
तेन ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः परमास्त्रं महात्मना । उद्दिश्य देवानुत्सृष्टं येनैषां नाशितं यशः
तत्र तद्युद्धमभवत्प्रत्यक्षं तारकामयम् । देवानां दानवानाञ्च लोकक्षयकरं महत् ॥
तत्र शिष्टास्त्रयो देवास्तुषिताश्चैव ये स्मृताः । ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवंपितामहम्

ततो निवार्योशनसं रुद्रं ज्येष्ठश्च शङ्करम् । ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥

अन्तर्वत्नीश्च तां दृष्ट्वा तारां ताराधिपाननाम् ।
गर्भमुत्सृजसे न त्वं विप्रः प्राह वृहस्पतिः ॥ ३६ ॥

मदीयायां तनौ योनौगर्भोधार्यः कथञ्चन । अथो नाऽवसृजत्तन्तु कुमारंदस्युहन्तमम्
ईषिकास्तम्बमासाद्य ज्वलन्तमिव पावकम् । जातमात्रोऽथभगवान्देवानामाक्षिपद्वपुः
ततः संशयमापन्नास्तारामकथयन्सुराः । सत्यं ब्रूहि सुतः कस्यसोमस्याऽथवृहस्पतेः

ह्रीयमाणा यदादेवान्नाऽऽह सा साध्वसाधु वा ।
तदा तां शप्तुमारब्धः कुमारो दस्युहन्तमः ॥ ४० ॥

तं निवार्य तदा ब्रह्मा तारां चन्द्रस्य शंस यः । यदत्रतथ्यंतद्ब्रूहितारेकस्यसुतस्त्वयम्
सा प्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणं वरदं प्रभुम् । सोमस्येति महात्मानं कुमारं दस्युहन्तमम्
ततः सुतमुपाघ्राय सोमो दाता प्रजापतिः । बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्यधीमतः
प्रतिपूर्वश्च गमने समभ्युत्तिष्ठते बुधैः । उत्पादयामास तदा पुत्रं वै राजपुत्रिका ॥
तस्य पुत्रो महातेजा बभूवैलः पुरूरवाः । उर्वश्यां जज्ञिरे तस्य पुत्राः षट्सुमहौजसः
प्रसह्य धर्षितस्तत्र विवशो राजयक्ष्मणा । ततो यक्ष्माभिभूतस्तु सोमःप्रक्षीणमण्डलः

जगाम शरणायाऽथ पितरं सोऽत्रिमेव तु ॥ ४६ ॥

तस्य तत्पापशमनंचकाराऽत्रिर्महायशाः । स राजयक्ष्मणा मुक्तःश्रियाजज्वालसर्वशः
एतत्सोमस्य वै जन्म कीर्तितं द्विजसत्तमाः । वंशं तस्यद्विजश्रेष्ठाःकीर्त्यमानंनिबोधत
धन्यमारोग्यमायुष्यं पुण्यं कल्मषशोधनम् । सोमस्य जन्म श्रुत्वैवसर्वपापैःप्रमुच्यते

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे सोमोत्पत्तिकथनं
नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

एकनवतितमोऽध्यायः

चन्द्रवंशकीर्तनम्

सूत उवाच

सोमस्य तु बुधः पुत्रो बुधस्य तु पुरूरवाः । तेजस्वी दानशीलश्चयज्वाविपुलदक्षिण
ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्युधिदुर्जयः । आहर्ता चाऽग्निहोत्रस्ययज्वनाश्चददौमहीम
सत्यवाक्कर्मबुद्धिश्च कान्तः संवृतमैथुनः । अतीव पुत्रो लोकेषु रूपेणाऽप्रतिमोऽभवत
तं ब्रह्मवादिनं दान्तं धर्मज्ञं सत्यवादिनम् । उर्वशी वरयामास हित्वा मानंयशस्विनं

तया सहाऽवसद्राजा दश वर्षाणि चाऽष्ट च ।
सप्त षट् सप्त चाऽष्टौ च दश चाऽष्टौ च वीर्यवान् ॥ ५ ॥

वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे । अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे
गन्धमादनपादेषु मेरुशृङ्गे नगोत्तमे । उत्तरांश्च कुरून्प्राप्य कलापग्राममेव च ॥ ७
एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च । उर्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा ॥ ८

ऋषय ऊचुः

गन्धर्वी चोर्वशी देवी राजानं मानुषं कथम् । देवानुत्सृज्य सम्प्राप्तातन्नोब्रूहि बहुश्रु

सूत उवाच

ब्रह्मशापाभिभूता सा मानुषं समुपस्थिता । ऐलन्तु तं वरारोहा समयेन व्यवस्थि
आत्मनः शापमोक्षार्थं नियमं सा चकार तु । अनग्नदर्शनं चैव अकामात्सह मैथुन
द्वौ मेषौ शयनाभ्यासे स तावद्व्यवतिष्ठते । घृतमात्रं तथाऽऽहारः कालमेकन्तुपार्थि

यद्येष समयोराजन्यावत्कालश्च ते दृढम् ।
तावत्कालन्तु वत्स्यामि एष नः समयःकृतः ॥ १२ ॥

तस्यास्तं समयं सर्वं स राजा पर्यपालयत । एवंसाचावसत्तस्मिन्पुरूरवसिभामि
वर्षाण्यथ चतुःषष्टिं तद्भक्त्या शापमोहिता । उर्वशीमानुषंप्राप्तागन्धर्वाश्चिन्तयान्वित

गन्धर्वा ऊचुः

चिन्तयध्वं महाभागा यथा सा तु वराङ्गना । आगच्छेत्तु पुनर्देवानुर्वशी स्वर्गभूषणा
ततो विश्वावसुर्नाम तत्राऽऽह वदताम्वरः । तया तु समयस्तत्र क्रियमाणोमतोऽनघः

समयव्युत्क्रमात्सा वै राजानं त्यक्ष्यते यथा ।
तदहं वच्मि वः सर्वं यथा त्यक्ष्यति सा नृपम् ॥ १७ ॥

ससहायो गमिष्यामि युष्माकं कार्यसिद्धये । एवमुक्त्वा गतस्तत्र प्रतिष्ठानंमहायशाः
स निशायामथाऽऽगम्य मेषमेकं जहारवै । मातृवद्वर्तते सा तु मेषयोश्चारुहासिनी ॥
गन्धर्वागमनं ज्ञात्वा शयनस्था यशस्विनी । राजानमब्रवीत्सा तु पुत्रोमेऽह्रियतेतिवै
एवमुक्तो विनिश्चित्य नग्नस्तिष्ठति वै नृपः । नग्नं द्रक्ष्यति मां देवीसमयोवितथोभवेत्
ततो भूयस्तु गन्धर्वा द्वितीयं मेषमाददुः । द्वितीयेऽपहृते मेषे ऐलं देवी तमब्रवीत् ॥
पुत्रौ मम हृतौ राजन्ननाथाया इव प्रभो । एवमुक्तस्तदोत्थाय नग्नो राजा प्रधावितः
मेषाभ्यां पदवीं राजन्गन्धर्वैर्व्युत्थितामथ । उत्पादिता तु महती माया तद्भवनं महत्
प्रकाशितं तु सहसा ततोनग्नमवेक्ष्यसा । नग्नं दृष्ट्वा तिरोऽभूत्सा अप्सराकामरूपिणी
तिरोभूतांतुतांज्ञात्वागन्धर्वास्तत्रतावुभौ । मेषौत्यक्त्वाचतेसर्वे तत्रैवान्तर्हिताऽभवन्
उत्सृष्टावुरणौदृष्ट्वाराजाऽऽगृह्याऽऽगतःप्रभुः । अपश्यंस्तांतुवैराजाविललापसुदुखितः
चचार पृथिवीं चैव मार्गमाणस्ततस्ततः । भ्रममाणः सुदुःखेन विललाप जगत्पतिः
वनेषुसरितां कूलेष्वालयेषु महेषु च । विचचार गिरिष्वेको निर्झरोपवनेषु च ॥२९॥
खेटखर्वटवाटीषु नगरे नगरे तथा । पप्रच्छ सकलान्सत्वान्विषीदन्निदमब्रवीत् ॥३०
किंनपश्यसिरेमूढंमदमूढं विरुध्यमाम् । क्वगताऽसिवरारोहे भिक्ते(ङ्मे)जीवितमीदृशम्

अथाऽपश्यच्च तां राजा कुरुक्षेत्रे महाबलः ॥ ३१ ॥
प्लक्षतीर्थेपुष्करिण्यां विगाढेनाम्बुनाऽऽप्लुताम् ।
क्रीडन्तीमप्सरोभिश्च पञ्चभिः सह शोभनाम् ॥ ३२ ॥

अपश्यत्सा ततः सुभ्रू राजानमविदूरतः । उर्वशी ताः सखीः प्राह अयं स पुरुषोत्तमः
यस्मिन्नहमवासीति(?) दर्शयामासतंनृपम् । ततआविर्बभूवुस्ताःपञ्चचूडाप्सरास्तुताः

दृष्ट्वा तु राजा तांप्रीतःप्रलापान्कुरुतेबहून् । आयाहितिष्ठमनसाघोरे वचसि तिष्ठ हे ॥
एवमादीनि सूक्ष्माणि परस्परमभाषत । उर्वशी त्वब्रवीच्चैलं सगर्भाऽहं त्वया प्रभो
संवत्सरात्कुमारस्ते भविता नैव संशयः । निशामेकां तु वै राजा अवसत्तु तया सह
सम्प्रहृष्टो जगामाऽथ स्वपुरं तु महायशाः । गते संवत्सरे राजा उर्वशीं पुनरागमत्

उषित्वा तु तया सार्धमेकरात्रं महामनाः ।
कामार्तश्चाब्रवीद्दीनो भव नित्यं ममेति वै ॥ ३९ ॥

उर्वश्यथाऽब्रवीच्चैनं गन्धर्वास्ते वरं ददुः । तं वृणीष्व महाराजब्रूहिचैतांस्त्वमेवहि

वृणे नित्यं हि सालोक्यं गन्धर्वाणां महात्मनाम् ।
तथेत्युक्त्वा वरं वव्रे गन्धर्वाश्च तथाऽऽस्त्विति ॥ ४१ ॥

स्थालीमग्नेः पूरयित्वा गन्धर्वाश्चतमब्रुवन् । अनेन इष्ट्वालोकंतंप्राप्स्यसित्वंनराधिप
तमादाय कुमारं तु नगरायोपचक्रमे । निक्षिप्य तमरण्यां च सपुत्रस्तु गृहान्ययौ ।
पुनरादाय दृश्याग्निमश्वत्थं तत्र दृष्टवान् । समीपतस्तु तं दृष्ट्वा ह्यश्वत्थं तत्रविस्मितः
गन्धर्वेभ्यस्तथाऽऽख्यातुमग्निनागांगतस्तुसः । श्रुत्वातमर्थमखिलमरणिंतुसमादिशत्
अश्वत्थादरणिंकृत्वामथित्वाऽग्निंयथाविधि । तेनेष्ट्वातुसलोकंनःप्राप्स्यसित्वंनराधिप
मथित्वाऽग्निं त्रिधा कृत्वाह्ययजत्सनराधिपः । इष्टायज्ञैर्बहुविधैस्तस्तेषां सलोकताम्
वासाय च सगन्धर्वस्त्रेतायांसमहारथः । एकोऽग्निःपूर्वमासीद्वैऐलस्त्रीस्तानकल्पयत्
एवंप्रभावो राजाऽऽसीदैलस्तुद्विजसत्तमाः । देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरलङ्कृते
राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः । उत्तरे यामुने तीरे प्रतिष्ठाने महायशाः

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षडिन्द्रोपमतेजसः ।
गन्धर्वलोके विदिता आयुर्धीमानमावसुः ॥ ५१ ॥
विश्वायुश्च शतायुश्च गतायुश्चोर्वशीसुताः ।
अमावसोस्तु वै जातो भीमो राजाऽथ विश्वजित् ॥ ५२ ॥
श्रीमान्भीमस्य दायादो राजाऽऽसीत्काञ्चनप्रभः ।
विद्वांस्तु काञ्चनस्याऽपि सुहोत्रोऽऽभून्महाबलः ॥ ५३ ॥

सुहोत्रस्याऽभवज्जह्नुः कौशिकागर्भसम्भवः । प्रतिगत्य ततो गङ्गा वितते यज्ञकर्मणि
प्लावयामास तं देशं भाविनोऽर्थस्य दर्शनात् । गङ्गया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटंसमन्ततः
सौहोत्रिर्वरदः क्रुद्धो गङ्गां संरक्तलोचनः । अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि
एतत्ते विफलं सर्वं पीतमम्भः करोम्यहम् । राजर्षिणा ततः पीतां गङ्गां दृष्ट्वा सुरर्षयः
उपनिन्युर्महाभागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम् । यौवनाश्वस्य पौत्रींतुकावेरींजह्नुरावहत्
युवानाश्वस्य शापेन गङ्गायेन विनिर्ममे । कावेरीं सरितांश्रेष्ठांजह्नुभार्यामनिन्दिताम्
जह्नुश्चदयितंपुत्रंसुहोत्रंनामधार्मिकम् । कावेर्यांजनयामासअजकस्तस्यचाऽऽत्मजः

अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महायशाः ।
बभूवुश्च गयः शीलः कुशस्तस्याऽऽत्मजः स्मृतः ॥ ६१ ॥

कुशपुत्रा बभूवुश्च चत्वारो वेदवर्चसः । कुशाश्वः कुशनाभश्च अमूर्तारयशो वसुः ॥
कुशस्तम्बस्तपस्तेपे पुत्रार्थी राजसत्तमः । पूर्णे वर्षसहस्रे वै शतक्रतुमपश्यत ॥ ६३॥
सुदुर्गं तापसं दृष्ट्वा सहस्राक्षः पुरन्दरः । समर्थः पुत्रजनने स्वयमेवाऽस्य शाश्वतः ॥
पुत्रत्वं कल्पयामास स्वयमेव पुरन्दरः । गाधिर्नामाभवत्पुत्रः कौशिकः पाकशासनः
पौरुकुत्साऽभवद्भार्यागाधिस्तस्यामजायत। पूर्वकन्यांमहाभागांनाम्नासत्यवतींशुभाम्

तां गाधिः पुत्रः काव्याय रुचीकाय ददौ प्रभुः ॥ ६६ ॥

तस्यां पुत्रस्तु वै भर्ता भार्गवो भृगुनन्दनः । पुत्रार्थे साधयामासचरुं गाधेस्तथैवच
तथाचाऽऽहूयणिधृतिमृचीकोभार्गवस्तदा । उपयोज्यश्चरुरयंत्वया मात्रा च तं शुभे
तस्यां जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान्क्षत्त्रियर्षभः । अजेयः क्षत्त्रियैर्युद्धे क्षत्त्रियर्षभसूदनः
तवाऽपि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तंतपोधनम् । शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेषविधास्यति
एवमुक्त्वातुतांभार्यामृचीकोभृगुनन्दनः । तपस्याभिरतो नित्यनित्यमरण्यंप्रविवेशह
गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकाश्रममभ्यगात् । तीर्थयात्राप्रसङ्गेनसुतां द्रष्टुं नरेश्वरः॥
चरुद्वयं गृहीत्वा तु ऋषेःसत्यवती तदा । भर्तुर्वचनमव्यग्रा हृष्टामात्रे न्यवेदयत् ॥७२
मातातु तस्यै दैवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ । तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मनःसाचकार ह
अथ सत्यवती गर्भं क्षत्त्रियान्तकरं शुभम् । धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना

तमृचीकस्ततोदृष्ट्वायोगेनाऽप्यनुमृश्यच । तदाऽब्रवीद्द्विजश्रेष्ठः स्वांभार्यांवरवर्णिनीम्
मात्राऽसिवञ्चिताभद्रे!चरुवत्या सहेतुना । जनिष्यतिहि पुत्रस्ते क्रूरकर्माऽतिदारुणः
माता जनिष्यते वाऽपि तथाभूतं तपोधनम् । विश्वं हि ब्रह्मतपसामयातत्रसमर्पितम्
एवमुक्त्वा महाभाग! भर्त्रा सत्यवती तदा । प्रसादयामास पतिंसुतोमे नेदृशोभवेत्

ब्राह्मणापसदस्त्वन्य इत्युक्तो मुनिरब्रवीत् ॥ ७६ ॥

नैष सङ्कल्पितः कामो मया भद्रे तथा त्वया । उग्रकर्माभवेत्पुत्रःपितुर्मातुश्चकारणात्
पुनःसत्यवतीवाक्यमेवमुक्त्वाऽब्रवीदिदम् । इच्छँल्लोकानपिमुनेसृजेथाःकिंःपुनःसुतम्
शमात्मकमृजुं भर्तः पुत्रं मे दातुमर्हसि । काममेवंविधः पुत्रो मम स्यात्तु यद प्रभो
मय्यन्यथा न शक्यं वै कर्तुमेव द्विजोत्तम । ततः प्रसादमकरोत्सतस्यास्तपसोबलात्

पुत्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे वा वरवर्णिनि ।

त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रे ! भविष्यति ॥ ८४ ॥

तस्मात्सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम् । तपस्यभिरतं दान्तं जमदग्निं शमात्मकम्
भृगोश्चरुविपर्यासे रौद्रवैष्णवयोः पुरा । जननाद्वैष्णवस्याग्नेर्जमदग्निरजायत ॥८६
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः । प्राप्यब्रह्मर्षिसमतां जगाम ब्रह्मणा वृत
सा हि सत्यवती पुण्या सत्यव्रतपरायणा । कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेयंमहानदी
परिश्रुता महाभागा कौशिकी सरितां वरा । इक्ष्वाकुवंशे त्वभवत्सुवेणुर्नामपार्थिव
तस्य कन्या महाभागा कामलीनाम रेणुका । रेणुकायांतु कामल्यांतपोधृतिसमन्वित

आर्चीको जनयामास जमदग्निः सुदारुणम् ॥ ६० ॥

सर्वविद्यान्तगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् । रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम्
और्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्यां महामनाः । जमदग्निस्तपोवीर्याज्जज्ञे ब्रह्मविदां वरः

मध्यमश्च शुनःशेपः शुनःपुच्छः कनिष्ठकः ॥ ६२ ॥

विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथःस्मृतः । जज्ञेभृगुप्रसादेनकौशिकाद्वंशवर्धनः
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेपोऽभवन्मुनिः । हरिश्चन्द्रस्ययज्ञेतु पशुत्वे नियतः स
देवैर्दत्तः शुनःशेपो विश्वामित्राय वै पुनः । देवैर्दत्तः स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभव

विश्वामित्रस्य पुत्राणां शुनःशेपोऽग्रजः स्मृतः । मधुच्छन्दोनयश्चैवकृतदेवौध्रुवाष्टकौ
कच्छपः पूरणश्चैव विश्वामित्रसुतास्तु वै ।
तेषां गोत्राणि वहुधा कौशिकानां महात्मनाम् ॥ ९७ ॥
पार्थिवा देवरातश्च याज्ञवल्क्याः समर्षणाः । उदुम्बराउदुम्लानास्तारका यममुञ्चताः
लोहिण्या रैणवश्चैव तथा कारीषवःस्मृताः । वभ्रवः पाणिनश्चैव ध्यानजप्यास्तथैवच
शालावत्या हिरण्याक्षा स्यङ्कृता गालवाः स्मृताः ।
देवला यामदूताश्च सालङ्कायनवाष्कलाः ॥ १०० ॥
ददातिबादराश्चान्येविश्वामित्रस्यधीमतः । ऋष्यन्तरविवाह्यास्तेवहवःकौशिकाःस्मृताः
कौशिकाः सौश्रुताश्चैवतथाऽन्येसैंधवायनाः । पौरोरवस्यपुण्यस्यब्रह्मर्षेःकौशिकस्यतु
दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रात्तथाष्टकः । अष्टकस्य सुतोयोहि प्रोक्तो जह्नुगणो मया

ऋषय ऊचुः

किं लक्षणेन धर्मेण तपसेह श्रुतेन वा । ब्राह्मण्यं समनुप्राप्तं विश्वामित्रादिभिर्नृपैः ॥
येन येनाऽभिधानेन ब्राह्मण्यंक्षत्रियागताः । विशेषं ज्ञातुमिच्छामस्तपसादानतस्तथा
एवमुक्तस्ततो वाक्यमब्रवीदिदमर्थवत् । अन्यायोपगतैर्द्रव्यैराहूय द्विजसत्तमान् ॥
धर्माभिकाङ्क्षी यजते न धर्मफलमश्नुते ॥ १०६ ॥
धर्मं चैतं समाख्यायपापात्मापुरुषाधमः । ददाति दानंविप्रेभ्योलोकानांदम्भकारणात्
जपं कृत्वा तथा तीव्रं धनलोभान्निरङ्कुशः । रागमोहान्वितोह्यन्ते पावनार्थं ददाति यः
तेन दत्तानि दानानि अफलानि भवन्त्युत । तस्य धर्मप्रवृत्तस्य हिंसकस्य दुरात्मनः
एवं लब्ध्वा धनं मोहाद्ददतो यजतश्च ह । संक्लिष्टकर्मणो दानं न तिष्ठति दुरात्मनः ॥
न्यायागतानां द्रव्याणां तीर्थे सम्प्रतिपादनम् । कामाननभिसन्धाययजतेचददाति च
स दानफलमाप्नोति तच्च दानं सुखोदयम् । दानेन भोगानाप्नोतिस्वर्गं सत्येनगच्छति
तपसा तु सुगुप्तेन लोकान्विष्टभ्य तिष्ठति । विष्टभ्यसतुतेजस्वी लोकेष्वानन्त्यमश्नुते
दानाच्छ्रेयस्तथा यज्ञो यज्ञाच्छ्रेयस्तथा तपः ।
संन्यासस्तपसः श्रेयांस्तस्माज्ज्ञानं गुरु स्मृतम् ॥ ११४ ॥

श्रूयन्तेहितपःसिद्धाःक्षात्त्रोपेताद्विजातयः। विश्वामित्त्रोनरपतिर्मान्धातासंकृतिःकपिः
कपेश्च पुरुकुत्सश्च सत्यश्चानृहवानृथुः। आर्ष्टिषेणोऽजमीढश्च भागान्योऽन्यस्तथैवच
कक्षीवश्चैव शिंजयस्तथाऽन्ये च महारथाः। रथीतरश्च रुन्दश्च विष्णुवृद्धादयो नृपाः
क्षात्त्रोपेताः स्मृता ह्येते तपसा ऋषितां गताः। एतेराजर्षयःसर्वेसिद्धिंसुमहतीं गताः
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि अयोर्वंशं महात्मनः ॥ ११८ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे असावसुवंशानुकीर्तनं नाम एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

चन्द्रवंशकीर्तनम्

सूत उवाच

एते पुत्रा महात्मनः पञ्चैवाऽऽसन्महाबलाः। स्वर्भानुतनयाविप्राःप्रभायांजज्ञिरेनृपाः
नहुषः प्रथमस्तेषां पुत्रधर्मा ततः स्मृतः। धर्मवृद्धात्मजश्चैव सुतहोत्रो महायशाः।
सुतहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः। काशः शलश्च द्वावेतौ तथागृत्समदः प्रभुः
पुत्रो गृत्समदस्याऽपि शुनको यस्य शौनकः।
ब्राह्मणाः क्षत्त्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च ॥ ४ ॥
एतस्य वंशे सम्भूता विचित्रैः कर्मभिर्द्विजाः।
शलात्मजो ह्यार्ष्टिषेणश्चरन्तस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ ५ ॥
शौनकाश्चाऽऽर्ष्टिषेणाश्चक्षात्त्रोपेताद्विजातयः।काशस्यकाशयोराष्ट्रःपुत्रोदीर्घतपास्तथा
धर्मश्च दीर्घतपसो विद्वान्धन्वन्तरिस्ततः। तपसा सुमहातेजा जातो वृद्धस्य धीमतः
अथैनमृषयः प्रोचुः सूतं वाक्यमिमं पुनः ॥ ७ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान् । एतद्वेदितुमिच्छामस्ततो ब्रूहि प्रियं तथा

सूत उवाच

धन्वन्तरेः सम्भवोऽयं श्रूयतामिह वै द्विजाः । स सम्भूतःसमुद्रान्तेमथ्यमानेऽमृतेपुरा

उत्पन्नः सकलात्पूर्वं सर्वतश्च श्रियावृतः । सर्वसंसिद्धकार्यं तं दृष्ट्वा विष्टम्भतःस्थितः

अजस्त्वमिति होवाच तस्मादजस्तु स स्मृतः ॥ १० ॥

अजःप्रोवाचविष्णुं तं तनयोऽस्मितवप्रभो । विधत्स्वभागंस्थानञ्चममलोके सुरोत्तम

एवमुक्तः स दृष्ट्वा तु तथ्यं प्रोवाच स प्रभुः । कृतो यज्ञविभागस्तु यज्ञियैर्हिसुरैस्तथा

वेदेषु विधियुक्तश्च विधिहोत्रं महर्षिभिः ।

न शक्यमि(इ)ह होमो वै तुल्यं(ल्यः) कर्तुं कदाचन ॥ १३ ॥

अर्वाक्सुतोऽसि हे देव नाममन्त्रोऽसि वै प्रभो ।

द्वितीयायान्तु सम्भूत्यां लोके ख्यातिं गमिष्यसि ॥ १४ ॥

अणिमादियुतासिद्धिर्गर्भस्थस्य भविष्यति । तेनैव च शरीरेण देवत्वंप्राप्स्यसिप्रभो

चरुमन्त्रैर्घृतैर्गन्धैर्यक्ष्यन्ति त्वां द्विजातयः ॥ १५ ॥

अथचत्वंपुनश्चैवआयुर्वेदंविधास्यसि । अवश्यम्भावीह्यर्थोऽयंप्राक्सृष्टस्त्वब्जयोनिना

द्वितीयं द्वापरं प्राप्यभविता त्वं न संशयः । तस्मात्तस्मै वरं दत्त्वाविष्णुरन्तर्दधेततः

द्वितीये द्वापरे प्राप्ते सौनहोत्रः प्रकाशिराट् । पुत्रकामस्तपस्तेपे नृपो दीर्घतपास्तथा

अजं देवन्तु पुत्रार्थे ह्यारिराधयिषुर्नृपः । वरेण च्छन्दयामास प्रीतो धन्वन्तरिर्नृपम् ॥

नृप उवाच

भगवन्यदि तुष्टस्त्वं पुत्रो मे धृतिमान्भव । तथेति समनुज्ञाय तत्रैवाऽन्तरधीयत॥२०

तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा । काशिराजो महाराजः सर्वरोगप्रणाशनः

आयुर्वेदं भरद्वाजश्चकार सभिषक्क्रियम् । तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत्

धन्वन्तरिसुतश्चाऽपि केतुमानिति विश्रुतः । अथ केतुमतः पुत्रो विभो भीमरथो नृपः

दिवोदास इति ख्यातो वाराणस्यधिपोऽभवत् ॥ २३ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं पुरा । शून्यां विवेशयामास क्षेमको नामराक्षसः
शप्ता हि सा पुरी पूर्वं निकुम्भेन महात्मना । शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्रीतिपुनः पुनः
तस्यान्तु शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः । विषयान्तेपुरींरम्यांगोमत्यांसंन्यवेशयत्

ऋषय ऊचुः

वाराणसीं किमर्थंतांनिकुम्भःशप्तवान्पुरा । निकुम्भश्चाऽपिधर्मात्मासिद्धक्षेत्रंशशापयः

सूत उवाच

दिवोदासस्तुराजर्षिर्नगरींप्राप्य पार्थिवः । वसते स महातेजाःस्फीतायांवैनराधिपः
एतस्मिन्नेव काले तु कृतदारो महेश्वरः । देव्याः स प्रियकामस्तु वसानःश्वशुरान्तिके
देवाज्ञया पारिषदा विश्वरूपास्तपोधनाः । पूर्वोक्तै रूपविशेषैस्तोषयन्ति महेश्वरीम् ॥
हृष्यति तैर्महादेवो मेना नैव तु हृष्यति । जुगुप्सते सा नित्यञ्च देवं देवीं तथैव च
मम पार्श्वे त्वनाचारस्तव भर्ता महेश्वरः । दरिद्रः सर्व एवेह अक्लिष्टं लडतेऽनघे ॥

मात्रा तथोक्ता वचसा स्त्रीस्वभावान्नचाक्षमत् ।
स्मितं कृत्वा तु वरदा हयपार्श्वमथागमत् ॥ ३३ ॥

विषण्णवदना देवी महादेवमभाषत । नेह वत्स्याम्यहं देव नय मां स्वं निवेशनम् ॥
तथोक्तस्तुमहादेवःसर्वाँल्लोकानवेक्ष्य ह । वासार्थंरोचयामासपृथिव्यान्तुद्विजोत्तमाः ॥

वाराणसीं महातेजाः सिद्धक्षेत्रं महेश्वरः ॥ ३५ ॥

दिवोदासेन तां ज्ञात्वा निविष्टांनगरींभवः । पार्श्वस्थं स समाहूयगणेशंक्षेमकंब्रवीत्
गणेश्वर पुरीं गत्वा शून्यां वाराणसीं कुरु । मृदुना चाभ्युपायेन अतिवीर्यःसपार्थिवः
ततो गत्वा निकुम्भस्तु पुरींवाराणसीं पुरा । स्वप्नेसन्दर्शयामासमङ्कनंनामनापितम्
श्रेयस्तेऽहं करिष्यामि स्थानंमे रोचयाऽनघ । मद्रूपां प्रतिमां कृत्वा नगर्यन्ते निवेशय
तथा स्वप्ने यथादृष्टंसर्वंकारितवान्द्विजाः । नगरीद्वार्यनुज्ञाप्यराजानन्तु यथाविधि॥
पूजा तु महती चैव नित्यमेव प्रयुज्यते । गन्धैर्धूपैश्च माल्यैश्च प्रेक्षणीयैस्तथैव च ॥
अन्नप्रदानयुक्तैश्च अत्यद्भुतमिवाऽभवत् । एवं संपूज्यते तत्र नित्यमेव गणेश्वरः ॥४२॥
ततो वरसहस्राणि नगराणां प्रयच्छति । पुत्रान्हिरण्यमायूंषि सर्वकामांस्तथैव च ॥

राज्ञस्तु महिषी श्रेष्ठा सुयशा नाम विश्रुता ।
पुत्रार्थमागता साध्वी राज्ञा देवी प्रचोदिता ॥ ४४ ॥

पूजान्तु विपुलां कृत्वा देवी पुत्रानयाचत । पुनः पुनरथाऽऽगम्य बहुशः पुत्रकारणात्
न प्रयच्छति पुत्रांस्तु निकुम्भः कारणेन तु । राजा यदि तु क्रुध्येतततःकिञ्चित्प्रवर्तते
अथ दीर्घेण कालेन क्रोधो राजानमाविशत् । भूतं त्विदंमहाद्वारिनागराणांप्रयच्छति
प्रीत्या वरांश्च शतशो न किञ्चिन्न प्रयच्छति । मामकैः पूज्यते नित्यं नगर्यांममचैवतु
तत्रार्चितश्च बहुशो देव्या मे तत्र कारणात् । न ददाति च पुत्रं मे कृतघ्नो बहुभोजनः
अतो नार्हतिपूजान्तुमत्सकाशात्कथञ्चन । तस्मात्तुनाशयिष्यामितस्यस्थानंदुरात्मनः
एवं तुसविनिश्चित्यदुरात्माराजकिल्बिषी । स्थानंगणपतेस्तस्यनाशयामासदुर्मतिः ॥
भग्नमायतनं दृष्ट्वा राजानमगमत्प्रभुः । यस्मादनपराधं मे त्वया स्थानं विनाशितम् ॥
अकस्मात्तु पुरी शून्या भवित्री ते नराधिप । ततस्तेन तु शापेनशून्यावाराणसीतदा॥
शप्त्वा पुरीं निकुम्भस्तु महादेवमथानयत् । शून्यां पुरीं महादेवो निर्ममे परमात्मना
तुल्यां देवविभूत्यास्तु देव्याश्चैव महात्मनः । रमते तत्र वै देवी रममाणो महेश्वरः ॥

न रतिं तत्र वै देवी लभते गृहविस्मयात् ।
देव्याः क्रीडार्थमीशानो देवो वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥ ५६ ॥

नाहं वेश्म विमोक्ष्यामि अविमुक्तं हि मे गृहम् । प्रहस्यैनामथोवाचअविमुक्तंहिमेगृहम्
नाहं देविगमिष्यामिगच्छस्वेह वसाम्यहम् । तस्मात्तदविमुक्तं हि प्रोक्तंदेवेनवैस्वयम्
एवं वाराणसी शप्ता अविमुक्तश्च कीर्तितम् । यस्मिन्वसति वै देवः सर्वदेवनमस्कृतः

युगेषु त्रिषु धर्मात्मा सह देव्या महेश्वरः ॥ ५६ ॥

अन्तर्धानं कलौ याति तत्पुरन्तु महात्मनः । अन्तर्हिते पुरे तस्मिन्पुरी सा वसतेपुनः
एवं वाराणसी शप्ता निवेशं पुनरागता । भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्
हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिपः । भद्रश्रेण्यस्य राज्यन्तु हृतं तेनबलीयसा
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम नामतः । दिवोदासेन बालेति घृणया स विवर्जितः
दिवोदासाद्दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः । तेन पुत्रेण बालेन प्रहृतं तस्य वै पुनः॥६४॥

वैरस्यान्तं महाराज्ञा तदा तेन विधित्सता । प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सोगर्गश्चविश्रुतः
वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु संनतिस्तस्यचाऽऽत्मजः । अलर्कंप्रतिराजर्षिगीतश्लोकौपुरातनौ
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च । युवा रूपेण सम्पन्नो ह्यलर्कः काशिसत्तमः ॥
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप्तवान् ॥ ६७ ॥
शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम् । रम्यामावासयामास पुरींवाराणसींनृपः
संनतेरपि दायादः सुनीथोनाम धार्मिकः । सुनीथस्य तु दायादः सुकेतुर्नामधार्मिकः
सुकेतुतनयश्चापि धर्मकेतुरिति श्रुतिः । धर्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः ॥
सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः । सुविभुस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारस्ततः स्मृतः
सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः स धार्मिकः । धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः
वेणुहोत्रसुतश्चापिगार्ग्योवैनामविश्रुतः । गार्ग्यस्यगर्भभूमिस्तु वात्स्योवत्सस्यधीमतः
ब्राह्मणाः क्षत्त्रियाश्चैव तयोः पुत्राः सुधार्मिकाः ।
विक्रान्ता बलवन्तश्च सिंहतुल्यपराक्रमाः ॥ ७४ ॥
इत्येते काश(श्य)पाः प्रोक्ता रजेरपि निबोधत । रजेःपुत्रशतान्यासन्पञ्चवीर्यवतोभुवि
रजेयमिति विख्यातं क्षत्त्रमिन्द्रभयावहम् ॥ ७५ ॥
तदा दैवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे । देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाब्रुवन् ॥७६॥
आवयोर्भगवन्युद्धे विजेता को भविष्यति । ब्रूहि नः सर्वलोकेशश्रोतुमिच्छामहेवयम्

ब्रह्मोवाच

येषामर्थाय सङ्ग्रामेरजिरात्तायुधः प्रभुः । योत्स्यतेतेविजेष्यन्तित्रींल्लोकान्नात्रसंशयः
रजिर्यतस्ततो लक्ष्मीर्यतोलक्ष्मीस्ततो धृतिः । यतो धृतिस्ततोधर्मोयतोधर्मस्ततोजयः
तद्देवा दानवाः सर्वे ततः श्रुत्वा रजेर्जयम् । अभ्ययुर्जयमिच्छन्तःस्तुवन्तोराजसत्तमम्
ते हृष्टमनसः सर्वे राजानं देवदानवाः । ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्मकम् ॥

रजिरुवाच

अहं जेष्यामि वो युद्धे देवाञ्शक्रपुरोगमान् ।
इन्द्रो भवामि धर्मात्मा ततो योत्स्यामि संयुगे ॥ ८२ ॥

दानवा ऊचुः

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादस्तस्यार्थे विजयामहे । अस्मिंस्तु समयेराजंस्तिष्ठेथादेवनोदिते
स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यभिचोदितः । भविष्यसीन्द्रो जित्वेति देवैरपि निमन्त्रितः
जघान दानवान्सर्वान्समक्षं वज्रपाणिनः । स विप्रनष्टां देवानां परमश्रीः श्रियं वशी
निहत्य दानवान्सर्वानाजहार रजिः प्रभुः । तं तथा तु रजिं तत्र देवैः सह शतक्रतुः
रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाऽब्रवीद्वचः । इन्द्रोऽसिराजन्देवानांसर्वेषांनात्रसंशयः
यस्याहमिन्द्र! पुत्रस्ते ख्यातिं यास्यामि शत्रुहन् ॥ ८७ ॥
स तु शक्रवचः श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया । तथेत्येवाब्रवीद्राजाप्रीयमाणः शतक्रतुम्
तस्मिंस्तु देवसदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ । दायाद्यमिन्द्रादाजह्रुराचारं तनया रजेः ॥
तानि पुत्रशतान्यस्य तच्च स्थानं शचीपतेः । समक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकंत्रिविष्टपम्
ततः काले बहुतिथे समतीते महाबलः । हृतराज्योऽब्रवीच्छक्रो हृतभागो बृहस्पतिम्
बदरीफलमात्रं वै पुरोडाशं विधत्स्व मे । ब्रह्मर्षे येन तिष्ठेयंतेजसाऽऽप्यायितस्ततः॥
ब्रह्मन्कृशोऽयं विमना हृतराज्यो हृताशनः । हतौजा दुर्बलो मूढो रजिपुत्रैः प्रसीद मे

बृहस्पतिरुवाच

यद्येवं चोदितः शक्र त्वया स्यां पूर्वमेव हि । नाभविष्यत्त्वत्प्रियार्थंनाकर्तव्यंममानघ
प्रयतिष्यामि देवेन्द्र त्वद्धितार्थं महाद्युते । यथा भागश्च राज्यञ्चअचिरात्प्रतिपत्स्यसे
तथा शक्र गमिष्यामि मा भूत्ते विक्लवंमनः । ततः कर्म चकाराऽस्यतेजःसम्वर्धनंमहत्
तेषाञ्च बुद्धिसम्मोहमकरोद्बुद्धिसत्तमः । ते यदा ससुता मूढा रागोन्मत्ताविधर्मिणः
ब्रह्मद्विषश्च सम्वृत्ता हतवीर्यपराक्रमाः । ततोलेभे सुरैश्वर्यमैन्द्रस्थानं तथोत्तमम् ॥
हत्वा रजिसुतान्सर्वान्कामक्रोधपरायणान् । य इदं पावनं स्थानं प्रतिष्ठानंशतक्रतोः
श्रृणुयाद्वा रजेर्वाऽपि न स दौरात्म्यमाप्नुयात् ॥ ९९ ॥
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे रजियुद्धं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

ययातिचरित्रे पञ्चभिःपुत्रैःसह स्वस्वयौवनप्रदानकृते वार्त्ता कनीयसापुरुणा स्वयौवनप्रदानंनाहुषययातेरात्मबोधःपुरुं राज्येऽभिषिच्यभृगुतुङ्गे-तपःकरणाय गमनम्

ऋषय ऊचुः

मरुत्तेन कथं कन्या राज्ञे दत्ता महात्मना । किंवीर्याश्चमहात्मानोजातामरुत्त कन्यकाः

सूत उवाच

आहवन्तं मरुत्सोममन्नकामः प्रजेश्वरम् । मासि मासि महातेजाः षष्टिसंवत्सरान्नृपः
तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तोषिताः । अक्षय्यान्नं ददुः प्रीताः सर्वकामपरिच्छदम्
अन्नं तस्य सकृत्पक्कमहोरात्रे न क्षीयते । कोटिशो दीयमानञ्च सूर्यस्योदयनादपि ॥
मित्रज्योतिस्तुकन्यायांमरुत्तस्यचधीमतः । तस्माज्जातामहासत्त्वाधर्मज्ञामोक्षदर्शिनः
संन्यस्य गृहधर्माणि वैराग्यं समुपस्थिताः । यतिधर्मवाप्येह ब्रह्मभूयाय ते गताः॥६॥
अनपायस्ततो जातस्तदा धर्मप्रदत्तवान् । क्षत्त्रधर्मस्ततो जातः प्रतिपक्षो महातपाः
प्रतिपक्षसुतश्चाऽपि सञ्जयो नाम विश्रुतः । सञ्जयस्यजयःपुत्रोविजयस्तस्यजग्मिवान
विजयस्य जयः पुत्रस्तस्य हर्यद्वतः स्मृतः । हर्यद्वतस्ततो राजा सहदेवः प्रतापवान् ॥
सहदेवस्य धर्मात्मा अदीन इति विश्रुतः । अदीनस्य जयत्सेनस्तस्य पुत्रोऽथ संकृतिः
संकृतेरपि धर्मात्मा कृतधर्मा महायशाः । इत्येते क्षत्त्रधर्माणो नहुषस्य निबोधत ॥
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमेजसः । उत्पन्नाः पितृकन्यायांविरजायां महौजसः

यतिर्ययातिः संयातिरायातिः पञ्च तु द्वयः (?)
यतिर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै ययातिस्तु ततोऽवरः ॥ १३ ॥

काकुत्स्थकन्यांगांनामलेभेपत्नींयतिस्तदा । संयातिर्मोक्षमास्थायब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः
तेषां मध्ये तु पञ्चानां ययातिः पृथिवीपतिः । देवयानीमुशनसःसुतां भार्यामवाप ह
शर्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः । यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ॥ १६
द्रुह्यं चानुं च पुरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी । अजीजन्महावीर्यान्सुतान्देवसुतोपमान्

रथंतस्मै ददौ रुद्रः प्रीतः परमभास्वरम् । असङ्गं काञ्चनं दिव्यमक्षयौ च महेषुधी
युक्तं मनोजवैरश्वैर्येन कन्यां समुद्वहन् । स तेन रथमुख्येन जिगाय च ततो महीम् ॥
ययातिर्युधि दुर्धर्षो देवदानवमानवैः । पौरवणां नृपाणां च सर्वेषां सोऽभवद्रथः ॥
यावत्सुदेशप्रभवः कौरवो जनमेजयः । कुरोः पुत्रस्य राज्ञस्तु राज्ञः पारिक्षितस्य ह

जगाम स रथो नाशं शापाद्गर्ग्यस्य धीमतः ॥ २१ ॥

गार्ग्यस्य हि सुतंबालः स राजा जनमेजयः । दुर्बुद्धिर्हिंसयामास लोहगन्धंनराधिपम्
स लोहगन्धो राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः । पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभेशर्मकर्हिचित्
ततः स दुःखसन्तप्तो नालभत्सम्विदंकचित् । शशापहेतुकमृषिं शरण्यं व्यथितस्तदा
इन्द्रोतोनामविख्यातोयोऽसौमुनिरुदारधीः । याजयामासचेन्द्रोतःशौनकोजनमेजयम्

अश्वमेधेनराजानं पावनार्थं द्विजोत्तमः ॥ २५ ॥

स लोहगन्धोव्यनशत्तस्याऽऽवसथमेत्य ह । सचदिव्योरथस्तस्माद्वसोश्चेदिपतेस्तथा
ततः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः । ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम्

प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ॥ २७ ॥

स जरां प्राप्य राजर्षिर्ययातिर्नहुषात्मजः । पुत्रं ज्येष्ठं वरिष्ठं च यदुमित्यब्रवीद्वचः
जरावली च मां तात पलितानिचपर्यगुः । काव्यस्योशनसःशापान्नचतृप्तोऽस्मियौवने
त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह । जरां मे प्रतिगृह्णीष्व तं यदुः प्रत्युवाच ह

अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता ।
सा च व्यायामसाध्या वै न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥ ३१ ॥

जराया बहवो दोषा यानभोजनकारिणः । तस्माज्जरां न ते राजन्ग्रहीतुमहमुत्सहे
सितश्मश्रुधरो दीनो जरया शिथिलीकृतः । वलीसंततगात्रश्च दुर्दर्शो दुर्बलाकृतिः ॥
अशक्तः कार्यकरणे परिभूतस्तु यौवने । महोपभीतिभिश्चैव तां जरां नाभिकामये
सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप । प्रतिगृह्णन्तु धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥
स एवमुक्तो यदुना तीव्रकोपसमन्वितः । उवाच वदतां श्रेष्ठो ज्येष्ठं तं गर्हयन्सुतम्

आश्रमः कश्च वान्योऽस्ति को वा धर्मविधिस्तव ।

मामनादृत्य दुर्बुद्धे ! यदात्थ नवदेशिक ! ॥ ३७ ॥

एवमुक्त्वा यदुं राजा शशापैनंस मन्युमान् । यस्त्वं मे हृदयाज्जातोततःस्वंनप्रयच्छसि तस्मान्न राज्यभाग्मूढ प्रजा ते वै भविष्यति । तुर्वसो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरयासह यौवनेन चरेयं वै विषयांस्तव पुत्रक । पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम् ॥

स्वं चैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ॥ ४० ॥

तुर्वसुरुवाच

नकामये जरां तात कामभोगप्रणाशिनीम् । जराया बहवो दोषाःपानभोजनकारिणः

तस्माज्जरां न ते राजन्ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥ ४१ ॥

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयःस्वंनप्रयच्छसि । तस्मात्प्रजासमुच्छेदंतुर्वसोतवयास्यति असंकीर्णा च धर्मेण प्रतिलोभवरेषु च । पिशिताशिषु चान्येषु मूढ राजाभविष्यसि गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिगतेषु वा । पशुधर्मेषु म्लेच्छेषु भविष्यसि न संशयः ॥

सूत उवाच

एवं तु तुर्वसुं शप्त्वा ययातिः सुतमात्मनः । शर्मिष्ठायाः सुतं द्रुह्यमिदं वचनमब्रवीत् द्रुह्य त्वं प्रतिपद्यस्व वर्णरूपविनाशिनीम् । जरां वर्षसहस्रं वै योवनं स्वं ददस्व मे पूर्णे वर्षसहस्रेतेप्रतिदास्यामियौवनम् । स्वंचाऽऽदास्यामिभूयोऽहंपाप्मानंजरयासह

द्रुह्य उवाच

न गजं न रथं नाश्वं जीर्णो भुङ्क्ते न चस्त्रियम् । नसङ्गश्चास्यभवतिनजरां तेनकामये

ययातिरुवाच

यस्त्वंमेहृदयाज्जातोवय.स्वंनप्रयच्छसि । तस्माद्द्रुह्य प्रियःकामोनतेसंपत्स्यतेक्वचित् नौप्लवोत्तरसंचारस्तत्र नित्यं भविष्यति । अराजभ्राजवंशस्त्वं तत्रनित्यंभविष्यसि अनो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह । एवं वर्षसहस्रं तु चरेयं यौवनेन ते ॥५१

अनुरुवाच

जीर्णः शिशुरहं तात जरया ह्यशुचिः सदा । न भजामि महाराज तां जरांनाभिकामये

ययातिरुवाच

यस्त्वं मेहृदयाज्जातोवयःस्वंनप्रयच्छसि । जरादोषस्त्वयोक्तोऽयंतस्मात्तेप्रतिपत्स्यते
प्रजा च यौवनं प्राप्ता विनशिष्यत्यतस्तव । अग्निप्रस्कन्दनपरस्त्वंचाप्येवभविष्यसि
पुरो त्वंप्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह । जरावली च मां तात पलितानि च पर्यगुः
काव्यस्योशनसः शापान्नच तृप्तोऽस्मियौवने । कञ्चित्कालंचरेयंवैविषयान्वयसा तव
पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम् । स्वं चैव प्रतिपत्स्यामिपाप्मानंजरयासह

सूतवाच

एवमुक्तः प्रत्युवाच पुत्रः पितरमञ्जसा । यथाऽनुमन्यसे तात करिष्यामि तथैव च
प्रतिपश्यामि ते राजन्पाप्मानं जरया सह । गृहाणयौवनंमत्तश्चरकामान्यथेप्सितान्
जरयाऽहं प्रतिच्छन्नो वयोरूपधरस्तव । यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि यथार्थवत्

ययातिरुवाच

पुरो प्रीतोऽस्मि भद्रं ते प्रीतश्चेदं ददामि ते । सर्वकामसमृद्धातेप्रजाराज्येभविष्यति

सूत उवाच

पुरोरनुमतो राजाययातिः स्वां जरां ततः । संक्रामयामास तदा प्रसादाद्भार्गवस्य तु
यौवनेनाऽथ वयसा ययातिर्नहुषात्मजः । प्रीतियुक्तो नरश्रेष्ठश्चचारविषयान्स्वकान
यथाकामं यथोत्साहंयथाकालंयथासुखम् । धर्माविरोधाद्राजेन्द्रोयथाऽर्हतिसएवहि
देवानतर्पयद्यज्ञैः पितॄञ्श्राद्धैस्तथैव च । दीनांश्चानुग्रहैरिष्टैः कामैश्चद्विजसत्तमान् ॥
अतिथीनन्नपानैश्च वैश्यांश्च परिपालनैः । आनृशंस्येन शूद्रांश्च दस्यून्संनिग्रहेण च॥
धर्मेण च प्रजाः सर्वा यथावदनुरञ्जयन् । ययातिः पालयामास साक्षादिन्द्र इवाऽपरः
स राजा सिंहविक्रान्तो युवाविषयगोचरः । अविरोधेन धर्मस्य चचार सुखमुत्तमम्
स मार्गमाणः कामानामन्तदोषनिदर्शनात् । विश्वाच्या सहितो रेमे वैभ्राजे नन्दनेवने
अपश्यत्स यदा तां वै वर्धमानांनृपस्तदा । गत्वा पुरोः सकाशं वै स्वं जरां प्रत्यपद्यत
स संप्राप्य तु तान्कामांस्तृप्तः खिन्नश्चपार्थिवः । कालंवर्षसहस्रंवैसस्मारमनुजाधिपः
परिसंख्याय कालं च कलाकाष्ठास्तथैव च । पूर्णं मत्वा ततः कालं पुरुं पुत्रमुवाचह

यथासुखं यथोत्साहं यथाकालमरिन्दम !। सेविता विषयाः पुत्र ! यौवनेन मया तव
पुरो! प्रीतोऽस्मि भद्रं ते गृहाण त्वं स्वयौवनम् ।
राज्यं च त्वं गृहाणेदं त्वं हि मे प्रियकृत्सुतः ॥ ७४ ॥
प्रतिपेदे जरां राजा ययातिर्नहुषात्मजः । यौवनं प्रतिपेदे च पुरुः स्वं पुनरात्मनः॥७५
अभिषेक्तुकामं च नृपं पुरुं पुत्रं कनीयसम् । ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन्॥
कथं शुक्रस्य नप्तारं देवयान्याः सुतं प्रभो । श्रेष्ठं यदुमतिक्रम्य पुरो राज्यंप्रदास्यसि
यदुर्ज्येष्ठस्तव सुतो जातस्तमनु तुर्वसुः । शर्मिष्ठाया सुतो द्रुह्यस्ततोऽनुः पुरुरेव च
कथं ज्येष्ठानतिक्रम्य कनीयान्राज्यमर्हति । धर्मतो बोधयामि त्वां धर्मं समनुपालय

ययातिरुवाच

ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे श्रृण्वन्तु मे वचः । ज्येष्ठं प्रति यथा राज्यं नदेयंमेकथञ्चन
मातापित्रोर्वचनकृद्धितपुत्रः प्रशस्यते । मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः ॥
प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः । स पुत्रः पुत्रवद्यश्च वर्तते पितृमातृषु॥८२॥
यदुनाऽहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनाऽपिच । द्रुह्येण चानुना चैवमप्यवज्ञा कृता भृशम्
पुरुणा तु कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः । कनीयान्मम दायादो जरा येन धृता मम
सर्वकामः सर्वकृतः पुरुणा पुत्रकारिणा ॥ ८४ ॥
शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम् । पुत्रो यस्त्वाऽनुवर्तेतसराजातेमहामते
भवतोऽनुमतोऽप्येवंपुरूराज्येऽभिषिच्यताम् । यःपुत्रोगुणसंपन्नोमातापित्रोर्हितःसदा
सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभुः ॥ ८६ ॥
अर्हः पुरुरिदं राज्यं यः प्रियः प्रियकृत्तव । वरदानेन शुक्रस्य न शक्यंवक्तुमुत्तरम् ॥
पौरजानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा । अभिषिच्य ततःपुरुं स्वराज्ये सुतमात्मनः
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं तु न्यवेशयत् । दक्षिणापरतो राजायदुंश्रेष्ठंन्यवेशयत्॥
प्रतीच्यामुत्तरस्याश्चद्रुह्यं चानुंचतावुभौ । सप्तद्वीपांययातिस्तुजित्वापृथ्वींससागराम्
व्यभजत्पञ्चधा राजा पुत्रेभ्यो नाहुषस्तदा ॥९० ॥
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना । यथाप्रदेशं धर्मज्ञैर्धर्मेणप्रतिपाल्यते ॥ ९१ ॥

एवं विभज्य पृथिवीं पुत्रेभ्यो नाहुषस्तदा । पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु प्रीतिमानभवन्नृपः ॥
धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च राज्यं चैव सुतेषु तु । प्रीतिमानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु॥
अत्रगाथामहाराज्ञापुरागीता ययातिना । योऽभिप्रत्याहरन्कामान्कूर्मोऽङ्गानीवसर्वशः
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाऽभिवर्धते
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः । नालमेकस्य तत्सर्वमितिपश्यन्न मुह्यति
यदा तु कुरुते भावं सर्वभूतेषु पावकम् । कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥
यदा परान्न बिभेति यदा त्वस्मान्नबिभ्यति । यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्मसम्पद्यते तदा
यादुस्त्यजादुर्मतिभिर्यानजीर्यतिजीर्यतः।दोषप्राणान्तिकोरागस्तांतृष्णांत्यजतःसुखम्

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।
जीविताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति ॥ १०० ॥

यच्च कामसुखं लोके यच्चदिव्यंमहत्सुखम् । तृष्णाक्षयसुखस्यैतत्कलांनार्हतिषोडशीम्
एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्रस्थितोवनम् । भृगुतुङ्गेतपस्तप्त्वातत्रैव च महायशाः

पालयित्वा व्रतशतं तत्रैव स्वर्गमा (प्नवान्)प्नुयात् ॥ १०२ ॥

तस्य वंशास्तुपञ्चैतेपुण्यादेवर्षिसत्कृताः । यैर्व्याप्तापृथिवीकृत्स्नासूर्यस्येवगभस्तिभिः
धन्यः प्रजावानायुष्मान्कीर्तिमांश्च भवेन्नरः । ययातेश्चरितंसर्वं पठञ्शृण्वन्द्विजोत्तमः

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे ययातिप्रसवकीर्तनं नाम
त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

कार्त्तवीर्यार्जुनोत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च गदतोमेनिबोधत
यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः । सहस्रजिदथ श्रेष्ठः क्रोष्टुर्नीलो जितोलघुः

सहस्रजित्सुतःश्रीमाञ्शतजिन्नामपार्थिवः । शतजित्सुताविख्यातास्त्रयःपरमधार्मिकाः
हैहयश्चहयश्चैव राजा वेणुहयश्च यः । हैहयस्य तु दायादो धर्मतन्त्र इति श्रुतिः ॥४॥

धर्मतन्त्रस्य कीर्तिस्तु संज्ञेयस्तस्य चाऽऽत्मजः ।
संज्ञेयस्य तु दायादो महिष्मान्नाम पार्थिवः ॥ ५ ॥

आसीन्महीष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यःप्रतापवान् । वाराणस्यधिपोराजाकथितःपूर्वएवहि
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्मदो नाम पार्थिवः । दुर्मदस्य ततो धीमान्कनकोनामविश्रुतः
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः । कृतवीर्यः कार्तिवीर्यः कृतवर्मा तथैव च
कृतो जातश्चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यात्ततोऽर्जुनः । जज्ञे बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः ॥
स हि वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् । दत्तमाराधयामासकार्तवीर्योऽत्रिसम्भवम्
तस्मै दत्तो वरान्प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः । पूर्वं बाहुसहस्रन्तु स वव्रे प्रथमं वरम् ॥
अधर्मे दीयमानस्य सद्भिस्तस्मान्निवारणम् । धर्मेण पृथिवींजित्वाधर्मेणैवानुपालनम्

सङ्ग्रामांस्तु बहूञ्जित्वा हत्वा चाऽरींन्सहस्रशः ।
सङ्ग्रामे युध्यमानस्य वधः स्यादधिकाद्रणे ॥ १३ ॥

तेनेयं पृथिवी कृत्स्ना सप्तद्वीपा सपत्तना । सप्तोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्त्रेणविधिनाजनाः
तस्य बाहुसहस्रन्तु युध्यतः किल धीमतः । यौद्धो ध्वजो रथश्चैव प्रादुर्भवतिमायया
दश यज्ञसहस्राणि तेषु द्वीपेषु सप्तसु । निरर्गलाः स्म निर्वृत्ताः श्रूयन्ते तस्य धीमतः
सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्याऽऽसन्भूरितेजसः । सर्वेकाञ्चनवेदीकाः सर्वेयूपैश्चकाञ्चनैः
सर्वे देवैर्महाभागैर्विमानस्थैरलङ्कृताः । गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ॥
तस्य राज्ञो जगौ गाथां गन्धर्वोनारदस्तथा । चरितं तस्यराजर्षेर्महिमानंनिरीक्ष्य च
न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति मानवाः । यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्चविक्रमेण श्रुतेन च
द्वीपेषु सप्तसु स वै खड्गीवरशरासनी । रथीराजाऽप्यनुचरोऽन्योऽगाच्चैवानुदृश्यते
अनष्टद्रव्यश्चैवाऽऽसीन्न शोको न च विभ्रमः । प्रभावेण महाराज्ञः प्रजा धर्मेण रक्षतः
पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां स नराधिपः । स सप्तद्वीपवान्सम्राट् चक्रवर्ती बभूव ह

स एष पशुपालोऽभूत्क्षेत्रपालस्तथैव च ।

स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत् ॥ २४ ॥

स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनेन च । भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनेव भास्करः ॥
स हि नागसहस्रेण महिष्मत्यांनराधिपः । कर्कोटकसभां जित्वा पुरीं तत्रन्यवेशयत्
स वै वेगं समुद्रस्य प्रावृट्कालाम्बुजेक्षणः । क्रीडन्निवमुखोद्विग्नः प्रावृट्कालंचकारह
लुलिता क्रीडता तेन हेमस्रग्दाममालिनी । ऊर्मिभ्रुकुटिसंनादा शङ्किताऽभ्येति नर्मदा
पुरा स तामनुसरन्नवगाढो महार्णवम् । चकारोद्धृत्य वेलातं स कालं प्रावृषोद्भवम्
तस्य बाहुसहस्रेणक्षोभ्यमाणेमहोदधौ । भवन्ति लीनानिश्चेष्टाःपातालस्थामहासुराः
चूर्णीकृतमहावीचिलीनमीनमहाविषाः । पतिता विद्धफेनौघमावर्तक्षिप्तदुस्सहम् ॥
चकार क्षोभयन्राजा दोःसहस्रेण सागरम् । देवासुरपरिक्षिप्तं क्षीरोदमिव सागरम् ॥
मन्दरक्षोभणकृता ह्यमृतोदकशङ्किताः । सहसोत्पादि(टि)ताभीताभीमंदृष्ट्वानृपोत्तमम्
नतनिश्चलमूर्धानो बभूवुश्च महोरगाः । सायाह्ने कदलीषण्डा निर्वातस्तिमिता इव ॥

स वै बद्ध्वा धनुर्यान उत्सिक्तः पञ्चभिः शतैः ।
लङ्कायां मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात् ।
निर्जित्य बद्ध्वा चाऽऽनीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम् ॥ ३५ ॥

ततो गत्वापुलस्त्यस्तुअर्जुनञ्चप्रसादयत् । मुमोचराजापौलस्त्यंपुलस्त्येनानुपालितम्
तस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः । युगान्तेऽम्बुदवृक्षस्य स्फुटितस्याऽशनेरिव
अहो मृधे महावीर्यं भार्गवो यस्य सोऽच्छिनत् । मृधे सहस्रंबाहूनांहेमतालवनंयथा
तृषितेनकदाचित्सभिक्षितश्चित्रभानुना । सप्त द्वीपांश्चित्रभानोःप्रादाद्भिक्षांविशांपतिः
पुराणि घोषान्ग्रामांश्च पत्तनानि च सर्वशः । जज्वाल तस्यबाणेषुचित्रभानुर्दिधक्षया
स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रतापेन महायशाः । ददाह कार्तवीर्यस्य शैलांश्चापि वनानि च
स शून्यमाश्रमं सर्वं वरुणस्याऽऽत्मजस्य वै । ददाह सवनद्वीपांश्चित्रभानुः सहैहयः
स लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्विनमुत्तमम् । वसिष्ठनामा स मुनिःख्यात आपवइत्युत
तत्राऽऽपवस्तदा क्रोधादर्जुनं शप्तवान्विभुः । यस्मान्न वर्जितमिदं वनं ते मम हैहय!॥

तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति ।

अर्जुनो नाम कौन्तेयो न च राजा भविष्यति (?) ॥ ४५ ॥

अर्जुन त्वां महावीर्यो रामः प्रहरताम्वरः । छित्त्वा बाहुसहस्रं वै प्रमथ्य तरसा बली
तपस्वी ब्राह्मणश्चैव वधिष्यति महाबलः । तस्य रामस्तदा ह्यासीन्मृत्युःशापेनधीमतः
राज्ञा तेन वरश्चैव स्वयमेव वृतः पुरा । तस्य पुत्रशतं ह्यासीत्पञ्च तत्र महारथाः ॥
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः । शूरश्च शूरसेनश्च वृष्ट्याद्यं वृष एव च
जयध्वजश्च वै पुत्रा अवन्तिषु विशाम्पतेः । जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घःप्रतापवान्

तस्य पुत्रशतं ह्येव तालजङ्घा इति श्रुतम् ।
तेषां पञ्च गणाः ख्याता हैहयानां महात्मनाम् ॥ ५१ ॥

वीरहोत्राह्यसंख्याताभोजाश्चावर्तयस्तथा । तुण्डिकेराश्चविक्रान्तास्तालजङ्घास्तथैवच
वीरहोत्रसुतश्चापि अनन्तो नाम पार्थिवः । दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवाऽमित्रदर्शनः ॥
अनष्टद्रव्यता चैव तस्य राज्ञो बभूव ह । प्रभावेन महाराजः प्रजास्ताः पर्यपालयत् ॥
न तस्य वित्तनाशश्च नष्टं प्रतिलभेत सः । कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः
वित्तवान्भवतेऽत्रैव धर्मश्चाऽस्य विवर्धते । यथा त्वष्टा तथादाता तथा स्वर्गेमहीयते

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे कार्तवीर्यार्जुनोत्पत्तिविवरणं
नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

———

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

ज्यामघराजवृत्तान्तवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

किमर्थं भुवनं दग्धमापवस्य महात्मनः । कार्तवीर्येण विक्रम्य तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्
रक्षिता स तु राजर्षिःप्रजानामितिनः श्रुतम् । कथंसरक्षिताभूत्वाऽनाशयत्तत्तपोवनम्

सूत उवाच

आदित्यो विप्ररूपेणकार्तवीर्यमुपस्थितः । तृप्तिकामः प्रयच्छान्नमादित्योऽहंनसंशयः

राजोवाच

भगवन्केन ते तुष्टिर्भवेद्ब्रूहि दिवाकर !। कीदृशं भोजनं दद्मि श्रुत्वा च विदधाम्यहम्

सूर्य उवाच

स्थावरं देहि मे सर्वमाहारं ददतांवर । तेन तृप्तो भवेयं वै न तुष्येऽन्येन पार्थिव !॥

राजोवाच

न शक्यं स्थावरं सर्वं तेजसा मानुषेणतु । निर्दग्धुं तपतां श्रेष्ठ! त्वामेव प्रणमाम्यहम्

आदित्य उवाच

तुष्टस्तेऽहंशरान्दद्मिअक्षयान्सर्वतःसुखान् । प्रक्षिप्ताःप्रज्वलिष्यन्तिममतेजःसमन्विताः

आविष्टं तेजसा मेघसागरंशोषयिष्यति । शुष्कं भस्म करिष्यामितेनप्रीतोनराधिप !

ततः शरानथाऽऽदित्यस्त्वर्जुनाय प्रयच्छत । ततः सम्प्राप्य सुमहत्स्थावरंसर्वमेव हि

आश्रमानथ ग्रामांश्च घोषांश्च नगराणि च । तपोवनानि रम्याणिवनान्युपवनानि च

एवं प्राचीनमदहत्ततः सूर्यप्रदक्षिणम् । निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्दग्धा सूर्येण तेजसा ॥

एतस्मिन्नेव काले तु आपगो नियमस्थितः । दशवर्षसहस्राणि जलवासा महानृषिः

पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठत्तपोधनः । सोऽपश्यदाश्रमं दग्धमर्जुनेन महानृषिः ॥

क्रोधाच्छशाप राजर्षि कीर्तितं वो यथा मया ॥ १३ ॥

सूत उवाच

क्रोष्टोः शृणुत राजर्षेवंशमुत्तमपूरुषम् । यस्याऽन्ववाये सम्भूतो वृष्णिर्वृष्णिकुलोद्वहः

क्रोष्टोरेकोऽभवत्पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः ।

वाजिनीवतमिच्छन्ति स्वाहिं स्वाहावतां वरम् ॥ १५ ॥

स्वाहेः पुत्रोऽभवद्राजा रशादुर्ददतांवरः । सुतं प्रसूतमिच्छन्ति रशादोरग्र्यमात्मजम्

महाक्रतुभिरीजे स विविधैराप्तदक्षिणैः । चित्रैश्चित्ररथस्तस्य पुत्रकर्मभिरन्वितः ॥

एवं चित्ररथो वीरो यज्ञान्विपुलदक्षिणान् । शशविन्दुः परं वृत्तो राजर्षीणामनुष्ठितः

चक्रवर्ती महासत्त्वो महावीर्यो बहुप्रजः । तत्रानुवंशश्लोकोऽयं यस्मिन्गीतःपुराविदैः
शशबिन्दोऽस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम् । धीमतामनुरूपाणांभूरिद्रविणतेजसाम्
तेषां षट् च प्रधानास्तु पृथुसाह्वा महाबलाः । पृथुश्रवाः पृथुयशाः पृथुधर्मा पृथुञ्जयः
पृथुकीर्तिः पृथुन्दाता राजानः शाशबिन्दवः । शंसन्ति च पुराणानिपार्थश्रवसमन्तरम्

अन्तरः स पुरा यस्तु यज्ञस्य तनयोऽभवत् ॥ २२ ॥

उशना सतु धर्मात्मा अवाप्य पृथिमीमिमाम् । आजहाराश्वमेधानांशतमुत्तमधार्मिकः
मरुतस्तस्य तनयो राजर्षीणामनुष्ठितः । वीरः कम्बलबर्हिस्तु मरुत्ततनयः स्मृतः ॥
पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान्कम्बलबर्हिषः । निहत्य रुक्मकवचः पुरा कवचिनोरणे
धन्विनो निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम् । ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तमश्वमेधे महायशाः
राज्ञस्तु रुक्मकवचादपरावृत्य वीरहाः । जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महासत्त्वा महाबलाः
रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरिः । परिघञ्च हरिं चैव विदेहेऽस्थापयत्पिता
रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयः । तेभ्यः प्रव्रजितो राज्याज्ज्यामघोऽभवदाश्रमे॥
प्रशान्तस्तु वने घोरे ब्राह्मणेनाऽवबोधितः । जगाम धनुरादाय देशमध्यं रथी ध्वजी
नर्मदानूप एकाकी मेकलावृत्तिका अपि । ऋक्षवन्तं गिरिंगत्वाशुक्तिमन्यामथाविशत्

ज्यामघस्याऽभवद्भार्या शैव्या बलवती भृशम् ।
अपुत्रोऽपि स वै राजा भार्यामन्यां न विन्दति ॥ ३२ ॥

तस्याऽऽसीद्विजयोयुद्धेततःकन्यामवाप सः । भार्यामुवाच राजा सस्नुषेतितु नरेश्वरः
एवमुक्ताऽब्रवीदेनं कस्येयन्ते स्नुषेति सा । यस्ते जनिष्यतेपुत्रस्तस्यभार्याभविष्यति
तस्य सा तपसोग्रेण शैव्या वैशं प्रसूयत । पुत्रं विदर्भंसुभगाशैव्यापरिणतासती ॥३५
राजपुत्रौ तु विद्वांसौ स्नुषायांक्रथकौशिकौ । पुत्रौविदर्भोऽजनयच्छूरौरणविशारदौ

लोमपादं तृतीयन्तु पश्चाज्जज्ञे सुधार्मिकम् ।
लोमपादात्मजो बभ्रुस्तुराहृतिस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ ३७ ॥
कौशिकस्य चिदिः पुत्रस्तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः ।
क्रथो विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्याऽऽत्मजोऽभवत् ॥ ३८ ॥

कुन्तेर्धृष्टसुतो जज्ञे पुरो धृष्टः प्रतापवान्। धृष्टस्य पुत्रो धर्मात्मा निर्वृतिः परवीरहा
तस्य पुत्रो दशार्हस्तु महाबलपराक्रमः। दशार्हस्य सुतो व्योमा ततो जीमूत उच्यते
जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथः सुतः। अथ भीमरथस्याऽऽसीत्पुत्रोरथवरःकिल
दाता धर्मरतो नित्यं सत्यशीलपरायणः। तस्य पुत्रो नवरथस्ततो दशरथः स्मृतः॥
तस्यचैकादशरथःशकुनिस्तस्यचाऽऽत्मजः। तस्मात्करम्भकोधन्वीदेवरातोऽभवत्ततः
देवक्षत्रोऽभवद्राजा देवरातिर्महायशाः। देवक्षत्रसुतो जज्ञे देवनः क्षत्रनन्दनः॥
देवनात्स मधुर्यज्ञे यस्य मेधार्थसम्भवः। मधोश्चापि महातेजा मनुर्मनुवशस्तथा॥
नन्दनश्च महातेजा महापुरुवशस्तथा। आसीत्पुरुवशात्पुत्रः पुरुद्वान्पुरुषोत्तमः॥४६॥
जज्ञे पुरुद्वतः पुत्रो भद्रवत्यां पुरूद्वहः। ऐक्ष्वाकी त्वभवद्भार्या सत्त्वस्तस्यामजायत॥
सत्त्वात्सत्त्वगुणोपेतः सात्त्वतः कीर्तिवर्धनः॥ ४७॥
इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्यमहात्मनः। प्रजावानेतिसायुज्यंराज्ञःसोमस्यधीमतः

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे ज्यामघवृत्तान्तकथनं नाम
पञ्चनवतितमोऽध्यायः॥ ९५॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

विष्णुवंशानुकीर्त्तनेभगवतःकृष्णस्याविर्भावात्मिकापावनीकथावर्णनम्

सूत उवाच

सात्वती रूपसम्पन्ना कौशल्या सुषुवे सुतान्। भजिनं भजमानञ्च दिव्यंदेवावृधंनृपम्
अन्धकञ्च महाभोजं वृष्णिञ्च यदुनन्दनम्। तेषां हि सर्गाश्चत्वारःशृणुध्वंविस्तरेणवै
भजमानस्य शृञ्जय्यां बाह्यश्चोपरि बाह्यकः। शृञ्जयस्य सुते द्वे तु बाह्यकस्तेउदावहत्
तस्यभार्ये भगिन्यौ ते प्रसूतेति सुतान्बहून्। निमिश्च पणवश्चैव वृष्णिः परपुरञ्जयः

येबाह्यकार्यश्सृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे । अयुतायुतसाहस्रशतजिदथ वामकः ॥ ५ ॥
बाह्यकार्याभगिन्यां ये भजमानाद्विजज्ञिरे । तेषां देवावृधो राजा चचार परमं तपः ॥

पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्म ह ।
संयोज्याऽऽत्मानमेवं सवर्णा सा जलमस्पृशत् ॥ ७ ॥

सा चोपस्पर्शनात्तस्य चकारऋषिमापगा । कल्याणञ्चनरपतेस्तस्य सा निम्नगोत्तमा

चिन्तयाऽभिपरीताङ्गी जगामाऽथ विनिश्चयम् ।
नाऽधिगच्छामि तां नारीं यस्यामेवंविधः सुतः ॥ ६ ॥

भवेत्सर्वगुणोपेतो राज्ञो देवावृधस्य हि । तस्मादस्य स्वयं चाऽहं भवाम्यद्य सहव्रता

जज्ञे तस्याः स्वयं हस्तो भावस्तस्य यथेरितः ॥ १० ॥

अथ भूत्वा कुमारी तु सावित्री परमं वचः । चिन्तयामासराजानंतामियेषसपार्थिवः
तस्यामाधत्त गर्भं स तेजस्विनमुदारधीः । अथ सा नवमे मासि सुषुवे सरिताम्वरा
पुत्रं सर्वगुणोपेतं यथा देवावृधेप्सितः । तत्र वंशे पुराणज्ञागाथांगायन्ति वै द्विजाः
गुणान्देवावृधस्यापिकीर्तयन्तोमहात्मनः । यथैवश्रृणुतेदूरात्सम्पश्यतितथाऽन्तिकात्
बभ्रः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः । पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च सहस्राणि च सप्ततिः

येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रूर्देवावृधादपि ॥ १५ ॥

यज्वा दानपतिर्वीरो ब्रह्मण्यःसत्यवाग्बुधः । कीर्तिमांश्चमहाभागःसात्वतानांमहारथः
तस्याऽन्ववायेसुमहाभोजयेमार्तिकावलाः । गान्धारी चैव माद्रीच वृष्णेर्भार्येबभूवतुः
गान्धारीजनयामाससुमित्रंमित्रनन्दनम् । माद्री युधाजितं पुत्रं सा तु वै देवमीढुषम्
अनमित्रं सुतं चैव तावुभौ पुरुषोत्तमौ । अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतुः

प्रसेनश्च महाभागः शक्रजिच्च सुतावुभौ ।
तस्य शक्राजितः सूर्यः सखा प्राणसमोऽभवत् ॥ २० ॥

स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिनाम्वरः । तोयकूलादपः स्प्रष्टुमुपस्थातुं ययौ रविम्
तस्योपतिष्ठतः सूर्यो विवस्वानग्रतः स्थितः । अस्पष्टमूर्तिर्भगवांस्तेजोमण्डलवान्विभुः

अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रतः ।

यथैव व्योम्नि पश्यामि त्वामहं ज्योतिषां पते! ॥ २३ ॥

तेजोमण्डलिनंचैवतथैवाऽप्यग्रतःस्थितम् । को विशेषो विवस्वंस्तेसख्येनोपगतेन वै

एतच्छ्रुत्वा स भगवान्मणिरत्नंस्यमन्तकम् । स्वकण्ठादवमुच्याऽथबबन्धनृपतेस्तदा

ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा । प्रतिमामथ तां दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवांस्तथा ॥

तमतिप्रस्थितं भूयो विवस्वन्तं स शक्रजित् ।

प्रोवाचाग्निसवर्णा त्वं येन लोकान्प्रयास्यति(सि) ॥

तदेव मणिरत्नं तन्मां भवान्दातुमर्हति ॥ २७ ॥

स्यमन्तकं नाम मणिं दत्तवांस्तस्यभास्करः । स तमावध्य नगरं प्रविवेश महीपतिः

तं जनाः पर्यधावन्त सूर्योऽयं गच्छतीतिह । सतान्विस्मापयित्वाऽथपुरीमन्तःपुरंतथा

तं प्रसेनजिते दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम् । ददौ भ्रात्रे नरपतिःप्रेम्णाशक्रजिदुत्तमम्

स्यमन्तको नाम मणियस्यराष्ट्रे स्थितोभवेत् । कालवर्षीचपर्जन्यो नचव्याधिभयन्तदा

लिप्सांचक्रेप्रसेनात्तु मणिरत्नंस्यमन्तकम् । गोविन्दोनच तं लेभेशक्तोऽपिनजहार च

कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः । स्यमन्तककृते सिंहाद्वधं प्राप्तः सुदारुणम्

जाम्बवानृक्षराजस्तु तं सिंहं निजघान वै । आदायच मणिं दिव्यं स्वंबिलंप्रविवेशह

तत्कर्म कृष्णस्य ततो वृष्ण्यन्धकमहत्तराः । मणौ गृध्नुं तु मन्वानास्तमेवविशशङ्किरे

मिथ्याभिशस्ति तेभ्यस्तां बलवानरिसूदनः । अमृष्यमाणोभगवान्वनं स विचचार ह

स तु प्रसेनो मृगयामचरत्तत्र चाऽप्यथ । प्रसेनस्य पदं गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः ॥

ऋक्षवन्तं गिरिवरं विन्ध्यं च नगमुत्तमम् । अन्वेषणपरिश्रान्तः स ददर्श महामनाः॥

साश्वं हतं प्रसेनं तं नाविन्दत्तत्र वै मणिम् । अथ सिंहः प्रसेनस्यशरीरस्याऽविदूरतः

ऋक्षेणनिहतो दृष्टः पादैर्ऋक्षस्य सूचितः । पदैरन्वेषयामास गुहामृक्षस्य यादवः ॥

महत्यपि बिले वाणींशुश्राव प्रमदेरिताम् । धात्र्याकुमारमादाय सुतंजाम्बवतो द्विजाः

प्रीतिमत्याऽथ मणिना मा रोदीरित्युदीरिताम् ॥ ४१ ॥

धात्र्युवाच

प्रसेनमवधीत्सिंहः सिंहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः

व्यक्तीकृतं च शब्दं तं तूर्णं सोऽपि ययौ बिलम् ।
अपश्यच्च बिलाभ्यासे प्रसेनमवदारितम् ॥ ४३ ॥

प्रविश्य चापि भगवांस्तदृक्षबिलमञ्जसा । ददर्श ऋक्षराजानं जाम्बवन्तमुदारधीः ॥
युयुधे वासुदेवस्तुबिलेजाम्बवता सह । बाहुभ्यामेवगोविन्दो दिवसानेकविंशतिम् ॥
प्रविष्टे च बिलं कृष्णे वासुदेवपुरःसराः । पुनर्द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन् ॥
वासुदेवस्तुनिर्जित्य जाम्बवन्तंमहाबलम् । लेभे जाम्बवतींकन्यामृक्षराजस्यसंमताम्
भगवत्तेजसाग्रस्तोजाम्बवान्प्रसभंमणिम् । सुतां जाम्बवतीमाशुविष्वक्सेनाय दत्तवान्
मणिं स्यमन्तकं चैव जग्राहाऽऽत्मविशुद्धये । अनुनीय ऋक्षराजंनिर्ययौचतदाबिलात्
एवं समणिमादायविशोध्याऽऽत्मानमात्मना । ददौशक्रजितेतंवैमणिंसात्वतसन्निधौ
कन्यां पुनर्जाम्बवतीमुवाह मधुसूदनः । तस्मान्मिथ्याभिशापात्स व्यमुच्यत जनार्दनः

इमां मिथ्याभिशस्तिं यः कृष्णस्येह व्यपोहिताम् ।
वेद मिथ्याभिशस्तेः स नाभिशस्यति कर्हिचित् ॥ ५२ ॥

दशस्वसृभ्यो भार्याभ्यः शत्रुजित्तःशतंसुताः । ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषांभङ्गकारस्तुपूर्वजः

वीरोव्रतप्रतिश्चैव ह्यपस्वान्तश्च सुप्रियः ॥ ५३ ॥

अथद्वारवतीनाम भङ्गकारस्य सुप्रजाः । सुषुवे सा कुमारीस्तु तिस्रोरूपगुणान्विताः
सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढव्रता । तथातपस्विनी चैवपिताकृष्णस्यतांददौ
यत्तच्छक्रजिते कृष्णो मणिरत्नं स्यमन्तकम् । प्रादात्तद्धारयद्बभ्रुर्भोजेन शतधन्वना
तदाहिप्रार्थयामाससत्यभामामनिन्दिताम् । अक्रूरोरत्नमन्विच्छन्मणिंचैवस्यमन्तकम्
भद्रकारं ततो हत्वा शतधन्वा महाबलः । रात्रौ तं मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान्
अक्रूरस्तु तदा रत्नमादाय स नरर्षभः । समयं कारणं चक्रे बोध्यो नान्यस्त्वयेत्युत॥
वयमभ्युपपत्स्यामः कृष्णेन त्वं प्रधर्षितः । मम च द्वारका सर्वा वशे तिष्ठत्यसंशयम्
हते पितरि दुःखार्त्ता सत्यभामा यशस्विनी । प्रययौ रथमारुह्य नगरं वारणावतम् ॥
सत्यभामा तु तद्वृत्तंभोजस्यशतधन्वनः । भर्तुर्निवेद्य दुःखार्तापार्श्वस्थाऽश्रूण्यवर्तयत

पाण्डवानां तु दग्धानां हरिः कृत्वोदकक्रियाम् ।

तुल्यार्थे चैव भ्रातॄणां नियोजयति सात्यकिम् ॥ ६३ ॥
ततस्त्वरितमागम्य द्वारकां मधुसूदनः । पूर्वजं हलिनं श्रीमानिदं वचनमब्रवीत् ॥६४
हतः प्रसेनः सिंहेन शत्रुजिच्छतधन्वना । स्यमन्तकमहं मार्गे तस्य प्रहर हे प्रभो ॥
तदारोह रथं शीघ्रं भोजंहत्वामहाबलम् । स्यमन्तकोमहाबाहोतदाऽस्माकंभविष्यति
ततः प्रवृत्ते युद्धे तु तुमुले भोजकृष्णयोः । शतधन्वा न चाक्रूरमवैक्षत्सर्वतो दिशि॥
अनष्टाश्वावरोहंतुकृत्वाभोजजनार्दनौ । शक्तोऽपिसाध्याद्धार्दिक्योनाक्रूरोऽभ्युपपद्यत
अपयाने ततो बुद्धिं भूयश्चक्रे भयान्वितः । योजनानां शतं साग्रं यथा च प्रत्यपद्यत
विज्ञातहृदया नाम शतयोजनगामिनी । भोजस्य वडवा दिव्या यया कृष्णमयोधयत्
प्रवृद्धवेगा वडवा त्वध्वनां शतयोजनम् । दृष्ट्वा रथस्य तां वृद्धिं शतधन्वानमर्हयत्
ततस्तस्याहयायास्तुश्रमात्स्वेदाच्चवैद्विजाः । खमुत्पेतुरथप्राणाःकृष्णोराममथाब्रवीत्
तिष्ठस्वेह महाबाहो दृष्टदोषामयाहया । पद्भ्यांगत्वाहरिष्यामिमणिरत्नंस्यमन्तकम्

पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युतः ।
मिथिलाधिपतिं तं वै जघान परमास्त्रवित् ॥ ७४ ॥

स्यमन्तकं न चापश्यद्धत्वाभोजंमहाबलम् । निवृत्तंचाब्रवीत्कृष्णंरत्नंदेहीतिलाङ्गली॥
नास्तीतिकृष्णश्चोवाचततोरामोरुषाऽन्वितः । धिक्शब्दमसकृत्पूर्वंप्रत्युवाचजनार्दनम
भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येषस्वस्तितेऽस्तुव्रजाम्यहम् । कृत्यंनमेद्वारकयानत्वयानचवृष्णिभिः
प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्दनः । सर्वकामैरुपहृतैर्मैथिलेनैव पूजितः ॥७८॥
एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतां वरः । नानारूपान्क्रतून्सर्वानाजहार निरर्गलान् ॥
दीक्षामयं सकवचं रक्षार्थं प्रविवेश ह । स्यमन्तककृते राजा गाधिपुत्रो महायशाः ॥
अर्थान्रत्नानि चाग्र्याणि द्रव्याणिविविधानिच । षष्टिवर्षगतेकाले यज्ञेषुविन्ययोजयत्
अक्रूरयज्ञा इत्येते ख्यातास्तस्य महात्मनः । बह्वन्नदक्षिणाः सर्वे सर्वकामप्रदायिनः ॥

अथ दुर्योधनो राजा गत्वाऽथ मिथिलां प्रभुः ।
गदाशिक्षां ततो दिव्यां बलभद्रादवाप्तवान् ॥ ८३ ॥

प्रसाद्य तु ततो रामो वृष्ण्यन्धकमहारथैः । आनीतो द्वारकामेव कृष्णेनच महात्मना

अक्रूरस्त्वन्धकैः सार्धमुपायात्पुरुषर्षभः । युद्धे हत्वा तु शत्रुघ्नं सह बन्धुमता बली॥
स्वफल्कतनयायां तु नरायां नरसत्तमौ । भङ्गकारस्य तनयौ विश्रुतौ सुमहाबलौ ॥
अज्ञातेऽन्धकमुख्यस्य शत्रुघ्नोबन्धुमांश्चतौ । वधार्थंभङ्गकारस्यकृष्णोनप्रीतिमान्भवेत्
ज्ञातिभेदभयाद्भीतस्तमुपेक्षितवांस्तथा । अपयाते तथाऽक्रूरे नावर्षत्पाकशासनः॥८८॥
अनावृष्ट्या हतं राष्ट्रमभवत्तद्वधोद्यतम् । ततः प्रसादयामासुरक्रूरं कुकुरान्धकाः ॥८९
पुनर्द्वारवतीं प्राप्ते तदा दानपतौ तथा । प्रववर्ष सहस्राक्षः कुक्षौ जलनिधेस्ततः ॥९०
कन्यां च वासुदेवाय स्वसारं शीलसम्मताम् । अक्रूरः प्रददौश्रीमान्प्रीत्यर्थंयदुपुङ्गवः
अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगतं मणिम् । सभामध्येतदाप्राह तमक्रूरं जनार्दनः ॥
यच्च रत्नं मणिवरं तव हस्तगतं प्रभो । तत्प्रयच्छस्व मानार्ह विमतिमत्र मा कृथाः॥
षष्टिवर्षगते काले यद्रोषोऽभूत्तदामम । सुसंरूढः सकृत्प्राप्तस्तत्कालाश्रित्य यो महान्
ततः कृष्णस्य वचनात्सर्वसात्वतसंसदि । प्रददौ तं मणिं बभ्रुरक्लेशेन महामतिः ॥
तत आर्जवसम्प्राप्तबभ्रुहस्तादरिन्दमः । ददौ प्रहृष्टमनसा तं मणिं बभ्रवे पुनः ॥ ९६ ॥

स कृष्णहस्तात्सम्प्राप्य मणिरत्नं स्यमन्तकम् ।
आबध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजांऽशुमानिव ॥ ९७ ॥

इमांमिथ्याभिशस्तिं योविशुद्धामपिचोत्तमाम् । वेदमिथ्याभिशस्तिसनव्रजेच्चकथञ्चन

अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात् ।
सत्यवाक्सत्यसम्पन्नः सत्यकस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ ९९ ॥

सात्यकिर्युयुधानश्च तस्यभूतिःसुतोऽभवत् । भूतेर्युगन्धरःपुत्रइति भौत्याः प्रकीर्तिताः
माद्र्यासुतस्यजज्ञेतु सुतःपृश्निर्युधाजितः । जज्ञाते तनयौपृश्नेःस्व(श्व)फल्कश्चित्रकश्चयः
स्व(श्व)फल्कस्तुमहाराजो धर्मात्मायत्रवर्तते । नास्तिव्याधिर्भयंतत्रनचावृष्टिभयंतथा
कदाचित्काशिराजस्यविभोस्तुद्विजसत्तमाः । त्रीणिवर्षाणिविषयेनावर्षत्पाकशासनः

स तत्र वासयामास स्व(श्व)फल्कं परमार्चितम् ।
स्व(श्व) फल्कपरिवासेन प्रावर्षत्पाकशासनः ॥ १०४ ॥
स्व(श्व) फल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामनिन्दिताम् ।

गान्दिनीं नाम गां सा हि ददौ विप्राय नित्यशः ॥ १०५ ॥

सा मातुरुदरस्था वै बहुवर्षशतान्किल । वसतिस्म न वै जज्ञे गर्भस्थां तां पिताऽब्रवीत्
जायस्व शीघ्रं भद्रं ते किमर्थं चापितिष्ठसि । प्रोवाच चैनंगर्भस्थासाकन्यागौर्दिने दिने
यदि दत्ता तदा स्यांहियदिस्यामीहतांपितः । तथेत्युवाचतांतस्याःपिताकाममपूपुरत्
दाता यज्वाचशूरश्चश्रुतवानतिथिप्रियः । तस्याःपुत्रःस्मृतोऽक्रूरःश्वफल्कोभूरिदक्षिणः
उपमङ्गुस्तथा मङ्गुर्मृदुरश्चारिमेजयः । गिरिरक्षस्ततो यक्षः शत्रुघ्नो वाऽरिमर्दनः ॥११०
धर्मभृच्च श्रृष्टचयो वर्गमोचस्तथाऽपरः । आवाहप्रतिवाहौ च वसुदेवा वराङ्गना ॥
अक्रूरादुग्रसेन्यां तु सुतौ द्वौ कुलनन्दिनौ । देवश्चानुपदेवश्च जज्ञाते देवसम्मितौ ॥
चित्रकस्याऽभवन्पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च । अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ॥
अरिष्टनेमिरश्वश्च सुवर्मा चर्मवर्मभृत् । अभूमिर्बहुभूमिश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ ॥११४
सत्यकात्काशिदुहिता लेभे सा चतुरः सुतान् । ककुदं भजमानश्च शमीकम्बलबर्हिषौ
ककुदस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेस्तुतनयोऽभवत् । कपोतरोमा तस्याऽथरैवतोऽभवदात्मजः

तस्याऽऽसीत्तुम्बुरुसखा विद्वान्पुत्रोऽभवत्किल ।
ख्यायते यस्य नाम्ना स चन्दनोदकदुन्दुभिः ॥ ११७ ॥

तस्माच्चाभिजितः पुत्र उत्पन्नस्तु पुनर्वसुः । अश्वमेधं तु पुत्रार्थ आजहार नरोत्तमः ॥
तस्य मध्येऽतिरात्रस्यसदोमध्यात्समुत्थितः । ततस्तुविद्वान्धर्मज्ञोदातायज्वापुनर्वसुः
तस्याऽपिपुत्रमिथुनं बाहुबाणाजितःकिल । आहुकश्चाऽऽहुकीचैवख्यातौमतिमतांवरौ
इमांश्चोदाहरन्त्यत्रश्लोकान्प्रतितमाहुकम् । सोपासङ्गांनुकर्षाणांसध्वजानांवरूथिनाम्
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैवतु । नाऽसत्यवादी त्वासीत्तुनायज्वानासहस्रदः
नाशुचिर्नाप्यधर्मात्मा नाऽविद्वान्न कृशोऽभवत् । आहुकस्य धृतिःपुत्र इत्येवमनुशुश्रुम
श्वेतेन परिचारेण किशोरप्रतिमान्हयान । अशीतिमश्वनियुतान्याहुकप्रतिमोऽव्रजत्
पूर्वस्यांदिशिनागानांभोजस्यप्रतिमोऽभवत्। रूप्यकाञ्चनकक्षाणांसहस्राण्येकविंशतिः
तावन्त्येवसहस्राणिउत्तरस्यांतथादिशि। भूमिपालस्यभोजस्यउत्तिष्ठेत्किङ्किणीकिल

आहुकश्चाऽऽहुकान्धाय स्वसारं त्वाहुकीं ददौ ।

आहुकान्धस्य दुहिता द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः ॥ १२७ ॥
देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ। देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः ॥१२८
देवानामपि देवश्च सुदेवो देवरञ्जिता। तेषां स्वसारः सप्ताऽऽसन्वसुदेवाय तां ददौ॥
वृकदेवोपदेवा च तथाऽन्या देवरक्षिता। श्रीदेवा शान्तिदेवाच्च महादेवा तथाऽपरा॥
सप्तमो देवकी तासां सुनामा चारुदर्शना। नवोग्रसेनस्य सुताः कंसस्तेषां तु पूर्वजः
न्यग्रोधश्च सुनामा च कह्वशङ्कुश्च भूमयः। सुतनू राष्ट्रपालश्च युद्धस्तुष्टः सुपुष्टिमान्॥
तेषां स्वसारः पञ्चैव कर्मधर्मवती तथा। शतांकूराष्ट्रपाला च कह्वा चैव वराङ्गना॥
उग्रसेनो महापत्यो विख्यातः कुकुरोद्भवः। कुकुराणामिमं वंशं धारयन्नमितौजसाम्
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजानाश्च भवेन्नरः ॥ १३४ ॥
भजमानस्य पुत्रस्तु रथिमुख्यो विदूरथः। राज्याधिदेवः शूरश्च विदूरश्च सुतोऽभवत्
तस्य शूरस्य तु सुता जज्ञिरे बलत्तराः। वातश्चैव निवातश्च शोणितः श्वेतवाहनः॥
शमी च गदवर्णा च निदातः शक्रशक्रजित्।
समिपुत्रः प्रतिक्षिप्तः प्रतिक्षिप्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ १३७ ॥
स्वयम्भोजः स्वयम्भोजाद्धृदिकःसम्बभूव ह। हृदिकस्यसुतास्त्वासन्दशभीमपराक्रमाः
कृतवर्मा कृतस्तेषां शतधन्वा तु मध्यमः। देवार्हश्च वनार्हश्च भिषग्द्वैतरथश्च यः॥
सुदान्तश्च धियान्तश्च नकवान्कनकोद्भवः। देवार्हश्च सुतो विद्वाञ्जज्ञे कम्बलबर्हिषः॥
असमौजाः सुतस्तस्य सुसमौजाश्च विश्रुतः। अजावपुत्राय ततः प्रददावसमौजसे॥
सुदंष्ट्रश्च सुरूपश्च कृष्ण इत्यन्धकाः स्मृताः ॥ १४१ ॥
अन्धकानामिमं वंशं कीर्तयानस्तु नित्यशः। आत्मनो विपुलं वंशं लभतेनात्रसंशयः
अस्मक्यां जनयामास शूरो वै देवमीढुषम्। माष्यान्तुजनयामासशूरो वै देवमीढुषम्
भाष्यान्तु जज्ञिरे शूराद्भोजायां पुरुषा दश। वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः
जज्ञे तस्य प्रसूतस्य दुन्दुभिः प्राणदद्दिवि। आनकानाञ्च संह्रादः सुमहानभवद्दिवि॥
पपात पुष्पवर्षश्च शूरस्य भवने महत्। मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्तिसमोभुवि
यस्याऽऽसीत्पुरुषाग्र्यस्य कीर्तिश्चन्द्रमसो यथा।

देवभागस्ततो जज्ञे ततो देवश्रवाः पुनः ॥ १४७ ॥

अनादृष्टिकडश्चैव नन्दनश्चैव भृञ्जिनः । श्यामः शमीको गण्डूषश्चत्वारस्तु वराङ्गनाः॥ पृथा च श्रुतवेदा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवा । राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः पृथां दुहितरं चक्रे कुन्तिस्तां पाण्डुरावहत् । अनपत्याय वृद्धाय कुन्तिभोजायतांददौ

तस्मात्कुन्तीति विख्याता कुन्तिभोजात्मजा तथा ।

कुरुवीरः पाण्डुमुख्यस्तस्माद्भार्यामविन्दत ॥ १५१ ॥

पृथा जज्ञे ततः पुत्रांस्त्रीनग्निसमतेजसः । लोकेऽप्रतिरथान्वीराञ्शक्रतुल्यपराक्रमान् धर्माद्युधिष्ठिरं पुत्रं मारुताच्च वृकोदरम् । इन्द्राद्धनञ्जयं चैव पृथा पुत्रानजीजनत् ॥ माद्रवत्यान्तु जनितावाश्विनाविति विश्रुतम् । नकुलः सहदेवश्च रूपसत्त्वगुणान्वितौ जज्ञे च श्रुतदेवायां तनयो वृद्धशर्मणः । करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्रो महाबलः ॥ कैकेय्यां श्रुतकीर्त्यान्तु जज्ञे सन्तर्दनः पुनः । चेकितानबृहत्क्षत्त्रौ तथैवाऽन्यौमहाबलौ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ भ्रातरौ सुमहाबलौ । श्रुतश्रवायां चैद्यस्तु शिशुपालोबभूवह दमघोषस्य राजर्षेः पुत्रो विख्यातपौरुषः । यः पुराऽऽसीद्दशग्रीवः सम्बभूवारिमर्दनः पटुश्रवानुजस्तस्य रुजकन्यानुजस्तथा । पत्न्यस्तु वसुदेवस्य त्रयोदश वराङ्गनाः ॥ पौरवी रोहिणी चैव मदिरा चापरा तथा । तथैव भद्रा वैशाखी देवकी सप्तमीतथा

सुगन्धिर्वनराजी च द्वे चान्ये परिचारिके ।

रोहिणी पौरवी चैव वाल्मीकस्याऽऽत्मजाऽभवत् ॥ १६१ ॥

ज्येष्ठा पत्नीमहाभागादयिताऽऽनकदुन्दुभेः । ज्येष्ठं लेभे सुतं रामंसारणंनिशवंतथा दुर्दमं दमनं शुभ्रं पिण्डारककुशीतकौ । चित्रां नाम कुमारीञ्च रौहिण्यष्टौ व्यजायत

पौत्रौ रामस्य जज्ञाते विज्ञातौ निशितोत्सुकौ ।

पार्श्वी च पार्श्वनन्दी च शिशुः सत्यधृतिस्तथा ॥ १६४ ॥

मन्दवाह्योऽथ रामाणगिरिकौ गिर एव च । शुक्लगुल्मेति गुल्मश्च दरिद्रान्तक एव च कुमार्यश्चापि पञ्चाद्या नामतस्तानिबोधत । अर्चिष्मतीसुनन्दा च सुरसासुवचास्तथा तथा शतबला चैषु सारणस्य सुतास्त्विमाः । भद्राश्वो भद्रगुप्तिश्च भद्रविद्यस्तथैव च

भद्रबाहुर्भद्ररथो भद्रकल्पस्तथैव च । सुपार्श्वकः कीर्तिमांश्च रोहिताश्वश्च भद्रजः ॥
दुर्मदश्चाभिभूतश्च रोहिण्याःकुलजाःस्मृताः । नन्दोपनन्दौ मित्रश्चकुक्षिमित्रस्तथाचलः
चित्रोपचित्रे कन्येच स्थितः पुष्टिरथाऽपरः । मदिरायाःसुता ह्येते सुदेवोऽथ विजज्ञिरे
उपबिम्बोऽथ बिम्बश्च सत्त्वदन्तमहौजसः । चत्वार एते विख्याताभद्रापुत्रामहाबलाः
वैशाख्यांसमदाच्छौरिःपुत्रंकौशिकमुत्तमम् । देवक्यांजज्ञिरेशौरिःसुषेणःकीर्तिमानपि
तदयो भद्रसेनश्च यज्ञुदायश्च पञ्चमः । षष्ठो भद्रविदेकस्य कंसः सर्वाञ्जघान तान् ॥
अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान्सम्बभूव ह । लोकनाथः पुनर्विष्णुः पूर्वकृष्णःप्रजापतिः

अनुजाताऽभवत्कृष्णा सुभद्रा भद्रभाषिणी ।
कृष्ण सुभद्रेति पुनर्व्याख्याता वृष्णिनन्दिनी ॥ १७५ ॥

सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत । वसुदेवस्य भार्यासु महाभागासु सप्तसु ॥
ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तान्निबोधत ॥ १७६ ॥

अतोऽस्य सहदेवायां शूरो जज्ञे भयासखः । शार्ङ्गदेवाऽजनत्तम्बुं शौरी जज्ञेकुलोद्वहम्
उपसङ्गं वसुं चापि तनयौ देवरक्षितौ । एवं दश सुतास्तस्य कंसस्तानप्यघातयत् ॥
विजयं रोचनं चैव वर्धमानं तथैव च । एतान्सर्वान्महाभागानुपदेवा व्यजायत ॥

स्वगाहवं महात्मानं वृकदेवी त्वजायत ।
आगाही च स्वसा चैव सुरूपा शिशिरायिणी ॥ १८० ॥

सप्तमं देवकी पुत्रं सुनासा सुषुवे भुवम् । गवेषणं महाभागं सङ्ग्रामे चित्रयोधिनम्
श्राद्धदेवं पुरा येन वनं विरचितं द्विजाः । सैव्यायामददाच्छौरिः पुत्रंकौशिकमव्ययम्
सुगन्धी व(न्धर्व)नराजीचशौरेरास्तांपरिग्रहः । पुण्ड्रश्चकपिलश्चैववसुदेवात्मजौहितौ

तयोराजाऽभवत्पुण्ड्रः कपिलस्तु वनं ययौ ॥ १८३ ॥

तस्यां समभवद्वीरो वसुदेवात्मजो बली । राजानाम निषादोऽसौ प्रथमः स धनुर्धरः
विख्यातो देवरातस्य महाभागः सुतोऽभवत् । पण्डितानां मतं प्राहुर्देवश्रवसमुद्भवम्
अस्मक्यां लभते पुत्रमनाद्दृष्टिं यशस्विनम् । निवर्तः शक्रशत्रुघ्नं श्राद्धदेवं महाबलम्
अजायत श्राद्धदेवो निषधादिर्यतः श्रुतः । एकलव्यो महावीर्यो निषादैः परिवर्धितः

गण्डूषायानपत्याय कृष्णस्तुष्टोऽददात्सुतौ । चारुदेष्णश्च साम्बश्च कृतास्त्रौ शस्तलक्षणौ
तन्तिजस्तन्तिमालश्च स्वपुत्रौ कनकस्य तु । वस्तावनेस्त्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान्
सौतिर्ददौ सुतं वीरं शौरिं कौशिकमेव च ॥ १८६ ॥
तापश्च कोधनुश्चैव विरजाः श्यामसृञ्जिमौ । अनपत्योऽभवच्छ्यामः श्यामकस्तु वनं ययौ
जुगुप्समानो भोजत्वं राजर्षित्वमवाप्नुयात् ॥ १६० ॥
य इदं जन्म कृष्णस्य पठेत नियतव्रतः । श्रावयेद्ब्राह्मणश्चापि सुमहत्सुखमाप्नुयात्
देवदेवो महातेजाः पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः । विहारार्थं मनुष्येषु जज्ञे नारायणः प्रभुः
देवक्यां वसुदेवेन तपसा पुष्करेक्षणः । चतुर्बाहुस्तु सञ्जज्ञे दिव्यरूपः श्रियाऽन्वितः ॥
प्रकाशो भगवान्योगी कृष्णो मानुषमागतः ।
अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थः स एव भगवान्प्रभुः ॥ १६४ ॥
नारायणो यतश्चक्रे प्रभवं चाऽव्ययो हि सः । देवो नारायणो भूत्वा हरिरासीत्सनातनः
योऽसृजच्चाऽऽदिपुरुषं पुरा चक्रे प्रजापतिम् । अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दनः ॥
देवो विष्णुरिति ख्यातः शक्रादवरजोऽभवत् ॥ १६६ ॥
प्रसादजं यस्य विभोरदित्याः पुत्रकारणम् । वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम्
ययातिवंशजस्याऽथ वसुदेवस्य धीमतः । कुलं पुण्यं यतः कर्म भेजे नारायणः प्रभुः
सागराः समकम्पन्त चेलुश्च धरणीधराः । जज्वलुश्चाग्निहोत्राणि जायमाने जनार्दने
शिवाश्च प्रववुर्वाताः प्रशान्तमभवद्रजः । ज्योतींष्यभ्यधिकं रेजुर्जायमाने जनार्दने ॥
अभिजिन्नाम नक्षत्रं जयन्ती नाम शर्वरी । मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दनः
अव्यक्तः शाश्वतः कृष्णो हरिर्नारायणः प्रभुः । जायते स्मैव भगवान्नयनैर्मोहयन्प्रजाः
आकाशात्पुष्पवृष्टीश्च ववर्ष त्रिदशेश्वरः । गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिः स्तुवन्तो मधुसूदनम्
महर्षयः सगन्धर्वा उपतस्थुः सहस्रशः ॥ २०३ ॥
वसुदेवस्तु तं रात्रौ जातं पुत्रमधोक्षजम् । श्रीवत्सलक्षणं दृष्ट्वा दिवि दिव्यैः सुलक्षणैः
उवाच वसुदेवः स्वं रूपं संहर वै प्रभो ॥ २०४ ॥
भीतोऽहं कंसतस्तात एतदेव ब्रवीम्यहम् । मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्तेऽद्भुतदर्शनाः

वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं संहृतवान्प्रभुः । अनुज्ञातः पिता त्वेनं नन्दगोपगृहं गतः ॥
उग्रसेनमते तिष्ठन्यशोदायै तदा ददौ ॥ २०६ ॥

तुल्यकालन्तु गर्भिण्यौ यशोदा देवकी तथा । यशोदानन्दगोपस्यपत्नीसानन्दगोपतेः
यामेव रजनीं कृष्णो जज्ञे वृष्णिकुलप्रभुः । तामेव रजनीं कन्यांयशोदाऽपिव्यजायत
तं जातं रक्षमाणस्तु वसुदेवो महायशाः । प्रादात्पुत्रं यशोदायै कन्यान्तुजगृहेस्वयम्
दत्त्वैनं नन्दगोपस्य रक्षमामितिचाब्रवीत् । सुतस्ते सर्वकल्याणोयादवानांभविष्यति
अयं स गर्भो देवक्या अस्मत्क्लेशान्हनिष्यति ॥ २१० ॥

उग्रसेनात्मजे ताञ्च कन्यामानकदुन्दुभिः । निवेदयामास तदा कन्येति शुभलक्षणा
स्वसायां तनयां कंसो जातां नैवाऽवधारयत् ।
अथ तामपि दुष्टात्मा ह्युत्ससर्ज मुदाऽन्वितः ॥ २१२ ॥

हता वै या यदा कन्या जपत्येष वृथामतिः । कन्या सावबृधेतत्र वृष्णिसद्मनिपूजिता
पुत्रवत्परिपाल्यान्तो देवा देवान्यथातदा(?) ।
तामेव विधिनोत्पन्नामाहुः कन्यां प्रजापतिम् ॥ २१४ ॥

एकादशा तु जज्ञे वै रक्षार्थं केशवस्य ह । तां वै सर्वे सुमनसः पूजयिष्यन्ति यादवाः
देवदेवो दिव्यवपुः कृष्णः संरक्षितोऽनया ॥ २१५ ॥

ऋषय ऊचुः

किमर्थं वसुदेवस्य भोजः कंसो नराधिपः । जघानपुत्रान्बालान्वैतन्नोव्याख्यातुमर्हसि

सूत उवाच

शृणुध्वं वै यथाकंसःपुत्रानानकदुन्दुभेः । जाताञ्जातान्शिशून्सर्वान्निष्पिपेषवृथामतिः
भयाद्यथा महाबाहुर्जातः कृष्णोविवासितः । तथा च गोषुगोविन्दःसंवृद्धःपुरुषोत्तमः
उक्तं हि किल देवक्या वसुदेवस्यधीमतः । सारथ्यंकृतवान्कंसोयुवराजस्तदाऽभवत्
ततोऽन्तरिक्षे वागासीद्दिव्या भूतस्य कस्यचित् ।
कंसो यथा सदा भीतः पुष्कला लोकसाक्षिणी ॥ २२० ॥

यामेतां वहसे कंस रथेनपरकारणात् । अस्या यः सप्तमो गर्भः स ते मृत्युर्भविष्यति

तां श्रुत्वा व्यथितो वाणीं तदा कंसो वृथामतिः ।
निष्क्रस्य(ष्कृष्य)खड्गं तां कन्यां हन्तुकामोऽभवत्तदा ॥ २२२ ॥
तमुवाच महाबाहुर्वसुदेवः प्रतापवान् । उग्रसेनात्मजं कंसं सौहृदात्प्रणयेन च ॥
न स्त्रियं क्षत्त्रियो जातु हन्तुमर्हति कश्चन । उपायः परिदृष्टोऽत्र मया यादवनन्दन ॥
योऽस्याः सम्भवते गर्भः सप्तमः पृथिवीपते ॥ तमहन्तेप्रयच्छामि तत्र कुर्यायथाक्रमम्
त्वंत्विदानींयथेष्टत्वं वर्तैथाभूरिदक्षिणा । सर्वानस्यास्तुवैगर्भान्सत्यंनेष्यामितेवशम्
एवं मिथ्या नरश्रेष्ठ वागेषा न भविष्यति । एवमुक्तोऽनुनीतः स जग्राह तनयांस्तदा
वसुदेवश्चतां भार्यामवाप्यमुदितोऽभवत् । कंसश्चास्यावधीत्पुत्रान्पापकर्मावृथामतिः

ऋषय ऊचुः

क एष वसुदेवश्च देवकी च यशस्विनी । नन्दगोपस्तु कस्त्वेष यशोदा च महायशाः
यो विष्णुं जनयामास या चैनं चाऽभ्यवर्धयत् ॥ २२९ ॥

सूत उवाच

पुरुषाः कश्यपस्त्वाऽऽसन्नादित्यास्तुस्त्रियस्तथा ।
अथ कामान्महाबाहुर्देवक्याः समवर्धयत् ॥ २३० ॥
अचरत्स महीं देवः प्रविष्टो मानुषीं तनुम् । मोहयन्सर्वभूतानि योगात्मायोगमायया
नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुलेस्वयम् । कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणांप्रणाशनम्
आहृता रुक्मिणी कन्या सत्या नग्नजितस्तदा ।
सात्राजिती सत्यभामा जाम्बवत्यपि रोहिणी ॥ २३३ ॥
सै(शै)व्या सुदेवी माद्री च सुशीला नाम चाऽपरा ।
कालिन्दी मित्रविन्दा च लक्ष्मणा जालवासिनी ॥ २३४ ॥
एवमादीनि देवीनां सहस्राणिच षोडश । चतुर्दश तु ये प्रोक्तागणाश्चाऽप्सरसांदिवि
विचिन्त्य देवैः शक्रेण विशिष्टस्त्विह प्रेषिताः ॥ ३२५ ॥
पत्न्यर्थंवासुदेवस्यउत्पन्नाराजवेश्मसु । एताःपत्न्योमहाभागाविष्वक्सेनस्यविश्रुताः
प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च सुदेष्णः शरभस्तथा । चारुश्च चारुभद्रश्च भद्रचारुस्तथाऽपरः ॥

चारुविन्ध्यश्च रुक्मिण्यां कन्या चारुमही तथा।
सानुर्भानुस्तथाऽक्षश्च रोहितो मन्त्रयस्तथा ॥ २३८ ॥
जरान्धकस्ताम्रवक्षा भौमरिश्चजरन्धमः । चतस्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारोगरुडध्वजात्
भानुर्भौमरिका चैव ताम्रपर्णी जरन्धमा । सत्यभामासुतानेताञ्जाम्बवत्याः प्रजाःश्रृणु
भद्रश्च भद्रगुप्तश्च भद्रविन्द्रस्तथैवच । सप्तबाहुश्च विख्यातः कन्या भद्रावती तथा ॥
सम्बोधनी च विख्याता ज्ञेया जाम्बवतीसुता ॥ २४१ ॥
सङ्ग्रामजिच्च शतजित्तथैवचसहस्रजित् । एते पुत्राःसुदेव्याश्च विष्वक्सेनस्यकीर्तिताः
वृकोवृकश्वोवृकजिद्वृजिनीचसुराङ्गना । मित्रबाहुःसुनीथश्चनाग्नजित्याःप्रजास्त्विह
एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोधत । प्रयुतं तु समाख्यातं वासुदेवस्यये सुताः
अयुतानि तथाऽष्टौ च शूरा रणविशारदाः । जनार्दनस्यवंशोवःकीर्तितोऽयंयथातथम्
वृहतीनर्तकोन्नेयी सुनये सङ्गता तथा । कन्या सा वृहदुक्थस्य शैनेयस्यमहात्मनः
तस्याःपुत्रास्तुविख्यातास्त्रयः समितिशोभनाः । अङ्गदःकुमुदःश्वेतःकन्याश्वेतातथैवच
अवगाहश्च चित्रश्च शूरश्चित्रवरश्चयः । चित्रसेनः सुतश्चाऽस्य कन्या चित्रवती तथा
तुम्बश्चतुम्बवाणश्चजनस्तस्बश्च तावुभौ । उपाङ्गस्य स्मृतौ द्वौ तु वज्रारःक्षिप्रएवच
भूरीन्द्रसेनो भूरिश्च गवेषस्य सुतावुभौ । युधिष्ठिरस्य कन्या तु सुतनुर्नाम विश्रुता
तस्यामश्वसुतोजज्ञेवज्रोनाममहायशाः । वज्रस्यप्रतिकाह्वस्तुसुचारुस्तस्यचाऽऽत्मजः
काश्मा(काश्याःसु) सुपार्श्वं तनयं जज्ञे साम्बा तरस्विनम् ।
तिस्रः कोट्यस्तु पुत्राणां यादवानां महात्मनाम् ॥ २५२ ॥
षष्टिशतसहस्राणि वीर्यवन्तो महाबलाः । देवांशाः सर्वएवेह उत्पन्नास्तेमहौजसः ॥
देवासुरे हता ये च असुरा वै महातपाः । इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधन्ते सर्वमानवान्
तेषामुत्सादनार्थं तु उत्पन्ना यादवे कुले ॥ २५४ ॥
कुलानि दश चैकं च यादवानां महात्मनाम् । सर्वमेककुलं यद्वद्वर्तते वैष्णवे कुले ॥
विष्णुस्तेषांप्रमाणेचप्रभुत्वेचव्यवस्थितः । निदेशस्थायिभिस्तस्यबध्यन्तेसर्वमानुषाः
इति प्रसूतिर्वृष्णीनां समासव्यासयोगतः ।

कीर्तिता कीर्तनाच्चैव कीर्तिसिद्धिमभीप्सिताम् ॥ २५७ ॥

य इमं कृष्णवंशस्य सुचरित्रस्य धीमतः । स्वर्गापवर्गदं श्रेष्ठं महापातकनाशनम् ॥

अपुत्रो लभते पुत्रं वित्तार्थी वित्तमाप्नुयात् ॥ २५८ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे विष्णुवंशानुकीर्तनं नाम

षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

श्रीविष्णुमाहात्म्ये कृष्णप्रादुर्भावकारणविषये ऋषीणां जिज्ञासा सूतस्य च तत्प्रश्नोत्तरवर्णनसहितं कृष्णचरित्रवर्णनम्

सूत उवाच

मुख्यप्रकृतीन्देवान्कीर्त्यमानान्निबोधत । संकर्षणोवासुदेवः प्रद्युम्नः साम्ब एव च ॥

अनिरुद्धश्च पञ्चैते वंशवीराः प्रकीर्तिताः । सप्तर्षयः कुबेरश्च यक्षोमणिवरस्तथा ॥

शालकी वदरश्चैव विद्वान्धन्वन्तरिस्तथा । नन्दिनश्च महादेवः शालङ्कायनउच्यते ॥

आदिदेवस्तदा जिष्णुरेभिश्च सह दैवतैः ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः

विष्णुःकिमर्थंसंभूतःस्मृताःसम्भूतयःकति। भविष्याःकतिवाऽन्येतुप्रादुर्भावामहात्मनः

ब्रह्मक्षेत्रेयुगान्तेषु किमर्थमिह जायते । पुनः पुनर्मनुष्येषु तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥

विस्तरेणैवसर्वाणि कर्माणि रिपुघातिनः । श्रोतुमिच्छामहेसम्यग्देहैःकृष्णस्यधीमतः

कर्मणामानुपूर्व्यंच प्रादुर्भावश्च ये प्रभोः । याचाऽस्यप्रकृतिःसूततांचास्मान्वक्तुमर्हसि

कथं स भगवान्विष्णुः सुरेष्वरिनिषूदनः । वसुदेवकुले धीमान्वासुदेवत्वमागतः ॥

अमरैः सूत किं पुण्यं पुण्यकृद्भिरलं कृतम् ।

देवलोकं समुत्सृज्य मर्त्यलोकमिहाऽऽगतः ॥ ९ ॥

देवमानुषयोर्नेता भूर्भुवःप्रसवो हरिः । किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुषे समवेशयत् ॥१०

यश्चक्रं वर्तयत्येको मनुष्याणां मनोमयम्। मनुष्ये स कथं बुद्धिं चक्रे चक्रभृतां वरः
गोपायनं यः कुरुते जगतां सार्वलौकिकम्। स कथं गां गतो विष्णुर्गोपत्वमकरोत्प्रभुः
महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार ह। श्रीगर्भः स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया धृतः
येन लोकान्क्रमैर्जित्वा त्रिभिस्त्रींस्त्रिदशेप्सया। स्थापितो जगतो मार्गास्त्रिवर्गप्रवरास्त्रयः
योऽन्तकाले जगत्पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपुः। लोकमेकार्णवं चक्रे दृश्यादृश्येन वर्त्मना
यः पुराणे पुराणात्मा वाराहं वपुरास्थितः। ददौ जित्वा वसुमतीं सुराणां सुरसत्तमः
येन सैंहं वपुः कृत्वा द्विधा कृत्वा च यत्पुनः। पूर्वं दैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुर्हतः

यः पुरा ह्यनलो भूत्वा और्वः सम्वर्तको विभुः।
पातालस्थोऽर्णवगतः पपौ तोयमयं हविः॥ १८॥

सहस्रचरणं देवं सहस्रांशुं सहस्रशः। सहस्रशिरसं देवं यमाहुर्वै युगे युगे॥ १९
नाभ्यारण्यां समुद्भूतं यस्य पैतामहं गृहम्। एकार्णवगते लोके तत्पङ्कजमपङ्कजम्।
येन ते निहता दैत्याः सङ्ग्रामे तारकामये। सर्वदेवमयं कृत्वा सर्वायुधधरं वपुः
गरुडस्थेन चोत्सिक्तः कालनेमिर्निपातितः। उत्तरांशे समुद्रस्य क्षीरोदस्याऽमृतोदधेः

यः शेते शाश्वतं योगमास्थाय तिमिरं महत॥ २२॥
पुरारणी गर्भमधत्त दिव्यं तपःप्रकर्षाददितिः पुरा यम्।
शक्रं च यो दैत्यगणावरुद्धं गर्भावमानेन भृशं चकार॥ २३॥
यदाऽनिलो लोकपदानि हृत्वा चकार दैत्यान्सलिलेशयांस्तान्।
कृत्वाऽऽदिदेवस्त्रिदिवस्य देवांश्चक्रे सुरेशं पुरुहूतमेव॥ २४॥

गार्हपत्येन विधिना अन्वाहार्येण कर्मणा। अग्निमाहवनीयं च वेदिं चैव कुशस्रुवम्॥
प्रोक्षणीयं स्रुवं चैव अवभृथ्यं तथैव च। अथ त्रीनिह यश्चक्रे हव्यभागप्रदान्मखे॥
हव्यादांश्च सुरांश्चक्रे कव्यादांश्च पितॄनपि। भोगार्थं यज्ञविधिना यो यज्ञो यज्ञकर्मणि
यूपान्समित्स्रुवं सोमं पवित्रं परिधीनपि। यज्ञियानिच द्रव्याणि यज्ञियांश्च तथाऽनलान्
सदस्यान्यजमानांश्च अश्वमेधान्क्रतूत्तमान्। विबभ्राज पुरा यश्च पारमेष्ठ्येन कर्मणा

युगानुरूपं यः कृत्वा त्रीँल्लोकान्हि यथाक्रमम्।

क्षणा निमेषाः काष्ठाश्च कलास्त्रैकालमेव च ॥ ३० ॥

मुहूर्तास्तिथयो मासा दिनसम्वत्सरं तथा । ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणंत्रिविधं नृषु आयुः क्षेत्राण्युपचयं लक्षणं रूपसौष्ठवम् । मेधा वित्तंच शौर्यंच शास्त्रस्यैवचपारणम्

त्रयो वर्णास्त्रयो लोकास्त्रैविद्यं पावकास्त्रयः ।

त्रैकाल्यं त्रीणि कर्माणि तिस्रो मायास्त्रयो गुणाः ॥ ३३ ॥

सृष्टा लोकाः सुराश्चैव येनाऽऽनन्त्येन कर्मणा । सर्वभूतगणाःसृष्टाःसर्वभूतगणात्मना नृणामिन्द्रियपूर्वेण योगेन रमते च यः । गतागतानां यो नेता सर्वत्र विविधेश्वरः ॥ यो गतिर्धर्मयुक्तानामगतिः पापकर्मणाम् । चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुवर्ण्यस्य रक्षिता चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चातुराश्रम्यसंश्रयः । दिगन्तरं नभोभूमिरापो वायुर्विभावसुः चन्द्रसूर्यद्वयं ज्योतिर्युगेशः क्षणदाचरः । यः परः श्रूयते देवो यः परं श्रूयते तपः॥३८॥ यः परं तपसः प्राहुर्यः परंपरमात्मवान् । आदित्यादिस्तुयो देवोयश्चदैत्यान्तकोविभुः युगान्तेष्वन्तकोयश्चयश्चलोकान्तकान्तकः। सेतुर्योलोकसेतूनांमेध्योयोमेध्यकर्मणाम् वेद्यो यो वेदविदुषां प्रभुर्यःप्रभवात्मनाम् । सोमभूतस्तु भूतानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम् मनुष्याणां मनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम् । विनयो नयतृप्तानां तेजस्तेजस्विनामपि॥ विग्रहो विग्रहाणां यो गतिर्गतिमतामपि । आकाशप्रभवो वायुर्वायुप्राणो हुताशनः॥

देवा हुताशनप्राणाः प्राणोऽग्नेर्मधुसूदनः ।

रसाच्छोणितसम्भूतिः शोणितान्मांसमुच्यते ॥ ४४ ॥

मांसात्तु मेदसो जन्म मेदसोऽस्थिनिरूप्यते । अस्थ्नोमज्जासमभवन्मज्जातःशुक्रसम्भवः शुक्राद्गर्भः समभवद्रसमूलेन कर्मणा । तत्राऽपि प्रथमं चाऽऽपस्ताः सौम्यराशिरुच्यते गर्भोष्मसम्भवो ज्ञेयोद्वितीयोराशिरुच्यते । शुक्रंसोमात्मकंविद्यादार्तवंपावकात्मकम् भावौ रसानुगावेतौ वीर्यें च शशिपावकौ । कफवर्गेऽभवच्छुक्रं पित्तवर्गेचशोणितम् कफस्य हृदयं स्थानं नाभ्यां पित्तं प्रतिष्ठितम् । देहस्य मध्ये हृदयंस्थानंतुमनसःस्मृतम् नाभीकोष्ठान्तरं यत्तु तत्र देवो हुताशनः । मनः प्रजापतिर्ज्ञेयः कफःसोमो विभाव्यते पित्तमग्निः स्मृतावेतावग्नीषोमात्मकं जगत् । एवं प्रवर्तितो गर्भो वर्ततेऽम्बुदसन्निभः

वायुः प्रवेशनं चक्रे सङ्गतः परमात्मना । स पञ्चधा शरीरस्थो विद्यते वर्धयेत्पुनः ॥
प्राणापानौ समानश्च उदानो व्यानएवच । प्राणोऽस्य परमात्मानं वर्धयन्परिवर्तते॥
अपानः पश्चिमं कायमुदानोर्ध्वंशरीरगः । व्यानो व्यानस्यते येन समानः सर्वसन्धिषु
भूतावाप्तिस्ततस्तस्यजायतेन्द्रियगोचरा । पृथिवी वायुराकाशमापोज्योतिश्चपञ्चमम्

सर्वेन्द्रिया निविष्टास्तं स्वं स्वं योगं प्रचक्रिरे ।
पार्थिवं देहमाहुस्तं प्राणात्मानं च मारुतम् ॥ ५६ ॥

छिद्राण्याकाशयोनीनिजलाश्रावंप्रवर्तते। तेजश्चक्षुष्विताज्योत्स्नातेषांयन्नामतःस्मृतम्

सङ्ग्रामा विषयाश्चैव यस्य वीर्यात्प्रवर्तिताः ॥ ५७ ॥

इत्येतान्पुरुषः सर्वान्सृजल्लोकान्सनातनः । नैधनेऽस्मिन्कथं लोकेनरत्वंविष्णुरागतः
एष नः संशयो धीमन्नेष वै विस्मयो महान् । कथं गतिर्गतिमतामापन्नोमानुषींतनुम्
श्रोतुमिच्छामहे विष्णोः कर्माणिचयथाक्रमम् । आश्चर्याणिपरंविष्णुर्वेददेवैश्चकथ्यते
विष्णोरुत्पत्तिमाश्चर्यं कथयस्व महामते । एतदाश्चर्यमाख्यानं कथ्यतां वै सुखावहम्

प्रख्यातबलवीर्यस्य प्रादुर्भावा महात्मनः ।
कर्मणाऽऽश्चर्यभूतस्य विष्णोः सत्त्वमिहोच्यताम् ॥ ६२ ॥

सूत उवाच

अहं वः कीर्तयिष्यामि प्रादुर्भावं महात्मनः । यथा स भगवाञ्जातोमानुषेषुमहातपाः
सप्तसप्ततयः प्रोक्ता भृगुशापेन मानुषे । जायते च युगान्तेषु देवकार्यार्थसिद्धये ॥६४॥
तस्य दिव्यतनुं विष्णोर्गदतो मे निबोधत । युगधर्मे परावृत्ते काले च शिथिलेप्रभुः
कर्तुं धर्मव्यवस्थानं जायते मानुषेष्विह । भृगोः शापनिमित्तेन देवासुरकृतेन च ॥६६

ऋषय ऊचुः

कथं देवासुरकृतेअध्याहारमवाप्नुयात् । एतद्वेदितुमिच्छामो वृत्तं दैवासुरं कथम् ॥

सूत उवाच

दैवासुरं यथा वृत्तं ब्रुवतस्तन्निबोधत । हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्त्रैलोक्यं प्राक्प्रशासति ॥
बलिनाऽधिष्ठितं राष्ट्रं पुनर्लोकत्रये क्रमात् । सख्यमासीत्परं तेषां देवानामसुरैः सह

युगं वै दशसंकीर्णमासीदव्याहतं जगत् । निदेशस्थायिनश्चैव तयोर्देवासुराभवन् ॥
बलवान्वै विवादोऽयं संप्रवृत्तः सुदारुणः । देवासुराणां च तदा घोरक्षयकरो महान्
तेषां दायनिमित्तं वै सङ्ग्रामा बहवोऽभवन् ।
वराहेऽस्मिन्दश द्वौ च षण्डामर्कान्तगाः स्मृताः ॥ ७२ ॥
नामतस्तु समासेन शृणुध्वं तान्विवक्षतः । प्रथमोनारसिंहस्तु द्वितीयश्चापिवामनः
तृतीयः स तु वाराहश्चतुर्थोऽमृतमन्थनः । सङ्ग्रामः पञ्चमश्चैव सुघोरस्तारकामयः
षष्ठो ह्याडीवकस्तेषां सप्तमस्त्रैपुरःस्मृतः । अन्धकारोऽष्टमस्तेषां ध्वजश्चनवमःस्मृतः
वार्तश्च दशमो ज्ञेयस्ततो हालाहलःस्मृतः । स्मृतो द्वादशमस्तेषां घोरकोलाहलोऽपरः
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो नरसिंहेन सूदितः । वामनेन बलिर्बद्धस्त्रैलोक्याक्रमणे कृते ॥
हिरण्याक्षो हतो द्वन्द्वे प्रतिवादे तु दैवतैः । महाबलोमहासत्त्वःसङ्ग्रामेष्वपराजितः
दंष्ट्रायां तु वराहेण समुद्राद्भूर्यदा कृता । प्राह्लादो निर्जितो युद्धेइन्द्रेणामृतमन्थने ॥
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्नित्यमिन्द्रवधोद्यतः । इन्द्रेणैव स विक्रम्य निहतस्तारकामये ॥
अवादवध्यतांप्राप्यविशेषास्त्रादिभिस्तुयः । सङ्ग्रामेनिहतःषष्ठेशक्राविष्टेनविष्णुना
अशक्नुवन्तो देवेषु पुरं गोप्तुं त्रिदैवतम् । निहता दानवाः सर्वे त्रिपुरस्त्र्यम्बकेणतु
अष्टमे त्वसुराश्चैव राक्षसाश्चान्धकारकाः । जितदेवमनुष्यैस्तु पितृभिश्चैव संगतान्
संवृतान्दानवांश्चैव संगतान्कृत्स्नशश्च तान् । तथा विष्णुसहायेन महेन्द्रेण निवर्हिताः
हतो ध्वजो महेन्द्रेण मायाच्छन्नश्चयोधयन् । ध्वजेलक्ष्यंसमाविश्य विप्रचित्तिर्महाभुजः
दैत्यांश्च दानवांश्चैव संहतान्कृत्स्नशश्च तान् ।
रजिः कोलाहले सर्वान्देवैः परिवृतोऽजयत् ॥ ८५ ॥
यज्ञामृतेन विजितौ षण्डामर्कौ तु दैवतैः ॥ ८६ ॥
एते देवाः पुरा वृत्ताः सङ्ग्रामा द्वादशैव तु । देवासुरक्षयकराः प्रजानामशिवाय च॥
हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ । तथा शतसहस्राणि ह्यधिकानि द्विसप्ततिः
अशीतिं च सहस्राणि त्रैलोक्यस्येश्वरोऽभवत् ॥ ८८ ॥
पर्याये तस्य राजाऽनु बलिर्वर्षार्बुदं पुनः । षष्टिश्चैव सहस्राणि त्रिंशच्च नियुतानि च

बले राज्याधिकारस्तु यावत्कालं बभूव ह । प्रह्लादेन गृहीतोऽभूत्तावत्कालंतदाऽसुरैः
इन्द्रास्त्रयस्ते विख्याता असुराणां महौजसः । दैत्यसंस्थमिदंसर्वमासीद्दशयुगंकिल
असपत्नं ततः सर्वं राष्ट्रं दशयुगं पुरा । त्रैलोक्यमव्ययमिदं महेन्द्रेण तु पाल्यते ॥
प्रह्लादस्य ततश्चादस्त्रैलोक्यं कालपर्ययात् । पर्यायेणच संप्राप्तेत्रैलोक्ये पाकशासनः

ततोऽसुरान्परित्यज्य यज्ञे देवा उपागमन् ।
यज्ञेदेवानथगते काव्यं ते ह्यसुराब्रुवन् ॥ ६४ ॥

हतंनो मिषतां राष्ट्रं त्यक्त्वायज्ञं पुनर्गताः । स्थातुंन शक्नुमोह्यद्यप्रविशामोरसातलम्
एवमुक्तोऽब्रवीदेतान्विषण्णःसांत्वयन्गिरा । माभैष्टधारयिष्यामितेजसास्वेनचासुराः
वृष्टिरोधयश्चैव रसा वसु च यद्वयम् । कृत्स्ना मयि च तिष्ठन्तु पादस्तेषां सुरेषु वै

युष्मदर्थं प्रदास्यामि तत्सर्वं धार्यते मया ॥ ६७ ॥

ततो देवासुरान्दृष्ट्वा धृतान्काव्येन धीमता । अमन्त्रयंस्तदा ते वै संविग्नाविजिगीषया
एष काव्य इदं सर्वंव्यावर्तयतिनोबलात् । साधुगच्छामहेतूर्णंक्षीणानाप्यायस्वतान्

प्रसह्य हत्वा शिष्टान्वै पातालं प्रापयामहे ॥ ६६ ॥

ततो देवाः सुसंरब्धा दानवानभिसृत्य वै । जघ्नुस्तैर्वध्यमानास्तेकाव्यमेवाभिदुद्रुवुः
ततःकाव्यस्तुतान्दृष्ट्वातूर्णंदेवैरभिद्रुतान् । समरेऽस्त्रक्षतार्तांस्तान्देवेभ्यस्तान्दितेःसुतान्

काव्यो दृष्ट्वा स्थितान्देवांस्तत्र देवोऽभ्यचिन्तयत् ।
तानुवाच ततो ध्यात्वा पूर्ववृत्तमनुस्मरन् ॥ १०२ ॥

त्रैलोक्यं विजितं सर्वं वामनेन त्रिभिः क्रमैः । बलिर्बद्धो हतोजम्भोनिहतश्चविरोचनः
महार्हेषु द्वादशसु सङ्ग्रामेषु सुरैर्हताः । तैस्तैरुपायैर्भूयिष्ठा निहता ये प्रधानतः ॥

किञ्चिच्छिष्टास्तु वै यूयं युद्धेष्वन्त्येषु वै स्वयम् ।
नीतिं वो हि विधास्यामि कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ॥ १०५ ॥

यास्याम्यहं महादेवं मन्त्रार्थे विजयाय वः । अग्निमाप्याययेद्धोता मन्त्रैरेव बृहस्पतिः
ततोयास्याम्यहंदेवंमन्त्रार्थेनीललोहितम् । युष्माननुग्रहीष्यामिपुनःपश्चादिहाऽऽगतः
यूयं तपश्चरध्वम्वै संवृता वल्कलैर्वने । न वै देवा वधिष्यन्ति यावदागमनं मम ॥

प्रतीपांस्ततोमन्त्रान्देवात्प्राप्यमहेश्वरात् । योत्स्यामहेपुनर्देवांस्ततःप्राप्स्यथवैजयम्
ततस्ते कृतसंवादा देवानूचुस्ततोऽसुराः । न्यस्तवादा वयं सर्वे लोकान्यूयं क्रमन्तुवै
वयं तपश्चरिष्यामः संवृता वल्कलैर्वने । प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा सत्यव्याहरणन्तु तत

ततो देवा निवृत्ता वै विज्वरा मुदिताश्च ह ।
न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु स्वान्वै जग्मुर्यथाऽऽगतान् ॥ ११२ ॥
ततस्तानब्रवीत्काव्यः कञ्चित्कालमुपास्यताम् ।
निरुत्सुकैस्तपोयुक्तैः कालं कार्यार्थसाधकैः ॥
पितुर्ममाऽऽश्रमस्था वै सर्वे देवाः सवासवाः ॥ ११३ ॥

सन्दिश्यामसुरान्काव्यो महादेवं प्रपद्य च । प्रणम्यैनमुवाचाऽथजगत्प्रभवमीश्वरम्
मन्त्रानिच्छाम्यहं देव ये न सन्ति बृहस्पतौ । पराभवाय देवानामसुरेष्वभयावहान्
एवमुक्तोऽब्रवीद्देवो मन्त्रानिच्छसि वै द्विज । व्रतं चर मयोद्दिष्टं ब्रह्मचारी समाहितः
पूर्णं वर्षसहस्रं वै कुण्डधूममवाक्शिराः । यदि पास्यसिभद्रन्तेमत्तोमन्त्रमवाप्स्यसि॥
एवमुक्तो देवदेवेन स शुक्रस्तु महातपाः । पादौ संस्पृश्य देवस्य बाढमित्यभ्यभाषत
व्रतं चराम्यहं शेषंयथोद्दिष्टोऽस्मि वै प्रभो । ततो नियुक्तोदेवेनकुण्डधारोऽस्यधूमकृत्
असुराणां हितार्थाय तस्मिञ्शुक्रे गते तदा । मन्त्रार्थं तत्र वसति ब्रह्मचर्यं महेश्वरे ॥

तद्बुद्ध्वा नीतिपूर्वन्तु राज्यं न्यस्तं तदाऽसुरैः ।
तस्मिंश्छिद्रे तदाऽमर्षाद्देवास्तान्समभिद्रवन् ॥
निशितात्तायुधाः सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ १२१ ॥

दृष्ट्वाऽसुरगणा देवान्प्रगृहीतायुधान्पुनः । उत्पेतुःसहसा सर्वे सन्त्रस्तास्ते ततोऽभवन्
न्यस्तशस्त्रे जये दत्ते आचार्ये व्रतमास्थिते । सन्त्यज्य समयंदेवास्तेसपत्नजिघांसवः

अनाचार्यास्तु भद्रम्वो विश्वस्तास्तपसि स्थिताः ।
चीरवल्काजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः ॥ १२४ ॥

रणे विजेतुं देवान्वै न शक्ष्यामः कथञ्चन । अशुद्धेन(?) प्रपद्यामः शरणं काव्यमातरम्
ज्ञापयामःकृत्स्नमिदंयावदागमनंगुरोः । विनिवृत्तेततःकाव्येयोत्स्यामोयुध्यितान्सुरान्

एवमुक्त्वाऽसुरान्योग्यं शरणं काव्यमातरम्। प्रापद्यन्ततततोभीतास्तदाचैवतदाऽभयम्
दत्तं तेषान्तु भीतानां दैत्यानामभयार्थिनाम्। न भेतव्यं न भेतव्यं भयं त्यजतदानवाः
मत्सन्निधौवर्ततांम्वोनभीर्भवितुमर्हति। भयाच्चाप्यभिपन्नांस्तान्दृष्ट्वा देवाऽसुरांस्तदा
अभिजघ्नुः प्रसह्यैतानविचार्य बलाबलम्। तांस्त्रस्तान्वध्यमानांश्चदेवैर्दृष्ट्वाऽसुरांस्तदा
देवी क्रुद्धाऽब्रवीदेनाननिन्द्रत्वंकरोम्यहम्। संस्तभ्यशीघ्रंसंरम्भादिन्द्रंसाऽभ्यचरत्ततः
ततः संस्तम्भितं दृष्ट्वा शक्रं देवास्तु यूपवत्। व्यद्रवन्त ततो भीता दृष्ट्वाशक्रंवशीकृतम्
गतेषु सुरसंघेषु विष्णुरिन्द्रमभाषत। मां त्वं प्रविश भद्रन्ते नेष्यामि त्वां सुरेश्वर॥
एवमुक्तस्ततो विष्णुं प्रविवेश पुरन्दरः। विष्णुना रक्षितं दृष्ट्वा देवी क्रुद्धावचोऽवदत्
एषा त्वांविष्णुना सार्धंदहामिमघवानिव(?)। मिषतां सर्वभूतानांदृश्यतांमेतपोबलम्
तयाभिभूतौ तौ देवाविन्द्राविष्णू जजल्पतुः। कथं मुच्येवसहितौविष्णुरिन्द्रमभाषत
इन्द्रोऽब्रवीज्जहीह्येनां यावन्नौ न दहेद्विभो। विशेषेणाभिभूतोऽहमतस्त्वंजहिमाचिरम्
ततः समीक्ष्य तां विष्णुःस्त्रीवधंकर्तुमास्थितः। अभिध्यायततश्चक्रमापन्नःसत्वरंप्रभुः

तस्याः सत्वरमाणायाः शीघ्रकारी सुरारिहा।
स्त्रिया विष्णुस्ततो देव्याः क्रूरं बुद्ध्वा चिकीर्षितम्॥
क्रुद्धस्तदस्त्रमाविध्य शिरश्चिच्छेद माधवः॥ १३६॥

तं दृष्ट्वा स्त्रीवधं घोरं चुकोप भृगुरीश्वरः। ततोऽभिशप्तो भृगुणा विष्णुर्भार्यावधेतदा
यस्मात्ते जानताधर्मानवध्यास्त्रीनिषूदिता। तस्मात्त्वंसप्तकृत्वो वै मानुषेषुप्रवत्स्यसि
ततस्तेनाभिशापेन नष्टे धर्मे पुनः पुनः। लोके सर्वहितार्थाय जायते मानुषेष्विह॥
अनुव्याहृत्य विष्णुं स तदादाय शिरःस्वयम्। समानीय ततः कायेअपोगृह्येदमब्रवीत्
एषत्वांविष्णुनासत्येहतांसञ्जीवमयाम्यहम्। यदिकृत्स्नोमयाधर्मश्चरितोज्ञायतेऽपिवा

तेन सत्येन जीवस्व यदि सत्यं ब्रवीम्यहम्॥ १४४॥
सत्याभिव्याहृता तस्य देवी सञ्जीविता तदा।
तदा तां प्रोक्ष्य शीताभिरद्भिर्जीवेति सोऽब्रवीत्॥ १४५॥

ततस्तांसर्वभूतानिदृष्ट्वासुप्तोत्थितामिव। साधुसाध्वीत्यदृश्यानांवाचस्ताःसस्वनुर्दिशः

दृष्ट्वा सञ्जीवितामेवं देवीं तां भृगुणा तदा । मिषतां सर्वभूतानां तदद्भुतमिवाऽभवत्
असम्भ्रान्तेन भृगुणा पत्नीं सञ्जीवितां ततः । दृष्ट्वा शक्रो न लेभेऽथशर्मकाव्यभयात्ततः
प्रजागरैततश्चेन्द्रोजयन्तीमात्मनःसुताम् । प्रोवाचमतिमान्वाक्यंस्वांकन्यांपाकशासनः
एष काव्यो ह्यनिन्द्राय चरते तारुणं तपः । तेनाहं व्याकुलः पुत्रि कृतोधृतिमताद्दृढम्
गच्छ सम्भावयस्वैनं श्रमापनयनैः शुभैः । तैस्तैर्मनोनुकूलैश्च ह्युपचारैरतन्द्रिता ॥
देवी सा हीन्द्रदुहिताजयन्तीशुभचारिणी । युक्तध्यानश्चशाम्यन्तंदुर्बलंधृतिमास्थितम्

पित्रा यथोक्तं काव्यं सा काव्ये कृतवती तदा ।
गीर्भिश्चैवाऽनुकूलाभिः स्तुवती वल्गुभाषिणी ॥ १५३ ॥

गात्रसंवाहनैः काले सेवमाना सुखावहैः । शुश्रूषन्त्यानुकूला च उवास बहुलाःसमाः
पूर्णेधूम्रव्रते चापिघोरे वर्षसहस्रिके । वरेण च्छन्दयामास काव्यं प्रीतो भवस्तदा ॥
एवं व्रुवंस्त्वयैकेन चीर्णं नान्येन केनचित् । तस्मात्त्वं तपसा बुद्ध्याश्रुतेनचबलेनच
तेजसा चापि विबुधान्सर्वानभिभविष्यसि । यच्च किञ्चिन्मम व्रह्मन्विद्यते भृगुनन्दन
साङ्गञ्च सरहस्यञ्च यज्ञोपनिषदां तथा । प्रतिभास्यतितेसर्वंतच्चाऽऽख्यन्तंनकस्यचित्
सर्वाभिभावीतेन त्वं द्विजश्रेष्ठोभविष्यसि । एवं दत्त्वा वरांस्तस्मैभार्गवाय पुनःपुनः
अजेयत्वंधनेशत्वमवध्यत्वं च वै ददौ । एताँल्लब्ध्वा वरान्काव्यः संप्रहृष्टतनूरुहः ॥
हर्षात्प्रादुर्बभौ तस्यदेवस्तोत्रंमहेश्वरम् । तदा तिर्यक्स्थितस्त्वेवंतुष्टुवे नीललोहितम्
नमोऽस्तु शितकण्ठाय सुरूपाय सुवर्चसे । रिरिहाणाय लोपाय वत्सराय जगत्पते
कपर्दिने ह्यूर्ध्वरोम्णे हयाय करणाय च । संस्कृताय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ॥
उष्णीषिणे सुवक्त्राय सहस्राक्षाय मीढुषे । वसुरेताय रुद्राय तपसे चीरवाससे ॥
ह्रस्वाय मुक्तकेशाय सेनान्ये रोहिताय च । कवये राजवृद्धाय तक्षकक्रीडनाय च

गिरिशायाऽर्कनेत्राय यतिने जाम्बवाय च ।
सुवृत्ताय सुहस्ताय धन्विने भार्गवाय च ॥ १६६ ॥

सहस्रबाहवे चैव सहस्रामलचक्षुषे । सहस्रकुक्षये चैव सहस्रचरणाय च ॥ १६७ ॥
सहस्रशिरसे चैव बुहुरूपाय वेधसे । भवाय विश्वरूपाय श्वेताय पुरुषाय च ॥१६८॥

निषङ्गिणे कवचिने सूक्ष्मायक्षपणाय च । ताम्राय चैव भीमाय उग्राय च शिवाय च
बभ्रवे च पिशङ्गाय पिङ्गलायाऽरुणाय च । महादेवाय शर्वाय विश्वरूपशिवायच ॥
हिण्याय च शिष्टाय श्रेष्ठाय मध्यमाय च । बभ्रवे च पिशङ्गाय पिङ्गलायारुणाय च
पिनाकिने चेषुमते चित्राय रोहिताय च ॥ १७१ ॥
दुन्दुभ्यायैकपादाय अर्हाय बुद्धये तथा । मृगव्याधाय सर्पाय स्थाणवे भीषणाय च
बहुरूपाय चोग्राय त्रिनेत्रायेश्वराय च । कपिलायैकवीराय मृत्यवे त्र्यम्बकाय च ॥
वास्तोष्पते पिनाकाय शङ्कराय शिवाय च । आरण्याय गृहस्थाय यतये ब्रह्मचारिणे
सांख्याय चैव योगाय ध्यानिनेदीक्षितायच । अन्तर्हिताय शर्वायमान्यायमालिनेतथा
बुद्धाय चैव शुद्धाय मुक्ताय केवलाय च । रोधसे चेकितानाय ब्रह्मिष्ठाय महर्षये ॥
चतुष्पादाय मेध्याय धर्मिणे शीघ्रगाय च । शिखण्डिने कपालाय दंष्ट्रिणेविश्वमेधसे
अप्रतीघाताय दीप्ताय भास्कराय सुमेधसे । क्रूराय विकृतायैव बीभत्साय शिवायच
सौम्याय चैव पुण्यायधार्मिकाय शुभायच । अवध्यायामृताङ्गायनित्यायशाश्वतायच
कव्याय शरभायैव शूलिने च त्रिचक्षुषे । सोमपायाऽऽज्यपायैवधूमपायौष्मपाय च
शुचये रेरिहाणाय सद्योजाताय मृत्यवे । पिशिताशाय खर्वाय मेघाय वैद्युताय च
व्यार्श्रिताय श्रविष्ठाय भारतायाऽन्तरिक्षये । क्षमाय सहमानाय सत्याय तपनाय च॥
त्रिपुरघ्नाय दीप्ताय चक्राय रोमशाय च । तिग्मायुधाय मेध्याय सिद्धाय च पुलस्तये
रोचमानाय खण्डाय स्फीताय ऋषभाय च ।
भोगिने युञ्जमानाय शान्तायैवोर्ध्वरेतसे ॥ १८४ ॥
अघघ्नाय मखघ्नाय मृत्यवे यज्ञियाय च । कृशानवे प्रचेताय वह्नये किशलाय च ॥
सिकत्याय प्रसन्नाय वरेण्यायैव चक्षुषे । क्षिप्रगवे सुधन्वायं प्रमेध्याय पिवाय च ॥
रक्षोघ्नाय पशुघ्नाय विघ्नाय शयनाय च । विभ्रान्ताय महान्ताय अन्तये दुर्गमाय च ॥
दक्षाय च जघन्याय लोकानामीश्वराय च । अनामयाय चोर्ध्वायसंहत्याधिष्ठितायच
हिरण्यबाहवे चैव सत्याय शमनाय च । असिकल्पाय माघाय री(इ)रिण्यायैकचक्षुषे
श्रेष्ठाय वामदेवाय ईशानाय च धीमते । महाकल्पाय दीप्ताय रोदनाय हसाय च ॥

दृढधन्वने कवचिने रथिने च वरूथिने । भृगुनाथाय शुक्राय वह्निरिष्टाय धीमते ॥
अघाय अघसंसाय(?)विप्रियाय प्रियाय च ।
दिग्वासःकृत्तिवासाय भगघ्नाय नमोऽस्तु ते ॥ १६२ ॥
पशूनां पतये चैव भूतानां पतये नमः । प्रणवे ऋग्यजुःसाम्ने स्वधायै च सुधाय च ॥
वषट्कारतमायैव तुभ्यमन्तात्मने नमः । स्रष्ट्रे धात्रे तथा होत्रे हर्त्रे च क्षपणाय च ॥
भूतभव्यभवायैव तुभ्यं कालात्मने नमः । वसवे चैव साध्याय रुद्रादित्याश्विनाय च
विश्वाय मरुते चैव तुभ्यं देवात्मने नमः । अग्नीषोमर्त्विगिज्याय पशुमन्त्रौषधाय च
दक्षिणावभृथायैव तुभ्यं यज्ञात्मने नमः । तपसे चैव सत्याय त्यागाय च शमाय च
अहिंसायाप्यलोभाय सुवेशायातिशाय च । सर्वभूतात्मभूताय तुभ्यं योगात्मनेनमः
पृथिव्यै चान्तरिक्षाय दिवाय च महाय च । जनस्तपाय सत्यायतुभ्यंलोकात्मनेनमः
अव्यक्तायाऽथ महते भूतायैवेन्द्रियाय च । तन्मात्राय महान्ताय तुभ्यं तत्त्वात्मनेनमः
नित्याय चाऽथ लिङ्गाय सूक्ष्माय चेतनायच । शुद्धाय विभवेचैवतुभ्यंनित्यात्मनेनमः
नमस्ते त्रिषु लोकेषु स्वरन्तेषु भवादिषु । सत्यान्तेषु महान्तेषु चतुर्षु च नमोऽस्तुते
नमः स्तोत्रे मया ह्यस्मिन्सदसद्व्याहृतं विभो ।
मद्भक्त इति ब्रह्मण्य ! सर्वं तत्क्षन्तुमर्हसि ॥ २०२ ॥
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे विष्णुमाहात्म्ये शम्भुस्तवकीर्तनं
नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

विष्णुमाहात्म्यकीर्त्तनेकाव्योपरिशङ्करस्याऽनुग्रहवर्णनम्

सूत उवाच

एवमाराध्य देवेशमीशानं नीललोहितम् । ब्रह्मेति प्रणतस्तस्मै प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्

काव्यस्य गात्रं संस्पृश्यहस्तेनप्रीतिमान्भवः । निकामंदर्शनंदत्त्वातत्रैवान्तरधीयत ॥२
ततः सोऽन्तर्हितेतस्मिन्देवेशानुचरेतदा । तिष्ठन्तीं प्राञ्जलिर्भूत्वा जयन्तीमिदमब्रवीत्
कस्य त्वं सुभगे का वा दुःखितेमयि दुःखिता । महतातपसायुक्तांकिमर्थंमांजुगोपसि
अनया सततं भक्त्या प्रश्रयेण दमेन च । स्नेहेन सुश्रोणि प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि ॥

किमिच्छसि वरारोहे कस्ते कामः समृध्यताम् ।
तं ते संपूरमाम्यद्य यद्यपि स्यात्सुदुर्लभम् ॥ ६ ॥

एवमुक्ताऽब्रवीदेनं तपसा ज्ञातुमर्हसि । चिकीर्षितं मे ब्रह्मिष्ठ त्वं हि वेत्थ यथातथम्
एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा । माहेन्द्री त्वं वरारोहेमद्धितार्थमिहाऽऽगता
मया सह त्वं सुश्रोणि दशवर्षाणि भामिनी । अदृश्यं सर्वभूतैस्तुसंप्रयोगमिहेच्छसि
देवेन्द्रानलवर्णाभे वरारोहे सुलोचने । इमं वृणीष्व कामन्ते मत्तो वै वल्गुभाषिणि
एवं भवतु गच्छामो गृहान्वै मत्तकाशिनि । ततः स्वगृहमागम्य जयन्त्या सहितः प्रभुः
स तया संवसेद्देव्या दश वर्षाणि भागशः । अदृश्यः सर्वभूतानां माययासंवृतस्तदा
कृतार्थमागतं दृष्ट्वा काव्यं सर्वे दितेः सुताः । अभिजग्मुर्गृहं तस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः
गतायदानपश्यन्तोजयन्त्यासंवृतंगुरुम् । दाक्षिण्यं तस्यतद्बुद्‌ध्वाप्रतिजग्मुर्यथागतम्

बृहस्पतिस्तु संरुद्धं ज्ञात्वा काव्यं चकार ह ।
पित्रर्थे दश वर्षाणि जयन्त्या हितकाम्यया ॥ १५ ॥

बुद्‌ध्वातदन्तरंसोऽथदैत्यानामिवचोदितः । काव्यस्यरूपमास्थायसोऽसुरान्समभाषत
ततःसमागतान्दृष्ट्वाबृहस्पतिरुवाचतान् । स्वागतंममयाज्यानांसंप्राप्तोऽस्मिहिताय च
अहं वोऽध्यापयिष्यामि प्राप्ता विद्या मया हि सा । ततस्तेहृष्टमनसोविद्यार्थमुपपेदिरे

पूर्वं काम्य(व्य) स्तदा तस्मिन्समये दशवार्षिके ।
ययौ च समकालं स सद्योत्पन्नमतिस्तदा ॥ १६ ॥

समयान्ते देवयानी सद्योजाता सुता तदा । बुद्धिं चक्रे ततश्चापि याज्यानांप्रत्यवेक्षणे

शुक्र उवाच

देवि गच्छामहेद्रष्टुंतवयाज्याञ्शुचिस्मिते । विभ्रान्तप्रोक्षितेसाध्विवत्रिवर्णायतलोचने

एवमुक्ताऽब्रवीद्देवी भज भक्तान्महाव्रत । एष ब्रह्मन्सतां धर्मो न धर्मं लोपयामि ते ॥

सूत उवाच

ततो गत्वाऽसुरान्दृष्ट्वा देवाचार्येण धीमता । वञ्चितान्काव्यरूपेणवेधसाऽसुरमब्रवीत्
काव्यं मां तात जानीध्वमेष ह्याङ्गिरसो भुवि । वञ्चितावतयूयं वै मयिशक्तेतुदानवाः

श्रुत्वा तथा ब्रुवाणं तं सम्भ्रान्ता दितिजास्ततः ।
प्रेक्षन्ते स्म ह्युभौ तत्र स्थिताः खिन्नाः शुचि(सुवि) स्मिताः ॥ २५ ॥

सम्प्रमूढाःस्थिताः सर्वे प्रापद्यन्त न किञ्चन । ततस्तेषु प्रमूढेषु काव्यस्तान्पुनरब्रवीत्
आचार्यो वो ह्यहंकाव्योदेवाचार्योऽयमङ्गिराः । अनुगच्छतमांसर्वेत्यजतैनंबृहस्पतिम्
एवमुक्ताऽसुराः सर्वेतावुभौसमवेक्ष्य च । तदाऽसुरा विशेषन्तु न व्यजानंस्तयोर्द्वयोः

बृहस्पतिरुवाचैतानसंभ्रान्तोऽयमङ्गिराः ।
काव्योऽहं वो गुरुर्दैत्या मद्रूपोऽयं बृहस्पतिः ॥ २६ ॥

स मोहयति रूपेणमामकेनैषवोऽसुराः । श्रुत्वातस्यततस्ते वै संमन्त्र्यार्थवचोऽब्रवीत्
अयं नो दश वर्षाणि सततं शास्ति वै प्रभुः । एष वै गुरुरस्माकमन्तरेप्सुरयं द्विजः
ततस्ते दानवाः सर्वे प्रणिपत्याऽभिवाद्यच । वचनं जगृहुस्तस्यचिराभ्यासेनमोहिताः
ऊचुस्तमसुराःसर्वेक्रुद्धाःसंरक्तलोचनाः । अयं गुरुर्हितोऽस्माकंगच्छत्वंनासिनो गुरुः

भार्गवोऽङ्गिरसो(?)वाऽयं भवत्वेषैव नो गुरुः ।
स्थिता वयं निदेशेऽस्य गच्छ त्वं साधु मा चिरम् ॥ ३४ ॥

एवमुक्त्वाऽसुराः सर्वे प्रापद्यन्त बृहस्पतिम् । यदा न प्रतिपद्यन्ते तेनोक्तं तन्महद्धितम्
चुकोप भार्गवस्तेषामवलेपेन वै तदा । बोधिताऽपि मया यस्मान्न मां भजत दानवाः
तस्मात्प्रनष्टसञ्ज्ञावै पराभवंगमिष्यथ । इतिव्याहृत्यतान्काव्योजगामाऽथयथागतम्
ज्ञात्वाऽभिशस्तानसुरान्काव्येन तु बृहस्पतिः । कृतार्थः स तदा हृष्टःस्वरूपंप्रत्यपद्यत

बुद्ध्वाऽसुरांस्तदा भ्रष्टान्कृतार्थोऽन्तरधीयत ॥ ३८ ॥

ततः प्रनष्टे तस्मिंस्ते विभ्रान्तादानवास्तथा । अहोधिग्वञ्चितास्तेनपरस्परमथाब्रुवन्
पृष्ठतो विमुखाश्चैव ताडिता वेधसा वयम् । दग्धाश्चैवोपघ्नोमाचस्वेस्वेचार्थेषुमायया

ततोऽसुराः परित्रस्ता देवेभ्यस्त्वरिता ययुः । प्रह्लादमग्रतः कृत्वाकाव्यस्यानुगमंपुनः
ततःकाव्यंसमासाद्यअभितस्थुरवाङ्मुखाः । तानागतान्पुनर्दृष्ट्वाकाव्यो याज्यानुवाचह
मयाऽपि बोधिताः काले यतो मां नाभिनन्दथ । ततस्तेनावलेपेनगता यूयं पराभवम्
प्रह्लादस्तमथोवाचमानं त्वं त्यजभार्गव । स्वान्याज्यान्भजमानांश्चभक्तांश्चैवविशेषतः
त्वया पृष्टा वयं तेन देवाचार्येण मोहिताः । भक्तानर्हसि नस्त्रातुं ज्ञात्वा दीर्घेणचक्षुषा
यदि नस्त्वं न कुरुषे प्रसादं भृगुनन्दन । अपध्यातास्त्वया ह्यद्य प्रवेक्ष्यामोरसातलम्

सूत उवाच

ज्ञात्वाकाव्योयथातत्त्वंकारुण्येनानुकम्पया । एवंशुक्रोऽनुनीतः स ततः कोपंन्ययच्छत
उवाचेदं न भेतव्यं न गन्तव्यं रसातलम् । अवश्यंभावी ह्यर्थोऽयंप्राप्तोवो मयिजाग्रति
न शक्यमन्यथाकर्तुमदृष्टं हि वलवत्तरम् । संज्ञाप्रनष्टा या वोऽद्यकामंतांप्रतिलप्स्यथ
प्राप्तः पर्यायकालो व इतिब्रह्माऽभ्यभाषत । मत्प्रसादाच्चयुष्माभिर्भुक्तंत्रैलोक्यमूर्जितम्
युगाख्या दश सम्पूर्णा देवानाक्रम्य मूर्धनि । तावन्तमेव कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत

सावर्णिके पुनस्तुभ्यं राज्यं किल भविष्यति ।
लोकानामीश्वरो भावो पौत्रस्तव पुनर्वलिः ॥ ५२ ॥

एवंकिल(1)महंप्रोक्तःपौत्रस्ते ब्रह्मणास्वयम् । तथाहृतेषुलोकेषुतपोऽस्यनकिलाभवत्
यस्मात्प्रवृत्तयश्चास्य न कामानभिसंधिताः । तस्माद्जेन प्रीतेन दत्तंसावर्णिकेऽन्तरे

देवराज्यं बलेर्भाव्यमिति मामीश्वरोऽब्रवीत् ।
तस्माददृश्यो भूतानां कालाकाङ्क्षी स तिष्ठति ॥ ५५ ॥

प्रीतेन चामरत्वं वै दत्तं तुभ्यं स्वयम्भुवा । तस्मान्निरुत्सुकस्त्वं वै पर्यायंसहमाकुलः

न च शक्यं मया तुभ्यं पुरस्ताद्वै विसर्पितुम् ।
ब्रह्मणा प्रतिषिद्धोऽस्मि भविष्यं जानता प्रभो ॥ ५७ ॥

इमौ च शिष्यौद्वौमह्यंतुल्यावेतौ बृहस्पतेः । दैवतैःसह संरब्धान्सर्वान्वो धारयिष्यतः

सूत उवाच

एवमुक्तास्तु दैतेयाः काव्येनाक्लिष्टकर्मणा । ततस्ताभ्यां ययुः सार्धं प्रह्लादप्रमुखास्तदा

अवश्यम्भावमर्थत्वं(?) श्रुत्वा शुक्राच्च दानवाः ।

सकृदाशंसमानास्ते जयं काव्येन भाषितम् ॥ ६० ॥

दंशिताः सायुधाःसर्वेततोदेवान्समाह्वयन् । अथदेवासुरान्दृष्ट्वासङ्ग्रामेसमुपस्थितान्

ततः संवृत्तसंनाहा देवास्तान्समयोधयन् । दैवासुरे ततस्तस्मिन्वर्तमाने शतं समाः

अजयन्नसुरा देवान्भग्ना देवा अमन्त्रयन् ॥ ६२ ॥

देवा ऊचुः

षण्डामर्कप्रभावेन जानीमस्त्वसुरैर्वयम् । तस्माद्यज्ञंसमुद्दिश्यकार्यंचाऽऽत्महितश्चयत्

तज्ज्ञानापहृतावेतौ कृत्वाजेष्यामहेऽसुरान् । अथोपामन्त्रयन्देवाःषण्डामर्कौतुतावुभौ

यज्ञेसमाह्वयिष्यामस्त्यजतमसुरान्द्विजौ । ग्रहं तं वा ग्रहीष्यामोह्यनुजित्यतुदानवान्

एवं तत्यजतुस्तौ तु षण्डामर्कौ तदाऽसुरान् । ततो देवा जयंप्राप्तादानवाश्चपराभवन्

देवाऽसुरान्पराभाव्य षण्डामर्कावुपागमन् । काव्यशापाभिभूताश्चअनाधाराश्चतेपुनः

वध्यमानास्तदा देवैर्विविशुस्ते रसातले । एवं निरुद्यमास्ते वै कृताः शक्रेण दानवाः

ततः प्रभृति शापेन भृगुनैमित्तिकेन च ॥ ६८ ॥

जज्ञे पुनः पुनर्विष्णुर्यज्ञे च शिथिले प्रभुः । कर्तुं धर्मव्यवस्थानमधर्मस्य च नाशनम् ॥

प्रह्लादस्य निदेशे तु येऽसुरा न व्यवस्थिताः ।

मनुष्यवध्यांस्तान्सर्वान्ब्रह्माऽनुव्याहरत्प्रभुः ॥ ७० ॥

धर्मान्नारायणस्तस्मात्संभूतश्चाक्षुषेऽन्तरे । यज्ञं प्रवर्तयामास चैत्ये वैवस्वतेऽन्तरे ॥

प्रादुर्भावेतदाऽन्यस्यब्रह्मैवाऽऽसीत्पुरोहितः । चतुर्थ्यान्तुयुगाख्यायामापन्नेष्वसुरेष्वथ

संभूतः स समुद्रान्तर्हिरण्यकशिपोर्वधे । द्वितीयो नरसिंहोऽभूद्रुद्रः सुरपुरस्सरः ॥

बलिसंस्थेषु लोकेषुत्रेतायांसप्तमे युगे । दैत्यैस्त्रैलोक्यआक्रान्तेतृतीयोवामनोऽभवत्

संक्षिप्याऽऽत्मानमङ्गेषु बृहस्पतिपुरस्सरम् । यजमानन्तुदैत्येन्द्रमदित्याःकुलनन्दनः

द्विजो भूत्वा शुभे काले बलिं वैरोचनं पुरा ॥ ७५ ॥

त्रैलोक्यस्यभवान्राजात्वयिसर्वं प्रतिष्ठितम् । दातुमर्हसिमेराजन्विक्रमांस्त्रीनितिप्रभुः

ददामीत्येव तं राजा बलिर्वैरोचनोऽब्रवीत् । वामनं तञ्चविज्ञायततोऽनुमुदितःस्वयम्

स वामनो दिवं खञ्च पृथिवीञ्चद्विजोत्तमाः । त्रिभिः क्रमैर्विश्वमिदं जगदाक्रामतप्रभुः
अत्यरिच्यत भूतात्मा भास्करं स्वेन तेजसा । प्रकाशयन्दिशःसर्वाःप्रदिशश्चमहायशाः
शुशुभे स महाबाहुःसर्वलोकान्प्रकाशयन् । आसुरींश्रियमाहृत्यस्त्रीँ ल्लोकांश्चजनार्दनः॥

सपुत्रपौत्रानसुरान्पातालतलमानयत् ॥ ८० ॥

नमुचिः शम्बरश्चैव प्रह्लादश्चैव विष्णुना । क्रुरा(क्रू)हता विनिर्धूता दिशः संप्रतिपेदिरे
महाभूतानि भूतात्मा सविशेषाणि माधवः । कालञ्च सकलं विप्रांस्तत्राद्भुतमदर्शयत्
तस्य गात्रे जगत्सर्वमात्मानमनुपश्यति । न किञ्चिदस्ति लोकेषु यदव्याप्तं महात्मना
तद्वै रूपमुपेन्द्रस्य देवदानवमानवाः । दृष्ट्वा संमुमुहुः सर्वे विष्णुतेजोविमोहिताः ॥
बलिः सितो महापाशैः सबन्धुः ससुहृद्गणः । विरोचनकुलं सर्वं पातालेसंनिवेशितम्
ततः सर्वामरैश्वर्यं दत्त्वेन्द्राय महात्मने । मानुषेषु महाबाहुः प्रादुरासीज्जनार्दनः ॥

एतास्तिस्रः स्मृतास्तस्य दिव्याः सम्भूतयः शुभाः ।

मानुष्याः सप्त यास्तस्य शापजाँस्तान्निबोधत ॥ ८८ ॥

त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह । नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कण्डेयपुरःसरः ॥८९॥
पञ्चमः पञ्चदश्यान्तु त्रेतायां संबभूव ह । मान्धातुश्चक्रवर्तित्वे तस्थौ तथ्यपुरःसरः॥
एकोनविंशे त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकोऽभवत् । जामदग्न्यस्तथाषष्ठोविश्वामित्रपुरःसरः
चतुर्विंशे युगे रामो वशिष्ठेन पुरोधसा । सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः ॥
अष्टमो द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराशरात् । वेदव्यासस्ततो जज्ञे जातूकर्णपुरःसरः ॥
तथैव नवमो विष्णुरदित्याः कश्यपात्मजः । देवक्या वसुदेवात्तु ब्रह्मगार्ग्यपुरःसरः ॥
अप्रमेयो नियोज्यश्च यत्र कामचरो वशी । क्रीडते भगवाँल्लोके बालः क्रीडनकैरिव
न प्रमातुं महाबाहुः शक्योऽसौ मधुसूदनः । परं परममेतस्माद्विश्वरूपान्न विद्यते ॥
अष्टाविंशतिमे तद्वद्द्वापरस्यांशसंक्षये । नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः

कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ।

मोहयन्सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ॥ ९८ ॥

प्रविष्टो मानुषीं योनिं प्रच्छन्नश्चरते महीम् । विहारार्थं मनुष्येषु सान्दीपनिपुरःसरम्

यत्र कंसश्च साल्वश्च द्विविदश्च महासुरम् । अरिष्टं वृषभं चैव पूतनां केशिनंहयम् ॥
नागं कुवलयापीडं मल्लराजगृहाधिपम् । दैत्यान्मानुषदेहस्थान्सूदयामास वीर्यवान्
छिन्नं बाहुसहस्रञ्च बाणस्याद्भुतकर्मणः । नरकश्च हतः संख्ये यवनश्च महाबलः ॥
हृतानि च महीपानां सर्वरत्नानि तेजसा । दुराचाराश्च निहताः पार्थिवा ये रसातले
एते लोकहितार्थाय प्रादुर्भावा महात्मनः । अस्मिन्नेव युगेक्षीणेसंध्याश्लिष्टेभविष्यति
कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्यः प्रतापवान् । दशमोभाव्यसंभूतोयाज्ञवल्क्यपुरःसरः
अनुकर्षन्सर्वसेनां हस्त्यश्वरथसङ्कुलाम् । प्रगृहीतायुधैर्विप्रैर्वृतः शतसहस्रशः ॥१०५॥

नात्यर्थं धार्मिका ये च ये च धर्मद्विषः क्वचित् ।
उदीच्यान्मध्यदेशांश्च तथा विन्ध्यापरान्तिकान् ॥ १०६ ॥

तथैवदाक्षिणात्यांश्चद्रविडान्सिंहलैःसह । गान्धारान्पारदांश्चैवपह्लवान्यवनाञ्शकान्
तुषारान्बर्बरांश्चैवपुलिन्दान्दरदान्खसान् । लम्पकानन्ध्रकान्रुद्रान्किरातांश्चैवसप्रभुः ॥
प्रवृत्तचक्रो बलवान्म्लेच्छानामन्तकृद्बली । अदृश्यःसर्वभूतानां पृथिवीं विचरिष्यति
मानवः स तु संजज्ञे देवस्यांशेन धीमतः । पूर्वजन्मनि विष्णुर्यःप्रमितिर्नाम वीर्यवान्
गात्रेण वै चन्द्रसमःपूर्णे कलियुगेऽभवत् । इत्येतास्तस्य देवस्य दश संभूतयःस्मृताः

तं तं कालं च कार्यं च तत्तदुद्दिश्य कारणम् ।
अंशेन त्रिषु लोकेषु तास्ता योनीः प्रपत्स्यते ॥ ११२ ॥

पञ्चविंशोत्थिते कल्पे पञ्चविंशति वै समाः । विनिघ्नन्सर्वभूतानि मानुषानेव सर्वशः
हत्वा बीजावशेषांतु महीं क्रूरेणकर्मणा । संशातयित्वावृषलान्प्रायशस्तानधार्मिकान्

ततः स वै तदा कल्किश्चरितार्थः ससैनिकः ।
कर्मणा निहता ये तु सिद्धास्ते तु पुनः स्वयम् ॥ ११५ ॥
अकस्मात्कुपिताऽन्योन्यं भविष्यन्ति च मोहिताः ।
क्षपयित्वा तु तान्सर्वान्भाविनाऽर्थेन चोदितान् ॥ ११६ ॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्स्यति सानुगः ।
ततो व्यतीते कल्कौ तु सामान्यैः(त्यैः) सह सैनिकैः ॥ ११७ ॥

नृपेष्वथ विनष्टेषु तदा त्वप्रग्रहाः प्रजाः । रक्षणे विनिवृत्ते तु हत्वाचान्योन्यमाहवे ॥
परस्परहृताश्वासा निराक्रन्दाः सुदुःखिताः ।
पुराणि हित्वा ग्रामांश्च तुल्यास्ता निष्परिग्रहाः ॥ ११६ ॥
प्रनष्टश्रुतिधर्माश्च नष्टधर्माश्रमास्तथा । ह्रस्वा अल्पायुषश्चैव भविष्यन्ति वनौकसः
सरित्पर्वतसेविन्यः पत्रमूलफलाशनाः । चीरपत्राजिनधराः संकरं घोरमास्थिताः ॥
अल्पायुषो नष्टवार्ता बह्वाबाधाः सुदुःखिताः । एवं कष्टमनुप्राप्ताः कलिसंध्यांशके तदा
प्रजाः क्षयं प्रयास्यन्ति सार्धं कलियुगेन तु । क्षीणे कलियुगे तस्मिन्प्रवृत्ते च कृते पुनः
प्रपत्स्यन्ते यथान्यायं स्वभावादेव नान्यथा । इत्येत्कीर्तितं सर्वं देवासुरविचेष्टितम्
यदुवंशप्रसङ्गेन महद्वो वैष्णवं यशः । तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि पूरोर्द्रुह्योरनोस्तथा ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे विष्णुमाहात्म्यकथनं
नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

नवनवतितमोऽध्यायः

तुर्वस्वादिवंशवर्णनम्

सूत उवाच

तुर्वसोस्तु सुतो वह्निर्वह्नेर्गोभानुरात्मजः । गोभानोस्तु सुतो वीरस्त्रिसानुरपराजितः
करन्धमस्त्रिसानोस्तु मरुत्तस्य तु चाऽऽत्मजः ।
अन्यस्त्वाविक्षितो राजा मरुत्तः कथितः पुरा ॥ २ ॥
अनपत्यो मरुत्तस्तु स राजाऽऽसीदिति श्रुतः । दुष्कृतं पौरवं चापि स वै पुत्रमकल्पयत्
एवं ययातिशापेन जरायाः संक्रमेण तु । तुर्वसोः पौरवं वंशं प्रविवेश पुरा किल ॥
दुष्कृतस्य तु दायादः शरूथो नाम पार्थिवः ।
शरूथात्तु जनापीडश्चत्वारस्तस्य चाऽऽत्मजाः ॥ ५ ॥

पाण्ड्यश्च केरलश्चैव चोलः कुल्यस्तथैव च ।
तेषां जनपदाः कुल्या पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः ॥ ६ ॥

द्रुह्यस्य तनयौ वीरौ बभ्रुः सेतुश्च विश्रुतौ । अरुद्धः सेतुपुत्रस्तु बाभ्रवो रिपुरुच्यते यौवनाश्वेन समिति कृच्छ्रेण निहतौ बली । युद्धं सुमहदासीत्तुमासान्परि चतुर्दश ॥

अरुद्धस्य तु दायादो गान्धारो नाम पार्थिवः ।
ख्यायते यस्य नाम्ना तु गान्धारविषयो महान् ॥

गान्धारदेशजाश्चापि तुरगा वजिनांवराः । गान्धारपुत्रोधर्मस्तुधृतस्तस्यसुतोऽभवत् धृतस्य दुर्दमो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चाऽऽत्मजः । प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सर्वएवते म्लेच्छराष्ट्राधिपाःसर्वेह्युदीचींदिशमाश्रिताः । अनोःपुत्रामहात्मानस्त्रयःपरमधार्मिकाः सभानरश्च पक्षश्च परपक्षस्तथैव च । सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान्कालानलो नृपः ॥ कालानलस्य धर्मात्मा सृञ्जयो नामधार्मिकः । सृञ्जयस्याभवत्पुत्रोवीरोराजापुरञ्जयः जनमेजयो महासत्त्वः पुरञ्जयसुतोऽभवत् । जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवन्नृपः ॥ आसीदिन्द्रसमो राजा प्रतिष्ठितयशादिवि । महामनाःसुतस्तस्यमहाशालस्यधार्मिकः सप्तद्वीपेश्वरो राजा चक्रवर्ती महायशाः । महामनास्तु पुत्रौ द्वौ जनयामास विश्रुतौ उशीनरं च धर्मज्ञं तितक्षुं चैव धार्मिकम् । उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजाः मृगा कृमी नवा दर्वा पञ्चमी च दृषद्वती । उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहाः

तपसा ते सुमहता जातवृद्धाश्च धार्मिकाः ॥ १६ ॥
मृगायास्तु मृगः पुत्रो नवाया नव एव तु ।
कृम्याः कृमिस्तु दर्वायाः सुव्रतो नाम धार्मिकः ॥ २० ॥

दृषद्वतीसुतश्चापि शिबिरौशीनरो द्विजाः । शिबेः शिवपुरं ख्यातं यौधेयं तु मृगस्यतु नवस्य नवराष्ट्रं तु कृमेस्तु कृमिलापुरी । सुव्रतस्य तथाऽऽम्बष्ठाशिबिपुत्रान्निबोधत शिबेस्तु शिबयः पुत्राश्चत्वारो लोकसंमताः । वृषदर्भः सुवीरस्तु केकयो मद्रकस्तथा तेषांजनपदाःस्फीताःकेकयामाद्रकास्तथा । वृषदर्भाःसूवीदर्भास्तितिक्षोः शृणुत प्रजाः तैतिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्यां दिशि विश्रुतः । उशद्रथो महाबाहुस्तस्य हेमःसुतोऽभवत्

हेमस्य सुतपा जज्ञे सुतः सुतयशा बली । जातो मनुष्ययोन्यां वै क्षीणेवंशेप्रजेप्सया
महायोगी स तु बलिर्बद्धो यः समहामनाः । पुत्रानुत्पादयामासचातुर्वर्ण्यकरान्भुवि
अङ्गं स जनयामास वङ्गं सुह्मं तथैव च । पुण्ड्रं कलिङ्गं च तथा बालेयं क्षत्त्रमुच्यते
बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्यवंशकराः प्रभोः । बलेस्तुब्रह्मणा दत्ता वराः प्रीतेन धर्मतः
महायोगित्वमायुश्च कल्पायुःपरिमाणकम् । सङ्ग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मेचैवप्रभावना
त्रैलोक्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा । बले चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वार्थदर्शनम् ।

चतुरो नियतान्वर्णांस्त्वं वै स्थापयितेति च ।
इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्ति परां ययौ ॥ ३२ ॥

कालेन महताविद्वान्स्वं वै स्थानमुपागतः । तेषांजनपदाःस्फीतावङ्गाङ्गसुह्मकास्तथा
पुण्ड्राः कलिङ्गाश्च तथा तेषां वंशंनिबोधत । तस्य ते तनयाःसर्वेक्षेत्रजामुनिसम्भवाः

संभूता दीर्घतमसः सुदेष्णायां महौजसः ॥ ३४ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं बलेः सुताः पञ्च जनिताःक्षेत्रजाःप्रभोः । ऋषिणादीर्घतमसाएतन्नोब्रूहिपृच्छताम्

सूत उवाच

अशिजो नाम विख्यातआसीद्धीमानृषिः पुरा । भार्यावैममतानामबभूवास्यमहात्मनः
अशिजस्य कनीयांस्तुपुरोधा यो दिवौकसाम् । वृहस्पतिर्बृहत्तेजाममतांसोऽभ्यपद्यत
उवाच ममता तं तु वृहस्पतिमनिच्छती । अन्तर्वत्न्यस्मि ते भ्रातुर्ज्येष्ठस्याष्टमिताइति
अयं हि मे महागर्भो रोचतेऽति वृहस्पते । अशिजं ब्रह्म चाभ्यस्य षडङ्गं वेदमुद्गिरन्
अमोघरेतास्त्वं चापि न मां भजितुमर्हसि । अस्मिन्नेव गते कालेयथावामन्यसेप्रभो

एवमुक्तस्तया सम्यग्वृहत्तेजा वृहस्पतिः ।
कामात्मानं महात्माऽपि नाऽऽत्मानं सोऽभ्यधारयत ॥ ४१ ॥

सम्बभूवैव धर्मात्मा तया सार्धंवृहस्पतिः । उत्सृजन्तं तदारेतोगर्भस्थःसोऽभ्यभाषत

नोक्षातक न्यसे(?)ह्यस्मिन्द्वयोर्नेहास्ति सम्भवः ।
अमोघरेतास्त्वं चापि पूर्वं चाहमिहाऽऽगतः ॥ ४३ ॥

शशाप तं तदा क्रुद्ध एवमुक्तो बृहस्पतिः । अशिजं तं सुतं भ्रातुर्गर्भस्थं भगवानृषिः
यस्मात्त्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति । मामेवमुक्तवान्मोहात्तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि
ततो दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत । अथाशिजो बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिरिवौजसा ॥
ऊर्ध्वरेतास्ततश्चापि न्यवसद्भ्रातुराश्रमे । गोधर्मं सौरभेयात्तु वृषभाच्छ्रुतवान्प्रभो ॥
तस्य भ्राता पितृव्यस्तु चकार भवनं तदा । तस्मिन्हितत्रवसतियदृच्छाभ्यागतोवृषः
दर्शार्थमाहृतान्दर्भांश्चचार सुरभीवृतः । जग्राह तं दीर्घतमा विस्फुरन्तं च शृङ्गयोः
स तेननिगृहीतस्तु न चचाल पदात्पदम् । ततोऽब्रवीद्वृषस्तं वै मुञ्च मां बलिनाम्वर

न मयाऽऽसादितस्तात बलवांस्त्वद्विधः क्वचित् ।
त्र्यम्बकं वहता देवं यतो जातोऽस्मि(सि)भूतले ॥ ५१ ॥

मुञ्च मां बलिनां श्रेष्ठ प्रीतस्तेऽहं वरं वृणु । एवमुक्तोऽब्रवीदेनं जीवंस्त्वंमेक्वयास्यसि
तेन त्वाऽहं न मोक्ष्यामि परस्वादं चतुष्पदम् । ततस्तं दीर्घतमसं स वृषःप्रत्युवाचह
नास्माकं विद्यते तात पातकंस्तेयमेव वा । भक्ष्याभक्ष्यं न जानीमःपेयापेयञ्चसर्वशः॥
कार्याकार्यं न वै विप्रो गम्यागम्यंतथैवच । न पाप्मानो वयं विप्रधर्मोह्येषगवांस्मृतः

गवां नाम स वै श्रुत्वा संभ्रान्तस्त्वनुमुच्य तम् ।
भक्त्या चाऽऽनुश्रविकया गोषु तं वै प्रसादयत् ॥ ५६ ॥

प्रसादिते गते तस्मिन्गोधर्मं भक्तितस्तु तम् । मनसैव तदादत्ते, तन्निष्ठस्तत्परायणः
ततो यवीयसः पत्नीमौतथ्यस्याभ्यमन्यत । विचेष्टमानां रुदतीं दैवात्संमूढचेतनः ॥
अवलेपन्तु तं मत्वा शरद्वांस्तस्य नाक्षमत् । गोधर्मं वै बलंकृत्वा स्नुषांससममन्यत
विपर्ययन्तु तं दृष्ट्वा शरद्वान्प्रत्यचिन्तयत् । भविष्यमर्थंज्ञात्वाचमहात्माचनमृत्युताम्
प्रोवाच दीर्घतमसंक्रोधात्संरक्तलोचनः । गम्यागम्यंन जानीषेगोधर्मात्प्रार्थयन्स्नुषाम्
दुर्वृत्तस्त्वंत्यजाम्येषगच्छत्वंस्वेनकर्मणा । यस्मात्त्वमन्धोवृद्धश्चभर्तव्योदुरनुष्ठितः ॥

तेनाऽसि त्वं परित्यक्तो दुराचारोऽसि मे मतिः ॥ ६२ ॥

सूत उवाच

कर्मण्यस्मिंस्ततः क्रूरे तस्य बुद्धिरजायत । निर्भर्त्स्यं चैव बहुशोबाहुभ्यां परिगृह्य च

कोष्ठे समुद्रे प्रक्षिप्य गङ्गाम्भसि समुत्सृजत् ॥ ६३ ॥

उह्यमानः समुद्रस्तु सप्ताहं श्रोतसा तदा । तं सस्त्रीकोबलिर्नामराजाधर्मार्थतत्त्ववित्

अपश्यन्मज्जमानन्तु स्रोतसाऽभ्याशमागतम् ॥ ६४ ॥

तं गृहीत्वा स धर्मात्मा बलिर्वैरोचनस्तदा । अन्तःपुरे जुगोपैनंभक्ष्यैर्भोज्यैश्चतर्पयन्

प्रीतः स वै वरेणाऽथ च्छन्दयाम वै बलिम् । स च तस्माद्वरं वव्रे पुत्रार्थीदानवर्षभः

बलिरुवाच

सन्तानार्थं महाभाग भार्यायां मममानद । पुत्रान्धर्मार्थसंयुक्तानुत्पादयितुमर्हसि ॥

एवमुक्तस्तु तेनर्षिस्तथाऽस्त्वित्युक्तवान्हि तम् ।

सुदेष्णां नाम भार्यां स्वां राजाऽस्मै प्राहिणोत्तदा ॥ ६८ ॥

अन्धं वृद्धञ्च तं दृष्ट्वा न सा देवी जगामह । स्वाञ्चधात्रेयकींतस्मैभूषयित्वाव्यसर्जयत

कक्षीवचक्षुषौ तस्यां शूद्रयोन्यामृषिर्वशी । जनयामास धर्मात्मा पुत्रावेतौमहौजसौ

कक्षीवचक्षुषौ तौ तु दृष्ट्वाराजाबलिस्तदा । प्राधीतौविधिवत्सम्यगीश्वरौब्रह्मवादिनौ

सिद्धौ प्रत्यक्षधर्माणौ बुद्धौ श्रेष्ठतमावपि । ममैताविति होवाचबलिर्वैरोचनस्त्वृषिम्

नेत्युवाच ततस्तन्तु ममैताविति चाब्रवीत् । उत्पन्नौशूद्रयोनौ तु भवच्छद्मासुरोत्तमौ

अन्धं वृद्धञ्च मां मत्वा सुदेष्णा महिषी तव । प्राहिणोदवमानाय शूद्रां धात्रेयकींमम

ततः प्रसादयामास पुनस्तमृषिसत्तमम् । बलिर्भार्यां सुदेष्णाञ्चभर्त्सयामास वै प्रभुः

पुनश्चैनामलङ्कृत्य ऋषये प्रत्यपादयन् । तां स दीर्घतमा देवीमब्रवीद्यदि मां शुभे ॥

दध्नालवणमिश्रेणस्व(सु)व्यक्तंनग्नकंतथा । लिहिष्यस्यजुगुप्सन्तीआपादतलमस्तकम्

ततस्त्वं प्राप्स्यसे देवि पुत्रांश्चमनसेप्सितान् । तस्य सा तद्वचोदेवीसर्वंकृतवतांतथा

अपानञ्च समासाद्य जुगुप्सन्ती न्यवर्जयत् । तामुवाच ततः सर्षिर्यत्ते परिहृतं शुभे ॥

विनाऽपानं कुमारं त्वं जनयिष्यसि पूर्वजम् ॥ ७६ ॥

ततस्तं दीर्घतमसं सा देवी प्रत्युवाच ह । नार्हसि त्वं महाभाग पुत्रं दातुं ममेदृशम्

ऋषिरुवाच

तवाऽपराधो देव्येष नान्यथा भविता नु वै । देवीदानीं च ते पुत्रमहं दास्यामि सुव्रते

तस्यापानं विना चैव योग्याभावो(?) भविष्यति ।
तां स दीर्घतमाश्चैव कुक्षौ स्पृष्ट्वेदमब्रवीत् ॥ ८२ ॥

प्राशितं दधि यत्तेऽद्य ममाङ्गाद्वै शुचिस्मिते । तेनतेपूरितोगर्भः पौर्णमास्यामिवोदधिः
भविष्यन्तिकुमारास्तेपञ्चदेवसुतोपमाः । तेजस्विनःपराक्रान्तायज्वानोधार्मिकास्तथा
ततोऽङ्गस्तु सुदेष्णाया ज्येष्ठपुत्रोव्यजायत । वङ्गस्तस्मात्कलिङ्गस्तुपुण्ड्रोब्रह्मस्तथैवच
वंशभाजस्तु पञ्चैते बलेः क्षेत्रेऽभवंस्तदा । इत्येते दीर्घतमसा बलेर्दत्ताः सुताः पुरा
प्रजास्त्वपहतास्तस्य ब्रह्मणा कारणं प्रति । अपत्यमस्य दारेषु स्वेषु माभून्महात्मनः
ततो मनुष्ययोन्यां वै जनयामास स प्रजाः । सुरभिर्दीर्घतमसमथ प्रीतो वचोऽब्रवीत्
विचार्य यस्माद्गोधर्मं त्वमेवं कृतवानसि । तेनं न्यायेन मुमुचे अहं प्रीतोऽस्मि तेन ते
तस्मात्तव तमो दीर्घं निस्तुदाम्यद्य पश्य वै । बार्हस्पत्यंचयत्तेऽन्यत्पापंसन्तिष्ठतेतनौ
जरामृत्युभयं चैव आघ्राय प्रणुदामि ते । आघ्रातमात्रःसोऽपश्यत्सद्यस्तमसि नाशिते
आयुष्मांश्च युवा चैव चक्षुष्मांश्च ततोऽभवत् । गवादीर्घतमाःसोऽथगौतमःसमपद्यत

कक्षीवांस्तु ततो गत्वा सह पित्रा गिरिव्रजाम् ।
यथोद्दिष्टं हि पित्रर्थे चचार विपुलं तपः ॥ ९३ ॥

ततः कालेन महता तपसा भावितः स वै । विधूय सानुजोदोषान्ब्राह्मण्यंप्राप्तवान्प्रभुः
ततोऽब्रवीत्पिताचैनंपुत्रवानस्म्यहंप्रभो । सत्पुत्रेण त्वयाताकृतार्थोऽस्मियशस्विना

युक्तात्मा हि ततः सोऽथ प्राप्तवान्ब्रह्मणः क्षयम् ।
ब्राह्मण्यं प्राप्य कक्षीवान्सहस्रमसृजत्सुतान् ॥ ९६ ॥

कूष्णाङ्गा गौतमास्ते वै स्मृताःकक्षीवतःसुताः । इत्येषदीर्घतमसो बलेर्वैरोचनस्य वै
समागमःसमाख्यातःसन्तानंचोभयोस्तयोः । बलिस्तानभिषिच्येहपञ्चपुत्रानकल्मषान्
कृतार्थःसोऽपियोगात्मायोगमाश्रित्यचप्रभुः।अदृश्यःसर्वभूतानांकालाकाङ्क्षीचरत्युत
तत्राङ्गस्य तु राजर्षे राजाऽऽसीद्दधिवाहनः । सापराधसुदेष्णाया अनपानोऽभवन्नृपः
अनपानस्य पुत्रस्तुराजा दिविरथःस्मृतः । पुत्रोदिविरथस्याऽऽसीद्विद्वान्धर्मरथोनृपः
स वै धर्मरथःश्रीमान्येन विष्णुपदे गिरौ । सोमःशक्रेण सह वै यज्ञे पीतो महात्मना

सूनुर्धर्मरथस्यापि राजा चित्ररथोऽभवत् । अथ चित्ररथस्यापि राजादशरथोऽभवत्

लोमपाद इति ख्यातो यस्य शान्ता सुताऽभवत् ॥ १०३ ॥

स तु दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महामनाः । ऋष्यश्रृङ्गप्रसादेन जज्ञेऽथ कुलवर्धनः ॥१०४

चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाश्व इति श्रुतः । पृथुलाश्वसुतश्चाऽपि चम्पो नाम बभूव ह ॥

चम्पस्य तु पुरी रम्या रम्या या मालिनी भवत् ॥ १०५ ॥

चम्पावती पुरी चम्पा चतुर्वर्णा च वै वसत् । षष्टिवर्षसहस्राणिचम्पावत्यांपुराऽवसत्

ब्राह्मणैः क्षत्त्रियैर्वैश्यैः सर्वे स्वेधर्मनुष्ठिते । सर्वे धर्मं वै तपसा सर्वे विष्णुपरायणाः

पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत् ॥ १०७ ॥

जज्ञे वै तण्डिकस्तस्य वारणं शुक्रवारणम् । आनयामास स महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम्

हर्यङ्गस्य तु दायादो राजा भद्ररथः किल । अथ भद्ररथस्याऽऽसीद्बृहत्कर्माप्रजेश्वरः

बृहद्रथः सुतस्तस्य तस्माज्जज्ञे बृहन्मनाः । बृहन्मनास्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम्

नाम्ना जयद्रथं नाम तस्माद्दृढरथो नृपः । आसीद्दृढरथस्याऽपि विश्वजिज्जनमेजयः

दायादस्तस्य चाङ्गेभ्यो यस्मात्कर्णोऽभवन्नृपः ।

कर्णस्य सुरसेनस्तु द्विजस्तस्याऽऽत्मजः स्मृतः ॥ ११२ ॥

ऋषय ऊचुः

सूतात्मजः कथं कर्णः कथं चाङ्गस्य वंशजः । एतदिच्छामवैश्रोतुमत्यर्थं कुशलोह्यसि

सूत उवाच

वृहद्भानोः सुतो जज्ञेनाम्नाराजाबृहन्मनाः । तस्यपत्नीद्वयंचाऽऽसीच्चैद्यस्योभेचतेसुते

यशोदेवीचसत्याचताभ्यां वंशस्तु भिद्यते । जयद्रथस्तु राजेन्द्रो यशोदेव्यां व्यजायत

ब्रह्मक्षत्त्रान्तरः सत्यविजयो नाम विश्रुतः । विजयस्य धृतिःपुत्रस्तस्य पुत्रो धृतव्रतः

धृतव्रतस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महायशाः । सत्यकर्मसुतश्चापि सूतस्त्वधिरथस्तु वै ॥

स कर्णं परिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतजः । एतद्वः कथितं सर्वं कर्णे यद्वै प्रचोदितम् ॥

एतेऽङ्गवंशजाः सर्वे राजानः कीर्तिता मया ।

विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च पुरोस्तु श्रृणुत प्रजाः ॥ ११६ ॥

सूत उवाच

पुरोः पुत्रो महाबाहुराजाऽऽसीज्जनमेजयः। अविद्धस्तु सुतस्तस्य यः प्राचीमजयद्दिशम्
अविद्धतः प्रवीरस्तु मनस्युरभवत्सुतः। राजाऽथो जयदो नाम मनस्योरभवत्सुतः ॥

दायादस्तस्य चाप्यासीद्धुन्धुर्नाममहीपतिः।
धुन्धोर्बहुगवी पुत्रः सञ्जातिस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ १२९ ॥

सञ्जातेरथ रौद्राश्वस्तस्य पुत्रान्निबोधत। रौद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसिसूनवः
रजेयुश्च कृतेयुश्च कक्षेयुः स्थण्डिलेयु च। घृतेयुश्च जलेयुश्च स्थलेयुश्चैव सप्तमः ॥
धर्मेयुः सन्नतेयुश्च वनेयुर्दशमस्तु सः। रुद्रा शूद्रा च भद्रा च शुभा जामलजा तथा ॥
तला खला च सप्तैता या च गोपजला स्मृता। तथाताम्ररसा चैव रत्नकूटी च ता दश
आत्रेयोवंशतस्तासांभर्तानाम्नाप्रभाकरः। अनादृष्टस्तुराजर्षीरिवेयुस्तस्यचाऽऽत्मजः
रिवेयोर्ज्वलना नाम भार्यावै तक्षकात्मजा। यस्यांदेव्यांसराजर्षीरन्तिनामत्वजोजनत्
रन्तिर्नारः सरस्वत्यां पुत्रानजनयच्छुभान्। त्रसुं तथाऽप्रतिरथंध्रुवंचैवाऽतिधार्मिकम्

गौरी कन्या च विख्याता मान्धातुर्जननी शुभा।
धुर्योऽप्रतिरथस्याऽपि कण्ठस्तस्याऽभवत्सुतः ॥ १३० ॥
मेधातिथिः सुतस्तस्य यस्मात्काण्ठायना द्विजाः।
इतिनानुयम(?)स्याऽऽसीत्कन्या साऽजनयत्सुतान् ॥ १३१ ॥

त्रसोःसुदयितं पुत्रं मलिनंब्रह्मवादिनम्। उपदातंततोलेभे चतुरस्त्विवतिसाऽऽत्मजान्
सुष्मन्तमथ दुष्म(ष्य)न्तंप्रवीरमनघं तथा। चक्रवर्तीततोजज्ञेदौष्म(ष्य)न्तिर्नृपसत्तमः
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्नातुभारतम्। दुष्यन्तंप्रतिराजानंवागुवाचाऽशरीरिणी
माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः। भरस्वपुत्रंदुष्यन्तसत्यमाहशकुन्तला
रेतोधाः पुत्रं नयतिनरदेवयमक्षयात्। त्वंचास्यधाता गर्भस्यमाऽवमंस्थाःशकुन्तलाम्
भरतस्तिसृषु स्त्रीषु नव पुत्रानजीजनत्। नाभ्यनन्दच्च तान्राजा नानुरूपान्ममेत्युत ॥
ततस्ता मातरः क्रुद्धाः पुत्रान्निन्युर्यमक्षयम्। ततस्तस्य नरेन्द्रस्य वितथं पुत्रजन्मतत्
ततो मरुद्भिरानीय पुत्रस्तु स बृहस्पतेः। सङ्क्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्विभुः

तत्रैवोदाहरन्तीदं भरद्वाजस्य धीमतः । जन्मसङ्क्रमणं चैव मरुद्भिर्भरताय वै ॥१४०॥
पत्न्यामासन्नगर्भायामसिजः संस्थितः किल । भ्रातुर्भार्यांसद्दृष्ट्वाऽथ बृहस्पतिरुवाचह
अलङ्कृत्य तनुं स्वां तु मैथुनं देहि मे शुभे ॥ १४१ ॥
एवमुक्त्वाऽब्रवीदेनमन्तर्वर्त्ती ह्यहं विभो !। गर्भः परिणतश्चाऽयं ब्रह्म व्याहरते गिरा ॥
अमोघरेतास्त्वं चाऽपि धर्मश्चैव विगर्हितः । एवमुक्तोऽब्रवीदेनां स्मयमानो बृहस्पतिः
विनयो नोपदेष्टव्यस्त्वया मम कथञ्चन । हर्षमाणः प्रसह्यैनां मैथुनायोपचक्रमे ॥१४४
ततो बृहस्पतिं गर्भो हर्षमाणमुवाच ह । सन्निविष्टो ह्यहं पूर्वमिह तात बृहस्पते !॥
अमोघरेताश्च भवान्नावकाशोऽस्ति च द्वयोः । एवमुक्त स गर्भेण कुपितः प्रत्युवाच ह
यस्मान्मामीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति । प्रतिषेधसि तत्तस्मात्तमोदीर्घं प्रवेक्ष्यसि
पादाभ्यां तेन तच्छन्नं मातुर्द्वारं बृहस्पतेः । तद्रतस्तु तयोर्मध्येऽनिवार्यःशिशुकोऽभवत्
सद्योजातं कुमारं तं दृष्ट्वाऽथ ममताऽब्रवीत् । गमिष्यामिगृहंस्वं वै भरद्वाजं बृहस्पते
एवमुक्त्वा गतायां स पुत्रं त्यजति तत्क्षणात् ।
भरस्व वाढमित्युक्तो भरद्वाजस्ततोऽभवत् ॥ १५० ॥
मातापितृभ्यां सन्त्यक्तं दृष्ट्वाऽथ मरुतःशिशुम् । गृहीत्वैनंभरद्वाजं जग्मुस्तेकृपया ततः
तस्मिन्काले तुभरतो मरुद्भिः क्रतुभिः क्रमात् । काम्यनैमित्तिकैर्यज्ञैर्यजतेपुत्रलिप्सया
यदा स यजमानो वै पुत्रान्नाऽऽसादयत्प्रभुः । यज्ञं ततो मरुत्सोमं पुत्रार्थे पुनराहरत्
तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तोषिताः । भरद्वाजं ततः पुत्रं बार्हस्पत्यं मनीषिणम्
भरतस्तु भरद्वाजं पुत्रं प्राप्य तदाऽब्रवीत् । प्रजायां संहृतायांवैकृतार्थोऽहंत्वया विभो
पूर्वं तु वितथं तस्य कृतं वै पुत्रजन्म हि । ततः स वितथो नाम भरद्वाजस्तथाऽभवत्
तस्माद्दिव्यो भरद्वाजो ब्राह्मण्यात्क्षत्त्रियोऽभवत् ।
द्विमुख्यायननामा स स्मृतो द्विपितर(तृक)स्तु वै ॥ १५७ ॥
ततोऽथ वितथे जाते भरतः स दिवं ययौ । वितथस्य तु दायादो भुवमन्युर्बभूव ह ॥
महाभूतोपमाश्चाऽऽसंश्चत्वारोभुवमन्युजाः । बृहत्क्षत्त्रोमहावीर्योनरोगाग्रश्चवीर्यवान्
नरस्य सांकृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रौ महौजसौ । गुरुवीर्यस्त्रिदेवश्च सांकृत्यावरौस्मृतौ

दायादाश्चापिगार्ग्यस्यशिनिबद्धाद्बभूवह। स्मृताश्चैतेततोगार्ग्याःक्षात्त्रोपेताद्विजातयः
महावीर्यसुतश्चापि भीमस्तस्मादुभक्षयः । तस्य भार्या विशालातुसुषुवे वै सुतत्रयम्
त्र्य्यारुणिं पुष्करिणं तृतीयं सुषुवे कपिम् । कपेःक्षत्त्रवराह्येते तयोः प्रोक्ता महर्षयः

गार्ग्याः साङ्कृतयो वीर्याः क्षात्त्रोपेता द्विजातयः ।

संश्रिताऽऽङ्गिरसं पक्षं बृहत्क्षत्रस्य वक्ष्यति ॥ १६४ ॥

बृहत्क्षत्रस्य दायादः सुहोत्रोनामधार्मिकः । सुहोत्रस्यापिदायादोहस्तीनाम बभूव ह

तेनेदं निर्मितं पूर्वं नाम्ना वै हस्तिनापुरम् ॥ १६५ ॥

हस्तिनश्चापि दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः । अजमीढोद्विजामीढः पुरुमीढस्तथैव च ॥
अजमीढस्य पत्न्यस्तु शुभाः कुरुकुलोद्वहाः । नीलिनी केशिनीचैवधूमिनीच वराङ्गना
अजमीढस्य पुत्रास्तुतासु जाताःकुलोद्वहाः । तपसोऽन्तेसुमहतोराज्ञोवृद्धस्यधार्मिकाः
भरद्वाजप्रसादेन शृणुध्वं तस्य विस्तरम् । अजमीढस्य केशिन्यांकण्ठः समभवत्किल
मेधातिथिः सुतस्तस्य तस्मात्कण्ठायनाद्विजाः । अजमीढस्यधूमिन्यांजज्ञेबृहद्वसुर्नृपः
बृहद्वसोर्बृहद्विष्णुः पुत्रस्तस्य महाबलः । बृहत्कर्मा सुतस्तस्य पुत्रस्तस्य बृहद्रथः ॥
विश्वजित्तनयस्तस्यसेनजित्तस्यचाऽऽत्मजः । अथसेनजितःपुत्राश्चत्वारोलोकविश्रुताः
रुचिराश्वश्च काव्यश्च रामो दृढधनुस्तथा । वत्सश्चावन्तकोराजायस्यतेपरिवत्सराः
रुचिराश्वस्य दायादः पृथुषेणो महायशाः। पृथुषेणस्यपारस्तु पारान्नीपोऽथजज्ञिवान्

यस्य चैकशतं चाऽऽसीत्पुत्राणामिति नः श्रुतम् ।

नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते ॥ १७५ ॥

तेषांवंशकरःश्रीमान्राजाऽऽसीत्कीर्तिवर्धनः। काम्पिल्येसमरोनामसचेष्टसमरोऽभवत्
समरस्य परः पारः सत्वदश्व इति त्रयः । पुत्राः सर्वगुणोपेताः पारपुत्रो वृषुर्भौ ॥
वृषोस्तु सुकृतिर्नाम सुकृतेनेह कर्मणा । जज्ञे सर्वगुणोपेतोविभ्राजस्तस्यचाऽऽत्मजः
विभ्राजस्य तु दायादस्त्वणुहो नाम पार्थिवः । बभूवशुकजामाताकृचीभर्तामहायशाः
अणुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महातपाः । योगसूनुःसुतस्तस्य विष्वक्सेनोऽभवन्नृपः
विभ्राजपुत्रा राजानः सुकृतेनेह कर्मणा । विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह

भल्लाटस्तस्यदायादोयेनराजा पुरा हतः । भल्लाटस्य तु दायादोराजाऽऽसीज्जनमेजयः
उग्रायुधेन तस्याऽर्थे सर्वे नीपाः प्रणाशिताः ॥ १८२ ॥

ऋषय ऊचुः

उग्रायुधः कस्य सुतः कस्मिन्वंशे च कीर्त्यते । किमर्थंचैवनीपास्तेतेनसर्वेप्रणाशिताः

सूत उवाच

द्विमीढस्य तु दायादो विद्वाञ्जज्ञे यवीनरः । धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तुतस्यसत्यधृतिःसुतः
अथ सत्यधृतेः पुत्रो दृढनेमिः प्रतापवान् । दृढनेमिसुतश्चापि सुवर्मा नाम पार्थिवः ॥
आसीत्सुवर्मणः पुत्रः सार्वभौमः प्रतापवान् ।
सार्वभौम इति ख्यातः पृथिव्यामेकराड्बभौ ॥ १८६ ॥
तस्याऽन्वये च महति महत्पौरवनन्दनः । महत्पौरवपुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः ॥
अथ रुक्मरथस्याऽपि सुपार्श्वोनामपार्थिवः । सुपार्श्वतनयश्चाऽपिसुमतिर्नामधार्मिकः
सुमतेरपि धर्मात्मा राजा संनितिमान्प्रभुः ।
तस्याऽऽसीत्सनतिर्नाम कृतस्तस्य सुतोऽभवत ॥ १८६ ॥
शिष्योहिरण्यनाभेस्तुकौथुस्तस्यमहात्मनः। चतुर्विंशतिधातेनप्रोक्तास्ताःसामसंहिताः
स्मृतास्ते प्राच्यनामानः कर्ता साम्नान्तु सामगाः ।
कार्तिरुग्रायुधः सोऽथ वीरः पौरवनन्दनः ॥ १६१ ॥
बभूव येन विक्रम्य पृषतस्य पितामहः । नीलो नाम महाबाहुः पाञ्चालाधिपतिर्हतः ॥
उग्रायुधस्य दायादः क्षेमो नाम महायशाः । क्षेमात्सुवीरः सञ्जज्ञे सुवीरस्य नृपञ्जयः
नृपञ्जयाद्वीरध इत्येते पौरवाः स्मृताः ॥ १६३ ॥
अजमीढस्य नीलिन्यां नीलः समभवन्नृपः । नीलस्य तपसोग्रेण सुशान्तिरभ्यजायत
पुरुजानुः सुशान्तेस्तु रिक्षस्तु पुरुजानुजः । ततस्तु रिक्षदायादो भेदाच्च तनयास्त्विमे
मुद्गलः सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा । यवीयांश्चापि विक्रान्तःकाम्पिल्यश्चैवपञ्चमः
पञ्चानां रक्षणार्थाय पितैतानभ्यभाषत । पञ्चानां विद्धिपञ्चैतान्स्फीताजनपदायुताः
अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः । मुद्गलस्यापिमौद्गल्याःक्षत्त्रोपेताद्विजातयः

एते ह्यङ्गिरसः पक्षे संश्रिताः कण्डमुद्गलाः । मुद्गलस्य सुतो ज्येष्ठोब्रह्मिष्ठःसुमहायशाः
इन्द्रसेना यतो गर्भं बध्यश्वं प्रत्यपद्यत । बध्यश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनका इति नः श्रुतिः
दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी । शारद्वतस्तु दायादमहल्या समसूयत ॥
शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्याऽपि सुमहायशाः । पुत्रः सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः ॥
अथ सत्यधृतेः शुक्रं दृष्ट्वाऽप्सरसमग्रतः । प्रचस्कन्दे शरस्तम्बे मिथुनं समपद्यत ॥
कृपया तच्च जग्राह शन्तनुर्मृगयांगतः । कृपः स्मृतः स वै तस्माद्गौतमी च कृपीतथा
एतेशारद्वताःप्रोक्तास्तथ्यागौतमान्वयाः । अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिदिवोदासस्यसन्ततिम्
दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मिष्ठो मित्रयुर्नृपः । मैत्रेयस्तु ततोजज्ञेस्मृताएतेऽपिसंश्रिताः

एतेऽपि संश्रिताः पक्षं क्षात्त्रोपेतास्तु भार्गवाः ।
राजाऽपि च्यवनो विद्वांस्ततोऽप्रतिरथोऽथवत् ॥ २०७ ॥

अथ वै च्यवनाद्धीमान्सदासःसमपद्यत । सौदासःसहदेवश्चसोमकस्तस्यचाऽऽत्मजः
अजमीढः पुनर्जातः क्षीणे वंशे स सोमकः । सोमकस्यसुतोजन्तुर्हतेतस्मिञ्शतंविभो
पुत्राणामजमीढस्य सोमकत्वे महात्मनः । तेषां यवीयान्पृषतो द्रुपदस्य पिताऽभवत्
धृष्टद्युम्नः सुतस्तस्य धृष्टकेतुश्च तत्सुतः । महिषी चाऽजमीढस्य धूमिनी पुत्रगर्धिनी ॥
पुनर्भवे तपस्तेपे शतं वर्षाणि दुश्चरम् । हुताग्न्यनिद्रा ह्यभवत्पचित्रमितभोजना ॥
अहोरात्रं कुशेष्वेव सुष्वाप सुमहाव्रता । तस्यां वै धूम्रवर्णायामजमीढश्च वीर्यवान्
ऋक्षं सा जनयामास धूम्रवर्णं सिताग्रजम् । ऋक्षात्सम्वरणो जज्ञे कुरु सम्वरणादभूत्
यः प्रयागं पदाऽऽक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह । कृष्ट्वैनं सुमहातेजा वर्षाणि सुबहून्यथ ॥
कृष्यमाणे तदा शक्रस्तत्राऽस्य वरदो बभौ । पुण्यश्च रमणीयश्च पुण्यकृद्भिर्निषेवितम्

तस्यान्ववायजाः ख्याताः कुरवो नृपसत्तमाः ।
कुरोस्तु दयिताः पुत्राः सुधन्वा जह्नुरेव च ॥ २१७ ॥

परिक्षितो महाराजःपुत्रकश्चाऽरिमर्दनः । सुधन्वनस्तु दायादः सुहोत्रोमतिमान्स्मृतः
च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थकोविदः । च्यवनस्य कृतः पुत्र इष्ट्वा यज्ञैर्महातपाः
विश्रुतं जनयामास पुत्रमिन्द्रसखं नृपः । विद्योपरिचरं वीरं वसुं नामाऽन्तरिक्षगम् ॥

विद्योपरिचराज्ज्ञो गिरिका'सप्त सूनवः । महारथो मगधराड्विश्रुतो यो वृहद्रथः ॥
प्रत्यग्रहः कुशश्चैव यमाहुर्मणिवाहनम् । माथैल्यश्च ललित्थश्च मत्स्यकालश्च सप्तमः ॥
वृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नामविश्रुतः । कुशाग्रस्याऽऽत्मजश्चैवऋषभोनामवीर्यवान्
ऋषभस्याऽपि दायादः पुष्पवान्नाम धार्मिकः ।
विक्रान्तस्तस्य दायादो राजा सत्यहितः स्मृतः ॥ २२४ ॥
तस्य पुत्रःसुधन्वा च तस्मादूर्जःप्रतापवान् । ऊर्जस्यनभसःपुत्रस्तस्माज्ज्ञेसर्वीर्यवान्
शकले द्वे स वै जातो जरयासन्धितस्तु सः । जरासन्धोमहाबाहुजर्यासंधितस्तुसः
सवक्षत्रस्य जेताऽसौ जरासन्धो महाबलः । जरासधस्य पुत्रस्तु सहदेवःप्रतापवान्
सहदेवात्मजः श्रीमान्सोमाधिः सुमहातपाः । श्रुतश्रवास्तुसोमाधेर्मागधःपरिकीर्तितः

सूत उवाच

परिक्षितस्य दायादो बभूव जनमेजयः । जनमेजस्य पुत्रस्तु सुरथो नाम भूमिपः ॥
सुरथस्य तु दायादो भीमसेनोऽपि नामतः ॥ २२६ ॥
जह्नुस्त्वजनयत्पुत्रं सुरथं नाम भूमिपम् । सुरथस्य तु दायादो वीरो राजा विदूरथः
विदूरथसुतश्चापि सार्वभौम इति श्रुतिः ।
सार्वभौमाज्जयत्सेन आराधिस्तस्य चाऽऽत्मजः ॥ २३१ ॥
आराधितो महासत्त्व अभ्युतायुस्ततः स्मृतः ।
अक्रोधनोऽयुतायोस्तु तस्माद्देवातिथिः स्मृतः ॥ २३२ ॥
देवातिथेस्तु दायाद ऋक्षएवबभूव ह । भीमसेनस्तथा ऋक्षाद्दिलीपस्तस्यचाऽऽत्मजः
दिलीपसु(सू)नुः प्रतिपस्तस्यपुत्रास्त्रयःस्मृताः । देवापिःशन्तनुश्चैववाहीकश्चैवते त्रयः
वाह्लीकस्य तु विज्ञेयः सप्तवाह्लीश्वरो नृपः । वाह्लीकस्य सुतश्चैव सोमदत्तोमहायशाः
जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥ २३५ ॥
देवापिस्तुप्रवव्राज वनं धर्मपरीप्सया । उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः ॥
च्यवनोऽस्य हि पुत्रस्तुइष्टकश्चमहात्मनः । शन्तनुस्त्वभवद्राजाविद्वान्वैसमहाभिषः ॥
इमं चोदाहरन्त्यत्रश्लोकंप्रतिमहाभिषम् । यं यं राजा स्पृशति वै जीर्णंसमयतोनरम्

पुनर्युवा स भवति तस्मात्ते शन्तनुं विदुः । ततोऽस्यशन्तनुत्वं वै प्रजास्विहपरिश्रुतम्

स तूपयेमे धर्मात्मा शन्तनुर्जाह्नवीं नृपः ॥ २३९ ॥

तस्यां देवव्रतं भीष्मं पुत्रं सोऽजनयत्प्रभुः ।

स च भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः ॥ २४० ॥

काले विचित्रवीर्यन्तु दासेय्यजनयत्सुतम् । शन्तनोर्दयितं पुत्रं प्रजाहितकरं प्रभुम् ॥

कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके ॥ २४१ ॥

धृतराष्ट्रञ्च पाण्डुञ्च विदुरं चाप्यजीजनत् । धृतराष्ट्रात्तु गान्धारी पुत्राणां सुषुवेशतम्

तेषां दुर्योधनो ज्येष्ठः सर्वक्षत्रस्य स प्रभुः । माद्री राज्ञीपृथाचैवपाण्डोर्भार्येबभूवतुः

देवदत्ताः सुतास्ताभ्यांपाण्डोरर्थे विजज्ञिरे । धर्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे वायोर्जज्ञे वृकोदरः

इन्द्राद्धनञ्जयो जज्ञे शक्रतुल्यपराक्रमः । अश्विभ्यां सहदेवश्च नकुलश्चापि माद्रिजौ ॥

पञ्चैव पाण्डवेभ्यश्चद्रौपद्यांजज्ञिरे सुताः । द्रौपद्यजनयज्ज्येष्ठंप्रतिविन्ध्यंयुधिष्ठिरात्

हिडम्बा भीमसेनात्तु जज्ञे पुत्रं घटोत्कचम् । काश्यापुनर्भीमसेनाज्जज्ञे सर्ववृकंसुतम्

सुहोत्रं विजया माद्री सहदेवादजायत । कमेरत्यान्तु वेद्यायां निरमित्रस्तुनाकुलिः ॥

सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत । उत्तरायान्तु वैराट्यां परिक्षिदभिमन्युजः ॥

परिक्षितस्तु दायादो राजाऽऽसीज्जनमेजयः ।

ब्राह्मणान्स्थापयामास स वै वाजसनेयिकान् ॥ २५० ॥

असपत्नं तदामर्षाद्वैशम्पायन एव तु । न स्थास्यतीह दुर्बुद्धे तवैतद्वचनं भुवि ॥

यावत्स्थास्याम्यहं लोके तावन्नैतत्प्रशस्यते । अभितः संस्थितश्चापिततःसजनमेजयः

पौर्णमास्येन हविषा देवमिष्ट्वा प्रजापतिम् ।

विज्ञाय संस्थितोऽपश्यत्तद्वधिष्ठां(त्तदिष्टं) विभोर्मखे ॥ २५३ ॥

परिक्षित्तनयश्चापि पौरवो जनमेजयः । द्विरश्वमेधमाहृत्य ततो वाजसनेयकम् ॥

प्रवर्तयित्वा तद्ब्रह्म त्रिखर्वी जनमेजयः ॥ २५४ ॥

खर्वमश्वकमुख्यानां खर्वमङ्गनिवासिनाम् । खर्वञ्च मध्यदेशानां त्रिखर्वी जनमेजयः ॥

विषादाद्ब्राह्मणैःसार्धमभिशस्तः क्षयं ययौ ॥ २५५ ॥

तस्य पुत्रः शतानीको बलवान्सत्यविक्रमः । ततः सुतं शतानीकं विप्रास्तमभ्यषेजयन् ॥
पुत्रोऽश्वमेधदत्तोऽभूच्छतानीकस्य वीर्यवान् । पुत्रोऽश्वमेधदत्ताद्वै जातः परपुरञ्जयः ॥

अधिसामकृष्णो धर्मात्मा साम्प्रतोऽयं महायशाः ।
यस्मिन्प्रशासति महीं युष्माभिरिदमाहृतम् ॥ २५८ ॥

दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि दुश्चरम् । वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः ॥

ऋषय ऊचुः

श्रोतुं भविष्यमिच्छामः प्रजानां वै महामते । सूत सार्धंनृपैर्भाव्यंव्यतीतंकीर्तितंत्वया ॥
यत्तु संस्थास्यतेकृत्यमुत्पत्स्यन्ति च येनृपाः । वर्षाग्रतोऽपिप्रब्रूहिनामतश्चैवतान्नृपान् ॥
कालं युगप्रमाणञ्च गुणदोषान्भविष्यतः । सुखदुःखे प्रजानाञ्च धर्मतः कामतोऽर्थतः ॥
एतत्सर्वं प्रसंख्याय पृच्छतां ब्रूहि तत्त्वतः । स एवमुक्तो मुनिभिःसूतो बुद्धिमताम्वरः ॥

आचचक्षे यथावृत्तं यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ २६३ ॥

सूत उवाच

यथा मे कीर्तितं सर्वं व्यासेनाद्भुतकर्मणा । भाव्यं कलियुगं चैव तथामन्वन्तराणितु ॥
अनागतानि सर्वाणिब्रुवतो मे निबोधत । अत ऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिभंविष्यन्तिनृपास्तु ये ॥
ऐलांश्चैवतथेक्ष्वाकून्सौद्युम्नांश्चैवपार्थिवान् । येषुसंस्थाप्यतेक्षत्त्रमैक्ष्वाकवमिदंशुभम् ॥

तान्सर्वान्कीर्तयिष्यामि भविष्ये पठितान्नृपान् ।
तेभ्यः परे च ये चान्ये उत्पत्स्यन्ते महीक्षितः ॥ २६७ ॥

क्षत्त्राः पारशवाः शूद्रास्तथा ये च द्विजातयः ।
अन्धाः शकाः पुलिन्दाश्चतूलिका यवनैः सह ॥ २६८ ॥

कैवर्ताभीरसबरा ये चान्ये म्लेच्छजातयः । वर्षाग्रतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैवतान्नृपान् ॥

अधिसामकृष्णः सोऽयंसाम्प्रतंपौरवान्नृपः ।
तस्यान्ववाये वक्ष्यामि भविष्ये तावतो नृपान ॥ २७० ॥

अधिसामकृष्णपुत्रो निर्वक्त्रो भविता किल । गङ्गयाऽपहृते तस्मिन्नगरे नागसाह्वये ॥

त्यक्त्वा च तं सवासञ्च कौशाम्ब्यां स निवत्स्यति ॥ २७१ ॥

भविष्यदुष्णस्तत्पुत्र उष्णाच्चित्ररथः स्मृतः । शुचिद्रथश्चित्ररथाद्धृतिमांश्चशुचिद्रथात्
सुषेणो वै महावीर्योभविष्यतिमहायशाः । तस्मात्सुषेणाद्भविता सुतीर्थोनामपार्थिवः
रुचः सुतीर्थाद्भविता त्रिचक्षोभवितातत: । त्रिचक्षस्यतु दायादोभविता वै सुखीबलः
सुखीबलसुतश्चापि भाव्यो राजा परिप्लुतः । परिप्लुतसुतश्चापि भविता सुनयोनृपः
मेधावी सुनयस्याऽथभविष्यति नराधिपः । मेधाविनःसुतश्चापिदण्डपाणिर्भविष्यति
दण्डपाणेर्निरामित्रो निरामित्राच्च क्षेमकः । पञ्चविंशनृपा ह्येते भविष्याः पूर्ववंशजाः
अत्रानुवंशश्लोकोऽयंगीतोविप्रैःपुराविदैः । ब्रह्मक्षत्त्रस्य यो योनिर्वंशोदेवर्षिसत्कृतः

क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ।

इत्येष पौरवो वंशो यथावदनुकीर्तितः ॥ २७६ ॥

धीमतः पण्डुपुत्रस्य अर्जुनस्यमहात्मनः । अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिइक्ष्वाकूणां महात्मनाम्
बृहद्रथस्यदायादोवीरोराजाबृहत्क्षयः । ततःक्षयःसुतस्तस्य वत्सव्यूहस्ततःक्षयात् ॥
वत्सव्यूहात्प्रतिव्यूहस्तस्य पुत्रो दिवाकरः । यच्च सांप्रतमध्यास्तेअयोध्यांनगरींनृपः
दिवाकरस्य भविता सहदेवो महायशाः । सहदेवस्य दायदो बृहदश्वो भविष्यति ॥
तस्य भानुरथो भाव्यः प्रतीताश्वश्च तत्सुतः । प्रतीताश्वसुतश्चापिसुप्रतीतो भविष्यति

सहदेवः सुतस्तस्य सुनक्षत्रश्च तत्सुतः ॥ २८४ ॥

किंनरस्तु सुनक्षत्राद्भविष्यति परन्तपः । भविता चान्तरिक्षस्तु किंनरस्यसुतो महान्
अन्तरिक्षात्सुपर्णस्तुसुपर्णाच्चाप्यमित्रजित् । पुत्रस्तस्यभरद्वाजोधर्मीतस्यसुतःस्मृतः
पुत्रः कृतञ्जयो नाम धर्मिणः स भविष्यति । कृतंजयसुतो व्रातो तस्य पुत्रो रणञ्जयः

भविता सञ्जयश्चापि वीरो राजा रणञ्जयात् ।

सञ्जयस्य सुतः शाक्यः शाक्याच्छुद्धोदनोऽभवत् ॥ २८८ ॥

शुद्धोदनस्य भविता शाक्यार्थे राहुलः स्मृतः । प्रसेनजित्ततोभाव्यःक्षुद्रकोभवितातत:
क्षुद्रकात्क्षुलिकोभाव्यःक्षुलिकात्सुरथःस्मृतः।सुमित्रःसुरथस्यापिअन्त्यश्चभवितानृप
एतऐक्ष्वाकवाः प्रोक्ता भवितारः कलौ युगे । बृहद्बालान्वयेजाताभवितारःकलौयुगे

शूराश्च कृतविद्याश्च सत्यसन्धा जितेन्द्रियाः ॥ २९१ ॥

अत्राऽनुवंशश्लोकोऽयंभविष्यज्ञैरुदाहृतः । इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तोभविष्यति
सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यतिवैकलौ । इत्येतन्मानवंक्षत्त्रमैलंचसमुदाहृतम्
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मागधेयान्बृहद्रथान । जरासन्धस्य ये वंशे सहदेवान्वये नृपाः
अतीता वर्तमानाश्च भविष्याश्च तथा पुनः । प्राधान्यतः प्रवक्ष्यामि गदतोमेनिबोधत
सङ्ग्रामे भारते तस्मिन्सहदेवोनिपातितः । सोमाधिस्तस्यतनयोराजर्षिःसगिरिव्रजे॥
पञ्चाशतंतथाऽष्टौचसमाराज्यमकारयत् । श्रुतश्रवाश्चतुःषष्टिसमास्तस्य सुतोऽभवत्

अयुतायुस्तु षड्विंशं राज्यं वर्षाण्यकारयत् ।
समाः शतं निरामित्रो महीं भुक्त्वा दिवं गतः ॥ २९८ ॥
पञ्चाशतं समाः षट् च सुकृत्तः प्राप्तवान्महीम् ।
त्रयोविंशं बृहत्कर्मा राज्यंवर्षाण्यकारयत् ॥ २९९ ॥

सेनाजित्साम्प्रतं चापि एतावैभोक्ष्यतेसमाः । श्रुतञ्जयस्तुवर्षाणिचत्वारिंशद्भविष्यति
महाबलो महाबाहुर्महाबुद्धिपराक्रमः । पञ्चत्रिंशत्तु वर्षाणि महीं पालयिता नृपः॥

अष्टपञ्चाशतं चाब्दान्राज्ये स्थास्यति वै शुचिः ।
अष्टाविंशत्समाः पूर्णाः क्षेमो राजा भविष्यति ॥ ३०२ ॥

भुवतस्तु चतुःषष्टी राज्यं प्राप्स्यति वीर्यवान् । पञ्चवर्षाणिपूर्णानिधर्मनेत्रोभविष्यति
भोक्ष्यते नृपतिश्चैव अष्टपञ्चशतं समाः । अष्टत्रिंशत्समा राज्यं सुव्रतस्य भविष्यति
चत्वारिंशद्दशाष्टौ च दृढसेनो भविष्यति । त्रयस्त्रिंशत्तु वर्षाणि सुमतिः प्राप्स्यतेततः
द्वाविंशतिसमा राज्यं सुचलोभोक्ष्यतेततः । चत्वारिंशत्समाराजासुनेत्रोभोक्ष्यतेततः

सत्यजित्पृथिवीराज्यं त्र्यशीतिं भोक्ष्यते समाः ।
प्राप्येमां वीरजिच्चापि पञ्चत्रिंशद्भविष्यति ॥ ३०७ ॥

अरिञ्जयस्तु वर्षाणि पञ्चाशत्प्राप्स्यतेमहीम् । द्वात्रिंशच्च नृपाह्येते भवितारोबृहद्रथात्
पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति । बृहद्रथेष्वतीतेषु वीतहोत्रेषु वर्तिषु॥३०९॥
मुनिकःस्वामिनंहत्वापुत्रंसमभिषेक्ष्यति । मिषतांक्षत्त्रियाणांहिप्रद्योतोमुनिकोबलात्
स वै प्रणतसामन्तो भविष्येऽनयवर्जितः । त्रयोविंशत्समा राजा भविता सनरोत्तमः

चतुर्विंशत्समा राजा पालको भविता ततः । विशाखयूपो भविता नृपः पञ्चाशतीं समाः
एकत्रिंशत्समा राज्यकमजस्य भविष्यति । भविष्यति समा विंशत्तत्सुतो वर्तिवर्धनः

अष्टत्रिंशच्छतं भाव्याः प्राद्योताः पञ्च ते सुताः ।
हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनाको भविष्यति ॥ ३१४ ॥
वाराणस्यां सुतस्तस्य संप्राप्स्यति गिरिव्रजम् ।
शिशुनाकस्य वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ॥ ३१५ ॥

शकवर्णः सुतस्तस्य षट्त्रिंशच्च भविष्यति । ततस्तु विंशतिं राजा क्षेमवर्मा भविष्यति
अजातशत्रुर्भविता पञ्चविंशत्समा नृपः । चत्वारिंशत्समा राज्यं क्षत्त्रौजाः प्राप्स्यते ततः
अष्टविंशत्समा राजा विविसारो भविष्यति । पञ्चविंशत्समा राजा दर्शकस्तु भविष्यति
उदायी भविता यस्मात्त्रयस्त्रिंशत्समा नृपः । स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम्

गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति ॥ ३१९ ॥
द्वाचत्वारिंशत्समा भाव्यो राजा वै नन्दिवर्धनः ।
चत्वारिंशत्त्रयं चैव महानन्दी भविष्यति ॥ ३२० ॥
इत्येते भवितारो वै शैशुनाका नृपा दश ।
शतानि त्रीणि वर्षाणि द्विषष्ट्यभ्यधिकानि तु ॥ ३२१ ॥
शैशुनाका भविष्यन्ति राजानः क्षत्त्रबान्धवाः ।
एतैः सार्धं भविष्यन्ति तावत्कालं नृपाः परे ॥ ३२२ ॥

ऐक्ष्वाकवाश्चतुर्विंशत्पाञ्चालाः पञ्चविंशतिः । कालकास्तु चतुर्विंशच्चतुर्विंशत्तु हैहयाः
द्वात्रिंशद्वै कलिङ्गास्तु पञ्चविंशत्तथा शकाः । कुरवश्चापि षट्त्रिंशदष्टाविंशति मैथिलाः
शूरसेनास्त्रयोविंशद्वीतिहोत्राश्च विंशतिः । तुल्यकालं भविष्यन्ति सर्व एव महीक्षितः
महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कालसम्वृतः । उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्त्रान्तरे नृपः॥
ततः प्रभृति राजानो भविष्याः शूद्रयोनयः । एकराट् स महापद्म एकच्छत्रो भविष्यति
अष्टाविंशतिवर्षाणि पृथिवीं पालयिष्यति । सर्वक्षत्त्रहरोद्धृत्य भाविनोऽर्थस्य वै बलात्
सहस्रास्तत्सुता ह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः । महापद्मस्य पर्याये भविष्यन्ति नृपाः क्रमात् ॥

उद्धरिष्यतितान्सर्वान्कौटिल्योवैद्विरष्टभिः । भुक्त्वामहींवर्षशतंनन्देन्दुःसभविष्यति
चन्द्रगुप्तं नृपं राज्ये कौटिल्यःस्थापयिष्यति । चतुर्विंत्समाराजाचन्द्रगुप्तोभविष्यति
भविता भद्रसारस्तु पञ्चविंशत्समा नृपः ।
षड्विंशत्तु समा राजा अशोको भविता नृषु ॥ ३३२ ॥
तस्य पुत्रः कुनालस्तु वर्षाण्यष्टौ भविष्यति । कुनालसूनुरष्टौ चभोक्तावैबन्धुपालितः
बन्धुपालितदायादो दशमानीन्द्रपालितः । भविता सप्त वर्षाणि देववर्मा नराधिपः
राजा शतधरश्चाष्टौ तस्य पुत्रो भविष्यति । बृहदश्वश्च वर्षाणि सप्त वै भविता नृपः
इत्येते नव भूपा ये भोक्ष्यन्ति च वसुंधराम् । सप्तत्रिंशच्छतंपूर्णंतेभ्यःशुङ्गान्गमिष्यति
पुष्पमित्रस्तु सेनानीरुद्धृत्य वै बृहद्रथम् । कारयिष्यति वै राज्यंसमाःषष्टिंसदैव तु
पुष्पमित्रसुताश्चाष्टौभविष्यन्ति समानृपाः । भविताचापितज्ज्येष्ठःसप्तवर्षाणिवैततः
वसुमित्रः सुतो भाव्योदशवर्षाणिपार्थिवः । ततोऽन्ध्रकःसमाद्वेतुभविष्यतिसुतश्चवै
भविष्यन्तिसमास्तस्मात्तिस्रएवपुलिन्दकाः । राजाघोषसुतश्चापिवर्षाणिभविताऽत्रयः
ततो वै विक्रमित्रस्तु समा राजा ततः पुनः ।
द्वात्रिंशद्भविता चाऽपि समा भागवतो नृपः ॥ ३४१ ॥
भविष्यतिसुतस्तस्य क्षेमभूमिः समा दश । दशैतेतुङ्गराजानोभोक्ष्यन्तीमां वसुंधराम्
शतं पूर्णं दश द्वे च तेभ्यःकिंघागमिष्यति । अपार्थिवसुदेवंतुबाल्याद्व्यसनिनं नृपम्
देवभूमिस्ततोऽन्यश्च श्रृङ्गेषु भविता नृपः । भविष्यतिसमाराजानवकण्ठायनस्तुसः
भूतिमित्रः सुतस्तस्य चतुर्विंशद्भविष्यति । भविता द्वादश समातस्मान्नारायणोनृपः
सुशर्मा तत्सुतश्चाऽपि भविष्यति समा दश ।
चतु(त्वा)रस्तुङ्गकृत्यास्ते नृपाः कण्ठायना द्विजाः ॥ ३४६ ॥
भाव्याः प्रणतसामन्ताश्चत्वारिंशच्च पञ्च च । तेषांपर्यायकालेतुतरन्धातुभविष्यति
कण्ठायनमथोद्धृत्यसुशर्माणं प्रसह्य तम् । शुङ्गानां चापियच्छिष्टंक्षपयित्वाबलंतदा ॥
सिन्धुको ह्यन्ध्रजातीयः प्राप्स्यतीमां वसुन्धराम् ॥ ३४८ ॥
त्रयोविंशत्समा राजा सिन्धुको भविता त्वथ ।

अष्टौ भ्रातश्च वर्षाणि तस्माद्दश भविष्यति (?) ॥ ३४६ ॥
श्रीशातकर्णिर्भविता तस्यपुत्रस्तुवै महान् । पञ्चाशतंसमाःषट्चशातकर्णिर्भविष्यति
आपादबद्धो दश वै तस्य पुत्रोभविष्यति । चतुर्विंशत्तुवर्षाणि षट् समावै भविष्यति
भवितानेमिकृष्णस्तु वर्षाणां पञ्चविंशतिम् । ततःसंवत्सरंपूर्णंहालोराजाभविष्यति
पञ्चसप्तकराजानो भविष्यन्ति महाबलाः ।
भाव्यः पुत्रिकषेणस्तु समाः सोऽप्येकविंशतिम् ॥ ३५३ ॥
शातकर्णिर्वर्षमेकं भविष्यति नराधिपः । चकार शातकर्णिस्तु षण्मासान्वैनराधिपः
अष्टाविंशत्तु वर्षाणि शिवस्वामी भविष्यति ॥ ३५४ ॥
राजा च गौतमीपुत्रएकविंशत्समा नृषु । एकोनविंशति राजा यज्ञश्रीः सांतकर्ण्यथ॥
डेवभवितातस्माद्विजयस्तुसमान्नृपः । दण्डश्रीःसातकर्णीचतस्यपुत्रः समास्त्रयः(?)
पुलोवाऽपि समाःसप्तअन्येषांचभविष्यति । इत्येतेवैनृपास्त्रिशदन्ध्राभोक्ष्यन्तियेमहीम्
समाः शतानि चत्वारि पञ्चषड्वै तथैव च ।
अन्ध्राणां संस्थिताः पञ्च तेषां वंशाः समाः पुनः ॥ ३५८ ॥
सप्तैव तु भविष्यन्तिदशाऽऽभीरास्ततोनृपाः । सप्तगर्दभिनश्चापिततोऽथदश वैशकाः
यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषारास्तु चतुर्दश । त्रयोदश मरुण्डाश्च मौना ह्यष्टादशैव तु ॥
अन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वसुधां शते द्वे च शतं च वै ।
शतानि त्रीण्यशीतिं च भोक्ष्यन्ति वसुधां शकाः ॥ ३६१ ॥
अशीतिं चैव वर्षाणि भोक्तारो यवना महीम् । पञ्चवर्षशतानीह तुषाराणांमहीस्मृता
शतान्यर्धचतुर्थानिभवितारस्त्रयोदश । मरुण्डावृषलैः सार्धंभाव्याऽन्याम्लेच्छजातयः
शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति म्लेच्छा एकादशैव तु ।
तच्छन्नेन च कालेन ततः कोलिकिला वृषाः ॥ ३६६ ॥
ततःकोलिकिलेभ्यश्चविन्ध्यशक्तिर्भविष्यति। समाःषण्णवतिंज्ञात्वापृथिवींचसमेष्यति
नृपान्वैदिशकांश्चापि भविष्यांश्च निबोधत । शेषस्य नागराजस्य पुत्रः स्वरपुरञ्जयः
भोगी भविष्यतेराजानृपोनागकुलोद्वहः । सदाचन्द्रस्तुचन्द्रांशोद्वितीयोनखवांस्तथा

धंनधर्मा ततश्चापि चतुर्थो विंशजः स्मृतः । भूतिनन्दस्ततश्चापि वैदेशे तु भविष्यति

अङ्गानां नन्दनस्याऽन्ते मधुनन्दिर्भविष्यति ।

तस्य भ्राता यवीयांस्तु नाम्ना नन्दियशाः किल ॥ ३६६ ॥

तस्यान्वयेभविष्यन्तिराजानस्तेत्रयस्तुवै । दौहित्रःशिशुकोनामपुरिकायांनृपोऽभवत्

विन्ध्यशक्तिसुतश्चापि प्रवीरो नाम वीर्यवान् ।

भोक्ष्यन्ति च समाः षष्टिं पुरीं काञ्चनकां च वै ॥ ३७१ ॥

यक्ष्यन्ति वाजपेयैश्चसमाप्तवरदक्षिणैः । तस्य पुत्रास्तु चत्वारोभविष्यन्तिनराधिपाः

विन्ध्यकानां कुलेऽतीते नृपा वै वाह्लिकास्त्रयः ।

सुप्रतीको नभीरस्तु समा भोक्ष्यति त्रिंशति(त) म् ॥ ३७२ ॥

शक्यमा नाम वै राजा माहिषीणांमहीपतिः । पुष्पमित्राभविष्यन्तिपट्टमित्रास्त्रयोदश

मेकलायां नृपाःसप्तभविष्यन्तिचसत्तमाः । कोमलायांतुराजानोभविष्यन्तिमहाबलाः

मेघा इति समाख्याताबुद्धिमन्तोनवैवतु । नैषधाःपार्थिवाःसर्वेभविष्यन्त्यामनुक्षयात्

नलवंशप्रसूतास्तेवीर्यवन्तो महाबलाः । मागधानां महावीर्यो विश्वस्फानिर्भविष्यति

उत्साद्य पार्थिवान्सर्वान्सोऽन्यान्वर्णान्करिष्यति ।

कैवर्तान्पञ्चकांश्चैव पुलिन्दान्ब्राह्मणांस्तथा ॥ ३७८ ॥

स्थापयिष्यन्ति राजानो नानादेशेषु तेजसा ।

विश्वस्फाणिर्महासत्त्वो युद्धे विष्णुसमो बली ॥ ३७९ ॥

विश्वस्फाणिर्नरपतिःक्लीबाकृतिरिवोच्यते। उत्सादयित्वाक्षत्रं तुक्षत्रमन्यत्करिष्यति

देवान्पितॄंश्च विप्रांश्च तर्पयित्वा सकृत्पुनः । जाह्नवीतीरमासाद्य शरीरं यस्यते बली

संन्यस्य स्वशरीरंतुशक्रलोकं गमिष्यति । नवनाकास्तु भोक्ष्यन्तिपुरींचम्पावतींनृपाः

मथुरां च पुरींरम्यां नागाभोक्ष्यन्ति सप्तवै । अनुगङ्गं प्रयागं च साकेतु मगधांस्तथा

एताञ्जनपदान्सर्वान्भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः ॥ ३८३ ॥

निषधान्यदुकांश्चैव शैशीतान्कालतोपकान् ।

एताञ्जनपदान्सर्वान्भोक्ष्यन्ति मणिधान्यजाः ॥ ३८४ ॥

कोशलांश्चान्ध्रपौण्ड्रांश्च ताम्रलिप्तान्ससागरान् ।
चम्पां चैव पुरीं रम्यां भोक्ष्यन्ति देवरक्षिताम् ॥ ३८५ ॥
कलिङ्गा महिषाश्चैव महेन्द्रनिलयाश्च ये । एताञ्जनपदान्सर्वान्पालयिष्यति वै गुहः ॥
स्त्रीराष्ट्रं भक्ष्यकांश्चैव भोक्ष्यन्तेकनकाह्वयः । तुल्यकालंभविष्यन्तिसर्वेह्येते महीक्षितः
अल्पप्रसादा ह्यनृता महाक्रोधाह्यधार्मिकाः । भविष्यन्तीहयवनाधर्मतः कामतोऽर्थतः
नैव मूर्धाभिषिक्तास्ते भविष्यन्तिनराधिपाः । युगदोषदुराचाराभविष्यन्तिनृपास्तुते
स्त्रीणां बालवधेनैव हत्वा चैव परस्परम् । भोक्ष्यन्तिकलिशेषेतुवसुधांपार्थिवास्तथा
उदितोदितवंशास्ते उदितास्तमितास्तथा । भविष्यन्तीह पर्याये कालेनपृथिवीक्षितः
विहीनास्तुभविष्यन्तिधर्मतःकामतोऽर्थतः । तैर्विमिश्राजनपदाम्लेच्छाचाराश्चसर्वशः
विपर्ययेण वर्तन्ते नाशयिष्यन्ति वै प्रजाः । लुब्धानृतरताश्चैव भवितारस्तदा नृपाः॥
तेषां व्यतीते पर्याये बहुस्त्रीके युगे तदा । लवाल्लवं भ्रश्यमाना आयूरूपबलश्रुतैः ॥
तथा गतास्तुवै काष्ठां प्रजासुजगतीश्वराः । राजानःसम्प्रणश्यन्तिकालेनोपहतास्तदा

कल्किनोपहताः सर्वे म्लेच्छा यास्यन्ति सर्वशः ।
अधार्मिकाश्च तेऽत्यर्थं पाषण्डाश्चैव सर्वशः ॥ ३९६ ॥
प्रनष्टेनृपशब्देचसन्ध्याशिलष्टेकलौयुगे । किञ्चिच्छिष्टाःप्रजास्तावैधर्मेनष्टेऽपरिग्रहाः
असाधना हतास्वाश्च व्याधिशोकेन पीडिताः । अनावृष्टिहताश्चैव परस्परवधेन च ॥
अनाथा हि परित्रस्ता वार्तामुत्सृज्य दुःखिताः ।
त्यक्त्वा पुराणि ग्रामांश्च भविष्यन्ति वनौकसः ॥ ३९९ ॥
एवं नृपेषु नष्टेषु प्रजास्त्यक्त्वा गृहाणि तु । नष्टेस्नेहेदुरापन्ना भ्रष्टस्नेहाः सुहृज्जनाः
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सङ्करं घोरमास्थिताः । सरित्पर्वतसेविन्यो भविष्यन्ति प्रजास्तदा
सरितः सागरानूपान्सेवन्ते पर्वतानि च ।
अङ्गान्कलिङ्गान्वङ्गांश्च काश्मीरान्काशिकोशलान् ॥ ४०२ ॥
ऋषिकान्तगिरिद्रोणीःसंश्रयिष्यन्तिमानवाः । कृत्स्नंहिमवतःपृष्ठंकूलंचलवणाम्भसः
अरण्यान्यभिपत्स्यन्तिआर्याम्लेच्छजनैःसह । मृगैर्मीनैर्विहङ्गैश्चश्वापदैस्तक्षुभिस्तथा

मधुशाकफलैर्मूलैर्वर्तयिष्यन्ति मानवाः ॥ ४०४ ॥

चीरं पर्णं च विविधं वल्कलान्यजिनानि च । स्वयं कृत्वा विवत्स्यन्ति यथा मुनिजनास्तथा
बीजान्नानि तथा निम्नेष्वीहन्तः काष्ठशङ्कुभिः । अजैडकं खरोष्ट्रं च पालयिष्यन्ति यत्नतः
नदीर्वत्स्यन्ति तोयार्थे कूलमाश्रित्य मानवाः । पार्थिवान्व्यवहारेण विबाधन्तः परस्परम्
बह्वपत्याः प्रजाहीनाः शौचाचारविवर्जिताः । एवं भविष्यन्ति नरास्तदाऽधर्मे व्यवस्थिताः
हीनाद्धीनांस्तथा धर्मान्प्रजा समनुवर्तते । आयुस्तदा त्रयोविंशं न कश्चिदतिवर्तते॥
दुर्बला विषयग्लाना जरया सम्परिप्लुताः । पत्रमूलफलाहाराश्चीरकृष्णाजिनाम्बराः
वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्तश्चरिष्यन्ति वसुन्धराम् । एतत्कालमनुप्राप्ताः प्रजाः कलियुगान्तके
क्षीणे कलियुगे तस्मिन्दिव्ये वर्षसहस्रके । निःशेषास्तु भविष्यन्ति सार्धं कलियुगेन तु

सस‍ंध्यांशे तु निःशेषे कृतं वै प्रतिपत्स्यते ॥ ४१२ ॥

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती । एकरात्रे भविष्यन्ति तदा कृतयुगं भवेत्
एष वंशक्रमः कृत्स्नं कीर्तितो वो यथाक्रमम् । अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये
महादेवाभिषेकात्तु जन्म यावत्परिक्षितः । एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम् ॥
प्रमाणं वै तथा चोक्तं महापद्मान्तरं च यत् । अन्तरं तच्छतान्यष्टौ षट्त्रिंशच्च समाः स्मृताः

एतत्कालान्तरं भाव्या अन्ध्रान्ता ये प्रकीर्तिताः ।

भविष्यैस्तत्र संख्याताः पुराणज्ञैः श्रुतर्षिभिः ॥ ४१७ ॥

सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम् । सप्तविंशैः शतैर्भाव्या अन्ध्राणां तेऽन्वयात्पुनः
सप्तविंशतिपर्यन्ते कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले । सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम् ॥

सप्तर्षीणां युगं ह्येतद्दिव्यया संख्यया स्मृतम् ॥ ४१६ ॥

सा सा दिव्या स्मृता षष्टिर्दिव्याह्वाश्चैव सप्तभिः ।

तेभ्यः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तु तैः ॥ ४२० ॥

सप्तर्षीणां तु ये पूर्वा दृश्यन्ते उत्तरादिशि । ततो मध्येन च क्षेत्रं दृश्यते यत्समं दिवि
तेन सप्तर्षयो युक्ता ज्ञेया व्योम्नि शतं समाः । नक्षत्राणामृषीणां च योगस्यैतन्निदर्शनम्
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते शतम् । अन्ध्रांशे सचतुर्विंशे भविष्यन्ति मते मम

ग्रास्तदा तु प्रकृतिर्व्यापत्स्यन्तिप्रजाभृशम् । अनृतोपहताःसर्वाधर्मतःकामतोऽर्थतः
श्रौतस्मार्ते प्रशिथिले धर्मे वर्णाश्रमेतदा । संकरं दुर्बलात्मानःप्रतिपत्स्यन्तिमोहिताः
संसक्तांश्च भविष्यन्तिशूद्राःसार्धंद्विजातिभिः । ब्राह्मणाःशूद्रयष्टारःशूद्रावैमन्त्रयोनयः
उपस्थास्यन्तितान्विप्रास्तदावैवृत्तिलिप्सवः । लवंलवंभ्रश्यमानाःप्रजाःसर्वाःक्रमेणतु
क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षीणशेषा युगक्षये । यस्मिन्कृष्णोदिवं यातस्तस्मिन्नेवतदादिने
प्रतिपन्नः कलियुगस्तस्य संख्या निबोधत । सहस्राणांशतानीहत्रीणिमानुषसंख्यया

षष्टिं चैव सहस्राणि वर्षाणामुच्यते कलिः ॥ ४२६ ॥

दिव्यंवर्षसहस्रन्तुतत्सन्ध्यांशंप्रकीर्तितम् । निःशेषे च तदातस्मिन्कृतं वै प्रतिपत्स्यते
ऐल इक्ष्वाकुवंशश्चसहभेदै प्रकीर्तितौ । इक्ष्वाकोस्तुस्मृतःक्षत्त्रःसुमित्रान्तंविवस्वतः
ऐलं क्षत्त्रं क्षेमकान्तंसोमवंशविदोविदुः । एते विवस्वतःपुत्राःकीर्तिताःकीर्तिवर्धनाः
अतीता वर्तमानाश्चतथैवानागताश्चये । ब्राह्मणाःक्षत्त्रियावैश्याःशूद्राश्चैवान्वयेस्मृताः
युगे युगे महात्मानः समतीताः सहस्रशः । बहुत्वान्नामधेयानां परिसंख्या कुलेकुले
पुनरुक्तबहुत्वाच्च न मया परिकीर्तिताः । वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन्निमिवंशः समाप्यते
एतस्यान्तु युगाख्यायां यतःक्षत्त्रंप्रपत्स्यते । तथाहि कथयिष्यामि गदतोमेनिबोधत
देवापिः पौरवो राजाइक्ष्वाकोश्चैव यो मतः । महायोगबलोपेतःकलापग्राममास्थितः
सुवर्चाः सोमपुत्रस्तु इक्ष्वाकोस्तु भविष्यति । एतौ क्षत्त्रप्रणेतारौ चतुर्विंशेचतुर्युगे
न च विंशे युगे सोमवंशस्याऽऽदिर्भविष्यति । देवापिरसपत्नस्तु ऐलादिर्भवितानृपः
क्षत्त्रप्रवर्तकौ ह्येतौ भविष्येते चतुर्युगे । एवं सर्वत्र विज्ञेयं सन्तानार्थे तु लक्षणम्
क्षीणे कलियुगे तस्मिन्भविष्ये तु कृते युगे । सप्तर्षिभिस्तु तैः सार्धमाद्येत्रेतायुगेपुनः

गोत्राणां क्षत्त्रियाणाञ्च भविष्येते प्रवर्तकौ ।

द्वापरांशे न तिष्ठन्ति क्षत्त्रिया ऋषिभिः सह ॥ ४४२ ॥

काले कृतयुगे चैव क्षीणे त्रेतायुगे पुनः । बीजार्थन्ते भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्त्रस्य वै पुनः
एवमेव तु सर्वेषु तिष्ठन्तीहान्तरेषु वै । सप्तर्षयो नृपैः सार्धं सन्तानार्थं युगे युगे ॥
क्षत्त्रस्यैवसमुच्छेदःसंबन्धोवैद्विजैः स्मृतः । मन्वन्तराणांसप्तानांसन्तानाश्चसुताश्चते

परम्परा युगानाञ्च ब्रह्मक्षत्रस्य चोद्भवः । यथा प्रवृत्तिस्तेषां वै प्रवृत्तानांतथा क्षयः
सप्तर्षयो विदुस्तेषां दीर्घायुष्ट्वाक्षयास्तु ते(?)। एतेन क्रमयोगेणऐलेक्ष्वाक्वन्वयाद्द्विजाः
उत्पद्यमानास्त्रेतायां क्षीयमाणे कलौपुनः । अनुयान्तियुगाख्यान्तुयावन्मन्वन्तरक्षयः
जामदग्न्येन रामेण क्षत्त्रे निरवशेषिते । कृते वंशकुलाः सर्वाः क्षत्त्रियैर्वसुधाधिपैः॥

द्विवंशकरणाश्चैव कीर्तयिष्ये निबोधत ॥ ४४६ ॥

ऐलस्येक्ष्वाकुनन्दस्य प्रकृतिःपरिवर्तते । राजानःश्रेणिबद्धास्तुतथाऽन्येक्षत्त्रियानृपाः
ऐलवंशस्य ये ख्यातास्तथैवैक्ष्वाकवा नृपाः । तेषामेकशतं पूर्णंकुलानामभिषेकिणाम्
तावदेव तु भोजानां विस्तरोद्विगुणः स्मृतः । भजते त्रिशकंक्षत्त्रंचतुर्थातद्यथादिशम्
तेष्वतीताः समाना ये ब्रुवतस्तान्निबोधत । शतं वै प्रतिविन्ध्यानांशतंनागाःशतंहयाः
धृत(धार्त)राष्ट्राश्चैकशतमशीतिर्जनमेजयाः । शतञ्च ब्रह्मदत्तानां शीरिणांवीरिणांशतम्
ततः शतं तु पौलानां श्वेतकाशकुशादयः । ततोऽवरे सहस्रं वै येऽतीताः शतबिन्दवः
ईजिरे चाश्वमेधैस्ते सर्वे नियुतदक्षिणैः । एवं राजर्षयोऽतीताः शतशोऽथ सहस्रशः
मनोर्वैवस्वतस्यास्मिन्वर्तमानेऽन्तरेतु ये । तेषां निबोधतोत्पन्नालोकेसन्ततयःस्मृताः
न शक्यं विस्तरं तेषां सन्तानानां परम्परा । तत्पूर्वापरयोगेन वक्तुं वर्षशतैरपि॥
अष्टाविंशद्युगाख्यास्तु गतावैवस्वतेऽन्तरे । एताराजर्षिभिःसार्धंशिष्टायास्तानिबोधत
चत्वारिंशच्च ये चैव भविष्याः सहराजभिः । युगाख्यानांविशिष्टास्तुततोवैवस्वतक्षये
एतद्वः कथितं सर्वं समासव्यासयोगतः । पुनरुक्तं बहुत्वाच्च न शक्यन्तु युगैः सह॥
एतेययातिपुत्राणांपञ्चविंशाविशांहिताः । कीर्तिताह्यमिता ये ये लोकान्वैधारयन्त्युत

लभते च वरान्पञ्च दुर्लभानिह लौकिकान् ।

आयुः कीर्ति धनं पुत्रान्स्वर्गं चाऽऽनन्त्यमश्नुते ॥ ४६३ ॥

धारणाच्छ्रवणाच्चैवतेलोकान्धारयन्त्युत । इत्येषवोमयापादस्तृतीयःकथितोद्विजाः

विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च किं भूयो वर्तयाम्यहम् ॥ ४६४ ॥

इतिश्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादेतुर्वस्वादिवंशवर्णनं नामनवनवतितमोऽध्यायः

———

अथ उपसंहारपादः

शततमोऽध्यायः

मन्वन्तरनिसर्गादिवर्णनम्

श्रुत्वा पादं तृतीयन्तु क्रान्तं सूतेन धीमता। ततश्चतुर्थं पप्रच्छुः पादं वै ऋषिसत्तमाः

ऋषय ऊचुः

पादःक्रान्ततृतीयोऽयमनुषङ्गेण यस्त्वया। चतुर्थं विस्तरात्पादं संहारं परिकीर्तय॥
मन्वन्तराणि सर्वाणि पूर्वाण्येवापरैः सह। सप्तर्षीणामथैतेषां साम्प्रतस्यान्तरेमनोः
विस्तरावयवञ्चैव निसर्गस्य महात्मनः। विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च सर्वमेव ब्रवीहि मे

सूत उवाच

भवतां कथयिष्यामि सर्वमेतद्यथातथम्। पादं त्विमं ससंहारं चतुर्थं मुनिसत्तमाः॥
मनोर्वैवस्वतस्येमंसाम्प्रतस्यमहात्मनः। विस्तरेणाऽऽनूपूर्व्या च निसर्गंशृणुतद्विजाः
मन्वन्तराणां संक्षेपं भविष्यैः सह सप्तभिः। प्रलयं चैव लोकानां ब्रुवतो मे निबोधत
एतान्युक्तानि वै सम्यक्सप्तसप्तसु वै मया। मन्वन्तराणि संक्षेपाच्छृणुतानागतानिमे

सावर्णस्य प्रवक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह।
भविष्यस्य भविष्यन्ति समासात्तन्निबोधत॥ ६॥

अनागताश्च सप्तैव स्मृतास्त्विह महर्षयः। कौशिको गालवश्चैव जामदग्न्यश्चभार्गवः
द्वैपायनो वशिष्ठश्च कृपः शारद्वतस्तथा। आत्रेयो दीप्तिमांश्चैव ऋष्यशृङ्गस्तु काश्यपः
भारद्वाजस्तथा द्रोणिरश्वत्थामा महायशाः। एते सप्त महात्मानोभविष्याःपरमर्षयः
सुतपाश्चामिताभाश्च सुखाश्चैवगणास्त्रयः। तेषां गणास्तुदेवानामेकैकोविंशकःस्मृतः
नामतस्तुप्रवक्ष्यामिनिबोधध्वंसमाहिताः। रितस्तपश्चशुक्रश्चद्युतिर्ज्योतिष्प्रभाकरौ
प्रभासोभासकृद्धर्मस्तेजोरश्मिऋतुर्विराट्। अर्चिष्मान्द्योतनोभानुर्यशःकीर्तिर्बुधोधृति

विंशतिः सुतपो ह्येते नामभिः परिकीर्तिताः ॥ १५ ॥
प्रभुर्विभुर्विभासश्च जेता हन्ताऽरिहा रितुः ।
सुमतिः प्रमतिर्दीप्तिः समाख्यातो महो महान् ॥ १६ ॥

देहो मुनिर्नयो ज्येष्ठःसमःसत्यश्चविश्रुतः । इत्येतेह्यमिताभास्तुविंशतिःपरिकीर्तिताः
दमो दाता विदः सोमोवित्तवैद्यौ यमो निधिः । होमं हव्यं हुतंदानंदेयंदातातपःशमः
ध्रुवं स्थानं विधानंचनियमश्चेतिविंशतिः । मुख्याह्येतेसमाख्याताःसावर्णेः प्रथमेऽन्तरे
मारीचस्यैव ते पुत्राःकश्यपस्यमहात्मनः । सांप्रतस्यभविष्यन्तिसावर्णस्यान्तरेमनोः
तेषामिन्द्रोभविष्यस्तुबलिर्वैरोचनःपुरा । वीरवांश्चवरीयांश्च निर्मोहः सत्यवाक्कृती
चरिष्णुराज्यो विष्णुश्चवाचःसुमतिरेव च । सावर्णस्यमनोः पुत्राभविष्यन्तिनवैवतु
नव चान्येषु वक्ष्यामि सावर्णेश्चान्तरेषु वै । सावर्णमनवश्चान्येभविष्याब्रह्मणःसुताः
मेरुसावर्णिनस्ते वैदृष्टायेर्दिव्यदृष्टिभिः । दक्षस्य तेहिदौहित्राःप्रियाया दुहितुः सुताः
महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः । ब्रह्मादिभिस्ते जनिता दक्षेणैव च धीमता

महर्लोकगताऽऽवृत्य भविष्या मेरुमाश्रिताः ।
महाभावास्तु ते पूर्वं जज्ञिरे चाक्षुषेऽन्तरे ॥ २६ ॥

ऋषय ऊचुः

दक्षेण जनिताः पुत्राः कन्यायामात्मनः कथम् । भवेन ब्रह्मणाचैवधर्मेण च महात्मनः

सूत उवाच

अतो भविष्यान्वक्ष्यामिसावर्णमनवस्तु ये । तेषां जन्म प्रभावं च नमस्कृत्य प्रचेतसे
वैवस्वते ह्युपस्पृष्टे किंचिच्छिष्टेच चाक्षुषे । जज्ञिरे मनवस्ते हि भविष्यानागतान्तरे
प्राचेतसस्य दक्षस्य दौहित्रा मनवस्तु ये । सावर्णा नामतः पञ्च चत्वारःपरमर्षिजाः
संज्ञापुत्रस्तु सावर्ण एको वैवस्वतस्तथा । ज्येष्ठः संज्ञासुतो नाम मनुर्वैवस्वतःप्रभुः
वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते समुत्पत्तिस्तयोः शुभा । चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताःकीर्तिवर्धनाः
वेदे श्रुतौ पुराणे च सर्वे ते प्रभविष्णवः । प्रजानां पतयः सर्वे भूतानांपतयः स्थिताः
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता । पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः॥

प्रजाभिस्तपसा चैव विस्तरं तेषु वक्ष्यते। चतुर्दशैव ते ज्ञेयाः सर्गाः स्वायम्भुवादयः
मन्वन्तराधिकारेषु वर्तन्तेऽत्र सकृत्सकृत्।
विनिवृत्ताधिकारास्ते महर्लोकं समाश्रिताः ॥ ३६ ॥
समतीतास्तु ये तेषामष्टौ षष्ठास्तथाऽपरे। पूर्वेषु सांप्रतश्चायं शान्तिर्वैवस्वतः प्रभुः
ये शिष्टास्तान्प्रवक्ष्यामिसहदेवर्षिदानवैः। सहप्रजानिसर्गेणसर्वांस्त्वनागतान्द्विजान्॥
वैवस्वतनिसर्गेण तेषां ज्ञेयस्तु विस्तरः। अन्यूनानातिरिक्तास्तेयस्मात्सर्वेविवस्वतः
पुनरुक्ता बहुत्वात्तु न वक्ष्ये तेषु विस्तरम्। मन्वन्तरेषु भाव्येषु भूतेष्वपि तथैव च
कुले कुले निसर्गास्तुतस्माद्भूयोविभागशः। तेषामेवहिसिद्ध्यर्थंविस्तरेणक्रमेण च
दक्षस्य कन्या धर्मिष्ठा सुव्रता नाम विश्रुता। सर्वकन्यावशिष्टा तु श्रेष्ठा धर्मपरासुता
गृहीत्वा तां पिता कन्यां जगाम ब्रह्मणोऽन्तिके ॥ ४२ ॥
वैराजस्तमुपासीनं धर्मेण च भवेन च। भवधर्मसमीपस्थं दक्षं ब्रह्माऽभ्यभाषत॥४३॥
दक्ष कन्या तवेयं वै जनयिष्यति सुव्रत। चतुरो वै मनून्पुत्रांश्चातुर्वर्ण्यकराञ्शुभान्
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वादक्षो धर्मो भवस्तदा। तां कन्यां मनसा जग्मुस्त्रयस्तेब्रह्मणासह
सत्याभिध्यायिनां तेषां सद्यःकन्याव्यजायत। सदृशानुरूपांस्तेषांचतुरोवैकुमारकान्
संसिद्धाः कार्यकरणे संभूतास्तेश्रियाऽन्विताः। उपभोगसमर्थैश्चसद्योजातैःशरीरकैः
ते दृष्ट्वातान्स्वयंबुद्ध्वा ब्रह्म व्याहारिणस्तदा। संरब्धा वै व्यकर्षन्तममपुत्रो ममेत्युत
अभिध्यानान्मनोत्पन्नानूचुर्वैते परस्परम्। यो यस्य वपुषा तुल्यो भजतांसतुतंसुतम्
यस्य यः सदृशश्चापि रूपे वीर्ये च नामतः। तंगृह्णातु सुभद्रं वो वर्णतो यस्ययः समः
ध्रुवं रूपं पितुः पुत्रः सोऽनुरुध्यति सर्वदा। तस्मादात्मसमः पुत्रःपितुर्मातुश्चवीर्यतः
एवं ते समयं कृत्वा सवर्णा जगृहुः सुतान्।
यस्मात्सवर्णास्तेषां वै ब्रह्मादीनां कुमारकाः ॥ ५२ ॥
सवर्णा मनवस्तस्मात्सवर्णत्वंहितेयतः। मननान्माननाच्चैव तस्मात्ते मनवःस्मृताः
चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वतस्य ह। रुचेःप्रजापतेः पुत्रोरौच्योनामाभवत्सुतः
भूत्यामुत्पादितोयस्तुभौत्योनामाभवत्सुतः। वैवस्वतेऽन्तरेराजाद्वौमनूतुविवस्वतः

वैवस्वतो मनुर्यश्च सावर्णीयश्च विश्रुतः । ज्येष्ठः संज्ञासुतो विद्वान्मनुर्वैवस्वतःप्रभुः
सवर्णायाः सुतश्चाऽन्यः स्मृतोवैवस्वतोमनुः । सर्वणामनवोयेचचत्वारस्तुमहर्षिजाः
तपसा संभृतात्मानः स्वेषु मन्वन्तरेषु वै । भविष्येषुभविष्यन्तिसर्वकार्यार्थसाधकाः
प्रथमं मेरुसावर्णेर्दक्षपुत्रस्य वै मनोः । पुत्रा मरीचिगर्भाश्च सुशर्माणश्च ते त्रयः ॥

सम्भूताश्च महात्मानः सर्वे वैवस्वतेऽन्तरे ॥ ५६ ॥

दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः । भविष्यस्यभविष्यस्तुएकैको द्वादशो गणः
ऐश्वर्यसंग्रहो राहो बाहुवशस्तथैव च । पारा द्वादश विज्ञेया उत्तरांस्तु निबोधत॥
वाजियो वाजिजिच्चैव प्रभूतिश्च ककुद्यया । दधिक्रावायपकाश्च प्रणीतोविजयोमधुः
तेजस्मान्नथवरे द्वौ तु द्वादशैते मरीचयः । सुशर्मा(र्म)णस्तुवक्ष्यामिनामतस्तुनिबोधत
वर्णस्तथाऽप्यङ्गविश्वौ मुरण्योव्रजनोमतः । अमितोद्रवकेतुश्च जम्भोस्थाजस्तशक्रकाः
सुनेमिर्द्युतपाश्चैव सुशर्माणः प्रकीर्तिताः । तेषामिन्द्रस्तदा भाव्यो ह्यद्भुतोनाम नामतः

स्कन्दः सोमप्रतीकाशः कार्तिकेयस्तु पावकः ।
मेधातिथिश्च पौलस्त्यो वसुः काश्यप एव च ॥ ६६ ॥

ज्योतिष्मान्भार्गवश्चैव द्युतिमानङ्गिरास्तथा । वसितश्चैववासिष्ठआत्रेयोहव्यवाहनः
सुतपाः पौलवश्चैव सप्तैते रोहितान्तरे । धृतिकेतुर्दीप्तिकेतुशापहस्ता निरामयः॥६८॥
पृथुश्रवास्तथाऽनीको भूरिद्युम्नो बृहद्रथः । प्रथमस्य तु सावर्णेर्नव पुत्राः प्रकीर्तिताः
दशमे त्वथ पर्याये धर्मपुत्रस्य वै मनोः । द्वितीयस्य तु सावर्णेर्भाव्यस्यैवाऽन्तरेमनोः
सुखामना विरुद्धाश्च द्वावेव तु गणौस्मृतौ । त्विषिवन्तश्चतेसर्वेशतसंख्याश्चते समाः
प्राणानायच्छतः प्रोक्ताऋषिभिःपुरुषेषुवै । देवास्ते वै भविष्यन्ति धर्मपुत्रस्य वै मनोः

तेषामिन्द्रस्तथा विद्वान्भविष्यः शान्तिरुच्यते ।
हविष्मान्पौलहः श्रीमान्सुकीर्तिश्चापि भार्गवः ॥ ७३ ॥
आपोमूर्तिस्तथाऽऽत्रेयो वसिष्ठश्चापि यः स्मृतः ।
पौलस्त्यः प्रतिपश्चापि नाभागश्चैव काश्यपः ॥
अभिमन्युश्चाङ्गिरसः सप्तैते परमर्षयः ॥ ७४ ॥

सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूरिषेणश्च वीर्यवान्। शतानीको निरमित्रो वृषसेनो जयद्रथः
भूरिद्युम्नः सुवर्चाश्च दशैते मानवाः स्मृताः। एकादशे तु पर्याये सावर्णे वै तृतीयके
निर्माणरतयोदेवाःकामजावैमनोजवाः। गणास्त्वेतेत्रयःख्याता देवतानां महात्मनाम्
एकैकस्त्रिंशतस्तेषांगणास्तुत्रिदिवौकसाम्। मासस्याहानित्रिंशत्तुयानिवैकवयोविदुः
निर्माणरतयो देवा रात्रयस्तु विहङ्गमाः। गणास्ते वै त्रयःप्रोक्तादेवतानां भविष्यति
मनोजवा मुहूर्तास्तुइतिदेवाः प्रकीर्तिताः। एते हि ब्रह्मणःपुत्राभविष्यामनवः स्मृताः
तेषामिन्द्रो वृषो नाम भविष्यः सुरराट्ततः। तेषांसप्तर्षयश्चापिकीर्त्यमानान्निबोधत

हविष्मान्काश्यपश्चाऽपि वपुष्मान्यश्च भार्गवः।
वारुणिश्चैव चाऽऽत्रेयो वासिष्ठो भग एव च॥ ८२॥

पुष्टिश्चाङ्गिरसोज्ञेयःपौलस्त्योनिश्चरस्तथा। पौलहोह्यग्नितेजाश्चदेवाह्येकादशेऽन्तरे
सर्ववेगः सुधर्मा च देवानीकः पुरोवहः। क्षेमधर्मा गृहेषुश्च आदर्शः पौण्ड्रको मतः॥
सावर्णस्य तु ते पुत्राः प्राजापत्यस्यवैमनोः। द्वादशे त्वथपर्याये रुद्रपुत्रस्य वै मनोः
चतुर्थ ऋतुसावर्णे देवास्तस्यान्तरे शृणु। पञ्चैवतु गणाःप्रोक्तादे(दे)वतानामनागताः
हरिता रोहिताश्चैव देवाः सुमनसस्तथा। सुकर्माणः सुपाराश्चपञ्चदेवगणाःस्मृताः
ब्रह्मणो मानसा ह्येत एकैको दशको गणः। अरुन्तिजोहविश्चैवं विद्वान्यश्चसहस्रशः
पर्वतानुचरश्चैव अपोंऽशुश्च मनोजवः। ऊर्जा स्वाहास्वधातारादशैतेहरिताः स्मृताः
तपोजानिर्भृतिश्चैव वाचा बन्धुश्च यः स्मृतः। रजश्चैवतुराजश्चस्वर्णपादस्तथैवच

व्युष्टिर्विधिश्च वै देवो दशैते रोहिताः स्मृताः।
उषिताद्यास्तु ये देवास्त्रयस्त्रिंशत्प्रकीर्तिताः॥ ९१॥

देवान्सुमनसो विद्धि सुकर्माणोनिबोधत। सुपर्वा वृषभः पृष्टः कपिद्युम्नौविपश्चितः
विक्रमश्च क्रमश्चैव निभृतः कान्त एव च। एते सुकर्मणोदेवा सुतांश्चैषां निबोधत
वर्षोदितस्तथाजिष्ठोवर्चस्वीद्युतिमान्हविः। शुभोहविष्कृतात्प्राप्तिर्व्यापृथोदशमस्तथा

सुपारा मानता(श्च गणा)स्त्वेते देवा वै सम्प्रकीर्तिताः।
तेषामिन्द्रस्तु विज्ञेय ऋतधामा महायशाः॥ ९५॥

कृतिर्वसिष्ठपुत्रस्तु आत्रेयः सुतपास्तथा । तपोमूर्तिश्चाङ्गिरसस्तपस्वी काश्यपस्तथा
तपोऽशयानः पौलस्त्यः पुलहश्चतपोरतिः । भार्गवः सप्तमस्त्वेषां विज्ञेयस्तुतपोमतिः
एते सप्तर्षयः सिद्धा अन्ये सावर्णिकेऽन्तरे । देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः ॥९८॥
मित्रवान्मित्रविन्दुश्च मित्रसेनो ह्यमित्रहा । मित्रबाहुः सुवर्चाश्चद्वादशैतेमनोःसुताः
त्रयोदशे तु पर्याये भाव्या रौच्यान्तरे पुनः । त्रयएवगणाःप्रोक्तादेवानांतु स्वयम्भुवा
ब्रह्मणो मानसाः पुत्रास्ते हि सर्वेमहात्मनः । सुत्रामाणःसुधर्माणःसुकर्माणश्चतेत्रयः

त्रिदशानां गणाः प्रोक्ता भविष्याः सोमपायिनः ।
त्रयस्त्रिंशद्देवतायाः प्राभविष्यन्त याज्ञिकैः ॥ १०२ ॥

आज्येन पृषदाज्येन ग्रहश्रेष्ठेन चैव हि । देवैर्देवास्त्रयस्त्रिंशत्पृथक्त्वेन निबोधत ॥

सुत्रामाणः प्रयाज्यास्तु आज्यपानाम साम्प्रतम् ।
सुकर्माणोऽनुयाज्यास्तु पृषदाज्याशिनस्तु ये ॥ १०४ ॥

उपयाज्याःसुधर्माणइतिदेवाःप्रकीर्तिताः । दिवस्पतिर्महासत्त्वस्तेषामिन्द्रो भविष्यति
पुलहात्मजपुत्रास्तेविज्ञेयास्तुरुचेःसुताः।अङ्गिराश्चैवधृतिमान्पौलस्त्यःपथ्यवांस्तुसः
पौलहस्तत्त्वदर्शीचभार्गवश्चनिरुत्सकः । निष्प्रकम्पस्तथाऽऽत्रेयोनिर्मोहःकश्यपस्तथा
स्वरूपश्चैव वासिष्ठः सप्तैते तु त्रयोदशे । चित्रसेनो विचित्रश्च तपोधर्मधृतो भवः ॥
अनेकक्षत्त्रवृद्धश्च सुरसो निर्भयः पृथः । रौच्यस्यैते मनोः पुत्रा ह्यन्तरे तु त्रयोदशे
चतुर्दशेतु पर्याये भौत्तस्याप्यन्तरे मनोः । देवतानां गणाः पञ्च प्रोक्ताये तु भविष्यति
चाक्षुषाश्च कनिष्ठाश्च पवित्रा भ्राजरास्तथा । वाचावृद्धाश्चइत्येतेपञ्चदेवगणाःस्मृताः

अपरा(परांश्चा)पि मनोःसूनून्सप्तैतान्विद्धि चाक्षुषान् ।
बृहदाद्यानि सामानि कनिष्ठान्सप्त तान्विदुः ॥
सप्त लोकाः पवित्रास्ते भाजिराः सप्त सिन्धवः ॥ ११२ ॥

वाचावृद्धानृषीन्विद्धिमनोःस्वायम्भुवस्यवै । सर्वेमन्वन्तरेन्द्राश्चविज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः
तेजसा तपसा बुद्ध्या बलश्रुतपराक्रमैः । त्रैलोक्येयानिसत्त्वानिगतिमन्तिध्रुवाणिच

सर्वशः स्वैर्गुणैस्तानि इन्द्रास्तेऽभिभवन्ति वै ॥ ११४ ॥

भूतापवादिनो ह्यष्टा मध्यस्थाभूतवादिनः । भूतानुवादिनःस्तकास्त्रयोवेदाःप्रवादिनाम्
अग्निध्रः काश्यपश्चैवपौलस्त्योमागधश्च यः । भार्गवोह्यग्निबाहुश्चशुचिराङ्गिरसस्तथा

ओजस्वी सुबलश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः ॥ ११६ ॥

सावर्णा मनवो ह्येते चत्वारो ब्रह्मणः सुताः । एको वैवस्वतश्चैवसावर्णोमनुरुच्यते

रौच्यो भौत्यश्च यौ तौ तु मनोः पौलहभार्गवौ ।

भौत्यस्यैवाऽऽधिपत्ये तु पूर्णः कल्पस्तु पूर्यते ॥ ११७ ॥

सूत उवाच

निःशेषेषु च सर्वेषु तदा मन्वन्तरेष्विह । अन्तेऽनेकयुगे तस्मिन्क्षीणे संहार उच्यते
सप्तैते भार्गवादेवाअन्तेमन्वन्तरे तदा । भुक्त्वात्रैलोक्यमध्यस्थायुगाख्यंह्येकसप्ततिम्
पितृभिर्मनुभिश्चैव सार्द्धं सप्तर्षिभिस्तु ये । यज्वानश्चैव तेऽप्यन्येतद्भक्ताश्चैव तैः सह
महर्लोकं गमिष्यन्ति त्यक्त्वा त्रैलोक्यमीश्वराः । ततस्तेषुगतेषूर्ध्वंक्षीणेमन्वन्तरेतदा

अनाधारमिदं सर्वं त्रैलोक्यं वै भविष्यति ॥ १२२ ॥

ततः स्थानानि शून्यानि स्थानिनां तानि वै द्विजाः ।

प्रभ्रश्यन्ति विमुक्तानि ताराऋक्षग्रहैस्तथा ॥ १२३ ॥

ततस्तेषु व्यतीतेषु त्रैलोक्यस्येश्वरेष्विह । सेन्द्रास्तेषु महर्लोकंयस्मिस्तेकल्पवासिनः
जितायाश्च गणा ह्यत्र चाक्षुषान्ताश्चतुर्दश । मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवास्ते वै महौजसः
ततस्तेषु गतेषूर्ध्वं सायो(यु)ज्यं कल्पवासिनाम् । समेत्यदेवास्तेसर्वेप्राप्तेसङ्कलनेतदा
महर्लोकं परित्यज्य गणास्ते वै चतुर्दश । सशरीराश्च श्रूयन्ते जनलोकं सहानुगाः ॥
एवं देवेष्वतीतेषु महर्लोकाज्जनं प्रति । भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरान्तेषु चाप्युत ॥

शून्येषु लोकस्थानेषु महान्तेषु भूरादिषु ।

देवेषु च गतेषूर्ध्वं सायो(यु)ज्यं कल्पवासिनाम् ॥ १२६ ॥

संहृत्य तांस्ततो ब्रह्मा देवर्षिपितृदानवान् । संस्थापयति वै सर्गं महद्दृष्ट्वायुगक्षये
चतुर्युगसहस्रान्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः । रात्रिं युगसहस्रान्तामहोरात्रविदो जनाः ॥

नैमित्तिकः प्राकृतिको यश्चैवाऽऽत्यन्तिकोऽर्थतः ।

त्रिविधः सर्वभूतानामित्येष प्रतिसञ्चरः ॥ १३२ ॥

ब्राह्मो नैमित्तिकस्तस्य कल्पदाहः प्रसंयमः । प्रतिसर्गे तु भूतानां प्राकृतः करणक्षयः

ज्ञानाच्चाऽऽत्यन्तिकः प्रोक्तः कारणानामसम्भवः ।

ततः संहृत्य तान्ब्रह्मा देवांस्त्रैलोक्यवासिनः ॥ १३४ ॥

अहरन्ते प्रकुरुते सर्गास्य प्रलयं पुनः । सुषुप्सुर्भगवान्ब्रह्मा प्रजाः संहरते तदा ॥ ततो युगसहस्रान्ते संप्राप्तेच युगक्षये । तत्राऽऽत्मस्थाःप्रजाःकर्तुं प्रपेदे स प्रजापतिः तदाभवत्यनावृष्टिस्तदा सा शतवार्षिकी । तथा यान्यल्पसाराणिसत्त्वानिपृथिवीतले तान्येवात्र प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च । सप्तरश्मिरथो भूत्वा उदतिष्ठद्विभावसुः असह्यरश्मिर्भगवान्पिबन्नम्भोगभस्तिभिः । हरितारश्मयस्तस्यदीप्यमानास्तुसप्तभिः भूय एव विवर्तन्ते व्याप्नुवन्तो वनं शनैः । भौमं काष्ठं धनं तेजोभूशमद्भिस्तुदीप्यते तस्मादुदकं सूर्यस्य तपतोऽति हि कथ्यते । नावृष्ट्यातपतेसूर्योनावृष्ट्यापरिविष्यते नावृष्ट्या परिचिन्वन्ति वारिणादीप्यते रविः । तस्मादपःपिबन्योवैदीप्यतेरविरम्बरे तस्य ते रश्मयःसप्तपिबन्त्यम्भोमहार्णवात् । तेनाऽऽहारेणसंदीप्ताःसूर्याःसप्तभवन्त्युत ततस्ते रश्मयः सप्त सूर्यभूताश्चतुर्दिशम् । चतुर्लोकमिमं सर्वं दहन्ति शिखिनस्तदा ॥

प्राप्नुवन्ति च भाभिस्तु ऊर्ध्वं चाऽधश्च रश्मिभिः ।

दीप्यन्ते भास्कराः सप्त युगान्ताग्निप्रतापिनः ॥ १४५ ॥

ते वारिणा च संदीप्ता बहुसाहस्ररश्मयः । खं समावृत्यतिष्ठन्तिनिर्दहन्तोवसुन्धराम् ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुन्धरा । साद्रिनद्यर्णवा पृथ्वी विस्नेहा समपद्यत ॥ दीप्ताभिः संतताभिश्चचित्राभिश्च समन्ततः । अधश्चोर्ध्वंश्चतिर्यक्चसंरुद्धंसूर्यरश्मिभिः सूर्याग्नीनां प्रवृद्धानां संसृष्टानां परस्परम् । एकत्वमुपयातानामेकज्वालं भवत्युत ॥ सर्वलोकप्रणाशश्च सोऽग्निर्भूत्वा तु मण्डली । चतुर्लोकमिदं सर्वंनिर्दहत्याशु तेजसा ततः प्रलीयते सर्वं जङ्गमं स्थावरं तदा । निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिः कूर्मपृष्ठसमाभवेत्

अम्बरीषमिवाऽऽभाति सर्वं मारिषितं जगत् ।

सर्वमेव तदार्चिर्भिः पूर्णं जाज्वल्यते नभः ॥ १५२ ॥

ताले यानि सत्त्वानि महोदधिगतानि च । ततस्तानि प्रलीयन्तेभूमित्वमुपयान्तिच
पाश्च पर्वताश्चैव वर्षाण्यथ महोदधिः । सर्वं तद्भस्मसाच्चक्रे सर्वात्मापावकस्तुसः
मुद्रेभ्योनदीभ्यश्चपातालेभ्यश्चसर्वतः । पिबन्नपःसमिद्धोऽग्निःपृथिवीमाश्रितोज्वलन्
तः संवर्तकः शैलानतिक्रम्य महांस्तथा । लोकान्संहरते दीप्तो घोरः संवर्तकोऽनलः
तः स पृथिवीं भित्त्वा रसातलमशोषयत् । निर्दह्यतांस्तुपातालान्नागलोकमथादहत्
धस्तात्पृथिवींदग्ध्वाऊर्ध्वं स दहते दिवम् । योजनानांसहस्राणिअयुतान्यर्बुदानिच
दतिष्ठच्छिखास्तस्यवहव्यःसंवर्तकस्य तु । गन्धर्वांश्चपिशाचांश्चसमहोरगराक्षसान्

तदा दहति सन्दीप्तो गोलकं चैव सर्वशः ॥ १५६ ॥

र्लोकन्तु भुवर्लोकं स्वर्लोकञ्च महस्तथा । घोरो दहति कालाग्निरेवं लोकचतुष्टयम्
प्तेषु तेषु लोकेषु तिर्यगूर्ध्वमथाग्निना । तत्तेजः समनुप्राप्तं कृत्स्नं जगदिदं शनैः ॥

अयोगुडनिभं सर्वं तदा ह्येवं प्रकाशते ॥ १६१ ॥

तो गजकुलाकारास्तडिद्भिः समलंकृताः । उत्तिष्ठन्तितदाघोराव्योम्निसंवर्तकाघनाः
चिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसंनिभाः । केचिद्वैदूर्यसङ्काशा इन्द्रनीलनिभाःपरे

शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभास्तथा ।
धूम्रवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः ॥ १६४ ॥
केचिद्रासभवर्णाभाः लाक्षारक्तनिभास्तथा ।
मनःशिलाभास्त्वपरे कपोताभास्तथाऽम्बुदाः ॥ १६५ ॥

न्द्रगोपनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ति घना दिवि । केचित्पुरधराकाराः केचिद्गजकुलोपमाः

केचित्पर्वतसङ्काशाः केचित्स्थलनिभा घनाः ।
कुण्डागारनिभाः केचित्केचिन्मीनकुलोपमाः ॥ १६७ ॥

बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः । तदा जलधराः सर्वे पूरयन्ति नभःस्थलम् ॥
ततस्ते जलदा घोराराविणोभास्करात्मिकाः । सप्तधासंवृतात्मानस्तमग्निंशमयन्त्युत
ततस्ते जलदा वर्षं मुञ्चन्ति च महौघवत् । सुघोरमशिवं सर्वं नाशयन्ति च पावकम्
प्रवृष्टैश्च तथाऽत्यर्थं वारिभिः पूर्यते जगत् । अद्भिस्तेजोऽभिभूतश्चतदाग्निःप्रविशत्यपः

नष्टे चाग्नौ वर्षशते पयोदाः पाकसंभवाः । प्लावयन्ति जगत्सर्वं बृहज्जलपरिस्रवैः ॥
धाराभिःपूरयन्तीमंचोद्यमानाःस्वयम्भुवा । अन्ये तु सलिलोघैस्तुवेलामभिभवन्त्यपि

सादिद्वीपान्तरं पृथ्वी अद्भिः संछाद्यते तदा ॥ १७३ ॥

तस्य वृष्ट्या च तोयं तत्सर्वं हि परिमण्डितम् ।

प्रविशत्युदधौ विप्राः पीतं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ १७४ ॥

आदित्यरश्मिभिः पीतं जलमभ्रेषु तिष्ठति । पुनः पतति तद्भूमौ तेन पूर्यन्तिचार्णवाः
ततः समुद्राः स्वां वेलांपरिक्रामन्ति सर्वशः । पर्वताश्च विशीर्यन्तेमहीचाप्सुनिमज्जति
ततस्तुसहसोद्भ्रान्तःपयोदांस्तान्नभस्तले । संवेष्टयति घोरात्मा दिविवायुःसमन्ततः
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे । पूर्णे युगसहस्रे वै निःशेषः कल्प उच्यते ॥
अथाऽम्भसा वृते लोके प्राहुरेकार्णवं बुधाः । अथ भूमितलं खञ्चवायुश्चैकार्णवे तदा

नष्टे भावेऽवलोनं तत्प्राज्ञायत न किञ्चन ॥ १७९ ॥

पार्थिवास्त्वथसामुद्राआपोहैमाश्चसर्वशः । प्रसरन्त्योव्रजन्त्येकंसलिलाख्यांभजन्त्युत
आगतागतिकञ्चैव तदा तत्सलिलंस्मृतम् । प्रच्छाद्यतिष्ठतिमहीमर्णवाख्यश्चतज्जलम्

आभान्ति यस्मात्ता भाभिर्भाशब्दो व्याप्तिदीप्तिषु ।

भस्म सर्वमनुप्राप्य तस्मादम्भो निरुच्यते ॥ १८२ ॥

नानात्वे चैवशीघ्रे च धातुर्वैअरउच्यते । एकार्णवे तदाऽऽपो वै न शीघ्रास्तेनतानराः
तस्मिन्युगसहस्रान्ते दिवसे ब्रह्मणो गते । तावन्तं कालमेवन्तु भवत्येकार्णवं जगत्

तदा तु सर्वव्यापारा निवर्तन्ते प्रजापतेः ॥ १८४ ॥

एवमेकार्णवे तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे । तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥

सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्रपात्सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रवाक् ।

सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीपथी यः पुरुषो निरुच्यते ॥ १८६ ॥

आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता अपूर्व एकः प्रथमस्तुराषाट् ।

हिरण्यगर्भः पुरुषो महान्वै संपद्यते वै तमसः परस्तात् ॥ १८७ ॥

चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतःसलिलाप्लुते । सुषुप्सुरेकार्णवे स्वां रात्रिं तु कुरुते प्रभुः ॥

चतुर्विधा यदा शेते प्रजाः सर्वाण्डमण्डिताः । पश्यन्ते तं महात्मानंकालंसप्तमहर्षयः
जनलोके विवर्तन्तस्तपसा लब्धचक्षुषः । भृग्वादयोमहात्मानः पूर्वे व्याख्यातलक्षणाः

सत्यादीन्सप्त लोकान्वै ते हि पश्यन्ति चक्षुषा ।

ब्रह्माणं ते तु पश्यन्ति महाब्राह्मीषु रात्रिषु ॥ १६१ ॥

सप्तर्षयः प्रपश्यन्ति सुप्तकालं स्वरात्रिषु । कल्पानां परमेष्ठित्वात्तस्मादाद्यः स पठ्यते
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः । एवमावेशयित्वा तु स्वात्मन्येव प्रजायते
तथाऽऽत्मनि महातेजाः सर्वमादाय सर्वकृत् । ततः स वसतेरात्रिंतमस्येकार्णवेजले
ततो रात्रिक्षये प्राप्ते प्रतिबुद्धः प्रजापतिः । मनः सिसृक्षया युक्तं सर्गाय निदधे पुनः
एवं सलोके निर्वृत्ते उपशान्ते प्रजापतौ । ब्रह्मनैमित्तिके तस्मिन्कल्पिते वै प्रसंयमे
देहैर्वियोगः सत्त्वानांतस्त्विवैकृत्स्नशः स्मृतः । ततोदग्धेषुभूतेषुसर्वेष्वादित्यरश्मिभिः

देवर्षिमनुवर्येषु तस्मिन्सङ्कुलने तदा ॥ १६७ ॥

गन्धर्वादीनिसत्वानिपिशाचान्तानि सर्वशः । कल्पादावप्रतप्तानिजनमेवाऽऽश्रयन्तिवै
तिर्यग्योनीनि सत्त्वानि नारकेयाणियान्यपि । तदातान्यपिदग्धानिधूतपापानिसर्वशः

जने तान्युपपद्यन्ते यावत्संप्लवते जगत् ॥ १६६ ॥

व्युष्टायान्तु रजन्यान्तुब्रह्मणेऽव्यक्तयोनये । जायन्ते हि पुनस्तानिसर्वभूतानिकृत्स्नशः
ऋषयो मनवो देवाः प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः । तेषामपीहसिद्धानांनिधनोत्पत्तिरुच्यते
यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन्नुदयास्तमनं स्मृतम् । तथाजन्मनिरोधश्चभूतानामिहदृश्यते
आभूतसंप्लवात्तस्माद्भवःसंसारउच्यते । यथा सर्वाणिभूतानिजायन्ते हि वर्षास्विह
स्थावरादीनि सत्त्वानि कल्पेकल्पेतथा प्रजाः । यथार्तावृतुलिङ्गानिनानारूपाणिपर्यये
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथाब्रह्मात्तरात्रिषु । प्रत्याहारे च सर्गे च गतिमन्तिध्रुवाणिच
निष्क्रमन्ते विशन्ते च प्रजाकारंप्रजापतिम् । ब्रह्माणंसर्वभूतानिमहायोगंमहेश्वरम् ॥
संस्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः । व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्तस्यसंर्वमिदंजगत्

येनैव सृष्टा प्रथमं प्रयाता आपो हि मार्गेण महीतलेऽस्मिन् ।

पूर्वप्रयातेन तथा ह्यपोऽन्यास्तेनैव तेनैव तु सम्व्रजन्ति ॥ २०८ ॥

यथा शुभेन त्वशुभेन चैव तत्रैव तत्रैव विवर्तमानाः ।
मर्त्यास्तु देहान्तरभावितत्वाद्रवेर्वशादूर्ध्वमधश्चरन्ति ॥ २०९ ॥
ये चापि देवा मनवः प्रजेशा अन्येऽपि ये स्वर्गगताश्च सिद्धाः ।
तद्भाविताख्यातिवशाच्च धर्म्याः पुनर्निसर्गेण भवन्ति सत्त्वाः ॥ २१० ॥
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि कालमाभूतसंप्लवम् ।
मन्वन्तराणि यानि स्युर्व्याख्यातानि मया द्विजाः ॥
सह प्रजानिसर्गेण सह देवैश्चतुर्दश ॥ २११ ॥

सयुगाख्यासहस्रन्तु सर्वाण्येवान्तराणि वै । अस्याः सहस्रेद्वेपूर्णे निःशेषः कल्पउच्यते
एतद्ब्राह्ममहर्ज्ञेयं तस्य संख्यां निबोधत । निमेषस्तुल्यमात्रा हि कृतो लघ्वक्षरेण तु
मानुषाक्षिनिमेषास्तु काष्ठा पञ्चदशस्मृता । लवः क्षणास्तु पञ्चैवविंशत्काष्ठातुतेत्रय

प्रस्थः सप्तोदकाश्चैव साधिकास्तु लवः स्मृतः ।
लवास्त्रिशत्कला ज्ञेया मुहूर्तास्त्रिशतः कलाः ॥ २१५ ॥

मुहूर्तास्तुपुनस्त्रिशदहोरात्रमितिस्थितिः । अहोरात्रंकलानान्तुद्व्यधिकानिशतानिषट्
ताश्चैव संख्यया ज्ञेयंचन्द्रादित्यगतिर्यथा । निमेषा दशपञ्चैवकाष्ठास्तास्त्रिशतःकला
त्रिंशत्कला मुहूर्तस्तु दशभागः कला स्मृता । चत्वारिंशत्कलानान्तु मुहूर्तइतिसंज्ञितः

मुहूर्ताश्च लवाश्चापि प्रमाणज्ञैः प्रकल्पिताः ।
ततस्थानेनाम्भसा(सां) चापि पलान्यथ त्रयोदश ॥ २१६ ॥

मागधेनैव मानेन जलप्रस्थो विधीयते । एते चाप्युदकप्रस्थाश्चत्वारो नालिको घटः
हेममाषैः कृतच्छिद्रैश्चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः । समाहनि च रात्रौ च मुहूर्ता वै द्विनालिकाः
रवेर्गतिविशेषेण सर्वेष्वृतुषु नित्यशः । अधिकं षट्शतं पञ्च कलानां प्रविधीयते ॥
तदहर्मानुषं ज्ञेयं नाक्षत्रन्तु दशाधिकम् । सावनेन तु मासेन अब्दोऽयं मानुषःस्मृतः
एतद्दिव्यमहोरात्रमिति शास्त्रविनिश्चयः । अह्नाऽनेन तु या संख्यामासर्त्वयनवार्षिकी
तदा बद्धमिदंज्ञानं संज्ञा या ह्युपलक्ष्यताम् । कलानांसुपरीमाणात्काल इत्यभीधियते

यदहर्ब्रह्मणः प्रोक्तं दिव्या कोटी तु सा स्मृता ।

शतानाञ्च सहस्राणि दश द्विगुणितानि च ॥
नवतिश्च सहस्राणि तथैवाऽन्यानि यानि तु ॥ २२६ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु ऋषयो विस्मयं परमाद्भुतम् । संस्थासम्भजनं ज्ञानमपृच्छन्नन्तरं तदा ॥

ऋषय ऊचुः

संख्याप्रलयमात्रन्तु मानुषेणैव संमतम् । मानेन श्रोतुमिच्छामः संक्षेपार्थपदाक्षरम् ॥

तेषां श्रुत्वा स देवस्तु वायुर्लोकहिते रतः । संक्षेपाद्दिव्यचक्षुष्मान्प्रोवाचभगवान्प्रभुः

एते रात्र्यहनीपूर्वंकीर्तितेत्विहलौकिके । तासां संख्यायवर्षाग्रंब्राह्मयं वक्ष्याम्यहः क्षये

कोटीशतानि चत्वारि वर्षाणि मानुषाणि तु ।
द्वात्रिंशच्च तथा कोट्यः संख्याताः संख्यया द्विजैः ॥ २३१ ॥

तथा शतसहस्राणि एकोननवतिः पुनः । अशीतिश्च सहस्राणि एष कालः प्लवस्य तु

मानुषाख्येण संख्यातः कालो ह्याभूतसंप्लवः । सप्त सूर्यास्तदाऽग्रेषु तदा लोकेषुतेषुवै

महाभूतेषु लीयन्ते प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः । सलिलेनाऽऽप्लुतेलोके नष्टेस्थावरजङ्गमे

विनिवृत्ते च संहारे उपशान्ते प्रजापतौ । निरालोके प्रदग्धे तु नैशेन तमसाऽऽवृते ॥

ईश्वराधिष्ठिते ह्यस्मिंस्तदा ह्येकार्णवे किल ॥ २३५ ॥
तावदेकार्णवो ज्ञेयो यावदासीदहः प्रभोः ।
रात्रिस्तु सलिलावस्था निवृत्तौ चाप्यहः स्मृतम् ॥ २३६ ॥

अहोरात्रस्तथैवाऽस्य क्रमेण परिवर्तते । आभूतसंप्लवो ह्येष अहोरात्रः स्मृतः प्रभोः

त्रैलोक्येयानि सत्त्वानिगतिमन्तिध्रुवाणिच । आभूतेभ्यःप्रलीयन्ते तस्मादाभूतसंप्लवः

अग्रे भूतः प्रजानान्तु तस्माद्भूतः प्रजापतिः । आभूतात्प्लवते चैव तस्मादाभूतसंप्लवः

शाश्वते चाऽमृतत्वे च शब्देचाऽऽभूतसंप्लवः । अतीता वर्तमानाश्चतथैवानागताःप्रजाः

दिव्यसंख्या प्रसंख्याता अपरार्धगुणीकृता ॥ २४० ॥

परार्धद्विगुणं चापि परमायुः प्रकीर्तितम् । एतावान्स्थितिकालस्तु अजस्येहप्रजापतेः

स्थित्यन्ते प्रतिसर्गस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ २४१ ॥

यथा वायुप्रवेगेन दीपार्चिरुपशाम्यति । तथैव प्रतिसर्गेण ब्रह्मा समुपशाम्यति ॥

तथा ह्यप्रतिसंसृष्टे महदादौ महेश्वरे । महत्प्रलीयतेऽव्यक्ते गुणसाम्यं ततो भवेत् ॥
इत्येष च समाख्यातो मया ह्याभूतसंप्लवः । ब्रह्मनैमित्तिको ह्येष संप्रक्षालनसंयमः ॥
समासेन समाख्यातो भूयः किं वर्तयामि वः ।
य इदं धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाऽप्यभीक्ष्णशः ॥
कीर्तनाच्छ्रवणाच्चापि महतीं सिद्धिमाप्नुयात् ॥ २४५ ॥
ब्राह्मणो लभते विद्यां क्षत्त्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्यस्तु धनलाभाग्व (भावचैव)शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥ २४६ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते चतुर्थ उपसंहारपादे मन्वन्तरनिसर्गादिकथनं नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥

एकशततमोऽध्यायः

भूर्लोकादिव्यवस्थावर्णनम्

वायुरुवाच

असाधारणवृत्तैस्तु ह्युतशेषादिभिर्द्विजैः । धर्मा वैशेषिकाश्चैवआचीर्णाःसूक्ष्मदर्शिभिः
ते देवैः सह तिष्ठन्ति महर्लोकनिवासिनः । चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताःकीर्तिवर्धनाः ॥
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये । ऋषिभिर्दैवतैश्चैवसह गन्धर्वराक्षसैः ॥ ३॥
मन्वन्तराधिकारेषु जायन्तीह पुनः पुनः । देवा सप्तर्षयश्चैव मनवः पितरस्तथा ॥ ४॥
सर्वे ह्यपिक्रमातीता महर्लोकंसमाश्रिताः । ब्राह्मणैःक्षत्त्रियैर्वैश्यैर्धार्मिकैःसहितैःसुराः
तैस्तथ्यकारिभिर्युक्तैःश्रद्धावद्भिरदर्पितैः । वर्णाश्रमाणांधर्मेषुश्रौतस्मार्तेषुसंस्थितैः ॥
विनिवृत्ताधिकारास्ते यावन्मन्वन्तरक्षयः ॥ ६ ॥

ऋषय ऊचुः

महर्लोकेति यत्प्रोक्तं मातरिश्वंस्त्वया विभो । प्रतिलोकेचकर्तव्यमनेकैः समधिष्ठिताः

यावन्तश्चैव ते लोका दह्यन्ते येन ते प्रभो। एतन्नः कथय प्रीत्यात्वंहिवेत्थयथातथम्
एवमुक्तस्ततो वायुर्मुनिभिर्विनयात्मभिः। प्रोवाच मधुरं वाक्यं यथातत्त्वेनतत्त्ववित्

वायुरुवाच

चतुर्दशैवस्थानानिवर्णितानिमहर्षिभिः। लोकाख्यानितुयानिस्युर्येषुतिष्ठन्तिमानवाः
सप्त तेषु कृतान्याहुरकृतानि तु सप्त वै। भूरादयस्तु संख्याताःसप्तलोकाःकृतास्त्विह
अकृतानितु सप्तैवप्राकृतानितुयानि वै। स्थानानिस्थानिभिःसार्धंकृतानितुनिबन्धनम्

पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिव्यं यच्च महः स्मृतम्।
स्थानान्येतानि चत्वारि स्मृतान्यार्णवकानि च॥ १३॥
क्षयातिशययुक्तानि तथा युक्तानि वक्ष्यते(वच्म्यहम्)।
यानि नैमित्तिकानि स्युस्तिष्ठन्त्याभूतसंप्लवम्॥ १४॥
जनस्तपश्च सत्यं च स्थानान्येतानि त्रीणि तु।
ऐकान्तिकानि सत्त्वानि तिष्ठन्तीहाऽऽप्रसंयमात॥ १५॥

व्यक्तानितुप्रवक्ष्यामिस्थानान्येनानिसप्तवै। भूर्लोकः प्रथमस्तेषांद्वितीयस्तुभुवःस्मृतः
स्वस्तृतीयस्तु विज्ञेयश्चतुर्थो वै महः स्मृतः। जनस्तु पञ्चमोलोकस्तपःषष्ठोविभाव्यते
सत्यस्तु सप्तमो लोकोनिरालोकस्ततःपरम्। भूरितिव्याहृतेपूर्वंभूर्लोकश्चततोऽभवत्
द्वितीयो भुव इत्युक्त अन्तरिक्षं ततोऽभवत्। तृतीयं स्वरितीत्युक्ते दिवं प्रादुर्बभूव ह
व्याहारैस्त्रिभिरेतैस्तुब्रह्मालोकमकल्पयत्। ततोभूःपार्थिवोलोकोह्यन्तरिक्षंभुवःस्मृतम्
स्वर्लोको वै दिवं ह्येतत्पुराणेनिश्चयंगतम्। भूतस्याधिपतिश्चाग्निस्ततोभूतपतिःस्मृतः
वायुर्भुवस्याधिपतिस्तेनवायुर्भुवस्पतिः। भव्यस्य सूर्योऽधिपतिस्तेन सूर्योदिवस्पतिः
महेतिव्याहृतेनैवं महर्लोकस्ततोऽभवत्। विनिवृत्ताधिकाराणां देवानां तत्र वै क्षयः

जनस्तु पञ्चमो लोकस्तस्माज्जायन्ति वै जनाः।
तासां स्वायंभुवाद्यानां प्रजानां जननाज्जनः॥ २४॥
यास्ताः स्वायंभुवाद्या हि पुरस्तात्परिकीर्तिताः।
कल्पदाहे तदा लोके प्रतिष्ठति तदा तपः॥ २५॥

ऋभुः सनत्कुमाराद्यायत्र सन्त्यूर्ध्वरेतसः । तपसाभावितात्मानस्तत्रसन्तीतिघातपः
सत्येति ब्रह्मणः शब्दःसत्तामात्रस्तुसस्मृतः । ब्रह्मलोकस्ततः सत्यंसप्तमःसतुभास्करः
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा गुह्यकास्तु सराक्षसाः । सर्वभूतपिशाचाश्चनागाश्चसहमानुषैः॥
स्वर्लोकवासिनः सर्वे देवा भुवि निवासिनः ॥ २८ ॥
मरुतो मातरिश्वानोरुद्रादेवास्तथाश्विनौ । अनिकेतान्तरिक्षास्तेभुवर्लोक्यादिवौकसः
आदित्याऋभवोविश्वेसाध्याश्चपितरस्तथा । ऋषयोऽङ्गिरसश्चैवभुवर्लोकंसमाश्रिताः
एते वैमानिका देवास्ताराग्रहनिवासिनः । इत्येते क्रमशः प्रोक्ता ब्रह्मव्याहारसंभवाः
भूर्लोकप्रथमा लोका महदन्ताश्चतेस्मृताः । आरभ्यन्तेतुतन्मात्रैः शुद्धास्तेषांपरस्परम्
शुक्राद्याश्चाक्षुषान्ताश्चयेऽव्यतीताभुवंश्रिताः । महर्लोकश्चतुर्थस्तुतस्मिंस्तेकल्पवासिनः
इत्येते क्रमशः प्रोक्ता ब्रह्मव्याहारसंभवाः ॥ ३३ ॥
भूर्लोकप्रथमा लोका महदन्ताश्चयेस्मृताः । तान्सर्वान्सप्तसूर्यास्तेअर्चिभिर्निर्दहन्ति वै
मरीचिः कश्यपोदक्षस्तथास्वायंभुवोऽङ्गिराः । भृगुःपुलस्त्यःपुलहःक्रतुरित्येवमादयः
प्रजानां पतयः सर्वे वर्तन्ते तत्र तैः सह । निःसत्वा निर्ममाश्चैव तत्र ते ह्यूर्ध्वरेतसः
ऋभुःसनत्कुमाराद्यावैराज्यास्तेतपोधनाः । मन्वन्तराणांसर्वेषांसावर्णानांततःस्मृताः
चतुर्दशानां सर्वेषां पुनरावृत्तिहेतवः ॥ ३७ ॥
योगं तपश्च सत्यं च समाधाय तदाऽऽत्मनि । षष्ठेकालेनिवर्तन्तेतत्तदाह(?)विपर्यये
सत्यस्तु सप्तमोलोकोह्यपुनर्मार्गगामिणाम् । ब्रह्मलोकःसमाख्यातोह्यप्रतीघातलक्षणः
पर्यासपारिमाण्येनभूर्लोकःसमितिःस्मृतः । भूम्यन्तरंयदादित्यादन्तरिक्षं भुवःस्मृतम्
सूर्यध्रुवान्तरं यच्च स्वर्गलोको दिवः स्मृतः । ध्रुवाज्जनान्तरं यच्च महर्लोकः सउच्यते
विख्याताः सप्तलोकास्तु तेषां वक्ष्यामि सिद्धयः ।
भूर्लोकवासिनः सर्वे अन्नादास्तु रसात्मकाः ॥ ४२ ॥
भुवे स्वर्गे च ये सर्वे सोमपा आज्यपाश्चते । चतुर्थे येऽपिवर्तन्तेमहर्लोकं समाश्रिताः
विज्ञेया मानसी तेषां सिद्धिर्वैपञ्चलक्षणा । सद्यश्चोत्पद्यतेतेषांमनसा सर्वमीप्सितम्
एते देवा यजन्ते वै यज्ञैः सर्वैः परस्परम् । अतीतान्वर्तमानांश्च वर्तमानाननागतान् ॥

प्रथमानन्तरैरिष्ट्वा अन्तराः सांप्रतैः पुनः । निवर्ततीत्यासंबन्धोऽतीते देवगणेतत् (?)॥
विनिवृत्ताधिकाराणां सिद्धिस्तेषांतुमानसी । तेषांतुमानसीज्ञेयाशुद्धासिद्धिपरम्परा॥
उक्ता लोकाश्चचत्वारो जनस्यानुविधिस्तथा । समासेनमयाविप्राभूयस्तंवर्तयामिवः

वायुरुवाच

मरीचिः कश्यपो दक्षो वसिष्ठश्चाङ्गिरा भृगुः । पुलस्त्य.पुलहश्चैवक्रतुरित्येवमादयः
पूर्वं ते सम्प्रसूयन्ते ब्रह्मणो मनसा इह । ततः प्रजाः प्रतिष्ठाप्य जनमेवाऽऽश्रयन्ति ते
कल्पदाहप्रदीप्तेषु तदा कालेषु तेषु वै । भूरादिषु महान्तेषु भृशं व्याप्तेष्वथाग्निना ॥

शिखा सम्वर्तका ज्ञेया प्राप्नुवन्ति सदा जनाः ।
यामादयो गणाः सर्वे महर्लोकनिवासिनः ॥ ५२ ॥

महर्लोकेषु दीप्तेषु जनमेवाऽऽश्रयन्ति ते । सर्वे सूक्ष्मशरीरास्ते तत्रस्थास्तु भवन्ति ते
तेषां ते तुल्यसामर्थ्यास्तुल्यमूर्तिधरास्तथा । जनलोके विवर्तन्ते यावत्सम्प्लवते जगत्
व्युष्टायांतु रजन्यां वै ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनिनः । अहरादौ प्रसूयन्ते पूर्ववत्क्रमशस्त्विह॥
स्वायम्भुवादयः सर्वे मरीच्यन्तास्तुसाधकाः । देवास्तेवैपुनस्तेषांजायन्तेनिधनेष्विह
यामादयः क्रमेणैव कनिष्ठाद्याः प्रजापतेः । पूर्वं पूर्वं प्रसूयन्ते पश्चिमे पश्चिमास्तथा ॥
देवान्वये देवताहिसप्तसम्भूतयःस्मृताः । व्यतोताः कल्पजास्तेषांतिस्रः शिष्टास्तथापरे
आवर्तमाना देवास्ते क्रमेणैतेन सर्वशः । गत्वा जवं जवीभावं दशकृत्वः पुनः पुनः ॥

ततस्ते वै गणाः सर्वे दृष्ट्वा भावेष्वनित्यताम् ।
भाविनोऽर्थस्य च बलात्पुण्याख्यातिबलेन च ॥ ६० ॥

निवृत्तवृत्तयः सर्वे स्वस्थाः सुमनसस्तथा । वैराजे तूपपद्यन्ते लोकमुत्सृज्य तज्जनम्
ततोऽन्येनैवकालेन नित्ययुक्तास्तपस्विनः । कथनाच्चैव धर्मस्य तेषां ते जज्ञिरेऽन्वये
इहोत्पन्नास्ततस्ते वै स्थानान्यापूरयन्त्युत । देवत्वे च ऋषित्वेच मनुष्यत्वे च सर्वशः
एवं देवगणाः सर्वे दशकृत्वो निवर्त्य वै । वैराजेषूपपन्नास्ते दश तिष्ठन्त्युपप्लवान् ॥
पूर्णे पूर्णे ततः कल्पे स्थित्वा वैराजके पुनः । ब्रह्मलोके विवर्तन्ते पूर्वपूर्वक्रमेण तु ॥
एतस्मिन्ब्रह्मलोके तु कल्पे वैराजके गते । वैराजं पुनरप्येके कल्पस्थानमकल्पयन् ॥

एवं पूर्वानुपूर्व्येण ब्रह्मलोकगतेन वै। एवं तेषु व्यतीतेषु तपसा परिकल्पिते॥
वैराजे तूपपद्यन्ते दशकृत्वो निवर्तते ॥ ६७ ॥
एवं देवयुगानीह व्यतीतानि सहस्रशः। निधनं ब्रह्मलोके तु गतानामृषिभिः सह॥

सूत उवाच

न शक्यमानुपूर्व्येणतेषां वक्तुं प्रविस्तरम्। अनादित्वाच्च कालस्यअसंख्यानाच्चसर्वशः
एवमेव न सन्देहो यथावत्कथितं मया ॥ ६९ ॥
तदुपश्रुत्य वाक्यार्थमृषयः संशयान्विताः। सूतमाहुः पुराणज्ञं व्यासशिष्यं महामतिम्

ऋषय ऊचुः

वैराजास्ते यदाहारा यत्सत्त्वाश्च यदाश्रयाः। तिष्ठन्तिचैवयत्कालंतन्नोब्रूहि यथातथम्
तदुक्तमृषिभिर्वाक्यं श्रुत्वा लोकार्थतत्त्ववित्। सूतःपौराणिकोवाक्यंविनयेनेदमब्रवीत
ततः प्राप्यन्त ते सर्वे शुद्धिशुद्धतमाश्च ये। आभूतसंप्लवास्तत्र दश तिष्ठन्ति ते जनाः॥
सर्वे सूक्ष्मशरीरास्ते विद्वांसो घनमूर्तयः। स्थितलोकस्थितत्वाच्च तेषांभूतं न विद्यते
ऊचुः सनत्कुमाराद्याः सिद्धास्ते योगधर्मिणः।
ख्यातिं नैमित्तिकीं तेषां पर्याये समुपस्थिते ॥ ७५ ॥
स्थानत्यागे मनश्चाऽपि युगपत्सम्प्रवर्तते। ऊचुः सर्वे तदाऽन्योन्यंवैराजाःशुद्धबुद्धयः
एवमेव महाभागाः प्रणवं सम्प्रविश्य ह। ब्रह्मलोके प्रवर्तामस्तन्नः श्रेयो भविष्यति॥
एवमुक्त्वातदासर्वे ब्रह्मान्ते व्यवसायिनः। योजयित्वातदाऽऽत्मानंवर्तन्तेयोगधर्मिणः
तत्रैव सम्प्रलीयन्ते शान्ता दीपार्चिषो यथा। ब्रह्मकायमवर्तन्त पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥
लोकं तं समनुप्राप्य सर्वे ते भावनामयम्। आनन्दं ब्रह्मणाप्राप्यअमृतत्वाय ते गताः
वैराजेभ्यस्तथैवोर्ध्वमन्तरे षड्गुणे ततः। ब्रह्मलोकः समाख्यातो यत्र ब्रह्मा पुरोहितः
ते सर्वे प्रणवात्मानो बुद्धशुद्धतपास्तथा। आनन्दं ब्रह्मणःप्राप्याऽमृतत्वं च भजन्त्युत
द्वन्द्वैस्ते नाभिभूयन्ते भावत्रयविवर्जिताः। आधिपत्यं विनातुल्याब्रह्मणस्ते महौजसः
प्रभावविजयैश्वर्यस्थितिवैराग्यदर्शनैः। ते ब्रह्मलौकिकाः सर्वे गतिं प्राप्य विवर्तनीम्
ब्रह्मणा सह देवैश्च सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे। तपसोऽन्ते क्रियात्मानोबुद्धावस्थामनीषिणः

अव्यक्ते सम्प्रलीयन्ते सर्वे ते क्षणदर्शिनः ॥ ८५ ॥

इत्येतदमृतं शुक्रं नित्यमक्षयमव्ययम् । देवर्षयो ब्रह्मसत्रं सनातनमुपासते ॥ ८६ ॥
अपुनर्मार्गगादीनां तेषां चैवोर्ध्वरेतसाम् । कर्माभ्यासकृता शुद्धिर्वेदान्तेषूपलक्ष्यते ॥
तत्रतेऽभ्यासिनो युक्ताः परांकाष्ठामुपासते । हित्वा शरीरंपाप्मानममृतत्वायते गताः

वीतरागा जितक्रोधा निर्मोहाः सत्यवादिनः ।
शान्ताः प्रणिहितात्मानो दयावन्तो जितेन्द्रियाः ॥ ८६ ॥
निःसङ्गाः शुचयश्चैव ब्रह्मसायो(यु)ज्यगाः स्मृताः ।
अकामयुक्तैर्ये वीरास्तपोभिर्दग्धकिल्विषाः ॥
तेषामभ्रंशिनो लोका अप्रमेयसुखाः स्मृताः ॥ ९० ॥

एतद्ब्रह्मपदं दिव्यं परमंव्योम्नि भास्वरम् । यत्र गत्वानशोचन्ति ह्यमरा ब्रह्मणा सह

ऋषय ऊचुः

कस्मादेष परार्धश्च कश्चैष पर उच्यते । एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम॥९२॥

सूत उवाच ,

शृणुध्वं मे परार्धञ्च परिसंख्यां परस्य च । एकं दशशतं चैव सहस्रं चैव संख्यया॥
विज्ञेयमासहस्रं तु सहस्राणि दशायुतम् । एकं शतसहस्रं तु नियुतं प्रोच्यते बुधैः ॥
तथा शतसहस्राणामर्वुदं कोटिरुच्यते । अर्वुदं दश कोट्यस्तु अब्जं कोटिशतं विदुः
सहस्रमपि कोटीनां खर्वमाहुर्मनीषिणः । दशकोटिसहस्राणि निखर्वमिति तं विदुः ॥
शतं कोटिसहस्राणां शङ्कुरित्यभिधीयते । सहस्रं तु सहस्राणां कोटीनां दशधा पुनः

गुणितानि समुद्रं वै प्राहुः संख्याविदो जनाः ॥ ९७ ॥

कोटीनां सहस्रमयुतमित्ययं मध्य उच्यते । कोटिसहस्रनियुतासचान्त इतिसञ्ज्ञितः
कोटिकोटिसहस्राणि परार्धं इति कीर्त्यते । परार्धं द्विगुणं चापि परमाहुर्मनीषिणः
शतमाहुः परिद्रढं सहस्रं परिपद्मकम् । विज्ञेयमयुतं तस्मान्नियुतं प्रयुतं ततः ॥१०० ॥
अर्वुदं न्यर्वुदं चैव स्वर्वुदं च ततःस्मृतम् । खर्वं चैव निखर्वं च शङ्कुं पद्मं तथैव च ॥
समुद्रं मध्यमं चैव परार्धमपरं ततः । एवमष्टादशैतानि स्थानानि गणनाविधौ ॥

शतानीति विज्ञानीयात्सञ्ज्ञितानिमहर्षिभिः । कल्पसंख्याप्रवृत्तस्यपरार्धंब्रह्मणःस्मृतम्

तावच्छेषोऽपि कालोऽस्य तस्यान्ते प्रतिसृज्यते ।

पर एष परार्धश्च संख्यातः संख्यया मया ॥ १०४ ॥

यस्मादस्य परं वीर्यं परमायुः परं तपः । परा शक्तिः परो धर्मः पराविद्या परा धृतिः

परं ब्रह्म परं ज्ञानं परमैश्वर्यमेव च । तस्मात्परतरं भूतं ब्रह्मणोऽन्यन्न विद्यते ॥ १०६॥

परे स्थितोह्येष परः सर्वार्थेषु ततः परः । संख्यातस्तु परा ब्रह्मा तस्यार्धं तु परार्धता

संख्येयं चाप्यसंख्येयं सततंचापितत्त्रिकम् । संख्येयं संख्यया दृष्टमपरार्धाद्विभाष्यते

राशौ दृष्टे न संख्याऽस्ति तदसंख्यस्य लक्षणम् ।

अनपत्यं सिक्तास्वेषु(?) दृष्टवान्पञ्चलक्षणम् ॥ १०६ ॥

ईश्वरैस्तत्प्रसंख्यातं शुद्धत्वाद्दिव्यदृष्टिभिः । एवं ज्ञानप्रतिष्ठत्वात्सर्वं ब्रह्माऽनुपश्यति

एतच्छ्रुत्वा तु ते सर्वे नैमिषेयास्तपस्विनः । बाष्पपर्याकुलाक्षास्तु प्रहर्षाद्गद्गदस्वराः ॥

पप्रच्छुर्मातरिश्वानं सर्वे ते ब्रह्मवादिनः । ब्रह्मलोकस्तु भगवन्यावन्मात्रान्तरः प्रभो ॥

योजनाग्रेण संख्यातंसाधनंयोजनस्यतु । क्रोशस्यच परीमाणं श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः

तेषां तद्वचनंश्रुत्वा मातरिश्वा विनीतवाक् । उवाच मधुरं वाक्यंयथादृष्टं यथाक्रमम्

वायुरुवाच

एतद्वोऽहंप्रवक्ष्यामिश्रृणुध्वंमेविवक्षितम् । अव्यक्ताद्व्यक्तभागोवैमहास्थूलोविभाव्यते

दशैव महतां भागा भूतादिः स्थूल उच्यते । दशभागाधिकं चापि भूतादेः परमाणुकः

परमाणुः सुसूक्ष्मस्तु भावग्राह्यो न चक्षुषा । यदभेद्यतमं लोके विज्ञेयं परमाणु तत् ॥

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः । प्रथमं तत्प्रमाणानां परमाणुं प्रचक्षते ॥

अष्टानां परमाणूनां समवायो यदा भवेत् । त्रसरेणुः समाख्यातस्तत्पद्मरज उच्यते ॥

त्रसरेणवश्च येऽप्यष्टौ रथरेणुस्तु स स्मृतः ।

तेऽप्यष्टौ समवायस्था बलाग्रं तत्स्मृतं बुधैः ॥ १२० ॥

बलाग्राण्यष्ट लिक्षा स्याद्यूका तच्चाष्टकंभवेत् । यूकाष्टकं यवं प्राहुरङ्गुलं तु यवाष्टकम्

द्वादशाङ्गुलपर्वाणि वितस्तिस्थानमुच्यते । रत्निश्चाङ्गुलिपर्वाणि विज्ञेयो ह्येकविंशतिः

चत्वारि विंशतिश्चैव हस्तःस्यादङ्गुलानितु । किष्कुर्द्विरत्निर्विज्ञेयो द्विचत्वारिंशदङ्गुलः
षण्णवत्यङ्गुलं चैव धनुराहुर्मनीषिणः । एतद्गव्यूतिसंख्यार्थोपादानं धनुषः स्मृतम् ॥
धनुर्दण्डो युगंनालीतुल्यान्येतान्यथाङ्गुलैः । धनुषस्त्रिशतंनल्वमाहुःसंख्याविदोजनः
धनुःसहस्रे द्वे चापि गव्यूतिरुपदिश्यते । अष्टौ धनुःसहस्राणि योजनं तु विधीयते ॥
एतेन धनुषा चैव योजनं तु समाप्यते । एतत्सहस्रं विज्ञेयं शक्रक्रोशान्तरं तथा ॥

योजनानां तु संख्यातं संख्याज्ञानविशारदैः ।
एतेन योजनाग्रेण शृणुध्वं ब्रह्मणोऽन्तरम् ॥ १२८ ॥

महीतलात्सहस्राणां शतादूर्ध्वं दिवाकरः । दिवाकरात्सहस्रेण तावदूर्ध्वं निशाकरः॥
पूर्णं शतसहस्रं तु योजनानां निशाकरात् । नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते ॥
शतं सहस्रं संख्यातो मेरुर्द्विगुणितं पुनः । ग्रहान्तरमथैकेकमूर्ध्वं नक्षत्रमण्डलात् ॥
ताराग्रहाणां सर्वेषामधस्ताच्चरते बुधः । तस्योर्ध्वं चरते शुक्रस्तस्मादूर्ध्वं च लोहितः
ततो बृहस्पतिश्चोर्ध्वं तस्मादूर्ध्वं शनैश्चरः । ऊर्ध्वं शतसहस्रं तु योजनानां शनैश्चरात्
सप्तर्षिमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात्प्रकाशते । ऋषिभिस्तु सहस्राणां शतादूर्ध्वं विभाव्यते
योऽसो(सौ)तारामयेदिव्येविमानेह्रस्वरूपके । उत्तानपादपुत्रोऽसौमेढीभूतोध्रुवोदिवि

त्रैलोक्यस्यैष उत्सेधो व्याख्यातो योजनैर्मया ।
मन्वन्तरेषु देवानामिज्या यत्रैव लौकिकी ॥ १३६ ॥

वर्णाश्रमेभ्यइज्यातु लोकेऽस्मिन्याप्रवर्तते । सर्वासां देवयोनीनांस्थितिहेतुःसवैस्मृतः -
त्रैलोक्यमेतद्व्याख्यातमत ऊर्ध्वंनिबोधत । ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोकोयस्मिंस्तेकल्पवासिनः

एकयोजनकोटी सा इत्येवं निश्चयं गतम् ॥ १३८ ॥

द्वेकोट्यौतुमहर्लोकाद्यस्मिंस्तेकल्पवासिनः।यत्रतेब्रह्मण पुत्रादक्षाद्याःसाधकाःस्मृताः
चतुर्गुणोत्तरादूर्ध्वं जनलोकात्तपः स्मृतम् । वैराजा यत्र ते देवा भूतदाहविवर्जिताः॥
षड्गुणंतुतपोलोकात्सत्यलोकान्तरं स्मृतम् । अपुनर्मारकामानांब्रह्मलोकः स उच्यते
यस्मान्न च्यवते भूयो ब्रह्माणं स उपासते । एककोटिर्योजनानां पञ्चाशन्नियुतानि तु

ऊर्ध्वभागस्ततोऽण्डस्य ब्रह्मलोकात्परः स्मृतः ।

चतुर(तस्र)श्चैव कोट्यस्तु नियुता पञ्चषष्टि च ॥ १४३ ॥

एषोऽर्धांशप्रचारोऽस्यगत्यन्तश्चापरःस्मृतः। ध्रुवाग्रमेतद्व्याख्यातंयोजनाग्राद्यथाश्रुतम्

अधोगतीनां वक्ष्यामि भूतानां स्थानकल्पनाम् ।

गच्छन्ति घोरकर्माणः प्राणिनो यत्र कर्मभिः ॥ १४५ ॥

नरको रौरवो रोधः सूकरस्ताल एव च । तप्तकुम्भो महाज्वालःशबलोऽथविमोचनः

कृमी च कृमिभक्षश्च लालाभक्षो विशंसनः । अधःशिराः पूयवहो रुधिरान्धस्तथैव च

तथा वैतरणं कृष्णमसिपत्रवनं तथा । अग्निज्वालो महाघोरः सन्दंशोऽथ श्वभोजनः

तमश्च कृष्णसूत्रश्च लोहश्चाप्यसिजस्तथा । अप्रतिष्ठोऽथ वीच्यश्वनरका ह्येवमादयः

तामसाः नरकाः सर्वे यमस्य विषयेस्थिताः । येषु दुष्कृतकर्माणःपतन्तीहपृथक्पृथक्

भूमेरधस्तात्ते सर्वे रौरवाद्याः प्रकीर्तिताः । रौरवे कूटसाक्षीतु मिथ्यायश्चाभिशंसति

क्रूरग्रहे पक्षवादी ह्यसत्यः पतते नरः ॥ १५१ ॥

रोधे गोघ्नो भ्रूणहाच अग्निदातापुरस्य च । सूकरे ब्रह्महा मज्जेत्सुरापः स्वर्णतस्करः

तालेपतेत्क्षत्त्रियहा हत्वावैश्यंचदुर्गतिम् । ब्रह्महत्यांचयः कुर्याद्यश्च स्याद्गुरुतल्पगः

तप्तकुम्भी स्वसागामी तथाराजभटश्चयः । तप्तलोहे चाश्ववणिक्तथा बन्धनरक्षिता॥

साध्वीविक्रयकर्ता च यस्तु भक्तंपरित्यजेत् । महाज्वालेदुहितरं स्नुषांगच्छतियस्तुवै

वेदो विक्रीयते येन वेदं दूषयते च यः । गुरूंश्चैवावमन्यन्तेवाऽऽक्रोशैस्ताडयन्ति च

अगम्यगामी च नरो नरकं शबलं व्रजेत् । विमोहे पतितेचौरो मर्यादांयो भिनत्ति वै

दुरिष्टं कुरुते यस्तु कीटलोहं प्रपद्यते । देवब्राह्मणविद्वेष्टा गुरूणां चाऽप्यपूजकः॥

रत्नं दूषयते यस्तु कृमिभक्ष्यं प्रपद्यते ॥ १५८ ॥

पर्यश्नाति य एकोऽन्यो ब्राह्मणींसुहृदःसुताम् । लालाभक्षे स पतति दुर्गन्धे नरकेगतः

काण्डकर्ता कुलालश्च निष्कहर्ता चिकित्सकः । आरामेष्वग्निदातायःपततेस विशंसने

असत्प्रतिग्रही यश्च तथैवायाज्ययाजकः । नक्षत्रैर्जीवते यश्च नरो गच्छत्यधोमुखम्॥

क्षीरंसुरांच मांसंच लाक्षांगन्धंरसं तिलान् । एवमादीनि विक्रीणन्घोरे पूयवहे पतेत्

यः कुक्कुटानि बध्नाति मार्जारान्सूकरांश्च तान् ।

पक्षिणश्च मृगांश्छागान्सोऽप्येनं नरकं व्रजेत् ॥ १६३ ॥

अजाविको माहिषकस्तथा चक्रध्वजीच यः । रङ्गोपजीविकोविप्रःशाकुनिर्ग्रामयाजकः

अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी । सुरापो मांसभक्षश्च तथा च पशुघातकः

विशस्ता महिषादीनां मृगहन्ता तथैव च । पर्वकारश्च सूचीच यश्च स्यान्मित्रघातकः

रुधिरान्धे पतन्त्येते एवमाहुर्मनीषिणः ॥ १६६ ॥

उपविष्टमेकपङ्क्त्यां विषमं भोजयन्ति ये । पतन्ति नरकेघोरे विड्भुजे नाऽत्र संशयः

मृषावादी नरो यश्च तथा प्राक्रोशकोऽशुभः । पतति नरकेघोरे मूत्राकीर्णे स पापकृत्

मधुग्राहाभिहन्तारो यान्तिवैतरणींनराः । उन्मत्ताश्चित्तभग्नाश्च शौचाचारविवर्जिताः

क्रोधना दुःखदाश्चैव कुहकाकृष्टगामिनः । असिपत्रवने छेदी तथा ह्यौरभ्रिकाश्च ये॥

कर्तनैश्च विकृष्यन्ते मृगव्याधाः सुदारुणैः ॥ १७० ॥

आश्रमप्रत्यवसिता अग्निज्वाले पतन्ति वै । भोज्यन्ते श्यामशबलैरयस्तुण्डैश्चवायसैः

इज्याव्रतसमालोपात्सन्दंशे नरके पतेत् । स्कन्दते यदिवास्वप्ने व्रतिनो ब्रह्मचारिणः

पुत्रैरध्यापिता ये च पुत्रैराज्ञापिताश्च ये । ते सर्वे नरकं यान्ति नियतं तु श्वभोजने

वर्णाश्रमविरुद्धानि क्रोधहर्षसमन्विताः । कर्माणि ये तु कुर्वन्ति सर्वे निरयगामिनः

उपविष्टात्सितो घोर उष्णात्मा रौरवो महान् ।

सुदारुणस्तु शीतात्मा तस्याधस्तात्तपः स्मृतः ॥ १७५ ॥

एवमादिक्रमेणैव वर्ण्यमानान्निबोधत । भूमेरधस्तात्सप्तैव नरकाः परिकीर्तिताः ॥

अधर्मसूनवस्ते स्युरन्धतामिस्रकादयः । रौरवः प्रथमस्तेषां महारौरव एव च॥१७७॥

अस्याधःपुनरप्यन्यः शीतस्तपइतिस्मृतः । तृतीयःकालसूत्रःस्यान्महाहविविधिःस्मृतः

अप्रतिष्ठश्चतुर्थः स्यादवीचीपञ्चमः स्मृतः । लोहपृष्ठस्तमस्तेषामविधेयस्तु सप्तमः ॥

घोरत्वाद्रौरवः प्रोक्तः साम्भको दहनः स्मृतः ।

सुदारुणस्तु शीतात्मा तस्याधस्तात्तमोऽधमः ॥ १८० ॥

सर्पोनिकृन्तनःप्रोक्तःकालसूत्रेऽतिदारुणः । अप्रतिष्ठेस्थितिर्नास्तिभ्रमस्तस्मिंसुदारुणः

अवीचिर्दारुणःप्रोक्तोयन्त्रसम्पीडनाच्चसः । तस्मात्सुदारुणोलोहःकर्मणांक्षयणाच्चसः

तथाभूते(त)शरीरत्वादविवे(धि)भ्यस्तुसस्मृतः । पीडबन्धवधासङ्गादप्रतीकारलक्षणः
ऊर्ध्वं शैलमितास्तेतुनिरालोकाश्चतेस्मृताः । दुःखोत्कर्षस्तु सर्वेषुअधर्मस्यनिमित्ततः
ऊर्ध्वं लोकैः समावेतौ निरालोकौचतावुभौ । कूटाङ्गारप्रमाणैश्चशरीरीसूत्रनायकाः
उपभोगसमर्थैस्तु सद्यो जायन्ति कर्मभिः । दुःखप्रकर्षश्चोग्रस्तु तेषु सर्वेषु वै स्मृतः
यातनाश्चाप्यसंख्येयानारकाणां तथास्मृताः । तत्रानुभूयतेदुःखंक्षीणेकर्मणि वै पुनः
तिर्यग्योनौ प्रसूयन्ते कर्मशेषे गते ततः । देवाश्च नारकाश्चैवऊर्ध्वं चाधश्चसंस्थिताः
धर्माधर्मनिमित्तेन सद्यो जायन्ति मूर्तयः । उपभोगार्थमुत्पत्तिरौपपत्तिककर्मतः ॥

पश्यन्ति नारकान्देवा ह्यधोवक्त्रान्ह्यधोगतान् ।
नारकाश्च तथा देवान्सर्वान्पश्यन्त्यधोमुखान् ॥ १६० ॥

अनग्रमूलता यस्माद्धारणाश्च स्वभावतः । तस्मादूर्ध्वमधोभावोलोकालोके न विद्यते
एषा स्वाभाविकी सञ्ज्ञालोकालोके प्रवर्तते । अथाब्रुवन्पुनर्वायुंब्राह्मणाःसत्रिणस्तदा

ऋषय ऊचुः

सर्वेषामेव भूतानांलोकालोकनिवासिनाम् । संसारेसंसरन्तीहयावन्तःप्राणिनश्चतान्
संख्ययापरिसंख्यायततःप्रब्रूहिकृत्स्नशः । ऋषीणां तद्वचः श्रुत्वामारुतोवाक्यमब्रवीत्

वायुरुवाच

नशक्याजन्तवःकृत्स्नाःप्रसंख्यातुंकथञ्चन । अनाद्यन्ताश्चसङ्कीर्णाह्यप्यूहेनव्यवस्थिताः
गणना विनिवृत्तैषामानन्त्येन प्रकीर्तिताः ॥ १६५ ॥

न दिव्यचक्षुषा ज्ञातुंशक्याज्ञानेनवापुनः । चक्षुषा वै प्रसंख्यातुमतो ह्यन्ते नराधिपाः
अनाध्यानादवेद्यत्वान्नैव प्रश्नो विधीयते । ब्रह्मणा सञ्ज्ञितं यत्तु संख्यया तन्निबोधत
यः सहस्रतमो भागःस्थावराणां भवेदिह । पार्थिवाःक्रिमयस्तावत्संसेकाद्येषुसंभवाः
संसेकज्ञानाभावेन सहस्रेणैव संमिताः । औदका जन्तवः सर्वे निश्चयात्तद्विचारितम्
सहस्रेणैवभागेनसत्त्वानांसलिलौकसाम् । विहङ्गमास्तुविज्ञेयालौकिकास्तेचसर्वशः
यःसहस्रतमोभागस्तेषांवैपक्षिणांभवेत् । पशवस्तत्समाज्ञेयालौकिकास्तु चतुष्पदाः
चतुष्पदानां सर्वेषां सहस्रेणैवसम्मताः । भागेनद्विपदाज्ञेयालौकिकेऽस्मिंस्तुसर्वशः॥

यः सहस्रतमो भागो भागे तु द्विपदां पुनः ।
धार्मिकास्तेन भागेन विज्ञेयाः संमिताः पुनः ॥ २०३ ॥
सहस्रेणैव भागेन धार्मिकेभ्यो दिवंगताः । यः सहस्रतमोभागोधार्मिकाणांभवेद्दिवि
संमितास्तेन भागेन मोक्षिणस्तावदेव हि ॥ २०४ ॥
स्वर्गोपपादकैस्तुल्ययायातनास्थानवासिनः । पतिताःपापकर्माणोदुरात्मानोम्रियन्तिये
रौरवे तामसे ह्येते शीतोष्णं प्राप्नुवन्ति ते ॥ २०५ ॥
वेदना कटुकास्तस्याया तनास्थानमागताः । उष्णस्तुरौरवोज्ञेयस्तेजोघोररसात्मकः
ततो घनात्मकश्चापि शीतात्मासततं तपः । एवंसुदुर्लभाःसन्तःस्वर्गेवाधार्मिकानराः
एषा संख्या कृता संख्या(?)ईश्वरेण स्वयम्भुवा ।
गणना विनिवृत्तैषा संख्या ब्राह्मी च मानुषी ॥ २०८ ॥

ऋषय ऊचुः

अहो जनस्तपः सत्यंभूतोभाव्योभवस्तथा । उक्ताह्येतेत्वयालोका लोकानामन्तरेणच
लोकान्तरञ्च यादृग्वै तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥ २०९ ॥
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम् । स वायुर्दृष्टतत्त्वार्थ इदं तत्त्वमुवाच ह ॥

वायुरुवाच

अव्यक्तं तर्केण पश्यन्ति योगात्प्रत्यक्षदर्शिनः । प्रत्याहारेण ध्यानेनतपसाचक्रियात्मनः
प्रभुः सनत्कुमाराद्याः संबुद्धाः शुद्धबुद्धयः । व्यपेतशोका विरजाःसन्तोब्रह्मैवसत्तमाः
अक्षयाः प्रीतिसंयुक्ता ब्रह्म तिष्ठन्ति योगिनः ।
ऋषीणां वालखिल्यानां तैर्यथाहृतमीश्वरैः ॥ २१३ ॥
यथा चैव मया दृष्टंसांनिध्यंतत्रकुर्वता । अतर्ह्(क्यं)सत्कृतार्थानामालयंचेश्वरस्ययत्
ईश्वरः परमाणुत्वाद्भावग्राह्यो मनीषिणाम् । ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यंक्षमाधृतिः
द्रष्टृत्वमात्मसंवन्धमधिष्ठानत्वमेव च । अव्ययानि दशैतानि तस्मिंस्तिष्ठन्तिशङ्करे ॥
विभुत्वात्खलु योगाग्निर्ब्रह्मणोऽनुग्रहे रतः । स लोकविग्रहो भूत्वासाहाय्यमुपतिष्ठते
अक्षरं ध्रुवमव्यग्रमष्टमं स्वोपसर्गिकम् । तस्येश्वरस्य यत्मात्रं स्थानं मायामयं परम्

मायया कृतमाचष्टे मायीं देवो महेश्वरः । देवानामुपसंहारस्तत्प्रमाणं हि कीर्त्यते
विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्या च ब्रुवतो मे निबोधत । त्रयोदशैव कोट्यस्तु नियुतादशपञ्च च

भूर्लोकाद्ब्रह्मलोको वै योजनैः संप्रकीर्त्यते ॥ २२० ॥

एकयोजनकोटी तु पञ्चाशन्नियुतानि च । ऊर्ध्वं भागवताण्डन्तुब्रह्मलोकात्परंस्मृतम्

एषोर्ध्वगः प्रचारस्तु गत्यन्तञ्च ततः स्मृतम् ।
नित्या ह्यपरिसंख्येयाः परस्परगुणाश्रयाः ॥ २२२ ॥

सूक्ष्माः प्रसवधर्मिण्यस्ततःप्रकृतयः स्मृताः । येभ्योऽधिकर्तासंजज्ञेक्षेत्रज्ञोब्रह्मसंज्ञितः
तासु प्रकृतिमत्सूक्ष्मधिष्ठातृत्वमव्ययम् । अनुत्पाद्यं परं धाम परमाणु परेशयम् ॥
अक्षयश्चाप्यनूह्यश्च अमूर्तिर्मूर्तिमानसौ । प्रादुर्भावस्तिरोभावः स्थितिश्चैवाप्यनुग्रहः
विधिरन्यैरनौपम्यः परमाणुर्महेश्वरः । सतेजा एष तमसो यः पुरस्तात्प्रकाशकः ॥
यदण्डमासीत्सौवर्णं प्रथमं त्वौपसर्गिकम् । वृहतं सर्वतो वृत्तमीश्वराद्व्यवजायत
ईश्वराद्बीजनिर्भेदःक्षेत्रज्ञोबीज इष्यते । योनिं प्रकृतिमाचष्टे साच नारायणात्मिका
विभुर्लोकस्यसृष्ट्यर्थंलोकसंस्थानमेव च । सन्निसर्गःसतन्वा च लोकधातुर्महात्मनः

पुरस्ताद्ब्रह्मलोकस्य अण्डादर्वाक्च ब्रह्मणः ।
तयोर्मध्ये पुरं दिव्यं स्थानं यस्य मनोमयम् ॥ २३० ॥

तद्विग्रहवतः स्थानमीश्वरस्यामितौजसः । शिवं नाम पुरं तत्र शरणं जन्मभीरूणाम्

सहस्राणां शतं पूर्णं योजनानां द्विजोत्तमाः ।
अभ्यन्तरे तु विस्तीर्णं महोमण्डलसंस्थितम् ॥ २३२ ॥

मध्याह्नार्कप्रकाशेन परतेजोभिमर्दिना । शातकौम्भेन महता प्राकारेणार्कवर्चसा ॥
द्वारश्चतुर्भिः सौवर्णैर्मुक्तादामविभूषितैः । तपनीयनिभैः शुभ्रैर्गाढं सुकृतवेष्टनम् ॥
तच्चाऽऽकाशे पुरं रम्यं दिव्यं घण्टादिनादितम् । न तत्र क्रमतेमृत्युर्नतापोनजराश्रमः
नददन्यैः पुराचारं रूपमासौतुमर्हति(?) । सहस्राणां शतं पूर्णं योजनानां दिशोदश ॥
तत्पुरं गोवृषाङ्कस्य तेजसा व्याप्य तिष्ठति । भावेन मनसोभूमिर्विन्यस्ताकनकामयी
रत्नवालुकया तत्र विन्यस्ता शुशुभेऽधिकम् । शारदेन्दुप्रकाशानि बालसूर्यनिभानि च

अर्धश्वेतार्धरक्तानि सौवर्णानि तथैव च। रथचक्रप्रमाणानि नालैर्मरकतप्रभैः ॥
सौकुमारेण रूपेण गन्धिनाऽप्रतिमेन च। तत्र दिव्यानि पद्मानि वनेषूपवनेषु च ॥
भृङ्गपत्रनिकाशानि तपनीयानि यानि च। अर्धकृष्णार्धरक्तानि सुकुमारान्तराणि च
आतपत्रप्रमाणानि पङ्कजैः संवृतानि च। भूयः सप्त महानद्यस्तासां नामानि बोधत
वरा वरेण्या वरदा वरार्हा वरवर्णिनी। वरमा वरभद्रा च रम्यास्तस्मिन्पुरोत्तमे ॥
पद्मोत्पलदलोन्मिश्रं फेनाद्यावर्तविग्रहम्। जलं मणिदलप्रख्यमावहन्ति सरिद्वराः ॥
न तु ब्रह्मर्षयो देवा नाऽसुराः पितरस्तथा। न खल्वन्येऽप्रमेयस्य विदुरीशस्य तत्पुरम्

तत्र ये ध्यानमव्यग्राः सुयुक्ता विजितेन्द्रियाः।
पश्यन्तीह महात्मानः पुरं तद्गोवृषात्मनः ॥ २४६ ॥

मध्ये पुरवरेन्द्रस्य तस्याप्रतिमतेजसा। सुमहान्मेरुसङ्काशो दिव्यो भद्रश्रिया वृतः ॥
सहस्रपादः प्रासादस्तपनीयमयः शुभः। अनुपमेयै रत्नैश्च सर्वतः स विभूषितः ॥
स्फटिकैश्चन्द्रसङ्काशैर्वैदूर्यैः सोमसम्प्रभैः। बालसूर्यप्रभैश्चैव सौवर्णैश्चाग्निसंप्रभैः ॥
राजतैश्चापि शुशुभे इन्द्रनीलमयैः शुभैः। दृढैर्वज्रमयैश्चैव इत्येवं सुसमाहितैः ॥२५०॥
जलैश्च विविधाकारैर्दीप्यद्भिरधिवासितम्। चन्द्ररश्मिप्रकाशाभिः पताकाभिरलंकृतम्
रुक्मघण्टानिनादैश्च नित्यप्रमुदितोत्सवः। किंनराणामधीवासैः संध्याभ्राकारराजितैः
परिवारसमन्तात्तु हेमपुष्पोदकप्रभैः। यथा हि मेरुशैलेन्द्रो हेमशृङ्गैर्विराजते ॥ २५३॥
चामीकरमयीभिस्तु पताकाभिस्तथा पुरम्। एवं प्रासादराजोऽसौ भूमिकाभिर्विराजते।

वसन्तप्रतिमा यत्र त्र्यम्बकस्य निवेशने।
लक्ष्मीः श्रीश्च वपुर्माया कीर्तिः शोभा सरस्वती ॥ २५५ ॥

देव्या वै सहिता ह्येता रूपगन्धसमन्विताः। नित्याह्यपरिसंख्यातःपरस्परगुणाश्रयाः

भूषणं सर्वरत्नानां योन्यः क्रान्तिविलासयोः ॥ २५६ ॥
कोटिशतं महाभागा विभज्याऽऽत्मानमात्मना।
भगवन्तं महात्मानं प्रतिमोदन्त्यतन्द्रिताः ॥ २५७ ॥
तासां सहस्रशश्चान्याः पृष्ठतः परिचारिकाः।

रूपिण्यश्च श्रिया युक्ताः सर्वाः कमललोचनाः ॥ २५८ ॥

लीलाविलाससंयुक्तैर्भावैरतिमनोहरैः । गणैस्ताः सह मोदन्ते शैलाभैः पावकोपमैः ॥
कुब्जा वामनिकाश्चैव वरगात्राहयाननाः । पुण्ड्राश्च विकटाश्चैवकरालाश्चिपिटाननाः
लम्बोदरा ह्रस्वभुजा विनेत्राह्रस्वपादिकाः । मृगेन्द्रवदनाश्चान्यागजवक्त्रोदरास्तथा॥

गजाननास्तथैवान्याः सिंहव्याघ्राननास्तथा ।
लोहिताक्षा महास्तन्यः सुभगाश्चारुलोचनाः ॥ २६२ ॥

ह्रस्वकुञ्चितकेशाश्च सुन्दर्यश्चारुलोचनाः । अन्याश्च कामरूपिण्योनानावेषधराःस्त्रियः
अभ्यन्तरपरिस्कन्धा देवावासगृहोचिताः । रराम भगवांस्तत्र दशबाहुर्महेश्वरः॥
नन्दिना च गणैः सार्धं विश्वरूपैर्महात्मभिः । तथा रुद्रगणैश्चापि तुल्यौदार्यपराक्रमैः
पावकात्मजसङ्काशैर्यूपदंष्ट्रोत्कटाननैः । वन्द्यमानो विमानश्च(स्थैः)पूज्यमानश्चतत्परैः
सर्वर्तुकुसुमांमालांजिघ्रमाणोरसिस्थिताम् । नीलोत्पलदलश्यामंपृथुताम्रायतेक्षणम्
ईषत्कराललम्बोष्ठं तीक्ष्णदंष्ट्रागणाञ्चितम् । षडूर्ध्वनेत्रं दुष्प्रेक्ष्यं रुचिरं चीरवाससम्
आहवेष्वपरिक्लिष्टं देवानामरिनाशनम् । वाहुना बाहुमावेश्यपार्श्वेसव्येऽन्तरेस्थितम्
रराज पट्टिशं तस्य वामाग्रकरगोचरम् । महाभैरवनिर्घोषं वलेनाप्रतिमौजसम् ॥

दशवर्णधनुश्चैव विचित्रं शोभतेऽधिकम् ॥ २७० ॥

त्रिशूलं विद्युताभासममोघं शत्रुनाशनम् । जाज्वल्यमानं वपुषा परमं तत्त्विषा युतम्
असिश्चैवौजसां श्रेष्ठः शीतरश्मिःशशीतथा । तेजसा वपुषाकान्त्यादेवेशस्यमहात्मनः

शुशुभेऽभ्यधिकं तत्र वेद्यामग्निशिखा इव ॥ २७२ ॥

स्थितः पुरस्ताद्देवस्यशातकौम्भमयोमहान् । शुशुभेरुचिरःश्रीमान्सोदकःसकमण्डलुः
असिमावेश्य चाङ्गेषु पाण्डुराम्बरधारिणी । उरश्छेदेन महता मौक्तिकेन विराजिता

चतुर्भुजा महाभागा विजया लोकसम्मता ॥ २७४ ॥

देव्याआद्यप्रतीहारीश्रीरिवाप्रतिमापरा । विभ्राजन्तीस्थिताचैवकृत्वादेवस्यचाञ्जलिम्

तस्याः पृष्ठानुगाश्चान्याः स्त्रियोऽप्सरोगणान्विताः ।
ताः खल्वभिनवैः कान्तरूपतिष्ठन्ति शङ्करम् ॥ २७६ ॥

सर्वलक्षणसम्पन्ना वादित्रैरुपबृंहिताः । उपगायन्ति देवेशं गणा गन्धर्वयोनयः ॥
अभ्युन्नतो महोरस्कः शरन्मेघसमद्युतिः । शोभते नन्दमानश्च गोपतिस्तस्य वेश्मनि
स्कन्दश्च सपरीवारः पुत्रोऽस्यामितवीर्यवान् । रक्ताम्बरधरःश्रीमान्वराम्बुजदलेक्षणः
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च ,चाष्टवान् । व्यपेतव्यसनाःक्रूराःप्रजानांपालनेरताः
तैः सार्धं स महावीर्यः शोभतेशिखिवाहनः । व्यालक्रीडनकैस्तत्रक्रीड विश्वतोमुखः
ये नृपा विबुधेन्द्राणां काञ्चनस्यप्रदायिनः । ये च स्वायतनाविप्रागृहस्थाब्रह्मवादिनः
गूढस्वाध्यायतपसस्तथा चैवोञ्छवृत्तयः । एते सभासदस्तस्य देवेशस्य च संमताः
मन्वन्तराण्यनेकानि व्यवर्तन्त पुनः पुनः । श्रूयतां देवदेवस्य भविष्याश्चर्यमुत्तमम् ॥

व्याघ्राश्चैवानुगास्तत्र काञ्चनाभास्तरस्विनः ।
स्वच्छन्दचारिणः सर्वे स्वयं देवेन निर्मिताः ॥ २८५ ॥

मृत्योर्मृत्युसमास्तेतु यमदर्पापहारिणः । विभूतिमप्यसंख्येयां कोनखल्वभिधास्यते॥
अतःपरमिदं भूयो भवेनाद्भुतमुत्तमम् । भूतानामनुकम्पार्थं यत्कृतं तन्निबोधत ॥२८७॥
मन्दराद्रिप्रकाशानां बलेनाप्रतिमौजसाम् । हारकुन्देन्दुवर्णानां विद्युद्घननिनादिताम्
चूडामणिधराणांवैमेघसंनिभवाससाम् । श्रीवत्साङ्कितवक्त्राणामङ्गुलीशूलपाणिनाम्
एवं दिशानां देवानांरूपेणोत्तमशालिनाम् । तस्य प्रासादमुख्यस्यस्तम्भेषूत्तमशोभिषु

संयताग्निमयीभिस्तु शृङ्खलाभिः पृथक्पृथक् ।
मायासहस्रं सिंहानां सुखं तत्र निवासिनाम् ॥ २९१ ॥
स्तम्भेऽप्यपासृताषष्टं(?)त्र्यम्बकस्य निवेशने ।
अथ तत्प्रतिसम्पूज्य वायोर्वाक्यंसुविस्मिताः ॥
ऋषयः प्रत्यभाषन्त नैमिषेयास्तपस्विनः ॥ २९२ ॥

भगवन्सर्वभूतानां प्राण सर्वत्रगप्रभो । के ते सिंहमहाभूताः क्व ते जाताः किमात्मकाः
सिंहाः केनापराधेन भूतानां प्रभुविष्णुना । वैश्वानरमयैः पाशैः संरुद्धास्तुपृथक्पृथक्
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वायुर्वाक्यं जगाद ह । यद्वै सहस्रं सिंहानामीश्वरेण महात्मना

व्यपनीय स्वकाद्देहात्क्रोधास्ते सिंहविग्रहाः ॥ २९५ ॥

भूतानामभयं दत्त्वा पुरा बद्धाग्निबन्धने । यज्ञभागनिमित्तश्च ईश्वरस्याऽऽज्ञया तदा ॥
तेषां विधानमुक्तेन सिंहनैकेन लीलया । देव्या मन्युं कृतं ज्ञात्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः
निःसृता च महादेव्या महाकाली महेश्वरी ।
आत्मनः कर्मसाक्षिण्या भूतैः सार्धं तदाऽनुगैः ॥ २९८ ॥
स एष भगवान्क्रोधो रुद्रावासकृतालयः । वीरभद्रोऽप्रमेयात्मा देव्या मन्युप्रमार्जनः
तस्य वेश्म सुरेन्द्रस्य सर्वगुह्यतमस्य वै । संनिवेशस्त्वनौपम्यो मया वः परिकीर्तितः
अतः परं प्रवक्ष्यामि ये तत्र प्रतिवासिनः । रम्ये पुरवरश्रेष्ठे तस्मिन्वैहायभूमिषु ॥
नानारत्नविचित्रेषु पताकाबहुलेषु च । सर्वकामसमृद्धेषु वनोपवनशोभिषु ॥३०२॥
राजतेषु महार्घेषु शातकौम्भमयेषु च । संध्याभ्रसंनिकाशेषु कैलाशप्रतिमेषु च ॥
इष्टैः शब्दादिभिर्भोगैर्ये भवस्यानुसारिणः । प्रासादवरमुख्येषु तेषु मोदन्ति सुव्रताः
ब्रह्मघोषैरविरताः कथाश्च विविधाः शुभाः । गीतवादित्रघोषाश्च संस्तवाश्चसमन्ततः
संहताश्चैवमतुला नानाश्रयकृतास्तथा । एवमादीनि वर्तन्ते तेषां प्रासादमूर्धनि ॥
सहस्रपादः प्रासादस्तपनीयमयः शुभः । अनौपम्यैर्वरै रत्नैः सर्वतः परिभूषितः ॥
स्फटिकैश्चन्द्रसङ्काशैर्वैदूर्यमणिसंप्रभैः । बालसूर्यमयैश्चापि सौवर्णैश्चाग्निरुप्रभैः ॥
चुक्रुशुर्ऋषयः श्रुत्वा नैमिषेयास्तपस्विनः । आपन्नसंशयाश्चेमं वाक्यमूचुः समीरणम्

ऋषय ऊचुः

के तु तत्र महात्मानो ये भवस्यानुसारिणः । अनुग्राह्यतमाः सम्यक्प्रमोदन्ते पुरोत्तमे
ऋषीणां वचनं श्रुत्वा वायुर्वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥ ३१० ॥

वायुरुवाच

श्रूयतां देवदेवस्य भक्तिर्यैरनुकल्पिता । ह्रीमन्तः सूर्जिता दान्ताः शौर्ययुक्ताह्यलोलुपाः
मध्याहाराश्च मात्राश्च आत्मारामा जितेन्द्रियाः ।
जितद्वन्द्वा महोत्साहाः सौम्या विगतमत्सराः ॥ ३१२ ॥
भावस्थाः सर्वभूतानामव्यापाराअनाकुलाः । कर्मणा मनसावाचाविशुद्धेनान्तरात्मना
अनन्यमनसो भूत्वा प्रपन्ना ये महेश्वरम् ॥ ३१३ ॥

तैर्लब्धं रुद्रसालोक्यं शाश्वतं प्रदमव्ययम् । भवस्य रूपसादृश्यं नीताश्चैव ह्यनुत्तमम्

वैश्वानरमुखाः सर्वे विश्वरूपाः कपर्दिनः ।

नीलकण्ठाः सितग्रीवास्तीक्ष्णदंष्ट्रास्त्रिलोचनाः ॥ ३१५ ॥

अर्धचन्द्रकृतोष्णीषा जटामुकुटधारिणः । सर्वे दशभुजा वीराः पद्मान्तरसुगन्धिनः

तरुणादित्यसङ्काशाः सर्वे ते पीतवाससः । पिनाकपाणयः सर्वे श्वेतगोवृषवाहनाः

श्रियाऽन्विताः कुण्डलिनो मुक्ताहारविभूषिताः ।

तेजसोऽभ्यधिका देवैः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ॥ ३१८ ॥

विभज्य बहुधाऽऽत्मानं जरामृत्युविवर्जिताः ।

क्रीडन्ते विविधैर्भावैर्भोगान्प्राप्य सुदुर्लभान् ॥ ३१९ ॥

स्वच्छन्दगतयः सिद्धाः सिद्धैश्चान्यैर्विबोधिताः ।

एकादशानां रुद्राणां कोट्योऽनेका महात्मनाम् ॥ ३२० ॥

एभिः सह महात्मानो देवदेवो महेश्वरः । भक्तानुकम्पी भगवान्मोदते पार्वतीप्रियः

नाहं तेषान्तु रुद्राणां भवस्य च महात्मनः । नानात्वमनुपश्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमिवः

मातरिश्वाऽब्रवीत्पुण्यामित्येतामीश्वराच्छ्रुताम् । अथतेऋषयःसर्वेदिवाकरसमप्रभाः ॥

श्रुत्वेमां परमां पुण्यां कथां त्रैयम्बकीं ततः ॥ ३२३ ॥

भृशंचाऽनुग्रहंप्राप्य हर्षं चैवाऽप्यनुत्तमम् । संभावयित्वा चाप्येनां वायुमूचुर्महाबलम्

ऋषय ऊचुः

समीरण महाभाग अस्माकञ्च त्वया विभो । ईश्वरस्योत्तमं पुण्यमष्टमंत्वौपसर्गिकम्

तस्य स्थानं प्रमाणञ्च यथावत्परिकीर्तितम् । यो गन्धेन समृद्धं वै परमं परमात्मनः

महादेवस्य माहात्म्यं दुर्विज्ञेयं सुरैरपि । स्वेन माहात्म्ययोगेन सहस्रस्यामितौजसः

यस्यभक्तेष्वसंमोहोह्यनुकम्पार्थमेव च । ब्राह्मीलक्ष्मीःस्वयंजुष्टायासाऽप्रतिमशालिनी

व्याप्य ज्योत्स्नेव खं चन्द्रं विन्यस्ता विश्वरूपिणा ।

विभूतिर्भ्राजतेऽत्यर्थं देवदेवस्य वेश्मनि ॥ ३२६ ॥

महादेवस्य तुल्यानां रुद्राणान्तु महात्मनाम् । तत्सर्वं निखिलेनेदंवक्त्रादमृतनिस्रवम्

अपीत्वा(?)खलु सर्वस्य भक्त्याऽस्माभिस्तु सुव्रताः ।
नास्ति किञ्चिदविज्ञेयमन्यच्चैवानुगारि नः ॥
प्रश्नं देववर प्राण ! यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ३३१ ॥

सूत उवाच

स खलूवाच भगवान्किं भूयो वर्तयाम्यहम् । किं मया चैववक्तव्यंतद्वदिष्यामिसुव्रताः

ऋषय ऊचुः

आदित्याः पारिपार्श्वेयाः सिंहा वै क्रोधविक्रमाः ।
वैश्वानरा भूतगणा व्याघ्राश्चैवानुगामिनः ॥ ३३३ ॥

आभूतसंप्लवे घोरे सर्वप्राणभृतां क्षये । किमवस्था भवन्त्येते तन्नो ब्रूहि यथार्थवत्
एते ये वै त्वया प्रोक्ताःसिंहव्याघ्रगणैःसह । ये चान्ये सिद्धिसंप्राप्तामातरिश्वाजगादह
इदञ्च परमं तत्त्वं समाख्यास्यामि शृण्वताम् । विज्ञातेश्वरसद्भावमव्यक्तं प्रभवं तथा
तत्र पूर्वगतास्तेषु कुमारा ब्रह्मणः सुताः । सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥
वोढुश्च कपिलस्तेषामासुरिश्चमहायशाः । मुनिः पञ्चशिखश्चैव ये चान्येऽप्येवमादयः
ततः काले व्यतिक्रान्ते कल्पानां पर्यये गते । महाभूतविनाशान्ते प्रलये प्रत्युपस्थिते
अनेकरुद्रकोट्यस्तुर्याःप्रसन्नामहेश्वरी। शब्दादीन्विषयान्भोगान्सत्यस्याष्टविधश्रयात्
प्रविश्य सर्वभूतानि ज्ञानयुक्तेन तेजसा । वैहायपदमव्यग्रं भूतानामनुकम्पया ॥
तत्र यान्ति महात्मानः परमाणुं महेश्वरम् । तरन्ति सुमहावर्तां जन्ममृत्यूदकांनदीम्
ततः पश्यन्तिसर्वाणं(?)परंब्रह्माणमेव च । देव्या वै सहिताःसप्त यादेव्यःपरिकीर्तिताः
यत्तत्सहस्रं सिंहानामादित्यानां तथैव च । वैश्वानरभूतभव्यव्याघ्राश्चैवानुगामिनः ॥

आवेश्याऽऽत्मनि तान्सर्वान्संख्यायोपद्रवास्तथा ।
लोकान्सप्त इमान्सर्वान्महाभूतानि पञ्च च ॥ ३४५ ॥

विष्णुना सह संयुक्तः करोति विकरोति च । स रुद्रो यः साममयस्तथैवचयजुर्मयः
स एष ओतःप्रोतश्चबहिरन्तश्चनिश्चयात् । एकोहिभगवान्नाथोह्यनादिश्चान्तकृद्द्विजाः
ततस्त ऋषयः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः । स्वंस्वमाश्रमसंवासमारोप्याग्नितथाऽऽत्मनि

कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनान्तरात्मना । अनन्यमनसो भूत्वा प्रपद्यन्ते महेश्वरम्
व्रतोपवासनिरताः सर्वभूतदयापराः । योगमनुपमं दिव्यं प्राप्तं तैश्छिन्नसंशयैः ॥
प्रपद्य परया भक्त्या ज्ञानयुक्तेन तेजसा । तैर्लब्धं रुद्रसालोक्यं शाश्वतं पदमव्ययम्

य: पठेत्तपसा युक्तो वायुप्रोक्तामिमां स्तुतिम् ।
ब्राह्मणः क्षत्त्रियो वाऽपि वैश्यो वा स्वक्रियापरः ॥ ३५२ ॥

लभते रुद्रसालोक्यं भक्तिमान्विगतज्वरः । अमद्यपश्च यः शूद्रो भवभक्तो जितेन्द्रियः
आभूतसंप्लवस्थायी अप्रतीघातलक्षणः । गाणपत्यं स लभते स्थानश्वा सार्वकामिकम्
मद्यपो मद्यपैः सार्धं भूतसङ्घैश्च मोदते । सोऽर्च्यमानो महीपृष्ठे मर्त्यानांवरदोभवेत्

इति होवाच भगवान्वायुर्वाक्यमिदं वरः ॥ ३५५ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे शिवपुरवर्णनं
नामैकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रतिसर्गवर्णनम्

सूत उवाच

प्रत्याहारंप्रवक्ष्यामिपरस्यान्तेस्वयंभुवः । ब्राह्मणःस्थितिकालेतुक्षीणेतस्मिंस्तदाप्रभोः
यथेदं कुरुतेऽध्यात्मं सुसूक्ष्मं विश्वमीश्वरः । अव्यक्तान्ग्रसतेव्यक्तंप्रत्याहारेचकृत्स्नशः
परं तदनु कल्पानामपूर्णे कल्पसंक्षये । उपस्थिते महाघोरे ह्यप्रत्यक्षे तु कस्यचित् ॥
अन्ते द्रुमस्य संप्राप्ते पश्चिमस्य मनोस्तदा । अन्ते कलियुगेतस्मिन्क्षीणेसंहारउच्यते
संप्रक्षाले तदा वृत्ते प्रत्याहारे ह्युपस्थिते । प्रत्याहारे तदा तस्मिन्भूततन्मात्रसंक्षये ॥
महदादेर्विकारस्यविशेषान्तस्य संक्षये । स्वभावकारिते तस्मिन्प्रवृत्ते प्रतिसंचरे ॥
आपो ग्रसन्ति वै पूर्वंभूमेर्गन्धात्मकं गुणम् । आत्तगन्धा ततोभूमिःप्रलयत्वायकल्पते

प्रविष्टे गन्धतन्मात्रे तोयावस्था धरा भवेत् ॥ ७ ॥

आपस्तदा प्रनष्टा वै वेगवत्यो महास्वनाः । सर्वमापूरयित्वेदं तिष्ठन्ति विचरन्ति च
अपामस्ति गुणो यस्तुज्योतिषिलीयतेरसः । नश्यन्त्यापस्तदातच्चरसतन्मात्रसंक्षयात्
तेजसा संहृतरसा ज्योतिष्ट्वं प्राप्नुवन्त्युत । ग्रस्ते च सलिले तेजः सर्वतोमुखमीक्ष्यते
अथाऽग्निः सर्वतो व्याप्त आदत्ते तज्जलं तदा । सर्वमापूर्यतेऽर्चिभिस्तदा जगदिदंशनैः
अर्चिभिः संततेतस्मिंस्तिर्यगूर्ध्वमधस्ततः । ज्योतिषोऽपिगुणंरूपंवायुरत्तिप्रकाशकम्
प्रलीयते तदा तस्मिन्दीपार्चिरिव मारुते ॥ १२ ॥

प्रनष्टे रूपतन्मात्रे हृतरूपो विभावसुः । उपशाम्यति तेजो हि वायुना धूयते महत्
निरालोके तदा लोके वायुभूते च तेजसि । ततस्तु मूलमासाद्य वायुःसंभवमात्मनः
ऊर्ध्वं चाऽधश्च तिर्यक्च दोधवीति दिशोदश । वायोरपिगुणंस्पर्शमाकाशंग्रसतेचतत्
प्रशाम्यतितदा वायुः खं तु तिष्ठत्यनावृतम् । अरूपमरसमस्पर्शमगन्धं नच मूर्तिमत्
सर्वमापूरयन्नादैः सुमहत्तत्प्रकाशते । परिमण्डलं तच्छुषिरमाकाशं शब्दलक्षणम् ॥
शब्दमात्रं तदाकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति । तं तु शब्दगुणं तस्य भूतादिर्ग्रसते पुनः ॥
भूतेन्द्रियेषु युगपद्भूतादौ संस्थितेषु वै । अभिमानात्मकोह्येषभूतादिस्तामसःस्मृतः
भूतादिं ग्रसते चापिमहान्वैबुद्धिलक्षणः । महानात्मातुविज्ञेयःसंकल्पोव्यवसायकः ॥
बुद्धिर्मनश्च लिङ्गश्च महानक्षर एव च । पर्यायवाचकैः शब्दैस्तमाहुस्तत्त्वचिन्तकाः ॥
संप्रलीनेषु भूतेषु गुणसाम्ये तमोमये । स्वात्मन्येव स्थिते चैव कारणे लोककारणे
विनिवृत्ते तदा सर्गे प्रकृत्याऽवस्थितेन वै ।
तदाऽऽद्यन्तपरोक्षत्वाददृष्टत्वाच्च कस्यचित् ॥ २३ ॥

अनाख्यानादबोधत्वादज्ञानाज्ज्ञानिनामपि । आगतागतिकत्वाच्च ग्रहणं तन्न विद्यते॥
भावग्राह्यानुमानाच्च चिन्तयित्वेदमुच्यते । स्थिते तु कारणेतस्मिन्नित्येसदसदात्मिके
अनिर्देश्याप्रवृत्तिर्वैस्वात्मिकाकारणेन तु । एवंसप्तादयोऽभ्यस्तात्क्रमात्प्रकृतयस्तुवै
प्रत्याहारे तदा सर्गे प्रविशन्ति परस्परम् । येनेदमावृतं सर्वमण्डमप्सुप्रलीयते ॥२७॥
सप्तद्वीपसमुद्रान्तं सप्तलोकं सपर्वतम् । उदकावरणं यच्च ज्योतिषां लीयते तु तत् ॥

यत्तैजसं चाऽऽवरणमाकाशं ग्रसते तु तत् । यद्वायव्यं चाऽऽवरणमाकाशंग्रसेतेनुतत् आकाशावरणं यच्च भूतादिर्ग्रसतेतुतत् । भूतादिं ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षणः महान्तं ग्रसतेऽव्यक्तं गुणसाम्यं ततः परम् । एतौसंहारविस्तारौब्रह्माऽव्यक्तात्ततःपुनः सृजते ग्रसते चैव विकारान्सर्गसंयमे । संसिद्धकार्यकरणाः संसिद्धा ज्ञानिनस्तु ये गत्वा जवं जवीभावे स्थानेष्वेषु प्रसंयमात् । प्रत्याहारैवियुज्यन्तेक्षेत्रज्ञा करणैःपुनः॥ अव्यक्तं क्षेत्रमित्याहुर्ब्रह्म क्षेत्रज्ञ उच्यते । साधर्म्यवैधर्म्यकृतःसंयोगोऽनादिमांस्तयोः

एवं सर्गेषु विज्ञेयं क्षेत्रज्ञेष्विह ब्राह्मणाः ।

ब्रह्मविच्चैव विज्ञेयः क्षेत्रज्ञानात्पृथक्पृथक् ॥ ३५ ॥

विषयाविषयत्वं च क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः स्मृतम् । ब्रह्मातु विषयो ज्ञेयोऽविषयःक्षेत्रमुच्यते क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं क्षेत्रं क्षेत्रज्ञार्थं प्रचक्षते । बहुत्वाच्च शरीराणांशरीरी बहुधा स्मृतः ॥ अव्यूहासङ्कराश्चैवज्योतिर्वच्चव्यवस्थितः । यस्मात्प्रतिशरीरं हि सुखदुःखोपलब्धिता

तस्मात्पुरुषनानात्वं विज्ञेयन्तु विजानता ॥ ३८ ॥

यदा प्रवर्तते चैषां भेदानाञ्चैव संयमाः । स्वभावकारिताः सर्वे कालेन महता तदा निवर्तते तदा तस्य स्थितिरागःस्वयम्भुवः । सहसायोज्यकैःसर्वैर्ब्रह्मलोकनिवासिभिः विनिवृत्तेतदारागेस्थितावात्मनिवासिनाम् । तत्कालवासिनातेषांतदातद्दोषदर्शिनाम् उत्पद्यतेऽथ वैराग्यमात्मवादप्रणाशनम् । भोज्यभोक्तृत्वनानात्वेतेषांतद्भावदर्शिनाम् पृथग्ज्ञानेन क्षेत्रज्ञास्ततस्ते ब्रह्मलौकिकाः । प्रकृतौ करणातीताः सर्वे नानाप्रदर्शिनः स्वात्मन्येवाऽवतिष्ठन्ते प्रशान्तादर्शनात्मकाः । शुद्धा निरञ्जनाःसर्वेचेतनाचेतनास्तथा

तत्रैव परिनिर्वाणाः स्मृता नाऽऽगामिनस्तु ते ।

निर्गुणत्वान्निरात्मानः प्रकृत्यन्ते व्यतिक्रमात् ॥ ४५ ॥

इत्येवं प्राकृतः प्रोक्तः प्रतिसर्गः स्वयम्भुवः । भिद्यन्ते सर्वभूतानां करणानि प्रसंयमे॥ इत्येष संयमश्चैव तत्त्वानां करणैः सह । तत्वप्रसंयमो ह्येष स्मृतो ह्यावर्तको द्विजाः

सूत उवाच

धर्माधर्मौ तपो ज्ञानं शुभे सत्यानृते तथा । ऊर्ध्वभावोह्यधोभावोसुखदुःखेप्रियाप्रिये

सर्वमेतत्प्रयातस्य गुणमात्रात्मिकं स्मृतम् ।
निरिन्द्रियाणाञ्च तदा ज्ञानिनां यच्छुभाशुभम् ॥ ४९ ॥

प्रकृत्याञ्चैव तत्सर्वं पुण्यं पापंप्रतिष्ठति । योन्यवस्था स्वभावे च देहिनान्तुनिषिच्यते
जन्तूनां पापपुण्यन्तु प्रकृतौयत्प्रतिष्ठितम् । अव्यक्तस्थानितान्येवपुण्यपापानिजन्तवः
योजयन्ति पुनर्देहे देहान्यत्वे तथैव च ॥ ५१ ॥

धर्माधर्मौ तु जन्तूनां गुणमात्रात्मकावुभौ । करणैः स्वःप्रचीयेतेकायत्वेनेहजन्तुभिः
सुचेतनाः प्रलीयन्ते क्षेत्रज्ञाधिष्ठिता गुणाः । सर्गे च प्रतिसर्गे च संसारैचैवजन्तवः
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते करणैः संचरन्ति च ॥ ५३ ॥

राजसी तामसी चैव सात्त्विकी चैववृत्तयः । गुणमात्राःप्रवर्तन्तेपुरुषाधिष्ठितास्त्रिधा
ऊर्ध्वं देवात्मकं सत्त्वमधोभागात्मकं तमः । तयोः प्रवर्तकं मध्य इहैवाऽऽवर्तकंरजः
इत्येवं परिवर्तन्ते त्रयः श्रोतोगुणात्मकाः । लोकेषु सर्वभूतानां तन्न कार्यं विजानता
अविद्याप्रत्ययारम्भा आरभ्यन्ते हि मानवैः ।
एतास्तु गतयस्तिस्रः शुभाः पापात्मिकाः स्मृताः ॥ ५७ ॥

तमसाऽभिभवाज्जन्तुर्याथातथ्यं न विन्दति । अतत्त्वदर्शनात्सोऽथ त्रिविधंबध्यतेततः
प्राकृतेन च बन्धेन तथा वैकारिकेण च । दक्षिणाभिस्तृतीयेन बद्धोऽत्यन्तं विवर्तते
इत्येते वै त्रयः प्रोक्ता बन्धाह्यज्ञानहेतुकाः । अनित्ये नित्यसंज्ञाच दुःखेच सुखदर्शनम्
अस्वे स्वमिति च ज्ञानमशुचौ शुचिनिश्चयः । येषामेतेमनोदोषा ज्ञानदोषाविपर्ययात्
रागद्वेषनिवृत्तिश्च तज्ज्ञानं समुदाहृतम् । अज्ञानं तमसो मूलं कर्मद्वयफलं रजः ॥
कर्मजस्तु पुनर्देहो महादुःखं प्रवर्तते ॥ ६२ ॥

श्रोत्रजा नेत्रजा चैव त्वग्जिह्वाघ्राणतस्तथा । पुनर्भवकरी दुःखा कर्मणा जायतेतुसा
सतृष्णोऽभिहितो बालः स्वकृतैः कर्मणः फलैः । तैलपालीकवज्जीवस्तत्रैव परिवर्तते
तस्मात्स्थूलमनर्थानामज्ञानमुपदिश्यते । तं शत्रुमवधार्यैकं ज्ञाने यत्नं समाचरेत् ॥
ज्ञानाद्धित्यज्यतेसर्वंत्यागाद्बुद्धिर्विरज्यते । वैराग्याच्छुध्यतेचापिशुद्धःसत्त्वेनमुच्यते
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामिरागंभूतापहारिणम् । अभिष्वङ्गाय योऽसक्तोविषयोऽप्यवशात्मनः

अनिष्टमभिषङ्गं हि प्रीतितापविषादनम् । दुःखलाभेन तापश्च सुखानुस्मरणं तथा ॥
इत्येषवैषयोरागःसंभूत्याःकारणंस्मृतम् । ब्रह्मादौ स्थावरान्ते वै संसारेह्याधिभौतिके
अज्ञानपूर्वकं तस्मादज्ञानन्तु विवर्जयेत् ॥ ६६ ॥
यस्य चाऽऽर्षं न प्रमाणं शिष्टाचारंतथैवच । वर्णाश्रमविरोधी यःशिष्टशास्त्रविरोधकः
एष मार्गो हि निरधितिर्यग्यौनौ च कारणम् । तिर्यग्योनिगतं चैवकारणंसनिरुच्यते
विविधा यातना स्थाने तिर्यग्यौनौ च षड्विधे । कारणेविषयेचैवप्रतिघातस्तुसर्वशः
अनैश्वर्यन्तु तत्सर्वं प्रतिघातात्मकं स्मृतम् । इत्येषा तामसी वृत्तिर्भूतादीनांचतुर्विधा
सत्त्वस्थमात्रकं चित्तं यथा सत्त्वप्रदर्शनात् । तत्त्वानाञ्चतथातत्त्वंद्रष्टावैतत्त्वदर्शनात्
सत्त्वक्षेत्रज्ञनानात्वमेतज्ज्ञानार्थदर्शनम् । नानात्वदर्शनं ज्ञानं ज्ञानाद्वैयोगमुच्यते ॥७५
तेन बद्धस्य वै बन्धो मोक्षो मुक्तस्य तेन च । संसारेविनिवृत्ते तु मुक्तोलिङ्गेनमुच्यते
निःसंबन्धो ह्यचैतन्यः स्वात्मन्येवाऽवतिष्ठते ।
स्वात्मव्यवस्थितश्चापि विरूपाख्येन लिख्यते ॥ ७७ ॥
इत्येतल्लक्षणंप्रोक्तंसमासाज्ज्ञानमोक्षयोः । सचापित्रिविधःप्रोक्तोमोक्षोवैतत्त्वदर्शिभिः
पूर्वं वियोगो ज्ञानेन द्वितीयो रागसंक्षयात् । लिङ्गाभावात्तुकैवल्यंकैवल्यात्तुनिरञ्जनम्
निरञ्जनत्वाच्छुद्धस्तु ततोनेतानविद्यते । तृष्णाक्षयात्तृतीयस्तुव्याख्यातंमोक्षकारणम्
निमित्तमप्रतीघात इष्टशब्दादिलक्षणे । अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ॥
क्षेत्रज्ञेष्ववसज्यन्ते गुणमात्रात्मकानि तु । अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वैराग्यंदोषदर्शनात्
दिव्ये च मानुषे चैव विषये पञ्चलक्षणे । अप्रद्वेषोऽनभिष्वङ्गः कर्तव्यो दोषदर्शनात्
तापप्रीतिविषादानां कार्यन्तु परिवर्जनम् । एवं वैराग्यमास्थाय शरीरी निर्ममोभवेत्
अनित्यमशिवं दुःखमिति बुद्ध्वाऽनुचिन्त्य च ।
विशुद्धं कार्यकरणं सत्वाम्येति चरान्तुय (?) ॥ ८५ ॥
परिपक्वकषायो हि कृत्स्नान्दोषान्प्रपश्यति । ततःप्रयाणकाले हि दोषैर्नैमित्तिकैस्तथा
ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः । स शरीरमुपाश्रित्यकृत्स्नान्दोषान्रुणद्धिवै
प्राणस्थानानि भिन्दन्हि छिन्दन्मर्माण्यतीत्य च ।

शैत्यात्प्रकुपितोवायुरूर्ध्वन्तु क्रमते ततः ॥ ८८ ॥
स चायं सर्वभूतानां प्राणस्थानेष्ववस्थितः । समासात्संभृते ज्ञानेसंवृतेषुचकर्मसु ॥
स जीवोऽनभ्यधिष्ठानः कर्मभिःस्वैःपुराकृतैः । अष्टाङ्गप्राणवृत्तीर्वैसविच्यावयतेतेपुनः
शरीरं प्रजहं(हत्) सो वै निरुच्छ्वासस्ततो भवेत् ।
एवं प्राणैः परित्यक्तो मृत इत्यभिधीयते ॥ ९१ ॥
यथेह लोके खद्योतं नीयमानमितस्ततः । रञ्जनं तद्वधे यत्तु नेता नेता न विद्यते॥९२॥
तृष्णाक्षयस्तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षलक्षणम् । शब्दाद्ये विषयेदोषविषये पञ्चलक्षणे
अप्रद्वेषोऽनभिष्वङ्गः प्रीतितापविवर्जनम् । वैराग्यकारणं ह्येतत्प्रकृतीनां लयस्य च ॥
अष्टौ प्रकृतयो ज्ञेयाःपूर्वोक्तावै यथाक्रमम् । अव्यक्ताद्यास्तुविज्ञेयाभूतान्ताःप्रकृतेर्लयाः
वर्णाश्रमाचारयुक्ताःशिष्टाःशास्त्रविरोधिनः।वर्णाश्रमाणांधर्मोऽयंदेवस्थानेषुकारणम्
ब्रह्मादीनि पिशाचान्तान्यष्टौस्थानानिदेवताः । ऐश्वर्यमणिमाद्यंहिकारणंह्यष्टलक्षणम्
निमित्तमप्रतीघात इष्टे शब्दादिलक्षणे । अष्टावेतानिरूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम्
क्षेत्रज्ञेष्वनुषज्यन्ते गुणमात्रात्मकानि तु । प्रावृट्काले पृथक्त्वेन पश्यन्तीहनचक्षुषा
पश्यन्त्येवंविधं सिद्धा जीवं दिव्येन चक्षुषा ।
श्वाविति श्वानपानश्च(?) योनीः प्रविशतस्तथा ॥ १०० ॥
तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च धावतोऽपियथाक्रमम् । जीवप्राणास्तथालिङ्गंकारणंचचतुष्टयम्
पर्यायवाचकैःशब्दैरेकार्थैःसोऽभिलिख्यते । व्यक्ताव्यक्तेप्रमाणोऽयंसवैरूपं तुकृत्स्नशः
अव्यक्तान्तगृहीतं च क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं च यत् । एवं ज्ञात्वाशुचिर्भूत्वाज्ञानाद्वैविप्रमुच्यते
नष्टं चैव यथा तत्त्वं तत्त्वानां तत्त्वदर्शनम् । यथेष्टं परिनिर्याति भिन्ने देहेसुनिर्वृते
भिद्यते करणं चापि अव्यक्ताज्ञानिनस्तथा । मुक्तो गुणशरीरेणप्राणाद्येन तु सर्वशः
नान्यच्छरीरमादत्तेदग्धेवीजेयथाऽङ्कुरः ।जीविकःसर्वसंसाराद्वीजशारीरमानसः ॥
ज्ञानाच्चतुर्दशाच्छुद्धः प्रकृतिं सोऽनुवर्तते । प्रकृतिं सत्यमित्याहुर्विकारोऽनृतमुच्यते
तत्सद्भावोऽनृतं ज्ञेयं सद्भावः सत्यमुच्यते । अनामरूपक्षेत्रज्ञनामरूपं प्रचक्षते ॥
यस्मात्क्षेत्रं विजानाति तस्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते ।

क्षेत्रप्रत्ययतो यस्मात्क्षेत्रज्ञः शुभ उच्यते ॥ १०६ ॥

क्षेत्रज्ञः स्मर्यते तस्मात्क्षेत्रं तज्ज्ञैर्विभाव्यते । क्षेत्रत्वप्रत्ययं दृष्टं क्षेत्रज्ञः प्रत्ययी सदा
क्षयणात्करणाच्चैव क्षतत्राणात्तथैव च । भोज्यत्वाद्विषयत्वाच्च क्षेत्रंक्षेत्रविदो विदुः
महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं विलक्षणम् । विकारलक्षणं तद्वै साक्षरक्षरमेव च ॥
तमेव च विकारं तु यस्माद्वै क्षरते पुनः । तस्माच्च कारणाच्चैव क्षरमित्यभिधीयते
संसारनरकेभ्यश्च त्रायते पुरुषं च यत् । दुःखत्राणात्पुनश्चापि क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥
सुखदुःखमोहभावाद्भोज्यमित्यभिधीयते । अचेतत्वाद्धि विषयस्तद्धिधर्मविभुः स्मृतः
न क्षीयते न क्षरति विकारप्रसृतं तु तत् । अक्षरं तेन चाप्युक्तमक्षीणत्वात्तथैव च ॥
यस्मात्पुर्यनुशेते च तस्मात्पुरुष उच्यते । पुरप्रत्ययिको यस्मात्पुरुषेत्यभिधीयते ॥
पुरुषं कथयस्वाऽथ कथं तज्ज्ञैर्विभाव्यते । शुद्धो निरञ्जनाभासो ज्ञानाज्ञानविवर्जितः

अस्ति नास्तीति सोऽन्यो वा वद्धो मुक्तो गतः स्थितः ।
नैहेतिकान्तनिर्देश्यसूक्तस्तस्मिन्न विद्यते ॥ ११६ ॥

शुद्धत्वान्नतु देश्यो वै ह्यष्टत्वात्समदर्शनः । आत्मप्रत्ययकारीसारनूनं(?)चापिहेतुकम्

भावग्राह्यमनुमान्यं चिन्तयन्न प्रमुह्यते ॥ १२० ॥

यदा पश्यति ज्ञातारं शान्तार्थदर्शनात्मकम् । दृश्यादृश्येषु निर्देश्यं तदा तदुद्धरं चरम्
एवं ज्ञात्वासविज्ञातातत: शान्तिं नियच्छति । कार्येचकारणेचैवबुद्ध्यादौभौतिकेतदा
सम्प्रयुक्तो वियुक्तो वा जीवतोवामृतस्यच । विज्ञाता न च दृश्येतपृथक्त्वेनेह सर्वशः
स्वेनाऽऽत्मानंतमात्मानंकारणात्मानियच्छति।प्रकृतौकारणेचैवस्वात्मन्येवोपतिष्ठति
अस्ति नास्तीति सोऽन्यो वा इहामुत्रेतिवापुनः । एकत्वंवापृथक्त्वंवाक्षेत्रज्ञपुरुषेतिवा

आत्मवान्स निरात्मा वा चेतनोऽचेतनोऽपि वा ।
कर्ता वा सोऽप्यकर्ता वा भोक्ता वा भोज्यमेव वा ॥ १३५ ॥

यज्ज्ञात्वा न निवर्तन्ते क्षेत्रज्ञे तु निरञ्जने । अवाच्यं तदनाख्यानादग्राह्यत्वादहेतुनि ॥
अप्रतर्क्यमचिन्त्यत्वादवाप्यत्वाच्च सर्वशः । नाभिलिम्पति तत्तत्त्वंसम्प्राप्यमनसा सह
क्षेत्रज्ञे निर्गुणे शुद्धे शान्ते क्षीणे निरञ्जने । व्यपेतसुखदुःखे च निरुद्धे शान्तिमागते ॥

निरात्मके पुनस्तस्मिन्वाच्यावाच्यो न विद्यते ।
एतौ संहारविस्तारौ व्यक्ताव्यक्तौ ततः पुनः ॥ १२९ ॥
सृजते ग्रसते चैव ग्रस्तः पर्यवतिष्ठते । क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सर्वं पुनः सर्वं प्रवर्तते ॥१३०॥
अधिष्ठानप्रवृत्तेन तस्य ते बुद्धिपूर्वकम् । साधर्म्यवैधर्म्यकृतः संयोगो विधितस्तयोः॥
अनादिमान्स संयोगो महापुरुषजः स्मृतः ॥ १३१ ॥
यावच्च सर्गप्रतिसर्गकालस्तावच्च तिष्ठति सुसंनिरुध्य ।
पूर्वं हितव्ये(?)तदबुद्धिपूर्वं प्रवर्तते तत्पुरुषार्थमेव ॥ १३२ ॥
एषा निसर्गप्रतिसर्गपूर्त्रं प्र(प्रा)धानिकी चेश्वरकारिता च ।
अनाद्यनन्ता ह्यभिमानपूर्वकं वित्रासयन्ती जगदभ्युपैति ॥ १३३ ॥
इत्येष प्राकृतः सर्गस्तृतीयो हेतुलक्षणः । उक्तो ह्यस्मिंस्तदाऽत्यन्तंकरयस्ततप्रमुच्यते
इत्येष प्रतिसर्गोवस्त्रिविधःकीर्तितो मया । विस्तरेणाऽऽनुपूर्व्याचभूयःकिंवर्तयाम्यहम्

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे प्रतिसर्गवर्णनं नाम
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

सृष्टिवर्णनम्

ऋषिरुवाच

सूत सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्तितम् । प्रजानां मनुभिः सार्धं देवानामृषिभिःसह
पितृगन्धर्वभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम् । दैत्यानां दानवानाञ्चयक्षाणामेवपक्षिणाम्
अत्यद्भुतानिकर्माणिविधिमान्धर्मनिश्चयः । विचित्राश्चकथायोगाजन्मचाग्र्यमनुत्तमम्
तत्कथ्यमानमस्माकं भवता श्लक्ष्णयागिरा । मनःकर्मसुखंसौतेप्रीणात्याभूतसंभवम्
एवमाराध्य ते सूतं सत्कृत्य च महर्षयः । पप्रच्छुः सत्रिणः सर्वे पुनः सर्गप्रवर्तनम्

थं सूत महाप्राज्ञ पुनः सर्गः प्रपत्स्यते । बन्धेषु सम्प्रलीनेषु गुणसाम्ये तमोमये ॥
विकारेष्वविसृष्टेषु अव्यक्ते चाऽऽत्मनि स्थिते ।
अप्रवृत्ते ब्राह्मणानु महासायो(यु)ज्यगैस्तदा ॥
कथं प्रपत्स्यते सर्गस्तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥ ७ ॥
वमुक्तस्ततः सूतस्तदाऽसौ लोमहर्षणः । व्याख्यातुमुपचक्राम पुनः सर्वप्रवर्तनम् ॥
हं वो वर्तयिष्यामि यथा सर्गः प्रपत्स्यते । पूर्ववत्स तु विज्ञेयः समासात्तंनिबोधत
ष्टं चैवाऽनुमेयश्चतर्कं वक्ष्यामि युक्तितः । तस्माद्वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसासह
व्यक्तवत्परोक्षत्वाद्ग्रहणं तद्दुरासदम् । विकारैः प्रतिसंद्वष्टे गुणसाम्येनिवर्तते
धानं पुरुषाणाञ्च साधर्म्येणैव तिष्ठति । धर्माधर्मौ प्रलीयेते अव्यक्तौ प्राणिनांसदा
त्त्वमात्रात्मको धर्मो गुणसत्त्वेप्रतिष्ठितः । तमोमात्रात्मकोऽधर्मोगुणेतमसितिष्ठति
विभागवन्तावेतौ गुणसाम्यस्थितावुभौ । सर्वकार्यं बुद्धिपूर्वं प्रधानस्य प्रपत्स्यते
बुद्धिपूर्वं क्षेत्रज्ञो ह्यधिष्ठास्यति तान्गुणान् । एवं तानभिमानेन प्रपत्स्येत पुरस्तदा
दा प्रवर्तितव्यन्तु क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः । भोज्यभोक्तृत्वसम्बन्धं प्रपत्स्येतेयुतावुभौ ॥
तस्माच्छरणमव्यक्तं साम्ये स्थित्वा गुणात्मकान् ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं तच्च वैषम्यं भजते तु तत् ॥ १७ ॥
ततः प्रपत्स्यते व्यक्तं क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः । क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सत्त्वं विकारं जनयिष्यति
महदाद्यं विशेषान्तं चतुर्विंशगुणात्मकम् । क्षेत्रज्ञस्य प्रधानस्य पुरुषस्य प्रपत्स्यते ॥
ब्रह्माण्डे प्रथमः सोऽथ भविता चेश्वरः पुनः । ततो ज्ञेवस्यक्तस्तस्यसर्वभूतपतिःशिवः
ईश्वरः सर्वमुक्तानां ब्रह्मा ब्रह्ममयो महान् । आदिदेवः प्रधानस्यानुग्रहायप्रवक्ष्यते ॥
अनाद्यौ वरमुत्पादावुभौ सूक्ष्मौ तु तौ स्मृतौ । अनादिसंयोगयुतौ सर्वक्षेत्रज्ञमेव च
अबुद्धिपूर्वकं युक्तौ मशकौ तु वरौ तदा । अप्रत्ययमनाद्यञ्च स्थितावुदकमप्स्यशः(?)
प्रवृत्ते पूर्वतः पूर्वं पुनः सर्गे प्रपत्स्यते । अज्ञा गुणैः प्रवर्तन्ते रजःसत्त्वतमात्मकम् ॥
प्रवृत्तिकाले रजसाऽभिपन्नमहत्त्वभूतादिविशेष्यताञ्च ।
विशेषतां चेन्द्रियताञ्च यान्ति गुणावसाने पतिभिर्मनुष्याः ॥ २५ ॥

सत्याभिध्यायिनस्तस्य ध्यायिनः सन्निमित्तकम् ।
रजःसत्त्वतमा व्यक्ता विधर्माणः परस्परम् ॥ २६ ॥

आद्यन्ते संप्रपत्स्यन्तेक्षेत्रतज्ज्ञास्तुसर्वशः । संसिद्धकार्यकरणाउत्पद्यन्तेऽभिमानिनः
सर्वे सत्त्वाःप्रपद्यन्तेअव्यक्तात्पूर्वमेव च । प्रसूते याचसुवहाःसाधिकाश्चाप्यसाधिका
संसरन्तस्तु ते सर्वे स्थानप्रकरणैः सह । कार्याणि प्रतिपत्स्यन्त उत्पद्यन्ते पुनःपुन
गुणमात्रात्मकाश्चैवधर्माधर्मौपरस्परम् । आरप्सन्ती(भन्ते)हचान्योन्यंवरेणानुग्रहेणच

सर्वे तुल्याः प्रसृष्टार्थं सर्गादौ यान्ति विक्रियाम् ।
गुणास्तत्प्रतिधावन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥ ३१ ॥

गुणास्ते यानि सर्वाणि प्राग्दृष्टेः प्रतिपेदिरे । तान्येव प्रतिपद्यन्तेसृज्यमानाःपुनःपुन
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते । तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते
महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु । विप्रयोगाश्च भूतानां गुणेभ्यः संप्रवर्तते
इत्येष वो मया ख्यातः पुनःसर्गःसमासतः । समासादेववक्ष्यामिब्रह्मणोऽथसमुद्भवम्
अव्यक्तात्कारणात्तस्मान्नित्यात्सदसदात्मकात् । प्रधानपुरुषाभ्यान्तुजायतेचमहेश्वरः
स पुत्रः संभवपिता जायते ब्रह्मसंज्ञितः । सृजते स पुनर्लोकानभिमानगुणात्मकान्
अहंकारस्तुमहतस्तस्माद्भूतानिचाऽऽत्मनः । युगपत्संप्रवर्तन्तेभूतान्येवेन्द्रियाणिच॥

भूतभेदांश्च भूतेभ्य इति सर्गः प्रवर्तते ॥ ३८ ॥

विस्तरावयवस्तेषां यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् । कीर्तितं वो यथापूर्वं तथैवाभ्युपधार्यताम्

एतच्छ्रुत्वा नैमिषेयास्तदानीं लोकोत्पत्तिं संस्थितिञ्च व्ययञ्च ।
तस्मिन्सत्रेऽवभृथं प्राप्य शुद्धाः पुण्यं लोकमृषयः प्राप्नुवन्ति ॥ ४० ॥
यथा यूयं विधिवद्देवतादीनिष्ट्वा चैवावभृथं प्राप्य शुद्धाः ।
त्यक्त्वा देहानायुषोऽन्ते कृतार्थान्पुण्यांल्लोकान्प्राप्य यथेष्टं चरिष्यथ ॥

एते ते नैमिषेया वै इष्ट्वा सृष्ट्वाच वै तदा । जग्मुश्चावभृथस्नाताः स्वर्गं सर्वेतु सत्रिणः
विप्रास्तथा यूयमपि इष्ट्वा बहुविधैर्मखैः । आयुषोऽन्तेततःस्वर्गंगन्तारःस्थद्विजोत्तमाः
प्रक्रिया प्रथमः पादः कथावस्तुपरिग्रहः । अनुषङ्ग उपोद्घात उपसंहार एव च ॥४४॥

[ए]वमेतच्चतुष्पादं पुराणं लोकसंमतम्। उवाच भगवान्साक्षाद्वायुर्लोकहिते रतः॥
[नै]मिषे सत्रमासाद्य मुनिभ्यो मुनिसत्तमाः। तत्प्रसादादसंदिग्धंभूतोत्पत्तिलयानि च
[प्र]धानिकीमिमां सृष्टिंतथैवेश्वरकारिताम्। सम्यग्विदित्वामेधावीनमोहमधिगच्छति
[य]मंयो ब्राह्मणोविद्वानितिहासंपुरातनम्। शृणुयाच्छ्रावयेद्वाऽपितथाऽध्यापयतेऽपिच

स्थानेषु स महेन्द्रस्य मोदते शाश्वतीः समाः।
ब्रह्मसायो(यु)ज्यगो भूत्वा ब्रह्मणा सह मोक्ष्यते॥ ५६॥

[ते]षां कीर्तिमतां कीर्तिं प्रजेशानां महात्मनाम्। प्रथयन्पृथिवीशानां ब्रह्मभूयायगच्छति
[ध]न्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च संमतम्। कृष्णद्वैपायनेनोक्तं पुराणं ब्रह्मवादिनः॥
[म]न्वन्तरेश्वराणाञ्च यः कीर्तिं प्रथयेदिमाम्। देवतानामृषीणाञ्च भूरिद्रविणतेजसाम्

स सर्वैर्मुच्यते पापैः पुण्यञ्च महदाप्नुयात्॥ ५२॥

[य]श्चेदं श्रावयेद्विद्वान्सदा पर्वणि पर्वणि। धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥
[य]श्चेदं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान्पादमन्ततः। अक्षयं सार्वकामीयं पितॄंस्तच्चोपतिष्ठति
यस्मात्पुरा ह्यनन्तीदं पुराणं तेन चोच्यते। निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते

तथैव त्रिषु वर्णेषु ये मनुष्याः प्रधानतः।
इतिहासमिमं श्रुत्वा धर्माय विदधे(दधते)मतिम्॥ ५६॥

यावन्त्यस्य शरीरेषु रोमकूपाणि सर्वशः। तावत्कोटिसहस्राणि वर्षाणांदिविमोदते

ब्रह्मसायो(यु)ज्यगो भूत्वा दैवतैः सह मोदते॥ ५७॥

सर्वपापहरं पुण्यं पवित्रं च यशस्वि च। ब्रह्मा ददौ शास्त्रमिदं पुराणं मातरिश्वने॥
तस्माच्चोशनसा प्राप्तं तस्माच्चापि बृहस्पतिः। बृहस्पतिस्तु प्रोवाचसवित्रेतदनन्तरम्
सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेन्द्राय वै पुनः। इन्द्रश्चापिवशिष्ठायसोऽपिसारस्वताय च
सारस्वतस्त्रिधाम्ने च त्रिधामा च शरद्वते। शरद्वतस्त्रिविष्टायसोऽन्तरिक्षायदत्तवान्
वर्षिणे चान्तरिक्षो वै सोऽपित्रय्यारुणाय च। त्रय्यारुणोधनञ्जये सचप्रादात्कृतञ्जये
कृतञ्जयात्तृणञ्जयो भरद्वाजाय सोऽप्यथ। गौतमाय भरद्वाजः सोऽपि निर्यन्तरे पुनः
निर्यन्तरस्तु प्रोवाच तथा वाजश्रवाय च। स ददौ सोमशुष्माय स ददौ तृणविन्दवे

तृणबिन्दुस्तु दक्षाय दक्षः प्रोवाच शक्तये। शक्तेः पराशरश्चापि गर्भस्थः श्रुतवानिदम्
पराशराज्जातुकर्णस्तस्माद्द्वैपायनः प्रभुः। द्वैपायनात्पुनश्चापि मया प्रोक्तं द्विजोत्तमाः

शांशपायन उवाच

मया वै तत्पुनः प्रोक्तं पुत्रायाऽमितबुद्धये। इत्येव वाचा ब्रह्मादिगुरुणा समुदाहृता
नमस्कार्याश्च गुरवः प्रयत्नेन मनीषिभिः। धन्यं यशस्यमायुष्यंपुण्यंसर्वार्थसाधकम्
पापघ्नं नियमेनेदं श्रोतव्यं ब्राह्मणैः सदा। नाशुचौ नापि पापायनाप्यसंवत्सरोषिते
नाश्रद्दधानाविदुषे नाऽपुत्राय कथञ्चन। नाऽहिताय प्रदातव्यं पवित्रमिदमुत्तमम्॥

अव्यक्तं वै यस्य योनिं वदन्ति व्यक्तं देहं कालमन्तर्गतञ्च।
दहिं वक्त्रं चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे दिशः श्रोत्रे घ्राणमाहुश्च वायुम॥ ७१॥
वाचो वेदांश्चान्तरिक्षं शरीरं क्षितिं पादौ तारका रोमकूपान्।
सर्वाणि चाङ्गानि तथैव तानि विद्याश्च अङ्गानि च यस्य पुच्छम्॥ ७२॥
तं देवदेवं जननं जनानां सर्वेषु लोकेषु प्रतिष्ठितञ्च।
वरं वराणां वरदं महेश्वरं ब्रह्माणमादिं प्रयतो नमस्ये॥ ७३॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे सृष्टिवर्णनं नाम
त्र्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १०३॥

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

व्याससंशयापनोदनवर्णनम्

शौनकादिऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग त्वया भगवता सता। व्यासप्रसादाधिगतशास्त्रसंबोधनेन च॥
अष्टादश पुराणानि सेतिहासानि चानघ!। उपक्रमोपसंहारविधिनोक्तानि कृत्स्नशः॥
चतुर्दशसहस्रञ्चमात्स्यंप्रोक्तमतिस्फुटम्। तत्संख्याकंभविष्यञ्चप्रोक्तंपञ्चशताधिकम्

मार्कण्डेयं महारम्यं प्रोक्तं नवसहस्रकम् । कथितं ब्रह्मवैवर्तमष्टादशसहस्रकम् ॥ ४ ॥
शतोत्तरञ्च ब्रह्माण्डं सूर्यसंख्यासहस्रकम् । अथ भागवतं दिव्यमष्टादशसहस्रकम् ॥
सहस्राणि दशैवोक्तं पुराणं ब्रह्मनामकम् । अयुतश्लोकघटितं पुराणं वामनाभिधम्
तथैवायुतसंख्यातं षट्शताधिकमादिकम् । त्रयोविंशतिसाहस्रमनिलं तद्गतं शुभम् ॥
त्रयोविंशतिसाहस्रं नारदीयमुदाहृतम् । एकोनविंशसाहस्रं वैनतेयमुदाहृतम् ॥ ८ ॥
सहस्रपञ्चपञ्चाशत्प्रोक्तं पाद्मं सुविस्तरम् । सप्तदशसहस्रं तु कूर्मं प्रोक्तं मनोहरम् ॥
चतुर्विंशतिसाहस्रं शौकरं परमाद्भुतम् । एकाशीतिसहस्राणि स्कान्दमुक्तंसुविस्तृतम्
एवमष्टादशोक्तानि पुराणानि बृहन्ति च । पुराणेष्वेषु बहवो धर्मास्ते विनिरूपिताः

रागिणां च विरागाणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।
गृहस्थानां वनस्थानां स्त्रीशूद्राणां विशेषतः ॥ १२ ॥

ब्राह्मणक्षत्त्रियविशां ये च सङ्करजातयः । गङ्गाद्या या महानद्यो यज्ञव्रततपांसि च ॥
अनेकविधदानानि यमाश्चनियमैः सह । योगधर्मा बहुविधाः सांख्या भागवतास्तथा
भक्तिमार्गा ज्ञानमार्गावैराग्यानिलनीरजाः । उपासनविधिश्चोक्तः कर्मसंशुद्धिचेतसाम्

ब्राह्मं शैवं वैष्णवं च सौरं शाक्तं तथाऽऽर्हतम ।
षड्दर्शनानि चोक्तानि स्वभावनियतानि च ॥ १६ ॥

एतदन्यच्च विविधं पुराणेषु निरूपितम् । अतः परंकिमप्यस्ति न वा बोद्धव्यमुत्तमम्
नज्ञायेतयदिव्यासो गोपयेदथवाभवान । अत्रनःसंशयं छिन्धि पूर्णः पौराणिको यतः

सूत उवाच

शृणु शौनक वक्ष्यामि प्रश्नमेनं सुदुर्लभम् । अतिगोप्यतरं दिव्यमनाख्येयं प्रचक्षते ॥
पराशरसुतो व्यासःकृत्वापौराणिकींकथाम् । सर्ववेदार्थघटितां चिन्तयामासचेतसि
वर्णाश्रमवतां धर्मो मया सम्यगुदाहृतः । मुक्तिमार्गा बहुविधा उक्ता वेदाविरोधतः॥
जीवेश्वरब्रह्मभेदो निरस्तः सूत्रनिर्णये । निरूपितं परं ब्रह्म श्रुतियुक्तविचारतः ॥ २२ ॥
अक्षरं परमं ब्रह्म परमात्मा परं पदम् । यदर्थं ब्रह्मचर्यादिवानप्रस्थयतिव्रतम् ॥ २३ ॥
आचरन्ति महाप्राज्ञाधारणांचपृथग्विधाम् । आसनंप्राणरोधश्चप्रत्याहारश्च धारणा

ध्यानं समाधिरेतानि यमैश्च नियमैः सह । अष्टाङ्गानि यदर्थं च चरन्ति मुनिपुङ्गवाः
यदर्थं कर्म कुर्वन्ति वेदाज्ञामात्रतत्पराः ।
परार्पणधिया सम्यङ्निष्कामाः कलिलोज्झिताः ॥ २६ ॥
यज्ज्ञप्तये निराकर्तुं पापाचरणमात्मनः । गङ्गादितीर्थचर्याणि निषेवन्ते शुचिव्रताः ॥
तद्ब्रह्म परमं शुद्धमनाद्यन्तमनामयम् । नित्यं सर्वगतं स्थाणु कूटस्थं कूटवर्जितम् ॥
सर्वेन्द्रियचराभासं प्राकृतेन्द्रियवर्जितम् । दिक्कालाद्यनवच्छिन्नं नित्यं चिन्मात्रमव्ययम्
अध्यास्तं सर्वं यत्र विश्वमेतत्प्रकाशते । विश्वस्मिन्नपि चान्वेति निर्विकारं स्रज्जुवत्
सम्यग्विचारितं यद्वत्फेनोर्मिबुद्बुदोदकम् । तथाविचारितंब्रह्म विश्वस्मान्नपृथग्भवेत्
सर्वं ब्रह्मैव नानात्वं नास्तीति निगमा जगुः ।
यस्माद्भवन्ति ब्रह्माण्डकोटयो न भवन्ति च ॥ ३२ ॥
यदुन्मेषनिमेषाभ्यां जगतां प्रलयोदयौ । भवेतां या परा शक्तिर्यदाधारतया स्थिता ॥
यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं यदिदं स्मृतम् । यदज्ञानाज्जगद्भाति यस्मिञ्ज्ञाते जगन्न हि
असत्यं यज्जडं दुःखं अवस्त्विति निरूपितम् । विपरीतमतो यद्वै सच्चिदानन्दमूर्तिकम्
जीवे जाग्रति विश्वाख्यं स्वप्ने यत्तैजसं स्मृतम् ।
सुषुप्तौ प्राज्ञसञ्ज्ञं यत्सर्वावस्थासु संस्मृतम् ॥ ३६ ॥
यच्चक्षुषां चक्षुरथ श्रोत्राणां श्रोत्रमप्यति । त्वक्त्वचांरसनंतस्यप्राणंप्राणस्य यद्विदुः
बुद्धिर्ज्ञानेन च प्राणाःक्रियाशक्त्या निरन्तरम् । यन्नेशिरे समभ्येतुं ज्ञातुं च परमार्थतः
रज्जावहिर्मरौ वारि नीलिमा गगने यथा । असद्विश्वमिदंभाति यस्मिन्नज्ञानकल्पितम्
घटावच्छिन्नएवायं महाकाशो विभिद्यते । कार्योपाधिपरिच्छिन्नंतद्वद्य ज्जीवसञ्ज्ञकम्
माययाचित्रकारिण्याविचित्रगुणशीलया ।ब्रह्माण्डंचित्रमतुलंयस्मिन्भित्तावितार्पितम्
धावतोऽन्यानतिक्रान्तं वदतो वागगोचरम् । वेदवेदान्तसिद्धान्तैर्विनिर्णीतं तदक्षरम्
अक्षरान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः ।
इत्येवं श्रूयते वेदे बहुधाऽपि विचारिते ॥ ४३ ॥
अक्षरस्याऽऽत्मनश्चापि स्वात्मरूपतयास्थितम् । परमानन्दसन्दोहरूपमानन्दविग्रहम्

लीलाविलासरसिकं बल्लवीयूथमध्यगम्। शिखिपिच्छकिरीटेन भास्वद्रत्नचितेन च ॥
उल्लसद्विद्युदाटोपकुण्डलाभ्यां विराजितम्। कर्णोपान्तचरन्नेत्रखञ्जरीटमनोहरम् ॥४६
कुञ्जकुञ्जप्रियावृन्दविलासरतिलम्पटम। पीताम्बरधरं दिव्यं चन्दनालेपमण्डितम् ॥
अधरामृतसंसिक्तवेणुनादेन बल्लवीः। मोहयन्तं चिदानन्दमनङ्गमदभञ्जनम् ॥ ४८ ॥
कोटिकामकलापूर्णं कोटिचन्द्रांशुनिर्मलम्। त्रिरेकहुण्ठविलसद्रत्नगुञ्जामृगाकुलम् ॥
यमुनापुलिने तुङ्गे तमालवनकानने। कदम्बचम्पकाशोकपारिजातमनोहरे ॥ ५० ॥
शिखिपारावतशुकपिककोलाहलाकुले। निरोधार्थं गवामेव धावमानमितस्ततः॥५१॥
राधाविलासरसिकं कृष्णाख्यं पुरुषंपरम्। श्रुतवानस्मिवेदेभ्यो यतस्तद्गोचरोऽभवत्
एवं ब्रह्मणि चिन्मात्रे निर्गुणे भेदवर्जिते। गोलोकसञ्ज्ञकेकृष्णोदीव्यतीतिश्रुतं मया
नातः परतरं किञ्चिन्निगमागमयोरपि। तथाऽपि निगमो वक्ति ह्यक्षरात्परतः परः ॥

गोलोकवासी भगवानक्षरात्पर उच्यते।
तस्मादपि परः कोऽसौ गीयते श्रुतिभिः सदा ॥ ५५ ॥

उद्दिष्टो वेदवचनैर्विशेषो ज्ञायते कथम्। श्रुतेर्वाऽर्थोऽन्यथाबोध्यः परतस्त्वक्षरादिति
श्रुत्यर्थे संशयापन्नो व्यासः सत्यवतीसुतः। विचारयामास चिरं न प्रपेदे यथातथम्

सूत उवाच

विचारयन्नपि मुनिर्नाऽऽप वेदार्थनिश्चयम्। वेदोनारायणः साक्षाद्यत्र मुह्यन्ति सूरयः
तदाऽपि महतीमार्तिं सतां हृदयतापिनीम्। पुनर्विचारयामासकंव्रजामिकरोमिकिम्
पृच्छामि न जगत्यस्मिन्सर्वज्ञं सर्वदर्शनम्। अज्ञातयाऽन्यतमंलोकेसन्देहविनिवर्तकम्
मेरोः कुहरिणीं गत्वा चचारपरमंतपः। यत्र कार्तस्वरस्फूर्जज्ज्योत्स्नाजालैर्निरन्तरम्
सदा प्रबाधते विष्वक्तमःस्तोमंदृशन्तुदम्। चकास्ते यत्र परमं कान्तारमतिसुन्दरम्
नानाद्रुमलताकुञ्जकूजत्पक्षिनिनादितम्। क्षुत्पिपासाभयक्रोधतापग्लानिविवर्जितम् ॥
जलाशयैर्बहुविधैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः। जातरूपशिलानद्धतटसञ्चारपक्षिभिः ॥६४॥
युक्तमम्भोजपवनैः सेव्यमानं समन्ततः। शिवैरध्यासितं भावैर्हिंस्रैःसत्त्वैःसमुज्झितम्
निर्जनं दिव्यलतिकाप्रियखण्डविराजितम्। शुकैः पारावतैर्हृद्यैरुन्मदन्मत्तकोकिलम्

उत्पतत्पद्मरजसां पटलामोददिङ्मुखम् । तत्रापि काञ्चनी दिव्या गुहा परमशोभना॥
तां प्रविश्य जिताहारो जितचित्तो जितासनः ।
सस्मार वेदांश्चतुरस्तदेकाग्रमना मुनिः ॥ ६९ ॥
त्रयी जगाम शरदां शतस्य स्मरतोऽस्यहि । प्रादुरासंस्ततो वेदाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः
स्फुरत्पद्मपलाशाक्षा जटामुकुटधारिणः । कुशमुष्टिकराम्भोजामृगत्वङ्मण्डितांसकाः
स्वरैः षोडशभिः क्लृप्तवदनाः प्रणवान्तराः । कचवर्गोद्भवैर्वर्णैः पञ्चावयवपाणयः ॥
पवर्गदक्षचरणा वामपादास्तवर्गतः । आत्त(त)रन्त्यन्तवर्णाश्च येषां कुक्षिद्वयात्मकौ॥
नाभिनिद्राः कान्तपृष्ठा मोदरा यरलवोत्कचाः ।
अग्निदक्षांशरुचिरा धराग्रीवा भृतांसकाः ॥ ७३ ॥
अन्तस्थसंधिसंस्थाना वैखरीवाग्विजृम्भिताः ।
अपश्यन्मथुरामेषां हृदयाम्भोजकल्पिताम् ॥ ७४ ॥
हरेर्भगवतःसाक्षादाविर्भावस्थलीहिसा । काशीमपश्यद्भ्रूमध्येमायामाधारसंस्थिताम्
लिङ्गदेशे ततः काञ्चीमवन्तींनाभिमण्डले । कण्ठस्थांद्वारकामेषां प्रयागं प्राणगं तथा
सव्यापसव्ययोस्तेषां गङ्गाऽपि यमुनानदी । मध्येसरस्वतीसाक्षाद्गयाक्षेत्रं तथाऽऽनने
हनुग्रीवामध्यगतं प्रभासक्षेत्रमुत्तमम् । बदर्याश्रममेतेषां ब्रह्मरन्ध्रे ददर्श ह ॥ ७८ ॥
पौण्ड्रवर्धननेपालपीठं नयनयोर्युगे । पीठं पूर्णगिरिं नाम ललाटे समदृश्यत ॥ ७९ ॥
कण्ठे च मथुरापीठं काञ्चीपीठं कटिस्थितम् । जालन्धरंतथा पीठं स्तनदेशेष्वदृश्यत
भृगुपीठं कर्णदेशे अयोध्यां नासिकापुटे । ब्रह्मरन्ध्रेस्थितंब्राह्मयं शैवं सीमन्तसीमनि
शाक्तं जिह्वाग्रधिषणं वैष्णवं हृदयाम्बुजे । सौरं चक्षुष्प्रदेशस्थं बौद्धच्छायासुसंगतम्
सौत्रामणिं कण्ठदेशे पशुबन्धमथोरसि । वाजपेयं कटितटे अग्निहोत्रं तथाऽऽनने ॥
अश्वमेधं कटितटे नरमेधमथोदरे। राजसूयं शिरोदेश आवसथ्यं तथाऽधरे ॥ ८४ ॥
ऊर्ध्वोष्ठेदक्षिणाग्निंचगार्हपत्यंमुखान्तरे । हव्यं श्रुतौमन्त्रभेदास्तथारोमस्ववस्थितान्
भृत्यैरिव महाराजं पुराणैर्न्यायमिश्रितैः ॥ ८५ ॥
संहिताभिश्च तन्त्रैश्च पृथक्पृथगुपासितान् । कर्मज्ञानोपासनाभिर्जनानुग्रहकारकान् ॥

दृष्ट्वासुविस्मितमनामुनिःकृष्णोबभूवतान्।ब्रह्मतेजोमयादिव्यांस्तपतोऽर्कानिवच्युतान्
ज्वलतोऽग्नीनिवोदर्कान्कोटीन्दुसमदर्शनान् ॥ ८७ ॥
ववन्दे सहसोत्थाय दण्डवत्पतितोमुनिः । कृतार्थोऽहंकृतार्थोऽहंकृतार्थोऽहमितीरयन्
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलंमनः । अद्यमेसफलं चाऽऽयुर्यद्भवन्तोऽक्षिगोचराः
अलौकिकं लौकिकं च यत्किञ्चिदपि विद्यते ।
न तद्वोऽविदितं वेद्यं भूतं भव्यं भवच्च यत् ॥ ९० ॥
न प्रवृत्तिफला यूयं दर्शयन्तोऽपि तान्सदा । यद्रक्षाकरसंकोचविधानायेह रागिणाम्
प्रपञ्चस्यापिमिथ्यात्वेब्रह्मत्वेवाविधीतरौ । नमृषारागविषयौ तत्संकोचविधिक्षयौ ॥
अतो लोकहितैर्नूनं परमार्थनिरूपणे । स्वोक्ताः स्वर्गादिविषया नश्वरा इति निन्दिताः
अधिकारिविभेदेन कर्मज्ञानोपदेशतः । त्रातं सर्वं जगन्नूनं शब्दब्रह्मात्ममूर्तिभिः ॥९४॥
अतोऽहं प्रष्टुमिच्छामिभवन्तश्चेत्कृपालवः । कर्मणांफलमादिष्टंसर्गःकामैकचेतसाम्
ईशार्पितधियांपुंसां कृतस्याऽपिचकर्मणः । चित्तशुद्धिस्ततो ज्ञानं मोक्षश्च तदनन्तरम्
मोक्षो ब्रह्मैक्यमित्येवं सच्चिदानन्दमेवयत् । सर्वं समाप्यतेतस्मिञ्ज्ञातेयद्धिकृताकृतम्
यन्निःसङ्गं चिदाकाशं ज्ञानरूपमसंवृतम् । निरीहमचलं शुद्धमगुणं व्यापकं स्मृतम् ॥
विकारेषु विनश्यत्सु निर्विकारं न नश्यति ।
यथाऽन्धतमसा व्याप्तलोकस्य र(वि)रोजसा ॥ ९९ ॥
लोहस्येवमणिस्तद्वद्ब्र(ह्म)णियाश्वेतयितृयत्(?)। यदाभासेनसासत्तांप्रतिपद्यविजृम्भते
जीवेश्वरादिरूपेण विश्वाकारेण चाप्यहो । तस्यामपि प्रलीनायांकूटस्थं च यदेकलम्
भवद्भिरेवं निर्णीतं तत्तथैव न संशयः । तथाऽपि मम जिज्ञासा वर्तते केवलं हृदि ॥
अतोऽपि परमं किञ्चिद्वर्तते किल वा न वा । तद्वदन्तु महाभागा भवन्तस्तत्त्वदर्शनाः
यच्छ्रवःफलमेवेह जनुषो मे कृतार्थता । एवं ब्रुवन्तमनघं व्यासं सत्यवतीसुतम् ॥
साधु साध्विति सङ्कीर्त्य प्रत्यूचुर्निगमा वचः ॥ १०४ ॥

वेदा ऊचुः

साधु साधु महाप्राज्ञ ! विष्णुरात्मा शरीरिणाम् ।

अजोऽपि जन्म सम्पद्य लोकानुग्रहमीहसे ॥ १०५ ॥
अन्यथा ते न घटते संसारकर्म बन्धनम् । अस्पृष्टो मायया देव्या कदाचिज्ज्ञानगूहया
बिभर्षि स्वेच्छया रूपं स्वेच्छयैव निगूहसे । अस्मत्संमत एवार्थो भवता सम्प्रदर्शितः
पुराणेष्वितिहासेषु सूत्रेष्वपि च नैकधा । अक्षरं ब्रह्म परमं सर्वकारणकारणम् ॥
तस्याऽऽत्मनोऽप्यात्मभावतयापुष्पस्यगन्धवत् । रसवद्वास्थितंरूपमवेहिपरमं हि तत्
अनुभूतं तदस्माभिर्जाते प्राकृतिके लये । अक्षरात्परतस्तस्माद्यत्परं केवलो रसः ॥
न च तत्र वयं शक्ताः शब्दातीते तदात्मकाः ॥ ११० ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे व्याससंशयापनोदनं नाम
चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

वायुरुवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामिगयामाहात्म्यमुत्तमम् । यच्छ्रुत्वासर्वपापेभ्योमुच्यतेनात्रसंशयः

सूत उवाच

सनकाद्यैर्महाभागैर्देवर्षिः स च नारदः । सनत्कुमारं पप्रच्छ प्रणम्य विधिपूर्वकम् †

---

† इतउत्तरं मुद्रितपुस्तकेऽयं ग्रन्थ उपलभ्यते सोऽयम्—
गयायात्रां प्रवक्ष्यामिश्रृणु नारदमुक्तिदाम् । निष्कृतिस्त्विहकर्तॄणांब्रह्मणागीयतेपुरा
ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा । वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥
ब्रह्मज्ञानेन किं कार्यं गोगृहे मरणेन किम् । किं कुरुक्षेत्रवासेन यदि पुत्रो गयां व्रजेत्
गयायां पिण्डदानेन यत्फलं लभते नरः । न तच्छक्यं मया वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि
इति श्रुत्वा तदावाक्यं नारदोमुनिसत्तमः । सनत्कुमारं पप्रच्छ प्रणम्य विधिपूर्वकम्

नारद उवाच

सनत्कुमार! मे ब्रूहि तीर्थं तीर्थोत्तमोत्तमम्। तारकं सर्वभूतानां पठतां शृण्वतां तथा

सनत्कुमार उवाच

वक्ष्ये तीर्थवरं पुण्यं श्राद्धादौ सर्वतावकम्। गयातीर्थंसर्वदेशेतीर्थेभ्योऽप्यधिकं शृणु

गयासुरस्तपस्तेपे ब्रह्मणा क्रतवेऽर्थितः। प्राप्तस्य तस्य शिरसिशिलांधर्मो ह्यधारयत्

तत्र ब्रह्माऽकरोद्यागं स्थितश्चापि गदाधरः। फल्गुतीर्थादिरूपेण निश्चलार्थमहर्निशम्

गयासुरस्य विप्रेन्द्र! ब्रह्माद्यैर्दैवतैः सह ॥ ६ ॥

कृतयज्ञो ददौ ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यो गृहादिकम्। श्वेतकल्पे तु वाराहेगयोयागमकारयत्

गयानाम्ना गया ख्याता क्षेत्रं ब्रह्माभिकाङ्क्षितम्।

काङ्क्षन्ति पितरः पुत्रान्नरकाद्भयभीरवः ॥ ८ ॥

गयांयास्यति यः पुत्रः स नस्त्राताभविष्यति। गयाप्राप्तंसुतंदृष्ट्वापितॄणामुत्सवोभवेत्

पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा सोऽस्मभ्यं किं न दास्यति ॥ ६ ॥

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्। यजेतचाश्वमेधेननीलं वा वृषमुत्सृजेत्

गयां गत्वाऽन्नदाता यः पितरस्तेनपुत्रिणः। पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासप्तमंकुलम्

नो चेत्पञ्चदशाहं वा सप्तरात्रिं त्रिरात्रिकम् ॥ ११ ॥

महाकल्पकृतं पापं गयां प्राप्य विनश्यति। पिण्डंदद्याच्चपित्रादेरात्मनोऽपितिलैर्विना

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। पापं तत्सङ्गजं सर्वं गयाश्राद्धाद्विनश्यति ॥

आत्मजोऽप्यन्यजो वाऽपि गयाभूमौ यदा तदा।

यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तन्नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १४ ॥

नामगोत्रे समुच्चार्य पिण्डपातनमिष्यते। येन केनापि कस्मैचित्स यातिपरमांगतिम्

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा। वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥

ब्रह्मज्ञानेन किं कार्यं गोगृहे मरणेन किम्। वासेन किं कुरुक्षेत्रे यदि पुत्रो गयांव्रजेत्

गयायां सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः। अधिमासेजन्मदिनेचास्तेऽपिगुरुशुक्रयोः

न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव मृतानां पिण्डकर्मसु

अजोऽपि जन्म सम्पद्य लोकानुग्रहमीहसे ॥ १०५ ॥

अन्यथा ते न घटते संसारकर्म बन्धनम् । अस्पृष्टो मायया देव्या कदाचिज्ज्ञानगूहया
विभर्षि स्वेच्छया रूपं स्वेच्छयैव निगूहसे । अस्मत्संमत एवार्थो भवता सम्प्रदर्शितः
पुराणेष्वितिहासेषु सूत्रेष्वपि च नैकधा । अक्षरं ब्रह्म परमं सर्वकारणकारणम् ॥
तस्याऽऽत्मनोऽप्यात्मभावतयापुष्पस्यगन्धवत् । रसवद्वास्थितंरूपमवेहिपरमं हि तत्
अनुभूतं तदस्माभिर्जाते प्राकृतिके लये । अक्षरात्परतस्तस्माद्यत्परं केवलो रसः ॥

न च तत्र वयं शक्ताः शब्दातीते तदात्मकाः ॥ ११० ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे व्याससंशयापनोदनं नाम
चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम्

वायुरुवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामिगयामाहात्म्यमुत्तमम् । यच्छ्रुत्वासर्वपापेभ्योमुच्यतेनात्रसंशयः

सूत उवाच

सनत्काद्यैर्महाभागैर्देवर्षिः स च नारदः । सनत्कुमारं पप्रच्छ प्रणम्य विधिपूर्वकम् †

---

† इतउत्तरं मुद्रितपुस्तकेऽयं ग्रन्थ उपलभ्यते सोऽयम्—
गयायात्रां प्रवक्ष्यामिश्रृणु नारदमुक्तिदाम् । निष्कृतिस्त्विहकर्तॄणांब्रह्मणागीयतेपुरा
ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा । वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥
ब्रह्मज्ञानेन किं कार्यं गोगृहे मरणेन किम् । किं कुरुक्षेत्रवासेन यदि पुत्रो गयां व्रजेत्
गयायां पिण्डदानेन यत्फलं लभते नरः । न तच्छक्यं मया वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि
इति श्रुत्वा तदावाक्यं नारदोमुनिसत्तमः । सनत्कुमारं पप्रच्छ प्रणम्य विधिपूर्वकम्

नारद उवाच

सनत्कुमार! मे ब्रूहि तीर्थं तीर्थोत्तमोत्तमम्। तारकं सर्वभूतानां पठतां शृण्वतां तथा

सनत्कुमार उवाच

वक्ष्ये तीर्थवरं पुण्यं श्राद्धादौ सर्वतावकम्। गयातीर्थंसर्वदेशेतीर्थेभ्योऽप्यधिकं शृणु

गयासुरस्तपस्तेपे ब्रह्मणा कृतवेऽर्थितः। प्राप्तस्य तस्य शिरसिशिलांधर्मो ह्यधारयत्

तत्र ब्रह्माऽकरोद्यागं स्थितश्चापि गदाधरः। फल्गुतीर्थादिरूपेण निश्चलार्थमहर्निशम्

गयासुरस्य विप्रेन्द्र! ब्रह्माद्यैर्दैवतैः सह ॥ ६ ॥

कृतयज्ञो ददौ ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यो गृहादिकम्। श्वेतकल्पे तु वाराहेगयोयागमकारयत्

गयानाम्ना गया ख्याता क्षेत्रं ब्रह्माभिकाङ्क्षितम्।

काङ्क्षन्ति पितरः पुत्रान्नरकाद्भयभीरवः ॥ ८ ॥

गयांयास्यति यः पुत्रः स नस्त्राताभविष्यति। गयाप्राप्तंसुतंदृष्ट्वापितृणामुत्सवोभवेत्

पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा सोऽस्मभ्यं किं न दास्यति ॥ ९ ॥

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्। यजेतचाश्वमेधेननीलं वा वृषमुत्सृजेत्

गयां गत्वाऽन्नदाता यः पितरस्तेनपुत्रिणः। पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासप्तमंकुलम्

नो चेत्पञ्चदशाहं वा सप्तरात्रि त्रिरात्रिकम् ॥ ११ ॥

महाकल्पकृतं पापं गयां प्राप्य विनश्यति। पिण्डंदद्याच्चपित्रादेरात्मनोऽपितिलैर्विना

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। पापं तत्सङ्गजं सर्वं गयाश्राद्धाद्विनश्यति ॥

आत्मजोऽप्यन्यजो वाऽपि गयाभूमौ यदा तदा।

यन्नाम्ना पातयेत्पिण्डं तन्नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १४ ॥

नामगोत्रे समुच्चार्य पिण्डपातनमिष्यते। येन केनापि कस्मैचित्स यातिपरमांगतिम्

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा। वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥

ब्रह्मज्ञानेन किं कार्यं गोगृहे मरणेन किम्। वासेन किं कुरुक्षेत्रे यदि पुत्रो गयांव्रजेत्

गयायां सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद्विचक्षणः। अधिमासेजन्मदिनेचास्तेऽपिगुरुशुक्रयोः

न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव मृतानां पिण्डकर्मसु

महातीर्थे तु संप्राप्ते क्षतदोषो न विद्यते। तथा देवप्रमादेन सुमहत्सु व्रणेषु च॥
पुनः कर्माधिकारी च श्राद्धकृद्ब्रह्मलोकभाक्॥ २०॥
सकृद्गयाभिगमनं सकृत्पिण्डस्य पातनम्। दुर्लभं किं पुनर्नित्यमस्मिन्नेवव्यवस्थितिः
प्रमादान्म्रियते क्षेत्रे ब्रह्मादेर्मुक्तिदायके। ब्रह्मज्ञानाद्यथा मुक्तिर्लभ्यते नात्र संशयः॥
कीकटादिमृतानाञ्च पितॄणां तारणाय च। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यं सुविचक्षणैः
ब्रह्मप्रकल्पितान्विप्रान्हव्यकव्यादिनाऽर्चयेत्।
तैस्तुष्टैस्तोषिताः सर्वाः पितृभिः सह देवताः॥ २२॥
मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः। वर्जयित्वाकुरुक्षेत्रंविशालांविरजांगयाम्
दण्डं प्रदर्शयेद्भिक्षुर्गयां गत्वा न पिण्डदः। दण्डं न्यस्य विष्णुपदेपितृभिःसहमुच्यते
न दण्डी किल्बिषं धत्ते पुण्यं वा परमार्थतः।
अतः सर्वां क्रियां त्यक्त्वा विष्णुं ध्यायति भावुकः॥ २७॥
संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत्। मुण्डंकुर्याच्चपूर्वेऽस्मिन्पश्चिमेदक्षिणोत्तरे
सार्धक्रोशद्वयं मानं गयेति ब्रह्मणेरितम्। पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः॥
तन्मध्ये सर्वतीर्थानि त्रैलोक्येयानिसन्ति वै। श्राद्धकृद्योगयाक्षेत्रेपितॄणामनृणोहिसः
शिरसि श्राद्धकृद्यस्तु कुलानां शतमुद्धरेत्। गृहाच्चलितमात्रेण गयायां गमनं प्रति॥
स्वर्गारोहणसोपानं पितॄणाञ्च पदे पदे॥ ३१॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य यत्फलं गच्छतो गयाम्। तत्फलं च भवेन्नूनं समग्रं नात्र संशयः
पायसेनापि चरुणा सक्तुना पिष्टकेन वा। तण्डुलैः फलमूलाद्यैर्गयायां पिण्डपातनम्
तिलकल्केन खण्डेन गुडेन सघृतेन वा। केवलेनैव दध्ना वा ऊर्जेन मधुनाऽथ वा॥
पिण्याकं सघृतं खण्डं पितृभ्योऽक्षयमित्युत।
इज्यते वाऽऽर्तवं भोज्यं हविष्यान्नं मुनीरितम्॥ ३५॥
एकतः सर्ववस्तूनि रसवन्तिमधूनि हि। स्मृत्वागदाधराङ्घ्र्यब्जंफल्गुतीर्थाम्बुचैकतः
पिण्डासनं पिण्डदानं पुनःप्रत्यवनेजनम्। दक्षिणाचान्नसङ्कल्पस्तीर्थश्राद्धेष्वयंविधिः
नाऽऽवाहनं न दिग्बन्धो न दोषोदृष्टिसंभवः। सकारुण्येनकर्तव्यंतीर्थश्राद्धंविचक्षणैः

यत्राऽऽवाहिताःकालेपितरोयान्त्यमुंप्रति। तीर्थे सदावसन्त्येतेतस्मादावाहनंनहि
तीर्थश्राद्धं प्रयच्छद्भिः पुरुषैः फलकाङ्क्षिभिः।
कामं क्रोधं तथा लोभं त्यक्त्वा कार्या क्रियाऽनिशम् ॥ ४० ॥
ब्रह्मचार्येकभोजी च भूशायी सत्यवाक्शुचिः। सर्वभूतहिते रक्तः स तीर्थफलमश्नुते
तीर्थान्यनुसरन्धीरःपाषण्डंपूर्वतस्त्यजेत्। पाषण्डः सच विज्ञेयोयोभवेत्कामकारकः
तीर्थेषु ये नरा धीराः कर्म कुर्वन्ति तद्गताः। यथा ब्रह्मविदो वेद्यं वस्तुचानन्यचेतसः
प्रविशन्ति परेशाख्यं ब्रह्म ब्रह्मपरायणाः ॥ ४३ ॥
याऽऽस्ते वैतरणी नामनदीत्रैलोक्यविश्रुता। साऽवतीर्णागयाक्षेत्रेपितॄणांतारणायवै
स्नातो गोदो वैतरण्यां त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत् ॥ ४४ ॥
तथाऽक्षयवटंगत्वाविप्रान्संतोषयिष्यति। ब्रह्मप्रकल्पितान्विप्रान्हव्यकव्यादिनार्चयेत्
तैस्तुष्टैस्तोषिताः सर्वाः पितृभिः सह देवताः ॥ ४५ ॥
गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते।
सांनिध्यं सर्वतीर्थानां गयातीर्थं ततो वरम् ॥ ४६ ॥
मीने मेषे स्थिते सूर्ये कन्यायां कार्मुके घटे। गयायां दुर्लभं लोके वदन्ति ऋषयःसदा
दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयायां पिण्डपातनम् ॥ ४७ ॥
मकरे वर्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयाश्राद्धं सुदुर्लभम् ॥
गयायां पिण्डदानेन यत्फलं लभते नरः। न तच्छक्यं मया वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नाम
पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

———

षडधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच

गयासुरः कथं जातः किंप्रभावः किमात्मकः । तपस्तप्तं कथं तेन कथं देहपवित्रता ॥

सनत्कुमार उवाच

विष्णोर्नाभ्यम्बुजाज्जातोब्रह्मालोकपितामहः । प्रजाः ससर्जसंप्रोक्तःपूर्वं देवेनविष्णुना
आसुरेणैव भावेन असुरानसृजत्पुरा । सौमनस्येन भावेन देवान्सुमनसोऽसृजत् ॥
गयासुरोऽसुराणाञ्च महाबलपराक्रमः । योजनानां सपादञ्च शतं तस्योच्छ्रयःस्मृतः
स्थूलः षष्टिर्योजनानां श्रेष्ठोऽसौवैष्णवःस्मृतः । कोलाहलेगिरिवरेतपस्तेपेसुदारुणम्
बहुवर्षसहस्राणि निरुच्छ्वासं स्थिरोऽभवत् । तत्तपस्तापिता देवाःसंक्षोभंपरमंगताः
ब्रह्मलोकं गता देवाः प्रोचुस्तेऽथ पितामहम् । गयासुराद्रक्षदेवब्रह्मादेवांस्ततोऽब्रवीत्
व्रजामः शङ्करं देवा ब्रह्माद्याश्च गताः शिवम् । कैलासेचाब्रुवन्नत्वा रक्ष देवमहासुरात्
ब्रह्माद्यानब्रवींच्छम्भुर्व्रजामः शरणंहरिम् । क्षीराब्धौदेवदेवेशः स नः श्रेयोविधास्यति
ब्रह्मा महेश्वरो देवा विष्णुं नत्वा प्रतुष्टुवुः ॥ ६ ॥

देवा ऊचुः

ॐ नमो विष्णवेभर्त्रेसर्वेषांप्रभविष्णवे । रोचिष्णवेजिष्णवे च राक्षसादिग्रसिष्णवे
धरिष्णवेऽखिलस्याऽस्य योगिनां पारयिष्णवे ।
वर्धिष्णवे ह्यनन्तराय नमो भ्राजिष्णवे नमः ॥

सनत्कुमार उवाच

एवं स्तुतो वासुदेवः सुराणां दर्शनं ददौ । किमर्थमागता देवाविष्णुनोक्तास्तमब्रुवन्
गयासुरभयाद्देव रक्षास्मानब्रवीद्धरिम् । ब्रह्माद्या यान्तु तं दैत्यमागमिष्याम्यहं ततः
केशवो गरुडारूढो वरं दातुं गयासुरे । सर्वे स्वं स्वं समास्थाय ययुर्वाहनमुत्तमम्

तुस्तं वासुदेवाद्याः किमर्थंतप्यते त्वया । सन्तुष्टाःस्वागताःसर्वे वरं ब्रूहिगयासुर!

गयासुर उवाच

दि तुष्टाः स्थ मे देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सर्वदेवद्विजातिभ्योयज्ञतीर्थशिलोच्चयात्

देवेभ्योऽतिपवित्रोऽहमृषिभ्योऽपि शिवाव्ययात् ।
मन्त्रेभ्यो देवदेवीभ्यो योगिभ्यश्चापि सर्वशः ॥ १७ ॥
न्यासिभ्यश्चापि कर्मिभ्यो धर्मिभ्यश्च तथा पुनः ।
ज्ञ(य)तिभ्योऽतिपवित्रेभ्यः पवित्रः स्यां सदा सुराः ! ॥ १८ ॥

वित्रमस्तु तं देवा दैत्यमुक्त्वा ययुर्दिवम् । दैत्यं दृष्ट्वा च स्पृष्ट्वा च सर्वे हरिपुरंययुः
न्यं लोकत्रयं जातं शून्या यमपुरी ह्यभूत् । यमइन्द्रादिभिःसार्धंब्रह्मलोकंततोऽगमत्
ह्माणमूचिरे देवा गयासुरविलोपिताः । त्वया दत्तोऽधिकारो वै गृहाणत्वंपितामह
ब्रह्माऽब्रवीत्ततो देवान्व्रजामोविष्णुमव्ययम् । ब्रह्मादयोऽब्रुवन्विष्णुंत्वयादत्तवरेऽसुरे
तद्दर्शनाद्ययुः स्वर्गं शून्यं लोकत्रयं ह्यभूत् । देवैरुक्तोवासुदेवोब्रह्माणं स वचोऽब्रवीत्
गत्वाऽसुरं प्रार्थयस्वयज्ञार्थं देहिदेहकम् । विष्णूक्तःससुरोब्रह्मागत्वाऽपश्यन्महासुरम्
गयासुरोऽब्रवीद्दृष्ट्वा ब्रह्माणंत्रिदशैःसह । संपूज्योत्थायविधिवत्प्रणतःश्रद्धयाऽन्वितः

गयासुर उवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः । यदागतोऽतिथिर्ब्रह्मा सर्वं प्राप्तं मयाऽद्य वै
योगिन्योगाङ्गवित्सर्वलोकस्वामिन्पितर्गुरो !। यदर्थमागतोब्रह्मंस्तत्कार्यंकरवाण्यहम्

ब्रह्मोवाच

पृथिव्यां यानि तीर्थानि दृष्टानिभ्रमतामया । यज्ञार्थं न तु ते तानि पवित्राणिशरीरतः
त्वया देहे पवित्रत्वं प्राप्तं विष्णुप्रसादतः । अतः पवित्रं देहं त्वं यज्ञार्थं देहि मेऽसुर

गयासुर उवाच

धन्योऽहं देवदेवेश यद्देहं प्रार्थ्यते त्वया । पितृवंशः कृतार्थो मे देहे यागं करोषि चेत्
त्वयैवोत्पादितो देहः पवित्रस्तु त्वया कृतः । सर्वेषामुपकारायमयागोऽवश्यंभवत्विति
इत्युक्त्वा सोऽपतद्भूमौश्वेतकल्पेगयासुरः । नैरृतींदिशमाश्रित्यतदाकोलाहलेगिरौ

शिरः कृत्वोत्तरे दैत्यः पादौ कृत्वा तु दक्षिणे ।
ब्रह्मा सम्भृतसम्भारो मानसानृत्विजोऽसृजत् ॥ ३२ ॥

अग्निशर्माणममृतं शौनकं जाञ्जलिं मृदुम् । कुमुथिं वेदकौण्डिल्यंहारीतंकाश्यपंकृपम्
गर्गं कौशिकवासिष्ठौ मुनिंभार्गवमव्ययम् । वृद्धं पाराशरंकण्वंमाण्डव्यंश्रुतिकेवलम्
श्वेतं सुतालं दमनं सुहोत्रं कङ्कमेव च । लौकाक्षिं च महाबाहुं जैगिषव्यं तथैव च ॥
दधिपञ्चमुखं विप्रमृषभं कर्कमेव च । कात्यायनं गोभिलञ्च मुनिमुग्रमहाव्रतम् ॥३७॥
सुपालकं गौतमञ्च तथा वेदशिरोव्रतम् । जटामालिनमव्यग्रं चाटुहासञ्च दारुणम् ॥
आत्रेयं चाप्यङ्गिरसमौपमन्युं महाव्रतम् । गोकर्णं च गुहावासं शिखण्डिनमुमाव्रतम्
एतानन्यांश्च विप्रेन्द्रान्वेधा लोकपितामहः । परिकल्प्याकरोद्यागं गयासुरशरीरके ॥
अग्निशर्माऽपिपञ्चाग्नीन्मुखादेतानथासृजत् । दक्षिणाग्निंगार्हपत्याहवनीयौ तपोव्ययः
सभ्यावसथ्यौ देवर्षेयेषुयज्ञाःप्रतिष्ठिताः । यज्ञास्य च प्रतिष्ठार्थंविप्रेभ्योदक्षिणांददौ
हुत्वापूर्णाहुतिं ब्रह्मा स्नात्वा चावभृथेन तु । यज्ञयूपं सुरैः सार्धं समानीय व्यरोपयत्
ब्रह्मणः सरसां श्रेष्ठे सरस्येवाऽऽश्रितं शुभम् । चलितश्चकितोब्रह्मा धर्मराजमभाषत
जाता गृहे तवशिलासमानीयाविचारयन् । दैत्यस्यशीघ्रंशिरसि तां धारयममाऽऽज्ञया

निश्चलार्थं यमः श्रुत्वाऽधारयन्मस्तके शिलाम् ।
शिलायां धारितायान्तुसशिलश्चाऽसुरो ऽचलत् ॥ ४६ ॥
देवानूचेऽथ रुद्रादीञ्शिलायां निश्चलाः किल ।
तिष्ठन्तु देवाःसकलास्तथेत्युक्त्वा च ते स्थिताः ॥ ४७ ॥
देवाः पादैर्लक्षयित्वा तथाऽपि चलितोऽसुरः ।
ब्रह्माऽथ व्याकुलो विष्णुं गतः क्षीराब्धिशायिनम् ॥
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा नत्वा चाऽऽदृत्य तं प्रभुम् ॥ ४८ ॥

ब्रह्मोवाच

ब्रह्माण्डस्य पते! नाथ! नमामि जगतांपतिम् । गतिंकीर्तिमतांनृणांभुक्तिमुक्तिप्रदायकम्
विष्वक्सेनोऽब्रवीद्विष्णुं देव ! त्वां स्तौति पद्मजः ।

हरिराहाऽऽनय त्वं तं विष्णूक्तः स तमानयत् ॥
अजमूचे हरिः कस्मादागतोऽसि वदस्व तत् ॥ ५० ॥

ब्रह्मोवाच

देवदेव कृते यागे प्रचचाल गयासुरः । शिलायां देवरूपिण्यां न्यस्तायां तस्यमस्तके
रुद्रादिषु च देवेषु संस्थितेष्वसुरोऽचलत् । इदानीं निश्चलार्थं हि प्रसादंकुरुमाधव ॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ह्याकृष्य स्वशरीरतः । मूर्तिं ददौ निश्चलार्थं ब्रह्मणे भगवान्हरिः
आनीयमूर्तिम्ब्रह्माऽपिशिलायांसमधारयत् । तथाऽपिचलितंवीक्ष्यपुनर्देवमथाऽऽह्वयत्

आगत्य विष्णुः क्षीराब्धेः शिलायां संस्थितोऽभवत् ।
जनार्दनाभिधानेन पुण्डरीकेतिनामतः ॥
शिलायां निश्चलार्थं हि स्वयमादिगदाधरः ॥ ५५ ॥

निश्चलार्थंपञ्चधाऽऽसीच्छिलायांप्रपितामहः । पितामहोऽथफल्गीशःकेदारःकनकेश्वरः
ब्रह्मा स्थितः स्वयंतत्रगजरूपीविनायकः । गयादित्यश्चोत्तरार्कोदक्षिणार्कस्त्रिधारविः
लक्ष्मीसीताभिधानेनगौरीचमङ्गलाह्वया । गायत्री चैवसावित्रीत्रिसन्ध्याचसरस्वती
इन्द्रोबृहस्पतिःपूषावसवोऽष्टौमहाबलाः । विश्वेदेवाश्चाऽऽश्विनेयौमारुतोविश्वनायकः

सरक्षोरगगन्धर्वास्तस्थुर्देवाः स्वशक्तिभिः ॥ ५६ ॥

आद्यया गदयाचासौयस्माद्दैत्यःस्थिरीकृतः । स्थितइत्येवहरिणातस्मादादिगदाधरः
ऊचे गयासुरो देवान्किमर्थं वञ्चितोह्यहम् । यज्ञार्थं ब्रह्मणे दत्तं शरीरमलयं मया ॥

विष्णोर्वचनमात्रेण किं न स्यां निश्चलो ह्यहम् ॥ ६१ ॥

यत्सुरैः पीडितोऽत्यर्थं गदया हरिणा तथा । पीडितो यद्यहं देवाःप्रसन्नाःसन्तुसर्वदा
गदाधरादयस्तुष्टाः प्रोचुः सार्धं गयासुरम् । वरं ब्रूहि प्रसन्नाः स्मो देवानूचेगयासुरः
यावत्पृथ्वी पर्वताश्च यावच्चन्द्रार्कतारकाः । तावच्छिलायांतिष्ठन्तुब्रह्मविष्णुमहेश्वराः

अन्ये च सकला देवा मन्नाम्ना क्षेत्रमस्तु वै ॥ ६४ ॥

पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः । तन्मध्ये सर्वतीर्थानि प्रयच्छन्तुहितंनृणाम्
स्नानादितर्पणं कृत्वा पिण्डदानात्फलादिकम् । महात्मनिसहस्रञ्चकुलानांचोद्धरेन्नरः

व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण यूयं तिष्ठत सर्वदा । गदाधरः स्वयंलोकाद्भूयात्सर्वाघनाशनात्
श्राद्धं सपिण्डकं येषां ब्रह्मलोकं प्रयान्तु ते । ब्रह्महत्यादिकं पापंविनश्यतुचसेविनाम्
नैमिषं पुष्करं गङ्गाप्रयागश्चाविमुक्तिकम् । एतान्यन्यानितीर्थानिदिविभुव्यन्तरिक्षतः

समायान्तु सदा नृणां प्रयच्छन्तु हितं सुराः ॥ ६९ ॥

किं बहूक्त्यासुरगणायुष्मास्वेकाऽपिदेवता । चेन्नतिष्ठेदहंचापिसमयःप्रतिपाल्यताम्
गयासुरवचःश्रुत्वा प्रोचुर्विष्णवादयः सुराः । त्वयायत्प्रार्थितंसर्वंतद्भविष्यत्यसंशयम्
अस्मत्पादानर्चयित्वायास्यन्तिपरमांगतिम् । देवैर्दत्तवरोदैत्योहर्षितोनिश्चलोऽभवत्
स्थितेषुचैव देवेषु ब्राह्मणेभ्यो ददावजः । ग्रामांश्च पञ्चपञ्चाशत्पञ्चक्रोशीं गयां तथा

गृहान्कृत्वा ददौ दिव्यान्सर्वोपस्करसंयुतान् ॥ ७३ ॥

कामधेनुं कल्पवृक्षं पारिजातादिकांस्तरून् । महानदीं क्षीरवहां घृतकुल्यास्तथैव च ॥
मधुस्रवां मधुकुल्यांदिव्याज्याढ्यसरांसि च । सुवर्णदीर्घिकाञ्चैवबहूनन्नादिपर्वतान्
भक्ष्यभोज्यफलादींश्च सर्वं ब्रह्मासृजन्ददौ । न याचयध्वंविप्रेन्द्राअन्यानुक्त्वाददावजः
दत्त्वा ययौ ब्रह्मलोकं नत्वा ह्यादिगदाधरम् । धर्मारण्ये तत्रधर्मंयाजयित्वाययाचिरे
धर्मयागे च लोभाद्वै प्रतिगृह्यधनादिकम् । ततो ब्रह्मा समागत्यब्राह्मणांस्ताञ्शशापह

कृतवन्तो यतो लोभं मद्दत्ते वखिलेष्वपि ।

तस्माद्गुणाधिका यूयं भविष्यन्ति(थ)सदा द्विजाः ॥ ७९ ॥

युष्माकं स्याद्वारिवहा नदी पाषाणपर्वताः । नद्यादयो वारिवहा मृन्मयाश्चतथागृहाः
कामधेनुः कल्पवृक्षो मल्लोकमुपतिष्ठताम् । एवं शप्ता ब्रह्मणा ते प्रार्थयन्तोऽब्रुवन्नजम्
त्वया यद्दत्तमखिलं तत्सर्वं शापतो गतम् । जीवनार्थं प्रसादं नो भगवन्कर्तुमर्हसि
तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणान्ब्रह्माप्रोवाचेदंदयान्वितः । तीर्थोपजीविकायूयमाचन्द्रार्कंभविष्यथ

लोकाः पुण्यागयायां ये श्राद्धिनो ब्रह्मलोकगाः ।

युष्मान्ये पूजयिष्यन्ति तैरहं पूजितः सदा ॥ ८४ ॥

आक्रान्तं दैत्यजठरंधर्मेण विरजाद्रिणा । नाभिकूपसमीपे तु देवी या विरजास्थिता
तत्र पिण्डादिकं कृत्वा त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत् । महेन्द्रगिरिणातस्यकृतौपादौसुनिश्चलौ

तत्र पिण्डादिकृत्सप्त कुलान्युद्धरते नरः ॥ ८६ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

धर्माद्विश्वरूपायां धर्मव्रतायाउत्पत्तिस्तस्याअनुरूवरप्राप्तये तपसिस्थितायाधर्मपुत्रस्यमरीचेःसम्भाषणम्

नारद उवाच

कथं शिला समुत्पन्ना यथाऽऽक्रान्तो गयासुरः ।
किं रूपं किं च माहात्म्यं तस्याः किं वद नाम च ॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच

आसीद्धर्मो महातेजाः सर्वविज्ञानपारगः । विश्वरूपा च तत्पत्नी भर्तृव्रतपरायणा
तस्यां धर्मात्समुत्पन्ना कन्याधर्मव्रता सती । रूपयौवनसम्पन्नालक्ष्मीरिवगुणाधिका
तस्यां ये तु गुणा ह्यासंस्तेतिष्ठन्ति जगत्त्रये ' धर्मोधर्मव्रतायास्तुत्रिषुलोकेषुमार्गयन्
नानुरूपं वरं लेभे धर्मोऽथ वरसिद्धये । तपः कुरु वरार्थं त्वं तथेत्युक्त्वा वनं ययौ
कन्या सा च तपस्तेपे सर्वेषां दुष्करञ्च यत् । वायुभक्षा श्वेतकल्पे युगानामयुतंपुरा
ब्रह्मणो मानसः पुत्रो मरीचिर्नाम विश्रुतः । पर्यटन्पृथिवीं सर्वां कन्यारत्नं ददर्श सः
रूपयौवनसम्पन्नां परमेतपसिस्थिताम् । पप्रच्छाऽथमरीचिस्तांकात्वंकस्याऽसितद्वद
रूपेणानेन मां भीरु! विमोहयसि सुव्रते । ब्रह्मात्मजोऽहं विख्यातो मरीचिर्वेदपारगः
मरीचेर्वचनं श्रुत्वा कन्या प्रोवाच तं मुनिम् । अहं धर्मव्रतानाम धर्मपुत्रीतपोऽन्विता
पतिव्रतार्थं विप्रेन्द्र चरामि परमं तपः । धर्मव्रतां मरीचिस्तामुवाच प्रीतिपूर्वकम् ॥
पतिव्रतेक्षया पृथ्वीं विचरामि ह्यहर्निशम् ॥
पतिव्रता दर्शनान्मे भविष्यसि शुभव्रते !। त्वं चेत्पतिव्रता जाता भजे त्वां भज मां वरम् ।

लोके न त्वादृशी कन्या मम तुल्यो न ते वरः ॥ १३ ॥
धर्मव्रते धर्मपत्नी तस्मात्त्वं भव मेऽधुना । धर्मव्रता मुनिं प्राह धर्मं याचय सुव्रत ॥
तच्छ्रुत्वा धर्ममगमन्मुनिं धर्मो ददर्शह । तेजःपुञ्जं घरंनत्वा आसनार्घ्यादिनाऽर्चयत्
किमर्थमागतः पृष्टो मरीचिर्धर्ममब्रवीत् । कन्यार्थं भ्रमता पृथ्वीं दृष्टा ते कन्यका वरा
मह्यं कन्यां च तां देहि श्रेयस्तव भविष्यति ॥ १६ ॥
अर्घ्यादिना समभ्यर्च्य धर्मःप्रोचेतथेति तम् । धर्मव्रतां समानीय दत्तवांस्तां मरीचये
ब्राह्मणाय विवाहेन धनरत्नादिकं ददौ । वरंच दत्तवांस्तस्मै तद्वाक्यं(क्यं)यत्तथाकृतम्
अग्निहोत्रेण सहितां स्वाश्रमं तां द्विजोऽनयत् ॥ १८ ॥
रेमेमुनिस्तयासाँधंयथाविष्णुःश्रियासह । पार्वत्याचयथाशम्भुःसरस्वत्या यथा ह्यजः
जज्ञे पुत्रशतं तस्यां मरीचेर्विष्णुनोपमम् । मरीचिः फलपुष्पार्थं वनं गत्वा समागतः
श्रान्तः कदाचित्तां पत्नीमुवाचेतिपतिव्रताम् । भुक्त्वातु शयनस्थस्यपादसम्वाहनं कुरु
धर्मव्रता तथेत्युक्त्वा शयनस्थस्य सा मुनेः । पादसम्वाहनं चक्रे घृतेनाभ्यज्य तत्परा
निद्रायमाणेऽथ मुनौ ब्रह्मा तं देशमागतः । इयेष दृष्ट्वा ब्रह्माणं मनसाऽर्चयितुं प्रभुम्
पादसम्वाहनं कुर्यांकिंपूज्योऽयंजगद्गुरुः । इत्याकुलासमुत्तस्थौमत्वासातंगुरोर्गुरुम्
अर्घ्यपाद्यादिकं दत्त्वा ब्रह्माणं समपूजयत् । सत्कृतायांतुशय्यायां विश्राममकरोदजः
एतस्मिन्नन्तरे भर्ता समुत्तस्थौ स्वतल्पतः । धर्मव्रतामपश्यन्सविप्रः क्रुद्धः शशापताम्
पादसम्वाहनं त्यक्त्वा यस्मादाज्ञां विहाय मे ।
गताऽन्यत्र ततः पापाँच्छापदग्धा शिला भव ॥ २७ ॥
भर्त्राधर्मव्रता शप्ता मरीचिंप्राह सा रुषा । शयानेत्वयि सम्प्राप्ते ब्रह्मा त्वज्जनको गुरुः
त्वयोत्थाय हि कर्तव्यंस्वगुरोः पूजनंसदा । मयातु धर्मचारिण्या तव कार्यं कृते मुने
अदोषाऽहंयतःशप्तातस्माच्छापंददामिते । त्वं च शापं महादेवाद्भर्तः प्राप्स्यस्यसंशयम्
व्याकुलं तं पतिं दृष्ट्वा व्याकुलाऽगात्प्रजापतिम् ।
नत्वा शयानं ब्रह्माणमग्निं प्रज्वाल्य चेन्धनैः ॥ ३१ ॥
गार्हपत्ये स्थिता चक्रे तपः परमदुष्करम् । तथा शप्तो मरीचिश्च तपस्तेपे सुदारुणम्

तिव्रतायास्तपसा मरीचेस्तपसा तथा । इन्द्रादयश्च सन्तप्ता गतास्ते शरणं हरिम्
बुः क्षीराम्बुधौ सुप्तं सन्तप्तास्तपसा हरे । पतिव्रतायाश्च मुनेस्त्रैलोक्यं रक्ष केशव
न्द्रादीनां वचः श्रुत्वा विष्णुर्धर्मव्रतांययौ । एतस्मिन्नेव काले तु प्रबुद्धो भगवानजः

ऊचुर्धर्मव्रतां देवा अग्निस्थां तां सकेशवाः ॥ ३५ ॥

ग्निमध्ये तपः कर्तुं कस्य शक्तिः पतिव्रते । त्वया कृतं तत्परमं सर्वलोकभयङ्करम् ॥
रं वरयधर्मज्ञे अस्मत्तोयदभीप्सितम् । विष्ण्वादीनांवचःश्रुत्वादेवान्धर्मव्रताऽब्रवीत्
र्तृशापमशक्ताऽहं निवर्तयितुमोजसा । दत्तो मरीचिना शापो मह्यं स ह्यपगच्छतु ॥
र्मव्रतावचः श्रुत्वा प्रोचुरेतां सुराः पुनः । धर्मव्रते धर्मपुत्रि शापोऽयं परमर्षिणा ॥
त्तस्ते न निराकर्तुं शक्यो देवद्विजातिभिः । तस्मादन्यंवरंब्रूहियतोधर्मस्यसंस्थितिः
वेद्वै त्रिषु लोकेषु वेदोक्तस्य शुभव्रते । देवानां वचनं श्रुत्वा देवान्धर्मव्रताऽब्रवीत् ॥
र्तुः शापान्मोचयितुं न शक्ताश्च यदाऽमराः । मह्यं वरं प्रयच्छध्वं एवंविधमनुत्तमम्
शिलाऽहं हि भविष्यामिब्रह्माण्डेपावनीशुभा । नदीनदसरस्तीर्थदेवादिभ्योऽतिपावनी

ऋष्यादिभ्यो मुनिभ्यश्च मुख्यदेवेभ्य एव च ।
त्रैलोक्ये यानि लिङ्गानि व्यक्ताव्यक्तात्मकान्यपि ॥
तानि तिष्ठन्तु मद्देहे तीर्थरूपेण सर्वदा ॥ ४४ ॥

तीर्थान्यपिच सर्वाणि नक्षत्रप्रमुखास्तथा । तिष्ठन्तु देवाः सकला देव्यश्च मुनयस्तथा
शिलास्थितेषुतीर्थेषु स्नात्वाकृत्वाऽथतर्पणम् । श्राद्धंसपिण्डकंयेषांब्रह्मलोकंप्रयान्तुते
गदाधरो दृश्यतीर्थं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम । मुक्तिर्भवेत्पितॄणां च बहूनां श्राद्धतः सदा

जरायुजाण्डजा वाऽपि स्वेदजा वाऽपि चोद्भिदः ।
त्यक्त्वा देहं शिलायां ते यान्तु विष्णुस्वरूपताम् ॥ ४८ ॥

त्यक्त्वा देहं शिलायां ते यान्तु विष्णुस्वरूपताम् —

यथार्चिते हरौ सर्वे यज्ञाःपूर्णाभवन्ति हि । तथा श्राद्धं तर्पणं च स्नानंचाक्षयमस्त्विह
मम देहे सुरेशानां ये जपन्ति श्रुतादिकम् । अचिरेणापितेसिद्धाःसिद्धिभाजोभवन्तुवै
पितॄणां कुलसाहस्रमात्मनासहितंनरः । श्राद्धादिना समुद्धृत्यविष्णुलोकंनयेद्ध्रुवम्
यावत्योहिसरिच्छ्रेष्ठागङ्गाद्याश्चह्रदाःशुभाः । समुद्राद्याःसरोमुख्यामानसाद्याःसुरेश्वराः

नृणां श्राद्धं विदधतो मुक्तये निवसन्तु मे ॥ ५२ ॥

शरीरेण समायान्तु कचिन्नोयान्तुदेवताः । एकोविष्णुस्त्रिधामूर्तिर्यावत्सङ्कीर्त्यतेबुधैः तावच्छिलायां सर्वाणि तीर्थानिसहदैवतैः । सदा तिष्ठन्तुमुनयो गन्धर्वाणांगणाश्चये यावत्तिष्ठतिब्रह्माण्डं तावत्तिष्ठतु वै शिला । मम देहेऽश्मरूपे च ये जपन्ति तपन्ति च जुहोत्यग्नौ च तेषां वै तदक्षय्योपतिष्ठताम्(?)। अक्षयंतुभवेच्छ्राद्धंजपहोमतपांसि च

शिलापर्वतरूपेण मयि तिष्ठत सर्वदा ॥ ५६ ॥

पतिव्रतावचःश्रुत्वादेवाःप्रोचुःपतिव्रताम् । त्वया यत्प्रार्थितं सर्वं तद्भविष्यत्यसंशयम्

गयासुरस्य शिरसि भविष्यसि यदा स्थिरा ।

तदा पादादिरूपेण स्थास्यामस्त्वयि सुस्थिराः ॥

वरं शिलायै दत्त्वैवं तत्रैवान्तर्दधुः सुराः ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

अष्टोत्तरशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्ये रामतीर्थमहत्त्ववर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

वक्ष्ये शिलाया माहात्म्यं श्रृणु नारद ! मुक्तिदम् ।

यस्या गायन्ति देवाश्च माहात्म्यं मुनिपुङ्गवाः ॥ १ ॥

शिला स्थिता पृथिव्यां सा देवरूपाऽतिपावनी ।

विचित्राख्यं शिलातीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ २ ॥

तस्या संस्पर्शनाल्लोकाः सर्वे हरिपुरं ययुः । शून्ये लोकत्रयेजाते शून्यायमपुरी ह्यभूत्

म इन्द्रादिभिर्गत्वा ऊचे ब्रह्माणमद्भुतम् । अधिकारं गृहाणाऽथ यमदण्डं पितामह
यममूचे ततो ब्रह्मा स्वगृहे धारयस्व ताम् । ब्रह्मोक्तो धर्मराजस्तु गृहेतां समधारयत्
यमोऽधिकारंस्वंचक्रे पापिनांशासनादिकम् । एवंविधागुरुतरा शिलाजगति विश्रुता
यथा ब्रह्मा यथा विष्णुर्यथा देवो महेश्वरः । ब्रह्माण्डे च यथा मेरुस्तथेयं देवरूपिणी
गयासुरस्य शिरसि गुरुत्वाद्धारिता यतः । अतः पवित्रयोर्योगः पितृणांमोक्षदायकः
पवित्रयोर्द्वयोर्योगे हयमेधमजोऽकरोत् । भागार्थमागतान्दृष्ट्वाविष्णवादीनब्रवीच्छिला
शिलास्थितिप्रतिज्ञांतुकुर्वन्तुपितृमुक्तये ।तथेत्युक्त्वाशिलायांतेदेवाविष्णवादयःस्थिताः
शिलारूपेण मूर्त्या च पदरूपेण देवताः । मूर्तामूर्तस्वरूपेण स्थिताः पूर्वप्रतिज्ञया ॥११

दैत्यस्य मुण्डपृष्ठे तु यस्मात्सा संस्थिता शिला ।
तस्मात्स मुण्डपृष्ठाद्रिः पितृणां ब्रह्मलोकदः ॥ १२ ॥

आच्छादितःशिलापादःप्रभासेनाद्रिणायतः। भासितोभास्करेणेतिप्रभासःपरिकीर्तितः
प्रभासंहिविनिर्भिद्य शिलाङ्गुष्ठो विनिर्गतः । अङ्गुष्ठोत्थित ईशोऽपिप्रभासेशःप्रकीर्तितः
शिलाङ्गुष्ठैकदेशो यः साचप्रेतशिलास्मृता । पिण्डदानाद्यतस्तस्यांप्रेतत्वान्मुच्यतेनरः
महानदीप्रभासाद्र्योः सङ्गमेस्नानकृन्नरः । रामोदेव्यासह स्नातो रामतीर्थं ततः स्मृतम्
प्रार्थितोऽत्र महानद्या राम! स्नातो भवेति च । रामतीर्थंततोभूत्वात्रिषुलोकेषुविश्रुतम्
जन्मान्तरशतं साग्रं यत्कृतं दुष्कृतं मया । तत्सर्वं विलयं यातु रामतीर्थाभिषेचनात्
मन्त्रेणाऽनेनयःस्नात्वाश्राद्धंकुर्वीतमानवः । रामतीर्थेपिण्डदस्तुविष्णुलोकंप्रयात्यसौ

तथेत्युक्त्वा स्थितो रामः सीतया भरताग्रजः ॥ १६ ॥

राम राम महाबाहो देवानामभयङ्कर । त्वां नमस्येऽत्र देवेशं मम नश्यतु पातकम् ॥

मन्त्रेणानेन यः स्नात्वा श्राद्धं कुर्यात्सपिण्डकम् ।
प्रेतत्वात्तस्य पितरो विमुक्ताः पितृतां ययुः ॥ २१ ॥

पापं नाशय मे देवो मनोवाक्कायकर्मजम्
आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च । तं च शम्भुं नमस्कृत्य कुर्याद्यमबलिं ततः
नमस्कृत्य प्रभासेशं भासमानं शिवंव्रजेत् । पितृपिण्डादिकंकृत्वा रामंसंस्थाप्य तत्र च
रामे घनं गते शैलमागत्यभरतःस्थितः ।

रामंसीतांलक्ष्मणंच मुनीन्स्थापितवान्प्रभुः । भरतस्याऽऽश्रमेपुण्येनित्यंपुण्यतमैर्वृतम्
मतङ्गस्य पदं तत्र दृश्यते सर्वमानुषैः ॥ २५ ॥
स्थापितं धर्मसर्वस्वंलोकस्याऽस्य निदर्शनात् । मतङ्गस्यपदेश्राद्धीसर्वांस्तारयतेपितॄन्
रामतीर्थे नरः स्नात्वा रामं सीतां समर्च्यच । रामेश्वरं प्रणम्याऽथ न देही जायतेपुनः
शिलाया जघनं भूयः समाक्रान्तं नगेन तु । धर्मराजेन सम्प्रोक्तोनगच्छेति नगःस्मृतः
यमराजधर्मराजौ निश्चलार्थं व्यवस्थितौ । ताभ्यांबलिं प्रयच्छामि पितॄणां मुक्तिहेतवे
द्वौ श्वानौश्यामशबलौवैवस्वतकुलोद्भवौ । ताभ्यांबलिंप्रयच्छामिस्यातामेतावहिंसकौ
ऐन्द्रवारुणवायव्ययाम्यनैर्ऋत्यसंस्थिताः । वायसाःप्रतिगृह्णन्तुभूमौपिण्डंमयाऽर्पितम्*
शिलाया दक्षिणे हस्ते स्थापितः कुण्डपर्वतः । तिमिरादित्यईशानभर्गावेते महेश्वराः
वह्निर्द्वौ वरुणौ रुद्राश्चत्वारः पितृमोक्षदाः । भरताश्रममासाद्य तान्नमेत्पूजयेन्नरः ॥
पापेभ्यश्चोपपापेभ्यो मुच्यते पितृभिः सह । यत्र कुत्राऽपि देवर्षे भरतस्याऽऽश्रमेनरः
स्नातः श्राद्धादिकं कुर्यात्तत्कल्पोऽपि न हीयते ॥ ३४ ॥
गयायां चाऽक्षयं श्राद्धं जपहोमतपांसि च । सर्वमानन्त्यमाहुर्वै यद्दत्तं भरताश्रमे॥३५
चतुर्युगस्वरूपेणचतस्रोरविमूर्तयः । दृष्टाःस्पृष्टाःपूजितास्ताःपितॄणांमुक्तिदाय(यि)काः
मुक्तिर्वामन इत्येव तारकाख्यो विधिःपरः । संसारार्णवतप्तानांनावावेतौ सुरेश्वरौ
तारकं ब्रह्म विश्वेषां मृतानां जीवतामिदम् ॥ ३७ ॥
त्रिविक्रमं च ब्रह्माणं यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् । पितृभिःसहधर्मात्मासयातिपरमांगतिम्
शिलाया वामपादेऽपि तथाऽभ्युद्यन्तको गिरिः ।
स्थापितः पिण्डदस्तत्र पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ३९ ॥

---

* अतोऽग्रे मुद्रितपुस्तकपाठेऽधिकाःश्लोकाउपलभ्यन्ते—
यमोऽसि यमदूतोऽसिवायसोऽसि, महाबल । सप्तजन्मकृतंपापंबलिंभुक्त्वा विनाशय
रामे वनंगते शैलमागत्य भरतेन हि । पितुः पिण्डादिकंकृत्वा रामेशःस्थापितोऽत्रवै
स्नात्वा नत्वाचरामेशंरामसीतासमन्वितम् । तत्रश्राद्धंसपिण्डंचकृत्वाविष्णुपुरंव्रजेत्
पितृभिः सह धर्मात्मा कुलानां च शतैः सह ॥ ३ ॥ इति ।

मिषारण्यपार्श्वेतु ईये ब्रह्मा सुरैः सह। मुख्यसञ्ज्ञं हि तत्तीर्थं देवास्तत्रपदे स्थिताः
षु तेषु पदेष्वेव तीर्थेषु मुनिसत्तम। यत्किञ्चिदशुभं कर्म तत्प्रणश्यति नारद ॥४१
नैमिषवनंपुण्यं सेवितं पुण्यपौरुषैः। तत्रव्यासःशुकःपैलःकण्वोवेधाः शिवो हरिः॥
नां दर्शनमात्रेण मुच्यते पातकैर्नरः। वामहस्ते शिलायास्तु तथाचोद्यन्तको गिरिः
पर्वतः समानीतो ह्यगस्त्येन महात्मना ×। तत्र ब्रह्मा हरश्चैव तपश्चोग्रञ्च चक्रतुः॥

अतोऽग्रेमुद्रितपुस्तकपाठेऽधिकउपलभ्यते—
*थापितः पिण्डदस्तत्र पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्। कुण्डश्चोद्यन्तकस्तत्रआत्मनस्तपसाकृतः
ह्मणा तत्र सावित्रीकुमाराभ्यांसहस्थितम्। हाहाहूहूप्रभृतयो गीतिनादं प्रचक्रिरे॥
कुण्डमुद्यन्तकं तत्र गीतवादित्रको गिरिः। अगस्त्योभगवान्यत्र तपश्चोग्रं चकार ह
ब्रह्मणस्तु वरंलेभे माहात्म्यं भुविदुर्लभम्। लोपामुद्रांतथाभार्यां पितृणांपरमांगतिम्
स्नातस्तत्र च मध्याह्ने सावित्रींसमुपास्यच। कोटिजन्म भवेद्विप्रोधनाढ्यो वेदपारगः

अगस्त्यस्य पदे स्नात्वा पिण्डदो ब्रह्मलोकगः।
पितृभिः सह धर्मात्मा पूज्यमानो दिवौकसाम्॥ ९॥

पिण्डदः पिण्डदानस्थिोनिसंकटात् ...

ब्रह्मयोनिंप्रविश्याऽथ निर्गच्छेद्यस्तुमानवः। परं ब्रह्म स यातीहविमुक्तोयोनिसंकटात्
नत्वागयाकुमारञ्च ब्राह्मण्यं लभते नरः। सोमकुण्डाभिषेकीच सोमलोकंनयेत्पितॄन्
बलिः काकशिलायान्तु काकेभ्यऋणमोक्षदः। स्वर्गद्वारेश्वरंनत्वास्वर्गाद्ब्रह्मपुरंव्रजेत्
पिण्डदोव्योमगङ्गायांनिर्मलःस्वर्नयेत्पितॄन्। शिलायादक्षिणेहस्तेभस्मकूटमधारयत्
भस्मकूटाद्रिर्भस्मस्नातश्च नारद! ॥ १०॥

ततोऽसौ भस्मकूटाद्रिर्भस्मस्नातश्च नारद! ॥ १०॥ पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन्
वटो वटेश्वरस्तत्र स्थितश्च प्रपितामहः। मतङ्गस्य पदे मुन्ये पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन्
तस्याग्रे रुक्मिणींकुण्डं पश्चिमे कपिला नदी। कपिलेशो नदीतीरेह्यमासोमसमागमे
कपिलायां नरःस्नात्वाकपिलेशंनमेच्च यः। श्राद्धदःस्वर्गगामीस्यान्माहेशीकुण्डएव च
गौरी च मङ्गला तत्र सर्वसौभाग्यदायिनी। जनार्दनो भस्मकूटेतस्यहस्ते च पिण्डदः

मन्त्रेण चाऽऽत्मनोऽन्येषां सव्यहस्ते तिलैर्विना।

तत्रागस्त्यस्य हि परंकुण्डंत्रैलोक्यदुर्लभम् । यत्रमुन्यष्टकंसिद्धंतपस्तप्त्वाशिवंगतम्
कुण्डे मुन्यष्टकं नत्वा पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ४५ ॥
अगस्त्येनाऽथदेवर्षे उदयाद्रेर्महात्मना । शिलायावामहस्तेऽपिस्थापितोगिरिराट्शुभः
वादित्राद्यैर्दिव्यगीतैराद्यो वादित्रको गिरिः ॥ ४६ ॥

जीवतां दधिसंमिश्रं सर्वे ते विष्णुलोकगाः ॥ १५ ॥
एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन! । देहि देव गयाशीर्षे तस्मै तस्मिन्मृतेतुतम्
एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन । गयाशीर्षे त्वया देयोमह्यंपिण्डो मृतेमयि
जनार्दन नमस्तुभ्यं नमस्ते पितृरूपिणे । पितृपते नमस्तुभ्यं नमस्ते मुक्तिहेतवे ॥
गयायांपितृरूपेण स्वयमेव जनार्दन । लक्ष्मीकान्त नमस्तेऽस्तु नमस्ते पितृमोक्षद ॥
तंध्यात्वापुण्डरीकाक्षंमुच्यतेचऋणत्रयात् । पुण्डरीकाक्षमभ्यर्च्यस्वर्गंप्रापुर्नराध्रुवम्
चामजानुतुसंपात्यनत्वाभीमोजनार्दनम् । श्राद्धंसपिण्डकंकृत्वाभ्रातृभिर्विष्णुलोकगः
शिलाया दक्षिणे पादे प्रेतकूटो गिरिर्धृतः । धर्मराजेन पादाभ्यां गिरिः प्रेतशिलाश्रयः
पादेन दूरे निक्षिप्तः शिलायाः पाथभारतः । प्रेतभावस्वरूपेण करग्रहणकानने ॥२३॥
पृष्ठे स्थिताश्च बहवोविघ्नकारिण एव ते । श्राद्धादिकरणान्नृणांतीर्थंपितृविमुक्तिदम्
गतः शिलाङ्गसंस्पर्शात्प्रेतकूटः पवित्रताम् । प्रेतकूटश्चतत्राऽऽस्तेदेवास्तत्रपदेस्थिताः
तत्र श्राद्धादिकं कृत्वा प्रेतत्वान्मोचयेत्पितॄन् ॥ २५ ॥
शिलासमीपे ये विप्र प्रेतरूपा भयानकाः । सर्वे ते यमलोके तु पृथिव्यां पर्यटन्ति वै
गयासुरस्य शिरसि पुण्ये प्रेतादिवर्जिते । स्थिता ब्रह्मादयोदेवागतःसोऽपिपवित्रताम्
कीकटेषु गया पुण्या पुण्यंराजवनंगृहम् । च्यवनस्याऽऽश्रमःपुण्योनदीपुण्यापुनःपुनः
वैकुण्ठे हेमदण्डश्च हेमकूटो गिरिस्तथा । श्राद्धपिण्डादिकृत्तत्र पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥
शिला दक्षिणपादे तु गृध्रकूटो गिरिर्धृतः । धर्मराजेन सुस्थैर्यकरणाय सुपावनः ॥
गृध्ररूपेण तत्राऽथ तपः कृत्वा महर्षयः । विमुक्तवा गृध्रकूटोऽयं तत गृध्रेश्वरः स्थिरः
तत्र गृध्रेश्वरं दृष्ट्वा यान्ति शम्भुप्रदं नराः । तत्र गृध्रवटं नत्वा प्राप्तकामो दिवंव्रजेत्

विद्याधरो नामगन्धर्वाप्सरसांगणैः । समेतोऽद्यापि गीतानिदिव्यानिसहगीयते
हतश्च सुनीथश्च शैलूजो मोहनोत्तमः । पर्वतो नारदध्यानी संगाती पुष्पदन्तकः ॥
हाहाहूहूप्रभृतयो गीतदानं प्रचक्रिरे ॥ ४८ ॥
था चित्ररथो नाम सर्वगन्धर्वसंवृतः । गायन्ति मधुराण्येव गीतान्यद्रौमहोत्सवम्
तः स पर्वतो देवैः सेव्यतेऽद्यापि नित्यशः । धर्मजास्तत्रदेवेशोहरोभस्माङ्गरागवान्
र्वत्या सहितो रुद्रः पर्वते गीतनादिते । मोदते पूजितो ध्येयः पितॄणांपरमांगतिम्
यायां परमात्मा हि गोपतिर्वा गदाधरः । हीयते वैष्णवी माया तथारुद्रार्चयामुने
शिलाया दक्षिणे हस्तेभस्मकूटोगिरिर्धृतः । धर्मराजेनतत्राऽऽस्तेअगस्त्यःसहभार्यया
गस्त्यस्यपदे स्नातः पिण्डदो ब्रह्मलोकगः । ब्रह्मणस्तु वरं लेभेमाहात्म्यंभुविदुर्लभम्
लोपामुद्रां तथा भार्यां पितॄणां परमां गतिम् । तत्रागस्त्येश्वरं दृष्ट्वामुच्यतेब्रह्महत्यया
अगस्त्यञ्च सभार्यं च पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् । दण्डिनाऽथ तपस्तेपेसीताद्रेर्दक्षिणेगिरौ
वटो वटेश्वरस्तत्र स्थितश्च प्रपितामहः । तदग्रे रुक्मिणीकुण्डं पश्चिमे कपिलानदी ॥
कपिलेशो नदीतीरे अमासोमसमागमे ॥ ५७ ॥
कपिलायां नरः स्नात्वाकपिलेशंसमर्च्य च । कृतेश्राद्धेपिण्डदानेपितरोमोक्षमाप्नुयुः

माहेश्वरीधारापिण्डदःस्वर्नयेत्पितॄन्
तत्र गृध्रगुहायाञ्चपिण्डदःशिवलोकभाक् । तत्र माहेश्वरीधारापिण्डदःस्वर्नयेत्पितॄन्
मूलक्षेत्रं सरस्तत्र पिण्डदो ब्रह्मलोकभाक् । ऋणमोक्षं पापमोक्षं शिवंदृष्ट्वाशिवंव्रजेत्
आदिपालेन गिरिणा समाक्रान्तं शिलोदरम् ।
यत्राऽऽस्ते गजरूपेण विघ्नेशो विघ्ननाशनः ॥
नाभौ च पिण्डदो यस्तु पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ३५ ॥
नितम्बे मुण्डपृष्ठस्य देवदारुवनं त्वभूत् । मुण्डपृष्ठेऽरविन्दाद्रिं दृष्ट्वा पापं विनाशयेत्
क्रौञ्चरूपेणसंविप्रोमुनिस्तत्रतपोऽकरोत् । तस्यपादाङ्कितोयस्मात्क्रौञ्चपादःप्रकीर्तितः
स्नातो जलाशये तत्र नयेत्स्वर्गंकुलत्रयं । शिलायांव्यक्तरूपेणव्यक्ताव्यक्तात्मनास्थितः
लक्ष्मीशो विबुधैः सार्धं तस्माद्देवमयी शिला ॥ इति ।

अग्निधारा गिरिवरादागतोऽन्तकादनु । तत्र सारस्वतं कुण्डं सरस्वत्या प्रकल्पितम्
शुक्रस्तत्र सुतैः सार्धं स(ष)ण्डामर्कादिभिः प्रभुः । तत्रतत्रमुनीन्द्राणांपदेषुमुनिसत्तम
श्राद्धपिण्डादिकृत्स्नातः पितॄंस्तारयते नरः ॥ ६० ॥
शिलाया वामहस्तेऽपि गृध्रकूटो गिरिर्धृतः । गृध्ररूपेण संसिद्धास्तपस्तप्त्वामहर्षयः
अतो गिरिर्गृध्रकूटस्तत्र गृध्रेश्वरः स्थितः । दृष्ट्वा गृध्रेश्वरं नत्वा यायाच्छम्भोःपदंनरः
तत्र गृध्रे गृहायाञ्च पिण्डदः शिवलोकभाक् । तत्र गृध्रेवटंनत्वाप्राप्तकामोदिवंव्रजेत्
ऋणमोक्षं पापमोक्षं शिवं दृष्ट्वा शिवं व्रजेत् ।
शूलक्षेत्रं च तत्राऽऽस्ते पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन् ॥ ६४ ॥
आदिपालेनगिरिणासमाक्रान्तंशिलोदरम् । तत्राऽऽस्तेगजरूपेणविघ्नेशोविघ्ननाशनः
तं दृष्ट्वा मुच्यते विघ्नैः पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ६५ ॥
नितम्बे मुण्डपृष्ठस्य देवदारुवनं त्वभूत् । मुण्डपृष्ठारविन्दाद्री दृष्ट्वा पापं विनाशयेत॥
गयानाभौ सुषुम्नायां पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन् ॥ ६६ ॥
शिलाया वामपादे तु स्थापितः प्रेतपर्वतः । धर्मराजेन पापेभ्यो गिरिः प्रेतशिलाह्वयः
पादेन दूरे निक्षिप्तः शिलायांःपादभारतः । गतः शिलायाः संसर्गात्प्रेतकूटःपवित्रताम्
प्रेतकुण्डं च तत्राऽऽस्ते देवास्तत्र पदे स्थिताः ।
तत्र कुण्डादिकं कृत्वा प्रेतत्वान्मोचयेत्पितॄन् ॥ ६६ ॥
पृथक्स्थिताश्च बहवोविघ्नकारिण एव ते । श्राद्धादिकारिणांनॄणांतीर्थेपितृविमुक्तये
प्रेता धानुष्करूपेण करग्रहणकारकाः ॥ ७० ॥
पादाङ्कितां मुण्डपृष्ठां महादेवनिवासिनीम् । तां दृष्ट्वा सर्वलोकश्चमुक्तःपापोपपातकैः
गयाशिरसि पुण्ये च सर्वपापविवर्जिते । प्रेतादिवर्जितं यस्मात्ततोऽतिपावनं वरम्
कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहंवनम् । च्यवनस्याऽऽश्रमं पुण्यं नदीपुण्यापुनःपुनः
वैकुण्ठो लोहदण्डश्च गृध्रकूटश्च शोणकः । अत्र श्राद्धादिना सर्वान्पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्
क्रौञ्चरूपेण हि मुनिर्मुण्डपृष्ठे तपोऽकरोत् ।
तस्य पादाङ्कितो यस्मात्क्रौञ्चपादस्ततः स्मृतः ॥ ७५ ॥

नातोजलाशयेतत्रनयेत्स्वर्गंस्वकंकुलम् । वलिःकाकशिलायाञ्चकाकेभ्यःऋणमोक्षदः
गुण्डपृष्ठस्य सानौ हि लोमशो लोमहर्षणः । द्वावेतौ परमं तप्त्वातपःसिद्धिपरांगतौ
आहूतास्तु सरिच्छ्रेष्ठा लोमशेन महानदी । शरावती वेत्रवती चन्द्रभागासरस्वती ॥
कावेरी सिन्धुरीरा च चन्दना च सरिद्वरा । वाशिष्ठी सरयूर्गङ्गायमुनागण्डकीन्दिरा
महावैतरणीनाम्नानिक्षराचदिवौकसः । सावव्यलकनन्दा(?) च उदीचीकनकाह्वया
कौशिकी ब्रह्मदा ज्येष्ठासर्वस्याघविमोचिनी । कृष्णवेण्याचर्मवतीद्वेनद्यौमुक्तिदायिके
आहूते सरितां श्रेष्ठे लोमहर्षेण साहसात् । तपसस्तु प्रभावेण नर्मदा मुनिपुङ्गव ॥

तासु सर्वासु यः स्नात्वा पिडदः स्वर्नयेत्पितॄन् ॥ ८० ॥

ब्रह्मयोनिं प्रविश्याऽथनिर्गच्छेद्यस्तुमानवः । परं ब्रह्म स यातीहविमुक्तोयोनिसंकटात्
निक्षरायांपुष्करिण्यांस्नातःश्राद्धादिकंनरः । कुर्यात्क्रौञ्चपदेदिव्येनियमाद्वासरत्रयम्
[श्राद्धं सपिण्डकंकृत्वा पितॄन्ब्रह्मपुरंनयेत् । जनार्दनायमेषाय समभ्यर्च्य यथाविधि]

सर्वान्पितॄन्नयेत्स्वर्गं पञ्च पापिन एव च ॥ ८४ ॥

जनार्दनोभस्मकूटेतस्यहस्तेतुपिण्डदः । आत्मनोऽप्यथवाऽन्येषांसव्येनापितिलैर्विना

जीवतां दधिसंमिश्रं सर्वे ते विष्णुलोकगाः ॥ ८५ ॥

यस्तु पिण्डो मया दत्तस्तवहस्तेजनार्दन । यदुद्दिश्यत्वयादेयस्तस्मिन्पिण्डोमृतेप्रभो
एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन । अन्तकाले गते मह्यं त्वया देयो गयाशिरे
जनार्दन नमस्तुभ्यं नमस्ते पितृमोक्षद । पितृपदे नमस्तेऽस्तु नमस्ते पितृरूपिणे ॥
गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः । तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात्
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ऋणत्रयविमोचक । लक्ष्मीकान्त नमस्तेऽस्तु पितॄणांमोक्षदोभव
वामजानुंसुसंपात्यनत्वाभीमोजनार्दनम् । श्राद्धंसपिण्डकंकृत्वाभ्रातृभिर्ब्रह्मलोकभाक्

पितृभिः सह धर्मात्मा कुलानां च शतेन च ॥ ६१ ॥

शिलायांव्यक्तरूपेणव्यक्ताव्यक्तात्मनास्थितः।लक्ष्मीशोविबुधैःसार्धंतस्माद्देवमयीशिला
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नामाष्टोत्तरशततमोऽध्यायः

———

नवाधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच

कथंव्यक्तस्वरूपेणस्थितश्चाऽऽदिगदाधरः।कथंव्यक्तस्वरूपेणव्यक्ताव्यक्तात्मनास्थितः
कथं गदा समुत्पन्ना यथा ह्यादिगदाधरः। गदालोलंकथंचाऽऽसीत्सर्वपापक्षयङ्करम्

सनत्कुमार उवाच

गदो नामासुरोह्यासीद्वज्राद्वज्रतरोदृढः। प्रार्थितोब्रह्मणेप्रादात्स्वशरीरास्थिदुस्त्यजम्
ब्रह्मोक्तोविश्वकर्माऽपिगदांचक्रेऽद्भुतां तदा। तदस्थिवज्रनिष्पेषैःकुन्दैःस्वर्गेह्यधारयत्
अथ कालेन महता मनौ स्वायम्भुवे क्वचित्। हेतीरक्षो ब्रह्मपुत्रस्तपस्तेपे सुदारुणम्
दिव्यवर्षसहस्राणां शतं वायुमभक्षयत्। उन्मुखश्चोर्ध्वबाहुश्च पादाङ्गुष्ठभरेण ह ॥६॥
एकेनातिष्ठदव्यग्रः शीर्णपर्णानिलाशनः। ब्रह्मादींस्तपसा तुष्टान्वरं वव्रे वरप्रदान्॥
देवैर्दैत्यैश्च शस्त्रास्त्रैर्विविधैर्मनुजादिभिः। कृष्णेशानादिचक्राद्यैरवध्यः स्यां महाबलः
तथेत्युक्त्वाऽन्तर्हितास्ते हेतिर्देवानथाजयत्। इन्द्रत्वमकरोद्धेतिभीता ब्रह्महरादयः॥
हरिं ते शरणं जग्मुरूचुर्हेतिं जहीति तान्। ऊचे हरिरवध्योऽयं हेतिर्देवासुरैः सुराः

महास्त्रं मे प्रयच्छध्वं हेतिं हन्मि हि येन तम्।
इत्युक्तास्ते ततो देवा गदां तां हरये ददुः ॥ ११ ॥

दधार तां गदामादौ देवैरुक्तो गदाधरः। गदया हेतिमाहत्य देवैः स त्रिदिवं ययौ
गदामादाववष्टभ्यगयासुरशिरःशिलाम्। निश्चलार्थंस्थितोयस्मात्तस्मादादिगदाधरः
शिलापर्वतरूपेण व्यक्त आदिगदाधरः। शिलासौ मुण्डपृष्ठाद्रिः प्रभासोनामपर्वतः॥
उद्यन्तो गीतनादश्च भस्मकूटोगिरिर्महान्। गृध्रकूटःप्रेतकूटश्चाऽऽदिपालोऽरविन्दकः

पञ्चलोकः सप्तलोको वैकुण्ठो लोहदण्डकः।
क्रौञ्चपादोऽक्षयवटः फल्गुतीर्थं मधुश्र(स्र)वा ॥ १६ ॥

ऊचुस्तं वासुदेवाद्याः किमर्थंतप्यते त्वया । सन्तुष्टाःस्वागताःसर्वे वरं ब्रूहिगयासुर!

गयासुर उवाच

यदि तुष्टाः स्थ मे देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सर्वदेवद्विजातिभ्योयज्ञतीर्थशिलोच्चयात्

देवेभ्योऽतिपवित्रोऽहमृषिभ्योऽपि शिवाव्ययात् ।

मन्त्रेभ्यो देवदेवीभ्यो योगिभ्यश्चापि सर्वशः ॥ १७ ॥

न्यासिभ्यश्चापि कर्मिभ्यो धर्मिभ्यश्च तथा पुनः ।

ज्ञ(य)तिभ्योऽतिपवित्रेभ्यः पवित्रः स्यां सदा सुराः ! ॥ १८ ॥

पवित्रमस्तु तं देवा दैत्यमुक्त्वा ययुर्दिवम् । दैत्यं दृष्ट्वा च स्पृष्ट्वा च सर्वे हरिपुरंययुः

शून्यं लोकत्रयं जातं शून्या यमपुरी ह्यभूत् । यमइन्द्रादिभिःसार्धंब्रह्मलोकंततोऽगमत्

ब्रह्माणमूचिरे देवा गयासुरविलोपिताः । त्वया दत्तोऽधिकारो वै गृहाणत्वंपितामह

ब्रह्माऽब्रवीत्ततो देवान्व्रजामोविष्णुमव्ययम् । ब्रह्मादयोऽब्रुवन्विष्णुंत्वयादत्तवरेऽसुरे

तद्दर्शनाद्ययुः स्वर्गं शून्यं लोकत्रयं ह्यभूत् । देवैरुक्तोवासुदेवोब्रह्माणं स वचोऽब्रवीत्

गत्वाऽसुरं प्रार्थयस्वयज्ञार्थं देहिदेहकम् । विष्णूक्तःससुरोब्रह्मागत्वाऽपश्यन्महासुरम्

गयासुरोऽब्रवीद्दृष्ट्वा ब्रह्माणंत्रिदशैःसह । संपूज्योत्थायविधिवत्प्रणतःश्रद्धयाऽन्वितः

गयासुर उवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः । यदागतोऽतिथिर्ब्रह्मा सर्वं प्राप्तं मयाऽद्य वै

योगिन्योगाङ्गवित्सर्वलोकस्वामिन्पितर्गुरो !। यदर्थमागतोब्रह्मंस्तत्कार्यंकरवाण्यहम्

ब्रह्मोवाच

पृथिव्यां यानि तीर्थानि दृष्टानिभ्रमतामया । यज्ञार्थं न तु ते तानि पवित्राणिशरीरतः

त्वया देहे पवित्रत्वं प्राप्तं विष्णुप्रसादतः । अतः पवित्रं देहं त्वं यज्ञार्थं देहि मेऽसुर

गयासुर उवाच

धन्योऽहं देवदेवेश यद्देहं प्रार्थ्यते त्वया । पितृवंशः कृतार्थो मे देहे यागं करोषि चेत्

त्वयैवोत्पादितो देहः पवित्रस्तु त्वया कृतः । सर्वेषामुपकाराययागोऽवश्यंभवत्विति

इत्युक्त्वा सोऽपतद्भूमौश्वेतकल्पेगयासुरः । नैर्ऋतींदिशमाश्रित्यतदाकोलाहलेगिरौ

शिरः कृत्वोत्तरे दैत्यः पादौ कृत्वा तु दक्षिणे ।
ब्रह्मा सम्भृतसम्भारो मानसानृत्विजोऽसृजत् ॥ ३२ ॥

अग्निशर्माणममृतं शौनकं जाञ्जलिं मृदुम् । कुमुथिं वेदकौण्डिल्यंहारीतंकाश्यपंकृपम्
गर्गं कौशिकवासिष्ठौ मुनिंभार्गवमव्ययम् । वृद्धं पाराशरंकण्वंमाण्डव्यंश्रुतिकेवलम्
श्वेतं सुतालं दमनं सुहोत्रं कङ्कमेव च । लौकाक्षिं च महाबाहुं जैगिषव्यं तथैव च ॥
दधिपञ्चमुखं विप्रमृषभं कर्कमेव च । कात्यायनं गोभिलञ्च मुनिमुग्रमहाव्रतम् ॥३७॥
सुपालकं गौतमञ्च तथा वेदशिरोव्रतम् । जटामालिनमव्यग्रं चाटुहासञ्च दारुणम् ॥
आत्रेयं चाप्यङ्गिरसमौपमन्युं महाव्रतम् । गोकर्णं च गुहावासं शिखण्डिनमुमाव्रतम्
एतानन्यांश्च विप्रेन्द्रान्वेधा लोकपितामहः । परिकल्प्याकरोद्यागं गयासुरशरीरके ॥
अग्निशर्माऽपिपञ्चाग्नीन्मुखादेतानथासृजत् । दक्षिणाग्निंगार्हपत्याहवनीयौ तपोव्ययः
सभ्यावसथ्यौ देवर्षेयेषुयज्ञाःप्रतिष्ठिताः । यज्ञास्य च प्रतिष्ठार्थंविप्रेभ्योदक्षिणांददौ
हुत्वापूर्णाहुतिं ब्रह्मा स्नात्वा चावभृथेन तु । यज्ञयूपं सुरैः सार्धं समानीय व्यरोपयत्
ब्रह्मणः सरसां श्रेष्ठे सरस्येवाऽऽश्रितं शुभम् । चलितश्चकितोब्रह्मा धर्मराजमभाषत
जाता गृहे तवशिलासमानीयाविचारयन् । दैत्यस्यशीघ्रंशिरसि तां धारयममाऽऽज्ञया

निश्चलार्थं यमः श्रुत्वाऽधारयन्मस्तके शिलाम् ।
शिलायां धारितायान्तुसशिलश्चाऽसुरो ऽचलत् ॥ ४६ ॥
देवानूचेऽथ रुद्रादीञ्शिलायां निश्चलाः किल ।
तिष्ठन्तु देवाःसकलास्तथेत्युक्त्वा च ते स्थिताः ॥ ४७ ॥
देवाः पादैर्लक्षयित्वा तथाऽपि चलितोऽसुरः ।
ब्रह्माऽथ व्याकुलो विष्णुं गतः क्षीराब्धिशायिनम् ॥
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा नत्वा चाऽऽदृत्य तं प्रभुम् ॥ ४८ ॥

ब्रह्मोवाच

ब्रह्माण्डस्य पते!नाथ! नमामि जगतांपतिम् । गतिंकीर्तिमतांनृणांभुक्तिमुक्तिप्रदायकम्

विष्वक्सेनोऽब्रवीद्विष्णुं देव ! त्वां स्तौति पद्मजः ।

हरिराहाऽऽनय त्वं तं विष्णूक्तः स तमानयत् ॥
अजमूचे हरिः कस्मादागतोऽसि वदस्व तत् ॥ ५० ॥

ब्रह्मोवाच

देवदेव कृते यागे प्रचचाल गयासुरः । शिलायां देवरूपिण्यां न्यस्तायां तस्यमस्तके
रुद्रादिषु च देवेषु संस्थितेष्वसुरोऽचलत् । इदानीं निश्चलार्थं हि प्रसादंकुरुमाधव ॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ह्याकृष्य स्वशरीरतः । मूर्तिं ददौ निश्चलार्थं ब्रह्मणे भगवान्हरिः
आनीयमूर्तिम्ब्रह्माऽपिशिलायांसमधारयत् । तथाऽपिचलितंवीक्ष्यपुनर्देवमथाऽऽह्वयत्

आगत्य विष्णुः क्षीराब्धेः शिलायां संस्थितोऽभवत् ।
जनार्दनाभिधानेन पुण्डरीकेतिनामतः ॥
शिलायां निश्चलार्थं हि स्वयमादिगदाधरः ॥ ५५ ॥

निश्चलार्थंपञ्चधाऽऽसीच्छिलायांप्रपितामहः । पितामहोऽथफलवीशःकेदारःकनकेश्वरः
ब्रह्मा स्थितः स्वयंतत्रगजरूपीविनायकः । गयादित्यश्चोत्तरार्कोदक्षिणार्कस्त्रिधारविः
लक्ष्मीसीताभिधानेनगौरीचमङ्गलाह्वया । गायत्री चैवसावित्रीत्रिसन्ध्याचसरस्वती
इन्द्रोबृहस्पतिःपूषावसवोऽष्टौमहाबलाः । विश्वेदेवाश्चाऽऽश्विनेयौमारुतोविश्वनायकः

सरक्षोरगगन्धर्वास्तस्थुर्देवाः स्वशक्तिभिः ॥ ५६ ॥

आद्यया गदयाचासौयस्माद्दैत्यःस्थिरीकृतः । स्थितइत्येवहरिणातस्मादादिगदाधरः
ऊचे गयासुरो देवान्किमर्थं वञ्चितोह्यहम् । यज्ञार्थं ब्रह्मणे दत्तं शरीरमलयं मया ॥

विष्णोर्वचनमात्रेण किं न स्यां निश्चलो ह्यहम् ॥ ६१ ॥

यत्सुरैः पीडितोऽत्यर्थं गदया हरिणा तथा । पीडितो यद्यहं देवाःप्रसन्नाःसन्तुसर्वदा
गदाधरादयस्तुष्टाः प्रोचुः सार्धं गयासुरम् । वरं ब्रूहि प्रसन्नाः स्मो देवानूचेगयासुरः
यावत्पृथ्वी पर्वताश्च यावच्चन्द्रार्कतारकाः । तावच्छिलायांतिष्ठन्तुब्रह्मविष्णुमहेश्वराः

अन्ये च सकला देवा मन्नाम्ना क्षेत्रमस्तु वै ॥ ६४ ॥

पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः । तन्मध्ये सर्वतीर्थानि प्रयच्छन्तुहितंनृणाम्
स्नानादितर्पणं कृत्वा पिण्डदानात्फलादिकम् । महात्मनिसहस्रञ्चकुलानांचोद्धरेन्नरः

व्यक्ताऽव्यक्तस्वरूपेण यूयं तिष्ठत सर्वदा । गदाधरः स्वयंलोकाद्भूयात्सर्वाघनाशनात्
श्राद्धं सपिण्डकं येषां ब्रह्मलोकं प्रयान्तु ते । ब्रह्महत्यादिकं पापंविनश्यतुचसेविनाम्
नैमिषं पुष्करं गङ्गाप्रयागश्चाविमुक्तिकम् । एतान्यन्यानितीर्थानिदिविभुव्यन्तरिक्षतः

समायान्तु सदा नृणां प्रयच्छन्तु हितं सुराः ॥ ६६ ॥

किं बहूक्त्यासुरगणायुष्मास्वेकाऽपिदेवता । चेन्नतिष्ठेदहंचापिसमयःप्रतिपाल्यताम्
गयासुरवचःश्रुत्वा प्रोचुर्विष्णवादयः सुराः । त्वयायत्प्रार्थितंसर्वंतद्भविष्यत्यसंशयम्
अस्मत्पादानर्चयित्वायास्यन्तिपरमांगतिम् । देवैर्दत्तवरोदैत्योहर्षितोनिश्चलोऽभवत्
स्थितेषुचैव देवेषु ब्राह्मणेभ्यो ददावजः । ग्रामांश्च पञ्चपञ्चाशत्पञ्चक्रोशीं गयां तथा

गृहान्कृत्वा ददौ दिव्यान्सर्वोपस्करसंयुतान् ॥ ७३ ॥

कामधेनुं कल्पवृक्षं पारिजातादिकांस्तरून् । महानदीं क्षीरवहां घृतकुल्यास्तथैव च ॥
मधुस्रवां मधुकुल्यांदिव्याज्याढ्यसरांसि च । सुवर्णदीर्घिकाश्चैववहूनन्नादिपर्वतान्
भक्ष्यभोज्यफलादींश्च सर्वं ब्रह्मासृजन्ददौ । न याचयध्वंविप्रेन्द्राअन्यानुक्त्वाददावजः
दत्त्वा ययौ ब्रह्मलोकं नत्वा ह्यादिगदाधरम् । धर्मारण्ये तत्रधर्मंयाजयित्वाययाचिरे
धर्मयागे च लोभाद्वै प्रतिगृह्यधनादिकम् । ततो ब्रह्मा समागत्यब्राह्मणांस्ताञ्शशापह

कृतवन्तो यतो लोभं मद्दत्तेष्वखिलेष्वपि ।

तस्माद्गुणाधिका यूयं भविष्यन्ति(थ)सदा द्विजाः ॥ ७६ ॥

युष्माकं स्याद्वारिवहा नदी पाषाणपर्वताः । नद्यादयो वारिवहा मृन्मयाश्चतथागृहाः
कामधेनुः कल्पवृक्षो मल्लोकमुपतिष्ठताम् । एवं शप्ता ब्रह्मणा ते प्रार्थयन्तोऽब्रुवन्नजम्
त्वया यद्दत्तमखिलं तत्सर्वं शापतो गतम् । जीवनार्थं प्रसादं नो भगवन्कर्तुमर्हसि
तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणान्ब्रह्माप्रोवाचेदंदयान्वितः । तीर्थोपजीविकायूयमाचन्द्रार्कंभविष्यथ

लोकाः पुण्यागयायां ये श्राद्धिनो ब्रह्मलोकगाः ।

युष्मान्ये पूजयिष्यन्ति तैरहं पूजितः सदा ॥ ८४ ॥

आक्रान्तं दैत्यजठरंधर्मेण विरजाद्रिणा । नाभिकूपसमीपे तु देवी या विरजास्थिता
तत्र पिण्डादिकं कृत्वा त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत् । महेन्द्रगिरिणातस्यकृतौपादौसुनिश्चलौ

तत्र पिण्डादिकृत्सप्त कुलान्युद्धरते नरः ॥ ८६ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

धर्माद्विश्वरूपायां धर्मव्रतायाउत्पत्तिस्तस्याअनुरूववरप्राप्तये तपसिस्थिताया धर्मपुत्रस्यमरीचेःसम्भाषणम्

नारद उवाच

कथं शिला समुत्पन्ना यथाऽऽक्रान्तो गयासुरः ।
किं रूपं किं च माहात्म्यं तस्याः किं वद नाम च ॥ १ ॥

सनत्कुमार उवाच

आसीद्धर्मो महातेजाः सर्वविज्ञानपारगः । विश्वरूपा च तत्पत्नी भर्तृव्रतपरायणा तस्यां धर्मात्समुत्पन्ना कन्याधर्मव्रता सती । रूपयौवनसम्पन्नालक्ष्मीरिवगुणाधिका तस्यां ये तु गुणा ह्यासंस्तेतिष्ठन्ति जगत्त्रये । धर्मोधर्मव्रतायास्तुत्रिषुलोकेषुमार्गयन् नानुरूपं वरं लेभे धर्मोऽथ वरसिद्धये । तपः कुरु वरार्थं त्वं तथेत्युक्त्वा वनं ययौ कन्या सा च तपस्तेपे सर्वेषां दुष्करञ्च यत् । वायुभक्षा श्वेतकल्पे युगानामयुतंपुरा ब्रह्मणो मानसः पुत्रो मरीचिर्नाम विश्रुतः । पर्यटन्पृथिवीं सर्वां कन्यारत्नं ददर्श सः रूपयौवनसम्पन्नां परमेतपसिस्थिताम् । पप्रच्छाऽथमरीचिस्तांकात्वंकस्याऽसितद्वद रूपेणानेन मां भीरु! विमोहयसि सुव्रते । ब्रह्मात्मजोऽहं विख्यातो मरीचिर्वेदपारगः मरीचेर्वचनं श्रुत्वा कन्या प्रोवाच तं मुनिम् । अहं धर्मव्रतानाम धर्मपुत्रीतपोऽन्विता पतिव्रतार्थं विप्रेन्द्र चरामि परमं तपः । धर्मव्रतां मरीचिस्तामुवाच प्रीतिपूर्वकम् ॥ पतिव्रतेक्षया पृथ्वीं विचरामि ह्यहर्निशम् ॥ पतिव्रता दर्शनान्मे भविष्यसि शुभव्रते !। त्वं चेत्पतिव्रता जाता भजे त्वां भज मां वरम् ।

लोके न त्वादृशी कन्या मम तुल्यो न ते वरः ॥ १३ ॥

धर्मव्रते धर्मपत्नी तस्मात्त्वं भव मेऽधुना । धर्मव्रता मुनिं प्राह धर्मं याचय सुव्रत ॥
तच्छ्रुत्वा धर्ममगमन्मुनिं धर्मो ददर्श ह । तेजःपुञ्जं वरं नत्वा आसनार्घ्यादिनाऽर्चयत्
किमर्थमागतः पृष्टो मरीचिर्धर्ममब्रवीत् । कन्यार्थं भ्रमता पृथ्वीं दृष्टा ते कन्यका वरा

मह्यं कन्यां च तां देहि श्रेयस्तव भविष्यति ॥ १६ ॥

अर्घ्यादिना समभ्यर्च्य धर्मःप्रोचेतथेति तम् । धर्मव्रतां समानीय दत्तवांस्तां मरीचये
ब्राह्मणाय विवाहेन धनरत्नादिकं ददौ । वरंच दत्तवांस्तस्मै तद्वाकं(क्यं)यत्तथाकृतम्

अग्निहोत्रेण सहितां स्वाश्रमं तां द्विजोऽनयत् ॥ १८ ॥

रेमेमुनिस्तयासार्धंयथाविष्णुःश्रियासह । पार्वत्याचयथाशम्भुःसरस्वत्या यथा ह्यजः
जज्ञे पुत्रशतं तस्यां मरीचेर्विष्णुनोपमम् । मरीचिः फलपुष्पार्थं वनं गत्वा समागतः
श्रान्तः कदाचित्तां पत्नीमुवाचेतिपतिव्रताम् । भुक्त्वातु शयनस्थस्यपादसम्वाहनं कुरु
धर्मव्रता तथेत्युक्त्वा शयनस्थस्य सा मुनेः । पादसम्वाहनं चक्रे घृतेनाभ्यज्य तत्परा
निद्रायमाणेऽथ मुनौ ब्रह्मा तं देशमागतः । इयेष दृष्ट्वा ब्रह्माणं मनसाऽर्चयितुं प्रभुम्
पादसम्वाहनं कुर्यांकिंपूज्योऽयंजगद्गुरुः । इत्याकुलासमुत्तस्थौमत्वासातंगुरोर्गुरुम्
अर्घ्यपाद्यादिकं दत्त्वा ब्रह्माणं समपूजयत् । सत्कृतायांतुशय्यायां विश्राममकरोदजः
एतस्मिन्नन्तरे भर्ता समुत्तस्थौ स्वतल्पतः । धर्मव्रतामपश्यन्सविप्रः क्रुद्धः शशापताम्

पादसम्वाहनं त्यक्त्वा यस्मादाज्ञां विहाय मे ।
गताऽन्यत्र ततः पापाच्छापदग्धा शिला भव ॥ २७ ॥

भर्त्राधर्मव्रता शप्ता मरीचिंप्राह सा रुषा । शयानेत्वयि सम्प्राप्ते ब्रह्मा त्वज्जनको गुरुः
त्वयोत्थाय हि कर्तव्यंस्वगुरोः पूजनंसदा । मयातु धर्मचारिण्या तव कार्यं कृते मुने
अदोषाऽहंयतःशप्तातस्माच्छापंददामिते । त्वं च शापं महादेवाद्भर्तः प्राप्स्यस्यसंशयम्

व्याकुलं तं पतिं दृष्ट्वा व्याकुलाऽगात्प्रजापतिम् ।
नत्वा शयानं ब्रह्माणमग्निं प्रज्वाल्य चेन्धनैः ॥ ३१ ॥

गार्हपत्ये स्थिता चक्रे तपः परमदुष्करम् । तथा शप्तो मरीचिश्च तपस्तेपे सुदारुणम्

पतिव्रतायास्तपसा मरीचेस्तपसा तथा। इन्द्रादयश्च सन्तप्ता गतास्ते शरणं हरिम्
ऊचुः क्षीराम्बुधौ सुप्तं सन्तप्तास्तपसा हरे। पतिव्रतायाश्च मुनेस्त्रैलोक्यं रक्ष केशव
इन्द्रादीनां वचः श्रुत्वा विष्णुर्धर्मव्रतांययौ। एतस्मिन्नेव काले तु प्रबुद्धो भगवानजः

ऊचुर्धर्मव्रतां देवा अग्निस्थां तां सकेशवाः ॥ ३५ ॥

अग्निमध्ये तपः कर्तुं कस्य शक्तिः पतिव्रते। त्वया कृतं तत्परमं सर्वलोकभयङ्करम् ॥
वरं वरयधर्मज्ञे अस्मत्तोयदभीप्सितम्। विष्ण्वादीनांवचःश्रुत्वादेवान्धर्मव्रताऽब्रवीत्
भर्तृशापमशक्ताऽहं निवर्तयितुमोजसा। दत्तो मरीचिना शापो मह्यं स ह्यपगच्छतु ॥
धर्मव्रतावचः श्रुत्वा प्रोचुरेतां सुराः पुनः। धर्मव्रते धर्मपुत्रि शापोऽयं परमर्षिणा ॥
दत्तस्ते न निराकर्तुं शक्यो देवद्विजातिभिः। तस्मादन्यंवरंब्रूहियतोधर्मस्यसंस्थितिः
भवेद्वै त्रिषु लोकेषु वेदोक्तस्य शुभव्रते। देवानां वचनं श्रुत्वा देवान्धर्मव्रताऽब्रवीत् ॥
भर्तुः शापान्मोचयितुं न शक्ताश्च यदाऽमराः। मह्यं वरं प्रयच्छध्वं एवंविधमनुत्तमम्
शिलाऽहं हि भविष्यामिब्रह्माण्डेपावनीशुभा। नदीनदसरस्तीर्थदेवादिभ्योऽतिपावनी

ऋष्यादिभ्यो मुनिभ्यश्च मुख्यदेवेभ्य एव च।
त्रैलोक्ये यानि लिङ्गानि व्यक्ताव्यक्तात्मकान्यपि ॥
तानि तिष्ठन्तु मद्देहे तीर्थरूपेण सर्वदा ॥ ४४ ॥

तीर्थान्यपिच सर्वाणि नक्षत्रप्रमुखास्तथा। तिष्ठन्तु देवाः सकला देव्यश्च मुनयस्तथा
शिलास्थितेषुतीर्थेषु स्नात्वाकृत्वाऽथतर्पणम्। श्राद्धंसपिण्डकंयेषांब्रह्मलोकंप्रयान्तुते
गदाधरो दृश्यतीर्थं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम। मुक्तिर्भवेत्पितृणां च बहूनां श्राद्धतः सदा

जरायुजाण्डजा वाऽपि स्वेदजा वाऽपि चोद्भिदः।
त्यक्त्वा देहं शिलायां ते यान्तु विष्णुस्वरूपताम् ॥ ४८ ॥

तथा श्राद्धं तर्पणं च स्नानंचाक्षयमस्त्विह
यथार्चिते हरौ सर्वे यज्ञाःपूर्णाभवन्ति हि। अचिरेणापितेसिद्धा सिद्धिभाजोभवन्तुवै
मम देहे सुरेशानां ये जपन्ति श्रुतादिकम्। श्राद्धादिना समुद्धृत्यविष्णुलोकंनयेद्ध्रुवम्
पितृणां कुलसाहस्रमात्मनासहितंनरः। समुद्राद्याःसरोमुख्यामानसाद्याःसुरेश्वराः
यावत्योहिसरिच्छ्रेष्ठागङ्गाद्याश्चह्रदाःशुभाः।

नृणां श्राद्धं विदधतो मुक्तये निवसन्तु मे ॥ ५२ ॥

शरीरेण समायान्तु क्वचिन्नोयान्तुदेवताः । एकोविष्णुस्त्रिधामूर्तिर्यावत्सङ्कीर्त्यतेबुधैः तावच्छिलायां सर्वाणि तीर्थानिसहदैवतैः । सदा तिष्ठन्तुमुनयो गन्धर्वाणांगणाश्चये यावत्तिष्ठतिब्रह्माण्डं तावत्तिष्ठतु वै शिला । मम देहेऽश्मरूपे च ये जपन्ति तपन्ति च जुहोत्यग्नौ च तेषां वै तदक्षय्योपतिष्ठताम्(?)। अक्षयंतुभवेच्छ्राद्धंजपहोमतपांसि च

शिलापर्वतरूपेण मयि तिष्ठत सर्वदा ॥ ५६ ॥

पतिव्रतावचःश्रुत्वादेवाःप्रोचुःपतिव्रताम् । त्वया यत्प्रार्थितं सर्वं तद्भविष्यत्यसंशयम्

गयासुरस्य शिरसि भविष्यसि यदा स्थिरा ।

तदा पादादिरूपेण स्थास्यामस्त्वयि सुस्थिराः ॥

वरं शिलायै दत्त्वैवं तत्रैवान्तर्दधुः सुराः ॥ ५८ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

अष्टोत्तरशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्ये रामतीर्थमहत्त्ववर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

वक्ष्ये शिलाया माहात्म्यं श्रृणु नारद ! मुक्तिदम् ।

यस्या गायन्ति देवाश्च माहात्म्यं मुनिपुङ्गवाः ॥ १ ॥

शिला स्थिता पृथिव्यां सा देवरूपाऽतिपावनी ।

विचित्राख्यं शिलातीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ २ ॥

तस्या संस्पर्शनाल्लोकाः सर्वे हरिपुरं ययुः । शून्ये लोकत्रयेजाते शून्यायमपुरी ह्यभूत्

यम इन्द्रादिभिर्गत्वा ऊचे ब्रह्माणमद्भुतम् । अधिकारं गृहाणाऽथ यमदण्डं पितामह
यममूचे ततो ब्रह्मा स्वगृहे धारयस्व ताम् । ब्रह्मोक्तो धर्मराजस्तु गृहेतां समधारयत्
यमोऽधिकारंस्वंचक्रे पापिनांशासनादिकम् । एवंविधागुरुतरा शिलाजगति विश्रुता
यथा ब्रह्मा यथा विष्णुर्यथा देवो महेश्वरः । ब्रह्माण्डे च यथा मेरुस्तथेयं देवरूपिणी
गयासुरस्य शिरसि गुरुत्वाद्धारिता यतः । अतः पवित्रयोर्योगः पितृणांमोक्षदायकः
पवित्रयोर्द्वयोर्योगे हयमेधमजोऽकरोत् । भागार्थमागतान्दृष्ट्वाविष्णवादीनब्रवीच्छिला
शिलास्थितिप्रतिज्ञांतुकुर्वन्तु पितृमुक्तये ।तथेत्युक्त्वाशिलायांतेदेवाविष्णवादयःस्थिताः
शिलारूपेण मूर्त्या च पदरूपेण देवताः । मूर्तामूर्तस्वरूपेण स्थिताः पूर्वप्रतिज्ञया ॥११

दैत्यस्य मुण्डपृष्ठे तु यस्मात्सा संस्थिता शिला ।
तस्मात्स मुण्डपृष्ठाद्रिः पितृणां ब्रह्मलोकदः ॥ १२ ॥

आच्छादितःशिलापादःप्रभासेनाद्रिणायतः। भासितोभास्करेणेतिप्रभासःपरिकीर्तितः
प्रभासंहिविनिर्भिद्य शिलाङ्गुष्ठो विनिर्गतः । अङ्गुष्ठोत्थित ईशोऽपिप्रभासेशःप्रकीर्तितः
शिलाङ्गुष्ठैकदेशो यः साचप्रेतशिलास्मृता । पिण्डदानाद्यतस्तस्यांप्रेतत्वान्मुच्यतेनरः
महानदीप्रभासाद्र्योः सङ्गमेस्नानकृन्नरः । रामोदेव्यासह स्नातो रामतीर्थं ततः स्मृतम्
प्रार्थितोऽत्र महानद्या राम! स्नातो भवेति च । रामतीर्थंततोभूत्वात्रिषुलोकेषुविश्रुतम्
जन्मान्तरशतं साग्रं यत्कृतं दुष्कृतं मया । तत्सर्वं विलयं यातु रामतीर्थाभिषेचनात्
मन्त्रेणाऽनेनयःस्नात्वाश्राद्धंकुर्वीतमानवः । रामतीर्थेपिण्डदस्तुविष्णुलोकंप्रयात्यसौ

तथेत्युक्त्वा स्थितो रामः सीतया भरताग्रजः ॥ १६ ॥

राम राम महाबाहो देवानामभयङ्कर । त्वां नमस्येऽत्र देवेशं मम नश्यतु पातकम् ॥

मन्त्रेणानेन यः स्नात्वा श्राद्धं कुर्यात्सपिण्डकम् ।
प्रेतत्वात्तस्य पितरो विमुक्ताः पितृतां ययुः ॥ २१ ॥

आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च । पापं नाशय मे देवो मनोवाक्कायकर्मजम्
नमस्कृत्य प्रभासेशं भासमानं शिवंव्रजेत् । तं च शम्भुं नमस्कृत्य कुर्याद्यमबलिं ततः
रामे वनं गते शैलमागत्यभरतःस्थितः । पितृपिण्डादिकंकृत्वा रामंसंस्थाप्य तत्र च

रामंसीतांलक्ष्मणंच मुनीन्स्थापितवान्प्रभुः । भरतस्याऽऽश्रमेपुण्ये नित्यंपुण्यतमैर्वृतम्

मृतङ्गस्य पदं तत्र दृश्यते सर्वमानुषैः ॥ २५ ॥

स्थापितं धर्मसर्वस्वंलोकस्याऽस्य निदर्शनात् । मतङ्गस्यपदेश्राद्धीसर्वांस्तारयतेपितॄन्

रामतीर्थे नरः स्नात्वा रामं सीतां समर्च्यंच । रामेश्वरं प्रणम्याऽथ न देही जायतेपुनः

शिलाया जघनं भूयः समाक्रान्तं नगेन तु । धर्मराजेन सम्प्रोक्तोनगच्छेति नगःस्मृतः

यमराजधर्मराजौ निश्चलार्थं व्यवस्थितौ । ताभ्यांबलिं प्रयच्छामि पितॄणां मुक्तिहेतवे

द्वौ श्वानौश्यामशबलौवैवस्वतकुलोद्भवौ । ताभ्यांबलिंप्रयच्छामिस्यातामेतावहिंसकौ

ऐन्द्रवारुणवायव्ययाम्यनैर्ऋत्यसंस्थिताः । वायसाःप्रतिगृह्णन्तुभूमौपिण्डंमयाऽर्पितम्*

शिलाया दक्षिणे हस्ते स्थापितः कुण्डपर्वतः । तिमिरादित्यईशानभर्गावेते महेश्वराः

वह्निर्द्वौ वरुणौ रुद्राश्चत्वारः पितृमोक्षदाः । भरताश्रममासाद्य तान्नमेत्पूजयेन्नरः ॥

पापेभ्यश्चोपपापेभ्यो मुच्यते पितृभिः सह । यत्र कुत्राऽपि देवर्षे भरतस्याऽऽश्रमेनरः

स्नातः श्राद्धादिकं कुर्यात्तत्कल्पोऽपि न हीयते ॥ ३४ ॥

गयायां चाऽक्षयं श्राद्धं जपहोमतपांसि च । सर्वमानन्त्यमाहुर्वै यद्दत्तं भरताश्रमे॥३५

चतुर्युगस्वरूपेणचतस्रोरविमूर्तयः । दृष्टाःस्पृष्टाःपूजितास्ताःपितॄणांमुक्तिदाय(यि)काः

मुक्तिर्वामन इत्येव तारकाख्यो विधिःपरः । संसारार्णवमग्नानांनावावेतौ सुरेश्वरौ

तारकं ब्रह्म विश्वेषां मृतानां जीवतामिदम् ॥ ३७ ॥

त्रिविक्रमं च ब्रह्माणं यः पश्येत्पुरुषोत्तमम् । पितृभिःसहधर्मात्मासयातिपरमांगतिम्

शिलाया वामपादेऽपि तथाऽभ्युद्यन्तको गिरिः ।

स्थापितः पिण्डदस्तत्र पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ३८ ॥

---

* अतोऽग्रे मुद्रितपुस्तकपाठेऽधिकाःश्लोकाउपलभ्यन्ते—

यमोऽसि यमदूतोऽसिवायसोऽसि महाबल । सप्तजन्मकृतंपापंबलिंभुक्त्वा विनाशय

रामे वनंगते शैलमागत्य भरतेन हि । पितुः पिण्डादिकंकृत्वा रामेशःस्थापितोऽत्रवै

स्नात्वा नत्वाचरामेशंरामसीतासमन्वितम् । तत्रश्राद्धंसपिण्डंचकृत्वाविष्णुपुरंव्रजेत्

पितृभिः सह धर्मात्मा कुलानां च शतैः सह ॥ ३ ॥ इति ।

नैमिषारण्यपार्श्वेतु ईये ब्रह्मा सुरैः सह। मुख्यसञ्ज्ञंहि तत्तीर्थं देवास्तत्रपदे स्थिताः
त्रिषु तेषु पदेष्वेव तीर्थेषु मुनिसत्तम। यत्किञ्चिदशुभं कर्म तत्प्रणश्यति नारद ॥४१
तन्नैमिषवनंपुण्यं सेवितं पुण्यपौरुषैः। तत्रव्यासःशुकःपैलःकण्वोवेधाः शिवो हरिः॥
तेषां दर्शनमात्रेण मुच्यते पातकैर्नरः। वामहस्ते शिलायास्तु तथाचोद्यन्तको गिरिः
स पर्वतः समानीतो ह्यगस्त्येन महात्मना ×। तत्र ब्रह्मा हरश्चैव तपश्चोग्रश्च चक्रतुः॥

× अतोऽग्रेमुद्रितपुस्तकपाठेऽधिकउपलभ्यते—
स्थापितः पिण्डदस्तत्र पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्। कुण्डश्चोद्यन्तकस्तत्रआत्मनस्तपसाकृतः
ब्रह्मणा तत्र सावित्रीकुमाराभ्यांसहस्थितम्। हाहाहूहूप्रभृतयो गीतिनादं प्रचक्रिरे॥
कुण्डमुद्यन्तकं तत्र गीतवादित्रको गिरिः। अगस्त्योभगवान्यत्र तपश्चोग्रं चकार ह
ब्रह्मणस्तु वरंलेभे माहात्म्यं भुविदुर्लभम्। लोपामुद्रांतथाभार्यां पितॄणांपरमांगतिम्
स्नातस्तत्र च मध्याह्ने सावित्रींसमुपास्यच। कोटिजन्म भवेद्विप्रोधनाढ्यो वेदपारगः

अगस्त्यस्य पदे स्नात्वा पिण्डदो ब्रह्मलोकगः।

पितृभिः सह धर्मात्मा पूज्यमानो दिवौकसाम् ॥ ६ ॥

पितृभिः सह धर्मात्मा पूज्यमानो दिवौकसाम्
ब्रह्मयोनिंप्रविश्याऽथ निर्गच्छेद्यस्तुमानवः। परं ब्रह्म स यातीहविमुक्तोयोनिसंकटात्
नत्वागयाकुमारञ्च ब्राह्मण्यं लभते नरः। सोमकुण्डाभिषेकीच सोमलोकंनयेत्पितॄन्
बलिः काकशिलायान्तु काकेभ्यऋणमोक्षदः। स्वर्गद्वारेश्वरंनत्वास्वर्गाद्ब्रह्मपुरंव्रजेत्
पिण्डदोव्योमगङ्गायांनिर्मलःस्वर्नयेत्पितॄन्। शिलायादक्षिणेहस्तेभस्मकूटमधाख्यत्

ततोऽसौ भस्मकूटाद्रिर्भस्मस्नातश्च नारद ! ॥ १० ॥

वटो वटेश्वरस्तत्र स्थितश्च प्रपितामहः। मतङ्गस्य पदे मुन्ये पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन्
तस्याग्रे रुक्मिणींकुण्डं पश्चिमे कपिला नदी। कपिलेशो नदीतीरेह्यमासोमसमागमे
कपिलायां नरःस्नात्वाकपिलेशंनमेच्च यः। श्राद्धदःस्वर्गगामीस्यान्माहेशीकुण्डएव च
गौरी च मङ्गला तत्र सर्वसौभाग्यदायिनी। जनार्दनो भस्मकूटेतस्यहस्ते च पिण्डदः

मन्त्रेण चाऽऽत्मनोऽन्येषां सव्यहस्ते तिलैर्विना।

तत्रागस्त्यस्य हि वरंकुण्डंत्रैलोक्यदुर्लभम् । यत्रमुन्यष्टकंसिद्धंतपस्तप्त्वाशिवंगतम्
कुण्डे मुन्यष्टकं नत्वा पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ४५ ॥
अगस्त्येनाऽर्थदेवर्षे उदयाद्रेर्महात्मना । शिलायावामहस्तेऽपिस्थापितोगिरिराट्शुभः
वादित्राद्यैर्दिव्यगीतैराद्यो वादित्रको गिरिः ॥ ४६ ॥

जीवतां दधिसंमिश्रं सर्वे ते विष्णुलोकगाः ॥ १५ ॥
एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन! । देहि देव गयाशीर्षे तस्मै तस्मिन्मृतेतुतम्
एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन । गयाशीर्षे त्वया देयोमह्यंपिण्डो मृतेमयि
जनार्दन नमस्तुभ्यं नमस्ते पितृरूपिणे । पितृपते नमस्तुभ्यं नमस्ते मुक्तिहेतवे ॥
गयायांपितृरूपेण स्वयमेव जनार्दन । लक्ष्मीकान्त नमस्तेऽस्तु नमस्ते पितृमोक्षद ॥
तंध्यात्वापुण्डरीकाक्षंमुच्यतेचऋणत्रयात् । पुण्डरीकाक्षमभ्यर्च्यस्वर्गंप्रापुर्नराध्रुवम्
वामजानुतुसंपात्यनत्वाभीमोजनार्दनम् । श्राद्धंसपिण्डकंकृत्वाभ्रातृभिर्विष्णुलोकगः
शिलाया दक्षिणे पादे प्रेतकूटो गिरिर्धृतः । धर्मराजेन पादाभ्यां गिरिः प्रेतशिलाश्रयः
पादेन दूरे निक्षिप्तः शिलायाः पापभारतः । प्रेतभावस्वरूपेण करग्रहणकानने ॥२३॥
पृष्ठे स्थिताश्च बहवो विघ्नकारिण एव ते । श्राद्धादिकरणान्नृणांतीर्थंपितृविमुक्तिदम्
गतः शिलाङ्गसंस्पर्शात्प्रेतकूटः पवित्रताम् । प्रेतकूटश्चतत्राऽऽस्तेदेवास्तत्रपदेस्थिताः
तत्र श्राद्धादिकं कृत्वा प्रेतत्वान्मोचयेत्पितॄन् ॥ २५ ॥
शिलासमीपे ये विप्र प्रेतरूपा भयानकाः । सर्वे ते यमलोके तु पृथिव्यां पर्यटन्ति वै
गयासुरस्य शिरसि पुण्ये प्रेतादिवर्जिते । स्थिता ब्रह्मादयोदेवागतःसोऽपिपवित्रताम्
कीकटेषु गया पुण्या पुण्यंराजवनंगृहम् । च्यवनस्याऽऽश्रमःपुण्योनदीपुण्यापुनःपुनः
वैकुण्ठे हेमदण्डश्च हेमकूटो गिरिस्तथा । श्राद्धपिण्डादिकृत्तत्र पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥
शिला दक्षिणपादे तु गृध्रकूटो गिरिर्धृतः । धर्मराजेन सुस्थैर्यकरणाय सुपावनः ॥
गृध्ररूपेण तत्राऽथ तपः कृत्वा महर्षयः । विमुक्त्वा गृध्रकूटोऽयं तत गृध्रेश्वरः स्थिरः
तत्र गृध्रेश्वरं दृष्ट्वा यान्ति शम्भुप्रदं नराः । तत्र गृध्रवटं नत्वा प्राप्तकामो दिवंव्रजेत्

तत्र विद्याधरो नामगन्धर्वाप्सरसांगणैः । समेतोऽद्यापि गीतानिदिव्यानिसहगीयते
मोहनश्च सुनीथश्च शैलूजो मोहनोत्तमः । पर्वतो नारदध्यानी संगाती पुष्पदन्तकः ॥
हाहाहूहूप्रभृतयो गीतदानं प्रचक्रिरे ॥ ४८ ॥

तथा चित्ररथो नाम सर्वगन्धर्वसंवृतः । गायन्ति मधुराण्येव गीतान्यद्रौमहोत्सवम्
अतः स पर्वतो देवैः सेव्यतेऽद्यापि नित्यशः । धर्मज्ञास्तत्रदेवेशोहरोभस्माङ्गरागवान्
पार्वत्या सहितो रुद्रः पर्वते गीतनादिते । मोदते पूजितो ध्येयः पितॄणांपरमांगतिम्
गयायां परमात्मा हि गोपतिर्वा गदाधरः । ह्रीयते वैष्णवी माया तथारुद्रार्चयामुने
शिलाया दक्षिणे हस्तेभस्मकूटोगिरिर्धृतः । धर्मराजेनतत्राऽऽस्तेअगस्त्यःसहभार्यया
अगस्त्यस्यपदे स्नातः पिण्डदो ब्रह्मलोकगः । ब्रह्मणस्तु वरं लेभेमाहात्म्यंभुविदुर्लभम्
लोपामुद्रां तथा भार्यां पितॄणां परमां गतिम् । तत्रागस्त्येश्वरं दृष्ट्वामुच्यतेब्रह्महत्यया
अगस्त्यञ्च सभार्यं च पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् । दण्डिनाऽथ तपस्तेपेसीताद्रेर्दक्षिणेगिरौ
वटो वटेश्वरस्तत्र स्थितश्च प्रपितामहः । तदग्रे रुक्मिणीकुण्डं पश्चिमे कपिलानदी ॥
कपिलेशो नदीतीरे अमासोमसमागमे ॥ ५७ ॥

कपिलायां नरः स्नात्वाकपिलेशंसमर्च्य च । कृतेश्राद्धेपिण्डदानेपितरोमोक्षमाप्नुयुः

तत्र गृध्रगुहायाञ्चपिण्डदःशिवलोकभाक् । तत्र माहेश्वरीधारापिण्डदःस्वर्नयेत्पितॄन्
मूलक्षेत्रं सरस्तत्र पिण्डदो ब्रह्मलोकभाक् । ऋणमोक्षं पापमोक्षं शिवंदृष्ट्वाशिवंव्रजेत्
आदिपालेन गिरिणा समाक्रान्तं शिलोदरम् ।
यत्राऽऽस्ते गजरूपेण विघ्नेशो विघ्ननाशनः ॥
नाभौ च पिण्डदो यस्तु पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ३५ ॥

नितम्बे मुण्डपृष्ठस्य देवदारुवनं त्वभूत् । मुण्डपृष्ठेऽरविन्दाद्रिं दृष्ट्वा पापं विनाशयेत्
क्रौञ्चरूपेणसंविष्टोमुनिस्तत्रतपोऽकरोत् । तस्यपादाङ्कितोयस्मात्क्रौञ्चपादःप्रकीर्तितः
स्नातो जलाशये तत्र नयेत्स्वर्गंकुलत्रयं । शिलायांव्यक्तरूपेणव्यक्ताव्यक्तात्मनास्थितः
लक्ष्मीशो विबुधैः सार्धं तस्माद्देवमयी शिला ॥ इति ।

अग्निधारा गिरिवरादागतोद्यन्तकादनु । तत्र सारस्वतं कुण्डं सरस्वत्या प्रकल्पितम्
शुक्रस्तत्र सुतैः सार्धं स(ष)ण्डामर्कादिभिः प्रभुः । तत्रतत्रमुनीन्द्राणांपदेषुमुनिसत्तम
श्राद्धपिण्डादिकृत्स्नातः पितृंस्तारयते नरः ॥ ६० ॥
शिलाया वामहस्तेऽपि गृध्रकूटो गिरिर्धृतः । गृध्ररूपेण संसिद्धास्तपस्तप्त्वामहर्षयः
अतो गिरिर्गृध्रकूटस्तत्र गृध्रेश्वरः स्थितः । दृष्ट्वा गृध्रेश्वरं नत्वा यायाच्छम्भोःपदंनरः
तत्र गृध्रे गृहायाञ्च पिण्डदः शिवलोकभाक् । तत्र गृध्रेवटंनत्वाप्राप्तकामोदिवंव्रजेत्
ऋणमोक्षं पापमोक्षं शिवं दृष्ट्वा शिवं व्रजेत् ।
शूलक्षेत्रं च तत्राऽऽस्ते पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन् ॥ ६४ ॥
आदिपालेनगिरिणासमाक्रान्तंशिलोदरम् । तत्राऽऽस्तेगजरूपेणविघ्नेशोविघ्ननाशनः
तं दृष्ट्वा मुच्यते विघ्नैः पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ६५ ॥
नितम्बे मुण्डपृष्ठस्य देवदारुवनं त्वभूत् । मुण्डपृष्ठारविन्दाद्री दृष्ट्वा पापं विनाशयेत्॥
गयानाभौ सुषुम्नायां पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन् ॥ ६६ ॥
शिलाया वामपादे तु स्थापितः प्रेतपर्वतः । धर्मराजेन पापेभ्यो गिरिः प्रेतशिलाह्वयः
पादेन दूरे निक्षिप्तः शिलायाःपादभारतः । गतः शिलायाः संसर्गात्प्रेतकूटःपवित्रताम्
प्रेतकुण्डं च तत्राऽऽस्ते देवास्तत्र पदे स्थिताः ।
तत्र कुण्डादिकं कृत्वा प्रेतत्वान्मोचयेत्पितॄन् ॥ ६९ ॥
पृथक्स्थिताश्च बहवो विघ्नकारिण एव ते । श्राद्धादिकारिणांनृणांतीर्थेपितृविमुक्तये
प्रेता धानुष्करूपेण करग्रहणकारकाः ॥ ७० ॥
पादाङ्कितां मुण्डपृष्ठां महादेवनिवासिनीम् । तां दृष्ट्वा सर्वलोकश्चमुक्तःपापोपपातकैः
गयाशिरसि पुण्ये च सर्वपापविवर्जिते । प्रेतादिवर्जितं यस्मात्ततोऽतिपावनं वरम्
कीकटेषु गयापुण्या पुण्यं राजगृहंवनम् । च्यवनस्याऽऽश्रमं पुण्यं नदीपुण्यापुनःपुनः
वैकुण्ठो लोहदण्डश्च गृध्रकूटश्च शोणकः । अत्र श्राद्धादिना सर्वान्पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत्
क्रौञ्चरूपेण हि मुनिर्मुण्डपृष्ठे तपोऽकरोत् ।
तस्य पादाङ्कितो यस्मात्क्रौञ्चपादस्ततः स्मृतः ॥ ७५ ॥

स्नातोजलाशयेतत्रनयेत्स्वर्गंस्वकंकुलम् । बलिःकाकशिलायाञ्चकाकेभ्यःऋणमोक्षदः
मुण्डपृष्ठस्य सानौ हि लोमशो लोमहर्षणः । द्वावेतौ परमं तप्त्वातपः सिद्धिपरांगतौ
आहूतास्तु सरिच्छ्रेष्ठा लोमशेन महानदी । शरावती वेत्रवती चन्द्रभागासरस्वती ॥
कावेरी सिन्धुरीरा च चन्दना च सरिद्वरा । वाशिष्ठी सरयूर्गङ्गायमुनागण्डकीन्दिरा
महावैतरणीनाम्नानिक्षराचदिवौकसः । सावव्यलकनन्दा(?) च उदीचीकनकाह्वया
कौशिकी ब्रह्मदा ज्येष्ठासर्वस्याघविमोचिनी । कृष्णवेण्याचर्मवतीद्वेनद्यौमुक्तिदायिके
आंहूते सरितां श्रेष्ठे लोमहर्षेण साहसात् । तपसस्तु प्रभावेण नर्मदा मुनिपुङ्गव ॥

तासु सर्वासु यः स्नात्वा पिडदः स्वर्नयेत्पितृन् ॥ ८२ ॥

ब्रह्मयोनिं प्रविश्याऽथनिर्गच्छेद्यस्तुमानवः । परं ब्रह्म स यातीहविमुक्तोयोनिसंकटात्
निक्षरायांपुष्करिण्यांस्नातःश्राद्धादिकंनरः । कुर्यात्क्रौञ्चपदेदिव्येनियमाद्वासरत्रयम्
[श्राद्धं सपिण्डकंकृत्वा पितॄन्ब्रह्मपुरंनयेत् । जनार्दनायमेषाय समभ्यर्च्य यथाविधि]

सर्वान्पितॄन्नयेत्स्वर्गं पञ्च पापिन एव च ॥ ८४ ॥

जनार्दनोभस्मकूटेतस्यहस्तेतुपिण्डदः । आत्मनोऽप्यथवाऽन्येषांसव्येनापितिलैर्विना

जीवतां दधिसंमिश्रं सर्वे ते विष्णुलोकगाः ॥ ८५ ॥

यस्तु पिण्डो मया दत्तस्तवहस्तेजनार्दन । यदुद्दिश्यत्वयादेयस्तस्मिन्पिण्डोमृतेप्रभो
एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन । अन्तकाले गते मह्यं त्वया देयो गयाशिरे
जनार्दन नमस्तुभ्यं नमस्ते पितृमोक्षद । पितृपदे नमस्तेऽस्तु नमस्ते पितृरूपिणे ॥
गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः । तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात्
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ऋणत्रयविमोचक । लक्ष्मीकान्त नमस्तेऽस्तु पितॄणांमोक्षदोभव
वामजानुंसुसंपात्यनत्वाभीमोजनार्दनम् । श्राद्धंसपिण्डकंकृत्वाभ्रातृभिर्ब्रह्मलोकभाक्

पितृभिः सह धर्मात्मा कुलानां च शतेन च ॥ ९१ ॥

शिलायांव्यक्तरूपेणव्यक्ताव्यक्तात्मनास्थितः।लक्ष्मीशोविबुधैःसार्धंतस्माद्देवमयीशिला
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नामाष्टोत्तरशततमोऽध्यायः

———

नवाधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यवर्णनम्

नारद उवाच

कथंव्यक्तस्वरूपेणस्थितश्चाऽऽदिगदाधरः।कथंव्यक्तस्वरूपेणव्यक्ताव्यक्तात्मनास्थितः
कथं गदा समुत्पन्ना यथा ह्यादिगदाधरः। गदालोलंकथंचाऽऽसीत्सर्वपापक्षयङ्करम्

सनत्कुमार उवाच

गदो नामासुरोह्यासीद्वज्राद्वज्रतरोदृढः। प्रार्थितोब्रह्मणेप्रादात्स्वशरीरास्थिदुस्त्यजम्
ब्रह्मोक्तोविश्वकर्माऽपिगदांचक्रेऽद्भुतां तदा। तदस्थिवज्रनिष्पेषैःकुन्दैःस्वर्गेह्यधारयत्
अथ कालेन महता मनौ स्वायम्भुवे क्वचित्। हेती रक्षो ब्रह्मपुत्रस्तपस्तेपे सुदारुणम्
दिव्यवर्षसहस्राणां शतं वायुमभक्षयत्। उन्मुखश्चोर्ध्वबाहुश्च पादाङ्गुष्ठभरेण ह ॥६॥
एकेनातिष्ठदव्यग्रः शीर्णपर्णानिलाशनः। ब्रह्मादींस्तपसा तुष्टान्वरं वव्रे वरप्रदान् ॥
देवैर्दैत्यैश्च शस्त्रास्त्रैर्विविधैर्मनुजादिभिः। कृष्णेशानादिचक्राद्यैरवध्यः स्यां महाबलः
तथेत्युक्त्वाऽन्तर्हितास्ते हेतिर्देवानथाजयत्। इन्द्रत्वमकरोद्धेतिर्भीता ब्रह्महरादयः ॥
हरिं ते शरणं जग्मुरूचुर्हेतिं जहीति तम्। ऊचे हरिरवध्योऽयं हेतिर्देवासुरैः सुराः

महास्त्रं मे प्रयच्छध्वं हेतिं हन्मि हि येन तम्।
इत्युक्तास्ते ततो देवा गदां तां हरये ददुः ॥ ११ ॥

दधार तां गदामादौ देवैरुक्तो गदाधरः। गदया हेतिमाहत्य देवैः स त्रिदिवं ययौ
गदामादाववष्टभ्यगयासुरशिरःशिलाम्। निश्चलार्थंस्थितोयस्मात्तस्मादादिगदाधरः
शिलापर्वतरूपेण व्यक्त आदिगदाधरः। शिलासौ मुण्डपृष्ठाद्रिः प्रभासोनामपर्वतः॥
उद्यन्तो गीतनादश्च भस्मकूटोगिरिर्महान्। गृध्रकूटःप्रेतकूटश्चाऽऽदिपालोऽरविन्दकः

पञ्चलोकः सप्तलोको वैकुण्ठो लोहदण्डकः।
क्रौञ्चपादोऽक्षयवटः फल्गुतीर्थं मधुश्र(स्र)वा ॥ १६ ॥

दधिकुल्या मधुकुल्या देविका च महानदी । वैतरण्यादिरूपेण व्यक्त आदिगदाधरः॥
विष्णोः पदं रुद्रपदं ब्रह्मणः पदमुत्तमम् । कश्यपस्य पदं दिव्यं द्वौ हस्तौ यन्त्रनिर्गतौ
पञ्चाग्नीनां पदान्यत्र इन्द्रागस्त्यपदे परे । रवेश्च कार्तिकेयस्य क्रौञ्चमातङ्गयोरपि

मुख्यलिङ्गानि सर्वाणि व्यक्ताव्यक्तात्मना स्थितः ।
आद्यो गदाधरश्चैव व्यक्तः श्रीमान्गदाधरः ॥ २० ॥

गायत्री चैव सावित्री संध्या चैव सरस्वती । गयादित्यश्चोत्तरार्को दक्षिणार्कोऽपि नैमिषः
श्वेतार्को गणनाथश्च वसवोऽष्टौ मुनीश्वराः । रुद्राश्चैकादशैवाऽथ तथा सप्तर्षयोऽपरे
सोमनाथश्च सिद्धेशः कपर्दीशो विनायकः । नारायणो महालक्ष्मीर्ब्रह्माश्रीपुरुषोत्तमः
मार्कण्डेयेशः कोटिशो ह्यङ्गिरेशः पितामहः । जनार्दनो मङ्गला च पुण्डरीकाक्षउत्तमः
इत्यादिव्यक्तरूपेण स्थितश्चाऽऽदिगदाधरः । हेतिर्यो राक्षसस्तस्मिन्हतो विष्णुपुरंगतः
ब्रह्मणा सह रुद्राद्यैः कारिते निश्चलेऽसुरे । तुष्टावाऽऽद्यगदापाणिं वेधा हर्षेणनिर्वृतः

ब्रह्मोवाच

गदाधरं व्यपगतकालकल्मषं गयागतं विदितगुणं गुणातिगम् ।
गुहागतं गिरिवरगौरगेहगं गणार्चितं वरदमहं नमामि ॥ २७ ॥
अहःश्रियं त्रिदशगणादिसुश्रियं भवश्रियं दितिभवदारणश्रियम् ।
कलिश्रियं कलिमलमर्दनश्रियं गदाधरं नौमि तमाश्रितश्रियम् ॥ २८ ॥
दृढाद्दृढं परिवृढगाढसंस्तुतं कामाद्भुतं सुदृढमरूढिरूढिगम् ।
तमाढ्यगं दृढदुरिताद्यढौकितं स्वढौकृतं दृढतरगोत्रसूक्तिभम् ॥ २९ ॥
विदेहकं करणकलाविवर्जितं विजन्मकं दिनकरवेदिभूषितम् ।
गदाधरं ध्वनिमुखवर्जितं परं नमाम्यहं सततमनादिमीश्वरम् ॥ ३० ॥
मनोतिगं मतिगतिवर्जितं परं सदाऽद्वयं स्तुतिशिरसि स्तुतं बुधैः ।
चिदात्मकं कलिगतकारणातिगं गदाधरं हृदयगतं नमामि तम् ॥ ३१ ॥

सनत्कुमार उवाच

देवैः सार्धं ब्रह्मणैवंस्तुतश्चाऽऽदिगदाधरः । ऊचे वरं वृणीष्व त्वं वरं ब्रह्मा तमब्रवीत्

शिलायां देवरूपिण्यां न तिष्ठामस्त्वया विना ।
स्थास्यामोऽत्र त्वया सार्धं नित्यं व्यक्तादिरूपिणा ॥ ३३ ॥
एवमस्तु श्रियाः सार्धं स्थितश्चाऽऽदिगदाधरः । लोकानांरक्षणार्थायजगतांमुक्तिहेतवे
सुव्यक्तः पुण्डरीकाक्षो जनार्दन इति श्रुतः ॥ ३४ ॥
वेदैरगम्या या मूर्तिरादिभूता सनातनी । सुव्यक्ताश्वेतकल्पे साभविष्यतितथापुनः ॥
वाराहकल्पे ह्यव्यक्ता व्यक्तिमप्यगमत्पुरा ॥ ३५ ॥
संतारणाय लोकानां देवानां रक्षणाय च । गयाशिरसिसुव्यक्तोभविष्यति न संशयः
ये द्रक्ष्यन्तिसदाभक्त्यादेवमादिगदाधरम् । कुष्ठरोगादिनिर्मुक्तायास्यन्तिहरिमन्दिरम्
ये द्रक्ष्यन्तिसद्दाभक्त्यादेवमादिगदाधरम् । ते प्राप्स्यन्तिधनंधान्यमायुरारोग्यमेव च
कलत्रपुत्रपौत्रादिगुणकीर्तिसुखानि च । श्रद्धया ये नमस्यन्ति राज्यं ब्रह्मपुरं तथा ॥
भुक्त्वा व्रजेयुः सततं पुण्यपुञ्जफलं नराः ॥ ३६ ॥
गन्धदानेन गन्धाढ्यः सौभाग्यं पुष्पदानतः । धूपदानेनराज्याप्तिर्दीपाद्दीप्तिर्भविष्यति
ध्वजदानात्पापहानिर्यात्राकृद्ब्रह्मलोकभाक् ।
श्राद्धपिण्डप्रदो यस्तु विष्णुं नेष्यन्ति वै पितॄन् ॥ ४१ ॥
श्रद्धया ये नमस्यन्ति स्तोत्रेणाऽऽदिगदाधरम् ।
स्तोष्यन्ति च समभ्यर्च्य पितॄन्नेष्यन्ति माधवम् ॥
शिवोऽपि परया प्रीत्या तुष्टावाऽऽदिगदाधरम् ॥ ४२ ॥

शिव उवाच

अव्यक्तरूपो यो देवो मुण्डपृष्ठाद्रिरूपतः । फल्गुतीर्थादिरूपेण नमाम्यादिगदाधरम्
[+]व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण पदरूपेण संस्थितः । मुखादिलिङ्गरूपेणनमाम्यादिगदाधरम् ॥

[+]इतोऽग्रे मुद्रितपुस्तकटिप्पण्यामुपलभ्यन्तेऽधिकाःश्लोकास्ते च यथा—
गृहाच्चलितमात्रेण गयायां गमनं प्रति । स्वर्गारोहणसोपानं पितॄणां च पदे पदे ॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य यत्फलं गच्छतो गयाम् । तत्फलं च भवेन्नित्यं समग्रंनात्रसंशयः
ततो गयां समासाद्य स्नातव्यं तत्र निश्चयम् ॥ इति ।

अव्यक्तरूपो यो देवो जनार्दनस्वरूपतः । मुण्डपृष्ठे स्वयं जातो नमाम्यादिगदाधरम्
शिलायां देवरूपिण्यां स्थितंब्रह्मादिभिः सुरैः । पूजितंसत्कृतंदेवैस्तंनमामिगदाधरम्
यंच दृष्ट्वा ततःस्पृष्ट्वापूजयित्वा प्रणम्यच । श्राद्धादौ ब्रह्मलोकाप्तिर्नमाम्यादिगदाधरम्
महदादेश्च जगतो व्यक्तस्यैकं हि कारणम् । अव्यक्तज्ञानरूपं तं नमाम्यादिगदाधरम्
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् । जाग्रत्स्वप्नविनिर्मुक्तं नमाम्यादिगदाधरम् ॥

नित्यानित्यविनिर्मुक्तं सत्यमानन्दमव्ययम् ।
तुरीयं ज्योतिरात्मानं नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ५० ॥

सनत्कुमार उवाच

एवं स्तुतो महेशेन प्रीतो ह्यादिगदाधरः । स्थितो देवः शिलायां स ब्रह्माद्यैर्दैवतैःसह
संस्थितं मुण्डपृष्ठाद्रौ देवमादिगदाधरम् । स्तुवन्ति पूजयन्तीह ब्रह्मलोकं प्रयान्तु ते

धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चाऽर्थमाप्नुयात् ।
कामानवाप्नुयात्कामी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात ॥ ५३ ॥

वन्ध्या च लभते पुत्रं वेदवेदाङ्गपारगम् । राजा विजयमाप्नोति शूद्रश्चसुखमाप्नुयात्
पुत्रार्थी लभते पुत्रानभ्यर्च्याऽऽदिगदाधरम् । मनसा प्रार्थितंसर्वंपूजाद्यैःप्राप्नुयाद्धरैः

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं
नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

दशाधिकशततमोऽध्यायः

गयायात्रामाहात्म्यम्

सनत्कुमार उवाच

गयायात्रां प्रवक्ष्यामि शृणु नारदमुक्तिदाम् । निष्कृतिःश्राद्धकर्तॄणांब्रह्मणागीयतेपुरा

उद्यतश्चेद्गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः । विधाय कार्पटीवेषं कृत्वाग्रामप्रदक्षिणम्
ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम् ।
ततः प्रतिदिनं गच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः ॥ ३॥
प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो नियतः शुचिः । अहंकारविमुक्तो यः स तीर्थफलमश्नुते ॥
यस्य हस्तौ च पादौच मनश्चाऽपि सुसंयतम् । विद्यातपश्चकीर्तिश्चसतीर्थफलमश्नुते
ततो गयाप्रवेशे च पूर्वतोऽस्ति महानदी । तत्र तोयं समुत्पाद्य स्नातव्यं निर्मले जले
देवादींस्तर्पयित्वाऽथश्राद्धंकृत्वायथाविधि । स्ववेदशाखागदितमर्घ्यावाहनवर्जितम् ॥
अपरेऽह्नि शुचिर्भूत्वा गच्छेद्वै प्रेतपर्वते । ब्रह्मकुण्डे ततः स्नात्वादेवादींस्तर्पयेत्सुधीः
कुर्याच्छ्राद्धंसपिण्डानांप्रयतःप्रेतपर्वते । प्राचीनावीतिनाभाव्यं दक्षिणाभिमुखः सुधीः
कव्यवाहोऽनलः सोमोयमश्चैवाऽर्यमातथा । अग्निष्वात्तावर्हिषदः सोमपाःपितृदेवताः
आगच्छन्तु महाभागा युष्माभी रक्षितास्त्विह ।
मदीयाः पितरो येच कुले जाताः सनाभयः ॥ ११ ॥
तेषां पिण्डप्रदानार्थं मागतोऽस्मि गयामिमाम् ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु श्राद्धेनानेनशाश्वतीम् ॥ १२ ॥
आचम्योक्त्वा च पञ्चाङ्गं प्राणायामं प्रयत्नतः । पुनरावृत्तिरहितब्रह्मलोकाप्तिहेतवे ॥
एवंचविधिवच्छ्राद्धंकृत्वापूर्वंयथाक्रमम् । पितृनावाह्यचाभ्यर्च्यमन्त्रैः पिण्डप्रदोभवेत्
तीर्थे प्रेतशिलादौ च चरुणा सघृतेन वा । प्रक्षाल्य पूर्वंतत्स्थानंपञ्चगव्यैःपृथक्पृथक्
तैर्मन्त्रैरथ सम्पूज्य पञ्चगव्यैश्च देवताम् ॥ १५ ॥
यावत्तिला मनुष्यैश्चगृहीताःपितृकर्मसु । गच्छन्तितावदसुराः सिंहत्रस्ता यथा मृगाः
अष्टकासु च वृद्धौच गयायांच मृतेऽहनि । मातुः श्राद्धं पृथक्कुर्यादन्यत्र पतिना सह
वृद्धिश्राद्धे तु मात्रादि गयायां पितृपूर्वकम् । पाद्यपूर्वं समारभ्यदक्षिणाग्रकुशैःक्रमात्
पित्रादीनां समास्तीर्य शेषं गृह्योक्तमाचरेत् ॥ १८ ॥
दद्युः श्राद्धंसपिण्डानांतेषांदक्षिणभागतः । कुशानास्तीर्यविधिनासकृद्दत्वातिलोदकम्
गृहीत्वाऽञ्जलिनातेभ्यः पितृतीर्थेन यत्नतः । सक्तुना मुष्टिमात्रेण दद्यादक्षय्यपिण्डकम्

× सम्बन्धिनस्तिलाद्भिश्च कुशेष्वावाहयेत्ततः ॥ २० ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः । तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः॥२१॥

अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम् । आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम्

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही ॥२३॥

मातामहस्तत्पिता च प्रमातामहकादयः । तेषां पिण्डो मया दत्तोह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम्

मुष्टिमात्रप्रमाणं च आर्द्रामलकमात्रकम् । शमीपत्रप्रमाणं वा पिण्डं दद्याद्गयाशिरे ॥

उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलानि शतमुद्धरेत् ॥ २५ ॥

पितुर्मातुःस्वभार्यायाभगिन्यादुहितुस्तथा । पितृष्वसुर्मातृष्वसुःसप्तगोत्राःप्रकीर्तिताः

चतुर्विंशतिर्विंशश्च षोडश द्वादशैव हि । रुद्रादिवसवश्चैव कुलान्येकोत्तरं शतम् ॥२७

नाऽऽवाहनंनदिग्बन्धोनदोषो दृष्टिसम्भवः । न कारुण्येनकर्तव्यं तीर्थश्राद्धं विचक्षणैः

पिण्डासनं पिण्डदानं पुनः प्रत्यवनेजनम् । दक्षिणा चान्नसङ्कल्पंतीर्थश्राद्धेस्वयंविधिः

अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषांनविद्यते । आवाहयिष्ये तान्सर्वान्दर्भपृष्ठे तिलोदकैः

मातामहकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते । आवाहयिष्ये तान्सर्वान्कुशपृष्ठे तिलोदकैः

बन्धुवर्गकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते । आवाहयिष्ये तान्सर्वान्दर्भपृष्ठे तिलोदकैः॥

इत्येतैर्मन्त्रैः सजलैस्तिलैर्दर्भेषु ध्यानवान् ।
आवाह्याऽभ्यर्च्य तेभ्यश्च पिण्डान्दद्याद्यथाक्रमम् ॥ ३३ ॥

अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्

× इतःपूर्वं मुद्रितपुस्तकेऽयं ग्रन्थोऽधिक उपलभ्यते सोऽयम्—

पायसेनापि चरुणा सक्तुना पिष्टकेन च । गुडेन तण्डुलाद्यैर्वा पिण्डदानं विधीयते ॥

मुष्टिमात्रप्रमाणेन चाऽऽर्द्रामलकमात्रतः । शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्याद्गयाशिरे ॥२॥

उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरंशतम् । मातापिताच भार्याच भगिनी दुहितुः पतिः

पितृष्वसामातृष्वसासप्तगोत्राःप्रकीर्तिताः।विंशतिर्विंशतिःपित्रोरष्टेन्द्राःषोडशक्रमात्

एकादश द्वादशाऽथ कुलान्येकोत्तरं शतम् । पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥५

माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही । मातामहस्तत्पिता च प्रमातामहकादयः ॥

तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ ६ ॥ इति ।

मातामहकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥
बन्धुवर्गकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥
अजातदन्ता ये केचिद्ये च गर्भे प्रपीडिताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्
अग्निदग्धाश्च ये केचिन्नाग्निदग्धास्तथाऽपरे । विद्युच्चौरहतायेच तेभ्यः पिण्डंददाम्यहम्

दावदाहे मृता ये च सिंहव्याघ्रहताश्च ये ।
दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वाऽपि तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ३६ ॥

उद्बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये । आत्मापघातिनोयेच तेभ्यः पिण्डंददाम्यहम्
अरण्ये वर्त्मनि वने क्षुधया तृषया हताः । भूतप्रेतपिशाचाद्यैस्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्
रौरवे चान्धतामिश्रे(स्रे) कालसूत्रेचयेगताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्
असिपत्रवने घोरे कुम्भीपाकेषु ये गताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥
अनेकयातनासंस्थाः प्रेतलोकं च ये गताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्
अनेकयातनासंस्था ये नीता यमकिङ्करैः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥
नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्
पशुयोनिगता येच पक्षिकीटसरीसृपाः । अथवा वृक्षयोनिस्थास्तेभ्यः पिण्डंददाम्यहम्
जात्यन्तरसहस्रेषु भ्रमन्तः स्वेन कर्मणा । मानुष्यं दुर्लभंयेषां तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्
दिव्यन्तरीक्षभूमिष्ठाः पितरो बान्धवादयः । मृताअसंस्कृतायेचतेभ्यः पिण्डंददाम्यहम्
ये केचित्प्रेतरूपेण वर्तन्ते पितरो मम । ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा ॥

येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ ५१ ॥

पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे च ये मृताः । गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्येबान्धवा मृताः
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः । क्रियालोपगतायेचजात्यन्धाःपङ्गवस्तथा
विरूपाआमगर्भाश्चज्ञाताज्ञाताः कुले मम । तेषां पिण्डोमयादत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम्

आ ब्रह्मणो ये पितृवंशजाता मातुस्तथा वंशभवा मदीयाः ।
कुलद्वये ये मम दासभूता भृत्यास्तथैवाऽऽश्रितसेवकाश्च ॥ ५४ ॥

मित्राणि शिष्याः पशवश्च वृक्षा दृष्टा ह्यदृष्टाश्च कृतोपकाराः ।
जन्मान्तरे ये मम सङ्गताश्च तेभ्यः स्वधा पिण्डमहं ददामि ॥ ५७ ॥
एतैश्चसर्वमन्त्रैस्तुस्त्रीलिङ्गान्तंसमुह्यच । पिण्डान्दद्याद्यथापूर्वंस्त्रीणांमात्रादिकात्क्रमात्
स्वगोत्रे परगोत्रेवादम्पत्योःपिण्डपातनम् । अपृथङ्निष्फलंश्राद्धंपिण्डंचोदकतर्पणम्
पिण्डपात्रे तिलान्क्षिप्त्वा पूरयित्वा शुभोदकैः ।
मन्त्रेणानेन पिण्डांस्तान्प्रदक्षिणयथाक्रमम् ॥
परिषिच्य त्रिधा सर्वान्प्रणिपत्य समापयेत् ॥ ५८ ॥
पितॄन्विसृज्य चाऽऽचम्य साक्षिणः श्रावयेत्सुरान् ।
साक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्मेशानादयस्तथा ॥
मया गयां समासाद्य पितॄणां निष्कृतिः कृता ॥ ५९ ॥
आगतोऽस्मि गयां देव पितृकार्ये गदाधर । त्वमेव साक्षी भगवन्ननृणोऽहमृणत्रयात्
सर्वस्थानेषु चैवं स्यात्पिण्डदानं तु नारद । प्रेतपर्वतमारभ्य कुर्यात्तीर्थेषु च क्रमात्
तिलमिश्रांस्ततः सक्तून्निक्षिपेत्प्रेतपर्वते । अपसव्येन देवर्षे दक्षिणाभिमुखेन च ॥६२॥
ये केचित्प्रेतरूपेण वर्तन्ते पितरो मम । ते सर्वे तृप्तिमायान्तु सक्तुभिस्तिलमिश्रितैः ॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चित्सचराचरम् । मया दत्तेन तोयेन तृप्तिमायान्तु सर्वशः
प्रेतत्वाच्चविमुक्ता स्युः पितरस्तस्यनारद । प्रेतत्वंतस्यमाहात्म्यात्कुले चापि न जायते
नाम्ना प्रेतशिलाख्याता गयाशिरसिमुक्तये । तीर्थमन्त्रादिरूपेणस्थितश्चाऽऽदिगदाधरः

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं नाम
दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्ये उत्तरमानसीर्थें पितृमुक्त्यर्थस्नानादिविधिकथनम्

सनत्कुमार उवाच

आदौ तु पञ्चतीर्थेषु चोत्तरेमानसेविधिः । आचम्य कुशहस्तेनशिरश्चाभ्युक्ष्यवारिणा
उत्तरं मानसं गच्छेन्मन्त्रेण स्नानमाचरेत् । उत्तरे मानसे स्नानं करोम्यात्मविशुद्धये
सूर्यलोकादिसंसिद्धिसिद्धये पितृमुक्तये । स्नानार्थंतर्पणंकृत्वाश्राद्धंकुर्यात्सपिण्डकम्
मानसं हि सरोह्यत्र तस्मादुत्तरमानसम् । सूर्यं नत्वाऽर्चयित्वाऽथसूर्यलोकंनयेत्पितॄन्
नमो भगवते भर्त्रे सोमभौमज्ञरूपिणे । जीवभार्गवसौरेयराहुकेतुस्वरूपिणे ॥ ५ ॥
उत्तरान्मानसान्मौनी व्रजेद्दक्षिणमानसम् । उदीचीतीर्थमित्युक्तंतत्रौदीच्यंविमुक्तिदम् ।
अत्र स्नातो दिवं याति स्वशरीरेण मानवः ॥ ६ ॥
मध्ये कनखलं तीर्थं त्रिषुलोकेषु विश्रुतम् । स्नातः कनकवद्भातिनरोयाति पवित्रताम्
तस्य दक्षिणभागे च तीर्थं दक्षिणमानसम् । दक्षिणे मानसे चैव तीर्थत्रयमुदाहृतम्
स्नात्वा तेषु विधानेन कुर्याच्छ्राद्धं पृथक्पृथक् ।
दक्षिणे मानसे स्नानं करोम्यात्मविशुद्धये ॥ ६ ॥
सूर्यलोकादिसंसिद्धिसिद्धये पितृमुक्तये । ब्रह्महत्यादिपापौघयातनाय विमुक्तये ॥१०॥
दिवाकर करोमीह स्नानं दक्षिणमानसे । सूर्यं नत्वाऽर्चयित्वाचसूर्यलोकं नयेत्पितॄन्
नमामि सूर्यं तृप्त्यर्थं पितॄणां तारणाय च । पुत्रपौत्रधनैश्वर्यायाऽऽयुरारोग्यवृद्धये ॥
फल्गुतीर्थं व्रजेत्तस्मात्सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् । मुक्तिर्भवति कर्तॄणांपितॄणांश्राद्धतःसदा
ब्रह्मणा प्रार्थितोविष्णुःफल्गुको ह्यभवत्पुरा । दक्षिणाग्नौहुतंतत्र तद्रजःफल्गुतीर्थकम्
तीर्थानि यानि सर्वाणिभुवनेष्वखिलेष्वपि । तानिस्नातुंसमायान्तिफल्गुतीर्थंसुरैःसह
गङ्गापादोदकंविष्णोः फल्गुर्ह्यादिगदाधरः । स्वयं हि द्रवरूपेणतस्माद्गङ्गाधिकंविदुः॥
अश्वमेधसहस्राणां सहस्रं यः समाचरेत् । नासौतत्फलमाप्नोतिफल्गुतीर्थेयदाप्नुयात्

फल्गुतीर्थे नरःस्नात्वा तर्पणं श्राद्धमाचरेत् । सपिण्डकं स्वसूत्रोक्तंनमेदथ पितामहम्
नमः शिवाय देवाय ईशाय पुरुषाय वै । अघोरवामदेवाय सद्योजाताय शम्भवे॥१९॥
फल्गुतीर्थे नरःस्नात्वा दृष्ट्वा देवंगदाधरम् । आत्मानं तारयेत्सद्योदश पूर्वान्दशापरान्
ज्ञत्वा गदाधरं देवं मन्त्रेणानेन पूजयेत् । ओं नमो वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥
प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय श्रीधराय च विष्णवे ॥ २१ ॥
पञ्चतीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् । अमृतैःपञ्चभिःस्नानंपुष्पवस्त्राद्यलङ्कृतम्
न कुर्याद्यो गदापाणेस्तस्य श्राद्धं निरर्थकम् ॥ २२ ॥
नागकूटाद्गृध्रकूटाद्यूपादुत्तरमानसात । एतद्गयाशिरः प्रोक्तं फल्गुतीर्थं तदुच्यते ॥
प्रथमेऽह्नि विधिःप्रोक्तोद्वितीयेदिवसे व्रजेत् । धर्मारण्यं तत्र धर्मो यस्माद्यज्ञमकारयत्
गमनाद्ब्रह्मलोकाप्तिर्भवत्येव हि नारद ! ॥ २३ ॥
मतङ्गवाप्यां यः स्नात्वा तर्पणंश्राद्धमाचरेत् । गत्वानत्वा मतङ्गेशमिमं मन्त्रमुदीरयेत्
प्रमाणं देवताः सन्तु लोकपालाश्च साक्षिणः ।
मयाऽऽगत्य मतङ्गेऽस्मिन्पितॄणां निष्कृतिः कृता ॥ २५ ॥
पूर्वं हि ब्रह्मतीर्थे च कूपे श्राद्धादिकारयेत् । तत्कूपयूपयोर्मध्ये सर्वांस्तारयते पितॄन्
धर्मं धर्मेश्वरं नत्वा महाबोधितरुं नमेत् ॥ २६ ॥
नमस्तेऽश्वत्थराजाय ब्रह्मविष्णुशिवात्मने । बोधिद्रुमाय कर्तॄणांपितॄणां तारणायच
येऽस्मत्कुलेमातृवंशेबान्धवादुर्गतिंगताः । त्वद्दर्शनात्स्पर्शनाच्चस्वर्गतिंयान्तुशाश्वतीम्
ऋणत्रयं मया दत्तं गयामागत्यवृक्षराट् । त्वत्प्रसादान्महापापाद्विमुक्तोऽहंभवार्णवात्
तृतीये ब्रह्मसरसि स्नात्वा श्राद्धं सपिण्डकम् । कृत्वा सर्वप्रमाणेनमन्त्रेणविधिवत्सुत
स्नानं करोमि तीर्थेऽस्मिन्नृणत्रयविमुक्तये । तत्कूपयूपयोर्मध्ये ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन्
यागं कृत्वोत्थितोयूपो ब्रह्मणायूप इत्यसौ । कृत्वाब्रह्मसरःश्राद्धं सर्वांस्तारयतेपितॄन्
यूपं प्रदक्षिणीकृत्य वाजपेयफलं लभेत् । ब्रह्माणं च नमस्कृत्य ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन्
नमोऽस्तु ब्रह्मणेऽजाय जगज्जन्मादिरूपिणे । भक्तानांचपितॄणांच तारकाय नमो नमः
गोप्रचारसमीपस्था आम्राब्रह्मप्रकल्पिताः । तेषांसेचनमात्रेण पितरोमोक्षगामिनः ॥

आम्रं ब्रह्मसरोद्भूतं ब्रह्मदेवमयं तरुम् । विष्णुरूपं प्रसिञ्चामि पितृणां मुक्तिहेतवे ॥

एको मुनिः कुम्भकुशाग्रहस्त आम्रस्य मूले सलिलं ददानः ।

आम्रश्च सिक्तः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा ॥ ३७ ॥

ततो यमबलिं दद्यान्मन्त्रेणानेन संयतः । यमराजधर्मराजौ निश्चलार्थं व्यवस्थितौ ॥

ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि पितृणां मुक्तिहेतवे ॥ ३८ ॥

ततः श्वानबलिं दद्यान्मन्त्रेणानेन नारद । द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ

ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि रक्षेतां पथि सर्वदा ॥ ३९ ॥

ततः काकबलिं दद्यान्मन्त्रेणानेन नारद । ऐन्द्रवारुणवायव्ययाम्या वै नैर्ऋतास्तथा॥

वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं समर्पितम् ॥ ४० ॥

फल्गुतीर्थे चतुर्थेऽह्नि स्नानादिकमथाऽऽचरेत् ।

गयाशिरस्यथ श्राद्धं पादे कुर्यात्सपिण्डकम् ॥

साक्षाद्गयाशिरस्तत्र फल्गुतीर्थाश्रितं कृतम् ॥ ४१ ॥

नागाज्जनार्दनाद्ब्रह्मयूपाच्चोत्तरमानसात् । एतद्गयाशिरः प्रोक्तं फल्गुतीर्थं तदुच्यते ॥

पितामहं समासाद्य यावदुत्तरमानसम् । फल्गुतीर्थं तु विज्ञेयं देवानामपि दुर्लभम् ॥

क्रौञ्चपादात्फल्गुतीर्थं यावत्साक्षाद्गयाशिरः । मुखं गयासुरस्यैतत्तस्माच्छ्राद्धमिहाक्षयम्

मुण्डपृष्ठान्नगाधस्तात्साक्षात्तत्फल्गुतीर्थकम् ।

आद्यो गदाधरो देवो व्यक्ताव्यक्तात्मना स्थितः ॥

विष्णवादिपदरूपेण पितृणां मुक्तिहेतवे ॥ ४५ ॥

एतद्विष्णुपदं दिव्यं दर्शनात्पापनाशनम् । स्पर्शनात्पूजनाद्वाऽपि पितृणां दत्तमक्षयम्

श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा कुलसाहस्रमात्मना । नयेद्विष्णुपदं दिव्यमनन्तं शिवमव्ययम्

श्राद्धं कृत्वा रुद्रपदे नयेत्कुलशतं नरः । सहाऽऽत्मना शिवपुरं तथा ब्रह्मपदे नरः ॥

ब्रह्मलोकं कुलशतं समुद्धृत्य नयेत्पितॄन् । कश्यपस्यपदेश्राद्धी ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन्

दक्षिणाग्निपदे श्राद्धी पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् । गार्हपत्यपदे श्राद्धी वाजपेयफलं लभेत् ॥

श्राद्धं कृत्वाऽऽहवनीये अश्वमेधफलंलभेत् । श्राद्धंकृत्वासभ्यपदेज्योतिष्टोमफलंलभेत्

आवसथ्यपदे श्राद्धी पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् । श्राद्धं कृत्वा शक्रपदे इन्द्रलोकं नयेत्पितॄन्
अगस्त्यस्य पदे श्राद्धी पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् । क्रौञ्चमातङ्गयोःश्राद्धीब्रह्मलोकंनयेत्पितॄन्
श्राद्धी सूर्यपदे पञ्च पापिनोऽर्कपुरं नयेत् । कार्तिकेयपदे श्राद्धी शिवलोकं नयेत्पितॄन्
गणेशस्य पदे श्राद्धी रुद्रलोकं नयेत्पितॄन् । गजकर्णतर्पणकृन्निर्मलं स्वर्नयेत्पितॄन् ॥
अन्येषाञ्च पदे श्राद्धी पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् । सर्वेषां काश्यपं श्रेष्ठं विष्णोरुद्रस्यवैपदम्

ब्रह्मणश्च पदं चापि श्रेष्ठं तत्र प्रकीर्तितम् ॥ ५६ ॥

प्रारम्भे च सभातौ च तेषामन्यतमं स्मृतम् । श्रेयस्करं भवेत्तत्र श्राद्धकर्तुश्च नारद ॥
कश्यपस्य पदे दिव्येभारद्वाजोमुनिःपुरा । श्राद्धंकृत्वोद्यतोदातुंपित्रादिभ्यश्चपिण्डकम्
शुक्लकृष्णौ ततो हस्तौ पदमुद्भिद्य निर्गतौ । दृष्ट्वा हस्तद्वयं तत्र मुनिः संशयमागतः ॥
ततःस्वमातरं शान्तां पप्रच्छस महामुनिः । कश्यपस्यपदेदिव्ये शुक्लेकृष्णेऽथवा करे

पिण्डो देयो मया मातर्जानासि पितरं वद ॥ ६० ॥

शान्तोवाच

भारद्वाजमहाप्राज्ञ देहिकृष्णायपिण्डकम् । भारद्वाजस्ततःपिण्डंदातुं कृष्णाय चोद्यतः
श्वेतोऽदृश्योऽब्रवीत्तत्रपुत्रस्त्वंहिममौरसः । कृष्णाऽब्रवीन्ममक्षेत्रंततोमेदेहिपिण्डकम्
स्वैरिण्यथाब्रवीद्दातुं क्षेत्रिणे बीजिने ततः । भारद्वाजस्ततःपिण्डं कश्यपस्य पदे ददौ

हंसयुक्तविमानेन ब्रह्मलोकमुभौ गतौ ॥ ६३ ॥

रामो रुद्रपदे श्राद्धे पिण्डदानाय चोद्यतः । पिता दशरथः स्वर्गात्प्रसार्य करमागतः
नादात्पिण्डं करे रामो ददौरुद्रपदे ततः । शास्त्रार्थातिक्रमाद्भीतं रामं दशरथोऽब्रवीत्
तारितोऽहं त्वया पुत्र रुद्रलोकमवाप्नुयाम् । हस्ते पिण्डप्रदानेनस्वर्गतिर्नहिमे भवेत्

त्वं च राज्यं चिरं कृत्वा पालयित्वा द्विजान्प्रजाः ।

विष्णुलोकं व्रजिष्यसि ॥ ६७ ॥

यज्ञान्सदक्षिणान्कृत्वा विष्णुलोकं व्रजिष्यसि ॥ ६७ ॥ इत्युक्त्वाऽसौदशरथो रुद्रलोकं परं ययौ
पुर्ययोध्याजनैःसार्द्धं कृमिकीटादिभिःसह । इत्युक्त्वाऽसौदशरथो रुद्रलोकं परं ययौ
भीष्मोविष्णुपदेश्रेष्ठेआहूयपितरंस्वकम् । श्राद्धंकृत्वोद्यतोदातुंपित्रादिभ्यश्चपिण्डकम्
पितुर्विनिर्गतौ हस्तौ गयाशिरसिशन्तनोः । नादात्पिण्डंकरेभीष्मोददौ विष्णुपदेततः

शन्तनुः प्राह सन्तुष्टःशास्त्रार्थेनिश्चलोभवान् । त्रिकालदृष्टिर्भवतुत्वान्तेविष्णुश्चतेगतिः स्वेच्छयामरणंचास्तु इत्युक्त्वा मुक्तिमागतः । कनकेशञ्च केदारं नारसिंहंच वामनम्

उदीच्यांमार्गे समभ्यर्च्य पितॄन्सर्वांश्च तारयेत ॥ ७२ ॥

गयाशिरसि यः पिण्डान्येषां नाम्ना तु निर्वपेत् ।

नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः ॥ ७३ ॥

सर्वत्र मुण्डपृष्ठाद्रिः पद्मैरेभिः सुलक्षितः । प्रयान्ति पितरः सर्वे ब्रह्मलोकमनामयम् ॥ हेत्यसुरस्य यच्छीर्षं गदयातद्द्विधा कृतम् । ततः प्रक्षालितायस्मात्तीर्थं तच्चविमुक्तये

गदालोलमिति ख्यातं सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥ ७५ ॥

गदालोले महातीर्थे गदाप्रक्षालनाद्धरेः । स्नानं करोमि सिद्ध्यर्थमक्षयं पदमाप्नुयाम् पञ्चमेऽह्नि गदालोलेस्नात्वाकुर्यात्सपिण्डकम् । श्राद्धंपितॄन्ब्रह्मलोकं नयेदात्मानमेवच

ब्रह्मप्रकल्पितान्विप्रान्हव्यकव्यादिनाऽ× र्चयेत् ।

तैस्तुष्टैस्तोषिताः सर्वाः पितृभिः सह देवताः ॥ ७८ ॥

कृते श्राद्धेऽक्षयवटे अन्नेनैव प्रयत्नतः । पितॄन्नयेद्ब्रह्मलोकमक्षयं तु सनातनम् ॥ ७९ ॥ वटवृक्षसमीपे तु शाकेनाप्युदकेन वा । एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवन्तिभोजिताः देयं दानं षोडशकं गयातीर्थपुरोधसे । वस्त्रं गन्धादिभिःपुत्रैःसम्यक्सम्पूज्ययत्नतः+

---

† मुद्रितपुस्तकेऽयं ग्रन्थ अधिकउपलभ्यतेचिह्नाङ्कितेषुस्थलेषुतद्यथा—

गयाशिरसि यः पिण्डं शमीपत्रप्रमाणतः । कन्दमूलफलाद्यैर्वा दद्यात्स्वर्गं नयेत्पितॄन् पदानियत्रदृश्यन्तेविष्णवादीनांतदग्रतः । श्राद्धं कृत्वासपिण्डंच तेषांलोकान्नयेत्पितॄन्

× गयातीर्थवटे चैव पितॄणां दत्तमक्षयम् । दृष्ट्वा नत्वा च सम्पूज्य वटेशंसुसमाहितः

पितॄन्नयेद्ब्रह्मलोकमक्षयं तु सनातनम् ॥ १ ॥

गयायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणस्तथा । गयाशीर्षे वटे चैव पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥

+ स्थिता गयायामन्नादिपर्वताः पञ्चविंशतिः । प्रशंसन्तिद्विजास्तत्रदेशेदेशेसुपूजिताः दानातिशयमालोक्य सर्वेविष्णवादयः सुराः । सन्तुष्टागयराजानंवरान्ब्रूहीति चाब्रुवन्

नैव पूर्वं केऽप्यकुर्वन्न करिष्यन्ति चापरे ॥ ४ ॥ इति ।

एकार्णवे वटस्याग्रे यः शेते योगनिद्रया । बालरूपधरस्तस्मै नमस्ते योगशायिने ॥
संसारवृक्षशस्त्रायाशेषपापहराय च । अक्षयब्रह्मदात्रे च नमोऽक्षयवटाय वै ॥ ८३ ॥
कलौ माहेश्वरा लोका येन तस्माद्गदाधरः । लिङ्गरूपोऽभवत्तंच वन्दे श्रीप्रपितामहम्

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते गयामाहात्म्यं नाम
एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

गयराजस्ययज्ञवर्णनम्

सनत्कुमार उवाच

यज्ञं चक्रे गयोराजा बह्वन्नं बहुदक्षिणम् । यत्र द्रव्यसमूहानांसंख्या कर्तुं न शक्यते ॥
सिकतावायथालोकेयथाच दिवितारकाः । तथा रत्नसुवर्णाद्यैरसंख्यातास्तु दक्षिणाः
नैवेह पूर्वे ये केचिन्न करिष्यन्ति चापरे । प्रशंसन्ति द्विजास्तृप्ता देशे देशे सुपूजिताः
गयं विष्ण्वादयस्तुष्टा वरं ब्रूहीतिचाब्रुवन् । गयस्तान्प्रार्थयामासअभिशप्ताश्च ये पुरा
ब्रह्मणा ते द्विजाः पूता भवन्तुक्रतुपूजिताः† ।+गयापुरीतिमन्नाम्नाख्याताब्रह्मपुरीयथा
एवमस्तु वरं दत्त्वा ततश्चान्तर्दधुः सुराः । गयश्च भोगान्सम्भुज्यविष्णुलोकंपरं ययौ
विशालायां विशालोऽभूद्राजाऽपुत्रोऽब्रवीद्द्विजान् ।
कथं पुत्रादयो मे स्युर्विशालं चाब्रुवन्द्विजाः ॥ ७ ॥

---

† मुद्रितपुस्तकेऽयं ग्रन्थमधिक उपलभ्यतेतद्यथा—
गयाश्राद्धविधानाय द्विजामूर्ताश्चतुर्दश । तेषां वाक्यं प्रकुर्वीत यदि ब्रह्मा स्वयं भवेत्
गौतमं काश्यपंकौत्संकौशिकंकण्वमेवच । भारद्वाजंह्यौशनसं वात्स्यं पाराशरं तथा
हरित्कुमारमाण्डव्यंलोकाक्षिलोकसम्महत् । वाशिष्ठंचतथाऽऽत्रेयंगोत्राण्येषांचतुर्दश
+गृहीत्वा तद्धनंसर्वं निवृत्तोगृहमात्मनः । श्वासंनिःक्षिप्यतत्रासौशेषमादाय निर्ययौ

गयायां पिण्डदानेन तव सर्वं भविष्यति। विशालोऽपिगयाशीर्षेपिण्डदःपुत्रवानभूत्
दृष्ट्वाऽऽकाशेसितंरक्तं कृष्णंपुरुषमब्रवीत्। के यूयं तेषुचैवैकः सितः प्रोचे विशालकम्
अहं सितस्ते जनक इन्द्रलोकादिहाऽऽगतः। मम पुत्र पिता रक्तो ब्रह्महा पापकृत्तमः
अयं पितामहःकृष्णऋषयोयेन घातिताः। अवीचिनरकं प्राप्तौ मुक्तौ त्वत्पिण्डदानतः
पितॄन्पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान्। प्रीणयामीति यत्तोयं त्वया दत्तमरिन्दम॥
तेनास्मद्युगपद्योगो जातो वाक्येन सत्तम। मुक्तिःकृता त्वयापुत्रव्रजामःस्वर्गमुत्तमम्
एवं पुत्रैः पितॄणां च कर्तव्या मुक्तिरुत्तमा॥ १३॥
त्वं च राज्यं चिरं कृत्वा भुक्त्वा भोगांश्च दुर्लभान।
यज्ञान्सदक्षिणान्कृत्वा याया विष्णुपुरं ततः॥ १४॥
एवं लब्धवरो राजा राज्यं कृत्वा दिवं गतः। प्रेतराजः सह प्रेतैर्गयाश्राद्धाद्दिवं गतः
प्रेतः कश्चिद्विमुक्त्यर्थंवणिजं कञ्चिदब्रवीत्। ममनाम्ना गयाशीर्षेपिण्डनिर्वापणंकुरु
प्रेतभावविमुक्त्यर्थं त्वं गृहाण धनं मम। तद्धनं सर्वमादाय गयाश्राद्धव्ययं कुरु॥
धनस्यैतस्य षष्ठांशंतुभ्यंवैदत्तवानहम्। स्वनामानियथान्यायंसम्यगाख्यातवानहम्॥
गत्वा गयांगयाशीर्षेप्रेतराजायपिण्डकम्। समदाद्बन्धुभिःसार्धंस्वपितृभ्यस्ततोददौ
प्रेतः प्रेतत्वनिर्मुक्तो वणिक्स्वगृहमागतः। एवं गयस्यशम्भोश्च क्षेत्रं विष्णोरवेस्तथा
उपोषितोऽथगायत्रीतीर्थेमहानदीस्थिते। गायत्र्याःपुरतःस्नात्वाप्रातःसंध्यामुपासयेत्
श्राद्धं सुपिण्डकं कृत्वा नयेद्ब्रह्मण्यतां कुलम्॥ २१॥
तीर्थे समुदितेस्नात्वा सावित्र्याःपुरतोनरः। संध्यामुपास्य मध्याह्नेनयेत्कुलशतंदिवम्
पिण्डदानं ततः कुर्यात्पितॄणां मुक्तिकाम्यया॥ २२॥
प्राचीसरस्वतीतीर्थे स्नात्वा चाऽपि यथाविधि।
सन्ध्यामुपास्य सायाह्ने विष्णुलोकं नयेत्पितॄन्॥
बहुजन्मकृतात्सन्ध्यालोपान्मुक्तस्त्रिसन्ध्यकृत्॥ २३॥
विशालायां लेलिहाने तीर्थे च भरताश्रमे। पादाङ्किते मुण्डपृष्ठे गदाधरसमीपतः॥
तीर्थेचाऽऽकाशगङ्गायांगिरिकर्णमुखेषु च। स्नातोऽथपिण्डदोब्रह्मलोकंकुलशतंनयेत्

देवनद्यां वैतरण्यां स्नातः स्वर्गं नयेत्पितॄन्। स्नातोगोदोवैतरण्यांत्रिःसप्तकुलमुद्धरेत्॥
सत्यं सत्यं पुनःसत्यंवैतरण्यां तु नारद। एकविंशति कुलान्याहुस्तारयेन्नात्रसंशयः+
×या सा वैतरणी नाम्न नदीत्रैलोक्यविश्रुता। साऽवतीर्णागयाक्षेत्रेपितॄणांतारणायवै
×त्रिरात्रोपोषणेनैव तीर्थाभिगमनेन च। अदत्त्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रोजायतेनरः÷

+मुद्रितपुस्तकटिप्पण्यामधिकं श्लोकद्वयमस्ति तद्यथा—
यमद्वारे महाघोरे या सा वैतरणी नदी। तामहंतर्तुमिच्छामिकृष्णां गां प्रददन्निमाम्
अशक्तो यदि वा शक्तो गोप्रदानंकरोति यः। देवनद्यांगोप्रदानेश्राद्धदःस्वर्नयेत्पितॄन्
×श्लोकात्प्राक् पुस्तकेऽधिकंश्लोकद्वयंउपलभ्यते—
गोदावर्यां वैतरण्यां यमुनायां तथैव च। देवनद्यां गोप्रचारेश्राद्धदः स्वर्नयेत्पितॄन्॥
पुष्करिण्यांघृतकुल्यांमधुकुल्यांतथैव च। कोटितीर्थेरुक्मिणीयेपिण्डदःस्वर्नयेत्पितॄन्
÷इतः परमेते श्लोकाः मुद्रितपुस्तकेऽधिका उपलभ्यन्ते ते यथा—
श्राद्धीकुमारधारायामश्वमेधफलंलभेत्। कुमारमभिगम्याऽथ नत्वामुक्तिमवाप्नुयात्
स्नात्वाचसोमधारायांसोमलोकञ्चगच्छति। सस्वर्नकृन्नरोवाण्यंस्वर्गःस्वर्गंनयेत्पितॄन्
श्रीकृष्णं येऽभ्यर्चयन्ति सुभद्रां बलभद्रकम्। ज्ञानंप्राप्यश्रियंपुत्रान्व्रजन्तिपुरुषोत्तमम्
द्वादशादित्यमभ्यर्च्य सर्वरोगैः प्रमुच्यते। वैश्वानरं समभ्यर्च्यउत्तमांदीप्तिमाप्नुयात्
मन्दारमभिगम्याथ मन्दारेशं प्रपूज्य च। अक्षयं श्रियमाप्नोति महालक्ष्मीं तथा नरः
विद्यां सरस्वतीं नत्वा विद्यापारं गतो भवेत् अभ्यर्चेन्माधवं महदैश्वर्यमाप्नुयात्
नारायणञ्च वाराहं संपूज्य स्वर्गभाग्भवेत्। क्षेत्रपालं समभ्यर्च्यग्रहैर्न क्षैर्नबाध्यते॥
गरुडञ्च समभ्यर्च्य विषवृक्षात्प्रमुच्यते। सिद्धेश्वरं च कालेशं सोमनाथमहेश्वरम्॥
रुद्रेश्वरं लोकनाथं ब्रह्मेशं च कपर्दिनम्। अष्टौ लिङ्गानि गुह्यातिसंपूज्याथशिवंव्रजेत्
पिण्डदश्चम्पकारण्ये चम्पकेशं प्रणम्य च। तथैव जम्बुकारण्ये ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन्
गोकर्णवायुतीर्थे च तृतीयाख्ये जलाशये। श्राद्धीच पुष्करिण्यान्तुब्रह्मलोकंनयेत्पितॄन्
वैतरण्याश्च तरश्वं तृतीयास्यो जलाशयः। तदुत्तरश्चक्रसरस्तदग्रे सागरस्तथा॥
सागरे पिण्डदानेन पितॄणां च परागतिः॥ इति॥

घृतकुल्या मधुकुल्या देविका च महानदी । शिलायाः सङ्गमो यत्र तत्रप्रोक्तामधुश्रवा
अयुतं चाश्वमेधानां स्नानकृल्लभते नरः । श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा पिण्डदानं तथैव च
कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेत्पितॄन् ×॥३१॥
दशाश्वमेधिके हंसतीर्थे चामरकण्टके । कोटितीर्थे रुक्मकुण्डे पिण्डदःस्वर्नयेत्पितॄन्
†वैतरण्यां घृतकुल्यां मधुकुल्यांतथैव च । कोटितीर्थे नरःस्नात्वा दृष्ट्वाकोटीश्वरञ्चयः
कोटिजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्योवेदपारगः । मार्कण्डेयेशकोटीशौनत्वास्यात्पितृतारकः
रुक्मपारिजातवने पार्वत्या सह शङ्करः । रहस्ये संस्थितो रेमे युगानामयुतं पुरा ॥
मरीचिः फलपुष्पार्थं पारिजातवनं गतः । दृष्ट्वा शप्तो महेशेन यस्मात्सुखविघातकः ॥
दुःखी भवेति तद्भीतो मरीचिस्तुष्टुवेशिवम् । तुष्टःप्रोवाच तं शंभुर्वृणीष्ववरमुत्तमम्
शापाद्भवतु मुक्तिर्मेमरीचिःप्राह शङ्करम् । भवेद्गयायांमुक्तिस्तेशिवोक्तः प्रययौगयाम्
शिलास्थितस्तपस्तेपे सर्वेषां दुष्करञ्च यत् । मरीचिरीश्वराच्छप्तः कृष्णत्वमगत्पुरा
तपसा दारुणेनेह स विप्रः शुक्लतां गतः ॥ ३९ ॥
हरिरूचे मरीचिं च वरं वृणु हि पुत्रक । किमलभ्यं त्वयि तुष्टे मरीचिः प्राहमाधवम्
हरशापाद्विमुक्तोऽहं शिला भवतुपावनी । पितृमुक्तिकरी च स्यात्तथेत्युक्त्वादिवंगतः
दिवौकसां पुष्करिणीं समासाद्य नरः शुचिः । यत्र दत्तं पितृभ्यस्तुभवत्यक्षयमित्युत
तत्र स्नातो दिवं याति स्वशरीरेण मानवः । पाप्मानं प्रजहात्येषजीर्णत्वचमिवोरगः
तत्पङ्कजवनं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ॥ ४३ ॥
पाण्डुशिला वै तत्राऽऽस्ते श्राद्धं यत्राऽक्षयं भवेत् ।
युधिष्ठिरस्तु तस्यां हि श्राद्धं कर्तुं ययौ मुने ॥ ४४ ॥

---

†इतउत्तरमविस्पष्टश्लोकोक्वचित्पुस्तकेवर्तते स यथा—
गदाधरद्दक्षिणो यावतीर्थमधुश्रवाः । महानदीगङ्गनञ्च मृतानां स्वर्गकारकम् ॥
× इतउत्तरं मुद्रितपुस्तकेऽयं ग्रन्थ उपलभ्यते सोऽयम्—
वशिष्ठस्याऽऽश्रमंगत्वावाजपेयफलंलभेत् । वशिष्ठेशंनमस्कृत्यतत्कुण्डेपिण्डदोभवेत्

तत्र काले पाण्डुनोक्तं मद्धस्ते देहि पिण्डकम ।
हस्तं त्यक्त्वा शिलायां च पिण्डदानं चकार सः ॥ ४५ ॥
शिलायां पिण्डदानेन प्रहृष्टो व्यासनन्दनः । वरं ददौ स्वपुत्राय राज्यं कुरु महीतले
अकण्टकं तु सम्पूर्णं त्वं मे त्राता हि पुत्रक ॥ ४७ ॥
स्वर्गं व्रज शरीरेण भ्रातृभिः परिवारितः । दृष्टिमात्रेण सम्पूतान्नरकस्थान्दिवं नय ॥
इत्युक्त्वा प्रययौ पाण्डुःशाश्वतंपदमव्ययम् । मतङ्गस्य पदे श्राद्धीब्रह्मलोकंनयेत्पितॄन्
निर्मथ्याग्निंशमीगर्भेविधिर्विष्ण्वादिभि सह । लेभे तीर्थं तु यज्ञार्थंत्रिषुलोकेषुविश्रुतम्
मखसंज्ञं तु तत्तीर्थं पितॄणां मुक्तिदायकम् ।
स्नात्वा च तर्पणं कृत्वा पिण्डदो मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ५१ ॥
पितॄन्स्वर्गं नयेन्नत्वा सङ्गमेऽङ्गारकेश्वरौ । गयाकूटेपिण्डदानादश्वमेधफलंलभेत् ॥
भस्मकूटे भस्मनाथं नत्वा च तारयेत्पितॄन् । त्यक्तपापोभवेन्मुक्त सङ्गमेस्नानमाचरेत्
इष्टिं चक्रेऽश्वमेधाख्यां वशिष्ठो मुनिसत्तमः । इष्टितो निर्गतः शम्भुर्वरं वृणु वशिष्ठकम्
प्राहेति तं वशिष्ठोऽपि शिव तुष्टोऽसि मे यदि ।
वस्तव्यं चाऽत्र देवेश तथेत्युक्त्वा शिवः स्थितः ॥ ५५ ॥
पिण्डदो धेनुकारण्ये कामधेनुपदेषु च । स्नात्वा नत्वाऽथसंपूज्यब्रह्मलोकंनयेत्पितॄन्
कर्दमालेगयानाभौमुण्डपृष्ठसमीपतः । स्नात्वाश्राद्धादिकंकृत्वापितॄणामनृणोभवेत् *
फल्गुचण्डीश्मशानाक्षीमङ्गलाद्या समर्चयेत । गयायाश्चवृषोत्सर्गात्त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत्
यत्र तत्र स्थिता देवा ऋषयोऽपि जितेन्द्रियाः ॥ ५८ ॥
आद्यं गदाधरंध्यायञ्श्राद्धपिण्डादिदानत. । कुलानां शतमुद्धृत्यब्रह्मलोकंनयेत्पितॄन्
गयागयो गयादित्यो गायत्री च गदाधरः । गया गयासुरश्चैवषड्गयामुक्तिदायिकाः

*एतदग्रेऽधिकं श्लोकद्वयं वर्तते अन्यस्मिन् पुस्तके तद्यथा—
मुण्डपृष्ठां नमेद्देवींक्षेत्रपालादिसंयुताम् । पूजयित्वाऽभयंतस्माद्विषरोगादिनाशिनीम्
कामपीठेश्च कामाक्षां(क्षीं) पूजयेत्कामरूपिणीम् ।
सर्वसौभाग्यकामो हि देवीं विन्ध्यनिवासिनीम् ॥ इति । ॥

गयाख्यानमिदं पुण्यं यः पठेत्सततं नरः । शृणुयाच्छ्रद्धया यस्तु सयातिपरमांगतिम्
पाठयेद्वा नेमाख्यानं विप्रेभ्यः पुण्यकृन्नरः । गयाश्राद्धं कृतं तेन कृतं तेन सुनिश्चितम्
गयासा महिमानञ्च अभ्यसेद्यः समाहितः । तेनेष्टं राजसूयेन अश्वमेधेन नारद॥६३॥
लिखेद्वा लेखयेद्वाऽपिपूजयेद्वाऽपिपुस्तकम् । तस्यगेहेस्थिरालक्ष्मीःसुप्रसन्नाभविष्यति
उपाख्यानमिदं पुण्यं गृहे तिष्ठति पुस्तकम् । सर्पाग्निचौरजनितं भयं तत्र न विद्यते
श्राद्धकाले पठेद्यस्तु गयामाहात्म्यमुत्तमम् । विधिहीनन्तुतत्सर्वंपितृणान्तुगयासमम्
यानि तीर्थानि त्रैलोक्ये तानि दृष्टानि तत्र वै । येन ज्ञातं गयाख्यानंश्रुतंचापठितंमुने

सूत उवाच

सनत्कुमारो मुनिपुङ्गवाय पुण्यां कथां चाऽथ निवेद्य भक्त्या ।
स्वमाश्रमं पुण्यघनैरुपेतं विसृज्य सङ्गीतगुरुं जगाम ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपसंहारपादे गयामाहात्म्यं
नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

—।—०*०——

॥ उपसंहारपादःसमाप्तः ॥

————

समाप्तं चेदं वायुपुराणम् ।

शुभमस्तुसताम्



सत्य सत्यम् सुखम् शिवम्